ताओ उपनिषद, भाग दो

प्रवचन-क्रम

23............................सफलता के खतरे, अहंकार की पीड़ा और स्वर्ग का द्वार 2

24.............शरीर व आत्मा की एकता, ताओ की प्राण-साधना व अविकारी स्थिति
.... 19

25.........................उद्देश्य-मुक्त जीवन, आमंत्रण भरा भाव व नमनीय मेधा
.... 36

26...ताओ की अनुपस्थित उपस्थिति
.... 54

27...अनस्तित्व और खालीपन है आधार सब का
.... 75

28........ऐंद्रिक भूख की नहीं--नाभि-केंद्र की आध्यात्मिक भूख की फिक्र
.... 91

29...ताओ की साधना--योग के संदर्भ में
.... 107

30.............................एक ही सिक्के के दो पहलू: सम्मान व अपमान, लोभ व भय
.... 126

31...अहंकार-शून्य व्यक्ति ही शासक होने योग्य
.... 141

32..अदृश्य, अश्राव्य व अस्पर्शनीय ताओ
.... 157

33............................अक्षय व निराकार, सनातन व शून्यता की प्रतिमूर्ति
.... 173

34..............................संत की पहचान: सजग व अनिर्णीत, अहंशून्य व लीलामय
.... 189

35...विश्रांति से समता व मध्य मार्ग से मुक्ति
.... 211

36......................तटस्थ प्रतीक्षा, अस्मिता-विसर्जन व अनेकता में एकता
.... 228

37.....................................निष्क्रियता, नियति व शाश्वत नियम में वापसी
.... 243

38...ताओ का द्वार--सहिष्णुता व निष्पक्षता
.... 260

39...श्रेष्ठ शासक कौन? --जो परमात्मा जैसा हो
.... 278

40...ताओ के पतन पर सिद्धांतों का जन्म
.... 293

41......................सिद्धांतों व आचरण में नहीं, सरल-सहज स्वभाव में जीना 312

42................................आध्यात्मिक वासना का त्याग व सरल स्व का उदघाटन 335

43..धर्म है--स्वयं जैसा हो जाना 353

2

ताओ उपनिषद, भाग दो
तेईसवां प्रवचन

सफलता के खतरे, अहंकार की पीड़ा और स्वर्ग का द्वार

Chapter 9 : Sutra 1 & 2

The Danger Of
Overweening Success

1. It is better to leave a vessel unfilled,
than to attempt to carry it when it is full.
If you keep feeling a point that has been sharpened,
the point can not long preserve its sharpness.
2. When gold and jade fill the hall,
their possessor can not keep them safe.
When wealth and honour lead to arrogance,
this brings evil on itself.
When the work is done and one"s name is becoming distinguished,
to withdraw into obscurity is the way of Heaven.

अध्याय 9 : सूत्र 1 व 2

आशातीत सफलता के खतरे

1. किसी भरे हुए पात्र को ढोने की कोशिश करने की अपेक्षा उसे अधजल छोड़ना ही श्रेयस्कर है।
यदि आप तलवार की धार को बार-बार महसूस करते रहें,
तो दीर्घ अवधि तक उसकी तीक्ष्णता नहीं टिक सकती।
2. सोने और हीरे से जब भवन भर जाता है,
तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है।
जब समृद्धि और सम्मान से घमंड उत्पन्न होता है,
तब वह स्वयं के लिए अमंगल का कारण बन जाता है।
कार्य की सफल निष्पत्ति के अनंतर जब कर्ता का यश फैलने लगे, तब उसका अपने को ओझल बना लेना ही स्वर्ग का मार्ग है।

जीवन एक गणित नहीं है; गणित से ज्यादा एक पहेली है। और न ही जीवन एक तर्क-व्यवस्था है; तर्क-व्यवस्था से ज्यादा एक रहस्य है।
गणित का मार्ग सीधा-साफ है। पहेली सीधी-साफ नहीं होती। और सीधी-साफ हो, तो पहेली नहीं हो पाती। और तर्क की निष्पत्तियां बीज में ही छिपी रहती हैं। तर्क किसी नई चीज को कभी उपलब्ध नहीं होता। रहस्य सदा ही अपने पार चला जाता है।
लाओत्से इन सूत्रों में जीवन के इस रहस्य की विवेचना कर रहा है। इसे
हम दो तरह से समझें।
एक तो हम कल्पना करें कि एक व्यक्ति एक सीधी रेखा पर ही चलता चला जाए,
तो अपनी जगह कभी वापस नहीं लौटेगा। जिस जगह से यात्रा शुरू होगी, वहां कभी वापस नहीं आएगा, अगर रेखा उसकी यात्रा की सीधी है। लेकिन अगर वर्तुलाकार है, तो वह जहां से चला है, वहीं वापस लौट आएगा। अगर हम यात्रा सीधी कर रहे हैं, तो हम जिस जगह से चले हैं, वहां हम कभी भी नहीं आएंगे। लेकिन अगर यात्रा का पथ वर्तुल है, सरकुलर है, तो हम जहां से चले हैं, वहीं वापस लौट आएंगे।
तर्क मानता है कि जीवन सीधी रेखा की भांति है। और रहस्य मानता है कि जीवन वर्तुलाकार है, सरकुलर है। इसलिए पश्चिम, जहां कि तर्क ने मनुष्य की

चेतना को गहरे से गहरा प्रभावित किया है, जीवन को वर्तुल के आकार में नहीं देखता। और पूरब, जहां जीवन के रहस्य को समझने की कोशिश की गई है--चाहे लाओत्से, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध--वहां हमने जीवन को एक वर्तुल में देखा है। वर्तुल का अर्थ है कि हम जहां से चलेंगे, वहीं वापस पहुंच जाएंगे। इसलिए संसार को हमने एक चक्र कहा है, दि व्हील। संसार का अर्थ ही चक्र होता है। यहां कोई भी चीज सीधी नहीं चलती, चाहे मौसम हों, चाहे आदमी का जीवन हो। जहां से बच्चा यात्रा शुरू करता है जीवन की, वहीं जीवन का अंत होता है। बच्चा पैदा होता है, तो पहला जीवन का जो चरण है, वह है श्वास। बच्चा श्वास लेता पैदा नहीं होता, पैदा होने के बाद श्वास लेता है। कोई आदमी श्वास लेता हुआ नहीं मरता, श्वास छोड़ कर मरता है। जिस बिंदु से जन्म शुरू होता है, जीवन की यात्रा शुरू होती है, वहीं मृत्यु उपलब्ध होती है। जीवन एक वर्तुल है। इसका अगर ठीक अर्थ समझें, तो लाओत्से की बात समझ में आ सकेगी। लाओत्से कहता है, सफलता को पूरी सीमा तक मत ले जाना, अन्यथा वह असफलता
हो जाएगी। अगर सफलता को तुम पूरा ले गए, तो तुम अपने ही हाथों उसे असफलता बना लोगे। और अगर यश के वर्तुल को तुमने पूरा खींचा, तो यश ही अपयश बन जाएगा।
यदि जीवन एक रेखा की भांति है, तो लाओत्से गलत है। और अगर जीवन एक वर्तुल है, तो लाओत्से सही है। इस बात पर निर्भर करेगा कि जीवन क्या है, एक सीधी रेखा?
इसलिए पूरब ने इतिहास नहीं लिखा। पश्चिम ने इतिहास लिखा है। क्योंकि पश्चिम मानता है कि जो घटना एक बार घटी है, वह दुबारा नहीं घटेगी, अनरिपीटेबल है। प्रत्येक घटना अद्वितीय है। इसलिए जीसस का जन्म अद्वितीय है, दुबारा नहीं होगा। और जीसस पुनरुक्त नहीं होंगे। इसलिए सारा इतिहास जीसस से हिसाब रखता है। जीसस के पहले और जीसस के बाद, सारी दुनिया में इतिहास को हम नापते हैं। ऐसा हम राम के साथ नहीं नाप सकते। हम ऐसा नहीं कह सकते कि राम के पूर्व और राम के बाद। क्योंकि पहली तो बात यह है कि हमें यह भी पक्का नहीं कि राम कब पैदा हुए। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम, जो राम का पूरा जीवन बचा सकते थे, वे उनके जन्म की तिथि नहीं बचा सकते थे। यह बहुत समझने जैसी बात है। पूरब ने कभी इतिहास लिखना नहीं चाहा, क्योंकि पूरब की दृष्टि यह है कि कोई भी चीज अद्वितीय नहीं है, सभी चीजें वर्तुल में वापस-वापस लौट आती हैं। राम हर युग में होते रहे और हर युग में होते रहेंगे। नाम बदल जाए, रूप बदल जाए, लेकिन वह जो मौलिक घटना है, वह नहीं बदलती। वह पुनरुक्त होती रहती है।
इसलिए एक बहुत मीठी कथा है और वह यह कि वाल्मीकि ने राम के जन्म के पहले कथा लिखी; पीछे राम हुए। ऐसा दुनिया में कहीं भी सोचा भी नहीं जा सकता। राम हुए बाद में, वाल्मीकि ने कथा लिखी पहले। क्योंकि राम का होना, पूरब की दृष्टि में, एक वर्तुलाकार घटना है। जैसे एक चाक घूमता है, तो उस चाक में जो हिस्सा अभी ऊपर था, अभी नीचे चला गया, फिर ऊपर आ जाएगा, फिर ऊपर आता रहेगा। जैन कहते हैं कि हर कल्प में उनके चौबीस तीर्थंकर होते रहेंगे। नाम बदलेगा, रूप बदलेगा, लेकिन तीर्थंकर के होने की घटना पुनरुक्त होती रहेगी।
इसलिए पूरब ने इतिहास नहीं लिखा; पूरब ने पुराण लिखा। पुराण का अर्थ हैः वह जो सारभूत है, जो सदा होता रहेगा, बार-बार होता रहेगा। इतिहास का अर्थ है कि जो दुबारा कभी नहीं होगा। अगर जीवन एक वर्तुल में घूम रहा है, तो फिर यह बार-बार हिसाब रखने की जरूरत नहीं कि राम कब पैदा होते हैं और कब मर जाते हैं। राम के होने का क्या अर्थ है, इतना ही याद रखना काफी है। राम का सारभूत व्यक्तित्व क्या है, इतना ही याद रखना काफी है। फिर ये बातें गौण हैं कि शरीर कब श्वास लेना शुरू करता है और कब बंद कर देता है। ये बातें अर्थपूर्ण नहीं हैं। हम उन्हीं चीजों को याद रखने की कोशिश करते हैं, जो दुबारा नहीं दुहरती हैं। जो रोज ही दुहरने वाली हैं, उनको याद रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
तो पूरब की समझ जीवन को एक वर्तुलाकार देखने की है। और यह समझ महत्वपूर्ण भी है। क्योंकि इस जगत में जितनी गतियां हैं, सभी वर्तुलाकार हैं। गति मात्र वर्तुल में है--चाहे चांद-तारे घूम रहे हों, चाहे पृथ्वी

घूम रही हो, चाहे मौसम घूम रहा हो, चाहे व्यक्ति का जीवन घूम रहा हो--इस जगत में ऐसी कोई भी गति नहीं है, जो सीधी हो। इस जगत में जहां भी गति है, वहां वर्तुल अनिवार्य है। तो अकेला जीवन के संबंध में अपवाद नहीं होगा।
लेकिन वर्तुल का अपना तर्क है; और वर्तुल का अपना रहस्य है। और वह यह
है कि जहां से हम शुरू करते हैं, वहीं हम वापस पहुंच जाते हैं। और जब हमारा मन होता है कि हम और जोर से आगे बढ़े चले जाएं, तो हमें पता नहीं होता कि हमारे आगे बढ़े जाने में एक जगह से हमने पीछे लौटना शुरू कर दिया है। एक लिहाज से जवानी बुढ़ापे के बहुत विपरीत है। लेकिन एक अर्थ में बहुत विपरीत नहीं है, क्योंकि जवानी सिर्फ बुढ़ापे में ही पहुंचती है, और कहीं पहुंचती नहीं। तो जितना आदमी जवान होता जा रहा है, उतना बूढ़ा होता जा रहा है।
और यह बात लाओत्से कहता है, "किसी भरे हुए पात्र को ढोने की कोशिश करने
की बजाय उसे अधभरा ही छोड़ देना श्रेयस्कर है।"
क्योंकि जब भी कोई चीज भर जाती है, तो अंत आ जाता है। वह कुछ भी हो, अकेला पात्र ही नहीं, पात्र तो केवल विचार के लिए है। कोई भी चीज जब भर जाती है, तो अंत आ जाता है। अगर प्रेम भी भर जाए, तो प्रेम का अंत आ जाता है। जो चीज भी भर जाती है, वह मर जाती है। असल में, भर जाना मर जाने का लक्षण है। पक जाना गिर जाने की सूचना है। फल जब पक जाएगा, तो गिरेगा ही। तो जब भी हम किसी चीज को पूरा कर लेते हैं, तभी समाप्त हो जाती है।
तो लाओत्से कहता है कि जीवन के सत्य को अगर समझना हो, तो ध्यान रखना, किसी पात्र को भरने की बजाय अधभरा रखना ही श्रेयस्कर है।
लेकिन बड़ा कठिन है, अति कठिन है, क्योंकि जीवन की सभी प्रक्रियाएं भरने के लिए आतुर हैं। जब आप अपनी तिजोरी भरना शुरू करते हैं, तो आधे पर रुकना मुश्किल है। तिजोरी तो दूर है, जब आप अपने पेट में भोजन डालना शुरू करते हैं, तब भी आधे पर रुकना मुश्किल है। जब आप किसी को प्रेम करना शुरू करते हैं, तो आधे पर रुकना मुश्किल है। जब आप सफल होना शुरू करते हैं, तो आधे पर रुकना मुश्किल है। महत्वाकांक्षा आधे पर कैसे रुक सकती है? सच तो यह है, जब महत्वाकांक्षा आधे पर पहुंचती है, तभी प्राणवान होती है। और तभी आशा बंधती है कि अब जल्दी ही सब पूरा हो जाएगा। और जितनी तीव्रता से हम पूरा करना शुरू करते हैं, उतनी ही तीव्रता से नष्ट होना शुरू हो जाता है। तो जिस बात को भी पूरा कर लेंगे, वह नष्ट हो जाएगी।
लाओत्से कहता है, आधे पर रुक जाना।
आधे पर रुक जाना संयम है। और संयम अति कठिन है। जीवन के समस्त नियमों
पर आधे पर रुक जाना संयम है। पर आधे पर रुकना बहुत कठिन है, बड़ा तप है। क्योंकि जब हम आधे पर होते हैं, तभी पहली दफा आश्वासन आता है मन में कि अब पूरा हो सकता है। अब रुकने की कोई भी जरूरत नहीं है। जब आप बिल्कुल सिंहासन पर पैर रखने के करीब पहुंच गए हों सारी सीढ़ियां पार करके--सीढ़ियों के नीचे रुक जाना बहुत आसान था, पहला कदम ही न उठाना बहुत आसान था। क्योंकि आदमी अपने मन में समझा ले सकता है कि अंगूर खट्टे हैं। और लंबी यात्रा का कष्ट उठाने से भी बच सकता है। आलस्य भी सहयोगी हो सकता है। प्रमाद भी रोक सकता है। संघर्ष की संभावना और संघर्ष के साहस की कमी भी रुकावट बन सकती है। आदमी पहला कदम उठाने से रुक सकता है। लेकिन जब सिंहासन पर आधा कदम उठ जाए और पूरी आशा बन जाए कि अब सिंहासन पर पैर रख सकता हूं, तब लाओत्से कहता है, पैर को रोक लेना। क्योंकि सिंहासन पर पहुंचना सिंहासन से गिरने के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जाता। सिंहासन पर पहुंचने के बाद करिएगा भी क्या? फल पक जाएगा और गिरेगा। सफलता पूरी होगी और असफलता बन जाएगी। प्रेम पूरा होगा और मृत्यु घट जाएगी। जवानी पूरी होगी और बुढ़ापा उतर आएगा। जैसे ही कोई चीज पूरी होती है, वर्तुल पुरानी जगह वापस लौट आता है। हम वहीं आ जाते हैं, जहां से हमने शुरू किया था। बूढ़ा आदमी उतना ही असहाय हो जाता है, जितना असहाय पहले दिन का बच्चा होता है। और जीवन भर की सफलता की यात्रा पुनः बच्चे की असफलता में छोड़ जाती है। एक अर्थ में शायद बच्चे से भी ज्यादा असहाय होता है। क्योंकि बच्चे को तो सम्हालने को उसके मां-बाप भी होते हैं और बच्चे को असहाय होने का पता भी नहीं होता। लेकिन बूढ़े के लिए सहारा भी नहीं रह जाता और असहाय होने का बोध भारी हो जाता है। और यह सारे जीवन की सफलता है! और सारे जीवन आदमी यही कोशिश कर रहा है कि मैं किसी

तरह अपने को सुरक्षित कैसे कर लूं! सारे जीवन की सुरक्षा का उपाय और अंत में आदमी इतना असुरक्षित हो जाता है जितना कि बच्चा भी नहीं है, तो जरूर हम किसी वर्तुल में घूमते हैं, जिसका हमें ख्याल नहीं है।
"तलवार की धार को बार-बार महसूस करते रहें, तो ज्यादा समय तक उसकी तीक्ष्णता नहीं टिक सकती।"
यह भी उसी पहेली का दूसरा हिस्सा है। पहली बात कि किसी भी चीज को उसकी पूर्णता पर मत ले जाना, अन्यथा आप उसी बात की हत्या कर रहे हैं। जिसको आप पूर्ण करना चाहते हैं, आप उसके हत्यारे हैं। रुक जाना। आधे में रुक जाना। इसके पहले कि चाक वापस लौटने लगे, ठहर जाना। उसी पहेली का दूसरा हिस्सा लाओत्से कहता है कि किसी चीज को बार-बार महसूस करने से उसकी तीक्ष्णता मर जाती है। अगर तलवार पर धार रखी है और बार-बार उसकी धार को महसूस करते रहें कि धार है या नहीं, तो धार मर जाएगी। रही भी हो, तो भी यह बार-बार परीक्षा करने से मर जाएगी।
लेकिन जिंदगी में हम यह भी करते हैं। अगर मेरा किसी से प्रेम है, तो दिन में मैं चार बार पता लगा लेना चाहता हूं कि प्रेम है या नहीं है। पूछ लेना चाहता हूं, उपाय करता हूं कि कह दिया जाए कि हां, प्रेम है। लेकिन जिस चीज को बार-बार महसूस किया जाता है, उसकी धार मर जाती है। प्रेमी ही एक-दूसरे के प्रेम की हत्या कर डालते हैं। और यह प्रेम के लिए ही नहीं, जीवन के समस्त तत्वों के लिए लागू है। अगर आपको बार-बार ख्याल आता रहे कि आप ज्ञानी हैं, तो आप अपनी धार अपने हाथ से ही मार लेंगे। अगर आपको बार-बार यह स्मरण होता रहे कि मैं श्रेष्ठ हूं, तो आपकी श्रेष्ठता आप ही अपने हाथ से पोंछ डालेंगे।
जिस चीज को भी हम बार-बार एहसास करते हैं, वह क्यों इतनी जल्दी मिट जाती है?
उसके कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हम उसी चीज को बार-बार एहसास करना चाहते हैं, जिसका हमें भरोसा नहीं होता। भीतर हम जानते ही हैं कि वह नहीं है। वह जो भीतर भरोसा नहीं है, उसी को पूरा करने के लिए हम जांच करते हैं। लेकिन जांच करने की कोई भी चेष्टा निरंतर, जिसकी हम जांच करते हैं, उसकी तीक्ष्णता को भी नष्ट करेगी ही। क्योंकि तीक्ष्णता होती है तीव्र पहले अनुभव में। और जितनी पुनरुक्ति होती है अनुभव की, उतनी ही तीक्ष्णता कम हो जाती है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान में हमें बहुत गहरा अनुभव पहली बार हुआ, लेकिन अब वैसा नहीं हो रहा है। अब वैसे अनुभव को वे रोज-रोज लाने की कोशिश में लगे हैं। तलवार की धार भी तीक्ष्णता खो देती है; ध्यान की धार भी तीक्ष्णता खो देगी। असल में, जिस अनुभव को हम पुनरुक्त करना चाहते हैं, पुनरुक्त करने के कारण ही वह अनुभव बासा हो जाता है। बासे होने के कारण उसकी संवेदना क्षीण हो जाती है।
अगर आप एक ही इत्र का उपयोग करते हैं रोज, तो सारी दुनिया को भला पता चलता हो आपकी इत्र की सुगंध का, आपको पता चलना बंद हो जाता है। तीक्ष्णता मर जाती है। रोज की पुनरुक्ति, और आपके नासापुट संवेदना खो देते हैं। सुंदरतम रंग भी, अगर आप रोज-रोज देखते रहें, तो रंगविहीन हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि वे रंग खो देते हैं, बल्कि इसलिए कि आंखें उनके साथ संवेदना का संबंध छोड़ देती हैं। इसलिए जो हमें मिल जाता है, उसे हम धीरे-धीरे भूल जाते हैं।
इसका यह अर्थ हुआ कि जीवन उतना ही बासा हो जाएगा, जितना हम पुनरुक्ति
की कोशिश करेंगे। और एक ही चीज को बार-बार अहसास करने की चेष्टा करेंगे, जीवन धीरे-धीरे मृत और बासा हो जाएगा। और हम सबका जीवन बासा और मृत हो जाता है। फिर न ही जीवन में कहीं कोई सुबह मालूम पड़ती है; न कोई सूरज की नई किरण फूटती है; न कोई नया फूल खिलता है; न कोई नए गीत का जन्म होता है; न कोई नए पक्षी आकाश में पर फैला कर उड़ते हैं। सब बासा हो जाता है।
इस बासेपन का कारण क्या है? इस बासेपन का कारण है कि जो भी हमें अनुभव होता है, उसे हम बार-बार अनुभव करने की कोशिश करके उसकी तीक्ष्णता को मार डालते हैं। अगर मैंने आज प्रेम से आपका हाथ अपने हाथ में लिया, कल फिर आप प्रतीक्षा करेंगे कि वह हाथ मैं अपने हाथ में आपका लूं। और अगर मुझे भी

लगा कि बहुत सुखद प्रतीति थी, तो मैं भी कल कोशिश करूंगा कि वह हाथ फिर अपने हाथ में लूं। और हम दोनों मिल कर ही उस सुख की अनुभूति को बासा कर देंगे। कल हाथ हाथ में आएगा और तब लगेगा कि कहीं कुछ धोखा हो गया। क्योंकि वैसा सुख, जो पूर्व में जाना था, अब नहीं मिलता है। तब हम और पागल की तरह हाथों को पकड़ेंगे। और ज्यादा पकड़ेंगे और कोशिश करेंगे कि उस सुख का हमें अनुभव हो जाए। वह सुख खो जाएगा। हमारी चेष्टा ही उस सुख का अंत बन जाएगी। हम सभी सुख को नष्ट करते रहते हैं। क्योंकि जो हमें मिलता है, हम उसे पागल की तरह पाने की कोशिश करते हैं। उसमें ही वह खो जाता है।
जिंदगी बहुत अदभुत है। अदभुत इस अर्थों में है कि यहां उलटी घटनाएं घटती हैं। जो आदमी पाए सुख को पाने की दुबारा कोशिश नहीं करता, उसे वह सुख रोज-रोज मिल जाता है। और जो अपनी धार की तीक्ष्णता की फिक्र ही नहीं करता बार-बार जांच करने की, उसकी धार, उसकी तलवार की धार सदा ही तीक्ष्ण बनी रहती है।
मैंने सुना है कि रूस के एक थियेटर में एक दिन बड़ी मुश्किल हुई थी। बड़ा नाटक चल रहा था। और उस नाटक में एक हकलाने वाले आदमी का काम था। वह हकलाने वाला आदमी अचानक बीमार पड़ गया, जो हकलाने का अभिनय करता था। और ऐन वक्त पर खबर आई, और पर्दा उठने के करीब था। और मैनेजर और मालिक घबड़ाए, क्योंकि उसके बिना तो सारी बात ही खराब हो जाती। वही हास्य था उस पूरे नाटक में। उसी की वजह से रंग था। कोई उपाय नहीं था, और किसी आदमी को इतनी जल्दी हकलाने का अभ्यास करवाना भी मुश्किल था। लेकिन तभी किसी ने कहा कि हमारे गांव में एक हकलाने वाला आदमी है, हम उसे ले आते हैं। उसे सिखाने की कोई जरूरत नहीं है। आप उससे कुछ भी कहो, वह हकलाता ही है। और सब तरह के इलाज हो चुके हैं, बड़े चिकित्सक उसको देख चुके हैं। उसका कोई इलाज अब तक सफल नहीं हुआ है। वह धनपति का लड़का है।
उसे ले आया गया। और बड़ा चमत्कार हुआ, उस दिन वह नहीं हकला सका। पहली बार जिंदगी में, नाटक के मंच पर खड़ा होकर, वह युवक नहीं हकला सका। क्या हुआ? मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर इतना सचेतन कोई हो जाए, तो कोई भी चीज खो जाती है। कोई भी चीज खो जाती है।
मैं एक नगर में था और एक युवक को मेरे पास लाया गया। युवक विश्वविद्यालय का स्नातक है। और बड़ी तकलीफ में है। तकलीफ उसकी यह है कि चलते-चलते अचानक वह स्त्रियों जैसा चलने लगता है। मनोचिकित्सा हो चुकी है, मनोविश्लेषण हो चुका है। दवाइयां हो चुकी हैं, सब तरह के उपाय किए जा चुके हैं। लेकिन दिन में दो-चार बार वह भूल ही जाता है। और अब एक कालेज में अध्यापक का काम करता है, तो बड़ी कष्टपूर्ण बात हो गई है।
मैं उस युवक को कहा कि मैं एक ही इलाज समझता हूं और वह यह कि जब भी तुम्हें ख्याल आ जाए, तब तुम जान कर स्त्रियों जैसा चलना शुरू कर दो। रोको मत। अब तक तुमने रोकने की कोशिश की है। और गैर-जाने में तुम स्त्रियों जैसा चलने लगते हो और जान कर पुरुष जैसे चलते हो। अब तुम इसे उलट दो। अब तुम्हें जब भी ख्याल आए, तुम जान कर स्त्रियों जैसा चलो। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं! मैं वैसे ही मुसीबत में पड़ा हूं। बिना जाने ही मुसीबत में पड़ा हूं। और अब जान कर भी चलूंगा, तब तो चौबीस घंटे स्त्रियों जैसा ही चलता रहूंगा। मैंने उससे कहा, तुम मेरे सामने ही चल कर बता दो। उसने बहुत कोशिश की, वह नहीं चल पाया।
चेतना का एक नियम है, जिस चीज की आप बहुत कोशिश करते हैं, उसकी धार मिट जाती है। उसकी धार को पाना मुश्किल है। हम सभी सुख की धार को मार लेते हैं। और बड़े मजे की बात है कि दुख में हमारे धार बनी रहती है। हम इतना दुख जो पाते हैं, इसका कारण जगत में बहुत दुख है ऐसा नहीं, हमारे जीने के ढंग में बुनियादी भूल है। दुख को हम कभी छूना नहीं चाहते, इसलिए उसमें धार बनी रहती है। और सुख को हम छूते-छूते रहते हैं निरंतर, उसकी धार मर जाती है। आखिर में हम पाते हैं, दुख ही दुख रह गया हाथ में और सुख की कोई खबर नहीं रही। तब हम कहते हैं कि सुख तो मुश्किल से कभी मिला हो मिला हो, सपना मालूम पड़ता है। सारा जीवन दुख है।
लेकिन दुख की यह धार हमारे ही कारण है। इससे उलटा जो कर लेता है, उसका नाम तप है। वह दुख की धार को छूता रहता है और सुख की फिक्र छोड़ देता है।

धीरे-धीरे दुख की धार मिट जाती है और सारा जीवन सुख हो जाता है। जिस चीज को आप छुएंगे, वह मिट जाएगी। जिस चीज को आप मांगेंगे, वह खो जाएगी। जिसके पीछे आप दौड़ेंगे, उसे आप कभी नहीं पा सकेंगे।
इसलिए जीवन गणित नहीं, एक पहेली है। और जो गणित की तरह समझता है, वह मुश्किल में पड़ जाता है। जो उसे एक रहस्य और एक पहेली की तरह समझता है, वह उसके सार राज को समझ कर जीवन की परम समता को उपलब्ध हो जाता है।
लाओत्से कहता है, "सोने और हीरे से जब भवन भर जाए, तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है।"
ये उलटी बातें मालूम पड़ती हैं, कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ती हैं, विरोधाभासी मालूम पड़ती हैं। लाओत्से कहता है, जब सोने और हीरे से भवन भर जाए, तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है। असल में, मालिक तभी तक रक्षा कर सकता है अपनी संपत्ति की, जब तक गरीब हो; जब तक इतनी संपत्ति हो कि जिसकी रक्षा वह स्वयं ही कर सके। गरीब ही कर सकता है। जिस दिन संपत्ति की रक्षा के लिए दूसरों की जरूरत पड़नी शुरू हो जाती है, उसी दिन तो आदमी अमीर होता है। और जिस दिन से दूसरों के द्वारा सुरक्षा की जरूरत आ जाती है, उसी दिन से भय प्रवेश कर जाता है। क्योंकि दूसरों के हाथ में संपत्ति कहीं सुरक्षित हो सकती है? इसलिए इस जमीन पर एक अनूठी घटना घटती है कि गरीब यहां कभी-कभी अमीर जैसा सोया देखा जाता है और अमीर यहां सदा ही गरीब जैसा परेशान देखा जाता है। भिखारी यहां कभी-कभी सम्राट की शान से जी लेते हैं और सम्राट यहां भिखारियों से भी बदतर जीते हैं। क्योंकि जो हमारे पास है, उसकी रक्षा का उपाय भी दूसरे के हाथ में देना पड़ता है।
चंगीजखान की मृत्यु हुई। वह मृत्यु महत्वपूर्ण है। चंगीजखान जैसा आदमी स्वभावतः मृत्यु से भयभीत हो जाएगा। और अपनी मृत्यु न आए, इसके लिए उसने लाखों लोगों को मारा। लेकिन जितने लोगों को वह मारता गया, उतना ही भयभीत होता गया कि अब कोई न कोई उसे मार डालेगा। अपनी रक्षा के लिए उसने जितने लोगों की हत्या की, उतने शत्रु पैदा कर लिए। रात वह सो नहीं सकता था। क्योंकि रात अंधेरे में कुछ भी हो सकता है। और संदेह उसके इतने घने हो गए कि अपने पहरेदारों पर भी वह भरोसा नहीं कर सकता था। तो पहरेदारों पर पहरेदार, और पहरेदारों पर पहरेदार, ऐसी उसने सात पर्तें बना रखी थीं। उसके तंबू के बाहर सात घेरों में एक-दूसरे पर पहरा देने वाले लोग थे। और जब किसी पहरेदार पर इतना भी भरोसा न किया जा सके और उसके ऊपर भी बंदूक रखे हुए दूसरा आदमी खड़ा हो और उस दूसरे आदमी पर भी तीसरा आदमी खड़ा हो, तो ये पहरेदार मित्र तो नहीं हो सकते हैं। यह चंगीजखान को भी समझ में आता था। लेकिन तर्क जो करता है, वह यही कि वह पहरेदारों की संख्या बढ़ाए चला जाता था कि अगर इतने से नहीं हो सकता, तो और बढ़ा दो।
और एक रात, दिन भर का थका-मांदा, उसे झपकी लग गई। रात सोता नहीं था। अपनी तलवार हाथ में लिए बैठा रहता था। कभी भी खतरा हो सकता था। चंगीज सिर्फ दिन में सोता था, भरी दुपहरी में। जब रोशनी होती चारों तरफ, तब सो पाता था। उस दिन झपकी लग गई। पास में बंधे हुए घोड़ों में से कोई घोड़ा छूट गया रात। भाग-दौड़ मची। लोग चिल्लाए। घबरा कर चंगीज उठा। अंधेरे में उसने समझा कि दुश्मन ने हमला कर दिया। तंबू के बाहर भागा। तंबू की खूंटी में पैर फंस कर गिरा। तंबू की खूंटी ही उसके पेट में धंस गई।
यह तंबू सुरक्षा के लिए था! यह खूंटी रक्षा के लिए थी! ये पहरेदार, ये घोड़े, यह सब इंतजाम था, व्यवस्था थी। कोई मारने नहीं आया था। किसी ने मारा भी नहीं चंगीज को। चंगीज मरा अपने ही भय से। सुरक्षा के उपाय के लिए भागा था।
पूरे जीवन में ऐसी घटना घटती है। आदमी मकान बनाता है; फिर मकान पर पहरेदार बिठाने पड़ते हैं। धन इकट्ठा करता है; फिर धन की सुरक्षा करनी पड़ती है। और यह जाल बढ़ता चला जाता है। और यह बात ही भूल जाती है कि मैंने जिस आदमी के लिए यह सब इंतजाम किया था, वह अब सिर्फ एक पहरेदार रह गया है, और कुछ भी नहीं।
अमरीका के अरबपति एंड्रू कारनेगी ने अपने आत्म-संस्मरण में लिखवाया है। मरने के दो दिन पहले उसने अपने सेक्रेटरी को पूछा कि मैं तुझसे यह पूछना चाहता हूं कि अगर दुबारा हम दोनों को जन्म मिले, तो तू मेरा

सेक्रेटरी होना चाहेगा या तू एंड्रू कारनेगी होना चाहेगा और मुझे अपना सेक्रेटरी बनाना चाहेगा?
एंड्रू कारनेगी मरा, तो दस अरब रुपए छोड़ कर मरा।
उसके सेक्रेटरी ने कहा, माफ करिए, आपको मैं इतना जानता हूं कि कभी भी परमात्मा से ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकता कि मैं एंड्रू कारनेगी होना चाहूं। काश, आपका मैं सेक्रेटरी न होता, तो शायद इस कामना से भी मर सकता था कि भगवान मुझे भी एंड्रू कारनेगी बना दे। कारनेगी ने पूछा, तेरा क्या मतलब? तो उस सेक्रेटरी ने कहा कि मैं देखता हूं रोज जो हो रहा है। आप सबसे ज्यादा गरीब आदमी हैं। न आप ठीक से सो सकते हैं, न आप ठीक से बैठ सकते हैं, न आप ठीक से बात कर सकते हैं। न आपको अपनी पत्नी से मिलने की फुर्सत है, न अपने बच्चों के साथ बात करने की फुर्सत है। और देखता हूं कि दफ्तर में आप सुबह साढ़े आठ बजे पहुंच जाते हैं; चपरासी भी साढ़े नौ बजे आते हैं; क्लर्क साढ़े दस बजे आते हैं; मैनेजर बारह बजे आता है; डायरेक्टर्स एक बजे पहुंचते हैं। डायरेक्टर्स तीन बजे चले जाते हैं; मैनेजर चार बजे चला जाता है; साढ़े चार बजे क्लर्क भी चले जाते हैं; पांच बजे चपरासी भी चले जाते हैं; मैंने आपको सात बजे से पहले कभी घर लौटते नहीं देखा।
चपरासी भी पहले चले जाते हैं। क्योंकि चपरासी दूसरे की सुरक्षा कर रहे हैं, अपनी नहीं। एंड्रू कारनेगी अपनी ही सुरक्षा कर रहा है।
यह लाओत्से कहता है कि जब सोने और हीरे से भवन भर जाता है, तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है। और जब मालिक रक्षा नहीं कर सकता, तो मालिक मालिक नहीं रह जाता है। वह सोने और हीरों का गुलाम हो जाता है।
हम अपनी संपत्ति के कब गुलाम हो जाते हैं, हमें पता ही नहीं चलता। मालिक होने के लिए ही कोशिश करते हैं। भूल ही जाते हैं कि जिसका हमने मालिक होना चाहा था, हम बहुत पहले ही उसके गुलाम हो चुके हैं। असल में, इस दुनिया में कोई भी आदमी यदि मालिक बनने की कोशिश करेगा, तो गुलाम हो जाएगा। असल में, हम जिसके भी मालिक बनना चाहेंगे, उसका हमें गुलाम होना ही पड़ेगा। बिना गुलाम बने मालिक बनने का कोई उपाय नहीं है। इसीलिए जीवन एक रहस्य है। यहां मालिक तो केवल वे ही लोग बन पाते हैं, सच्चे मालिक, जो किसी के मालिक ही नहीं बनते हैं, जो किसी पर अपनी मालकियत ही स्थापित नहीं करते हैं।
आदमी की तो हम बात छोड़ दें। चीजों पर भी अगर आपने मालकियत स्थापित की,
तो चीजें आपकी मालिक हो जाती हैं। जब आपको एक मकान छोड़ना पड़ता है, तो मकान नहीं रोता आपके लिए कि आप जा रहे हैं, आप रोते हैं। आपसे एक कमीज भी छीन ली जाए, तो कमीज जरा भी परेशान नहीं होती, आप परेशान होते हैं। वस्तुएं भी मालिक हो जाती हैं; दि पजेसर बिकम्स दि पजेस्ड। वह जो मालिक है, वह गुलाम हो जाता है। और जिसका मालिक है, उसी का गुलाम हो जाता है।
"जब समृद्धि और सम्मान से घमंड उत्पन्न होता है, तो वह स्वयं के लिए अमंगल का कारण है। और कार्य की सफल निष्पत्ति के अनंतर जब कर्ता का यश फैलने लगे, तब उसका अपने को ओझल कर लेना ही स्वर्ग का रास्ता है।"
और जब कोई काम सफल हो जाए, तो इसके पहले कि अहंकार का जन्म हो, कर्ता को ओझल हो जाना चाहिए। अन्यथा सफलता से बड़ी असफलता नहीं है। अन्यथा सफलता से बड़ा नर्क नहीं है। अन्यथा अपनी ही सफलता अपने लिए जहर बन जाती है। मकड़ी जैसे अपने ही भीतर से जाले को निकाल कर बुनती है, वैसे ही हम भी अपने चारों तरफ अपने जीवन का उलझाव बुन लेते हैं खुद ही। और कई बार ऐसा हो जाता है कि उस जाले में फंस कर हम ही चिल्लाते हैं कि कैसे मुक्ति हो! कैसे छुटकारा मिले! कैसे स्वतंत्रता संभव हो! यह गुलामी कैसे टूटे! और यह सारी गुलामी हमारा ही निर्माण है। लेकिन निर्माण कुछ ऐसे ढंग से होता है कि जब तक हो ही न जाए, हमें पता नहीं चलता। तो उस सूत्र को हमें समझ लेना चाहिए कि यह अनजानी गुलामी कैसे निर्मित हो जाती है और हम स्वयं ही कैसे निर्मित कर लेते हैं।
पहली बात, इस पृथ्वी पर एक ही मालकियत संभव है--ऐसा स्वभाव है, ऐसा नियम है--और वह मालकियत अपनी है। अपने अतिरिक्त और किसी की मालकियत संभव नहीं है। और जब भी कोई अपने सिवाय किसी और पर मालकियत करने जाएगा, तो गुलाम हो जाएगा। अगर महावीर या बुद्ध अपने राजमहल को और अपने राज्य को छोड़ कर

निकल जाते हैं, तो आप सदा यही सोचते होंगे कि कितना महान त्याग है कि राज्य को, धन को, संपदा को, इतने राजमहलों को छोड़ कर निकल जाते हैं! तो आप गलती में हैं। महावीर और बुद्ध सिर्फ अपनी गुलामी को छोड़ कर निकल जाते हैं। यह बात उन्हें साफ हो जाती है कि अपने सिवाय और सभी तरह की मालकियत गुलामी है। तो फिर जितनी बड़ी यह मालकियत होगी, उतनी बड़ी गुलामी हो जाती है।
इसलिए यह मजे की बात है, आपने कभी सुना अब तक इतिहास में कि कोई भिखारी अपने भिखमंगेपन को छोड़ कर और त्यागी हो गया हो? किसी भिखारी ने अपना भिक्षा-पात्र छोड़ दिया हो और त्यागी हो गया हो? क्या बात है कि भिखारी भिक्षा-पात्र नहीं छोड़ पाता और कभी कोई सम्राट अपना साम्राज्य छोड़ देता है? सम्राट तो बहुत हुए हैं साम्राज्य को छोड़ देने वाले, लेकिन भिखारी अब तक इतने साहस का नहीं हो सका कि अपना भिक्षा-पात्र छोड़ दे। बात क्या है? असल में, भिखारी की गुलामी ही इतनी छोटी होती है कि उसे पता ही नहीं चलता कि मैं गुलाम भी हूं। सम्राट की गुलामी इतनी बड़ी हो जाती है और इतनी आत्मघाती हो जाती है कि उसे पता चलता है कि मैं गुलाम हूं। सम्राट के पास साम्राज्य एक कारागृह की तरह खड़ा हो जाता है। भिखारी का भिक्षा-पात्र कारागृह मालूम नहीं पड़ता, क्योंकि अभी भी भिखारी अपने भिक्षा-पात्र को लेकर कहीं भी चल पड़ता है। अभी कारागृह इतना छोटा है कि हाथ में टांगा जा सकता है। लेकिन एक सम्राट अपने कारागृह को लेकर कहीं भी नहीं जा सकता, कारागृह में ही उसे होना पड़ता है। सम्राट छोड़ सके, क्योंकि गुलामी इतनी बड़ी हो गई कि अपनी मालकियत का भ्रम छूट गया। भिखारी नहीं छोड़ पाता, गुलामी इतनी छोटी है कि मालकियत का भ्रम कायम बना रहता है।
इसलिए मैं जानता हूं जैसा, वह ऐसा है कि जब तक आपको भ्रम बना रहे कि आप अपनी चीजों के मालिक हैं, तब तक आप समझना कि आप गरीब आदमी हैं। चीजें इतनी कम हैं कि अभी आपको पता नहीं चल रहा है। जिस दिन आपको पता चलना शुरू हो जाए कि अब चीजें मालिक हैं, उस दिन आप समझना कि आप अमीर हो गए हैं। अमीर का एक ही लक्षण है कि पता चलने लगे कि चीजों का गुलाम हो गया हूं मैं। और गरीब का एक ही लक्षण है कि उसे अभी पता नहीं चलता कि चीजें उसकी मालिक हैं। अभी भी मालकियत का भ्रम उसे कायम रहता है।
लाओत्से कह रहा है कि अगर सच में ही तुम मालिक होना चाहो, तो इस तरह के मालिक मत बन जाना कि तुम्हारी चीजों की रक्षा की भी जरूरत पड़ जाए। क्योंकि तब तुम पहरेदार हो जाओगे। और लाओत्से कह रहा है कि जब किसी भी काम में तुम सफल हो जाओ, तो इसके पहले कि कर्ता का भाव सघन हो, तुम ओझल हो जाना; कोई जान भी न पाए कि तुमने किया है।
लाओत्से का स्वयं का नाम जब चीन में पहुंच गया गांव-गांव और घर-घर में,
और लोग लाओत्से को खोजते हुए आने लगे और रास्ता पूछने लगे कि लाओत्से कहां है, और हजारों मील की यात्रा करके लोगों का आना शुरू हो गया, तो लाओत्से एक दिन ओझल हो गया। फिर लाओत्से का कोई पता नहीं चला उस दिन के बाद। लाओत्से कब मरा और कहां मरा, इसकी कोई खबर नहीं है। बस एक दिन ओझल हो गया।
वही सलाह वह दूसरों को भी दे रहा है। वह कह रहा है, जब तुम्हारा कार्य पूर्ण हो जाए, सफलता हाथ आ जाए, तो तुम चुपचाप सरक जाना।
लेकिन बड़ी कठिन होगी यह बात। क्योंकि हम उसी क्षण की तो प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब सफलता पूर्ण हो जाए। हम भी सरकते हैं कभी, आंख से हम भी ओझल होते हैं, लेकिन सफलता के क्षण में नहीं; असफलता के क्षण में आंख से ओझल होते हैं। जब हार जाते हैं, टूट जाते हैं, पराजित हो जाते हैं, तब हम भी ओझल होते हैं। दुख में, पीड़ा में हम भी भाग जाना चाहते हैं, छिप जाना चाहते हैं। विषाद में, संताप में आत्मघात भी कर लेते हैं। आत्मघात का मतलब ही इतना है कि हम इस बुरी तरह ओझल हो जाना चाहते हैं कि नाम-रेखा भी पीछे न रह जाए। लेकिन अगर कोई आदमी सफलता के क्षण में ओझल हो जाए, तो उसके जीवन में एक क्रांति घटित हो जाती है। असफलता के क्षण में ओझल हो जाना तो बिल्कुल ही स्वाभाविक है। मन की चेष्टा ही यही है कि भाग जाओ, अभी छिप जाओ, किसी को पता न चले कि तुम असफल हो गए हो। क्योंकि असफलता अहंकार को पीड़ा देती है, और सफलता अहंकार को तृप्ति देती है और पोषण देती है।
तो जब आदमी सफल होता है, तब तो वह सीना निकाल कर चारों तरफ घूमना चाहता है। तब तो जिनसे वह कभी नहीं मिला था, उनसे भी मिलना चाहता है। जिन्होंने

उसे कभी नहीं जाना था, उन्हें भी चाहता है कि वे भी जान लें। तब वह सारे जग में ढिंढोरा पीट देना चाहता है कि मैं सफल हो गया हूं। यह सफलता की खबर के लिए ही तो इतनी चेष्टा, इतना प्रयास था। और यह लाओत्से पागल मालूम पड़ता है। वह कहता है, जब सफल हो जाओ, तो आंख से ओझल हो जाना। क्योंकि सफलता के क्षण में अगर अहंकार निर्मित हो जाए, तो वही तुम्हारा नर्क बन जाएगा। और सफलता के क्षण में अगर तुम ओझल हो सको, तो लाओत्से कहता है, यही स्वर्ग का द्वार है।
"कार्य की सफल निष्पत्ति के अनंतर जब कर्ता का यश फैलने लगे, तब उसका अपने को ओझल बना लेना ही स्वर्ग का रास्ता है।"
तो नर्क का अर्थ हुआ अहंकार और स्वर्ग का अर्थ हुआ अहंकार-शून्यता। कोई और स्वर्ग नहीं है, कोई और नर्क भी नहीं। एक ही नर्क है, मैं जितना सघन हूं, उतने गहन नर्क में हूं। मैं जितना विरल हूं, जितना तरल हूं, उतना स्वर्ग में हूं। मैं जितना हूं, उतना नर्क में हूं। मैं जितना नहीं हूं, उतना स्वर्ग में हूं। मेरा होना ही मेरी पीड़ा और मेरा न होना ही मेरा आनंद है।
इसे थोड़ा समझें। जब भी आपने दुख पाया है, संताप झेला है और नर्क की आग में अपने को तड़पते पाया है, तब कभी आपने ख्याल किया कि यह पीड़ा क्या है? यह पीड़ा क्यों हो रही है? इस पीड़ा का मौलिक आधार कहां है? यह कोई और मुझे पीड़ा दे रहा है? या मेरे जीने का ढंग या मेरे अहंकार की सघन करने की चेष्टाएं, वे ही मेरी पीड़ा का कारण बन गई हैं? या जब भी आपने कभी आनंद की क्षण भर को भी पुलक पाई हो, तो कभी भीतर झांक कर देखा हो, तो पता चला होगा कि वहां आप मौजूद नहीं होंगे। जब भी आनंद की पुलक होती है, तो भीतर मैं मौजूद नहीं होता। और जब भी नर्क की पीड़ा होती है, तभी भीतर सघन मैं मौजूद होता है। मैं की छाया ही पीड़ा है। लेकिन हमारी सबकी चेष्टा यह है कि मैं को बचा कर मैं स्वर्ग में प्रवेश कर जाऊं; मैं बच जाऊं और आनंद उपलब्ध हो जाए। मैं बचूं, तो आनंद उपलब्ध नहीं होगा। क्योंकि मैं ही दुख है।
तो जीवन की जो साधारण व्यवस्था है, उसे कहीं से तोड़ देने और कहीं से उसमें जाग जाने की जरूरत है। लाओत्से कहता है, सफलता के क्षण में ओझल हो जाओ। इससे दूसरी बात भी हम समझ सकते हैं कि जब असफलता का क्षण हो, तब ओझल मत होना। जब हारे रहो, जब पराजित हो जाओ, तब राजधानी की सड़कों को मत छोड़ना। और जब जीत जाओ, तब हट जाना कि कोई देखने को भी न हो। विजय के क्षण में जो हट सकता है, उसका अहंकार तत्क्षण तिरोहित हो जाता है, एवोपरेट हो जाता है। पराजय के क्षण में जो टिक सकता है, उसका भी अहंकार तिरोहित हो जाता है। इससे विपरीत दो स्थितियां हैंः पराजय के क्षण में छिप जाओ और विजय के क्षण में प्रकट हो जाओ, तो अहंकार मजबूत होता है। अहंकार के कारण ही हम छिपना चाहते हैं--हारी हुई हालत में। और अहंकार के कारण ही हम प्रकट होना चाहते हैं--जीती हुई हालत में।
इस अहंकार की व्यवस्था और इस अहंकार के निर्माण होने के ढंग को जो ठीक
से समझ ले, वह अहंकार के साथ भी खेल खेल सकता है। अभी तो अहंकार हमारे साथ खेल खेलता है। और जो व्यक्ति अहंकार के साथ खेल खेलने को राजी हो जाए, समर्थ हो जाए, वह आदमी अहंकार से मुक्त हो जाता है।
गुरजिएफ न्यूयार्क में था। और बड़ी प्रगाढ़ सफलता गुरजिएफ के विचारों
को मिल रही थी। उसके एक शिष्य ने लिखा है कि हम गुरजिएफ को कभी न समझ पाए कि वह आदमी कैसा था। क्योंकि जब कोई चीज सफल होने के पूरे करीब पहुंच जाए, तभी वह कुछ ऐसा करता था कि सब चीजें असफल हो जातीं। ठीक ऐन मौके पर वह कभी नहीं चूकता था चीजों को बिगाड़ने में। और बनाने के लिए इतना श्रम करता था जिसका कोई हिसाब नहीं।
उसने बहुत से साधना-आश्रम निर्मित किए। एक साधना-आश्रम पेरिस के पास निर्मित किया। वर्षों मेहनत की, अथक श्रम उठाया, सैकड़ों लोगों को साधना के लिए तैयार किया। और फिर एक दिन सब विसर्जित कर दिया। जिन्होंने इतनी मेहनत उठाई थी, उन्होंने कहा, तुम पागल मालूम पड़ते हो, क्योंकि अब तो मौका आया कि अब कुछ हो सकता है। इसी दिन के लिए तो हमने वर्षों तक मेहनत की थी। तो गुरजिएफ ने कहा कि हम भी इसी दिन के लिए वर्षों तक मेहनत किए थे। अब हम विसर्जित करेंगे--इसी विसर्जन के लिए। न्यूयार्क में फिर दुबारा एक बड़ी

व्यवस्था और एक बड़ी संस्था निर्मित होने के करीब पहुंचने को आई। वर्षों मेहनत की शिष्यों ने और गुरजिएफ ने। और एक दिन सारी चीज उखाड़ कर वह चलता बना। निकटतम साथी उसे छोड़ते चले गए। क्योंकि धीरे-धीरे लोगों को अनुभव हुआ कि यह आदमी निपट पागल है। सफलता का क्षण जब करीब होता है, हाथ के करीब होता है कि फल हाथ में आ जाए, तब यह आदमी पीठ मोड़ लेता है। और जब फल आकाश की तरह दूर होता है, तब यह इतना श्रम करता है जिसका कोई हिसाब नहीं। निश्चित ही, यह पागल आदमी का लक्षण है।
लेकिन लाओत्से इस पागल आदमी को ज्ञानी कहता है। लाओत्से कहता है कि
जब सफलता हाथ में आ जाए, तब तुम चुपचाप ओझल हो जाना।
इसे अगर भीतर से समझें, तो जो ट्रांसफार्मेशन, जो क्रांति घटित होगी,
वह ख्याल में आ जाएगी। इसे कभी प्रयोग करके देखें। सफलता तो बहुत दूर की बात है, अगर रास्ते पर कोई आदमी चलता हो और उसका छाता गिर जाए, तो हम उसे उठा कर खड़े रह कर दो क्षण प्रतीक्षा करते हैं कि वह धन्यवाद दे। और अगर वह धन्यवाद न दे, तो चित्त को बड़ी निराशा और बड़ी उदासी होती है। एक धन्यवाद भी हम छोड़ कर नहीं हट सकते हैं। एक धन्यवाद भी हम ले लेना चाहते हैं।
तो लाओत्से जो कह रहा है कि जब काम बिल्कुल सफल हो जाए और जीवन सिद्धि
के करीब पहुंच जाए और मंजिल सामने आ जाए, तब तुम पीठ मोड़ लेना और चुपचाप तिरोहित हो जाना। बड़े इंटिग्रेशन, बड़ी भीतर सघन आत्मा की जरूरत पड़ेगी। वह जो सघनता है भीतर की, उस सघनता का जो परिणाम होता है, वह बहुत अलौकिक है। जो व्यक्ति मंजिल के पास पीठ मोड़ लेता है, मंजिल उसके पीछे चलनी शुरू हो जाती है। और जो व्यक्ति सफलता के बीच से ओझल हो जाता है, उसके लिए असफलता का जगत में नाम-निशान मिट जाता है। वह आदमी फिर असफल हो ही नहीं सकता।
असल में, उस आदमी ने वह कीमिया पा ली, वह कला पा ली, जिससे वह आदमी आदमी नहीं रह जाता, परमात्मा ही हो जाता है। क्योंकि सफलता को जो छोड़ सके, मंजिल के सामने पीठ मोड़ सके, वह आदमी नहीं रह गया। आदमी की सारी कमजोरी क्या है? आदमी की सारी कमजोरी अहंकार की है। वह कमजोरी न रही।
लाओत्से तिरोहित हो गया। उसका एक शिष्य उसका दूर तक गांव तक पीछा किया। लाओत्से ने उस शिष्य को बहुत कहा कि तू मेरे पीछे मत आ, क्योंकि अब मैं तिरोहित होने जा रहा हूं। और तू पीछे रुक, क्योंकि वहां बड़ी संभावना है सफलता की। वहां लोग हजारों आ रहे हैं पूछने मुझे।

उस शिष्य को भी यह समझ में आया। और आदमी कैसे रेशनलाइजेशन करता है! और आदमी कैसे अपने को तर्क दे लेता है! आखिर में उसने लाओत्से से कहा कि आपके ही काम के निमित्त मैं वापस जाता हूं। आप वहां नहीं होंगे और इतने लोग आएंगे आपको पूछते; तो नहीं, उतना तो मैं नहीं समझा सकूंगा जो आप समझा सकते थे, लेकिन फिर भी कुछ तो समझा सकूंगा। आपके ही निमित्त मैं वापस जाता हूं। उसके मन में भी मोह पकड़ना शुरू हुआ कि अब इस लाओत्से के साथ भटकना बेमानी है। इसे अब कोई जानता भी नहीं। जिन गांवों से यह गुजर रहा है, इसे कोई पहचानता भी नहीं। और अब यह कहां जाकर समाप्त होगा, पता नहीं। और इसकी जिंदगी भर की मेहनत! इसने जिंदगी भर तो वहां सुगंध फैलाई, अब लोग आने शुरू हुए हैं सुगंध के कारण, और यह भाग गया! तो वह शिष्य एक रात लौट गया वापस। लाओत्से जिस दिन चीन की सीमा छोड़ कर चीन के बाहर निकला, आखिरी बार उस सीमा पर सीमा-अधिकारी ने उसे देखा। उसके बाद उसका कोई पता नहीं चल सका कि वह कहां गया। परंपरा चीन में कहती है कि लाओत्से जिंदा है! क्योंकि ऐसा आदमी मर कैसे सकता है? मरता तो सिर्फ अहंकार है। और जिस आदमी ने अहंकार इकट्ठा ही न किया हो; और जब सम्राट उसके चरणों में आकर सिर रखने को आतुर हो रहे थे, तब अपने झोपड़े से भाग गया हो; ऐसा आदमी मर कैसे सकता है?
तो लाओत्से के संबंध में दो अनूठी बातें कही जाती हैं। एक तो यह कि वह बासठ साल की उम्र में पैदा हुआ। मां के पेट में बासठ साल वह था; बूढ़ा पैदा हुआ। और लाओत्से को प्रेम करने वाले लोग कहते हैं कि ऐसे लोग बूढ़े ही पैदा होते हैं।
हममें से अधिक लोग मरते दम तक भी बचकाने ही रहते हैं। अगर हम अपनी तरफ देखें, तो लाओत्से की बात बहुत उलटी नहीं मालूम पड़ेगी। अस्सी साल के आदमी

को भी अगर देखें, तो खिलौनों से खेलता हुआ मालूम पड़ेगा। खिलौने बदल जाते हैं; बाकी खिलौने जारी रहते हैं।
एक बच्चा है, वह अपनी दूध की बोतल मुंह में दिए चूस रहा है। एक बूढ़ा है,
वह अपना चुरुट पी रहा है। मनोवैज्ञानिक कहते, दोनों एक ही काम कर रहे हैं।
लेकिन बूढ़ा अगर अपनी दूध की बोतल मुंह में दे, तो बेहूदा मालूम पड़ेगा। इसलिए उसने तरकीबें ईजाद कर ली हैं। इसीलिए सिगरेट से या चुरुट से जो धुआं आपके भीतर जाता है, वह ठीक वैसी ही गर्म धारा भीतर ले जाता है जैसा मां का दूध। और वह धारा के जाने का ढंग ठीक वैसा ही है। और वह सुखद मालूम होता है। वह गर्मी सुखद मालूम होती है, उष्णता सुखद मालूम होती है। उष्णता की धार भीतर जा रही है, वह सुखद मालूम होती है। अब इस बूढ़े में और बच्चे में बहुत फर्क नहीं है। और अगर फर्क है, तो और ज्यादा नासमझी का फर्क है। बच्चा कम से कम दूध ही पी रहा है, ठीक ही कर रहा है।
अगर हम बूढ़े की भी जिंदगी को देखें सामान्यतया, तो हमें पता चलेगा कि वह... कहां, बचपन नहीं बदल पाता, रूप बदल जाते हैं, ढंग बदल जाते हैं, बचपन जारी रहता है। उन्हीं छोटी बातों पर क्रोध आता है। उन्हीं छोटी बातों पर अहंकार घना होता है। उन्हीं छोटी बातों का लोभ लगता है। उतना ही भय है, उतनी ही वासना है। सब उतना ही जारी रहता है। कहीं कोई अंतर नहीं है।
तो अगर हम लाओत्से की तरफ से समझें, तो उसका मतलब हुआ कि हममें से अधिक लोग बच्चे ही मरते हैं। और लाओत्से बूढ़ा पैदा होता है, बासठ वर्ष का पैदा होता है, ऐसी कथा है। कथा मीठी है। और पूरब ने मीठी कथाएं पैदा की हैं, जो बड़ी अर्थपूर्ण हैं। क्योंकि लाओत्से तब तक पैदा ही नहीं होता, जब तक प्रौढ़ नहीं हो जाता। जब प्रौढ़ हो जाता है, तभी पैदा होता है।
और दूसरी बात लाओत्से के बाबत है कि उसका पता नहीं कि वह कभी मरा। मरा
ही नहीं। ऐसा आदमी मरता भी नहीं। क्योंकि हमारे भीतर मरने वाली जो चीज है, वह हमारे अहंकार के अलावा और कुछ भी नहीं। हम नहीं मरते; पर हमारा निर्मित अहंकार मरता है। जब हम मरते हैं, तब भी हमारा अहंकार ही मरता है; हम नहीं मरते। और हमें जो पीड़ा होती है, वह हमारे मरने की पीड़ा नहीं है, वह हमारे अहंकार के मरने की पीड़ा है। मरते वक्त जो-जो हमने इकट्ठा किया है, वह छिनता है; जो-जो हमने बनाया है, वह छूटता है; जो-जो हमने पाया है, वह छीना जाता है। एक बात तो तय है कि हमने अपने को नहीं बनाया। और एक बात तय है कि हम मरने में भी नहीं छीने जाते हैं।
आपको याद है कि आप जन्म के पहले थे? नहीं है याद, क्योंकि हमें अहंकार
के अतिरिक्त और कोई चीज याद ही नहीं है। और अहंकार तो जन्म के बाद सघन होता है। इसलिए हमारी जो याददाश्त है, मनसविद कहते हैं कि वह तीन साल की उम्र के पहले नहीं जाती। ज्यादा से ज्यादा तीन साल की हमें याद आती है। पहली से पहली जो याद है, वह करीब तीन और पांच साल के बीच की होती है। क्यों? हम तीन साल भी तो थे, कोई याद नहीं बनती। क्योंकि तीन साल हमारे अहंकार को निर्मित होने में लग जाते हैं।
इसलिए बहुत मजे की बात है कि बच्चे अक्सर झूठ बोलने में और चोरी करने में जरा भी तकलीफ अनुभव नहीं करते। उसका कुल कारण, उसका कारण यह नहीं है कि वे चोर हैं और झूठे हैं। उसका कुल कारण इतना है कि अभी वह अहंकार निर्मित नहीं हुआ जो मेरे और तेरे का फासला कर पाए। इसलिए जिसको हम चोरी समझ रहे हैं, बच्चे के लिए शुद्ध समाजवाद है। अभी फासला नहीं है कि यह मेरा है और यह तेरा है। अभी मैं निर्मित नहीं हुआ है। इसलिए हम जिसे चोरी कह रहे हैं, वह हमारे अहंकार के कारण कह रहे हैं। और बच्चे के लिए अभी सभी चीजें, जो उसकी पसंद पड़ जाए, उसकी है। अभी पसंद सब कुछ है। अभी वह अहंकार निर्णय करने वाला नहीं बना कि जो कहे, यह मेरा है और यह तेरा है।
बच्चे को झूठ और सच में भी अभी फर्क नहीं है, क्योंकि बच्चे को सपने में और सच्चाई में फर्क नहीं है। तो अक्सर बच्चे सुबह उठते हैं और रात सपने में जो खिलौना उनका टूट गया, उसके लिए सुबह रोते मिल जाते हैं। या सपने में जो खिलौना खो गया, उसके लिए वे सुबह रो सकते हैं और तड़प सकते हैं कि वह खिलौना कहां गया! क्योंकि अभी स्वप्न में और सत्य में भी फासला नहीं है। असल में, रात के सपने में और दिन की सचाई में फर्क करने के लिए भी अहंकार की जरूरत है।

इसलिए एक मजे की घटना घटती हैः बच्चे को सपने में और सुबह की सचाई में फर्क नहीं होता; और जब लाओत्से जैसा आदमी अहंकार को छोड़ कर जगत को देखता है, तब उसको सपने में और सच्चाई में कोई फर्क नहीं होता फिर दुबारा। इसलिए शंकर जैसा आदमी कह पाता है, जगत माया है। उसका और कोई मतलब नहीं, उसका कुल मतलब इतना है कि अब एक दूसरे अर्थ में जगत भी सपने जैसा हो गया। एक दिन सपना भी जगत जैसा था--अहंकार के पूर्व। फिर अहंकार आया और जगत और सपने में फासला मालूम पड़ने लगा। वह फासला मेरे मैं के ही कारण है। फिर वह मैं दुबारा गिर गया। अब, अब जगत भी सपने जैसा मालूम होने लगा।
मृत्यु के क्षण में हमारा निर्मित मैं टूटता है, बिखरता है। एक-एक जगह
से उसकी खूंटियां उखड़ने लगती हैं। वे उखड़ती खूंटियां ही हमारी पीड़ा हैं। लेकिन काश, हमें याद आ सके कि जब मैं नहीं था हमारे भीतर तब भी मेरा होना था, तो मृत्यु में भी हम उतने ही आनंद से प्रवेश कर सकते हैं, जितने आनंद से हम जीवन में प्रवेश करते हैं। और जितने आनंद से रात हम निद्रा में प्रवेश करते हैं, उतने ही आनंद से हम मृत्यु की महानिद्रा में प्रवेश कर सकते हैं।
लेकिन कोई मृत्यु के क्षण में अचानक यह बात घट नहीं सकती है। जिसने पूरे जीवन सफलता को संजोया हो, असफलता को त्यागा हो; जिसने पूरे जीवन अहंकार निर्मित करने का एक भी मौका न चूका हो, झूठा भी निर्मित होता हो तो भी न चूका हो... ।
इसलिए खुशामद इतनी हमें प्रीतिकर मालूम होती है। और खुशामद करने वाला जानता है कि झूठ है और सुनने वाला भी जानता है कि झूठ है, फिर भी स्तुति कोई कर रहा हो, तो मना करने की हिम्मत नहीं होती। कोई आपकी खुशामद कर रहा हो और आपसे कह रहा हो कि आपसे सुंदर मैंने व्यक्ति नहीं देखा, आपको भी आईने के सामने कभी ऐसा ख्याल नहीं आया है, लेकिन फिर भी उस स्तुति के क्षण में मान लेने का मन होता है। दूसरे की निंदा मान लेने का मन होता है; स्वयं की स्तुति मान लेने का मन होता है। दूसरे की निंदा को हम कभी इनकार नहीं करते। वह कितनी ही बेबूझ मालूम पड़े, तो भी इनकार नहीं करते। और अपनी स्तुति को हम कभी इनकार नहीं करते, वह भी कितनी ही असंगत मालूम पड़े। स्वयं की स्तुति सदा ही स्वीकृत मालूम पड़ती है। स्वयं की स्तुति में कभी भी ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि कोई चीज सीमा के बाहर जा रही है। सभी चीजें सीमा के भीतर होती हैं। दूसरे की निंदा में सभी चीजें सीमा के भीतर होती हैं। सभी कुछ मानने योग्य होता है।
तो दूसरे की निंदा में रस लिया हो, स्वयं की प्रशंसा में आनंद पाया हो, सफलता के क्षण में पैर जमा कर खड़े हो गए हों बीच चौराहे पर, असफलता के क्षण में अंधेरे में छिप गए हों; सम्मान को खोजा हो, तलाशा हो, असम्मान की तरफ पीठ किए हुए भागते रहे हों; तो मरते क्षण में एकदम से कोई अहंकार को नहीं छोड़ सकता।
लेकिन जिसने इससे उलटा किया हो, दूसरे की निंदा में संदेह पैदा किया हो, अविश्वास पैदा किया हो, अनास्था दिखाई हो; स्वयं की स्तुति में संदेह पैदा किया हो, स्वयं की स्तुति में अनास्था दिखाई हो, स्वयं की स्तुति को मान न लिया हो; सम्मान जब कोई देने आया हो, तो हजार बार सोचा हो; असम्मान जब कोई देने आया हो, चुपचाप स्वीकार कर लिया हो; असफलता में प्रकट हो गया हो, सफलता में छिप गया हो; ऐसा व्यक्तित्व अगर चलता रहे, तो मृत्यु के क्षण में मुक्ति संभव हो पाती है। और ऐसे व्यक्ति के लिए नर्क के द्वार तो बंद ही हो गए; क्योंकि चाभी ही खो गई, जिससे नर्क के द्वार खोले जा सकते थे। और ऐसे व्यक्ति के लिए स्वर्ग का द्वार खुल गया। स्वर्ग का अर्थ हैः ऐसे व्यक्ति के लिए सतत सुख का द्वार खुल गया। ऐसा व्यक्ति कहीं भी हो, कैसा भी हो, सुख पा ही लेगा। ऐसे व्यक्ति से सुख छीनने का उपाय ही नहीं है। ऐसा व्यक्ति हमेशा ही सुखद पहलू को खोज लेगा और दुखद पहलू को उसकी आंख पकड़ ही नहीं पाएगी। ऐसा व्यक्ति कंकड़-पत्थरों में भी हीरे देख लेगा। और ऐसे व्यक्ति को कांटों में भी फूल खिल जाते हैं। और ऐसे व्यक्ति के लिए अंधेरा भी प्रकाश हो जाता है और मृत्यु परम जीवन।
इसलिए मैंने कहा कि जीवन गणित नहीं, एक पहेली है। गणित इसलिए नहीं कि गणित में दो और दो चार होते हैं। पहेली में इतना आसान हिसाब नहीं होता।

पहेली में गणित कहीं चलता है, परिणाम कुछ होते हैं। पहेली में परिणाम विपरीत हो जाते हैं। लेकिन पहेली का भी अपना सूक्ष्म गणित है। लाओत्से उसी की बात कर रहा है। और जो इस पहेली को समझाना चाहे, उसे उस सूक्ष्म गणित को समझ लेना चाहिए।
जैसे समझें कि अगर कोई शिकारी पक्षियों को तीर मारने की कला सीख रहा है, तो पक्षियों को, आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को तीर मारने में एक सूक्ष्म गणित का उपयोग करना पड़ता है। क्योंकि पक्षी जहां है, अगर आपने वहां तीर मारा, तो आपका तीर कभी भी नहीं लगेगा। पक्षी जहां होगा कुछ क्षण बाद, वहां आपको तीर मारना पड़ेगा। पक्षी अभी आकाश में मेरे आंख के सामने है। अगर मैं सीधा वहीं तीर मारूं, तो पक्षी तो तब तक हट चुका होगा जब तक मेरा तीर पहुंचेगा। मुझे तीर वहां मारना पड़ेगा, जहां पक्षी अभी नहीं है और मेरे तीर पहुंचने पर होगा। इसलिए धनुर्विद्या की कला यह कहेगी कि अगर चलते हुए जीवन, उड़ते हुए पक्षी को तीर मारना हो, तो वहां मारना जहां पक्षी न हो। अगर वहां मारा जहां पक्षी है, तो तीर व्यर्थ चला जाएगा। यह उसकी पहेली हुई। अगर मृत पक्षी बांध कर रखा हो वृक्ष में, तो वहीं तीर मारना जहां पक्षी है।
मृत गणित सीधा चलता है। जीवन का गणित सीधा नहीं चल सकता।
लाओत्से कहता है, अगर सफलता चाहिए हो, तो सफलता से बचना; असफलता चाहिए हो, तो सफलता को आलिंगन कर लेना। लाओत्से कहता है, अगर मिटना हो, मरना हो, तो जीवन को जोर से पकड़ना; और अगर जीना हो, तो जीवन को छोड़ देना, पकड़ना ही मत। और इस जगत में अगर सुख पाना हो, तो सुख की तलाश ही मत करना और सुख को टटोलते मत रहना। अगर ऐसा किया, तो दुख मिलेगा। अगर सुख पाना हो, तो दुख को टटोलना और दुख को खोजना। जो सुख को खोजेगा है, वह सुख को खो देता है; जो दुख को खोजता है, वह दुख को खो देता है। जो सुख को खोजता है, वह दुख को पा लेता है; और जो दुख को खोजने निकल पड़ता है, उसे दुख कभी मिलता ही नहीं है।
इसे हम ऐसा देख पाएं, तो हमारे जीवन का पूरा रास्ता और ढंग का हो जाए;
और हमारे कदम और ढंग से उठें; और हमारे देखने की, सोचने की, हमारा पूरा दर्शन, हमारी पूरी दृष्टि और हो जाए। ऐसी दृष्टि जब किसी की हो जाए, तो उसे मैं संन्यासी कहता हूं।
लेकिन हम तो जिसे संन्यासी कहते हैं, वह भी संसारी के गणित से सोचता है। वह भी परमात्मा को खोजने निकलता है। ध्यान रहे, जो परमात्मा को खोजने निकला, जितनी ताकत से खोजने निकलेगा, उतना ही पाना मुश्किल है। यह गणित सिर्फ धन के लिए ही लागू नहीं होता, यह धर्म के लिए भी लागू होता है। परमात्मा कोई ऐसी चीज नहीं है कि आप उठाए लकड़ी, रखे कंधे पर और निकल पड़े। तो आपके हाथ में लकड़ी ही रह जाने वाली है; परमात्मा नहीं मिलेगा। परमात्मा कोई वस्तु नहीं है कि आप खोजने निकल पड़े। परमात्मा एक अनुभव है; जब आप नहीं होते, खोजने वाला नहीं होता, तब प्रकट होता है। तो जो खोजने निकला है, वह मुश्किल में पड़ जाएगा। क्योंकि खोजने में तो खोजने वाला मौजूद ही रहता है।
इसलिए संन्यासी का अहंकार बहुत सघन हो जाता है, भयंकर हो जाता है। परमात्मा को खोज रहा है! अगर आप उससे कहेंगे, तो वह कहेगा, तुम क्या हो, तुच्छ! संसार की चीजें खोज रहे हो, दो कौड़ी की! हम अमोलक रतन खोज रहे हैं। और तुम क्षणभंगुर सुखों में पड़े हुए पापी हो! और हम मोक्ष खोज रहे हैं। तो स्वाभाविक उसकी अकड़ तेज हो जाए, वह आपके साथ न बैठ सके, उसे सिंहासन पर बिठाना पड़े। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह स्वाभाविक है इसलिए कि संसार का ही गणित काम कर रहा है अभी भी। अभी भी वही काम कर रहा है।
मैं एक जापानी फकीर तातासुसु के जीवन को पढ़ता था। तातासुसु को आकर अगर कोई उसकी स्तुति करे, तो तातासुसु सुन ले सारी बात और फिर कहे कि मालूम होता है तुम किसी और आदमी के पास आ गए। क्योंकि तुमने जितनी बातें बताईं, इनमें से कोई भी बात मुझमें नहीं है। मालूम होता है तुम किसी और से मिलने निकले थे और किसी और के पास आ गए। मैं वह आदमी नहीं हूं।
और वह इतनी निष्ठा से कहता कि कई बार अपरिचित आदमी तो मान ही लेते--कि माफ करिए, तो आप वह नहीं हैं, तातासुसु आप नहीं हैं! हम तो तातासुसु समझ कर

ही आपके चरणों में आ गए। तो तातासुसु कहता कि नहीं, तुम्हें किसी ने गलत रास्ता बता दिया।
अगर तातासुसु की कोई निंदा करते आता और ऐसी बातें भी कहता जिनसे उसका कोई संबंध नहीं, तो तातासुसु स्वीकार कर लेता। वह कहता कि ठीक ही कहते होंगे।
तातासुसु के मरने के बाद ही पता चला कि उसने न मालूम कितनी झूठी निंदाओं में हां भर दी थी। और यह भी पता चला कि वह निंदा करने वाले को कहीं ऐसा न लगे कि इसने झूठी ही हां भर दी है, तो वह सब तरह के उपाय भी करता था कि निंदा करने वाला तृप्त होकर जाए कि निंदा उसने की तो ठीक ही की है।
एक आदमी आया है तातासुसु के पास और वह कहता है कि मैंने सुना है कि तुम बहुत क्रोधी आदमी हो! तो तातासुसु के पास में एक डंडा पड़ा है, वह डंडा उठा लेता है और आगबबूला हो जाता है और उसकी आंखों से आग निकलने लगती है। उसके साथी-शिष्यों ने, संगियों ने कभी उसे जिंदगी में क्रोध से भरा नहीं देखा था। वे भी चकित हो गए हैं। और उस आदमी ने कहा, तो बिल्कुल ठीक ही है। अब और प्रमाण की क्या जरूरत है? तातासुसु ने कहा कि बिल्कुल ठीक ही है। वह आदमी चला गया।
तातासुसु के शिष्य पूछते हैं कि हमने कभी आपको क्रोध में नहीं देखा।
तो तातासुसु ने कहा कि तुमने कभी मुझे मौका ही नहीं दिया। तुम अगर आकर मुझे कहते, तो मैं प्रमाण जुटा देता। क्योंकि अकारण वह आदमी इतने दूर से चल कर आया यह बात कहने के लिए कि तुम क्रोधी हो, तो उसके लिए इतना सा करने में हर्ज भी क्या है! वह संतुष्ट होकर गया है। और अब उसे दुबारा तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। प्रमाण भी हाथ में है।
लाओत्से इस तरह के व्यक्ति की बात कर रहा है। और इस तरह के व्यक्ति का नाम ही संन्यासी है। तो जीवन में एक दूसरा आयाम खुलना शुरू होता है।
इस दूसरे आयाम पर हम आगे सूत्रों में बात करेंगे।
पांच मिनट बैठेंगे; कीर्तन में सम्मिलित हों, और फिर जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
चौबीसवां प्रवचन

शरीर व आत्मा की एकता, ताओ की प्राण-साधना व अविकारी स्थिति

Chapter 10 : Sutra 1

Embracing The One

When the intelligent and animal souls are held together in one embrace, they can be kept from separating.
When one gives undivided attention to the (vital) breath, and brings it
to the utmost degree of pliancy, he can become as a (tender) babe.
When he has cleansed away the most mysterious sights (of his imagination), he can become without a flaw.

अध्याय 10 : सूत्र 1

अद्वय की स्वीकृति

यदि बौद्धिक और ऐंद्रिक आत्माओं को एक ही आलिंगन में आबद्ध रखा जाए,
तो उन्हें पृथक होने से बचाया जा सकता है।
जब कोई अपनी प्राणवायु को अपनी ही एकाग्रता द्वारा नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा दे, तो वह व्यक्ति शिशुवत कोमल हो जाता है।
जब वह कल्पना के अतिशय रहस्यमय दृश्यों को झाड़-पोंछ कर साफ कर लेता है, तो वह निर्विकार हो जाता है।

अद्वैत की हम बात सुनते हैंः एक ही है सत्य। लेकिन फिर भी, अद्वैत की
भी जो बात करते हैं, वे भी शरीर और आत्मा को दो हिस्सों में बांट कर चलते हैं। जो अद्वैत का विचार रखते हैं, वे भी अपने शरीर और अपनी आत्मा के बीच पृथकता मानते हैं। और जब शरीर और आत्मा में भेद होगा, तो जगत और परमात्मा में भेद अनिवार्य हो जाता है। भेद की जरा सी स्वीकृति द्वैत को निर्मित कर देती है।
इसलिए एक बहुत विरोधाभासी स्थिति लोगों की है। अद्वैत को मानने वाला
भी अपने जीवन में द्वैत को ही मान कर चलता है।
लाओत्से इसमें अद्वैत की आधारशिला निर्मित कर रहा है। लाओत्से कहता
है कि जगत और परमात्मा एक नहीं हो सकते, जब तक शरीर और आत्मा के बीच एक गहरा आलिंगन न हो। जब तक कि शरीर और आत्मा के बीच ऐक्य का अनुभव न हो, तब तक पदार्थ और चेतना के बीच भी एकता निर्मित नहीं हो सकती है।
तथाकथित धार्मिक आदमी को बहुत कठिनाई मालूम पड़ेगी। लेकिन व्यक्ति अगर अपने ही भीतर विभाजित है, तो अस्तित्व को अविभाज्य नहीं मान सकेगा। अपने भीतर जो अविभाजित है, वही जगत को अविभाजित जान सकेगा। क्योंकि जगत फैला हुआ शरीर है और चेतना विराट परमात्मा है। अगर मेरी चेतना मेरे शरीर से भिन्न है, तो फिर परमात्मा की चेतना भी जगत के शरीर से भिन्न ही होगी। लाओत्से कहता है, यदि शरीर और आत्मा को एक रखा जा सके, तो ही अद्वैत की संभावना है, तो ही अद्वैत का फूल खिल सकता है।
लेकिन यह शरीर और आत्मा अलग कैसे हो जाते हैं, इसे हम समझ लें, तो शायद
एक रखने की बात भी समझ में आ जाए। बच्चा जब पैदा होता है, तो उसे कोई भेद का पता नहीं होता। शरीर और चेतना में कोई भी रेखा भी भेद की नहीं होती। शरीर और चेतना एक ही अस्तित्व की तरह बड़े होते हैं। लेकिन जीवन की जरूरतें-- सभ्यता, संस्कृति, सुरक्षा--शरीर और चेतना में भेद को निर्मित करना शुरू कर देती हैं। बच्चे को अगर भूख लगी है, तो भी हमें उसे सिखाना पड़ता है कि जब भूख लगी हो तभी भोजन मिले, यह जरूरी नहीं है; भूख को रोकना भी आवश्यक है। यह

जीवन की अनिवार्य व्यवस्था है। जब नींद आ जाए तभी सोना भी मिल जाए, यह आवश्यक नहीं; और जब प्यास लगे तभी पानी भी मिल जाए, यह भी जरूरी नहीं। तो नियंत्रण रखना भी सीखना पड़ता है। और जैसे ही बच्चे को नियंत्रण की क्षमता आती है, वैसे ही उसे यह भी बोध हो जाता है कि मैं अलग हूं और शरीर अलग है। क्योंकि शरीर को भूख लगती है और मैं भूख को रोक लेता हूं। शरीर को नींद आती है और मैं नींद को रोक लेता हूं। मैं रोक सकता हूं जिसे, उससे अलग हो जाता हूं।
तो जैसे-जैसे बच्चे में नियंत्रण, कंट्रोल विकसित होता है, वैसे-वैसे उसकी चेतना और शरीर में एक दरार पड़नी शुरू हो जाती है। वह दरार रोज-रोज बड़ी होती चली जाती है। वह दरार जितनी बड़ी हो जाती है, उतना ही अस्तित्व के साथ एक होना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि जो अपने शरीर के साथ भी एक होना जिसे मुश्किल हो गया है, उसे विराट जगत के शरीर के साथ एक होना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
यह गहरा द्वैत जीवन की अनिवार्यता में से पैदा होता है। जरूरी है, लेकिन सत्य नहीं है। उपयोगी है, लेकिन तथ्य नहीं है। और जो भी उपयोगी होता है, जरूरी नहीं कि सत्य हो। और कभी ऐसा भी होता है कि असत्य भी बहुत उपयोगी होते हैं। यह एक उपयोगी असत्य है। और इसे विकसित करना ही पड़ता है। लेकिन अगर इससे ही हमारा चित्त सदा के लिए बंध जाए और हम इससे छूट न सकें, तो यह उपयोगी असत्य आत्मघाती हो जाता है।
नियंत्रण सिखाना ही पड़ेगा। संयम सिखाना ही पड़ेगा। जरूरतें खड़ी होंगी
और मांग को रोकने की क्षमता भी जुटानी ही पड़ेगी। धीरे-धीरे जिसमें जरूरतें पैदा होती हैं, वह अलग मालूम होने लगता है; और जो जरूरतों पर नियंत्रण करता है, वह अलग मालूम होने लगता है। बुद्धि अलग और वासना अलग मालूम होने लगती है। बुद्धि और वासना जैसे ही अलग मालूम होने लगती हैं, हमारे भीतर ही दो हिस्से हो गए। फिर हम पूरी जिंदगी इन दो हिस्सों के संघर्ष में ही परेशान होते हैं। सारी जिंदगी एक अंतर्द्वंद्व बन जाती है। पूरे समय वासना अपनी मांग करती है और बुद्धि अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहती है। धीरे-धीरे हमारे भीतर सब तरफ से विभाजन हो जाता है।
मनोविद कहते हैं कि हमारा जो नीचे का हिस्सा है शरीर का, नाभि से नीचे
का हिस्सा, उसे हम नीचा हिस्सा मानना शुरू कर देते हैं। केवल नीचे होने के कारण नहीं, निम्न होने के कारण भी। ऊपर के हिस्से के साथ हम अपना आत्मसात करते हैं और शरीर के नीचे के हिस्से को हम अलग तोड़ कर रख देते हैं। कमर के नीचे का शरीर आपको ऐसा मालूम पड़ता है आपका नहीं है। कमर के ऊपर का शरीर ही बस आपका है। क्योंकि कमर के नीचे का हिस्सा धीरे-धीरे वासना से जुड़ जाता है। और कमर के ऊपर का हिस्सा धीरे-धीरे बुद्धि से जुड़ जाता है। और अंततः तो बुद्धि सिर में केंद्रित हो जाती है। इसलिए आप अपने चेहरे से ही अपने को पहचानते हैं। बाकी सारे शरीर को तो हम छिपाए रखते हैं। उसके छिपाने का कारण सिर्फ ठंड और गर्मी और शीत से बचाव ही नहीं है। उसके छिपाने का बुनियादी कारण है कि हमारी आइडेंटिटी, हम अपना तादात्म्य केवल चेहरे से करना चाहते हैं, बाकी शरीर से नहीं। क्योंकि बुद्धि हमारी प्रतीत होती है कि हमारी खोपड़ी में निर्भर है। और इसलिए चेहरा काफी है।
यह बहुत मजे की बात है कि अगर आपका चेहरा काट कर रख दिया जाए, तो आप पहचाने जा सकते हैं। लेकिन आपका पूरा शरीर अगर रखा हो सिर्फ चेहरा न हो, तो आप खुद भी न पहचान सकेंगे कि यह शरीर आपका है। दूसरे तो पहचान ही नहीं सकेंगे, आप भी नहीं पहचान सकेंगे। हमारी पहचान बुद्धि से जुड़ गई और हमने पूरे शरीर को वासनाग्रस्त मान कर अलग छोड़ रखा है। इसके गहरे परिणाम हुए हैं। उन गहरे परिणामों पर हम बात करेंगे।
लाओत्से इस पहले सूत्र में कह रहा है कि यदि बौद्धिक और ऐंद्रिक आत्माओं को एक ही आलिंगन में आबद्ध रखा जाए, तो उन्हें पृथक होने से बचाया जा सकता है।
अगर मेरी बुद्धि और मेरी इंद्रियां एक गहरे आलिंगन में आबद्ध रहें,
तो मेरे भीतर द्वंद्व को और द्वैत को पैदा होने से रोका जा सकता है। और अगर ये आबद्ध न रहें, अगर मैं बुद्धि को और वासना को अपने भीतर अलग तोड़ लूं और दोनों के बीच सब सेतु नष्ट कर दूं, तो फिर मेरे भीतर खंडित होने की स्थिति

को नहीं रोका जा सकता। जिसे मनोवैज्ञानिक स्कीजोफ्रेनिक कहते हैं, खंडित व्यक्ति कहते हैं, वह हम सभी थोड़े-बहुत हैं। जब कोई ज्यादा खंडित हो जाता है, तो पागल हो जाता है। हम किसी तरह से अपने को मैनेज कर लेते हैं, हम किसी तरह से अपने को चला लेते हैं और पागल नहीं हो जाते। लेकिन हमारे भीतर पागलपन की क्षमता प्रतिपल घटती-बढ़ती रहती है। हम अपने ही भीतर एक गहरे संघर्ष में हैं, आलिंगन में नहीं। एक तालमेल नहीं है भीतर, एक संगीत नहीं है, एक लयबद्धता नहीं है भीतर। भीतर एक संघर्ष, एक द्वंद्व, एक विरोध, एक शत्रुता है। प्रत्येक चीज के साथ संघर्ष है।
अभी पश्चिम में एक नया आंदोलन चलता है--विशेषकर अमरीका में-- संवेदनशीलता को बढ़ाने का। क्योंकि अमरीका को अनुभव होना शुरू हुआ है कि आदमी की संवेदनशीलता समाप्त हो गई है, सेंसिटिविटी समाप्त हो गई है। हम छूते हैं, लेकिन छूना हमारा बिल्कुल मुर्दा है। हम देखते हैं, लेकिन आंखें हमारी पथराई हुई हैं। हम सुनते हैं, लेकिन कानों पर आवाज ही पड़ती है, हृदय तक कोई संवेदन नहीं पहुंचता। हम प्रेम भी करते हैं, हम प्रेम की बात भी करते हैं, लेकिन प्रेम हमारा बिल्कुल निष्प्राण है। हमारे प्रेम के हृदय में कोई धड़कन नहीं है। हमारा प्रेम बिल्कुल कागजी है। हम सब कुछ करते हैं, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि हमारे किसी भी करने में कोई संवेदना नहीं रह गई है। संवेदनाशून्य, जड़, यंत्रवत हम उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, सब हम कर लेते हैं। संवेदना वापस लाई जानी जरूरी है। तो मनसविद कह रहे हैं कि अगर हम आदमी की संवेदना वापस न ला सके, तो हम आदमी को पृथ्वी पर इस सदी के आगे बचा नहीं सकेंगे। अभी तक व्यक्ति पागल होते रहे थे; अब समूहगत रूप से लोग पागल हो जाएंगे। संवेदना वापस लौटानी पड़ेगी। लेकिन संवेदना वापस कैसे लौटे? और संवेदना खो क्यों गई है?
आपको भी याद होगा--अगर आपको बचपन की कोई स्मृति है तो आपको याद होगा-- अगर बगीचे में फूल खिल गया है, तो जैसा बचपन में वह आपको दिखाई पड़ा था खिलता हुआ, वैसा अब भी फूल खिलता है लेकिन आपको दिखाई नहीं पड़ता। सूरज बचपन में भी उगता था, वही सूरज अब भी उगता है; लेकिन अब सूरज के उगने से हृदय में कोई नृत्य पैदा नहीं होता। चांद अब भी निकलता है, अब भी आप आंख उठा कर कभी चांद को देख लेते हैं, लेकिन चांद आपको स्पर्श नहीं करता। क्या हो गया है?
लाओत्से जो कह रहा है, आलिंगन टूट गया है। बुद्धि और ऐंद्रिक तल दो हो
गए हैं। इंद्रियों में संवेदना होती है, बुद्धि संवेदना को अनुभव करती है। अगर दोनों टूट जाएं, तो संवेदना होनी बंद हो जाती है। इंद्रियां जड़ हो जाती हैं और बुद्धि तक कोई खबर नहीं पहुंचती। और जीवन का काव्य और जीवन का संगीत और जीवन का रस, सभी कुछ सूख जाता है।
बच्चे एक स्वर्ग में रहते हुए मालूम पड़ते हैं, इसी जमीन पर, जहां हम हैं। लेकिन उनके स्वर्ग में रहने का कोई और कारण नहीं है, सिर्फ इतना ही कारण है कि अभी उनकी इंद्रिय-आत्मा और उनकी बुद्धि-आत्मा में फासला नहीं पड़ा है। अभी जब वे भोजन करते हैं, तो शरीर ही भोजन नहीं करता, उनकी पूरी आत्मा भी उस भोजन से आनंदित होती है। अभी जब वे नाचते हैं, तो सिर्फ शरीर ही नहीं नाचता, उनकी आत्मा भी नाचती है। अभी जब वे दौड़ते हैं, तो उनका शरीर ही नहीं दौड़ता, उनकी आत्मा भी दौड़ती है। अभी वे संयुक्त हैं। अभी उनके भीतर भेद पड़ना शुरू नहीं हुआ। अभी वे अद्वैत में हैं। अभी वे दो नहीं हुए, अभी एक हैं।
इसलिए बच्चा जिन आनंद को अनुभव कर पाता है, उनको हम अनुभव नहीं कर पाते। और बच्चा जिस प्रेम को अनुभव कर पाता है, उस प्रेम को हम अनुभव नहीं कर पाते। होना तो उलटा चाहिए कि हम ज्यादा अनुभव कर सकें, क्योंकि हमारी अनुभव की क्षमता और हमारे अनुभव का संग्रह बड़ा है। लेकिन हम अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि अनुभव करने की जो प्रक्रिया है, वही हमारी टूट गई है। संवेदना तो होती है शरीर पर। जब मैं आपके हाथ को छूता हूं, तो मेरा हाथ ही आपके हाथ को छूता है। अगर मेरा हाथ ही जड़ है... ।
महात्मा गांधी के तीन गुरुओं में से एक का नाम है हेनरी थारो। हेनरी थारो के संबंध में कहा जाता है कि लोग जब उसका हाथ छूते थे, तो उन्हें लगता था कि जैसे वे किसी मुर्दा आदमी का हाथ छू रहे हैं। मित्रों ने उल्लेख

किया है अपने संस्मरणों में कि हेनरी थारो के हाथ को अगर आंख बंद करके छुओ, तो कहना मुश्किल है कि तुम लकड़ी का हाथ छू रहे हो कि असली हाथ छू रहे हो। हेनरी थारो को शायद ज्यादा हो गया होगा यह हाथ संवेदनशून्य, लेकिन हमारा भी ऐसा ही है।
हाथ में संवेदना हो, हाथ जीवंत हो और हाथ का रोआं-रोआं और हाथ का अणु- अणु और हाथ का कोष्ठ-कोष्ठ बिजली से भर जाए छूते समय, तो ही बुद्धि ग्रहण कर सकती है इस स्पर्श के आनंद को। अगर हाथ ही मुर्दा पड़ा रहे, तो बुद्धि तक कोई खबर ही नहीं पहुंचती। और बुद्धि तक खबर न पहुंचे, तो बुद्धि के पास सीधा कोई उपाय नहीं है। इंद्रियां बुद्धि के द्वार हैं और शरीर आत्मा का साधन है, शरीर आत्मा का फैलाव है स्थूल जगत में। और अगर हम शरीर से दुश्मनी कर लें, तो हम जगत से अपना संबंध तोड़ लेते हैं। जिस मात्रा में हमारा अपने शरीर से संबंध टूटता है, उसी मात्रा में हमारा अस्तित्व से संबंध टूट जाता है। फिर हम जीते हैं, लेकिन हमारे और अस्तित्व के बीच एक फासला बना रहता है। हम कहीं भी चले जाएं, हम अस्तित्व से दूर ही बने रहते हैं। हम प्रेम भी करें, तो फासला होता है। हम करुणा भी करें, तो फासला होता है। हम मित्रता भी बनाएं, तो एक फासला होता है, जिसके आर-पार हम खड़े रहते हैं और आर-पार पहुंचना बहुत मुश्किल है।
लाओत्से कहता है, यह द्वैत हमारे भीतर पैदा होता है हमारी बुद्धि और हमारी इंद्रियों के बीच फासले के निर्माण से।
लेकिन यह फासला उपयोगी है। एक समय निर्मित होना चाहिए। और एक समय यह फासला टूट भी जाना चाहिए। इसे एक सीढ़ी की तरह उपयोग करना उचित है। इसलिए जीसस ने कहा है कि वे ही मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे, जो बच्चों की भांति हो जाएंगे। पुनः बच्चों की भांति। पुनः उतने संवेदनशील, जितने बच्चे हैं। एक-एक अनुभव जिनके लिए प्राणों तक उतर जाए, ऐसे जो हो जाएंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।
बच्चे के पास एक अद्वैत है, लेकिन अज्ञान से भरा। ज्ञानी के पास यही अद्वैत पुनः चाहिए, ज्ञान से भरा! बच्चे में एक निर्दोषिता है, एक इनोसेंस है, लेकिन अज्ञानपूर्ण, इग्नोरेंट इनोसेंस। ज्ञानी में यही निर्दोषिता पुनः चाहिए, लेकिन प्रज्ञापूर्ण। जानता हुआ, जागा हुआ निर्दोष भाव पुनः स्थापित होना चाहिए।
बच्चे का अद्वैत टूटेगा, क्योंकि वह बच्चे की उपलब्धि नहीं है। परिस्थिति और संघर्ष उसके अद्वैत को तोड़ देंगे। लेकिन आवश्यक नहीं है कि अद्वैत टूटा हुआ ही व्यक्ति मर जाए। मरने के पहले यह अद्वैत पुनः स्थापित हो सकता है। और जब यह पुनः स्थापित होता है, तो पहले वाले अद्वैत से ज्यादा समृद्ध होता है। क्योंकि अनुभव इसमें हजार गरिमाएं जोड़ जाता है। क्या किया जा सके कि हमारे भीतर एक अद्वैत आबद्ध हो जाए? हम कैसे भीतर एक हो जाएं? लाओत्से की साधना-पद्धति में भीतर होने के बड़े सुगम उपाय हैं। एक उपाय की हम पहले बात करें और फिर उसकी गहरी साधना पर चर्चा।
लाओत्से मानता था, तुम जो भी करो--उठो या बैठो, भोजन करो या सोओ--जो भी करो, उसमें पूरे संयुक्त और एक और लीन हो जाओ। अगर रास्ते पर चल रहे हो, तो चलना ही बन जाओ। इतना भी फासला मत रखो कि मैं चल रहा हूं। साक्षी की जिस साधना की हम चर्चा करते रहे हैं, लाओत्से कहता है, साक्षी भी अद्वैत पर नहीं ले जा सकेगा। एक सीमा पर साक्षी को भी छोड़ देना जरूरी है। कृष्णमूर्ति अवेयरनेस की, जागरूकता की बात करते हैं। वह भी अद्वैत पर नहीं ले जा सकेगी। एक जगह जाकर उसे भी छोड़ देना जरूरी है। लाओत्से कहता है, न जागरूकता, न साक्षी, वरन एकता, लीनता। तुम जो कर रहे हो, वही हो जाओ। चल रहे हो, तो चलने की क्रिया ही हो जाओ; चलने वाला न बचे। और भोजन कर रहे हो, तो भोजन करना ही हो जाओ; भोजन करने वाला न बचे। और अगर देख रहे हो, तो आंख ही बन जाओ; देखने वाला न बचे। और अगर सुन रहे हो, तो कान ही बन जाओ। जो भी कर रहे हो, उसमें इतनी समग्रता से एक हो जाओ कि भीतर कोई फासला न रहे। भीतर कोई भी फासला न रहे। और अगर भीतर का फासला क्रियाओं में टूटता चला जाए, तो बुद्धि और वासना के बीच, इंद्रिय और विवेक के बीच, आत्मा और शरीर के बीच सेतु निर्मित हो जाता है। वे दोनों आलिंगन में आबद्ध हो जाते हैं।

इस आलिंगन को ही तंत्र ने आंतरिक मैथुन कहा है, जब भीतर की चेतना भीतर
की वासना से एक हो जाती है। बुद्धि कहा है तंत्र ने पुरुष को और शरीर की प्रकृति को स्त्री कहा है। और जब भीतर की स्त्री भीतर के पुरुष से एक हो जाती है, आलिंगन में बद्ध हो जाती है, तो परम समाधि फलित होती है।
उसी आलिंगन की बात लाओत्से कर रहा है। जो भी किया जाए, उस करने में मेरे भीतर दो मौजूद न हों। क्षुद्र से क्षुद्र काम भी मुझे पूरा ही डुबा ले। क्षुद्र से क्षुद्र क्रिया में भी मेरी लीनता परिपूर्ण हो जाए। मैं पीछे न बचूं। मेरा बचना ही द्वंद्व है। मेरा पूरी तरह एक हो जाना ही निर्द्वंद्व हो जाना है। तो आलिंगन फलित होगा।
लेकिन यह प्रक्रिया तो पूरे जीवन पर फैलानी पड़े। और अभी फैलानी कठिन है, क्योंकि अभी हमारे भीतर कुछ शारीरिक व्यवस्थागत अनिवार्य फासले हो गए हैं। और जब तक वे फासले न टूट जाएं, तब तक इस लीनता की साधना को साधना मुश्किल है। उन फासलों को हम समझ लें। वे फासले यांत्रिक हो गए हैं, मैकेनिकल हो गए हैं। और जब तक हम यांत्रिक व्यवस्था को ही न तोड़ डालें, और नया न कर लें, तब तक केवल लीनता के प्रयोग से कुछ भी न होगा। बल्कि यह भी हो सकता है कि जब आप कोई काम करें, तो आपका यह लीनता का ख्याल कि मैं पूरी तरह लीन होकर ही काम करूंगा, द्वैत का कारण बन जाए। यह लीनता का ख्याल ही आपको लीन न होने दे। भोजन करते वक्त अगर आप यह ख्याल रख कर भोजन करें कि मैं भोजन में पूरा डूबा रहूं, तो आप डूबे नहीं रह सकेंगे। क्योंकि यह ख्याल आपको बाहर ही किए रहेगा। हमारे भीतर यंत्रगत भूलें हो गई हैं। और यंत्रगत भूलों को समझ लेना जरूरी है।
अगर आप एक छोटे बच्चे को अपने झूले पर सोता हुआ देखें, तो जो एक बात ख्याल में आपको नहीं आती होगी, आनी चाहिए, वह यह होगी कि बच्चे का पेट आप ऊपर-नीचे होते देखेंगे, छाती नहीं। बच्चा श्वास ले रहा है, तो उसका पेट ऊपर-नीचे हो रहा है। लेकिन छाती उसकी बिल्कुल विश्राम में पड़ी है। हम, हम उलटी ही श्वास ले रहे हैं। हम जब श्वास लेते हैं, तो छाती ऊपर-नीचे होती है।
लाओत्से का कथन है--और बहुत कीमती, और अब विज्ञान भी लाओत्से से सहमत है--कि जैसे ही व्यक्ति के भीतर ऐंद्रिक और बुद्धिगत चेतनाओं में फासला पड़ता है, वैसे ही श्वास नाभि से न आकर सीने से आनी शुरू हो जाती है। यह फासला जितना बड़ा होता है, श्वास उतने ही ऊपर से आकर लौट जाती है। तो जिस दिन बच्चे की श्वास पेट से हट कर और सीने से चलने लगती है, जान लेना कि बच्चे के भीतर ऐंद्रिक आत्मा में और बुद्धिगत आत्मा में फासला पड़ गया। बड़ी उम्र में भी, आप भी जब रात सो जाते हैं, तब आपके पेट से ही श्वास चलने लगती है, सीना शांत हो जाता है। क्योंकि नींद में आप अपने फासलों को बचा नहीं सकते। बेहोशी में फासले खो जाते हैं और श्वास की स्वाभाविक प्रक्रिया शुरू हो जाती है।
श्वास का जो प्राथमिक स्रोत है, जापानी भाषा में उसके लिए एक शब्द है। हमारी भाषा में कोई शब्द नहीं है। वह शब्द है उनकाः तांदेन, ढरपवशप। नाभि से दो इंच नीचे, ठीक श्वास चलती हो तो नाभि से दो इंच नीचे, जिसे जापानी तांदेन कहते हैं, उस बिंदु से श्वास का संबंध होता है। और जितना तनावग्रस्त व्यक्ति होगा, तांदेन से श्वास का बिंदु उतना ही दूर हटता जाता है।
तो जितने ऊपर से आप श्वास लेते हैं, उतने ही तनाव से भरे होंगे। और जितने नीचे से श्वास लेते हैं, उतने ही विश्राम को उपलब्ध होंगे। और अगर तांदेन से श्वास चलती हो, तो आपके जीवन में तनाव बिल्कुल नहीं होगा। बच्चे के जीवन में तनाव न होने का जो व्यवस्थागत कारण है, वह तांदेन से श्वास का चलना है। जब आप भी कभी विश्राम में होते हैं, तो अचानक ख्याल करना, आपकी श्वास तांदेन से चलती होगी। और जब आप तनाव से भरे हों, बहुत मन उदास, चिंतित, परेशान हो, व्यथित हो, बेचैनी में हो, तब आप ख्याल करना, तो श्वास बहुत ऊपर से आकर लौट जाएगी। यह श्वास का ऊपर से आकर लौट जाना इस बात का सूचक है कि आप अपनी मूल प्रकृति से बहुत दूर हो गए हैं।
लेकिन कुछ कारण हैं जिनकी वजह से हम लोगों को शिक्षा देते हैं कि पेट
से श्वास मत लेना। एक तो एक पागलपन का ख्याल सारी दुनिया में फैल गया है और

वह यह है कि छाती फूली हुई होनी चाहिए, छाती बड़ी होनी चाहिए। तो छाती जितनी बड़ी करनी हो, उतनी श्वास छाती में भरनी चाहिए, नीचे नहीं; और छाती से ही वापस लौटा देनी चाहिए। तो छाती को बड़ा करने का पागलपन व्यक्ति के भीतर एक भयंकर उत्पात को निर्मित कर देता है।
अगर आपने कभी जापानी या चीनी फकीरों की तस्वीरें देखी हैं, या लाओत्से की तस्वीर अगर आपने कभी देखी है, तो आपको थोड़ी हैरानी होगी। चीन और जापान में तो बुद्ध की भी जो तस्वीरें और मूर्तियां बनाई हैं, वे भी देख कर हमें हैरानी होगी। क्योंकि हमने जो बुद्ध की मूर्तियां बनाई हैं, उनसे उनका मेल नहीं है। हमारी जो बुद्ध की मूर्तियां हैं, उनमें पेट बहुत छोटा है, पीठ से लगा हुआ है; और छाती बड़ी है। और जापान और चीन में बुद्ध की भी जो मूर्तियां हैं, उनमें पेट बड़ा है, ठीक बच्चे जैसा है। बच्चे की छाती तो विश्राम में होती है; पेट थोड़ा सा बड़ा होगा, क्योंकि श्वास पेट पर आएगी- जाएगी।
तो छाती को बड़ा करने का ख्याल भीतर एक खतरनाक स्थिति को पैदा करता है।
और वह खतरनाक स्थिति हैः ऐंद्रिक और बौद्धिक... । तीन केंद्र ताओ मानता हैः एक तांदेन--नाभि केंद्र, दूसरा हृदय केंद्र और तीसरा बुद्धि का मस्तिष्क केंद्र। नाभि केंद्र अस्तित्व का सबसे गहरा केंद्र है। फिर उसके बाद उससे कम गहरा केंद्र हृदय का है। और सबसे कम गहरा केंद्र बुद्धि का है।
इसलिए बुद्धिवादी अस्तित्व से सबसे ज्यादा दूर होता है। उससे तो निकट
वे लोग भी होते हैं, जो हृदयवादी हैं। तथाकथित ज्ञानियों से भक्त भी कहीं ज्यादा अस्तित्व के निकट होते हैं। जिसने केवल बुद्धि को ही सब कुछ जाना है, वह आदमी सतह पर जीता है। हिसाब उसका पूरा होता है; गणित उसका साफ होता है; तर्क उसके स्पष्ट होते हैं। लेकिन कभी भी गहराई में वह नहीं उतरता; क्योंकि गहराई में सदा खतरा है। क्योंकि तर्क भी खो जाते हैं, हिसाब भी खो जाता है। वह सतह पर जीता है, जहां सब साफ-सुथरा है। हृदय में उतरे कि तर्क और गणित और सब साफ-सुथरी दुनिया खो जाती है। इसलिए बुद्धिवादी हृदय की बात से भयभीत होता है। क्योंकि हृदय के साथ ही अराजकता, अतर्क्य, राग का जन्म हो सकता है। प्रेम पैदा हो सकता है। भक्ति आ सकती है। कुछ हो सकता है, जिसके लिए तर्क देना मुश्किल पड़े। इसलिए बुद्धिवादी बुद्धि से जीता है। और बुद्धि से नीचे प्रवेश नहीं करता।
जितना बुद्धिवादी आदमी होगा, श्वास उतनी ऊपर से चलेगी। श्वास की ऊंचाई और नीचाई को जान कर आदमी का टाइप जाना जा सकता है। जितना हृदयवादी व्यक्ति होगा, श्वास उतनी गहरी चलेगी।
लेकिन लाओत्से कहता है, हृदय भी आखिरी गहराई नहीं है। और गहरे उतरना जरूरी है। और उसको वह तांदेन कहता है। नाभि से श्वास चलनी चाहिए। नाभि से जिसकी श्वास चल रही है, वह अस्तित्व के साथ वैसा ही जुड़ गया है, जैसे छोटे बच्चे जुड़े होते हैं।
"जब कोई अपनी प्राणवायु को अपनी ही एकाग्रता के द्वारा नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा दे, तो वह व्यक्ति शिशुवत कोमल हो जाता है।"
अपनी श्वास को नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा दे! नमनीयता का अर्थ है, तनावशून्य तरलता को पहुंचा दे। अगर आप तनावमुक्त हों, शून्य हों, तो श्वास आपकी अनिवार्य रूप से नाभि केंद्र पर पहुंच जाएगी। कभी शिथिल होकर, शांत होकर, कुर्सी पर बैठ कर देखें, आपको फौरन पता चलेगाः श्वास नाभि से चलने लगी। लेकिन ढीला छोड़ें अपने को।
लेकिन ढीला हम छोड़ते नहीं हैं। क्या इसका कारण केवल इतना ही होगा कि
हम सीने को बड़ा करना चाहते हैं? नहीं, इतना ही नहीं है। कारण और भी गहरे हैं। सबसे बड़ा कारण, जो आपको ख्याल में भी नहीं होगा, लेकिन आप समझेंगे तो शीघ्र ख्याल में आ जाएगा।
बच्चे को अपने शरीर का बोध सबसे पहले कब होता है?
फ्रायड की खोजें बहुत मूल्यवान हैं इस संबंध में। फ्रायड कहता है, बच्चे को अपने शरीर का सबसे पहले बोध तभी होता है, जब वह अपनी काम-इंद्रिय को स्पर्श करता है। तभी मां-बाप उसको रोकते हैं कि ठहरो, मत करो, मत छुओ। अगर बच्चा अपनी नाक छूता है, अपनी आंख छूता है, अपना हाथ हिलाता है, तो मां बहुत प्रसन्न होती है। पैर हिलाता है, तो मां बहुत आनंदित होती है। लेकिन

बच्चा अगर अपनी जननेंद्रिय छूता है, तो मां बेचैन और परेशान हो जाती है। बच्चे को पहली दफे पता चलता है कि शरीर में कोई हिस्सा भी है जो छूने योग्य नहीं है, और शरीर में कोई हिस्सा है जो खतरनाक है, और शरीर में कोई हिस्सा है जो अपराध है। यह मां और बाप की आंखों को देख कर बच्चे को पता चलता है। यह अपराध मां और बाप को अपने मां-बाप से पता चला था। यह अपराध परंपरागत है। अपराध कहीं है नहीं। लेकिन बच्चे के शरीर में एक भेद शुरू हो गया। और बच्चे को यह बात धीरे-धीरे मां-बाप के इशारे बता देंगे, उनकी निंदा, उनकी आलोचना, उनका क्रोध बता देगा कि शरीर में कोई हिस्सा ऐसा भी है जो अपना नहीं है। इसलिए आप बूढ़े भी हो जाएंगे, तो भी आपकी जननेंद्रिय आपके शरीर का हिस्सा नहीं बन पाती। बन नहीं सकती। उसके साथ एक फासला बना ही रहेगा।
और जननेंद्रिय के साथ फासला पैदा होते ही जननेंद्रिय से नीचे का जो हिस्सा है, वह वर्जित हो गया। जननेंद्रिय के ऊपर का हिस्सा स्वीकृत हो गया और नीचे का हिस्सा अस्वीकृत हो गया। जैसे ही हमारे भीतर यह भेद घटित होता है, वैसे ही श्वास ऊपर से चलने लगेगी। उसके कारण हैं। क्योंकि तांदेन का जो बिंदु है, अगर उस तक श्वास जाए, तो जननेंद्रिय पर उसका असर पड़ता है। इसलिए जैसे ही हमको यह ख्याल आ गया कि जननेंद्रिय हमारा हिस्सा नहीं है, तो हमारा तांदेन सिकुड़ जाता है, सप्रेस्ड हो जाता है। और हम डरे हुए जीने लगते हैं कि कहीं जननेंद्रिय तक श्वास न चली जाए!
क्या आपको पता है कि रात सोते समय हर पुरुष को कम से कम बारह से अठारह बार जननेंद्रिय पर इरेक्शन होता है--नींद में। फ्रायड का ख्याल था कि यह इसलिए होता है कि लोगों की कामवासना अतृप्त रह जाती है, तो जब वे कामवासना के स्वप्न देखते हैं तो जननेंद्रिय अकड़ जाती है। लेकिन अभी जितनी खोज गहरी गई है, तो पता चलना शुरू हुआ कि लाओत्से ज्यादा ठीक कहता था। लाओत्से का कहना यह है कि नींद में जननेंद्रिय पर, तांदेन पर श्वास की चोट पड़ती है, इसलिए जननेंद्रिय खड़ी हो जाती है। जरूरी नहीं है कि कोई कामवासना से संबंधित स्वप्न भीतर चल रहा हो। चल रहा हो, तो खड़ी हो जाएगी; नहीं चल रहा हो, तो भी खड़ी हो सकती है। और बारह से अठारह बार प्रत्येक पुरुष की सामान्यतया होगी। उसका कारण कुल इतना है कि श्वास की जो चोट... नींद में श्वास पूरी चलेगी, पूरी चलने से तांदेन पर चोट पड़ती है। तांदेन का बिंदु और वीर्य-ऊर्जा का बिंदु निकट हैं, सीमांत पर हैं। श्वास की चोट ही वीर्य को सक्रिय करती है। इसीलिए संभोग के समय में आप छाती से श्वास नहीं ले सकते। संभोग के क्षण में आपको पेट से ही श्वास लेनी पड़ती है। इसलिए श्वास तेजी से चलने लगती है और श्वास जोर से भीतर धक्के मारने लगती है।
अगर आप श्वास को शांत रख सकें, तो वीर्य-स्खलन रुक जाएगा। इसलिए तंत्र में प्रयोग हैं कि श्वास को शांत रखा जा सके, तो बिना वीर्य-स्खलन के संभोग किया जा सकता है। और संभोग को घंटों लंबा भी किया जा सकता है। लेकिन श्वास फिर तांदेन तक नहीं पहुंचनी चाहिए।
तो जैसे ही बच्चे को यह ख्याल में आ जाता है कि जननेंद्रिय अस्वीकार करनी है, निंदित है, पाप है, वैसे ही उसकी श्वास ऊपर से चलने लगती है। क्योंकि तांदेन पर चोट पहुंचते ही बच्चे की जननेंद्रिय पर संवेदना होती है; और वह संवेदना सुखद है। वह संवेदना सुखद है; उस सुखद संवेदना के कारण वह जननेंद्रिय के प्रति आतुर और उत्सुक होता है। लेकिन मां-बाप की आंखें और समाज की आंखें बहुत दुखद हैं। और तब एक फासला उसके भीतर पैदा होना शुरू होता है। अंततः तो सुख भी पाप हो जाता है। और सुख लेते वक्त हम सब अपने को अपराधी अनुभव करते हैं।

यह बड़े मजे की बात है कि जब भी आप अपने को सुखी पाएंगे, तो भीतर अपराध
का भाव पाएंगे। इसलिए कुछ लोग तो दुखी होने में बड़ा गौरव मानने लगते हैं, क्योंकि वे अपराधी नहीं हैं। सुखी आदमी को थोड़ा सा अपराध मालूम पड़ता है, क्योंकि उसके पहले सुख के अनुभव के साथ अपराध का भाव जुड़ गया। और इसलिए हम जीते हैं, लेकिन बंटे हुए जीते हैं।
अगर तांदेन तक श्वास न पहुंचे, तो नपुंसकता तक भी फलित हो सकती है। ताओ को मानने वाले चिकित्सकों का ख्याल है कि अनेक पुरुषों की नपुंसकता

केवल श्वास के तांदेन तक न पहुंचने से पैदा होती है। इसलिए बहुत मजे की बात आपसे कहूं, अक्सर पहलवान नपुंसक हो जाते हैं। उसका कारण है। क्योंकि पहलवान छाती से श्वास लेता है; और इतनी श्वास छाती से लेता है और पेट को भीतर ले जाता है कि तांदेन तक श्वास के पहुंचने की संभावना ही बंद हो जाती है। इसलिए पहलवान दिखता तो बहुत विराइल है, दिखता तो बहुत पुरुष है, लेकिन पुरुषत्व बहुत कम हो जाता है। पुरुषत्व के और उसके बीच श्वास का संबंध टूट जाता है।
श्वास अगर तांदेन से चले, तो वह तभी चल सकती है, जब आपने अपनी कामवासना
को भी स्वीकार किया हो। अगर अस्वीकार किया है, तो श्वास तांदेन से नहीं चल सकेगी। असल में, जब तक आपने अपनी पूरी वासना को भी समग्रीभूत अंगीकार न कर लिया हो, शिशुवत स्वीकार न कर लिया हो, तब तक आपके भीतर अद्वैत निर्मित नहीं हो सकता है। और यह बहुत आनंद की अदभुत बात है कि जैसे ही कोई व्यक्ति अपनी वासना को उसकी समग्रता में स्वीकार कर लेता है, वैसे ही वासना से मुक्त हो जाता है। द्वंद्व में वासना बढ़ती है, घटती नहीं। तड़पती है, तृप्त भी नहीं होती। संतप्त होती है, संतुष्ट कभी नहीं। पीड़ा बन जाती है, नर्क बन जाती है, लेकिन उससे छुटकारा कभी नहीं हो पाता। और तर्क हमसे कहेगा कि जिस चीज में हम इतने उलझ गए हैं, उससे और दूर हटते चले जाएं। जितने दूर हम हटते हैं, उतना फासला भीतर बड़ा होता चला जाता है।
लाओत्से कहता है कि आलिंगनबद्ध हो जाओ, अपनी ऐंद्रिकता को समग्र रूप
से स्वीकार कर लो। स्वीकार करते ही तुम उसके मालिक हो जाओगे। स्वीकार करते ही द्वंद्व मिट जाएगा। और स्वीकार करते ही निष्पत्ति, निष्कर्ष हाथ में आ जाता है। जो बुद्धि अपनी वासना को पूरे रूप से स्वीकार कर लेती है, वह बुद्धि अपनी वासना के पार निकल जाती है। लेकिन यह पार निकलना संघर्ष से संभव नहीं होता, द्वंद्व से भी संभव नहीं होता। यह निर्द्वंद्व स्वीकार-भाव से संभव होता है। प्राणवायु को नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचाना पहला प्रयोग है। ताओ की साधना में जो उतरते हैं, उनका पहला काम यह है कि वे श्वास को फेफड़ों से लेना बंद कर दें, नाभि से लेना शुरू करें। इसका अर्थ हुआ कि जब आपकी श्वास भीतर जाए, तो पेट ऊपर उठे; और जब श्वास नीचे गिरे, तो पेट नीचे गिरे। और सीना शिथिल रहे, शांत रहे।
शायद पुरुष राजी भी हो जाएं, क्योंकि सभी पुरुषों को पहलवान होने का पागलपन नहीं है। स्त्रियां और भी मुश्किल से राजी हो सकती हैं। क्योंकि स्त्रियों को उससे भी बड़ा पागलपन सवार हुआ है। और वह है स्तन को सुदृढ़, सुडौल और बड़े बनाने का। तो स्त्रियां कभी नाभि से श्वास लेने को तैयार नहीं होतीं।
इसलिए ताओइस्ट फकीर तो मिल जाएंगे, स्त्रियां मिलना बहुत मुश्किल हैं। ताओ को मानने वाले पुरुष मिल जाएंगे, उसकी साधना से उतर कर जिन्होंने परम आनंद को उपलब्ध किया है, ऐसे पुरुष मिल जाएंगे, लेकिन स्त्रियां खोजनी मुश्किल हैं। और उसका कुल एक कारण है कि स्त्री को एक रोग की तरह एक बात पकड़ गई है कि स्तन बड़े होने चाहिए। प्राकृतिक जरा भी नहीं है। और सच तो यह है कि जितना गोल और जितना सुडौल स्तन हो, बच्चे को दूध पीने में उतनी ही कठिनाई होती है। इसलिए यह बायोलॉजिकल नहीं है। क्योंकि जितना सुडौल स्तन हो, बच्चा जब दूध पीता है, तो उसकी नाक स्तन से भिड़ जाती है और सफोकेशन, और उसे घबड़ाहट शुरू होती है।
मनसविद कहते हैं कि स्त्रियों के सुडौल स्तन देख कर पुरुषों को भी घबड़ाहट शुरू होती है, उसका मौलिक कारण बचपन में हुआ अनुभव है सफोकेशन का। अगर आपके सामने एकदम स्त्री के सुडौल स्तन आ जाएं, तो आपकी श्वास गड़बड़ा जाती है। इतनी घबड़ाहट का कोई कारण नहीं मालूम होता। लेकिन अगर सुडौल स्तन पर बच्चा दूध पीए, तो उसकी नाक--स्वभावतः गोल स्तन हो तो उसकी नाक में अड़ जाएगा और घबड़ाहट उसे होगी। और वह घबड़ाहट गहरी बैठ जाती है। लेकिन स्त्रियों को स्तन बड़े दिखाने का मनोवैज्ञानिक बहुत कारण खोजते हैं। कारण जो भी हों, लेकिन उसका व्यापक और गहरा परिणाम जो हुआ है, वह यह हुआ है कि कोई स्त्री नाभि से श्वास लेने को तैयार नहीं है। और अगर नाभि से श्वास न ली जा सके, तो बच्चों जैसी सरलता असंभव है। वह उस श्वास के साथ ही बच्चे जैसी नमनीयता और तरलता पैदा होती है।

तो पहला कि आपकी श्वास नाभि से चलने लगे। चलें, उठें, बैठें, ख्याल रखें कि नाभि से श्वास चल रही है। तो ताओ की साधना के तीन हिस्से हैं प्राण-साधना के। पहला, श्वास नाभि से चले। और आप एक तीन सप्ताह का प्रयोग करके भी दंग रह जाएंगे कि अगर श्वास नाभि से चले, तो आपके न मालूम कितने क्रोध विलीन हो गए; और आपकी न मालूम कितनी ईर्ष्या खो गई; और आपके न मालूम कितने तनाव अब नहीं हैं; और आपकी नींद गहरी हो गई; और आपका व्यक्तित्व संतुलित होने लगा। श्वास साधारण बात नहीं है, सारे प्राण की व्यवस्था उससे जुड़ी है। तो जैसी श्वास होगी, वैसी ही आपके प्राणों में व्यवस्था या अव्यवस्था पैदा होती है। आप क्रोध के समय में लयबद्ध श्वास नहीं ले सकते। और अगर लयबद्ध श्वास लें, तो क्रोध नहीं कर सकते। श्वास का उखड़ जाना जरूरी है क्रोध के क्षण में। तो ही शरीर उत्तप्त हो पाता है, तो ही शरीर की ग्रंथियां जहर छोड़ पाती हैं।
तो पहला सूत्र है, श्वास को धीरे-धीरे नाभि पर ले आना। सीने का काम ही
न रह जाए।
दूसरा ताओ प्राण-साधना का हिस्सा है कि सदा श्वास बाहर जाए, उस पर ध्यान देना; भीतर आती श्वास पर बिल्कुल ध्यान नहीं देना। और जब श्वास बाहर जाए, तो जितने जोर से श्वास को उलीचा जा सके, उलीच देना; और भीतर कभी श्वास अपनी तरफ से नहीं लेना। जितनी आए आ जाने देना। आने की प्रक्रिया परमात्मा पर छोड़ देनी; और भेजने की प्रक्रिया जितनी हमसे उलीचते बन सके, उलीच देना। इसके अदभुत परिणाम होते हैं।
हम सभी लोग श्वास लेने में तो बहुत उत्सुकता दिखाते हैं, छोड़ने में नहीं। अगर आप ध्यान करेंगे, तो हमारी एम्फेसिस सदा छोड़ने पर कभी नहीं होती, सदा लेने पर होती है। और यह सिर्फ श्वास का ही सवाल नहीं है; हमारा पूरा जीवन ही लेने पर निर्भर होता है, देने पर कभी निर्भर नहीं होता। जो व्यक्ति श्वास को छोड़ने पर जोर देगा और लेने पर नहीं, उसके पूरे व्यक्तित्व में दान और देना अपने आप गहन हो जाएगा और लेना कम हो जाएगा। एक आदमी की हम श्वास की जांच करके कह सकते हैं कि यह आदमी लेने में रस लेता होगा कि देने में। अनिवार्यरूपेण! श्वास को आप धोखा नहीं दे सकते। कंजूस आदमी कभी भी श्वास छोड़ने में सुख अनुभव नहीं करता। सिर्फ लेने में! मनसविद कहते हैं कि कंजूस व्यक्ति सिर्फ धन को ही नहीं रोकता, सब कुछ रोकने लगता है। कंजूस कांस्टीपेशन में जीता है, सब तरह के कांस्टीपेशन में। सभी चीजों को रोक लेता है। सौ में से नब्बे मौकों पर कब्जियत आपके चित्त की कंजूसी का परिणाम होती है। सभी चीजों को रोकने का मन होता है, तो मल तक को रोक लेता है। श्वास को भी रोक लेता है। देते में डरता है। बस लेने भर को आतुर होता है।
लेकिन जीवन का नियम हैः जितना ज्यादा देंगे, उतना मिलता है। अगर आपने श्वास छोड़ने में कंजूसी दिखाई, तो आप पा नहीं सकेंगे। क्योंकि पाएंगे कहां से? सिर्फ गंदी श्वास भीतर इकट्ठी हो जाएगी। सिर्फ कार्बन डाय आक्साइड भीतर इकट्ठा हो जाएगी। कोई छह हजार छिद्र हैं आपके श्वास के यंत्र में। हम ज्यादा से ज्यादा डेढ़ हजार, दो हजार छिद्रों तक श्वास लेते हैं। चार हजार छिद्र सदा ही कार्बन डाय आक्साइड से भरे रहते हैं। हम उन्हें कभी खाली ही नहीं करते हैं। हम गंदगी को अपने भीतर इकट्ठा कर लेते हैं। और हम ऊपर ही ऊपर जीते रहते हैं। और भीतर गंदगी की पर्तें इकट्ठी होती चली जाती हैं।
ताओ का मानना है कि श्वास को उलीचें और लेने की आप फिक्र न करें। क्योंकि लेना तो अपने आप हो जाएगा, उलीचना भर काफी है। और जितनी आप श्वास को उलीच देंगे, उतनी ताजी श्वास भीतर चली आएगी। और यह उलीचने पर जोर देने का कारण है, क्योंकि इस जोर की बदलाहट से, इस उलीचने की तरफ जोर बढ़ने से आपके पूरे जीवन में देने की संभावना बढ़ने लगेगी। हमारा सारा क्रोध इसीलिए है कि हम देना नहीं चाहते, लेना चाहते हैं। हमारी सारी घृणा इसीलिए है कि हम देना नहीं चाहते, लेना चाहते हैं। हमारी ईर्ष्या इसीलिए है कि हम देना नहीं चाहते, लेना चाहते हैं। हमारे जीवन का सारा उलझाव क्या है? कि देने की हमें जरा भी इच्छा नहीं है और लेना हम बहुत चाहते हैं। जो दे नहीं सकता, उसे कुछ भी नहीं मिलेगा। और जो दे सकता है, उसे हजार गुना सदा मिल जाता है।

और जो हम देते हैं, अगर हम लोहा देते हैं, तो सोना मिल जाता है। कार्बन डाय आक्साइड उलीचिए और प्राणवायु भीतर भर जाती है, आक्सीजन भीतर भर जाती है।
यही पूरे जीवन का सूत्र है।
तो लाओत्से का दूसरा सूत्र हैः सदा श्वास को फेंकिए; लेने को भूल ही जाइए। लेने का आपको काम ही नहीं करना है, वह तो प्रकृति स्वयं कर लेती है। आप सिर्फ उलीच दें, फेंक दें, हटा दें। खाली जगह छोड़ दें, वह भर जाएगी। और अगर आपका जोर छोड़ने पर हो और लेने पर बिल्कुल न हो, तो चित्त एकदम नमनीय हो जाएगा। क्योंकि लेने में तनाव होता है, जबर्दस्ती होती है। छोड़ने में तो सिर्फ हलकापन आता है। छोड़ने में सिर्फ निर्भार होते हैं। भरना तो एक भार है। छोड़ना निर्भार होना है। छोड़ना तो वजन कम कर देता है।
तो दूसरा सूत्र हैः छोड़ें, श्वास को लें मत।
और तीसरा सूत्र है लाओत्से का--केंद्र नाभि हो जाए, छोड़ने पर जोर हो जाए और तीसरा--यह जो श्वास का आना-जाना है, इससे अपने को पृथक न समझें। जब श्वास बाहर जाए, तो समझें कि मैं बाहर चला गया; और जब श्वास भीतर आए, तो समझें कि मैं भीतर आ गया। प्राण के साथ एक हो जाएं।
हम क्या करते हैं? हम कहते हैं, श्वास मुझमें आई, श्वास मुझसे बाहर गई। लाओत्से कहता है इससे बिल्कुल उलटी बात। वह कहता है, श्वास के साथ मैं बाहर गया, श्वास के साथ मैं भीतर आया। मैं ही बाहर हूं, मैं ही भीतर हूं। श्वास के साथ इस शरीर में भीतर आता हूं, श्वास के साथ इस शरीर के बाहर विराट शरीर में जाता हूं। चलते, उठते, बैठते, अगर यह ख्याल रख सकें कि श्वास के साथ मैं बाहर गया और श्वास के साथ मैं भीतर आया। इसका जप निर्मित हो जाए। यह धीरे-धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जप की भांति आपके भीतर गूंजने लगे कि श्वास में बाहर गया, श्वास में भीतर आया। तो श्वास की यह सतत क्रिया अगर जप बन जाए बाहर और भीतर आने की, तो अद्वैत फलित होता है, तो अद्वैत का अनुभव होता है।
और अगर ये तीन बातें ध्यानपूर्वक हो जाएं, तो लाओत्से कहता है, "जब कोई अपनी प्राणवायु को अपनी ही एकाग्रता के द्वारा नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा देता है, तो वह शिशुवत कोमल हो जाता है।"
तो फिर बच्चे की भांति कोमल हो जाता है। यह कोमलता जितनी ज्यादा हो, उतना ज्यादा जीवन। यह कोमलता जितनी कम हो, उतनी ज्यादा मृत्यु। सख्त हो जाना ही मौत का दरवाजा और कोमल बने रहना ही जीवन का द्वार है। तो कोमल, जैसे कि नया-नया उगा हुआ अंकुर होता है। दिखता है कमजोर, लेकिन वही उसकी शक्ति है। बूढ़ा दिखता हो भला ताकतवर, लेकिन बच्चे से ज्यादा ताकतवर नहीं है। क्योंकि मौत करीब आती चली जा रही है। जितना सख्त होता चला जाता है, उतना मृत्यु के करीब पहुंचता चला जाता है। बच्चा बिल्कुल कमजोर दिखता है, लेकिन अपनी कमजोरी में भी महा शक्तिशाली है, क्योंकि जीवन अभी उसमें फैलेगा और बड़ा होगा।
नमनीयता! लेकिन यह श्वास पर प्रयोग के बिना संभव नहीं है। और श्वास पर अगर यह संभव हो जाए, तो फिर जीवन के सभी पहलुओं पर संभव हो जाती है। और हमारी श्वास हमारे व्यक्तित्व को सब तरफ से प्रभावित करती है। आपकी श्वास आपका पूरा दर्पण है। आप श्वास के साथ क्या कर रहे हैं, उससे पता चल जाएगा कि आप अपने साथ क्या कर रहे हैं। आप कैसी श्वास लेते हैं, पता चल जाएगा, आप कैसे व्यक्ति हैं।
लाओत्से के पास कोई आता था साधना के लिए, तो लाओत्से कहता था कि एक सप्ताह मेरे पास रुक जाओ, जरा मैं देख तो लूं कि तुम कैसी श्वास लेते हो, कैसी श्वास छोड़ते हो। खोजी आया हो, अगर ज्ञानी हो, तो हैरान होगा कि हम ब्रह्मज्ञान लेने आए, सत्य का पता लगाने आए और यह आदमी कह रहा है कैसी श्वास लेते हो, कैसी छोड़ते हो। सात दिन लाओत्से देखेगा उस आदमी को अनेक हालतों में--सोते में, जगते में, काम करते, चलते वक्त, क्रोध में, प्रेम में--और देखेगा, उसकी श्वास की व्यवस्था क्या है। और जब तक वह श्वास की व्यवस्था न समझ ले, तब तक साधना का कोई सूत्र न देगा। श्वास के साथ ही साधना पूरी की पूरी व्यवस्थित की जा सकती है।
तो ये तीन सूत्र ख्याल रखें। आपने सुना होगा जापानी शब्द हाराकिरी। हाराकिरी का हम अनुवाद करते हैं आत्मघात, स्युसाइड। लेकिन जापानी शब्द का

अर्थ और ज्यादा है। हारा का अर्थ होता है केंद्र, परम केंद्र--जहां से जीवन पैदा होता है। उसी केंद्र में छुरा मार कर अगर कोई मरता है, तो उसको हाराकिरी कहते हैं। इसलिए हर कोई हाराकिरी नहीं कर सकता। आप चाहें कि हाराकिरी कर लें, तो आप नहीं कर सकते। हाराकिरी करने के लिए हारा को पहचानना जरूरी है कि वह केंद्र कहां है।
अभी मैंने आपसे कहा तांदेन, नाभि से दो इंच नीचे, अगर आप श्वास को नाभि
से लेते रहें, तो धीरे-धीरे आपको नाभि से दो इंच नीचे एक जगह पर स्मरण होने लगेगा केंद्र का। वही केंद्र जब इतना स्पष्ट हो जाता है कि आपको लगता है पूरा शरीर परिधि है और वही केंद्र है, पूरा शरीर एक वर्तुल है और वही केंद्र है, जिस दिन आप सोते-जागते, उठते-बैठते सतत उस केंद्र के स्मरण से भरे रहते हैं और दीए की एक ज्योति की तरह वह केंद्र आपके भीतर जलने लगता है, तब उसका नाम हारा है। और जिस व्यक्ति का वह केंद्र दीए की ज्योति की तरह जलने लगता है भीतर, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है।
तो हाराकिरी का मतलब होता है, शरीर को केंद्र से तोड़ देना। तो वह ज्योति परम ज्योति में विलीन हो जाएगी।
यह जो हारा है, यह जो केंद्र है, यह आपकी बुद्धि में नहीं है। यह आपके हृदय में भी नहीं है। यह आपकी नाभि के पास है। और इसीलिए मां से बच्चे की खोपड़ी नहीं जुड़ी रहती उसके पेट में और न हृदय जुड़ा रहता है; उसकी नाभि जुड़ी रहती है। नाभि से बच्चा जुड़ा रहता है। लेकिन यह चमत्कार की बात है कि बच्चा न तो श्वास लेता मां के पेट में, न उसके हृदय में धड़कन होती, सिर्फ नाभि से मां से जुड़ा रहता है और जीवित रहता है। इसका अर्थ साफ है कि न तो हृदय अनिवार्य है जीवन के लिए और न बुद्धि अनिवार्य है जीवन के लिए। हृदय की धड़कन के बिना भी बच्चा जीवित रहता है और श्वास के बिना चले भी जीवित रहता है, लेकिन नाभि के बिना जीवित नहीं रह सकता।
इसलिए मां से बच्चे के अलग होते ही पहला काम हम नाभि से संबंध तोड़ने
का करते हैं। क्योंकि जब तक नाभि से संबंध न टूट जाए, बच्चा अपनी श्वास नहीं ले सकेगा। व्यक्तित्व नहीं पैदा होगा उसका, अलग खड़ा नहीं होगा। वह मां से जुड़ा है, मां से संबंध तोड़ना पड़ेगा। जब हम मां से संबंध तोड़ देंगे, तब उसके शरीर को पहली दफे जरूरत पैदा होगी कि वह श्वास ले, हृदय धड़के, खून बहे। बच्चा अपने पैरों पर जीवन को चलना शुरू करे।
ठीक इसे ऐसा समझें कि मां से नाभि से हमारा जो धागा जुड़ा है, यह एक धागा है; और ठीक नाभि से दूसरा धागा हमारा परमात्मा से जुड़ा है, अस्तित्व से जुड़ा है। वह जिस जगह से हमारा धागा जुड़ा है, नाभि के दूसरे छोर को हम समझें, दूसरे पहलू को, जहां से हम अस्तित्व से जुड़े हैं, उसका नाम हारा है। और ताओ कहता है कि उस हारा को जो पा लेता है, उस केंद्र को जो पा लेता है, वह सरल हो जाता है। फूल की तरह, आकाश के तारों की तरह, बच्चों की तरह, पशुओं की आंखों की तरह तरल और सरल हो जाता है।
यह तरलता और सरलता अगर पानी हो, तो तीसरे सूत्र में लाओत्से कहता है, "जब वह कल्पना के अतिशय रहस्यमय दृश्यों को झाड़-पोंछ कर साफ कर लेता है, तो निर्विकार हो जाता है।"
श्वास नमनीय हो जाए, केंद्र पर आ जाए और कल्पना का सारा जाल तोड़ कर फेंक दिया जाए!
कल्पना के जो हमने जाल बना रखे हैं, न मालूम कितने-कितने प्रकार के। संसार के नाम पर ही नहीं, धर्म के नाम पर भी न मालूम कितने जाल हमने अपनी कल्पना के बना रखे हैं। न मालूम कितने ईश्वर, न मालूम कितने देव, न मालूम कितने स्वर्ग-नर्क कल्पना से बना रखे हैं। जाना हमने नहीं है; पहचान हमारी कुछ भी नहीं है; सिर्फ अपनी कल्पना को भर रखा है। हमारी कल्पना एक पुस्तकालय है, जिस पुस्तकालय में जमाने भर की कल्पनाएं संगृहीत हो गई हैं। जन्मों-जन्मों में न मालूम कितनी कल्पनाओं के जाल हमने इकट्ठे कर लिए हैं और उन सब जालों के बीच में हम घिरे जीते हैं।
लेकिन ये सारे के सारे जाल बुद्धि में हैं। और अगर किसी व्यक्ति ने बुद्धि से ही इन जालों को तोड़ने की कोशिश की, तो वह नहीं तोड़ पाएगा। जरूरी है कि बुद्धि से नीचे चला जाए, गहरा चला जाए, अस्तित्व के केंद्र पर खड़ा हो जाए! और जैसे ही कोई व्यक्ति नाभि के पास आ जाता है, वैसे ही सशक्त हो जाता

है कि कल्पनाओं को तोड़ कर फेंक दे। कुछ लोग बुद्धि से ही बुद्धि से लड़ने की कोशिश में लगे रहते हैं। बुद्धि के एक तर्क को आप दूसरे तर्क से काट सकते हैं, लेकिन ध्यान रखिए, दूसरा तर्क आपको पकड़ लेगा। बुद्धि की एक कल्पना को आप दूसरी कल्पना से काट सकते हैं, लेकिन तब दूसरी कल्पना आपको पकड़ लेगी। यह कठिनाई ऐसी है कि जिससे आप काटने चले हैं, वह बुद्धि ही कटनी चाहिए, अन्यथा कुछ भी नहीं कटेगा।
तो लोग काटने में लगे रहते हैं। एक धर्म को दूसरे धर्म से बदल लेते हैं। एक गुरु को दूसरे गुरु से बदल लेते हैं। एक सिद्धांत को दूसरे सिद्धांत से बदल लेते हैं। एक शास्त्र को दूसरे शास्त्र से बदल लेते हैं। और कुछ लोग तो इतनी कठिनाई में पड़ जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि उन्होंने सब शास्त्र छोड़ दिए; और तब वे अपना ही शास्त्र निर्मित कर लेते हैं, जो कि और भी गरीब होने वाला है। उससे तो बेहतर किसी और का भी बेहतर था। कृष्णमूर्ति के साथ और उनके शिष्यों के साथ ऐसी कठिनाई खड़ी हुई है। कृष्णमूर्ति ने कहा, सारी कल्पनाओं के जाल तोड़ दो। अच्छा लगता है, प्रीतिकर लगता है--तोड़ दो। लेकिन आदमी तब अपने को ही केंद्र में खड़ा कर लेता है और अपनी ही कल्पना के जाल बुनने शुरू कर देता है। जब तक आप कल्पना के केंद्र से ही न हट जाएं, तब तक आप कल्पना के जाल बुनते ही रहेंगे। और कल्पना इतनी अदभुत है कि नकारात्मक रूप से भी अपने को भर लेती है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कोई गुरु नहीं है, तो सुनने वाला कहता है कि किसी गुरु को नहीं मानेंगे; और कृष्णमूर्ति को गुरु मानना शुरू कर देता है बहुत गहरे में। उसका उसे भी पता नहीं चलता।
एक मित्र अभी आए थे कुछ समय पहले। और मुझसे कहने लगे, हम किसी गुरु वगैरह को नहीं मानते हैं, क्योंकि हम कृष्णमूर्ति को सुनते हैं। क्योंकि हम कृष्णमूर्ति को सुनते हैं, हम किसी गुरु वगैरह को नहीं मानते। मैंने उनसे पूछा कि यदि कृष्णमूर्ति को सुन कर ही यह ख्याल पैदा हुआ है, तो गुरु तो हो गए। यह ख्याल तुम्हारा नहीं है। पहले तुम दूसरों के ख्याल मानते रहे, अब भी दूसरे का ही ख्याल मान रहे हो। कहने लगे कि नहीं, हम कृष्णमूर्ति को गुरु नहीं मानते। तो मैंने कहा, फिर अब सुनने किसलिए जाते हो? अब सुनने की क्या जरूरत रही? कहा उन्होंने कि सुनने जाते हैं समझने के लिए। तो मैंने कहा, गुरु का और मतलब ही क्या होता है? कि जिससे हम समझते हैं। और गुरु का क्या मतलब होता है? कि जिसके पास हम समझने जाते हैं। आदमी अगर बुद्धि की ही जगह खड़ा रहे, तो बुद्धि के विपरीत बातों को भी बुद्धि से ही पकड़ेगा। इसमें कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, स्वाभाविक है। नहीं, असली सवाल सिर्फ बुद्धि से ही जाल को काटने का नहीं है, क्योंकि बुद्धि नए जाल बना लेगी; बुद्धि से हट जाने का है। कैसे एक छलांग लगे कि हम बुद्धि से हट जाएं?
तो इस बुद्धि से हटने के दो प्रयोग किए गए हैं। एक प्रयोग है कि आदमी विचार छोड़ दे, भाव में पड़ जाए। जैसे मीरा है; तो मीरा विचार नहीं करती, भाव में पड़ गई है। नाचती है, गाती है, कीर्तन करती है।
लेकिन भाव भी बहुत गहरे नहीं ले जाता। बुद्धि से तो गहरे ले जाता है, इसलिए बुद्धि से तो बेहतर है। बुद्धि से तो कुछ भी बेहतर हो सकता है। गहरे ले जाता है। लेकिन लाओत्से जो कह रहा है, वह और गहरे ले जाता है। वह कहता है, भाव भी आखिर बहुत कुछ बुद्धि के पास है। हम तो वहां चलते हैं, जहां भाव भी नहीं रह जाता, विचार भी नहीं रह जाता। न बुद्धि और न हृदय, न ज्ञान और न भक्ति। हम वहां चलते हैं, जहां चित्त निर्विकार हो जाता है, जहां शुद्ध अस्तित्व रह जाता है।
इस शुद्ध अस्तित्व के लिए सारी कल्पनाओं का कचरा झाड़-पोंछ कर अलग कर देना जरूरी है।
लेकिन यह कौन करेगा? अगर बुद्धि से ही आपने यह काम लिया, तो आप गलती में पड़ जाएंगे। बुद्धि इसे झाड़ कर अलग कर देगी, लेकिन नए जाल बना कर खड़े कर देगी। और ध्यान रहे, पुराने जालों से नए जाल ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि पुरानों को तो छोड़ने का मन भी होता है, नए को पकड़ने का और सम्हालने का मन होने लगता है। पुराने गुरुओं से नए गुरु खतरनाक हो जाते हैं। और पुराने शास्त्रों से नए शास्त्र खतरनाक हो जाते हैं। क्योंकि नए में नएपन का भी

आग्रह और मोह है। और अगर किसी को यह ख्याल आ गया कि मैं समर्थ हो गया हूं सारे जाल को काटने में, तो यह अहंकार बुद्धि के केंद्र पर खड़ा होकर सबसे बड़ा जाल बन जाता है।
नहीं, इससे नीचे हटना पड़ेगा। यह बहुत मजे की बात है कि अगर आप नाभि से श्वास लेने लगें, तो आप अहंकारी नहीं रह जाएंगे। आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा कि अहंकार छोड़ने जाएं। नहीं, आप नहीं रह जाएंगे। क्योंकि नाभि पर अहंकार के टिकने का उपाय नहीं है। अहंकार इतना बड़ा तनाव है कि नाभि से श्वास चलती हो, तो नहीं टिक सकता। इतना शांत हो जाता है भीतर सब।
तो लाओत्से अपने शिष्यों की परीक्षाएं लिया करता था। वह उनको सवाल देता, वे ठीक जवाब ले आते और लाओत्से फाड़ कर फेंक देता। क्योंकि उनके पेट पर हाथ रख कर देखता और कहता, सवाल बेकार गया, जवाब गलत है। एक युवक आया हुआ था और उसने लाओत्से से कहा, तुम पागल तो नहीं हो! तुमने जो समझाया था, ठीक वही-वही लिख कर लाया हूं। लाओत्से ने कहा, वह तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन जो लिख कर लाया है, उसकी श्वास! उसकी श्वास नाभि से नहीं चल रही है। और यह जवाब तो तभी आ सकता है भीतर से, जब श्वास नाभि से चल रही हो। तुम मुझे सुन कर ले लाए हो। यह बुद्धि से सुना गया था, बुद्धि से दे दिया गया है। तुम्हारे भीतर इसका कोई भी अनुभव नहीं है।
च्वांगत्से जब उसके पास पहुंचा, उसका सबसे बड़ा शिष्य, तो लाओत्से ने उसे सब समझाया और उसने सब सुना। और जब उसकी परीक्षा का वक्त आया, तो जैसे कि सभी शिष्य अपने कागजात लेकर आते थे जवाब देने के लिए, वह बिना कागजात खाली हाथ आकर बैठ गया। लाओत्से ने कहा कि आज तुम्हारी परीक्षा का दिन है और मैं कुछ पूछूंगा; जवाब लिखने के लिए कुछ लाए नहीं? च्वांगत्से ने कहा कि अगर मैं जवाब नहीं हूं, तो मेरे लिखे हुए जवाबों का क्या उपयोग होगा! उसने अपने कपड़े उतार दिए और नग्न होकर सामने लेट गया। उसने कहा कि तुम मेरी श्वास देख लो।
और ध्यान रहे, अगर नाभि से सच्ची श्वास नहीं चलने लगी है और आप सिर्फ कोशिश करके चलाते रहे हैं, तो जब कोई आपके पेट पर हाथ रखेगा, फौरन श्वास सीने से चलने लगेगी। फौरन! जैसे ही आप कांशस हो जाएंगे, श्वास आपकी सीने से चलने लगेगी। वह तो बच्चे जैसे सरल ही न हो गए हों कि कोई पेट पर हाथ रखे या कुछ भी करे, श्वास वहीं से चलती ही है। डाक्टर जब आपका हाथ अपने हाथ में लेकर नाड़ी नापता है, तो आप कभी यह मत सोचना कि नाड़ी उतनी ही होती है जितनी डाक्टर को पता चलती है। डाक्टर को भी कम से कम थोड़ा उसे घटा लेना चाहिए; उतनी नहीं होती। वह डाक्टर के पकड़ने से बढ़ती है। बढ़ेगी ही, क्योंकि आप सचेतन हो गए, आप कांशस हो गए। घबड़ाहट आ गई। तनाव बढ़ गया। तो बीमारी जब डाक्टर जांचता है तो उसे यह नहीं समझना चाहिए बीमारी इतनी ही होगी, थोड़ी ज्यादा मालूम होती है। क्योंकि उतनी घबड़ाहट भी बढ़ गई होती है भीतर। च्वांगत्से लेट गया और उसने कहा, मेरी श्वास देख लो। तो उसका पेट ऊपर-नीचे गिर रहा है। वह एक छोटे बच्चे की तरह लेटा है। और लाओत्से कहता है कि तू उत्तीर्ण हो गया है। अब मुझे कुछ पूछना नहीं है। क्योंकि जो जवाब दे सकता है, अब तेरे भीतर मौजूद है।
बुद्धि से हटाना है चेतना को और नाभि की तरफ ले आना है।
हमारा सारा संस्कार, हमारी सारी शिक्षा, सारा समाज चेतना को बुद्धि
की तरफ ले जाने की कोशिश में लगा रहता है। उपयोग है उसका, जैसा मैंने कहा। लेकिन एक दिन हमें उस उपयोग से वापस लौट आना जरूरी है। मूल केंद्र को खो देना किसी भी कीमत पर खतरनाक है। और किसी भी कीमत पर मूल केंद्र को पा लेना सस्ता है।
तो लाओत्से के इस सूत्र को साधना का सूत्र समझें। अपनी श्वास का ध्यान रखें और श्वास के रूपांतरण की कोशिश करें। श्वास की बदलाहट आपकी बदलाहट हो जाएगी। श्वास में क्रांति आपके स्वयं के व्यक्तित्व की क्रांति हो जाएगी। और जैसे-जैसे श्वास गहरी होने लगेगी, आपकी गहराई बढ़ने लगेगी, आपका उथलापन समाप्त हो जाएगा। और जिस दिन श्वास केंद्र पर होगी, उस दिन आप सारे जगत के साथ एक अद्वैत के बिंदु पर मिल जाएंगे।
अपने केंद्र पर जो आ गया, वह जगत के केंद्र पर आ जाता है। स्वयं के केंद्र पर जो डूब गया, वह विराट के केंद्र से एक हो जाता है। तो एक परम

आलिंगन अद्वैत का फलित होता है। और जैसे-जैसे आपकी श्वास गहरी और भीतर-भीतर उतरने लगती है, वैसे-वैसे रहस्य के नए पर्दे और सत्य के नए द्वार खुलने शुरू हो जाते हैं। जो मनुष्य के भीतर छिपा है, वही विराट में विस्तीर्ण होकर फैला हुआ है। जो अपने भीतर गहरे उतर आता है, वह परम के भीतर ऊंचा उठ जाता है।
ईसाई फकीरों ने कहा है, ऐज एबव, सो बिलो; जैसा ऊपर, वैसा नीचे। भारतीय संतों ने कहा है, जो पिंड में छिपा है, वही ब्रह्मांड में। प्लोटिनस ने कहा, मैन इ.ज दि मेजर ऑफ आल थिंग्स; सभी चीजों का माप-तौल, मापदंड आदमी है। और आदमी अगर अपने भीतर उतर जाए, तो वह विराट के भीतर उतर गया। आदमी एक छोटा सा विराट है, मिनिएचर, छोटा सा विराट। विराट में जो भी है, सब उसके भीतर है। सब! अपने ही केंद्र पर पहुंच जाने से व्यक्ति विश्व के केंद्र को पा लेता है।
तो लाओत्से कहता है, ये तीन बातें जो व्यक्ति पूरी कर ले प्राण की साधना में... ।
ध्यान रहे, लाओत्से की प्राण की साधना भारतीय प्राणायाम से भिन्न है। क्योंकि भारतीय प्राणायाम बौद्धिक है। और भारतीय प्राणायाम आयोजित है, चेष्टित है। और भारतीय प्राणायाम में प्राण को बुद्धि के द्वारा व्यवस्था दी जाती है। और लाओत्से का प्राणायाम नैसर्गिक है। बुद्धि के द्वारा व्यवस्था नहीं देनी है, वरन बुद्धि ने जो व्यवस्था दी है अब तक, उसको भी तोड़ डालना है और नैसर्गिक प्राण की गति को खोज लेना है। जो सहज गति है, जो जन्म से हमारे साथ थी, उसे खोज लेना है। तो भारतीय प्राणायाम और लाओत्से की प्राण-साधना में बुनियादी अंतर है। और लाओत्से की प्राण-साधना ज्यादा गहरी है प्राणायाम से। क्योंकि प्राणायाम फिर आखिर मनुष्य का हिसाब है। कि बाईं नाक को रोक कर तीन दफे, फिर दाईं नाक को रोक कर तीन दफे, फिर इतनी देर भीतर रोकना, फिर इतनी देर बाहर छोड़ना, फिर इतना रेचक, फिर इतना कुंभक, यह सबका सब बुद्धिगत है। इसके उपयोग हैं और इसके फायदे हैं। लेकिन इसके उपयोग और फायदे शरीर तक ही हैं। और इसके उपयोग और फायदे से व्यक्ति सुंदरतम स्वास्थ्य को उपलब्ध हो सकता है। और इस साधना के द्वारा शक्ति को भी उपलब्ध हो सकता है। लेकिन लाओत्से की प्राण-साधना बिल्कुल भिन्न है। उससे व्यक्ति निसर्ग को उपलब्ध होता है, प्रकृति को--जो है हमारे सब सोच-विचार के पहले और जो बचेगा हमारे सब सोच-विचार के खो जाने के बाद।
इसलिए प्राण-योग, भारतीय प्राणायाम बिना गुरु के खतरनाक हो सकता है। क्योंकि उसमें आयोजना है, व्यवस्था है, डिसिप्लिन है। लाओत्से की प्राण-साधना गुरु के बिना बड़े मजे से चल सकती है; कोई कारण नहीं है। क्योंकि लाओत्से की प्राण-साधना में सीखना कम है, भूलना ज्यादा है। हम जो सीख गए हैं गलत, उसे सिर्फ छोड़ देना है। और जो स्वाभाविक है, वह प्रकट हो जाएगा। कुछ नई अनुशासन-व्यवस्था थोपनी नहीं है; सब अनुशासन तोड़ देना है और निसर्ग को मौका देना है कि वह जैसा चलना चाहे चले।
लेकिन जैसा मैंने आपसे कहा, जब तक आप अपने शरीर को स्वीकार नहीं करते--
और शरीर को स्वीकार करने का अर्थ है, जब तक आप अपने यौन को स्वीकार नहीं करते--तब तक आप कभी भी शरीर के साथ संवेदना को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। और जब तक आप अपने भीतर किसी चीज की निंदा ही किए चले जाते हैं, तो आलिंगन कैसे करेंगे? और जब अपने ही भीतर आपने दीवारें बना रखी हैं, तो दूसरे से मिलने की तो बात ही छोड़ दें, अपने से ही मिलना नहीं हो पा रहा है। और जो अपने से भी मिलने में डर रहा है, वह परमात्मा से मिलने में निर्भय होगा, इसे मानने का कोई भी कारण नहीं है।
स्वीकार करें जो है भीतर; उसे परमात्मा की देन की तरह स्वीकार कर लें। निंदा को छोड़ दें। कुछ पाप नहीं है, कुछ अपराध नहीं है। जो भीतर है, वह प्रभु का हिस्सा है। उसे स्वीकार कर लें। और जैसे ही आपके भीतर सर्व-स्वीकृति आती है, वैसे ही शरीर के और आपकी चेतना के बीच की सब बाधाएं टूट जाती हैं और शरीर और चेतना एक तरल धारा हो जाते हैं। तब शरीर आपका ही हिस्सा है--बाहर फैला हुआ। और आत्मा आपका ही शरीर है--भीतर गया हुआ। तब शरीर ठोस आत्मा है और आत्मा तरल शरीर है। तब शरीर दृश्य आत्मा है और आत्मा

अदृश्य शरीर है। तब ये एक ही चीज के दो छोर हैं। और जिस दिन ऐसा अनुभव होता है, उसी दिन यह सारा जगत एक हो जाता है। उस दिन पत्थर में और परमात्मा में फर्क नहीं रह जाता।
जिन लोगों ने परमात्मा की मूर्तियां पत्थर से बनाईं, वे बड़े होशियार थे। उन्होंने एक सूचना दी है कि जब तक तुम्हें पत्थर परमात्मा न दिखाई पड़ने लगे, तब तक तुमने कुछ भी नहीं पाया, इसे ठीक से जानना। पत्थर की मूर्ति बनाने का और कोई प्रयोजन नहीं है। एक इंगित कि पत्थर भी जब परमात्मा दिखाई पड़ने लगे, तभी तुम जानना कि तुमने परमात्मा को जाना। लेकिन जिनको अपना जीवित शरीर भी परमात्मा नहीं दिखाई पड़ रहा, उन्हें पत्थर परमात्मा दिखाई पड़ेगा, यह कैसे कहा जा सकता है? शायद उन्हें पत्थर इसीलिए परमात्मा मालूम पड़ता है कि पत्थर में कोई वासना नहीं, कोई इंद्रिय नहीं। पत्थर बिल्कुल मरा हुआ, मुर्दा है; इसलिए उनको पत्थर में थोड़ा परमात्मा शायद नजर आ जाए! लेकिन परमात्मा अगर जिंदा उनको मिल जाए, तो वे पच्चीस संदेह उठाएंगेः अरे, आप खाना भी खाते हैं? आपको भूख भी लगती है? सर्दी में आप ठिठुरते भी हैं? आपको भी गर्मी में पंखे की जरूरत है?
भगवान खतम हुआ, परमात्मा विनष्ट हुआ! हम अपने घर लौट आएंगे आश्वस्त होकर कि गलती थी बात। नाहक इस आदमी के पास गए थे!
पत्थर में कोई वासना नहीं दिखाई पड़ती, इसलिए हमको परमात्मा दिखाई पड़ता है। लेकिन जिन्होंने पत्थर की मूर्ति बनाई थी, उनका कारण दूसरा था। उनका ख्याल यह था कि जब तुम्हें पत्थर में भी दिख जाएगा, तो ऐसी कौन सी जगह बचेगी जहां तुम्हें नहीं दिखाई पड़ेगा! जीवन का सर्व-स्वीकार धार्मिक व्यक्ति का पहला लक्षण है। और सर्व-स्वीकार से आती है शांति। सर्व-स्वीकार से आता है विश्राम। सर्व-स्वीकार से आती है बाल-सुलभ निर्दोषिता।
उसी निर्दोष आंख के लिए जगत ब्रह्म हो जाता है।
आज इतना ही।
अब एक पांच मिनट हम कीर्तन में बाल-सुलभ हो जाएं और फिर विदा हों!

ताओ उपनिषद, भाग दो
पच्चीसवां प्रवचन

उद्देश्य-मुक्त जीवन, आमंत्रण भरा भाव व नमनीय मेधा

Chapter 10 : Sutra 2

Embracing The One

In loving the people and ruling the state, cannot he proceed without any (purpose) of action?
In the opening and shutting of his gates of heaven, cannot he do so as a female bird?
While his intelligence reaches in every direction, cannot he (appear to)
be without knowledge?

अध्याय 10 : सूत्र 2

अद्वय की स्वीकृति

जनसमूह के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने में और शासन के व्यवस्थापन की प्रक्रिया में क्या वह सोद्देश्य कर्म के बिना अग्रसर नहीं हो सकता? क्या वह स्वर्ग के अपने दरवाजे (नासारंध्र) को खोलने और बंद करने में
एक स्त्रैण पक्षी की तरह काम नहीं कर सकता?
जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, तब क्या वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख सकता?

विचारशील मनुष्य निरंतर ही पूछता हैः जीवन का उद्देश्य क्या? जीएं क्यों? किसलिए? और ऐसा आज नहीं, सदा से ही विचारशील मनुष्य ने पूछा है। समस्त धर्मों का जन्म और समस्त दर्शनों का जन्म इस प्रश्न के आस-पास ही निर्मित हुआ हैः उद्देश्य क्या है? प्रयोजन क्या है? लक्ष्य क्या है? अंत क्या है? और जो ऐसा नहीं पूछते हैं, विचारशील लोग सोचते रहे हैं कि वे विचारहीन हैं, अज्ञानी हैं। जो ऐसे ही जीए चले जाते हैं, बिना लक्ष्य को पूछे, उन्हें विचारशील लोग सदा से अज्ञानी समझते रहे हैं।
लाओत्से की बात बहुत हैरान करेगी। क्योंकि लाओत्से कहता है कि जिसने उद्देश्य से जीना चाहा, उद्देश्य तो कभी मिलेगा ही नहीं, जीवन जरूर खो जाएगा। जिसने किसी लक्ष्य के लिए जीने की कोशिश की, वह लक्ष्य को तो पा ही नहीं सकेगा, जीवन को जरूर नष्ट कर लेगा। जी तो वही सकता है, जो निष्प्रयोजन जीने की कला जान ले। जीने की सघनता में तो वही उतर सकता है, जिसका कोई उद्देश्य नहीं है इस क्षण के बाहर। तो इसे थोड़ा एक-एक कदम समझना पड़े, क्योंकि शायद यह कठिनतम बात है हमारे मन की पकड़ में आने के लिए। और कठिन इसीलिए है कि मन तो बिना उद्देश्य के एक क्षण भी नहीं जी सकता। हम तो जी सकते हैं, लेकिन मन बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता। अगर उद्देश्य नहीं है कोई, तो मन बिखर जाएगा। इसलिए मन को बहुत कठिनाई होगी यह बात जानने के लिए, समझने के लिए। असल में, मन जीवन से विपरीत घटना है। तो जितना ज्यादा मन होता है हमारे पास, उतना ही कम जीवन हो जाता है।
इसे बहुत पहलुओं से समझना पड़े। एक, कि उद्देश्य की सारी की सारी चर्चा
और विचारणा बड़ी अर्थहीन है। अर्थहीन उस बात को कहते हैं कि हम चाहे कोई भी उत्तर खोज निकालें, जिस प्रश्न के लिए हमने उत्तर खोजा था, वह अगर पुनः वैसा ही खड़ा रहे, तो सारी चेष्टा व्यर्थ हो जाती है।
जैसे लोग पूछते हैं कि जगत को किसने बनाया? तो यह अर्थहीन प्रश्न है।
यह अर्थहीन इसलिए है कि यदि हम उत्तर दे पाएं कि जगत को अ ने बनाया, तो प्रश्न फिर खड़ा हो जाता है कि अ को किसने बनाया? और हम कितने ही उत्तर

खोजते चले जाएं--ब, स, और अंतहीन--लेकिन हर उत्तर के बाद प्रश्न अपनी जगह ही खड़ा पाया जाएगा। क्योंकि प्रश्न में हमने एक बात मान ली थी कि कोई चीज बिना बनाए नहीं हो सकती। वहीं भ्रांति हो गई। अब वही भ्रांति हमारा पीछा करेगी। अगर कोई कहेगा ईश्वर ने बनाया, तो प्रश्न उठेगा, ईश्वर को किसने बनाया? और आप अब यह न कह सकेंगे कि ईश्वर बिना बनाया हुआ है। क्योंकि अगर आप यही कहते हैं, तो पहला प्रश्न ही गलत था। फिर संसार ही बिना बनाया हो सकता है। तो यह प्रश्न जो है, इनफिनिट रिग्रेस में ले जाता है, अंतहीन व्यर्थ उत्तरों में ले जाता है। तो जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्न को समाप्त न करता हो और प्रश्न उत्तर के बाद भी ठीक वैसा ही खड़ा रहता हो जैसा पहले था, तो वह प्रश्न व्यर्थ है।
ठीक जीवन के उद्देश्य के संबंध में भी वही भ्रांति होती है। जब हम पूछते हैं, जीवन का उद्देश्य क्या? तब हम यह मान ही लेते हैं कि कोई चीज बिना उद्देश्य के नहीं हो सकती। यह हमारा इंप्लीकेशन है, यह हमने भीतर स्वीकार कर लिया। लेकिन हम भूलते हैं; हम कुछ भी उद्देश्य बताएं, पुनः यह पूछा जा सकता है कि जो हमने बताया, उसका उद्देश्य क्या? जैसे धार्मिक आदमी कहेगा, जीवन का उद्देश्य ईश्वर को पा लेना है। लेकिन क्या यह नहीं पूछा जा सकता कि ईश्वर को पा लेने का उद्देश्य क्या है? पाकर भी क्या करेंगे? पा भी लिया, फिर क्या होगा? पा लेने के बाद भी ईश्वर को यह प्रश्न तो संगत रूप से पूछा ही जा सकता है कि इस ईश्वर को पा लेने का उद्देश्य क्या? धार्मिक व्यक्ति कह सकते हैं कि जीवन का लक्ष्य मोक्ष को पा लेना है। लेकिन मोक्ष का लक्ष्य?
तो यह व्यर्थ प्रश्न है। व्यर्थ इसलिए है कि कोई भी उत्तर इसे खंडित नहीं करेगा। कोई भी उत्तर, ध्यान रखें! ऐसा मत सोचें कि कोई उत्तर तो होगा ही, जो इसे खंडित कर देगा। आपका उत्तर मुझे पता नहीं है, तो भी मैं कहता हूं, कोई भी उत्तर आप खोज लाएं, वह व्यर्थ होगा। क्योंकि यह प्रश्न पुनः सार्थक रूप से पूछा जा सकता है कि आप जो भी खोज लाए हैं एक्स, वाई, जेड, उसका उद्देश्य क्या है? इस बात को कहने के लिए कि यह प्रश्न व्यर्थ है, आपके उत्तर को जानना मेरे लिए जरूरी नहीं है। यह प्रश्न ही व्यर्थ है, क्योंकि इसका सार्थक रूप से कोई भी उत्तर नहीं दिया जा सकता। क्योंकि हर दिए गए उत्तर के बाद यह पुनः अपना सिर वैसे ही खड़ा कर लेता है।
लेकिन जिसको हम बुद्धिमान आदमी कहते हैं, विचारशील आदमी कहते हैं, समझदार कहते हैं, वह निरंतर लोगों को समझाते हुए पाया जाता है कि व्यर्थ मत जीओ। जीवन में उद्देश्य लाओ। किसी चीज के लिए जीओ। देश के लिए जीओ, धर्म के लिए जीओ, सेवा के लिए जीओ, सत्य के लिए जीओ, परमात्मा के लिए जीओ। एक भूल भर मत करना, जीवन के लिए भर मत जीना; और सब चीजों के लिए जीना। क्योंकि वैसा आदमी यह मानने को राजी नहीं होगा कि जीवन अपना ही उद्देश्य है, पर्याप्त अपने में ही, उसे बाहर किसी उद्देश्य को खोजने की जरूरत नहीं है। क्योंकि वैसा आदमी कहेगा कि तब तो जीवन व्यर्थ हो गया; क्योंकि इसमें कोई प्रयोजन नहीं, कोई लक्ष्य नहीं। तब तो जीवन एक ऐसा रास्ता हो गया, जिसकी कोई मंजिल नहीं। क्योंकि उस आदमी ने मान ही रखा है कि रास्ते की मंजिल होनी ही चाहिए। यात्रा भी मंजिल हो सकती है, यात्रा ही मंजिल हो सकती है, ऐसा उसकी बुद्धि नहीं पकड़ पाती। और इसलिए वह मंजिल निर्मित करता चला जाता है। लेकिन कोई भी मंजिल मंजिल नहीं हो सकती, क्योंकि हम पुनः पूछ सकते हैं कि यह मंजिल किसलिए? यह मंजिल भी किस मंजिल को पाने के लिए?
सोद्देश्य जीवन, प्रयोजन-सहित जीवन मन के लिए प्रीतिकर है, अहंकार के लिए भी। क्योंकि अहंकार अगर बिना उद्देश्य के जीए, तो अपने को भर नहीं सकता। इसलिए जितना बड़ा उद्देश्य होगा, उतना बड़ा अहंकार होगा। अगर आप अपने परिवार के लिए ही जी रहे हैं, तो आपके पास बहुत बड़ा अहंकार नहीं हो सकता। अगर आपको बड़ा अहंकार चाहिए, तो पूरे राष्ट्र के लिए जीएं। तब आपके पास विराट अहंकार होगा। अगर और बड़ा अहंकार चाहिए, तो पूरी मनुष्यता के लिए जीएं। अगर और बड़ा अहंकार चाहिए, तो पूरे ब्रह्मांड का केंद्र आप ही बन जाएं और पूरे ब्रह्मांड के लिए जीएं। तो जितना बड़ा उद्देश्य होगा, उतना बड़ा अहंकार हो सकता है; जितना छोटा उद्देश्य होगा, उतना छोटा अहंकार होगा।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि जो आदमी धन खोज रहा है, वह कभी उतना बड़ा अहंकारी नहीं हो सकता, जितना वह आदमी अहंकारी हो सकता है, जो ज्ञान खोज रहा है। जो आदमी पद खोज रहा है, वह उतना बड़ा अहंकारी नहीं हो सकता, जितना बड़ा वह हो सकता है, जो सेवा खोज रहा है। जितना बड़ा हो लक्ष्य! और बड़े लक्ष्य का अर्थ होता है कि जितनी बड़ी परिधि बनाता हो वह लोगों के आस-पास। और बड़े का यह भी अर्थ होता है कि जितना नॉन-काम्पिटीटिव हो, जितनी प्रतियोगिता कम हो।
अगर आप धन खोज रहे हैं, तो बहुत प्रतियोगिता होगी, क्योंकि और लोग भी
धन खोज रहे हैं। अगर आप सेवा खोज रहे हैं, तो कम प्रतियोगिता होगी, क्योंकि बहुत कम लोग सेवा खोज रहे हैं। अगर आप अपने लिए ही इज्जत चाहते हैं, तो प्रतियोगिता बहुत होगी, क्योंकि प्रत्येक अपने लिए इज्जत चाहता है। लेकिन अगर आप अपने राष्ट्र के लिए, अपने धर्म के लिए, अपनी जाति के लिए प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो प्रतिस्पर्धा बहुत कम होगी। दूसरे राष्ट्रों की प्रतिस्पर्धा होगी, आपके राष्ट्र के भीतर कोई स्पर्धा नहीं होगी। आपका अहंकार सुगमता से निर्मित हो सकता है।
तो जितना बड़ा लक्ष्य हो, उतनी सुगमता है अहंकार को मजबूत होने के लिए, बड़ा होने के लिए। अहंकार उद्देश्य की भाषा बोलता है। इसलिए हम एक-एक बच्चे को अहंकार की भाषा सिखाते हैं। बच्चे तो निरुद्देश्य जीते हैं; उद्देश्य हम सिखाते हैं। अगर एक बच्चा खेल रहा है, और हम उससे पूछें, किसलिए खेल रहे हो? तो बच्चे को हमारा प्रश्न समझ में ही नहीं आता। क्योंकि किसलिए का कोई अर्थ ही नहीं है; खेलना पर्याप्त है। हम तो खेलते भी हैं, तो किसलिए भीतर होता है कि किसलिए खेल रहे हैं। बच्चा खेल रहा है, तो खेलना अपने में इतना काफी है कि खेलने के बाहर कोई लक्ष्य नहीं है। खेलना ही आनंद है। खेलने से कुछ और मिलेगा, ऐसा नहीं, खेलने में ही मिल जाएगा। खेलना ही मिलना भी है। साधन और साध्य अलग नहीं हैं, एक ही हैं।
लेकिन ऐसे बच्चे को जीवन के संघर्ष में नहीं उतारा जा सकता। तो ऐसे बच्चे को हमें खेल के बाहर निकालना पड़ेगा और सोद्देश्य क्रिया में लगाना पड़ेगा। उसे पढ़ना सिखाना पड़ेगा। पढ़ना इसलिए कि कल नौकरी मिल सकेगी। और पढ़ना इसलिए कि कल धन मिल सकेगा। हमें उसके जीवन को उस पटरी पर चलाना पड़ेगा, जहां लक्ष्य सदा कल होता है और काम आज। जहां साधन और साध्य अलग हो जाते हैं। साध्य सदा भविष्य में और साधन सदा वर्तमान में। तो फिर वह लड़का कल गणित पढ़ेगा। तब वह यह नहीं कह सकेगा कि मैं आनंद ले रहा हूं। वह कहेगा कि झेल रहा हूं तकलीफ, लेकिन कल आनंद मिलेगा उस आशा में। परीक्षा की तैयारी कर रहा हूं, क्योंकि परीक्षा के पार जीवन के संघर्ष में उतरने में सुविधा होगी।
तो प्रत्येक बच्चे को हमें निकालना पड़ता है निरुद्देश्य जीवन से सोद्देश्य जीवन में। हमारी सारी शिक्षा की प्रक्रिया वही है। यह मजबूरी है, करना ही पड़ेगा। जीवन की जरूरत है यह। और अगर हम बच्चे को सोद्देश्य जीवन में न खींच पाएं, तो वह समाज का अंग नहीं बन पाएगा और शायद अपने को बचा भी नहीं पाएगा। शायद इस बचने की जो भयंकर प्रतियोगिता चल रही है, इसमें वह हार ही जाएगा, पराजित हो जाएगा, टूट जाएगा। इसमें वह बच नहीं सकता। इसलिए उसे खींचना पड़ेगा। यह जो सरवाइवल के लिए, बचने के लिए इतना युद्ध चल रहा है, उस युद्ध में उसको खड़े होने को भी कोई जगह नहीं है।
जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है कि क्यों तुम फिक्र करते हो रोटी की! फूलों को देखो; पक्षियों को देखो। न रोटी की चिंता है, न रोटी कमाने का कोई उपाय है; लेकिन भोजन तो मिलता है। इन खेत में खिले हुए लिली के फूलों को देखो! और खुद सम्राट सोलोमन भी अपनी श्रेष्ठतम वेशभूषा में इतना सुंदर न था। लेकिन ये न तो वस्त्र के लिए धागा बुनते हैं, न कपास उगाते हैं। फिर भी ये काफी सुंदर हैं। और निर्वस्त्र नहीं हैं।
यह जीसस बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। जीसस वही बात कह रहे हैं, जो लाओत्से
कह रहा है।
लेकिन मजबूरी है। आदमी को खेत के लिली के फूलों की तरह नहीं छोड़ा जा सकता। और पक्षियों की तरह उसे अनाज भी नहीं मिल सकता। आदमी ने पशुओं के

जगत से अपना संबंध तोड़ लिया है। उसने जिम्मेवारी ले ली है। उसे संघर्ष में जाना ही पड़ेगा।
इसलिए यह बात सच है कि जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है, फिर भी हमें प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का उद्देश्य सिखाना पड़ता है। वह एक असत्य है, जो जीवन के लिए जरूरी है। एक नेसेसरी ईविल, एक अनिवार्य बुराई है, जो हमें आदमी को सिखानी पड़ती है। लेकिन उस बुराई के बाहर निकला जा सकता है। और पुनः उस बुराई के बाहर निकलना जीवन को बहुत गहन रूप से समृद्ध कर जाता है। फिर से बच्चे हो जाना जीवन को बहुत समृद्ध कर जाता है। और तब यह सारी दौड़ एक अभिनय हो जाती है। और भीतर गहरे में हम जानते हैं कि जीवन निरुद्देश्य है।
निरुद्देश्य का अर्थ? निरुद्देश्य का अर्थ है कि जीवन का प्रतिपल अपना उद्देश्य है। जहां हैं हम, जो हैं हम, वहीं परिपूर्णता जीवन की है। हम कल के लिए न जीएं, क्योंकि कल के लिए जीने में हम सिर्फ आज को खोते हैं। और जिस आज को हम खोते हैं, उसे हम पुनः फिर न पा सकेंगे। और जिस व्यक्ति को आज को खोने की आदत बन गई, वह कल को भी खो देगा। क्योंकि कल जब आज बनेगा, और ध्यान रहे, कल जब भी आएगा मेरे हाथ में, वह आज की शक्ल में आएगा। कल की शक्ल में तो कोई कल आता नहीं। जब कल मेरे पास आएगा, तो वह आज होगा। और आज को मैंने सदा ही कल के लिए कुर्बान करने की आदत बना ली है। तो मैं पूरे जीवन को कुर्बान करता जाऊंगा। और आखिर में पाऊंगा कि मौत के अतिरिक्त मेरे हाथ में कुछ भी नहीं बचा।
हम सभी अपने जीवन को ऐसे ही खोते हैं। जिसे हम आज कह रहे हैं, यह भी तो
कल कल था। लेकिन कल के दिन को हमने खोया था आज के लिए। आज को हम खोते हैं कल के लिए। कल को हम खोएंगे और आगे के लिए। और ऐसे हम समय को खोते चले जाएंगे। और एक दिन हम पाएंगे कि सिवाय आशाओं की राख के हमारे हाथ में कुछ भी छूट नहीं गया है। उद्देश्य तो कुछ पूरा नहीं हुआ, जीवन खो गया।
एक क्षण से ज्यादा हमें उपलब्ध नहीं है। दो क्षण किसी को भी नहीं मिलते हैं एक साथ। एक क्षण मिलता है, बारीक क्षण। और वह क्षण भी कोई स्थिर बात नहीं है। दौड़ती हुई, भागती हुई, निरंतर शून्य में खोती हुई प्रक्रिया है। हाथ में आता नहीं कि छूट जाता है। उस क्षण को, लाओत्से कहता है, अगर हमने किसी भी साध्य के लिए समर्पित किया, तो हम जीवन से वंचित हो जाएंगे। वह साध्य कोई भी हो, चाहे क्षुद्र धन हो और चाहे श्रेष्ठ धर्म हो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चाहे इसी जमीन पर एक महल बनाने का लक्ष्य हो और चाहे स्वर्ग में महल को पा लेने की कामना हो! और चाहे यहीं किसी बड़े पद पर बैठ जाने की आकांक्षा हो और चाहे मोक्ष में सिद्धशिला पर विराजमान होने की वासना हो! इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। कल की आकांक्षा जहर है, क्योंकि आज के जीवन को समाप्त कर जाती है।
यह क्षण क्या अपने में ही नहीं जीया जा सकता? क्या यह क्षण अपने में ही पूरा नहीं माना जा सकता?
इसका यह अर्थ नहीं है कि कल आपको ट्रेन पकड़नी है, तो आपको आज ही पकड़नी पड़ेगी। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आप कल पकड़ने वाली ट्रेन का टाइम-टेबल आज नहीं देख सकते हैं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि एक वर्ष में आपकी फैक्ट्री बन कर पूरी होगी, तो आज उसकी आप योजना नहीं कर सकते हैं। लोगों के मन में ऐसे सवाल उठते हैं कि फिर क्या होगा! कल का तो तय आज करना पड़ेगा कि कल सुबह मुझे पांच बजे उठ कर ट्रेन पकड़नी है। लेकिन इसे थोड़ा समझें, तो ख्याल में आ जाएगा।
जब आप इसे तय कर रहे हैं, तब तय करने की प्रक्रिया वर्तमान की प्रक्रिया है। अभी इस क्षण में तय कर रहे हैं। तो इस तय करने में इतना आनंद लें, जितना तय करने में लिया जा सकता है। और किसी भी चीज को तय करना अपने आप में आनंद है। किसी भी चीज को डिसीजन तक ले जाना अपने आप में आनंद है। इस आनंद को अभी लें कि आप कल सुबह पांच बजे उठने वाले हैं। यह इसी क्षण का निर्णय है। और इसको, इसी क्षण के निर्णय को पूरा हो जाने दें। कल सुबह पांच बजे उठने का आनंद लेना। आज के क्षण में पांच बजे उठने के निर्णय का आनंद लें।

लेकिन आज का क्षण इसलिए परेशानी में बीत जाए कि कल सुबह पांच बजे उठना
है और कल पांच बजे सुबह उठ कर और आगे की परेशानियां होंगी, हर क्षण आगे आने वाली परेशानी में बीत जाए, तो हम अस्तित्व से कभी संयुक्त नहीं हो पाते। नहीं, वर्तमान में रहने का यह अर्थ नहीं कि आप योजना न कर पाएंगे। वर्तमान में रहने का अर्थ इतना ही है कि योजना आपका जीवन नहीं है, जीना ही आपका जीवन है। और जीना अभी और यहीं, इसी क्षण संभव है, और किसी क्षण संभव नहीं है।
तो एक तो है निरुद्देश्य जीवन उस आदमी का, जिसे हम मूढ़ कहते हैं। जो पड़ा है, धक्के खा रहा है, जहां भी जीवन धक्का दे दे, वहां चला जाएगा। प्रमाद से भरा हुआ, आलस्य में डूबा हुआ। जीवन को अपने हाथ में जिसने लिया ही नहीं है, जो हवा में उड़ते हुए एक पत्ते की भांति है। एक तो वह आदमी है, उसे हम कहें निरुद्देश्य जीवन।
एक वह आदमी है, जो चौबीस घंटे दौड़ रहा है उद्देश्य को पाने के लिए। जिसको हम बुद्धिमान, समझदार आदमी कहते हैं। वह है सोद्देश्य जीवन, जो प्रतिपल खो रहा है आगे पल के लिए। जो हमेशा इनवेस्ट किए चला जा रहा है। आज के क्षण को कल के लिए लगा रहा है। कल के क्षण को परसों के लिए लगा रहा है। और आखिर में मर जाता है; दौड़ते-दौड़ते मर जाता है। शायद इस आदमी की बजाय तो वह जो निरुद्देश्य आदमी था, उसने भी कुछ झलक जानी हो।
लेकिन लाओत्से उस आदमी के लिए नहीं कह रहा है। लाओत्से एक तीसरे आदमी
की बात कर रहा हैः उद्देश्य-मुक्त जीवन। वह एक तीसरा ही आदमी है। न तो वह आलसी है, न वह प्रमादी है। न वह जीवन से पलायन कर रहा है, न वह मुर्दे की भांति पड़ा हुआ है और जीवन की धारा उसके ऊपर से गुजरी जा रही है। नहीं, न तो वह पहले आदमी की तरह है, न वह दूसरे आदमी की तरह है कि पागल की तरह दौड़ रहा है। वह एक तीसरा ही आदमी है। जो दौड़ता भी है, तो किसी मंजिल के लिए नहीं; दौड़ने का हर कदम उसके लिए आनंद है। जो अगर दौड़ता भी है, तो दौड़ने में ही उसका आनंद है। जो कहीं पहुंचने के लिए नहीं दौड़ रहा है।
इस तीसरे तरह के आदमी को कभी असफलता नहीं मिल सकती। यह कभी विफल नहीं
हो सकता। और यह कभी संताप को उपलब्ध नहीं होगा। फ्रस्ट्रेशन, विषाद जिसे कहें, इसे कभी फलित नहीं होगा, क्योंकि इसने कभी कोई आशा ही नहीं बांधी है। इसने तो प्रत्येक क्षण को उसकी पूर्णता में जी लिया था, निचोड़ लिया था। यह किसी मंजिल के लिए नहीं दौड़ा, इसलिए कभी यह नहीं कहेगा खड़े होकर कि मेरी जिंदगी बेकार चली गई, मैं पहुंच नहीं पाया। क्योंकि इसने पहुंचने की कभी कोई कोशिश नहीं की।
यह आदमी कहेगा, मैंने जीवन का क्षण-क्षण जी लिया है; पूरी तरह निचोड़ लिया है जीवन का रस। यह आदमी मृत्यु को भी आनंद से गले लगा लेगा। यह आदमी मृत्यु को भी जी सकेगा। इस आदमी के लिए मृत्यु भी जीवन की एक घटना होगी, जीवन का अंत नहीं। यह मृत्यु का भी रस, और मृत्यु का भी आलिंगन कर सकेगा। क्योंकि जो भी इसके सामने रहा है, इसने उसे जीया है। जो भी इसे मिल गया है, इसने उसे पूरा का पूरा भोगा है। इसने रत्ती भर उसे छोड़ा नहीं, आगे-पीछे का इसने हिसाब नहीं रखा है। दौड़ा यह भी बहुत, शायद उनसे ज्यादा दौड़ा, जो मंजिल बना कर दौड़ रहे थे। क्योंकि आपको ख्याल हो, जब मंजिल का बोझ हो सिर पर, तो पैर भी भारी हो जाते हैं। और जब किसी लक्ष्य को बना कर कोई चलता है, तो चलना एक थकान हो जाती है।
कभी आपने ख्याल किया? आप सुबह जिस रास्ते पर घूमने निकलते हैं, दोपहर उसी रास्ते से दफ्तर के लिए भी जाते हैं। पैर भी वही होते हैं, रास्ता भी वही होता है, आकाश भी वही होता है। लेकिन सुबह जब आप घूमने निकले होते हैं, तो पैरों का नृत्य अलग होता है और प्राणों के गीत में भेद पड़ता है। उसी रास्ते से दोपहर आप दफ्तर के लिए जाते हैं। पैर भी वही, रास्ता भी वही। लेकिन अब एक मंजिल और है, कहीं पहुंचना है। सुबह घूमने गए थे, तब कहीं पहुंचना नहीं था, चलना ही काफी था।
वह चलने का जो सुख था सुबह, वह इसी रास्ते पर दोपहर को क्यों नहीं मिल पाता है? और हो सकता है, आपके बगल में कोई आदमी चल रहा हो जो घूमने निकला हो, तो उसे अभी भी वही रस मिल रहा है। लेकिन सुबह घूमने में भी अगर किसी ने इसको रिलीजस ड्यूटी बना रखा हो, एक धार्मिक कृत्य बना रखा हो कि पांच बजे

उठ कर घूमना ही है, अन्यथा पाप हो जाएगा, तो यह आदमी घूमने में भी सुख को खो देगा। इसका घूमना भी एक कर्तव्य है, करना है। यह घूमेगा भी ऐसे, जैसे दफ्तर जा रहा है, दूकान जा रहा है। यह घूमने से लौटेगा भी ऐसे कि ठीक है, एक काम से छुटकारा मिला, एक काम पूरा कर लिया है।
जहां उद्देश्य है, वहां भार हो जाता है। जहां उद्देश्य नहीं है, वहां निर्भार दशा उत्पन्न हो जाती है। और जितना निर्भार हो व्यक्ति, उतनी आनंद की संभावना बढ़ती है। और जितना भारग्रस्त हो, उतना जीवन एक बोझ और किसी तरह गुजारने जैसा हो जाता है। हम प्रत्येक चीज को कर्तव्य बना लेते हैं, खेल नहीं। और लाओत्से को समझेंगे, तो लाओत्से यह कह रहा है कि पूरा जीवन एक खेल है। हम खेल को भी कर्तव्य बना लेते हैं। हम अगर खेलने भी बैठते हैं, तो हमारी आंखें और हमारे चेहरे पर जो सिकुड़न होती हैं, वे काम की होती हैं। इसलिए अगर दो लोग ताश खेलते हैं, तो अकेले ताश खेलने में सुख नहीं आता,
जब तक वे कुछ रुपए दांव पर न लगा लें, थोड़े ही सही। क्योंकि रुपए लगाते से ही खेल काम बन जाता है; रुपए लगाते से ही उद्देश्य आ जाता है खेल में। चाहे वह करोड़पति क्यों न हो, वह एक रुपया लगा कर उद्देश्य पैदा कर लेगा। एक रुपया मिलने से कुछ मिलने वाला नहीं, लेकिन फिर भी उद्देश्य हो गया। अब खेल में रस आ जाएगा, जान आ जाएगी। खेल अपने में काफी नहीं था। एक रुपए ने आकर खेल को भी प्राण दे दिए। रुपया हमारी इतनी भारी आत्मा हो गई है कि उसे खेल में भी न डालें, तो खेल भी बेकार है। धंधा बन जानी चाहिए हर चीज। उद्देश्य का अर्थ है कि प्रत्येक काम किसी और चीज के लिए किया जा रहा है। रस उस चीज के पाने में है; यह काम तो एक मजबूरी है। अगर बिना काम किए वह मिल जाए, तो हम इस काम को तत्क्षण छोड़ देंगे। चूंकि बिना काम किए लक्ष्य नहीं मिलता, इसलिए काम हमें करना पड़ता है। तो हम खेल को भी व्यवसाय बनाते हैं। हम प्रेम को भी काम में रूपांतरित कर लेते हैं। मां अपने बेटे की सेवा कर रही है, तो उसको भी कर्तव्य बना लेती है। पति अपनी पत्नी के लिए अगर श्रम कर रहा है, तो उसको भी कर्तव्य बना लेता है।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, गृहस्थी है, कर्तव्य को निभाना है। अगर कर्तव्य को निभाना है, तो गृहस्थी है कहां? घर नहीं है, वहां भी दूकान है। घर का तो मतलब ही यह होता है कि वह हमारा आनंद है। अगर पति इसलिए काम कर रहा है कि ठीक है, एक पत्नी पाल ली है पीछे, तो कर्तव्य है। और मां अगर बेटे को इसलिए दूध पिला रही है कि ठीक है, भाग्य में था, पैदा हो गया है, तो काम पूरा कर लेना है। लेकिन हमारे जो सोद्देश्य ढंग हैं जीवन के, वे सभी चीजों पर ऐसी काली छाया डाल देते हैं। कुछ भी चीज खेल नहीं है। किसी भी चीज में हम इतने मुग्ध नहीं हो जाते कि पार की चिंता छोड़ दें। एक क्षण को भी हम वहां नहीं हो पाते जहां हम हैं; सदा मन कहीं और होता है।
लाओत्से कहता है, "जनसमूह के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने, शासन की व्यवस्था की प्रक्रिया में, अनुशासन में, सोद्देश्य कर्म के बिना क्या अग्रसर नहीं हुआ जा सकता है?"
वह कहता है, एक सम्राट भी शासन की व्यवस्था को क्या एक खेल नहीं बना सकता है? बना तो भिखारी भी नहीं पाता। लाओत्से कह रहा है, एक सम्राट भी चाहे तो शासन के विराट कर्म को भी एक खेल बना सकता है। उद्देश्य को छोड़ दे। हमें तत्काल लगता है कि अगर उद्देश्य को छोड़ दें, तो हम बैठ जाएंगे। फिर हम कुछ करेंगे ही क्यों? उद्देश्य को हमने छोड़ा कि हमें लगता है करना ही खो जाएगा। क्योंकि हमने सदा ही उद्देश्य के लिए किया है। निरुद्देश्य हमने जीवन में कभी कुछ नहीं किया। या अगर कभी कुछ किया हो, कभी कोई छोटा सा कृत्य भी निरुद्देश्य किया हो, तो लौट कर उसका स्मरण करें।
निरुद्देश्य! कोई नदी में डूबता हो, और आपने घाट पर खड़े होकर इतना भी न सोचा हो कि जीवन को बचाना मेरा कर्तव्य है, कूद पड़े हों क्षण में, बिना सोचे, बिना विचारे, बिना किसी उद्देश्य के, बिना सोचे कि हिंदू है कि मुसलमान है, बचाएं कि न बचाएं, अपना है कि पराया है, कि पीछे काम पड़ेगा कि नहीं काम पड़ेगा, कुछ भी न सोचा हो, बस कोई डूबता था और सहज-स्फूर्त आपके प्राणों में छलांग लग गई हो और आप कूद कर उसे बचा लिए हों, तो आपको एक झलक मिल सकती है आनंद की।

लेकिन हम ऐसे हैं कि अगर ऐसा कोई मौका भी मिल जाए, तो हम उसे बहुत शीघ्र नष्ट कर लेंगे, बहुत शीघ्र नष्ट कर लेंगे। अगर हम एक आदमी को किसी तीव्र प्रेरणा के क्षण में, सहज क्षण में कूद कर बचा भी लें, तो बचाते से ही हम उद्देश्य में पड़ जाएंगे। बचाते से ही, किनारे पर लगते से ही हम सोचने लगेंगे कि यह आदमी धन्यवाद दे रहा है कि नहीं दे रहा है? अखबार में खबर छपेगी कि नहीं छपेगी? कोई देखने वाला आस-पास है या नहीं है? काश, हम थोड़ी देर को भी बिना उद्देश्य के किसी कर्म में डूब जाएं, तो वही कर्म ध्यान बन जाता है।
लेकिन हम तो ध्यान भी करते हैं, तो उद्देश्य से करते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करने से जीवन में सफलता तो मिलेगी न!
जीवन की सफलता और ध्यान?
वे पूछते हैं कि आर्थिक हालत खराब जा रही है, ध्यान करने से प्रभु की कृपा तो उपलब्ध होगी न!
तो ध्यान भी एक इनवेस्टमेंट है। और ध्यान भी उनके धंधे का एक हिस्सा है। ध्यान भी! हम सोच ही नहीं सकते कि उद्देश्य से ध्यान का कोई संबंध नहीं है। यह भी कहना गलत है कि ध्यान से आनंद मिलेगा। यह भी कहना गलत है। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं कि ध्यान से आनंद नहीं मिलता है। ध्यान से ही आनंद मिलता है। लेकिन यह भी कहना गलत है कि ध्यान से आनंद मिलेगा। क्योंकि जो आनंद के लिए ध्यान करेगा, वह ध्यान कर ही नहीं पाएगा। ध्यान के लिए ही जो ध्यान करेगा, उसे आनंद जरूर मिल जाता है। कर्म के लिए ही जो कर्म में उतर जाता है, प्रत्येक कृत्य को ही जो उस क्षण में पूरा बना लेता है और स्वयं को पूरा डुबा देता है, पीछे कोई बचता ही नहीं है, उसका पूरा जीवन ही ध्यान हो जाता है।
लाओत्से कहता है, एक सम्राट भी चाहे तो विराट जनसमूह के प्रति प्रेम, बड़े राज्य की व्यवस्था, इसको भी खेल बना सकता है। इसको भी बिना उद्देश्य के जी सकता है। लेकिन वह प्रश्नवाचक उसका वक्तव्य है।
वह कहता है, "जनसमूह के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने में और शासन के व्यवस्थापन की प्रक्रिया में क्या वह सोद्देश्य कर्म के बिना अग्रसर नहीं हो सकता? क्या वह स्वर्ग के अपने दरवाजे (नासारंध्र) को खोलने और बंद करने में एक स्त्रैण पक्षी की तरह काम नहीं कर सकता? जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, तो क्या वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख सकता?" ये प्रश्न इसलिए उठा रहा है लाओत्से, वह जो कहना चाहता है, वह बहुत स्पष्ट है, लेकिन प्रश्न के साथ कहना चाहता है। क्योंकि हम जैसे हैं, बहुत संदिग्ध मालूम पड़ता है लाओत्से को भी कि हम निरुद्देश्य हो सकेंगे। लेकिन हो सकते हैं। होने का रास्ता क्या है? और होने से क्या फलित होगा? होने से क्या घटित होता है?
तो तीन बातें समझ लें।
एकः जीवन अपने में ही अपना लक्ष्य है; जीवन के पार कोई भी लक्ष्य नहीं है। कितना ही हमारे मन को कठिनाई होती हो यह बात स्वीकार करने में, यह तथ्य है। इसलिए ऐसा सोचें ही मत कि किसलिए जीएं; ऐसा सोचें कि कैसे जीएं। और जैसे ही उद्देश्य हटता है, प्रश्न बदल जाते हैं। जब तक उद्देश्य होता है, हम पूछते हैं, किसलिए जीएं? जैसे ही यह समझ में आ जाए कि जीवन ही अपना लक्ष्य है, वैसे ही प्रश्न का रुख बदल जाएगा। तब हम यह नहीं पूछेंगे, किसलिए जीएं? हम पूछेंगे, कैसे जीएं?
कैसे से विज्ञान का जन्म होता है--हाऊ? कैसे से योग का जन्म होता है। किसलिए जीएं, इससे हवाई दर्शनशास्त्र, मेटाफिजिक्स का जन्म होता है। फिर हजारों लोग उत्तर देने वाले मिल जाते हैं कि इसलिए जीएं, क्योंकि जीवन के पार एक मोक्ष है और जीवन के पार एक परमात्मा। लेकिन तब सब चीजें जीवन के पार होती हैं; यहां कुछ भी नहीं होता। तब सभी चीजें कब्र के बाद होती हैं; यहां कुछ भी नहीं होता। और जिस व्यक्ति के भी जीवन में कब्र के बाद की तस्वीर बहुत महत्वपूर्ण हो जाए, उसका यह जीवन एक लंबी कब्र बन जाएगा। क्योंकि इस जीवन में कुछ पाने योग्य बचता नहीं, कुछ पाने योग्य बचता नहीं। इस सारी जमीन पर तथाकथित धर्मों के कारण एक जीवन-निषेध का अंधकार फैल गया; एक लाइफ-निगेशन का। जीवन बेकार है। पार कहीं लक्ष्य है, उसे पाना है।

और हमें पता नहीं कि यह उद्देश्य पूछने वाले लोगों को अगर मोक्ष भी मिल जाए, तो एकाध दिन भला ही ये यहां-वहां टहल कर दर्शन करें मोक्ष का, तत्काल पूछेंगे कि उद्देश्य क्या है? इस मोक्ष में भी होने से क्या होगा? क्योंकि जिन्होंने सदा यही पूछा है, वे मोक्ष से भी यही सवाल उठाएंगेः कि मान लिया कि यहां शांति है, सुख है; लेकिन फायदा क्या है? इससे मिलेगा क्या? यह क्रानिक क्वेश्चनिंग है, यह जो बीमारी है, स्थायी है। इसको बदल नहीं सकते। यह आदमी कहीं भी पहुंच जाए, यह पूछेगा ही।
मैंने सुना है, मार्क ट्वेन की आदत थी कि जब भी उससे कोई सवाल करे, तो
वह जवाब हमेशा सवाल में ही देता था। आप कुछ पूछें, तो वह जो उत्तर देगा, वह एक सवाल होगा। अगर आप उससे पूछें कि आपका नाम क्या है? तो वह नाम नहीं बताएगा, वह पूछेगा कि नाम पूछने का प्रयोजन क्या है? सवाल से सदा ही दूसरे सवाल को वह उठाता था। सुना है मैंने कि अमरीकी प्रेसीडेंट से वह मिलने गया था। अमरीकी प्रेसीडेंट ने उससे पूछा कि मार्क ट्वेन, सुना है मैंने कि तुम हर सवाल के जवाब में पुनः सवाल खड़ा करते हो! मार्क ट्वेन ने कहा, क्या अब भी मैं ऐसा करता हूं? क्या अब भी मैं ऐसा करता हूं, उसने पूछा। क्रानिक! उसे भी पता नहीं कि वह क्या कह रहा है। उसे भी शायद बाद में ही पता चला होगा कि मैंने फिर सवाल ही खड़ा किया है।
यह जो उद्देश्य को पूछने वाली वृत्ति है, यह रुग्ण है। सच तो यह है कि हमारे रोगी चित्त की गवाह है। जब जीवन में आनंद होता है, तो हम नहीं पूछते कि किसलिए?
कभी आपने ख्याल किया है, हम सदा पूछते हैं, लोग पूछते हैं, मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, एक बच्चा जन्म से ही अंधा पैदा हुआ, क्यों? वे यह कभी नहीं कहते मुझसे आकर कि इतने बच्चे जन्म से ही अंधे पैदा नहीं हुए, क्यों? अगर कोई आदमी बीमार होता है, तो वह पूछता है, बीमारी क्यों है? स्वस्थ होता है, तो कभी नहीं पूछता कि स्वास्थ्य क्यों है? एक आदमी जब भी सुख में होता है, तो कभी नहीं पूछता कि जगत में सुख क्यों है? और जब दुख में होता है, तो पूछता है, जगत में दुख क्यों है? पांच हजार साल के लिखित प्रश्न हमारे पास हैं उपलब्ध। एक भी आदमी ने नहीं पूछा कि जगत में सुख क्यों है? बुद्ध भी यही पूछते हैं कि जगत में दुख क्यों है? और हर आदमी यही पूछता है कि जगत में दुख क्यों है?
तो जब भी कोई आदमी पूछता है कि जीवन का उद्देश्य क्या है, तो वह यह पूछ रहा है कि जीवन क्यों है? इसका मतलब ही यह है कि सारा जीवन उसने दुख से भर लिया है। अन्यथा वह कभी न पूछता कि जीवन का उद्देश्य क्या है? जीवन क्यों है? वह जीता; और जीना पर्याप्त होता। लेकिन स्थिति ऐसी है कि जीवन हमने दुख से भर लिया है; इसलिए यह सवाल उठता है।
लाओत्से कहता है कि क्या एक सम्राट भी बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता? क्योंकि सम्राट को तो, जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह मिल गया है। इसलिए वह सम्राट की बात कर रहा है। अगर एक भिखारी से कहे, तो भिखारी कहेगा, बिना उद्देश्य के कैसे जी सकता हूं? अभी एक मकान भी मेरे पास नहीं। इसलिए उसकी बात छोड़ दे रहा है। एक सम्राट की बात उठा रहा है, कि क्या एक सम्राट भी बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता? उसके पास सब है, जो भी मिल सकता था। लेकिन वह भी बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता। क्यों? क्योंकि चीजों से उद्देश्य का कोई संबंध नहीं है। उद्देश्य से जीने की बीमारी हमारे मन की बीमारी है। सब मिल जाए, तो भी मन पूछता है कि क्यों? किसलिए? पूछता ही चला जाता है।
इसलिए बहुत अजीब घटना घटती है। गरीब आदमी इतना दुखी कभी नहीं होता, जितना अमीर आदमी दुखी हो जाता है। और अगर अमीर होकर भी कोई दुखी न हुआ हो, तो समझना कि अभी गरीब है। अमीर होने का लक्षण ही यही है कि आदमी इतना दुखी हो जाए कि दुख से बचने का कोई उपाय न सूझे। अमीर होने का मतलब ही यही है कि वे सब चीजें मिल गईं जिनसे आशा थी कि सुख मिलेगा, और सुख नहीं मिला। सब चीजें इकट्ठी हो गईं और आदमी बीच में खड़ा है। और अब कुछ पाने को भी नहीं बचा। और जो पाना चाहा था, वह मिला भी नहीं। तब दुख का जन्म होता है। गरीब आदमी कष्ट में रहता है, दुख में कभी नहीं। कष्ट का मतलब होता है, कोई चीज की कमी है। कष्ट हमेशा अभाव से होता है। रोटी नहीं है, पेट खाली है, तो कष्ट होता है। दुख होता है, जब पेट भरा होता है और भरेपन का बिल्कुल अनुभव नहीं

होता। सोने को बिस्तर नहीं है, तो कष्ट होता है। दुख तब होता है, जब बिस्तर तो श्रेष्ठतम उपलब्ध है और सोना मुश्किल हो गया। कष्ट होता है अभाव से, दुख होता है भाव से। कष्ट होता है किसी चीज की कमी से, और दुख होता है किसी चीज के होने से। कष्ट गरीब आदमी का हिस्सा है, दुख अमीर आदमी का हिस्सा है। तो जब दुख हो तो समझना चाहिए आदमी अमीर हुआ।
यह दुख क्या है? यह दुख यही है कि जब तक हम दौड़ते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं, लगता है कोई चीज पाने को मंजिल है, तो जीवन में रस मालूम होता है। इसलिए गरीब आदमी की जिंदगी में एक रस होता है। क्योंकि उद्देश्य दूर होते हैं--कल, भविष्य में, जन्म के बाद। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि परलोक की कल्पना गरीब का संतोष है। थोड़ी दूर तक सच है। क्योंकि गरीब को अगर जीना हो, तो परलोक की कल्पना के बिना वह जी नहीं सकेगा। दौड़ेगा कैसे? उठेगा कैसे? चलेगा कैसे? और अगर परलोक हटा दो, तो फिर कोई समाजवाद, कोई साम्यवाद, कोई उटोपिया, इसी जमीन पर; लेकिन कल। नहीं तो गरीब आदमी जीएगा कैसे? कोई न कोई कल चाहिए, चाहे परलोक में हो वह सपने का लोक, और चाहे जमीन पर हो; लेकिन कल। तो गरीब आदमी दौड़ लेता है--लक्ष्य, उद्देश्य। लेकिन अगर सभी उद्देश्य पूरे हो जाएं और सभी लक्ष्य उपलब्ध हो जाएं, तो पहली दफे पता चलेगा कि यह तो दौड़ बिल्कुल बेकार हो गई। उद्देश्य सब पूरे हो गए, मंजिल सामने आ गई; और हाथ में कुछ भी नहीं है।
इसलिए आज अगर समृद्ध देशों में समृद्ध देशों के दार्शनिक अर्थहीनता, मीनिंगलेसनेस की बात करते हैं, तो विचारणीय है। चाहे सार्त्र, चाहे कामू, चाहे कोई और, हाइडेगर, वे सभी पश्चिम के विचारशील लोग एक ही बात कर रहे हैं कि जीवन बिल्कुल अर्थहीन है। यह अर्थहीनता जीवन की नहीं है, यह हमने अर्थहीनता अपने हाथ से पैदा की है। क्योंकि हमने जीवन को सोद्देश्य जीने की कोशिश की है। अब उद्देश्य पूरे हो गए हैं और अर्थ हाथ में नहीं आया, इसलिए हम परेशान हैं।
जब भी कोई आदमी कहता है मैं बिल्कुल निराश हो गया, तो समझना कि उसकी आशा के कारण ही हुआ है। जिस आदमी ने आशा नहीं बांधी, वह निराश कभी नहीं होता। आप मुझे आकर कभी निराश नहीं कर सकते, क्योंकि मैं आपसे कोई आशा ही नहीं बांधता। तो आप कुछ भी करें, कुछ भी व्यवहार करें, आप मुझे निराश नहीं कर सकते। क्योंकि मैंने पहली भूल ही नहीं की, आपके हाथ में वह ताकत ही नहीं दी। मैंने कभी आपसे कोई आशा नहीं बांधी। लेकिन मैं आपसे आशा बांध लूं, छोटी, सस्ती आशा बांध लूं कि रास्ते पर निकलेंगे तो कम से कम हाथ जोड़ कर नमस्कार करेंगे, तो भी आप मुझे निराश कर सकते हैं। आप मेरे मालिक हो गए। आज निकले रास्ते पर और आपने मुंह दूसरी तरफ कर लिया और नमस्कार नहीं किया, तो मेरी छाती में छुरे का घाव हो जाएगा। निराश हो गया मैं। तब मैं कहूंगा, जीवन बिल्कुल बेकार है। इस आदमी पर इतना भरोसा किया था और यह नमस्कार तक नहीं कर रहा है! अगर आशा बांधी, तो निराशा हाथ लगती है; अगर उद्देश्य बनाया, तो एक दिन निरुद्देश्यता के गड़्ढे में गिर जाना पड़ता है।
लाओत्से कहता है, बनाओ ही मत, जीवन को जीओ बिना उद्देश्य के। और तब विषाद तुम्हारे भाग्य में कभी भी फलित नहीं होगा। तब तुम प्रतिक्षण ताजे और नए और आनंद से भरपूर हो सकोगे।
तो पहली तो बात, बड़ा विरोध लाओत्से का है उद्देश्य से। छोड़ दो उद्देश्य। मांगो ही मत भविष्य से कुछ। फिर भविष्य जो भी दे देगा, अनुग्रह है। मांगो ही मत। मांगा कि उपद्रव शुरू हो जाता है। और हम सब मांगते हैं। इसलिए हमारा पूरा जीवन एक उपद्रव हो जाता है। संबंध हों, तो हम मांगते हैं। अगर मैं किसी से प्रेम करूं, तो मांगता हूं। कल सुबह से फिर ललचाई आंखों से देखता हूं कि उसका प्रेम मुझे मिले। तब सब दुख हो जाता है। आदर, तो आदर मांगने लगता हूं। दया, तो दया मांगने लगता हूं। जो भी मेरी मांग है, वही फिर मुझे विषाद में गिराती चली जाती है।
और विषाद में गिर कर मैं मांगना बंद नहीं करता; मजे की बात यह है। अगर मैं आपसे नमस्कार मांगता था और आपने नहीं दी, तो इससे मैं यह नहीं सोचता कि मांगना ही बंद कर दूं। क्यों गुलाम बनता हूं? नहीं, मैं किसी दूसरे से मांगना शुरू कर देता हूं। कि यह आदमी गलत साबित हुआ, तो कोई दूसरा आदमी सही साबित होगा। लेकिन मेरी पुरानी आदत जारी रहती है। अगर मेरा प्रेम एक जगह

असफल होता है, तो मैं दूसरे व्यक्ति से प्रेम करना शुरू कर देता हूं। अगर एक सीढ़ी पर मुझे रास्ता नहीं मिलता, तो मैं दूसरी सीढ़ी से अहंकार की खोज कर लेता हूं। अगर एक तरफ महत्वाकांक्षा टूटती है, तो मैं दूसरे मार्ग खोज लेता हूं। लेकिन मैं यह कभी नहीं सोचता कि क्या ऐसा भी नहीं हो सकता-- लाओत्से यही कहता है--क्या ऐसा नहीं हो सकता कि बिना उद्देश्य के कोई जीए? हो सकता है। कठिन है, क्योंकि हमारा सारा शिक्षण उद्देश्य का है। कठिन है, क्योंकि हमारी पूरी संस्कृति उद्देश्य सिखाती है। कठिन है, क्योंकि समाज हमें बनाता ही उद्देश्य के लिए है। बाप के जो-जो उद्देश्य अधूरे रह गए, वह अपने बेटे की छाती में आरोपित कर जाता है। मां के जो-जो उद्देश्य अधूरे रह गए, वह उसकी बेटी में बीज डाल जाती है। मनसविद कहते हैं कि हर बेटा अपने बाप की निराशाओं-आशाओं का फिर से विस्तार करता है। हर बाप मरते दम तक, आखिरी दम तक इसी कोशिश में रहता है कि जो काम वह नहीं कर पाया, उसका बेटा पूरा कर जाए। आशाएं हमारी टूटती नहीं हैं। हम उन आशाओं को शाश्वत करना चाहते हैं।
इसलिए पुराने शास्त्र तो कहते हैं कि जिसका बेटा नहीं हुआ उसका जीवन बेकार है। बड़े मजे की बात है। जीवन अपना है, लेकिन बेटे के न होने से बेकार हो जाएगा। क्यों? क्योंकि अगर बेटा न हुआ, तो तुम्हारी अधूरी आकांक्षाओं का क्या होगा? तुम किसके कंधे पर सवार होकर शाश्वत की यात्रा पर निकलोगे? इसलिए बेटा तो होना ही चाहिए। तो अपना भी न हो, तो उधार भी लिया जा सकता है, गोद भी लिया जा सकता है। लेकिन मेरी अधूरी, दुष्पूर आकांक्षाओं को कोई तो अपने कंधे पर लेकर चले! मैं नहीं रहूंगा, लेकिन मेरी आशाएं--आश्चर्य है, मैं भी नहीं रहूंगा, फिर भी मेरी आशाएं बनी रहें।
लाओत्से कहता है, तुम भले रहो, आशाओं को जाने दो। और हम ऐसे हैं कि हम भला मिट जाएं, लेकिन हमारी आशाएं न मिटें।
बेटों को मरते वक्त बाप कह जाते हैं कि ध्यान रखना अपने वंश की परंपरा का। उसी के अनुसार चलना। जो नहीं हम कर पाए, तुम करके दिखाना। आश्चर्य है, तुम भी कोरे गए, तुम व्यर्थ गए, तुम बेटे को भी व्यर्थ किए जा रहे हो! लेकिन हर बाप अपने रोगों को अपने बेटे को दे जाता है। हर पीढ़ी अपनी बीमारियां बड़ी सुविधा से, बड़ी व्यवस्था से नई पीढ़ी को सौंप जाती है धरोहर में। और इसलिए हर नई पीढ़ी और ज्यादा बीमार होती चली जाती है।
लोग कहते हैं, कलियुग कैसे आया? कलियुग आने का ढंग है यह। अगर दस हजार साल से हर बाप अपनी बीमारी बेटे को देता चला जा रहा है, तो बीमारियां तो बढ़ती चली जा रही हैं। और बेटे की ताकत! तो बीमारियों का ढेर होता चला जा रहा है। यह कलियुग आता है तुम्हारे सतयुग की सारी बीमारियों का संग्रह है। दशरथ राम को दे गए होंगे। राम लव-कुश को दे गए होंगे। और चला आ रहा है। तो एक-एक बेटे की छाती पर भारी पहाड़ इकट्ठे हो गए हैं। और उन पहाड़ों के नीचे वह दबा जा रहा है। लेकिन बाप देना चाहता है, क्योंकि अधूरी आशा अभी भी टिमटिमाती रहती है कि शायद कोई पूरा कर ले, मेरे खून का कोई हिस्सा पूरा कर ले।
लाओत्से कहता है कि क्या यह नहीं हो सकता कि तुम उद्देश्य से जीयो ही
मत; तुम सिर्फ जीओ!
तथाकथित महात्मागण कहेंगे, वैसा जीवन तो पशुओं जैसा हो जाएगा, तो पशुओं जैसा हो जाएगा। एक अर्थ में वे ठीक कहते हैं और एक अर्थ में गलत कहते हैं। एक अर्थ में पशुओं जैसा हो जाएगा, क्योंकि पशु क्षण में ही जीते हैं। कल का उन्हें पता नहीं। टाइम कांशसनेस तो पशु को समय की कोई कल्पना नहीं होती। इसलिए वह जोड़ भी नहीं सकता। अतीत का भी स्मरण नहीं रख सकता ज्यादा। भविष्य का भी बहुत ख्याल नहीं रख सकता। बहुत छोटा सा उसका समय का दायरा है। वह उसी में जीता है।
एक अर्थ में तो वे ठीक कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति, जो निरुद्देश्य जीता है, पशु की तरह हो जाएगा। लेकिन एक अर्थ में बिल्कुल गलत कहते हैं। क्योंकि ऐसा जो व्यक्ति है, वह इसलिए नहीं क्षण में जीता कि उसे कल का पता नहीं है। उसे कल का पूरी तरह पता है, आपसे ज्यादा पता है; इसीलिए वह क्षण में जीता है। उसे पता है कि कल सिवाय विषाद के कुछ भी नहीं लाता। उसे पता है कि कल तक खींचने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए नहीं कि उसे समय का पता

नहीं है, कि उसकी कोई समय की धारणा में कमी है। सच तो यह है कि समय का उसे इतना पता है कि समय उसे धोखा नहीं दे सकता। तो एक अर्थ में तो वह पशु जैसा जीएगा, पशु जैसा सरल हो जाएगा। वैसे आदमी की आंख में गाय की आंख जैसी झलक आ जाएगी। एक अर्थ में तो वह ऐसा हो जाएगा। और दूसरे अर्थ में वह परमात्मा जैसा हो जाएगा, क्योंकि समय उसे धोखा नहीं दे सकता।
लेकिन कठिनाई है। मैं अभी एक जैन मुनि विद्यानंद की एक छोटी सी किताब देख रहा हूं--समय का मूल्य। तो जैसा साधारण बुद्धि कहती है, एक क्षण को भी व्यर्थ मत खोओ, क्योंकि समय बहुत मूल्यवान है। इसलिए व्यर्थ मत खोओ, उस समय से कुछ कमाओ, अर्जित करो। दुकानदार ऐसी बात कहे, समझ में आता है। दुकानदार लिखे ही रहता है, टाइम इ.ज वेल्थ; वह लिखे रहता है, समय धन है। लेकिन एक मुनि भी यही कहता है कि समय धन है, खोओ मत। इसको मोक्ष पाने में लगाओ, इसको आत्मा की खोज में लगाओ, इसको पुण्य में लगाओ। देखो, समय खो न जाए! क्योंकि समय लौट कर नहीं आएगा। लेकिन किसी चीज को पाने में लगाओ, अन्यथा खो गया, मतलब यह है। किसी चीज को पाने में लगाओ, अन्यथा खो गया। अगर कुछ न पाया, तो खो गया।
लाओत्से जो कह रहा है, वह गहरी धार्मिक बात है। वह दुकानदार की भाषा नहीं है।
और असल में, जो साधु दुकानदारों को प्रभावित कर पाते हैं, उसका कारण कुल इतना ही होता है कि भाषा दोनों की एक ही होती है। नहीं तो प्रभावित भी नहीं कर सकते। दुकानदार भी सिर हिलाता है कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, टाइम इ.ज वेल्थ, समय धन है, बिल्कुल है। अब रह गई बात इतनी कि उस धन की परिभाषा क्या करें। इसी जमीन में तिजोरी भरने को धन कहें कि पुण्य को धन कहें, यह परिभाषा की बात है। लेकिन समय धन है। और जिसने गंवाया, वह बेकार गया। कमाओ, समय को नियोजित करो और कुछ कमाओ, किसी उद्देश्य पर समर्पित करो, तो ही तुम धनी हो पाओगे। चाहे तिजोरी वाले धनी, चाहे पुण्य वाले धनी, लेकिन धनी तुम तब ही हो पाओगे, जब समय को तुम धन में बदल लो।
लाओत्से कहता है, समय को बदलना ही मत धन में। समय जीवन है, तुम उसे जी लो। तुम उसमें डूब जाओ। तुम उसमें नहा लो। तुम उससे कुछ आगे पाने की चेष्टा मत करो। अभी, अभी इसी समय तुम उसमें इतने लीन हो जाओ कि तुम और तुम्हारे समय में कोई फासला न रह जाए। समय धन नहीं है, समय जीवन है। और समय से कुछ भी नहीं कमाया जा सकता, क्योंकि समय स्वयं ही अपना लक्ष्य है। जो समय से कमाने जाएगा, वह दरिद्र भिखारी की तरह मरेगा। जो समय को जीएगा अभी और यहीं, वह सम्राट हो जाएगा। सम्राट हो जाएगा इसलिए कि हर क्षण जीकर जीवन की संपदा, जीवन का रस, जीवन की अनुभूति प्रगाढ़ हो जाएगी। वह जीवंत से जीवंत होता चला जाएगा, उसका जीवन निखरता चला जाएगा। हर क्षण समय का उसके जीवन की तलवार पर और धार रख जाएगा। और उसके जीवन की सुरा और सघन, और गहन हो जाएगी। और उसके जीवन का नृत्य और कुशल, और आनंदपूर्ण हो जाएगा। लेकिन यह हो जाएगा यहीं और अभी--एक।
और दूसरा, लाओत्से कहता है कि क्या वह स्वर्ग के अपने दरवाजे को खोलने
और बंद करने की प्रक्रिया में एक स्त्रैण पक्षी की तरह काम नहीं कर सकता? इसे थोड़ा समझना पड़े। एक तो पुरुष चित्त के काम करने का ढंग है और एक स्त्रैण चित्त के काम करने का ढंग है। लाओत्से स्त्रैण चित्त के पक्ष में है। एक पुरुष चित्त के काम करने का ढंग है; पुरुष चित्त के काम करने का ढंग है आक्रमण, एग्रेशन। पुरुष से मतलब नहीं है, यह सिर्फ प्रतीक है। आक्रमण की जो व्यवस्था है, किसी चीज को पाना हो तो एक ढंग हैः आक्रमण करो और पा लो। इसे लाओत्से कहता है, यह पुरुष चित्त का ढंग है। एक दूसरा हैः आक्रमण मत करो, सिर्फ प्रतीक्षा करो और निमंत्रण दो। आक्रमण नहीं, निमंत्रण। एग्रेशन नहीं, इनवीटेशन। इसे लाओत्से स्त्रैण चित्त की व्यवस्था कहता है।
अगर हम उद्देश्यपूर्ण जीवन जीते हैं, तो हम पुरुष चित्त की तरह जीएंगे। क्योंकि जिसे उद्देश्य को पूरा करना है, उसे प्रतिपल आक्रमण करना पड़ेगा। रोज उसे आक्रमण करना पड़ेगा कल पर, क्योंकि उद्देश्य कल है। और आक्रमण की तैयारी करनी है। तो वह रोज आक्रमण की तैयारी और आक्रमण करता रहेगा। हमलावर होगा वह। जिंदगी के साथ उसका संबंध दोस्ती का नहीं,

दुश्मनी का होगा। जैसा पश्चिम में लोग कहते हैं कि प्रकृति पर विजय पानी है! उसकी भाषा विजय की होगी। जो भी चीज है, उसको जीतना है।
लाओत्से कहता है, यह जीतने वाला चित्त सब कुछ हार जाता है। जिंदगी की पहेली में जो जीतने चलता है, वह हार जाता है। क्योंकि जीतना तो सदा भविष्य में ही हो सकता है, कल ही हो सकता है। आज तो तैयारी में ही बिताना पड़ता है, आज तो तैयारी ही करनी पड़ती है। कल के लिए तैयारी करनी पड़ती है। प्रेम तो अभी हो सकता है, लेकिन युद्ध अभी नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम के लिए किसी तैयारी की जरूरत नहीं है, युद्ध के लिए तैयारी की जरूरत है। ख्याल करते हैं आप? प्रेम तो अभी हो सकता है, यहीं, इसी क्षण। लेकिन युद्ध अभी नहीं हो सकता। युद्ध के लिए तैयारी करनी पड़ती है।
इतिहासविद कहते हैं कि अब तक इतिहास ने दो तरह के समय जाने हैंः युद्ध
का समय और युद्ध की तैयारी का समय। शांति तो अब तक जानी नहीं। दस-पंद्रह साल एक मुल्क को युद्ध की तैयारी करनी पड़ती है, फिर युद्ध करना पड़ता है; फिर तैयारी करनी पड़ती है, फिर युद्ध करना पड़ता है। आक्रमण पुरुष चित्त का लक्षण हैः जीतो, युद्ध करो, संघर्ष करो। जगत एक शत्रु है। और अस्तित्व और हमारे बीच कोई मैत्री नहीं है। निमंत्रण तो मित्र को देना पड़ता है, प्रेमी को। आक्रमण शत्रु पर करना होता है।
स्त्रैण चित्त का अर्थ लाओत्से लेता है, वह जो ग्राहकता की क्षमता है।
पुरुष और स्त्री की जो यौन-व्यवस्था है, उसमें बुनियादी फर्क है। पुरुष की यौन-व्यवस्था आक्रमण की है। इसलिए कोई स्त्री बलात्कार नहीं कर सकती। उसकी यौन-व्यवस्था से बलात्कार घटित नहीं हो सकता। अगर स्त्री को बलात्कार भी करना हो, तो पुरुष की सहायता की जरूरत है। स्त्री बलात्कार करवा सकती है, कर नहीं सकती। क्योंकि पुरुष अगर सहयोग न दे, तो स्त्री बलात्कार कैसे करे? लेकिन पुरुष बलात्कार कर सकता है, स्त्री के सहयोग की अनिवार्यता नहीं है। बल्कि कुछ लोगों को बलात्कार के सिवाय प्रेम में रस ही नहीं आता, क्योंकि बलात्कार में ही आक्रमण का पूरा रस मिलता है।
इसलिए जो स्त्री उपलब्ध हो जाती है, पुरुष को उसमें रस नहीं आता। क्योंकि जीत का काम ही समाप्त हो गया। जो स्त्री उपलब्ध नहीं होती, उसमें उसे रस आता है। तो जितनी अनुपलब्ध स्त्री हो, पुरुष के लिए उतना रस का कारण होती है। जितनी दूर हो, उतना रस का कारण होती है। क्योंकि उसे पाना मुश्किल है, तो पाने के लिए संघर्ष और युद्ध और आक्रमण और तैयारी करनी पड़ती है। उसमें उसके पुरुष चित्त को, आक्रामक चित्त को रस मिलता है। स्त्री काम-व्यवस्था से भी आक्रमण नहीं कर सकती और उसका चित्त भी आक्रामक नहीं है। वह ग्राहक है, रिसेप्टिव है। वह सिर्फ स्वीकार करती है, वह सिर्फ अंगीकार करती है। उसके अंगीकार में ही जगत के प्रति, जीवन के प्रति एक सदभाव है।
लाओत्से के हिसाब से अस्तित्व से हमारे दो तरह के संबंध हो सकते हैंः
एक संबंध आक्रमण का; और एक संबंध मैत्री का, प्रेम का, निमंत्रण का। तो वह कहता है, एक स्त्रैण पक्षी की तरह, एक स्त्रैण चित्त की तरह, क्या यह नहीं हो सकता कि तुम अपने स्वर्ग के दरवाजे को भी इस तरह ठोंको-पीटो मत, धकाओ मत।
स्वामी राम कहा करते थे कि दरवाजे दो तरह से हो सकते हैं। एक तो दरवाजा जिसमें पुश लिखा रहता है--धक्का दो! और एक दरवाजा जिस पर पुल लिखा रहता है--अपनी तरफ खींचो!
स्त्रैण चित्त का जो दरवाजा है, उस पर है पुल--खींचो। स्त्री सिर्फ खींचती है। जाती नहीं, सिर्फ बुलाती है। पुरुष का चित्त जो है, वह धक्के देता है। यह जो धक्के देने की चेष्टा है, क्या स्वर्ग के दरवाजे खोलने में भी तुम आक्रामक की तरह प्रवेश करोगे? क्या एक नेपोलियन और एक सिकंदर और एक हिटलर की तरह स्वर्ग के दरवाजे पर भी पहुंच जाओगे? क्या वहां भी तुम हमला करोगे? परमात्मा पर भी हमला करोगे?
पुरुष परमात्मा पर भी हमला करने ही निकलता है। जब कोई पुरुष परमात्मा
को खोजने निकलता है, तो उसका भाव ऐसा होता है कि देखें, कहां है? खोज कर रहेंगे! वह मीरा की तरह नाचता हुआ नहीं जाता परमात्मा की तरफ, एग्रेसिव

होता है। उसकी सारी चेष्टा ऐसी होती है कि खोज कर रहेंगे। शायद इसीलिए पुरुष... । पुरुष से मतलब पुरुष ही नहीं, क्योंकि पुरुष भी मीरा की तरह जा सकते हैं, एक कबीर नाचता हुआ जा सकता है। और मीरा भी चाहे तो पुरुष की तरह जा सकती है। ये सिर्फ प्रतीक हैं, ख्याल रखना। पुरुष से मतलब पुरुष का ही नहीं, स्त्री से मतलब स्त्री का ही नहीं। स्त्री पुरुष की तरह व्यवहार कर सकती है, पुरुष स्त्री की तरह व्यवहार कर सकता है।
स्त्रैण चित्त खोजने भी जाता है, तो निमंत्रण की तरह। और अगर स्त्रैण चित्त को न मिले, तो वह यह नहीं कहेगा कि तू कसूरवार है, कहां छिपा है कि मुझे मिलता नहीं? स्त्रैण चित्त इतना ही कहेगा कि जरूर मेरे निमंत्रण में कमी रह गई और मेरी प्रतीक्षा की पुकार पूरी नहीं थी। तू तो यहीं कहीं है। लेकिन मैं अपने द्वार नहीं खोल पाया। मेरे द्वार अधखुले या बंद रह गए।
इस फर्क को समझ लें। ईश्वर को खोजने का जो ज्ञानी का ढंग है, वह पुरुष
का ढंग है। ईश्वर को खोजने का जो भक्त का ढंग है, वह स्त्री का ढंग है। इसलिए भक्त अगर ऐसा कहने लगे तो वह प्रतीक भाषा थी कि कृष्ण के सिवाय कोई पुरुष नहीं। वह सिर्फ प्रतीक भाषा थी, क्योंकि बाकी सब खोजने वाले हैं, तो उन्हें स्त्री होना ही चाहिए। इसका कोई और मतलब नहीं है, इसका यह मतलब नहीं है कि बाकी सब स्त्रियां हैं।
कुछ नासमझ वैसा भी समझे। तो बंगाल में एक संप्रदाय है, सखी संप्रदाय।
तो सखी संप्रदाय को मानने वाला पुरुष भी कृष्ण की मूर्ति रात छाती से लगा कर बिस्तर में सोता है, सखी बन कर।
अब मैं मानता हूं कि यह भला कितना ही सखी बन रहा हो, लेकिन एक बात पक्की है कि कृष्ण की मूर्ति यही उठा कर अपनी छाती से लगाता है। और यही रात उसको छाती से दबा कर सोता होगा; कृष्ण की मूर्ति इसकी छाती को नहीं दबाती होगी। यह भला अपने को सखी कह रहा हो, लेकिन इसका सारा ढंग पुरुष का है। यही कर रहा है कुछ, कृष्ण बिल्कुल इसमें अपराधी नहीं हैं, इसमें बिल्कुल निर्दोष हैं। अगर कभी मुकदमा चले, तो यही फंसेगा। असल में, पुरुष छोड़ नहीं सकता अपने को, कुछ करके रहेगा। किए बिना उसे चैन नहीं है।
लाओत्से कहता है, छोड़ दो, लेट गो। विश्राम में हो जाओ, चीजों को घटित होने दो। घटाने की इतनी आतुरता मत करो। इतनी जल्दबाजी और इतना आग्रहपूर्ण रुख मत रखो कि ऐसा ही हो। जो हो जाए, उसे स्वीकार करने की क्षमता रखो। और द्वार खुले रखो, और राजी रहो, जो हो जाए। और इस जगत से, अस्तित्व से शत्रुता मत लो। एक मैत्री का भाव रखो, तो जगत जो भी करवाए, वह ठीक होगा। ऐसी एक छिपी हुई सदभावना, ऐसी एक निकटता अस्तित्व के साथ कि अस्तित्व जो भी करेगा, वह ठीक होगा। इस भाव के साथ जीने का नाम स्त्रैण ढंग है।
और तीसरा सूत्र है, "जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, तो क्या
वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख सकता?"
और जब ज्ञान परिपूर्ण हो, तब भी क्या ज्ञानी होने का दंभ बचाने की जरूरत है? और जब मेधा अपनी पूरी ज्योति में जलती हो, तब भी क्या बताना पड़ेगा कि मैं ज्ञानी हूं?
असल में, जब तक कोई कहता रहता है मैं ज्ञानी हूं, तब तक जानना कि अज्ञान शेष है। क्योंकि ज्ञान कैसे दावा करेगा? ज्ञान दावेदार नहीं होता, सब दावे अज्ञान के हैं। ज्ञान कैसे कहेगा कि मैंने जान लिया? क्योंकि सच तो यह है कि जैसे ही कोई जानता है, उसे यह भी पता चल जाता है कि जानना असंभव है। जैसे ही कोई जानता है, उसे यह भी पता चल जाता है कि कितना ही जानो, जानने को सदा शेष है। जैसे ही कोई जानता है, उसे पता चल जाता है कि मैंने अपने हाथ में जो चुल्लू भर पानी ले लिया है, वह उस सागर का हिस्सा है जो अनंत है और मेरी मुट्ठी में समाने वाला नहीं है। सच तो यह है कि जानता वही है, जिसकी मुट्ठी ही खो जाती है। जानता वही है, जिसकी पकड़ ही खो जाती है। जो सागर में ऐसे लीन हो जाता है, जैसे कोई नमक की डली को डाल दे और नमक एक हो जाए, सागर के साथ एक हो जाए। बचता कहां है जानने वाला!
तो जिसे जानने की यात्रा पर निकलना है, उसे मिटने की यात्रा पर निकलने
की तैयारी चाहिए। उद्देश्य जहां है, वहां मिटना नहीं हो सकता। वहां तो अहंकार मजबूत होता है। लेकिन जहां कोई उद्देश्य नहीं है, वहां अहंकार के बचने का कोई कारण नहीं। मैं अभी मिट गया, अगर मुझे कल की कोई चिंता नहीं

है। अगर आने वाले क्षण में क्या होगा इसकी मेरी कोई योजना नहीं है, अगर मैंने आने वाले क्षण के साथ आग्रह नहीं रखा है कि यही होगा तो ही मैं सुख पाऊंगा अन्यथा दुखी हो जाऊंगा, तो मैं मिट गया, अभी मिट गया। क्षण आएगा, मेरा अस्तित्व भी होगा, लेकिन मेरा मैं नहीं होगा। मैं हमारी आग्रहपूर्ण योजनाओं का जोड़ है। तो जितना हमारा भविष्य से आग्रह है, उतना हमारा मैं है।
लाओत्से कहता है कि क्या जान लेने के बाद भी ऐसा नहीं जीया जा सकता कि जैसे नहीं जानता हूं?
लाओत्से से कोई पूछता सवाल, तो कभी-कभी तो लाओत्से घंटों चुप रह जाता था। पूछने वाला सवाल भूल जाता। तब लाओत्से फिर से पूछता, क्या पूछा था? वह आदमी कहता, अब तो मैं भी भूल गया, अब मैं फिर कभी आऊंगा। वह आदमी कहता कि लेकिन जब मैंने पूछा था, तब आपने जवाब नहीं दिया! तो लाओत्से कहता, मुझे जवाब पता होता, तो मैं दे देता। मैं रुका, ठहरा, मैंने प्रतीक्षा की कि शायद जवाब आ जाए, शायद जवाब आ जाए। इसलिए तुमसे फिर पूछता हूं कि तुम्हारा सवाल क्या था?
लाओत्से जिंदगी भर कुछ भी नहीं लिखा। यह छोटी सी किताब आखिरी किताब है--आखिरी और पहली। उसने कोई और किताब लिखी नहीं। जिंदगी भर शिष्य उसके कहते रहे, कुछ लिखो। लाओत्से कहता, लेकिन मैं जानता कहां हूं? और अज्ञान तुम्हारे हाथ में दे जाऊं, तो खतरनाक है। लेकिन जितना लाओत्से इनकार करता गया, इनकार करता गया, उतना लाखों लोग उस पर दबाव डालने लगे कि कुछ लिख जाओ। फिर भी लाओत्से एक रात निकल भागा बिना कुछ लिखे। वह तो सीमा पर पकड़ लिया गया मुल्क की। मुल्क छोड़ते वक्त चुंगी नाके पर पकड़ लिया गया। और चुंगी का जो आफिसर था, उसने कहा, बाहर न जाने दूंगा, जब तक कुछ लिख कर न दे दो। इस मजबूरी में लिखी है यह किताब। उसने कहा कि तीन दिन रुक जाओ यहां, अन्यथा सीमा के पार नहीं निकलने दूंगा। तो जो तुम जानते हो, वह लिख जाओ।
लाओत्से बड़ी मुश्किल में पड़ा। जिंदगी भर जो चुप रहा, चुप्पी को जिसने साधन बनाया, ज्ञान की जिसने कभी घोषणा न की, उसको लिखने की मजबूरी खड़ी हो गई; क्योंकि वह निकलने देने की बात थी। उसे जाना था मुल्क के बाहर। उसे जाना था पर्वतीय एकांत में लीन होने को सदा को। और यह आदमी जाने नहीं देगा। तो तीन रात सोया नहीं, तीन रात में यह किताब, इसको अगर किताब कह सकें तो, उसने लिखी। लेकिन पहली बात यही लिखी कि जो जाना जाता है, वह कहा नहीं जा सकता; और जिसे शब्द कहते हैं, वह सत्य नहीं है। यह उसने पहले लिखा। फिर पीछे किताब शुरू की।
तो वह कहता है कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जो जान ले, वह न जानने जैसे भाव में प्रतिष्ठित हो जाए?
हो नहीं सकता, ऐसा होता ही है। ऐसा होता ही है। लेकिन इस बात को भी एक डॉगमेटिक एसर्शन, एक रूढ़ वक्तव्य न बन जाए, इसलिए झिझकते हुए लाओत्से प्रश्न के रूप में कहता है। वह कहता है, जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, जब वह सब कुछ जानने की स्थिति में खड़ा हो जाए, जब सब द्वार उसके लिए खुल गए हों और सभी आयाम से प्रकाश उस पर पड़ता हो, तो क्या वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख सकता? प्रश्न में इसलिए रखता है, ताकि एक झिझक, जो कि परम ज्ञानी का लक्षण है। झिझक परम ज्ञानी का लक्षण है, बेझिझक अज्ञानी वक्तव्य देते हैं। झिझक ज्ञानी का लक्षण है।
महावीर से कोई पूछता था, तो वे स्यात लगाए बिना वक्तव्य नहीं देते थे। कोई उनसे पूछता, ईश्वर है? तो महावीर कहते, स्यात। परहेप्स, शायद है। कभी कहते, स्यात नहीं है। कभी कहते, शायद दोनों ही बातें सच हैं।
परम ज्ञानी गणित जैसे वक्तव्य नहीं दे सकता कि दो और दो चार होते हैं।
क्योंकि जीवन इतनी बड़ी पहेली है, इतना बड़ा रहस्य है कि जिसने बहुत साफ-साफ वक्तव्य दिए, वह ठीक से समझ ले कि बहुत कुछ उसे छोड़ देना पड़ेगा। वक्तव्य को साफ बनाने के लिए बहुत कुछ छोड़ देना पड़ेगा। वह भी जीवंत था। और जो हमने छोड़ दिया है, वह आज नहीं कल बदला लेगा।
इसलिए लाओत्से ऐसा नहीं कहता, क्योंकि वह कहना भी बहुत अथारिटेटिव, बहुत आप्त हो जाता। लाओत्से ऐसा भी कह सकता था--इस फर्क को समझें--लाओत्से यह भी कह सकता था कि जो ज्ञानी है, उसे अज्ञानी जैसा व्यवहार करना चाहिए।

बात यही होती, लेकिन यह वक्तव्य अज्ञानपूर्ण हो जाता। यह वक्तव्य अज्ञानपूर्ण हो जाता।
मैंने सुना है, सुकरात के पास उस जमाने का एक बहुत बड़ा तर्कनिष्ठ, एक सोफिस्ट मिलने आया।
सुकरात तो बहुत झिझकता था। सुकरात का चित्त लाओत्से जैसा रहा होगा। अगर पश्चिम में कोई एक आदमी हुआ है जो लाओत्से के निकट पहुंचे, तो वह सुकरात है। सुकरात लोगों से सवाल पूछता था, लेकिन खुद कभी जवाब नहीं देता था। तो लोग तो... इसीलिए उसको जहर देने में एक कारण यह भी था कि लोगों को उसने बहुत परेशान कर दिया। सवाल हमेशा पूछेगा और जवाब कभी नहीं देगा। क्योंकि सुकरात कहता, मैं जानता कहां हूं? अज्ञानी हूं, इसलिए सवाल तो पूछने का मुझे हक है। लेकिन ज्ञान नहीं है, इसलिए जवाब मैं क्या दूं? और ऐसे आदमी से आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे, जो जवाब न दे और सवाल पूछे। क्योंकि सवाल तो अंतहीन पूछे जा सकते हैं। और जो खुद जवाब न दे, उससे आप एक भी सवाल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उसने कभी कोई जवाब नहीं दिया जिस पर सवाल उठाए जा सकें।
तो पूरा एथेंस सुकरात से परेशान हो गया था। रास्ते पर लोग उसे देख कर गली से बच कर निकल जाते थे कि अगर वह मिल गया और कुछ सवाल पूछ लिया, तो भीड़ इकट्ठी हो जाएगी और झंझट खड़ी हो जाएगी। क्योंकि आप जितनी बातें जानते हुए मालूम पड़ते हैं, उनमें से एक का भी आपको पता कहां है? वह तो कोई पूछता नहीं है, इसलिए आप मजे से अपने ज्ञान में थिर रहते हैं। अगर कोई पूछ ले, तो आप मुश्किल में पड़ेंगे। पूछते भी लोग इसीलिए नहीं हैं कि जो आपसे पूछे, वह भी झंझट में पड़ेगा। उसको भी अपना ज्ञान बचाना है। आपको अपना बचाना है। एक म्यूचुअल कांस्पिरेसी है; अज्ञानियों का एक शड्यंत्र है सामूहिक। क्योंकि अगर आपसे कोई पूछे कि ईश्वर है? तो आप ही मुश्किल में नहीं पड़ेंगे, उस आदमी से भी आप पूछ सकते हैं कि आपका क्या मानना है? वह भी कुछ मानता है। आत्मा है? वह कठिनाई खड़ी होगी। इसलिए हम अज्ञान एक-दूसरे का छेड़ते ही नहीं। अपने अज्ञान में हम ज्ञानी, आप अपने अज्ञान में ज्ञानी! हम एक-दूसरे का ज्ञान सम्हालते हैं। अशिष्टाचार है इस तरह की बातें उठाना। यह सुकरात अशिष्ट था। सुकरात को जहर देने के पहले मजिस्ट्रेट ने कहा
है कि अगर तुम यह सत्य बोलने का काम बंद कर दो, तो मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं। सुकरात ने कहा, लेकिन यह मेरा धंधा है। मैं सत्य बोलना बंद कैसे कर सकता हूं? क्योंकि मैं जो बोलता हूं, वह सत्य ही होता है। तुम तो यह कह रहे हो कि मैं बोलना ही बंद कर दूं। तो फिर जीकर भी, ऐसी परतंत्रता में जीकर भी क्या होगा?
सुकरात जवाब नहीं देता, सवाल पूछता है। यह एक तर्कनिष्ठ, सोफिस्ट सुकरात को मिलने आया है। तो वह तो तर्कवादी है। उसने अपने तर्क का एक सिद्धांत सुकरात को कहा। उसने सुकरात को कहा कि इस जगत में कोई भी चीज निरपेक्ष नहीं है, एब्सोल्यूट नहीं है। कोई भी चीज इस जगत में पूर्ण नहीं है। न कोई मनुष्य पूर्ण है, न कोई सत्य पूर्ण है, न कोई सिद्धांत पूर्ण है; इस जगत में कोई भी चीज पूर्ण नहीं है। सुकरात ने उससे पूछा कि तुम्हारा यह वक्तव्य पूर्ण सत्य है या नहीं? जोश में था तर्कशास्त्री, वह भूल ही गया कि फंसा जा रहा है। उसने कहा, यह पूर्ण सत्य है। सुकरात ने कहा, अब मुझे कहने को कुछ भी नहीं बचता है। बात समाप्त हो गई। अब तुम सोचना।
जब भी हम किसी चीज की पूर्णता का दावा करते हैं, तब हमें पता नहीं कि
यह जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है, दो और दो जैसा नहीं है कि चार हो जाए। कुछ छूट गया, वही हमारी मौत बनेगा। इस आदमी ने अगर ऐसा कहा होता कि जगत में कुछ सत्य पूर्ण हैं, कुछ सत्य पूर्ण नहीं हैं; इस आदमी ने ऐसा कहा होता कि शायद जगत में कोई सत्य पूर्ण नहीं है, तो सुकरात इसको दिक्कत में नहीं डाल सकता था। लेकिन इस आदमी ने कहा कि जगत में कोई सत्य पूर्ण नहीं है। इसने इसी वक्त कह दिया कि कम से कम मेरा सत्य पूर्ण है। यह इसमें अपूर्णता को कहीं गुंजाइश ही नहीं बची, कोई गुंजाइश नहीं बची। कम से कम एक बात पूर्ण है, यह तो इसने घोषणा कर ही दी। और वह एक बात भी अगर पूर्ण है, तो इसका वक्तव्य गलत हो गया।

जब भी हम घोषणाएं करते हैं रूढ़बद्ध और विपरीत को भूल जाते हैं, तो विपरीत बदला लेता है। इसलिए लाओत्से ऐसा नहीं कहता कि वह आदमी अज्ञानी है जो ज्ञान का दावा करता है, क्योंकि यह भी तो ज्ञान का दावा हो जाएगा--यह भी। इसलिए लाओत्से कहता है, क्या ऐसा नहीं हो सकता, क्या ऐसा संभव नहीं है कि जिसके सब द्वार ज्ञान के खुल गए हों, वह अज्ञानी जैसा व्यवहार कर सके? एक प्रश्न में रखता है इस बात को बहुत झिझक के साथ। यह लाओत्से की जो नमनीय प्रज्ञा है, वह जो कोमल प्रज्ञा है, वह जो तरल चेतना है, उसका लक्षण है।
ये तीन सूत्र--उद्देश्य-मुक्त जीवन, आमंत्रण से भरा हुआ भाव, ज्ञानरहित होने की तैयारी, साहस--जिस व्यक्ति में हों, उस व्यक्ति को वह जीवन का जो परम लक्ष्य है, परम जीवन जो है, वह अभी और यहीं उपलब्ध हो जाता है। उसके लिए फिर कल के लिए बाट नहीं जोहनी पड़ती। उसे फिर कल के लिए स्थगित भी नहीं करना पड़ता। फिर ऐसे व्यक्ति का मोक्ष मृत्यु के बाद नहीं, अभी और यहीं है। और ऐसे व्यक्ति का परमात्मा किसी दूसरे लोक में वास नहीं करता, अभी और यहीं, चारों तरफ से उसे घेरे हुए है। और ऐसे व्यक्ति को पाने के लिए कुछ भी शेष नहीं रह जाता, क्योंकि जीवन की सारी संपदा के द्वार अभी और यहीं खुल जाते हैं।
शेष हम कल बात करें।
पांच मिनट बैठेंगे, कीर्तन में सम्मिलित हों। जिन मित्रों को यहां नीचे खड़े होकर कीर्तन में सम्मिलित होना हो, वे भी आगे आ जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
छब्बीसवां प्रवचन

ताओ की अनुपस्थित उपस्थिति

Chapter 10 : Sutra 3

Embracing The One
(continued)

The Tao produces all things and nourishes them;
it produces them, and does not claim them
as its own.
It does all, and yet does not boast of it.
It presides over all, and yet does not control them.
This is what is called
The mysterious quality of the Tao.

अध्याय 10 : सूत्र 3

अद्वय की स्वीकृति
(क्रमशः)

ताओ सभी पदार्थों को जन्म देता है और भरण-पोषण करता है; वह उनका जन्मदाता है, फिर भी अपने मालिक होने का दावा नहीं करता।
वह सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का दंभ नहीं है; वह सभी वस्तुओं
का सर्वेसर्वा (अध्यक्ष) है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता।
इसे ही ताओ की रहस्यमयी विशेषता कहते हैं।

अस्तित्व में जो जितना ही सूक्ष्म है, उतना ही अदृश्य है; जितना स्थूल है, उतना दृश्य है। जो दिखाई पड़ता है, वह उथला है; जो नहीं दिखाई पड़ता, वही गहरा है। इसलिए जो लोग परमात्मा को देखने निकल पड़ते हैं, वे बुनियादी भूल में पड़ जाते हैं। ईश्वर-दर्शन शब्द ही असंगत है। जो दिखाई पड़ सकता है, वह ईश्वर नहीं होगा। जो दिखाई पड़ जाए, वह दिखाई पड़ जाने के कारण ही ईश्वर नहीं रह जाएगा।
आंख जिसे देख सकती है, वह पदार्थ है। हाथ जिसे छू सकते हैं, वह पदार्थ है। कान जिसे सुन सकते हैं, वह पदार्थ है। मन जिसे जान सकता है, वह पदार्थ है। असल में, जिसे भी हम जान लेते हैं, उसकी सीमा, आकार और रूप बंध जाता है। हमारे सारे जानने के पार भी जो सदा शेष रह जाता है; हम जिसे स्पर्श करना भी चाहें, तो भी नहीं कर पाते; हम जिसे देखना भी चाहें, तो भी देख नहीं पाते; और फिर भी हम नहीं कह सकते कि वह नहीं है, उसका नाम ही परमात्मा है।
तीन बातें हैं। एक, जो दिखाई पड़ता है, वह है। इंद्रियां जिसका अनुभव करती हैं, वह है। प्रत्यक्ष का यही अर्थ है कि जो आंखों के सामने है। उसे ही हम कहते हैं वह सत्य है, यथार्थ है। जिसे हम नहीं देख पाते, जिसे हम नहीं छू पाते, स्वभावतः हमारा मन कहता है वह नहीं है। क्योंकि होता, तो हम देख पाते, छू पाते, जान पाते! तो दूसरी कोटि है, जो नहीं है। उसे हम देख भी नहीं पाते, छू भी नहीं पाते, जान भी नहीं पाते।
अगर ये दो ही कोटियां हैं अस्तित्व की, तो परमात्मा की कोई भी जगह नहीं है, तो धर्म का कोई उपाय नहीं है, तो आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है, तो प्रेम की कोई भी संभावना नहीं है और सब प्रार्थनाएं झूठी हैं। लेकिन एक तीसरी कैटेगरी, एक तीसरी कोटि भी है। दो मैंने कहीं। एक, जिसे हम देख पाते, छू पाते, समझ पाते, वह है। जो नहीं है, उसे हम देख नहीं पाते, समझ नहीं पाते, छू नहीं पाते। इन दोनों से अलग एक कोटि और भी है, कि जो है, लेकिन जिसे हम छू

नहीं पाते, समझ नहीं पाते, स्पर्श नहीं कर पाते, और फिर भी उसे हम इनकार नहीं कर सकते। यह तीसरी कोटि ही ईश्वर है। लाओत्से इसी तीसरी कोटि को ताओ कहता है।
ताओ का अर्थ है धर्म, ताओ का अर्थ है नियम, ताओ का अर्थ है परम सत्ता का आधार, परम सत्ता, दि अल्टीमेट रियलिटी। यह तीसरा--जिसे ताओ कह रहा है लाओत्से--चाहे ईश्वर कहें, चाहे आत्मा कहें, चाहे सत्य कहें, नाम हमारे दिए हुए हैं, नाम से कोई अंतर नहीं पड़ता। बुद्ध ने इसे निर्वाण कहा है, शून्य कहा है। बुद्ध ने चूंकि इसे शून्य कहा, न समझने वाले लोगों ने समझा कि बुद्ध कह रहे हैं कि वह नहीं है। अगर बुद्ध को यही कहना होता कि वह नहीं है, तो शून्य भी कहने की जरूरत न थी। बुद्ध ने कहा, वह शून्य है। उसके होने को इनकार नहीं किया; नाम उसे शून्य का दिया। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि शून्य, दोनों ही बातें समाहित हैं शून्य में। शून्य है भी और नहीं भी है। वह कुछ ऐसा है जैसे कि न हो। उसकी मौजूदगी गैर-मौजूदगी जैसी है। उसके होने में भी वह प्रगाढ़ होकर प्रकट नहीं होता। उसका होना ठोस नहीं है। इसलिए जो बहुत ठोस ढंग से उसे पकड़ना चाहें, वे वंचित रह जाते हैं। और जो इस आशा में घूमते रहते हैं कि हम किसी तरह जैसे और वस्तुओं को जानते हैं, इसी ढंग से उसे भी जान लें, तो वे उसे कभी भी नहीं जान पाते हैं। उसे जानने का ढंग ही बदलना होगा।
इसे हम कुछ तरह से समझें। मैं कहता हूं कि मेरे हृदय में आपके लिए प्रेम है। लेकिन मेरे हृदय को काट कर मेरे प्रेम को किसी भी तरह समझा नहीं जा सकता। और जो मेरे हृदय को काट कर देखने चलेगा, वह इस नतीजे पर पहुंचेगा कि मैं झूठ बोल रहा था। क्योंकि प्रेम कहीं मिलेगा नहीं।
प्रेम कोई वस्तु नहीं है, जिसे हम खोज पाएं। प्रेम कोई पदार्थ नहीं है, जिसे प्रयोगशाला में पकड़ा जा सके और जिसे यंत्र परीक्षा कर लें। और अगर चिकित्सक सब तरह से जांच-पड़ताल करेगा, शरीर-शास्त्री सब तरह खोजेगा, तो और बहुत चीजें हाथ में लगेंगी, जिनका शायद प्रेमी को पता भी नहीं था-- हड्डियां लगेंगी, मांस-मज्जा लगेगी, मांस-पेशियां लगेंगी हाथ, फेफड़े लगेंगे, फुफ्फस लगेगा हाथ--सब कुछ लगेगा, प्रेमी को जिसका पता भी नहीं था। जब उसने हृदय पर हाथ रख कर कहा था कि मेरा हृदय प्रेम से भरा है, तो जिस चीज को वह कह रहा है, वही भर शरीर-शास्त्री के हाथ नहीं लगेगी; और बहुत कुछ लगेगा, जिसका उसे पता भी नहीं है। और शरीर-शास्त्री अपनी टेबल पर फैला कर रख देगा सब कुछ। लेकिन उसमें प्रेम कहीं भी नहीं होगा। निश्चित ही शरीर-शास्त्री कहेगा, प्रेम जैसी कोई भी बात नहीं है, यह आदमी या तो झूठ बोलता था या भ्रांति में था। दो ही उपाय हो सकते हैंः कि या तो यह जान कर झूठ बोल रहा था या अनजाने झूठ बोल रहा था, क्योंकि स्वयं भ्रांति में पड़ गया था। लेकिन एक आश्चर्य की बात है कि शरीर-शास्त्री से अगर हम यह पूछें कि
यह भी मान लिया जाए कि प्रेम नहीं था, भ्रांति थी, तो भ्रांति भी तो तुम्हारी पकड़ में कहीं नहीं आती! यह आदमी प्रेम में नहीं था, भ्रांति में था, तो भ्रांति भी तो तुम्हारी टेबल पर कहीं पकड़ में नहीं आती! यह आदमी भ्रांति में नहीं था, असत्य बोल रहा था, तो भी वह असत्य प्रेम जो यह बोल रहा था, जो असत्य इसके भीतर घटित हो रहा था, वह भी तुम्हारी टेबल पर कहीं पकड़ में नहीं आता! असल में, शरीर-शास्त्री को कहना चाहिए कि यह आदमी था ही नहीं जो बोल रहा था, क्योंकि वह आदमी ही कहीं पकड़ में नहीं आता है। और जो पकड़ में आता है, वहां बोलने वाला कोई भी नहीं है। लेकिन यह तो शरीर-शास्त्री भी नहीं कह पाएगा, क्योंकि वह भी बोल रहा है।
तो प्रेम को हमें कहना पड़ेगा कि प्रेम का अस्तित्व है, लेकिन वस्तुओं जैसा अस्तित्व नहीं है। कुछ भिन्न अस्तित्व है। ए डिफरेंट डायमेंशन ऑफ एक्झिस्टेंस! कोई दूसरा ही आयाम है प्रेम का। प्रेम होता है, लेकिन वस्तुओं जैसा नहीं है। इसलिए ध्यान रखें, प्रेम जितना अनुपस्थित होता है, उतना गहन होता है। और जितना उपस्थित हो जाता है, उतना क्षुद्र हो जाता है। जब कोई किसी से कहता है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तब वह प्रेम को क्षुद्र किए दे रहा है। क्योंकि इतना कह कर भी हम प्रेम को इंद्रियों की पकड़ में ला देते हैं। कम से कम कान तो सुन लेते हैं।

इसलिए बुद्ध जैसा व्यक्ति तो किसी से यह भी नहीं कहेगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। क्योंकि यह कहना भी प्रेम की हत्या है। अगर प्रेम है, तो उसको इतना भी उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। और अगर वह है, तो वह अनुभव में आएगा। और अगर वह गैर-उपस्थित हुए अनुभव में नहीं आ सकता, तो उसके अनुभव में आने का कोई प्रयोजन भी नहीं है।
लेकिन क्या कभी आपने ऐसा अनुभव किया है, कोई ऐसा प्रेम, जो कहा न गया हो, बोला न गया हो, प्रेमी ने आपका हाथ स्पर्श न किया हो, प्रेमी ने आपको गले से न लगाया हो, प्रेमी ने कोई उपाय ही न किया हो प्रेम के प्रकट करने का और अचानक आपने पाया हो कि किसी गंगा में आप नहा गए हैं! अचानक आपने अनुभव किया हो कि कोई फूलों की वर्षा आप पर हो गई है! अचानक आपने अनुभव किया हो कि कोई संगीत किसी अनजाने कोने से आपके भीतर बज उठा है! अंगुलियां नहीं हैं, लेकिन वीणा को किसी ने छेड़ दिया है! कोई पास नहीं आया, लेकिन कोई बिल्कुल अंतरतम में प्रवेश कर गया है! अगर ऐसा प्रेम आपने अनुभव किया हो एक क्षण को भी, तो लाओत्से जो कह रहा है, उसे समझने में आसानी हो जाएगी। क्योंकि परमात्मा का स्वभाव प्रेम जैसा है।
लेकिन अभागे हैं हम, क्योंकि हम प्रेम को ही नहीं जानते। और जो प्रेम
को नहीं जानता है, वह परमात्मा को कभी भी नहीं जान पाएगा। क्योंकि प्रेम उसकी ही हलकी किरण का अनुभव है। फिर परमात्मा उन्हीं किरणों का विराट जोड़ है, सूरज है।
लाओत्से का पहला सूत्र है, ताओ सभी को जन्म देता है और सभी का पोषण भी करता, वह सबका जन्मदाता, फिर भी उसकी मालकियत का कोई दावा नहीं करता है। वह कोई मालिक नहीं है।
मनुष्य की चेतना ने हजारों बार हाथ उठा कर आकाश की तरफ उसे धन्यवाद दिया है। मनुष्य की चेतना ने हजारों बार उसके चरणों में सिर रखा है। मनुष्य की चेतना में हजारों बार पुकार उठी है, अनुभव हुआ है, आस्था निर्मित हुई है। लेकिन परमात्मा की तरफ से कोई जवाब कभी नहीं दिया गया। मनुष्य कहता है, तुम हमारे पिता हो। लेकिन उसने कभी नहीं कहा कि तुम हमारे पुत्र हो। मनुष्य कहता है कि तुमने निर्माण किया, तुमने सृजन किया। उसने कभी घोषणा नहीं की कि मैं निर्माता हूं, मैं स्रष्टा हूं। अघोषित, मौन उसका अस्तित्व है।
असल में--इसे थोड़ा समझें--जो भी दावा करता है, वह दावा करके ही कह देता
है कि दावेदार नहीं है। अगर एक पिता को अपने बेटे से कहना पड़े कि मैं तुम्हारा पिता हूं, एक प्रेमी को अपनी प्रेयसी से कहना पड़े कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, एक गुरु को अपने शिष्य से कहना पड़े कि आदर करो मेरा, मैं तुम्हारा गुरु हूं, तो बात ही सब व्यर्थ हो गई। क्योंकि जिस दिन गुरु को कहना पड़े कि मैं तुम्हारा गुरु हूं, आदर करो, चरण छुओ मेरे, उसी दिन गुरुता खो गई। असल में, गुरुता जब खो जाती है या होती ही नहीं, तभी दावा होता है। इसलिए किसी गुरु ने कभी नहीं कहा है कि आदर करो। गुरु हम उसे कहते हैं, जिसे आदर किया ही जाता है। जिसे कहना पड़े कि मुझे आदर करो, वह भी भलीभांति जानता है कि गुरु नहीं है।
एक विश्वविद्यालय में मैं था। और वहां शिक्षकों के एक सम्मेलन में किसी ने मुझे पूछा कि गुरुओं का लोग आदर क्यों नहीं करते हैं? आज का विद्यार्थी गुरु का आदर क्यों नहीं करता है? तो मैंने कहा कि गुरु है कहां? क्योंकि गुरु का अर्थ ही होता है, जिसका लोग आदर करते हैं, जिसे आदर करना ही पड़ता है, जो मांगता नहीं और जिसे आदर मिलता है, जिसकी तरफ आदर ऐसे ही बहता है, जैसे पानी सागर की तरफ बहता है।
किसी दिन सागर अगर कहने लगे कि नदियां अब मेरी तरफ क्यों नहीं बहतीं,
तो हमें सागर को कहना होगा कि तुम भ्रांति में हो, तुम कोई ताल-तालाब होओगे, सागर नहीं हो। क्योंकि सागर का मतलब ही इतना होता है कि जिसकी तरफ नदियां बहती हैं, जिसकी तरफ नदियों को बहना ही पड़ता है, अन्यथा कोई गति नहीं है। नदी का अस्तित्व ही सागर की तरफ बहने से निर्मित होता है। नदी बनती ही इसलिए है कि वह सागर की तरफ बहती है। अगर वह सागर की तरफ नहीं बहे, तो वह बन ही नहीं सकती, हो ही नहीं सकती।

तो जिस दिन सागर को कहना पड़े कि नदियो, मेरी तरफ बहो, उस दिन समझना कि सागर नहीं है। सागर को यह कहने की जरूरत नहीं पड़ती है। उसका होना काफी है। गुरु की तरफ आदर बहता है। प्रेमी की तरफ प्रेम बहता है। लेकिन दावा करना पड़ता है, दावा करना ही इसलिए पड़ता है कि दावेदार मौजूद ही नहीं होते। यह उलटा लगेगा, पैराडाक्सिकल लगेगा, लेकिन ऐसा ही है।
तो जब भी आप दावा करें कि मैं प्रेम करता हूं, तब भीतर टटोलना। प्रेम
के धुएं की रेखा भी भीतर नहीं मिलेगी। क्योंकि प्रेम अपने आप में काफी दावा है। उसका होना ही उसकी दावेदारी है। और अतिरिक्त दावा सिर्फ नपुंसकता की घोषणा करता है कि भीतर जिसकी हम चेष्टा कर रहे हैं बताने की, वह नहीं है। परमात्मा दावा नहीं करता, क्योंकि वह दावेदार है।
पश्चिम में एक नास्तिक विचारक हुआ, दिदरो। उसने एक सभा में एक दिन अपनी घड़ी ऊंची उठा कर कहा कि अगर परमात्मा कहीं है, तो एक छोटा सा प्रमाण दे दे, तो मैं मान लूं। यह मेरी घड़ी चलती है, इसी वक्त बंद हो जाए। इतना भी परमात्मा कर दे! क्योंकि तुम कहते हो कि उसने जगत को बनाया, और तुम कहते हो वही निर्माता और वही विनाशक, वही बनाने वाला, वही मिटाने वाला। इतना छोटा सा काम कर दे, यह घड़ी आदमी की बनाई हुई है, इसे वह बंद कर दे इसी वक्त, तो मैं सदा के लिए उसके चरणों में गिर जाऊं।
जो आस्तिक थे उस सभा में, उन्होंने आकाश की तरफ प्रार्थना-भरी आंखों
से देखा कि बंद कर दे! इतना सा छोटा सा काम है, यह घड़ी बंद कर दे! तेरे हाथ में क्या नहीं! तेरी कृपा हो जाए, तो लंगड़े पहाड़ चढ़ जाते हैं, अंधे देखने लगते हैं, मुर्दे जीवित हो जाते हैं। तेरे हाथ में क्या नहीं है? इतनी सी बात कि यह छोटी सी घड़ी, इसे बंद कर दे!
लेकिन घड़ी बंद नहीं हुई। और दिदरो उन आस्तिकों से जीत गया। इसलिए नहीं कि दिदरो की नास्तिकता सही थी, इसलिए कि उन आस्तिकों की आस्तिकता ही सही नहीं थी। वे परमात्मा से यह कह रहे थे कि तू दिदरो के साथ प्रतिस्पर्धा में उतर जा। वे परमात्मा से यह कह रहे थे कि यह दावे का मौका है, क्यों छोड़ता है! दावेदार हो जा! इतनी सी छोटी सी बात, करके दिखा दे। लेकिन अगर दिदरो सच में बुद्धिमान होता या वे आस्तिक बुद्धिमान होते,
तो वे समझ पाते। मुझे तो लगता है कि अगर परमात्मा जोश में आ जाता उस दिन, तो सदा के लिए, सदा के लिए अप्रमाणित हो जाता। उस दिन अगर दिदरो की बातों में आ जाता और घड़ी बंद कर देता, तो परमात्मा एकदम क्षुद्र हो जाता। असल में, दावा क्षुद्रता से आता है। दिदरो को भी न सह सके परमात्मा, तो बहुत छोटा हो जाता है। इस चुनौती को भी न सह सके, तो बहुत छोटा हो जाता है। कहीं कुछ भी न हुआ, घड़ी चलती रही, और दिदरो जीत गया। और दिदरो जीवन भर यही सोचता रहा कि जो परमात्मा इतना सा प्रमाण नहीं दे सकता, उसका होना कैसे हो सकता है! क्योंकि हम मानते हैं कि प्रमाण ही होने का सबूत है।
लेकिन वस्तुतः जो चीज है, वह कभी प्रमाण नहीं देती। प्रमाण हम जुटाते
ही इसीलिए हैं कि संदेह होता है! अन्यथा हम प्रमाण नहीं जुटाते। इसलिए इस जगत में जो परम आस्तिक हुए हैं, उन्होंने ईश्वर के लिए प्रमाण नहीं दिए। और जिन्होंने दिए हैं, वे आस्तिक नहीं थे। जिन्होंने प्रमाण दिए हैं और जिन्होंने कहा है कि इसलिए परमात्मा है, इसलिए परमात्मा है, इसलिए परमात्मा है, जिन्होंने परमात्मा के होने को तर्क की निष्पत्ति, एक सिलोजिज्म बनाया और जिन्होंने कहा जैसे गणित सिद्ध होता है, ऐसे परमात्मा भी सिद्ध होता है, उनमें से कोई भी आस्तिक नहीं था। वे सभी नास्तिक थे, जो किसी तरह प्रमाण जुटा कर अपने को समझाने की कोशिश कर रहे थे कि परमात्मा है। लेकिन अगर उनके प्रमाण गलत हो जाएं, तो उनका परमात्मा भी गलत हो जाता है। जो परमात्मा प्रमाणों पर निर्भर है, ध्यान रहे, प्रमाण उस परमात्मा से बड़े हो जाते हैं।
तरतूलियन ने कहा है कि मैं भरोसा करता हूं तुम में, क्योंकि तुमने कभी प्रमाण नहीं दिए। यह आदमी आस्तिक रहा होगा। तरतूलियन ने कहा है कि मैं विश्वास करता हूं तुम में, क्योंकि तुम बिल्कुल असंभव मालूम पड़ते हो। सब तरह से सोचता हूं, पाता हूं कि तुम नहीं हो सकते, इसीलिए भरोसा करता हूं कि तुम हो। क्योंकि अगर मेरे प्रमाणों से तुम हो सको, तो मैं तुमसे बड़ा हो जाता हूं। अगर मेरे प्रमाण से परमात्मा सिद्ध हो जाए, तो मेरे ही प्रमाण

से असिद्ध भी हो जाएगा। अगर मेरी बुद्धि निर्णय कर सके कि परमात्मा है, तो फिर मेरी बुद्धि निर्णायक हो जाती है। वह यह भी निर्णय कर सकेगी कि परमात्मा नहीं है। मेरी बुद्धि बड़ी हो जाती है।
लाओत्से कहता है कि वह निर्माता, स्रष्टा, पोषक; लेकिन दावेदार नहीं है। उसने कभी घोषणा नहीं की कि मैं मालिक हूं।
असल में, वह इतना निश्चिंत रूप से मालिक है, इतना आश्वस्त रूप से मालिक है कि घोषणा की जरूरत नहीं पड़ी। आपको मालकियत की घोषणा करनी पड़ती है, क्योंकि आप आश्वस्त नहीं हैं। रोज-रोज घोषणा करते हैं, तो अपने लिए आश्वासन जुटा लेते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि जिस चीज के संबंध में आप आश्वस्त होते हैं, उस संबंध में आप घोषणा नहीं करते।
रामकृष्ण के पास विवेकानंद गए और विवेकानंद ने उनका हाथ पकड़ कर हिलाया और कहा कि मैं जानना चाहता हूं, ईश्वर है? विवेकानंद और लोगों से भी पूछ चुके थे यह। तर्क देने वाले, विचारशील लोग मिले थे, जिन्होंने तर्क दिए; जिन्होंने कहा, है! मैं सिद्ध करके बता सकता हूं। ज्ञानी मिले, जिन्होंने शास्त्र खोले और विवेकानंद को कहा कि देखो, यह लिखा है कि है। लेकिन विवेकानंद को आश्वासन नहीं मिला। क्योंकि जिसका परमात्मा शास्त्र में छिपा हो, उसे असली परमात्मा का कोई भी पता नहीं है। और जिसका परमात्मा तर्क में छिपा हो, उसका परमात्मा कभी भी खंडित किया जा सकता है। क्योंकि तर्क दुधारी तलवार है। जिसका सहारा तर्क पर हो, तर्क खींचते ही वह बेसहारा होकर जमीन पर गिर जाएगा।
विवेकानंद ने रामकृष्ण से भी पूछा है कि क्या ईश्वर है?
रामकृष्ण ने कहा, बेकार की बातें मत पूछो; यह पूछो कि तुम्हें देखना है, जानना है, उससे मिलना है।
यह पहला मौका था कि कोई आश्वस्त आदमी सामने था। उसने यह नहीं कहा कि है, मैं सिद्ध कर दूंगा। मैं तुम्हें बताऊंगा कि है, समझाऊंगा कि है। उसने कहा कि तुम्हें मिलना हो, तो बोलो, हां या न में जवाब दो।
विवेकानंद ने बाद में कहा है कि मैंने प्रश्न पूछ कर दूसरों को झिझक में डाल दिया था। रामकृष्ण ने मुझे ही झिझक में डाल दिया। क्योंकि मैंने अभी खुद भी तय नहीं किया था कि मैं उससे मिलने को राजी हूं या नहीं हूं! मैं तो एक कुतूहलवश पूछने चला आया था। पर विवेकानंद ने कहा कि एक बात तय हो गई कि यह आदमी तर्क से नहीं जानता है, किन्हीं प्रमाणों से नहीं जानता है, बस जानता है; निपट, शुद्ध जानता है। किसी कारण से नहीं, बस जानता है। और जानने में इतना आश्वस्त है कि दूसरे से भी कहता है कि तुम्हें जानना हो, तो बोलो। यह बात इतनी आसान मालूम पड़ रही है इस आदमी को जैसे कोई कहे कि क्या बात करते हो सूरज है या नहीं! मेरा हाथ पकड़ो और चलो, बाहर निकल आओ घर के और सूरज को देख लो। इसकी चर्चा करनी ही फिजूल है कि सूरज है या नहीं; आओ, बाहर आओ और देख लो। इतनी सरलता से जो कह रहा है। पर इस कहने में एक गहन आश्वासन है। जहां आश्वासन है, वहां दावा नहीं है। जहां आश्वासन नहीं है, वहां दावा है। और अगर परमात्मा भी आश्वस्त न हो, तो कौन आश्वस्त होगा? इसलिए परमात्मा ने अब तक कोई दावा नहीं किया।
लोग कहते हैं कि बाइबिल परमात्मा की किताब है, और कुरान परमात्मा की किताब है, और वेद परमात्मा की किताबें हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, परमात्मा की कोई भी किताब नहीं है। सब किताबें उन आदमियों की हैं, जिन्होंने परमात्मा की झलक पाई। क्योंकि परमात्मा कोई किताब प्रकट करे, तो अपने में बहुत हीन अनुभव करता होगा तभी। और परमात्मा घोषणा करे कि मैं हूं, तो उसे अपने होने पर शक हो तभी।
परमात्मा की कोई किताब नहीं है, क्योंकि परमात्मा का कोई वक्तव्य नहीं है। परमात्मा समझाना भी चाहे, तो किसे? कहना भी चाहे, मालिक भी बनना चाहे, तो किसका? मालिक वह है। यह मालकियत इतनी स्वाभाविक है और इस मालकियत का कोई प्रतियोगी, प्रतिस्पर्धी भी नहीं है कि यह घोषणा पागल परमात्मा ही कर सकता है कि मैं मालिक हूं। क्योंकि ध्यान रहे, मालिक की घोषणा भी तभी करनी होती है, जब प्रतिस्पर्धी का डर होता है।
एक पति अपनी पत्नी से कहता है कि मैं तेरा मालिक हूं। एक पत्नी अपने पति से कहती है कि मैं तेरी मालिक हूं। क्योंकि प्रतिस्पर्धी चारों ओर

हैं और मालकियत छीनी जा सकती है। मालिक कोई और भी हो सकता है। एक मकान का आप दावा करते हैं द्वार पर तख्ती लगा कर कि मकान मेरा है, क्योंकि इस मकान का दावा अगर आप चूक जाएं समय पर करने से, कोई और भी कर सकता है। लेकिन परमात्मा दावा भी किसके सामने करे?
इसलिए लाओत्से कहता है, वह अपने मालिक होने का दावा नहीं करता। ताओ या परमात्मा या धर्म दावेदार नहीं है, क्योंकि उसका दावा सुनिश्चित है, स्वाभाविक है। वह है ही।
"वह सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का कोई अहंकार नहीं है।"
जब भी हम कुछ करते हैं मजबूरी में, जबर्दस्ती में, चेष्टा से, तभी अहंकार निर्मित होता है। जब हम कुछ करते हैं सहज, स्वभाव से, तो अहंकार निर्मित नहीं होता। बहुत से काम हम भी करते हैं जिनसे अहंकार निर्मित नहीं होता। रात आप सोते हैं, दिन भर आप श्वास लेते हैं, लेकिन इससे अहंकार निर्मित नहीं होता। आप ऐसी घोषणा करके, छाती पीट कर बाजार में खड़े होकर नहीं कहते कि आज मैंने इतनी हजार श्वास लीं। थोड़ी-बहुत नहीं लेते, कई हजार श्वास लेते हैं। जीवन भर में अरबों श्वास लेते हैं। अगर हिसाब लगाएं, तो दावा कर सकते हैं कि मैंने अपने जीवन में इतनी श्वास लीं! बीस साल तो मैं सोया ही रहा साठ साल में! इतनी बार सुबह उठा, इतनी बार सांझ सोया!
नहीं, इनका हम दावा नहीं करते, क्योंकि ये स्वाभाविक क्रियाएं हैं। हालांकि आदमी दावा करता है। एक रुपया भी उसके खीसे में हो, तो दावा करता है। करोड़ हो, तो करता ही है; एक पैसा हो, तो भी करता है। हालांकि एक श्वास के लिए करोड़ों रुपए देने को तैयार हो सकता है, लेकिन श्वास का दावा नहीं करता। अगर मरते हुए आदमी से हम कहें कि एक श्वास और मिल सकती है, सारी संपत्ति दे दो, तो वह सारी संपत्ति दे देगा और एक श्वास ले लेगा। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है, उस क्षुद्र संपत्ति का उसने जीवन भर दावा किया और इस श्वास का कभी दावा न किया, और करोड़ों श्वास लीं।
श्वास स्वभाव थी, इसलिए दावा नहीं किया। धन स्वभाव नहीं था, चेष्टा करके पाया गया था, इसलिए दावा किया। जिसमें चेष्टा होती है, वहां अहंकार निर्मित होता है। जिसमें चेष्टा नहीं होती, वहां अहंकार निर्मित नहीं होता। यह परमात्मा संसार को बना रहा है, अगर इसमें चेष्टा हो वैसी ही, जैसे हम धन को बनाते हैं, तो अहंकार निर्मित होगा। लेकिन अगर यह निश्चेष्ट प्रक्रिया हो वैसे ही, जैसे हम श्वास लेते हैं, तो दावे का प्रश्न नहीं, अहंकार का प्रश्न नहीं। इसलिए जो जानते हैं, वे ऐसा कहना पसंद नहीं करते कि परमात्मा ने संसार को बनाया। वे ऐसा ही कहना पसंद करते हैं कि परमात्मा संसार बन गया है। इतना भी फासला नहीं है। वृक्ष उगते हैं, तो परमात्मा इन्हें बनाता, ऐसा नहीं; परमात्मा वृक्षों में निर्मित होता और बनता है। आकाश में बादल चलते हैं, तो परमात्मा इन्हें चलाता, ऐसा नहीं; परमात्मा ही इन बादलों में सरकता और चलता है। आदमी को परमात्मा बनाता है, ऐसा नहीं; परमात्मा ही आदमी बनता है।
इसे हम ऐसा समझें। एक चित्रकार एक चित्र बनाता है। तो बनाते ही चित्र अलग हो जाता है, चित्रकार अलग हो जाता है। परमात्मा ऐसा नहीं है कि अस्तित्व को बनाता है और अलग हो जाता है। क्योंकि उसके अलग होने का कोई उपाय नहीं, उससे अलग होने की कोई जगह नहीं। परमात्मा जगत के साथ इस तरह जुड़ा है, जैसे नर्तक अपने नृत्य से जुड़ा होता है। एक नृत्य करने वाला नाच रहा है। नाच और नर्तक अलग नहीं होते, एक ही हैं। नर्तक रुक जाएगा, तो नृत्य भी रुक जाएगा। आप नर्तक से यह नहीं कह सकते कि तू चला जा और तेरा नृत्य छोड़ जा।
इसलिए हमने परमात्मा की जो मूर्ति बनाई है, वह नर्तक की तरह बनाई है, नटराज की तरह बनाई है। उसका कारण है। क्योंकि नृत्य और नर्तक एक हैं। इसलिए नर्तक के रूप में परमात्मा की बात सर्वाधिक ठीक से समझी जा सकती है।
जगत और परमात्मा एक हैं। और जगत में जो भी घटित हो रहा है, वह परमात्मा का सहज स्वभाव है।
इसलिए लाओत्से कहता है कि ताओ सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का कोई दंभ नहीं है।

दंभ होता ही उन्हें है, जो जोर-जबर्दस्ती कुछ करते हैं। क्या हमें जीवन में ऐसे किसी कृत्य का पता है, जो हमने बिना दंभ के किया हो? अगर पता हो, तो वैसे कृत्य का नाम ही पुण्य है। यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम तो पुण्य भी करते हैं, तो दंभ निर्मित होता है। सच तो यह है कि अगर दंभ निर्मित न करवाया जा सके, तो कोई पुण्य करने को राजी ही नहीं होता है।
अगर मैं आपसे कहूं कि यह मंदिर बनाना है, इसके लिए धन दे दें, तो आप कहते हैं कि मेरी तख्ती कहां लगेगी? और अगर मैं कहूं कि तख्ती इस मंदिर में लगने वाली ही नहीं है, तो आप पक्का मान लें यह मंदिर बनने वाला नहीं है। क्योंकि लोग मंदिर नहीं बनाते, तख्तियां बनाते हैं। और मंदिरों पर तख्तियां लगाते हैं, ऐसा नहीं; तख्तियों पर मंदिर लगाते हैं। तख्तियां महत्वपूर्ण हैं, मंदिर गौण हैं। क्योंकि बिना मंदिर के तख्ती अच्छी नहीं लगेगी, इसलिए मंदिर के साथ लगाते हैं। लेकिन तख्ती ही आधार है। अगर आपसे कहा जाए कि आप यह जो धन दान कर रहे हैं, इससे आपको प्रशंसा नहीं मिलेगी, तो फिर दान असंभव है। इसलिए शास्त्र समझाते हैं कि जो दान करेगा, उसे कितनी प्रशंसा मिलेगी लोक में, परलोक में; कितना पुण्य मिलेगा, कितना फल मिलेगा, कितना सुख, कितना आनंद। यहां एक पैसा दान करो, तो शास्त्र कहते हैं, वहां परलोक में करोड़ गुना उपलब्ध होगा। एक पैसे का दान करवाना हो, तो करोड़ गुना दंभ का आश्वासन देना पड़ता है।
लेकिन पुण्य का अर्थ ही कुछ और है। पुण्य का अर्थ है ऐसा कृत्य जिससे दंभ निर्मित न हो। जिससे दंभ निर्मित हो, वही पाप है। इसलिए परमात्मा ने आज तक कोई पाप नहीं किया, हम कह सकते हैं, क्योंकि उसके कोई दंभ की खबर नहीं मिली। उसने अब तक यह भी नहीं कहा कि मैं हूं। इसलिए उसने जो भी किया है, वह पुण्य है। आप भी जो भी करते हैं, वह पुण्य हो जा सकता है, यदि उससे अहंकार निर्मित न होता हो, यदि पीछे ईगो और मैं सघन न होता हो। कृत्य हो जाता हो और मेरे मैं में कुछ जुड़ता न हो, तो कृत्य पुण्य हो जाता है। और मेरे मैं में कुछ जुड़ जाता हो, तो कृत्य पाप हो जाता है।
इसलिए सवाल यह नहीं है कि कौन सा कृत्य पुण्य है और कौन सा कृत्य पाप है। लोग पूछते हैं, कौन सा काम पुण्य है और कौन सा काम पाप है? गलत ही सवाल पूछते हैं। यह सवाल कृत्य का नहीं है, यह सवाल करने वाले का है। पूछना चाहिए कि किस भांति कृत्य तो हो जाए और करने वाला मजबूत न हो? तो पुण्य हो जाता है। और कृत्य न भी किया जाए और करने वाला मजबूत हो जाए, तो पाप हो जाता है। जरूरी नहीं है करना।
एक आदमी चोरी नहीं कर रहा है, लेकिन सिर्फ सोच रहा है। एक आदमी हत्या नहीं कर रहा है, सिर्फ सोच रहा है। एक आदमी चुनाव नहीं लड़ रहा है, सिर्फ सोच रहा है। और सोचने में ही अहंकार की सीढ़ियां चढ़ता जा रहा है। सब्स्टीट्यूट हैं, सभी लोग असली सीढ़ियां नहीं चढ़ पाते। असली सीढ़ियां चढ़ने का अपना कष्ट, अपनी पीड़ा, अपनी मुसीबत है। लेकिन सभी लोग सपने तो देख ही सकते हैं। सभी लोग सम्राट नहीं हो पाते, लेकिन सभी लोग सपनों में तो सम्राट हो ही सकते हैं। तो सपने से हम अपने मन को समझा-बुझा लेते हैं।
लेकिन सपने में भी कभी आपने ख्याल किया, आराम-कुर्सी पर बैठ कर अगर सोच रहे हों कि चुनाव जीत गए हैं--न लड़े हैं, न जीते हैं, सिर्फ सोच रहे हों कि जीत गए हैं--तो आपने कभी ख्याल किया कि भीतर अहंकार चार सीढ़ियां ऊपर चढ़ जाता है। उसे देर नहीं लगती। वह ठीक थर्मामीटर के पारे की तरह आपकी जांच-परख रखता है; कि जहां भी आपने कृत्य में मजा लिया, वहीं तत्काल पारा ऊपर चढ़ जाता है। नहीं किया हो कृत्य, तो भी। ठीक इससे उलटी घटना भी घटती है। किया हो कृत्य, तो भी अगर अस्मिता निर्मित न हो, अहंकार निर्मित न हो, तो पारा नीचे गिरता जाता है।
"ताओ सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का दंभ नहीं; सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता।"
यह सूत्र बहुत बारीक है।
"सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता।" लोग पूछते रहे हैं सदियों से कि यदि परमात्मा है और यदि उसके किए ही
सब कुछ होता है, तो एक चोर को चोरी क्यों करने देता है? और एक हत्यारे को

हत्या क्यों करने देता है? और एक बेईमान को बेईमानी क्यों करने देता है? और जब किसी निर्बल को कोई सताता है, तो वह खड़ा देखता क्यों रहता है?
यह सवाल संगत है और पूछने जैसा है। और विचारशील मनुष्यों ने पूछा है बार-बार। सच तो यह है कि विचारशील मनुष्यों को परमात्मा के होने पर जो सबसे बड़ा संदेह है, वह यही सवाल है।
बर्ट्रेंड रसेल पूछता है कि एक बच्चा पैदा होते से ही अंधा पैदा हो रहा है, लूला पैदा हो रहा है, लंगड़ा पैदा हो रहा है, कैंसर-सहित पैदा हो रहा है; अगर तुम्हारा परमात्मा है, तो यह कैसे हो रहा है? और तुम कहते हो सभी वही करता है, सर्वेसर्वा है। बर्ट्रेंड रसेल कहता है कि यह सब देख कर शक होता है कि कोई परमात्मा नहीं है। जो हो रहा है, यह देख कर शक होता है कि कोई परमात्मा नहीं है। जीवन जैसा नर्क बना हुआ है, यह देख कर शक होता है कि यहां कोई परमात्मा नहीं हो सकता। और अगर कोई परमात्मा है, तो उसको परमात्मा कहना व्यर्थ है; उसको शैतान कहना बेहतर होगा, क्योंकि जो हो रहा है उसे देख कर।
यह संगत प्रश्न है कि अगर परमात्मा सभी कुछ कर रहा है, तो इस जगत में बुराई क्यों है? ईविल क्यों है?
एक मुसलमान मित्र मुझे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि मुझे सबसे बड़ा सवाल यही है कि संसार में बुराई क्यों है? बुराई होनी ही नहीं चाहिए, अगर परमात्मा है।
तो वे ठीक कह रहे हैं। क्योंकि इन दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। इतनी बुराई का इस परमात्मा से कैसे संबंध जोड़ें? मैंने उनसे कहा, एक क्षण को दूसरी तस्वीर पैदा करिए। आप कब मानेंगे कि परमात्मा है? उन्होंने कहा, जब संसार में कोई बुराई न हो। मैंने उनसे कहा कि सारी बुराई संसार से हटा देते हैं; कैसा संसार होगा, आप थोड़ा सोच कर मुझे बताएं। क्योंकि जिस क्षण बुराई हटेगी, उसी क्षण भलाई भी हट जाएगी। भलाई अकेली नहीं जी सकती। भलाई जीती ही इसलिए है कि बुराई है। जिस दिन अंधेरा बिल्कुल हट जाएगा, तो प्रकाश नहीं जी सकता। प्रकाश जीता ही इसलिए है कि अंधेरा है।
ऐसा समझें कि जिस दिन हम सारी ठंडक हटा लें जगत से, तो क्या गरमी जी सकेगी? गरमी और ठंडक एक ही चीज की मात्राएं हैं। ऐसा समझ लें कि हम जीवन हटा लें जगत से, मृत्यु हटा लें जगत से, तो क्या दूसरा बच सकेगा? मृत्यु को हटाएंगे, तो जीवन खो जाएगा। जीवन को हटाएंगे, तो मृत्यु खो जाएगी। क्योंकि अगर जगत में जीवन न हो, तो मृत्यु कैसे होगी? या मृत्यु न हो जगत में, तो जीवन कैसे होगा?
जगत जीता है विपरीत, दि पोलर अपोजिट, वह जो ध्रुवीय विपरीत है, उसके सहारे जीता है। जगत के, अस्तित्व के होने का जो ढंग है, वह विपरीत के बीच संगीत है। अगर विपरीत को हटा लें, तो दोनों समाप्त हो जाते हैं। पुरुष को हटा लें जगत से, स्त्री खो जाएगी। स्त्री को हटा लें, पुरुष खो जाएगा। बुढ़ापे को हटा लें, जवानी खो जाएगी। हालांकि जवान का मन होता है कि कुछ ऐसा हो जाए कि बुढ़ापा न हो। उसे पता नहीं कि जवानी और बुढ़ापा इतने संयुक्त हैं कि एक हटा तो दूसरा खो जाएगा। हमारा मन होता है कि जगत में कोई चीज असुंदर न रह जाए। पर हमें पता नहीं कि असुंदर खोया कि सुंदर खो जाता है। ऐसे जगत की कल्पना करें, जहां असुंदर बिल्कुल न हो, तो ध्यान रखना, उससे ज्यादा असुंदर जगत नहीं होगा। क्योंकि वहां सुंदर कुछ नहीं होगा। दोनों खो जाएंगे।
तो मैंने उन मित्र से पूछा कि समझ लें बुराई की सख्त मनाही है, कोई बुराई कर ही नहीं सकता। उस दुनिया से भलाई तिरोहित हो जाएगी। और उस दुनिया की शक्ल एक बड़े कारागृह की शक्ल होगी। क्योंकि जहां बुराई करने की स्वतंत्रता न हो, वहां कोई भी स्वतंत्रता नहीं हो सकती।

असल में, स्वतंत्रता में बुराई करने की स्वतंत्रता भी छिपी है। अगर मैं किसी आदमी से कहूं कि तुम्हें सिर्फ अच्छे होने की स्वतंत्रता है, तो इस स्वतंत्रता का कोई अर्थ होगा? किसी आदमी से कहूं कि तुम्हें सिर्फ अच्छे होने की स्वतंत्रता है, तो स्वतंत्रता कहना फिजूल है; कहना चाहिए, तुम्हें अच्छे होने की परतंत्रता है। तब कहना चाहिए, यू आर कंडेम्ड टु बी

गुड; नॉट टु बी फ्री टु बी गुड। क्योंकि जब हम कहते हैं कि आप स्वतंत्र हैं अच्छा करने को, तो दूसरी स्वतंत्रता भी भीतर प्रवेश कर जाती है--बुरा करने की।
परमात्मा सर्वेसर्वा है, फिर भी नियंत्रण नहीं करता। इसका मतलब है कि परमात्मा निर्मित करता है, लेकिन स्वतंत्रता निर्मित करता है। परमात्मा बनाता है, लेकिन स्वतंत्रता बनाता है, परतंत्रता नहीं। इसलिए दुनिया में आदमी बुरे से बुरा होने को स्वतंत्र है--परमात्मा के होते हुए। क्योंकि इस बुरे होने की स्वतंत्रता में ही स्वतंत्रता छिपी है। और अगर स्वतंत्रता नहीं है, तो आदमी आदमी नहीं होगा, मशीन होगा। मशीन बुरा करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। हम उससे जो करवाना चाहें, करवा ले सकते हैं। इसीलिए वह मशीन है। आदमी, चैतन्य, चेतना स्वतंत्रता के बिना असंभव है।
लाओत्से कहता है कि बनाने वाला वही है, लेकिन नियंत्रण नहीं करता है।
ही इ.ज दि क्रिएटर, बट नॉट दि कंट्रोलर। स्रष्टा है, लेकिन जेलर नहीं है।
हमारा कारागृह बना कर द्वार पर संतरी की तरह खड़ा हुआ नहीं है।
बर्ट्रेंड रसेल जैसे लोग कहते हैं कि इसी से शक होता है कि परमात्मा नहीं है; और मैं आपसे कहता हूं कि इसी से प्रमाणित होता है कि परमात्मा है।
क्योंकि जिस जगत में स्वतंत्रता न हो, उस जगत में परमात्मा नहीं हो सकता।
स्वतंत्रता ही परमात्मा के होने का आधारभूत प्रमाण है। वह है, क्योंकि हम इतने स्वतंत्र हैं। वह है... ।
इसे हम ऐसा समझें कि सागर है और मछलियां सागर में घूमती हैं। उन्हें पता भी नहीं चलता कि सागर है। लेकिन उस सागर में होने के कारण ही वे हैं। और सागर में जो भी गति हो रही है, जो भी स्वतंत्रता है उन्हें घूमने की, वह भी सागर के कारण है। सागर सूख जाए, और मछलियां शून्य हो जाएंगी, मृत हो जाएंगी। उनकी सारी स्वतंत्रता खो जाएगी। सागर ही उनके लिए जगह है स्वतंत्रता की।
परमात्मा स्वतंत्रता है। इसलिए जिन्होंने गहनतम खोज की, महावीर या बुद्ध ने, तो उन्होंने परमात्मा को मोक्ष ही नाम दिया। महावीर ने तो परमात्मा नाम का उपयोग नहीं किया, ईश्वर नाम का उपयोग नहीं किया, क्योंकि वे कहते थे कि मोक्ष पर्याप्त है। मोक्ष का मतलब होता है, दि फ्रीडम। जगत परिपूर्ण स्वतंत्रता में जी रहा है। और अगर हम गलत कर रहे हैं, तो वह स्वतंत्रता का गलत उपयोग है। और हम चाहें, तो सही कर सकते हैं। लेकिन स्वतंत्रता हमारी नियति है। इसलिए हम पाप की आखिरी सीढ़ी तक उतर सकते हैं और पुण्य के आखिरी शिखर तक चढ़ सकते हैं। नर्क तक जा सकते हैं; स्वर्ग तक जा सकते हैं। अंधेरे के आखिरी गर्त में गिर सकते हैं और प्रकाश के पूर्ण उज्ज्वल लोक में प्रवेश कर सकते हैं। ये दोनों बातें संभव हैं, क्योंकि हमारी आत्मा का आत्यंतिक स्वभाव स्वतंत्रता है।
सार्त्र ने ठीक कहा है, यू कैन नॉट चूज टु बी फ्री, यू आर फ्रीडम! स्वतंत्र होना आप चुन नहीं सकते, आप स्वतंत्र हैं, आप स्वतंत्रता हैं। लेकिन स्वतंत्रता का मतलब ही यह होता है कि अगर मैं कारागृह पसंद करूं, तो चुन सकूं। अगर इतनी भी तय हो बात कि मुझे कह दिया जाए कि तुम सब कर सकते हो, सिर्फ जेलखाने में नहीं जा सकते हो, तो भी मैं परतंत्र हो गया। तब यह बड़ी दुनिया मेरे लिए एक परतंत्रता हो जाएगी। स्वतंत्रता का अर्थ ही होता है पूर्ण स्वतंत्रता, दोनों तरफ जाने की पूरी सुविधा।
तो परमात्मा नियंता नहीं है, निर्माता है। इससे हमें थोड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि हमारा मन यह करता है कि वह नियंता भी हो तो अच्छा। तो हमारे ऊपर जो जिम्मेवारी है, जो उत्तरदायित्व है, जो रिस्पांसबिलिटी है, वह भी न हो। हम सब मशीन होना चाहते हैं। हम सब गुलामी खोजते हैं, क्योंकि स्वतंत्रता का उपयोग करना नहीं जानते। और हमें स्वतंत्रता मिले, तो हम अपना आत्मघात ही कर लेते हैं। हमें स्वतंत्रता जब भी मिलती है, तो हम नर्क की यात्रा कर जाते हैं। तो हम कहते हैं, इससे तो बेहतर था हाथ में जंजीरें होतीं, लेकिन स्वर्ग पहुंच जाते; बेहतर होता कि सब तरफ कारागृह होता, लेकिन स्वर्ग पहुंच जाते। क्योंकि हम स्वतंत्रता में सदा नीचे ही चले जाते हैं। इसलिए हम हमेशा गुलामी खोजते हैं, नए-नए ढंग से खोजते हैं। हमारे गुलामी खोजने के ढंग बहुत अदभुत हैं।

एरिक फ्राम ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी हैः एस्केप फ्राम फ्रीडम; स्वतंत्रता से पलायन। फ्राम का कहना है, हर आदमी स्वतंत्रता से पलायन कर रहा है। जहां भी स्वतंत्रता दिखती है, भाग कर जल्दी किसी गुलामी में अपने को छिपा लेता है।
दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि हमारी गुलामी की आदतें इतनी पुरानी हैं कि हमें ख्याल भी नहीं आता कि यह गुलामी है। हमें ख्याल भी नहीं आता कि यह गुलामी है। अगर किसी को सत्य खोजना है, तो वह सत्य खोजने नहीं जाता, तत्काल शास्त्र को खोलता है। उसे पता नहीं कि यह गुलामी है। वह सत्य भी उधार ही चाहता है, कोई उसे दे दे। अगर किसी को सत्य खोजना है, तो वह अपने पैरों पर दो कदम नहीं चलता। वह जल्दी किसी गुरु के चरण पकड़ लेता है और कहता है कि बस, आप ही सब कुछ हो, आप ही मुझे दे दो। मुझ पापी से क्या होगा? हालांकि सब पाप उससे हो रहे हैं। क्योंकि पापी होने के लिए काफी करने की जरूरत पड़ती है। वह कहता है, मुझ पापी से क्या होगा? इतने पाप उससे हो सके हैं कि वह कहता है मैं पापी हूं। लेकिन वह कहता है, मुझ पापी से क्या होगा? वह असल में यह कह रहा है कि किसी तरह मेरी स्वतंत्रता से मुझे बचाओ, सेव मी फ्राम माई फ्रीडम। तुम मेरे जेलर बन जाओ। तो कल अगर मैं नर्क में भी पडूं, तो मैं कह सकूं कि तुम थे मेरे गुरु। और कल मुझे अगर स्वर्ग भी मिल जाए, तो मैं कह सकूं, आखिर मैंने ही तो तुम्हें गुरु चुना था। मैंने ही समर्पण किया था तुम्हारे चरणों में, सब कुछ छोड़ दिया था। तो गुरु पकड़ेगा, शास्त्र पकड़ेगा, नेता को पकड़ेगा।
हिटलर या स्टैलिन या मुसोलिनी या माओ ऐसे ही पैदा नहीं हो जाते, पूरा मुल्क गुलाम होना चाहता है। पूरा मुल्क चाहता है कि कोई जोर से कह दे कि मुझे पता है ठीक क्या है, और हम उसके चरणों में पड़ जाएं। यह झंझट हम पर मत डालो कि ठीक क्या है। साफ-साफ हमें बता दो कि यह करो और यह मत करो।
इसलिए हम नीतिशास्त्रियों के पीछे पड़ते हैं, साधु-महात्माओं के हाथ-पैर जोड़ते हैं कि बताओ ठीक क्या है, गलत क्या है। जिनसे हम पूछ रहे हैं, उन्होंने किसी और से पूछा है। उन्हें भी कुछ पता नहीं है कि ठीक क्या है, गलत क्या है। लेकिन जब हमें पूछते लोग देखते हैं, तो बताने वाले लोग भी मिल जाते हैं। वे हमें बता देंगे कि यह ठीक है और यह गलत है। कोई हमसे बोझ ले ले; स्वतंत्रता बड़ी बोझिल मालूम पड़ती है। होना तो चाहिए उलटा कि स्वतंत्रता पंख बन जाए आकाश में उड़ने के लिए, लेकिन स्वतंत्रता मालूम पड़ती है जंजीरों से भी ज्यादा बोझिल। क्योंकि कुछ सूझता नहीं, क्या करें? झेन फकीर हुआ है नान-इन। वह अपने गुरु के पास था। एक दिन रात देर हो गई। अंधेरी रात है, वह वापस लौटने को है। उसने गुरु से कहा कि रास्ता बहुत अंधेरा है। तो गुरु ने कहा कि मैं तुम्हें दीया दिए देता हूं। और गुरु ने दीया जलाया और नान-इन के हाथ में दीया रखा। और जैसे ही नान-इन पहली सीढ़ी पर पैर रख कर नीचे उतरने लगा, गुरु ने दीया फूंक कर बुझा दिया। नान-इन ने कहा, ऐसी कैसी मजाक करते हैं, रास्ता बहुत अंधेरा है। गुरु ने कहा, लेकिन दूसरे के दीए के सहारे जो प्रकाश मिलता है, उससे अपना ही अंधेरा बेहतर है। खोजो रास्ता अंधेरे में। अंधेरे में रास्ता खोजने से तुम्हारे भीतर का दीया जलेगा। रास्ता खोजोगे, खोजने से निखार आता है। टकराओगे, गिरोगे, हाथ-पैर टूटेंगे, कोई फिक्र नहीं; लेकिन आत्मा निर्मित होगी। मेरे दीए के सहारे हाथ-पैर तो बच जाएंगे, लेकिन आत्मा खो जाएगी। इसलिए बुझा देता हूं। नान-इन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं उस आदमी को अब तक नहीं भूल पाया। यद्यपि उसने मेरे हाथ का दीया छीन लिया था और जला हुआ दीया बुझा दिया था; लेकिन वह वही आदमी था जिसने मुझे अंधेरे में धक्का दिया और मेरे भीतर के दीए को जलने की सुविधा बनाई। तो आज जब मेरे भीतर का दीया जल रहा है, तो मैं उसे ही धन्यवाद देता हूं।
स्वतंत्रता! परमात्मा भी आपके हाथ में दीया दे सकता है। और तब आप दीए
के सहारे कीड़े-मकोड़ों की तरह जी सकते हैं। कभी न गिरेंगे, कभी न भटकेंगे, नर्क कभी न आएगा, सीधे स्वर्ग में पहुंच जाएंगे। लेकिन जो स्वर्ग दूसरे के सहारे मिलता है, वह नर्क से भी बदतर है। क्योंकि वह स्वर्ग भी परतंत्रता होगी। जो शुभ अपना ही नहीं है, स्वयं का खोजा और जीया हुआ नहीं है, उस शुभ का होना अशुभ से भी अशुभ है।

इसलिए लाओत्से कहता है कि ताओ निर्मित करता है सब, लेकिन नियंत्रण नहीं करता। इशारा नहीं करता कि ऐसे चलो। चलने की शक्ति देता है, चलने के आयाम देता है, लेकिन कहता नहीं कि ऐसे चलो। चलने की शक्ति उसकी, चलने का आकाश उसका, चलने के मार्ग उसके, अंधेरा उसका, प्रकाश उसका, चलने वाला उसका, लेकिन फिर भी इशारा नहीं करता कि बाएं चलो कि दाएं चलो। जीवन देता है, लेकिन मुक्ति जीवन का आधार बना देता है। चाहें तो यही हमारे जीवन का कष्ट हो जाएगा और चाहें तो यही हमारे जीवन का सौभाग्य हो सकता है। इस स्वतंत्रता से हम चाहें तो बड़ा सृजन हो जाए; और हमारे भीतर छिपा जो परम है, वह प्रकट हो जाए। और चाहें तो इस स्वतंत्रता को हम अपना ही अंधेरा बना लें, अपना ही नर्क; और इसमें खो जाएं और विनष्ट हो जाएं।
लेकिन एक बात तय है कि जगत में परम स्वतंत्रता है। और यह परम स्वतंत्रता परमात्मा के अस्तित्व की अघोषित घोषणा है। यह मौन वक्तव्य है उसका कि मैं हूं। लेकिन हम सबको यह स्वतंत्रता का ख्याल ही नहीं है। हम डरते हैं, जैसा मैंने कहा, क्योंकि स्वतंत्रता का अर्थ होता है दायित्व, स्वतंत्रता का अर्थ होता है रिस्पांसबिलिटी। स्वतंत्रता का अर्थ होता है कि सभी कृत्यों के लिए अंततः मैं ही जिम्मेवार हो गया। नर्क जाऊंगा, तो किसी को दोष न दे सकूंगा। मैं ही जिम्मेवार हूं। इस जिम्मेवारी से घबड़ाहट होती है। हम सब जिम्मेवारी टालते हैं एक-दूसरे पर। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक-दूसरे की जिम्मेवारी हम एक-दूसरे पर रख देते हैं। पत्नी पति पर रख देती है, पति पत्नी पर रख देता है। दोनों निश्चिंत हो जाते हैं कि कोई और जिम्मेवार है। उन्हें पता नहीं कि वे कैसा खेल खेल रहे हैं।
एरिक बर्न ने एक किताब लिखी हैः गेम्स दैट पीपुल प्ले। उसमें सारे खेलों की चर्चा है, जो आदमी खेल रहा है। यह भी एक खेल है कि हम एक-दूसरे पर जिम्मेवारी टाल देते हैं। और जिस पर हम जिम्मेवारी रख रहे हैं, वह भी हम पर जिम्मेवारी रख देता है।
अब मजे की बात यह है कि जो अपनी जिम्मेवारी भी नहीं ढो सका, वह दूसरे
की कैसे ढो पाएगा? लेकिन उसे पता ही नहीं है कि आपने जिम्मेवारी उस पर रखी है; आपको पता नहीं है कि उसने आप पर रखी है। इसलिए दोनों जीवन भर एक-दूसरे को दोष देते रहेंगे, बिना यह जाने हुए कि आप दोनों एक से भिखारी हैं और एक-दूसरे के सामने भिक्षा-पात्र फैलाए खड़े हैं। दोनों एक-दूसरे से मांग रहे हैं; देने वाला उनमें कोई भी नहीं है।
स्वतंत्रता से भय होता है। इसलिए हम किसी तरह की गुलामी चाहते हैं। हमारा जो तथाकथित परमात्मा है--लाओत्से का नहीं--हमारा जो तथाकथित परमात्मा है, वह भी गुलामी है। वह भी हमारी गुलामी है। वह भी हम उस पर ही छोड़ देते हैं रात कि अब तू ही सम्हाल। उस पर हम छोड़ना चाहते हैं कि तू ही सम्हाल।
इसलिए बड़े मजे की बात है, जब आदमी सुख में होता है, तो परमात्मा का स्मरण नहीं करता; जब दुख में होता है, तभी करता है। क्योंकि दुख में ही जिम्मेवारी दूसरे पर टालने का सवाल उठता है, सुख में तो हम खुद ही ले सकते हैं। जब सुख आता है, तो हम खुद ही जिम्मेवार होते हैं; हमारे कारण ही आता है। और जब दुख आता है, तब दूसरे के कारण आता है। तब हम परमात्मा की तरफ अंगुली उठाना चाहते हैं कि तेरे रहते और हम ऐसा दुख पा रहे हैं! तेरा रहना ही फिजूल है! तेरा होना बेकार है! तू अगर है, तो सबूत दे कि हमारे दुख को मिटा दे।
एक आदमी मेरे पास आया था, वह कह रहा था कि मुझे परमात्मा पर पक्का भरोसा आ गया; क्योंकि मैंने कहा कि पंद्रह दिन के भीतर अगर मेरे लड़के की नौकरी नहीं लगती है, तो फिर कभी तुझ पर भरोसा नहीं कर सकूंगा; और नौकरी लग गई। मैंने कहा, परमात्मा ने तुमसे बड़ा कच्चा सौदा किया है, किसी भी दिन टूटेगा। मैंने कहा, अब दुबारा ऐसी शर्त कभी मत रखना, नहीं तो बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। उसने कहा, क्या कहते हैं आप! अब तो मुझे पक्का भरोसा आ गया कि परमात्मा है। मैंने कहा, यही भरोसा तुझे दिक्कत में और तेरे परमात्मा को भी दिक्कत में डालेगा। क्योंकि यह सिर्फ संयोग की बात है कि तेरे लड़के की नौकरी लग गई। इस अहंकार में मत पड़ कि तेरे लड़के की नौकरी लगाने के लिए परमात्मा को उत्सुकता लेनी पड़ेगी। इस अहंकार में मत पड़। नहीं तो तू

ज्यादा महत्वपूर्ण, तेरा लड़का ज्यादा महत्वपूर्ण, तेरे लड़के की नौकरी ज्यादा महत्वपूर्ण। परमात्मा तो एक सेवक की हैसियत का हो जाता है। और अब दुबारा ऐसी सेवा मत लेना, क्योंकि संयोग सदा नहीं लगेगा।
दो महीने बाद वह आदमी आया और कहने लगा, आपने कैसा वचन बोल दिया, सब गड़बड़ हो गया है। मैंने कहा, मैंने कोई वचन नहीं बोला। उसने कहा कि क्या! कैसी आपने बात कह दी! उस दिन से तीन-चार दफे कोशिश कर चुका, हर बार असफलता हाथ लग रही है। परमात्मा ने मुझसे पीठ मोड़ ली है।

न परमात्मा पीठ मोड़ रहा है, न आपकी तरफ चेहरा किए हुए खड़ा है। न उसकी कोई पीठ है, न उसका कोई चेहरा है। न आपकी आवाज, न आपके निवेदन, न आपकी प्रार्थनाएं, न आपके आग्रहों का कोई अर्थ है। आपका मूल्य है। लेकिन आपका मूल्य उसी अर्थ में है, जिस अर्थ में आप अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कर पाते हैं सृजनात्मक। हाऊ टु यूज दि फ्रीडम क्रिएटिवली, बस वही आपका मूल्य है। साधना का यही अर्थ होता हैः स्वतंत्रता का सृजनात्मक उपयोग। साधना का यही अर्थ होता हैः स्वतंत्रता का सृजनात्मक उपयोग। संसारी आदमी का अर्थ होता हैः स्वतंत्रता का विध्वंसात्मक उपयोग। अपनी ही हत्या किए चला जाता है। अपनी ही स्वतंत्रता को अपने ही प्राणों के लिए बाधा बनाए चला जाता है। आखिर में खुद की स्वतंत्रता खुद की सूली बन जाती है।
तो दुख में हम याद करते हैं, क्योंकि दुख में हम जिम्मेवारी डालना चाहते हैं। सुख में हम बिल्कुल याद नहीं करते। इसलिए रसेल ने लिखा है कि मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूंगा कि परमात्मा सच में है या नहीं और उस दिन की प्रतीक्षा करूंगा कि दुनिया में कोई आस्तिक है या नहीं, जिस दिन दुनिया में कोई दुख न होगा, उस दिन पता चलेगा।
रसेल ठीक कह रहा है। जहां तक हमारी आस्तिकता का संबंध है, हमारी आस्तिकता वर्षा में कच्चे रंगों की तरह बह जाएगी। अगर दुनिया में कोई दुख न हो--थोड़ा सोचें एक क्षण को--दुनिया में कोई दुख न हो, क्या कोई भी आदमी परमात्मा को याद करेगा? क्या मंदिर की घंटियां बजेंगी और चर्च के दीए जलेंगे? क्या नमाज या अजान सुबह उठती हुई मस्जिद से सुनाई पड़ेगी?
दुख! ये सब मंदिर और मस्जिद, अजान और प्रार्थना और पूजा, ये सब यज्ञ-हवन, यह सब हमारा दुख बोल रहा है। और मजा यह है कि न मस्जिद मिटा सकती है दुख को, न मंदिर, न पूजा, न पाठ। दुख बनाते हम हैं, मिटा हम सकते हैं। दुख हमारी स्वतंत्रता का दुरुपयोग है।
लेकिन स्वतंत्रता से ही हम बचना चाहते हैं। सच में कभी सोचें इसको एक क्षण को, कोई दुख न हो, तो परमात्मा का ख्याल भी कहां उठेगा? क्यों उठेगा? परमात्मा तो ठीक वैसे ही है, जैसे बीमारी में दवाई का ख्याल उठता है। जब बीमारी ही नहीं है, तो कोई पागल है जिसको दवाई का ख्याल उठे? परमात्मा एक दवाई है, एक मेडिसिनल उपयोग है उसका, औषधि की भांति। दुख होता है, परमात्मा की औषधि ले लेते हैं। दुख नहीं होता, औषधि की बोतल को कचरे में फेंक देते हैं। दुख में हम अपना दायित्व किसी के कंधे पर रखना चाहते हैं, सिर्फ इसलिए।
लेकिन परमात्मा के कंधे पर कोई दायित्व नहीं रखा जा सकता, क्योंकि परमात्मा आपको परतंत्र नहीं बनाता है। आप स्वतंत्र हैं। और परमात्मा से ज्यादा स्वतंत्रता का प्रेमी होना बहुत मुश्किल है। स्वतंत्रता इतनी गहन है, इसीलिए इतनी असमानता है।
समाजवादी, साम्यवादी भी परमात्मा के संबंध में जो आलोचना करता है, वह यही करता है कि यदि परमात्मा है तो इतनी असमानता क्यों है? व्हाई दिस इनइक्वालिटी? और उसका तर्क, जिन्होंने कभी सोचने-समझने में मेहनत नहीं की, उन्हें ठीक भी लगता है कि अगर परमात्मा है, तो इतना वैषम्य क्यों है? लोग समान होने चाहिए!
लेकिन ध्यान रहे, स्वतंत्रता और समानता विपरीत स्थितियां हैं। अगर समानता चाहते हैं, तो स्वतंत्रता नहीं रह सकती; अगर स्वतंत्रता चाहते हैं, तो समानता नहीं रह सकती। सभी को समान बनाया जा सकता है, लेकिन तब परतंत्र बनाना पड़ेगा। जेलखाने के अतिरिक्त कहीं भी समानता नहीं हो सकती। और जेलखाने में भी अगर थोड़ी-बहुत सुविधा होगी, तो असमानता पैदा हो जाएगी।

सख्त! इतनी सख्ती होनी चाहिए कि असमान होने का जरा भी मौका न मिले किसी को, तो ही समानता हो सकती है। पूर्ण समानता पूर्ण परतंत्रता में ही संभव है। इसलिए अगर कम्युनिज्म कभी दुनिया में पूरी तरह सफल हो जाए, तो पूरी दुनिया एक बड़ा कारागृह हो जाएगी। और अगर पूरी तरह सफल न हो, तो कम्युनिज्म कभी हो नहीं सकता। कारागृह न हो, तो साम्यवाद नहीं हो सकता।
स्वतंत्रता का अर्थ ही है यह कि जो जैसा होना चाहे, होने के लिए स्वतंत्र है। फिर असमानता हो ही जाएगी। फिर असमानता अनिवार्य है। और अगर समानता रखनी हो, तो फिर ठोंक-पीट कर एक-एक आदमी को वहीं रखना पड़ेगा, जहां वह समान रहे।
एक और मजे की बात है। जितनी ज्यादा समानता होगी, उतना चेतना का तल नीचा हो जाएगा। जितनी ज्यादा समानता होगी, उतना चेतना का तल नीचा हो जाएगा।
इसमें खूबियां हैं। समझें एक तीस बच्चों का क्लास है। उसमें जो तीसवें नंबर का बच्चा है, उसको जबर्दस्ती पहले नंबर का नहीं बनाया जा सकता, लेकिन पहले नंबर वाले को जबर्दस्ती तीसवें नंबर का बनाया जा सकता है। तीसवें नंबर के लड़के को जबर्दस्ती पहले नंबर का नहीं बनाया जा सकता, लेकिन पहले नंबर के बच्चे को पहले नंबर तक पहुंचने से रोका जा सकता है और तीसवें की कतार में खड़ा रखा जा सकता है।
अगर वस्तुतः समानता चाहिए, तो निम्नतम तल पर होगी। क्योंकि निम्नतम
को आप खींच कर श्रेष्ठ नहीं बना सकते, लेकिन श्रेष्ठ को आप रोक कर निम्न रख सकते हैं। यह आसान नहीं है कि अस्पताल में जो बीमार पड़े हैं, उन सबको स्वस्थ की, श्रेष्ठतम स्वस्थ की कतार में लाया जा सके। लेकिन यह बिल्कुल आसान है कि जो स्वस्थ हैं, उनको अस्पताल की खाटों पर लिटाया जा सके। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। पीछे खींचना सदा आसान है, आगे ले जाना सदा कठिन है। इसलिए जितनी बड़ी समानता होगी, उतना नीचे का तल होगा; जितनी बड़ी स्वतंत्रता होगी, उतनी चेतनाएं आकाश को छू सकेंगी। लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ ही यह होता है कि जो छूना चाहेगा, वह छुएगा; जो नहीं छूना चाहेगा, वह नहीं छुएगा। जो नहीं उठना चाहेगा, वह बैठा रहेगा अपनी जगह पर। जो चलना चाहेगा, वह दूर की यात्रा पर भी पहुंच जा सकता है।
तो जो लोग कहते हैं कि समानता क्यों नहीं है जगत में, अगर परमात्मा है? क्योंकि मार्क्स ने परमात्मा को इनकार इसीलिए किया कि जगत में इतनी असमानता क्यों है? परमात्मा नहीं हो सकता! और मैं कहता हूं कि परमात्मा के होने का यह भी एक सबूत है कि इतनी असमानता है, क्योंकि इतनी स्वतंत्रता है।
अक्सर लोग स्वतंत्रता-समानता का नारा एक साथ लगाते हैं। बल्कि एक तीसरा नारा और लगाते हैं, जो और भी हैरानी का है। फ्रेंच-क्रांति में जो नारा था, वह थाः जस्टिस, फ्रीडम, इक्वालिटी। यह बिल्कुल पागलपन का नारा है। न्याय, स्वतंत्रता, समानता। पर ख्याल में नहीं आता, क्योंकि हम शब्दों के मोहजाल में पड़ जाते हैं, कभी उनके भीतर नहीं उतर कर देखते। अगर समानता होगी, तो स्वतंत्रता नहीं बचेगी। अगर स्वतंत्रता होगी, तो समानता नहीं बचेगी। और अगर न्याय चाहिए, तो दो में से एक को चुनना पड़ेगा। अगर न्याय चाहिए, तो दोनों को नहीं चुना जा सकता। और जो स्वतंत्रता को चुनेगा, तो न्याय दूसरे ढंग का होगा। और जो समानता को चुनेगा, तो न्याय दूसरे ढंग का होगा। अगर समानता को चुनते हैं, तो असमान होने की कोशिश ही अन्याय होगी। और अगर स्वतंत्रता को चुनते हैं, तो असमान होने की सुविधा ही न्याय होगी। अगर समानता को चुनते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति को बांध कर रखना ही न्याय होगा। अगर स्वतंत्रता को चुनते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति को असमान हो जाने की सुविधा, व्यवस्था, मार्ग देना ही न्याय होगा। कोई किसी के असमान होने में बाधा पड़े, तो अन्याय है। ये तीनों बड़ी उलटी बातें हैं। और स्वतंत्रता और समानता तो भारी सवाल है।
इसलिए मार्क्स ने ईश्वर को इनकार कर दिया। उसे ईश्वर से ऐसे कोई ज्यादा प्रयोजन नहीं था। क्योंकि ईश्वर से कोई लेना-देना नहीं था। लेकिन एक बात उसे समझ में आई और वह यह कि अगर ईश्वर है, तो स्वतंत्रता नष्ट नहीं की जा सकती। अगर ईश्वर है, तो यह जो असमानता है, यह जारी रहेगी। तो अगर हमें

असमानता नष्ट करनी हो, स्वतंत्रता नष्ट करनी हो, तो स्वतंत्रता का जो केंद्रीय सिद्धांत है ईश्वर, उसे हमें विदा कर देना चाहिए।
इसलिए कम्युनिज्म अकारण अनीश्वरवादी नहीं है। उसका कारण है, और गहरा कारण है। इसलिए कोई आदमी कम्युनिस्ट और आस्तिक साथ-साथ हो, तो असंभव है। यह नहीं हो सकता। कम्युनिस्ट और आस्तिक साथ-साथ हो, तो असंभव है। यह नहीं हो सकता। नास्तिक होना अनिवार्य है। क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही यह होता है कि नियंत्रण नहीं। यह जो लाओत्से कह रहा है, यह तो मार्क्स से ढाई हजार साल पहले कहा है। नियंत्रण नहीं, तो ही स्वतंत्रता हो सकती है। और स्वतंत्रता हो, तो ही विकास की संभावना है।
लेकिन तब दायित्व हमारे ऊपर है। और दायित्व से अगर हम बचना चाहते हैं,
तो हम कोई न कोई गुलामी तत्काल चुन लेंगे। अगर परमात्मा न मिले हमें गुलाम बनाने को, गुरु न मिलें, तो हम राज्य को, स्टेट को मालिक बना लेंगे। अंतर नहीं पड़ेगा। कोई चाहिए जो हमारे गले में लगाम डाल दे और हमें जानवरों की तरह चलाए। हम खुद नहीं चल सकते; कोई हमें घसीटे, कोई हमें धक्का दे। तब हम ज्यादा आश्वस्त होते हैं। तब हमें लगता है कि अब ठीक जा रहे हैं। अब भूल का कोई कारण नहीं है।
लेकिन ध्यान रहे, यही बड़ी से बड़ी भूल है। दूसरी और कोई भूल हो नहीं सकती। बड़ी से बड़ी भूल एक है; और वह अपनी स्वतंत्रता को खोकर हम कुछ भी करें, तो भूल हो जाएगी, पाप हो जाएगा, अपराध हो जाएगा।
लाओत्से कहता है, "इसे ही ताओ की रहस्यमयी विशेषता कहते हैं। दिस इ.ज
दि मोस्ट मिस्टीरियस क्वालिटी ऑफ दि ताओ।"
यही उसकी सबसे रहस्यपूर्ण विशेषता है। है भी, होना उसका है, और फिर वह किसी की परतंत्रता नहीं है। इसे थोड़ा सोचें। अगर परमात्मा यहां खड़ा हो जाए अभी, इसी वक्त, तो आप स्वतंत्र नहीं रह जाएंगे। कुछ करे नहीं, सिर्फ खड़ा हो जाए, सिर्फ परमात्मा यहां मौजूद हो जाए, तो आप सब परतंत्र हो जाएंगे तत्काल। क्यों? क्योंकि उसकी मौजूदगी आपके लिए आत्म-निंदा बन जाएगी। उसकी मौजूदगी में आप घबड़ा जाएंगे, आपके सारे पाप आपके सामने दिखाई पड़ने लगेंगे।
इसलिए धार्मिक आदमी लोगों को समझाते रहे हैं कि वह सब तरफ से देख रहा
है, उसकी हजार-हजार आंखें हैं। यह तरकीब है। उसकी आंख बिल्कुल नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि वह अंधा है। वह बिना आंख के देख सकता है। लेकिन धार्मिक आदमी समझाता रहा है, वह सब तरफ से देख रहा है। अगर तुम चोरी कर रहे हो, तो ध्यान रखना, भला पुलिस वाला वहां न हो, मजिस्ट्रेट वहां न हो, मकान-मालिक वहां न हो, लेकिन परमात्मा वहां मौजूद है। उसकी मौजूदगी आपमें भय पैदा करवाने के लिए समझाई जाती रही है। इसलिए कहीं भी जाओ, कुछ भी करो, एक तो देख ही रहा है। हजार आंखें आप पर लगी हैं।
तो अगर सच में किसी आदमी को इस पर पक्का भरोसा आ जाए, तो पाप करना मुश्किल हो जाएगा; क्योंकि अगर हजार आंखें, सर्चलाइट की आंखें, परमात्मा की आंखें, एकदम छेद देंगी सब तरफ, एक्सरे की आंखें होंगी, हड्डी-हड्डी तक पार कर जाएंगी। चोरी करिएगा कैसे? एक पैसा उठा रहे हैं और हजार आंखें देख रही हैं! पसीना-पसीना हो जाएगी--शरीर नहीं, आत्मा। आत्मा पसीना-पसीना हो जाएगी। हाथ से पैसा छूट जाएगा, आप भाग खड़े होंगे।
लेकिन इस तरह जो पाप से बचा, वह पाप से बचा नहीं, सिर्फ भय में गिरा। पाप तो हो गया, दोहरा हो गया--चोरी भी हो गई और भय भी हो गया।
मैंने सुना है कि एक कैथोलिक नन बाथरूम में भी पकड़े पहन कर नहाती थी।
तो उसकी और साध्वियों ने पूछा, नन्स ने, कि तू पागल हो गई है! बाथरूम में कपड़े पहन कर नहाने की क्या जरूरत है? उसने कहा, क्या तुमने पढ़ा नहीं कि परमात्मा सब जगह मौजूद है। बाथरूम में भी मौजूद है।
पर उस पागल को किसी ने बताया नहीं कि जो बाथरूम में देख सकता है, वह कपड़े के भीतर भी देख ही लेगा। अगर वह सभी जगह मौजूद है, तब तो कहीं भी नग्न होने की सुविधा है, क्योंकि वह देख ही रहा है। अब कोई उपाय नहीं।
लेकिन यह भय, फियर कांप्लेक्स को खड़ा करने की चेष्टा की गई, इसके दुष्परिणाम हुए। आदमी अच्छा नहीं बना, सिर्फ भयभीत बना। और भयभीत आदमी कभी अच्छा नहीं हो सकता। सिर्फ अभय आदमी ही अच्छा हो सकता है। लेकिन ये

धर्मगुरुओं ने परमात्मा को मौजूद करने की कोशिश की, जगह-जगह मौजूद करने की कोशिश की। यद्यपि परमात्मा स्वयं बिल्कुल गैर-मौजूद है, एब्सेंट है टोटली, बिल्कुल गैर-मौजूद है। वह भी उसकी स्वतंत्रता का हिस्सा है। अगर वह मौजूद हो जाए, तो हम स्वतंत्र हो ही नहीं सकते, हम हो ही नहीं सकते। उसके खड़े होते ही हम परतंत्र हो जाएंगे। क्योंकि उसकी मौजूदगी ही हमारे भीतर अंतःकरण के लिए पीड़ा बन जाएगी। उसके सामने कैसे होगी चोरी? उसके सामने कैसे होगा पाप? उसके सामने कैसे होगी हिंसा? वह असंभव हो जाएगा।
इसलिए परमात्मा की अनिवार्य स्वतंत्रता का हिस्सा है उसकी गैर-मौजूदगी, उसकी एब्सेंस। वह ऐसे है, जैसे है ही नहीं। क्लास लगी है और शिक्षक गैर-मौजूद है। तो जिसको जो सूझ रहा है, जिसको जो लग रहा है, वह कर रहा है। स्वतंत्र है प्रत्येक करने को। यह उसकी गहनतम रहस्यमयी विशेषता है कि वह है और गैर-मौजूद है। है और उपस्थित नहीं है। सब जगह है। रत्ती भर जगह उससे खाली नहीं है, इंच भर जगह उससे खाली नहीं है; रोएं-रोएं में, धड़कन-धड़कन में, कण-कण में वही है; और फिर भी गैर-मौजूद है, और फिर भी पता नहीं चलता कि वह है भी। और लोग पूछते हैं कि क्या ईश्वर है? कहां है?
यही उसकी रहस्यमयी विशेषता हैः है और हम पूछ सकते हैं कि कहां है? सब जगह है और हम पूछ सकते हैं, कहां है? वही है और हम पूछ सकते हैं कि दिखाई नहीं पड़ता, हम नहीं मान सकते। क्योंकि कहीं होता, तो दिखाई तो पड़ जाता। किसको कब दिखाई पड़ा है? और जो कहता भी है कि मैं जानता हूं, वह भी कहां बता सकता है दूसरों को? हम कह सकते हैं, पागल हो गया, सपने देख रहा है, मस्तिष्क खराब हो गया है, कल्पना में डूब गया है, प्रक्षेप में पड़ गया है। क्योंकि हजार हैं कहने वाले कि दिखाई नहीं पड़ता और कभी कोई एक कहता है कि है। मालूम पड़ता है वह एक इतना अकेला पड़ जाता है। बहुत अकेला पड़ जाता है।
बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट या मोहम्मद बहुत अकेले हैं। असल में, इनसे ज्यादा एकाकी आदमी जमीन पर दूसरे नहीं हुए। इतनी बड़ी भीड़ में ये रहते हैं, महावीर को हजारों लोग घेरे रहते हैं, लेकिन बिल्कुल अकेले हैं। क्योंकि महावीर जिस बात को कह रहे हैं, इनमें से कोई भी नहीं जानता। और इनमें से कोई भी नहीं मानता। यह लाओत्से जो कह रहा है, इसके पास हजारों की भीड़ लगी रही है, बाकी यह आदमी अकेला है।
यह हैरानी की बात है कि लाखों की भीड़ से घिरे हुए ये लोग नितांत अकेले हैं। क्योंकि ये जो कह रहे हैं, हम सबको शक है कि हो नहीं सकता। दिखाई तो पड़ता नहीं है। पर ये आदमी प्यारे हैं, मैग्नेटिक हैं, इनके प्राणों में कोई चुंबक है कि इनकी बात पर भरोसा भी नहीं आता और फिर भी इनके पीछे हमें चलना पड़ता है। इनमें कुछ जादू है, हिप्नोटिक हैं, पकड़ लेते हैं, फिर छोड़ते नहीं हैं। मानने का मन नहीं होता, इनकार करने की इच्छा होती है। हजार बार भागते हैं, इनके खिलाफ सोचते हैं, इनसे बचने की कोशिश करते हैं। और फिर भी कुछ है कि वापस ये आदमी खींच लेते हैं। पर ये आदमी अकेले हैं! क्योंकि ये उसकी बात कर रहे हैं, जो इन्हें मौजूद मालूम पड़ता है और हमारे लिए बिल्कुल गैर-मौजूद है। हमारे लिए बिल्कुल गैर-मौजूद है।
रामकृष्ण विवेकानंद से कहते हैं कि सुना है मैंने तू कई दिन से भूखा है। पागल, तो तू जाकर अंदर मां से मांग क्यों नहीं लेता तुझे क्या चाहिए? विवेकानंद बुद्धिमान युवक, सोच-समझ वाला। ये किस तरह की बातें रामकृष्ण करते हैं कि भीतर जाकर मां से मांग क्यों नहीं लेता! कहां है मां? कौन है मां? लेकिन यह रामकृष्ण आदमी इतने भरोसे से कह रहा है कि इसके सामने यह भी हिम्मत नहीं पड़ती कहने की कि कहां है? कौन है?
कर्ज है। पिता मर गए हैं। कर्ज चुकता नहीं है। मां भूखी रहती है। इतना खाना किसी दिन बनता है कि एक ही खा सकता है, या तो मां खा ले या विवेकानंद खा लें। तो विवेकानंद कहते हैं कि फलां मित्र के घर आज मेरा निमंत्रण है, मैं वहां चला जाता हूं। ताकि मां खाना खा ले। क्योंकि एक ही खा सकता है, इतना ही खाना है। घूम कर, रास्तों पर चक्कर भूखे लगा कर हंसते हुए घर लौट आते हैं, पेट पर हाथ फेरते हैं, डकार लेते हैं कि बहुत अच्छा हुआ, मित्र के घर चला गया, अच्छा भोजन मिला, ताकि मां निश्चिंत रहे। रामकृष्ण को पता चलता, तो वे कहते, तू पागल है! कितना है कर्ज तेरा? तू जाकर मां से मांग क्यों नहीं लेता है?

यह पागल है रामकृष्ण! कौन मां? कौन देगा? भरोसा नहीं आता, विश्वास नहीं होता।
रामकृष्ण पुजारी हुए हैं। तो आठ दिन बाद ही जिस समिति ने उनको पुजारी बनाया है, जिस ट्रस्टी मंडल ने पुजारी बनाया है, उसने उन पर मुकदमा चला दिया आठवें दिन ही। बुलाए गए, कहा कि तुम आदमी कैसे हो? क्योंकि हमने सुना है कि तुम भोग लगाने के पहले खुद चख लेते हो! तो भोग पहले लगाना होता है कि पहले खुद चखना होता है? जूठा भोग लगता है?
रामकृष्ण ने कहा कि मेरी मां जब मुझे खाना खिलाती थी, तो बना कर पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी। तो मैं मां को बिना चखे नहीं दे सकता। पता नहीं, खाने योग्य बना भी हो कि न बना हो।
वह जो मंडल ट्रस्टियों का है, वह अपना सिर ठोंकता है--कैसी मां? मंदिर उनका है, मां की मूर्ति उन्होंने खड़ी की है। इस पुजारी को तो पकड़ लाए हैं, पागल को। अठारह रुपए महीने की कुल जमा इसकी हैसियत है। लाखों का वह मंदिर है, बनाने वाले वे हैं। और यह पुजारी उनसे कह रहा है कि बिना चखे मैं मां को चढ़ा नहीं सकता, क्योंकि पता नहीं, भोजन करने योग्य बना हो, न बना हो। तो नौकरी छोड़ने को राजी हूं; लेकिन भोजन तो पहले चखूंगा, फिर भोग लगाऊंगा। फूल पहले सूंघूंगा, फिर चढ़ाऊंगा। अगर सुगंध ही नहीं है, तो चढ़ाने से फायदा क्या है? ट्रस्टी लोग एक-दूसरे की तरफ देखते हैं, यह आदमी क्या कह रहा है? पागल हो गया है? मंदिर हमने बनवाया, वह मूर्ति हमने खड़ी की। कहां की मां है! कहां का क्या है! सब हमारा खेल है, नाटक है। पुजारी पागल है। भरोसा हमें कभी आता नहीं इन लोगों का। लेकिन रामकृष्ण की आंख में देखते हैं, तो मानना भी पड़ता है कि शायद ठीक ही कहता होगा, शायद इसको दिखाई पड़ता हो। शक तो पूरा है।
ये व्यक्ति अकेले हैं। और इनके अकेले होने का सबसे बड़ा कारण परमात्मा
की यह रहस्यमयी विशेषता है कि वह है और अनुपस्थित, एज इफ ही इ.ज नाट। ही इ.ज, एज इफ ही इ.ज नाट। पूरी तरह है, पर यह एज इफ, यही उसका रहस्य है कि बिल्कुल गैर-मौजूद है। इसलिए जो गैर-मौजूदगी में देखने की कला खोज लेते हैं, वे ही उसे देख पाते हैं। जो बिना आंखों के देखने की कला खोज लेते हैं, वे उसे देख पाते हैं। जो बिना हाथों के उसके आलिंगन में उतर जाते हैं, वे उसके आलिंगन में उतर पाते हैं। यह रहस्यमयी विशेषता न तो नास्तिक मानते हैं, न आस्तिक मानते हैं। इसको समझ लें।
नास्तिक तो कहता हैः छोड़ो, बकवास है। जो नहीं है, वह नहीं है। इतना उलटा घूम कर कान को पकड़ने की जरूरत क्या है? सीधा पकड़ लें; नहीं है, नहीं है; है, है। नास्तिक का तर्क सीधा-साफ है, गणित को मानता है, व्यवस्थित है। वह कहता है कान को पकड़ते हैं सीधा, इतना उलटा जाने की क्या जरूरत है कि एज इफ ही इ.ज नाट। कहो सीधा, ही इ.ज नाट। बात खतम हो गई। यह एज इफ का इतना लंबा चक्कर क्या? जैसे कि! जैसे कि क्या जरूरत है जोड़ने की? नहीं है, तो नहीं है। है, तो है। नास्तिक भी कहता है कि अगर है, तो प्रकट होना चाहिए है के रूप में। तो हम स्वीकार कर लें।
आस्तिक को भी यही दिक्कत है। आस्तिक भी मुश्किल में पड़ता है। उसको भी,
एज इफ उसको भी पकड़ में नहीं आता--कि जैसे नहीं है ऐसा है। तो फिर वह तरकीबें खोजता है। उसकी तरकीबें जाहिर हैं। उसकी एक तरकीब तो यह है कि वह प्रतीक बनाता है। इसी को प्रकट करने के लिए, इस रहस्यमयी विशेषता को समाप्त करने के लिए, तर्क सीधा करने के लिए वह प्रतीक बनाता है। एक मूर्ति खड़ी करता है। परमात्मा की बात छोड़ता है, मूर्ति के चरण पकड़ता है। अब मूर्ति कम से कम है। और तब वह कहता है कि अब कुछ है जो हाथ में आता है। कुछ हाथ में आता है। तब किसी राम को, तब किसी बुद्ध को, तब किसी कृष्ण को, उनके चरण पकड़ता है। और कहता है कि छोड़ो, वह रहस्यमयी होगा, वह परम ब्रह्म होगा, जो होगा; तुम हो, और तुम भी काफी हो। मगर यह भी तर्क नास्तिक का ही है। नास्तिक की ही बात है यह भी। नास्तिक से वह जीत नहीं पाता, तो वह कहता है, नहीं होगा परमात्मा, राम तो हैं! राम परमात्मा हैं। कृष्ण तो हैं, कृष्ण परमात्मा हैं।
फिर वह राम और कृष्ण के आस-पास चमत्कारों की कथाएं इकट्ठी करता है। क्योंकि वह नास्तिक कहता है कि अगर राम के पैर में भी कांटा गड़ता है और खून निकलता है, तो हममें और राम में फर्क क्या है? अगर महावीर के भी पैर में

कांटा गड़ता है और खून निकलता है, तो महावीर और हममें फर्क क्या है? और अगर गर्दन काटो, और महावीर भी मर जाएं और हम भी मर जाएं, तो कैसे परमात्मा हैं? तो फिर इस आस्तिक को इनके आस-पास चमत्कार जोड़ने पड़ते हैं। फिर आस्तिक
को कहना पड़ता है कि नहीं, तुम काटो महावीर को, तलवार कट जाए, महावीर नहीं कटते। जीसस को मारो, तुम समझ रहे हो कि मार लिया, दूसरे दिन जीसस रिसरेक्ट, फिर पुनरुज्जीवित हो जाते हैं। फिर दिखाई पड़ते हैं, फिर हैं। उनको तुम मार नहीं सकते। तब वह कथाएं जोड़ता चला जाता है। यह सिर्फ हमारी नासमझी का फल है। इस रहस्यमयी विशेषता को न समझने के कारण हमको ये सब उपद्रव जोड़ने पड़ते हैं।
एक मित्र कल ही आए थे। समझदार हैं, विचारशील हैं, मुझे वर्षों से प्रेम करते हैं। वे मुझसे कहने लगे, आप भी कुछ साईंबाबा जैसा क्यों नहीं करते? कोई एकाध चमत्कार! तो अभी लाखों लोग आ जाएं।
पर उन लाखों लोगों को बुला कर क्या करना है? उनको बुला कर भी क्या करिएगा? निश्चित ही, चमत्कार से वे जरूर आ जाते हैं। लेकिन चमत्कार से आते हैं, साईंबाबा से नहीं आते। एक भी आए, साईंबाबा के कारण आए, तो कुछ फल है। चमत्कार से आए, तो कुछ भी फल नहीं है। क्योंकि चमत्कार से जो आता है, वह आस्तिक नहीं है। आस्तिक तो वह है, जो कहता है, इस जगत में सभी कुछ चमत्कार है। इस जगत में ऐसा कुछ है ही नहीं, जो चमत्कार न हो। एक बीज वृक्ष बन रहा है, आकाश में बादल चल रहे हैं, सूरज रोज निकल रहा है, तारे हैं, आदमी हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, हर चीज चमत्कार है। जिसको हर चीज चमत्कार नहीं दिखती, वह कहता है, हाथ में से राख निकल रही है, बड़ा चमत्कार हो रहा है! इस जगत में जहां सूरज निकल रहे हैं, चमत्कार नहीं हो रहा इस अंधे को। इसको हाथ में से जरा सी राख निकल रही है, यह कह रहा है, चमत्कार हो रहा है।
यह राख को मानने वाली जो बुद्धि है, यह बुद्धि परमात्मा की तरफ जाने वाली बुद्धि नहीं है। तो यह लाख की भीड़ तो इकट्ठी हो सकती है, लेकिन यह भीड़ मदारी के डमरू को सुन कर इकट्ठी हुई भीड़ है। इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मुसीबत है। इसलिए महावीर या बुद्ध या कृष्ण या राम या क्राइस्ट या मोहम्मद, इनके आस-पास जो कथाएं गढ़ी जाती हैं, वे सरासर झूठ हैं। वे झूठ इसलिए हैं... ।
लेकिन भक्त की मजबूरी है। वह न जोड़े, तो भगवान नहीं मालूम पड़ते हैं।
वह अगर न जोड़े, तो साधारण आदमी रह जाते हैं। तो उसे कहना पड़ता है कि मोहम्मद जब चलते हैं, तो कितनी ही सख्त धूप हो, एक बदली उनके ऊपर चलती है। उसे कहना पड़ता है, उसकी मजबूरी है। मजबूरी वही है, क्योंकि तर्क उसका भी नास्तिक का है, बुद्धि उसकी भी नास्तिक की है। हृदय उसके पास भी नहीं है आस्तिक का, जो कहे कि चमत्कार को क्या खोजने जाएं, इस जगत में ऐसी कोई चीज ही नहीं है जो चमत्कार न हो! कोई एकाध चीज ऐसी खोज लाएं जो चमत्कार न हो, तब मैं समझूं। इस जगत में सभी कुछ चमत्कार है।
आप हैं, यह कोई छोटा चमत्कार है! आपके होने का कोई भी तो कारण नहीं है, कोई भी तो वजह नहीं है। आप न होते, तो कोई शिकायत कर सकते थे? पर आप हैं, पूरे हैं। और कभी आपको ख्याल नहीं आता कि एक बड़ा चमत्कार घटित हुआ है कि मैं हूं। मेरे होने की कोई जरूरत नहीं है। मैं न होऊं, तो कुछ हर्ज नहीं होता। मैं नहीं था, तब भी दुनिया चलती थी। मेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है, फिर भी मैं हूं। और मेरा यह होना एक क्षण में अगर टूट जाए, तो मैं शिकायत नहीं कर सकता किसी से कि मुझे नहीं क्यों कर दिया। मैं हूं, तो पता नहीं, कौन कर जाता है! मैं नहीं हो जाता हूं, तो पता नहीं, कौन कर जाता है! इतना बड़ा चमत्कार प्रतिपल घटित हो रहा है आपके होने में ही, और आप जा रहे हैं कि एक हाथ से थोड़ी सी राख गिर रही है, तो भारी चमत्कार हो रहा है।
बुद्धिहीनता ही चमत्कार मालूम पड़ती है। बुद्धि की कमी से ही चमत्कार दिखाई पड़ते हैं। बुद्धि हो, तो सारा जगत ही चमत्कार हो जाता है।
फिर आस्तिक को तरकीबें खोजनी पड़ती हैं सिद्ध करने की कि राम भगवान हैं, कि कृष्ण भगवान हैं।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वे भगवान नहीं हैं। मैं यह कह रहा हूं कि यहां सभी कुछ भगवान है। यहां सभी कुछ भगवत्ता है। यहां ऐसा कुछ भी नहीं है, जो भगवान नहीं है। इसलिए अकारण इसको सिद्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है

कि राम भगवान हैं। यह तो व्यर्थ की बकवास है। यहां कुछ है ही नहीं, जो भगवान नहीं है। तो राम तो भगवान होंगे ही। यहां तो होना मात्र ही भगवान का है। लेकिन फिर हमें कोशिश करनी पड़ती है। फिर अकेले सीधे-सादे आदमी से तो भगवान नहीं होता। तो फिर हमें तरकीबें खोजनी पड़ती हैं कि ये-ये कारण हैं, जिनसे वे भगवान हैं। फिर हम उनको सामने खड़ा कर लेते हैं। फिर सामने खड़ा करके हम निश्चिंत हो जाते हैं। फिर यह जो रहस्यमयी विशेषता है परमात्मा की, इसको हमने भुलाया, हमने इसको छुड़ाया, अलग किया अपने से। हमने अपना भगवान खड़ा कर लिया। फिर हम मूर्ति बनाते, अवतार बनाते, तीर्थंकर बनाते और इनके आस-पास हम घूमते। क्योंकि हमारे तर्क में ये तो समझ में आते हैं, यह लाओत्से की मिस्टीरियस क्वालिटी ऑफ दि ताओ, यह रहस्यमयी विशेषता हमारी समझ में नहीं आती।
लेकिन जब तक यह समझ में न आए, तब तक जानना कि धर्म के द्वार पर आपका प्रवेश नहीं हुआ है। जिस दिन इस रहस्यमयी विशेषता को समझ में लाने की आप क्षमता जुटा लें, उसी दिन प्रभु के मंदिर की आपको पहली झलक मिलेगी। उसके पहले कोई भी झलक नहीं मिल सकती। उसके पहले के बनाए गए परमात्मा आपके गृह-उद्योग के फल हैं, होम मेड। उसके पहले निर्मित अवतार, तीर्थंकर आपकी कुशलता, आपकी कला के सबूत हैं।
अगर परमात्मा में प्रवेश करना है, तो इस रहस्यमयी विशेषता को स्मरण रखना। ही इ.ज प्रेजेंट, एज इफ ही इ.ज नाट; ही इ.ज एब्सेंट, यट ही इ.ज प्रेजेंट। अनुपस्थित है वह, और मौजूद; और मौजूद है सब जगह, और ऐसे जैसे कि नहीं है। इसे अगर सतत स्मरण रख सकें और यह श्वास-श्वास में प्रवेश कर जाए, तो आपके जीवन में धर्म का उदघाटन, उसका पर्दा उठना शुरू हो जा सकता है।
आज इतना ही। पांच मिनट रुकेंगे; और बैठे न रहें, जब कीर्तन यहां चलता
है तो कीर्तन में आप भी ताली बजा कर सम्मिलित हो जाएं। जिन मित्रों को नाचना हो, वे नीचे भी आ जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
सत्ताईसवां प्रवचन

अनस्तित्व और खालीपन है आधार सब का

Chapter 11 : Sutra 1

The Utility Of Not-Being

The thirty spokes unite the one nave; but it is on the empty space (for the axle), that the use of the wheel depends.
Clay is fashioned into vessels; but it is on their empty hollowness, that their use depends.
The door and windows are cut out (from the walls) to form an apartment; but it is on the empty space (within), that its use depends. Therefore, what has a (positive) existence serves for the profitable adaptation, and what has not that for (actual) usefulness.

अध्याय 11 : सूत्र 1

अनस्तित्व की उपयोगिता

पहिए की तीसों तीलियां उसके मध्य भाग में आकर जुड़ जाती हैं, किंतु पहिए की उपयोगिता धुरी के लिए छोड़ी गई खाली जगह पर निर्भर होती है। मिट्टी से घड़े का निर्माण होता है, किंतु उसकी उपयोगिता उसके शून्य खालीपन में निहित है।
दरवाजे और खिड़कियों को, दीवारों में काट कर प्रकोष्ठ बनाए जाते हैं, किंतु कमरे की उपयोगिता उसके भीतर के शून्य पर अवलंबित होती है।
इसलिए, वस्तुओं का विधायक अस्तित्व तो लाभकारी सुविधा देता है, परंतु उनके अनस्तित्व में ही उनकी वास्तविक उपयोगिता है।

जो व्यक्ति जीवन को ऊपर से ही देख लेते हैं और जीवन की सतह को ही सब कुछ समझ लेते हैं, उन्हें शून्य का उपयोग दिखाई नहीं पड़ेगा। जो तर्क तक ही अपने को सीमित रखते हैं और सोच-विचार से ज्यादा गहराई में कभी नहीं उतरते, उन्हें भी, जो उपस्थित नहीं है वह भी जीवन का आधार है, ऐसा कभी दिखाई नहीं पड़ेगा। जो गणित की भाषा में सोचते हैं, उन्हें जीवन विधायक मालूम होगा, पाजिटिव मालूम होगा। लेकिन जीवन की विधायकता निगेटिव के अभाव में, नकारात्मक के अभाव में एक क्षण भी नहीं टिक सकती, यह उन्हें दिखाई नहीं पड़ेगा।
इसे हम थोड़े उदाहरण से समझें, तो ख्याल में आ सके। यह लाओत्से के मौलिक सूत्रों में से एक है। मौलिक सूत्र यह है कि जीवन द्वंद्व पर आधारित है। और जीवन अपने विपरीत का विरोध नहीं करता, वरन विपरीत के सहयोग से ही चलता है। साधारणतः देखने में ऐसा लगता है कि अगर आपका शत्रु मर जाए, तो आप ज्यादा सुख में होंगे। लेकिन शायद आपको पता न हो कि आपके शत्रु के मरते ही आपके भीतर भी कुछ मर जाएगा, जो आपके शत्रु के कारण ही आपके भीतर था। इसलिए बहुत बार ऐसा होता है कि मित्र के मरने पर इतनी हानि नहीं होती, जितनी शत्रु के मरने पर हो जाती है। क्योंकि वह जो विरोध कर रहा था, वही आपके भीतर चुनौती भी जगा रहा था। वह जिसके विरोध और संघर्ष में आप सतत रत थे, वही आपका निर्माण भी कर रहा था।
इसलिए लाओत्से ने कहा है कि मित्र तो कोई भी चल जाएंगे, लेकिन शत्रु सोच कर चुनना। क्योंकि मित्र इतने प्रभावित नहीं करते हैं जीवन को, जितना शत्रु प्रभावित करता है। क्योंकि मित्र की तो उपेक्षा भी की जा सकती है,

शत्रु की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। और मित्र को भूला भी जा सकता है, शत्रु को कोई कभी नहीं भूलता है।
लेकिन क्या शत्रु भी जीवन को इतना प्रभावित करता है, यह हमारे साधारण विचार में नहीं आता। भारत में अंग्रेजी राज्य न हो और महात्मा गांधी को पैदा करें, तो समझ में आएगा। महात्मा गांधी में कुछ भी बचेगा नहीं। या जो भी बचेगा, वह महात्मा गांधी की तरह पहचाना न जा सकेगा। वह जो ब्रिटिश का विरोध है, वह जो शत्रुता है, वह निन्यानबे प्रतिशत उन्हें पैदा करती है। इसलिए जब कोई देश संकट में होता है, तब वहां महापुरुष अपने आप पैदा हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि संकट में महापुरुष को पैदा होना पड़ता है, संकट महापुरुष को पैदा करता है। संकट की घड़ी, तनाव की घड़ी महापुरुष को पैदा करती है।
हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि बिना किसी बड़े युद्ध के कोई बड़ा नेता नहीं हो सकता। इसलिए बड़ा नेता होना हो, तो युद्ध बहुत जरूरी है, एकदम जरूरी है। आप ऐसे एक भी बड़े नेता का नाम नहीं बता सकते, जिसे शांति के समय ने पैदा किया हो। सभी बड़े नेता युद्ध की वजह से पैदा होते हैं। इसलिए जिसको बड़ा नेता बनना हो, उसे युद्ध का इंतजाम करना पड़ता है। बिना युद्ध का इंतजाम किए कोई बड़ा नहीं हो सकता।
जीवन विपरीत के सहयोग से चलता है। विपरीत के विरोध से दिखाई पड़ता है, लेकिन सहयोग से चलता है। इसे हम और पहलुओं से भी समझें, तो ख्याल में आ जाएगा। अगर हम रावण को हटा दें रामायण से, तो अकेले राम से कथा निर्मित नहीं होती। ऐसा तो हो भी सकता है कि रावण न हो और राम पैदा हों; लेकिन राम का कहीं भी पता नहीं चलेगा। क्योंकि राम के व्यक्तित्व का सारा निखार रावण के विरोध से उभरता है। राम जितने महिमाशाली दिखाई पड़ते हैं, उस महिमा में रावण का बड़ा कंट्रीब्यूशन है, बड़ा दान है। राम अकेले निर्मित नहीं हो सकते हैं रावण के बिना; रावण भी निर्मित नहीं हो सकता है राम के बिना। वे एक-दूसरे के सहारे बड़े होते हैं। सत्य तो यही है। लेकिन ऊपर से जो देखता है, वह देखता हैः वे एक-दूसरे की शत्रुता में हैं, एक-दूसरे के विरोध में हैं। लेकिन जीवन का गहन सत्य यही है कि वे साझेदार हैं। उन्हें भी पता न हो; जरूरी नहीं है कि उन्हें पता हो कि एक बहुत सूक्ष्म तल पर एक साझेदारी है, एक मैत्री है, एक सहयोग है।
जीवन निर्मित ही नहीं होता, विकसित ही नहीं होता, जब तक विपरीत न हो। विपरीत अनिवार्य है।
फ्रायड ने इस सदी में एक बहुमूल्य सत्य की खोज की, और वह यह कि हम जिसको भी प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं। बहुत चौंकाने वाली बात थी! खुद फ्रायड को भी चौंकाने वाली थी। और लोगों को बहुत सदमा लगा, खास कर प्रेमियों को बहुत सदमा लगा। क्योंकि प्रेमी कभी मान नहीं सकता कि हम जिसे प्रेम करते हैं, उसे घृणा भी करते हैं। लेकिन सभी प्रेमी जानते हैं, मानते भला न हों। इसलिए फ्रायड को इनकार बहुत किया गया, लेकिन इनकार किया नहीं जा सका। और धीरे-धीरे सत्य को स्वीकार करना पड़ा।
हम जिसे प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं; क्योंकि प्रेम बिना घृणा के खड़ा नहीं रह सकता। इसलिए अगर आपने किसी को प्रेम किया है और अगर आप ईमानदार हों और विश्लेषण करें, तो आप पाएंगे, सुबह घृणा की है, दोपहर प्रेम किया है, सांझ घृणा की है, रात प्रेम किया है। घृणा और प्रेम पीरियाडिकल बदलते रहे हैं। जिससे सुबह कलह की है और सोचा है इसके साथ क्षण भर जीना असंभव है, सांझ उससे सुलह की है और सोचा है इसके बिना क्षण भर भी जीना असंभव है।
पुराने प्रेम के जानकारों ने कहा था कि प्रेम पूर्ण तभी होता है, जब उसमें कलह न हो। और फ्रायड कहता है कि जितना पूर्ण प्रेम होगा, उतनी ही पूर्ण उसमें कलह होगी। अगर दो प्रेमियों में झगड़ा नहीं हो रहा है, तो उसका कुल मतलब इतना है कि दो प्रेमी सिर्फ धोखा दे रहे हैं, प्रेम नहीं है, फ्रायड कहता है। अगर आप और आपकी पत्नी में कोई कलह नहीं हो रही, तो उसका मतलब यह है कि पति और पत्नी होना बहुत पहले समाप्त हो गया, अब कलह की भी कोई जरूरत नहीं रह गई है। जितना गहन प्रेम होगा, तथाकथित जिसे हम प्रेम कहते हैं, किसी आध्यात्मिक प्रेम की बात फ्रायड नहीं कर रहा है। जिसे हम प्रेम

कहते हैं और जिसे हम जानते हैं, आध्यात्मिक प्रेम को हम जानते भी नहीं। जिस प्रेम को हम जानते हैं, उस प्रेम में कलह, कांफ्लिक्ट अनिवार्य हिस्सा है।
लेकिन प्रेमी भी चाहेगा, प्रेयसी भी चाहेगी, पति भी चाहेगा, पत्नी भी चाहेगी कि कलह बंद हो जाए, तो प्रेम में बड़ा आनंद आए। उन्हें जीवन के सत्य का पता नहीं है। जिस दिन कलह पूरी तरह बंद होगी, उस दिन प्रेम पूरी तरह समाप्त हो चुका होगा। असल में, कलह बंद हो ही नहीं सकती उससे, जिससे हमारा प्रेम चल रहा है। कलह का मतलब ही यही है कि अपेक्षा है, बड़ी अपेक्षा है। और जितना बड़ा प्रेम है, उतनी बड़ी अपेक्षा है। और जितनी बड़ी अपेक्षा है, उतनी ही विफलता लगती है, उतना फ्रस्ट्रेशन होता है, हाथ में कुछ लगता नहीं। फिर कलह होती है। अगर कोई अपेक्षा न रह जाए, कोई एक्सपेक्टेशन न हो, कोई मांग न हो, कोई आशा न बचे, किसी सपने के पूरे होने का कोई ख्याल न हो, तो कलह बंद हो जाती है। तब हम जीवन जैसा है, उसे स्वीकार कर लेते हैं।
तो फ्रायड कहता है कि बड़े प्रेमी शांति से रह ही नहीं सकते हैं।
एक बहुत अनूठे आदमी दि सादे ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि प्रेम
एक तरह की बीमारी है। और बीमारी इसलिए कहा है कि प्रेम को तो हम निमंत्रण देते हैं और घृणा हाथ आती है। वे दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जिससे भी प्रेम होगा, उससे घृणा का खेल चलेगा। अकेली घृणा भी नहीं टिक सकती। इसलिए अगर आप सोचते हों कि फलां व्यक्ति से मेरी सिर्फ घृणा है, तो आप भूल में हैं। क्योंकि अकेली घृणा नहीं टिक सकती। जिस व्यक्ति से आपका प्रेम शेष हो अभी, उससे घृणा टिक सकती है। अन्यथा घृणा भी नहीं टिक सकती है। अगर आपकी किसी से दुश्मनी गहरी है और घृणा भारी है, तो आप खोज-बीन करना, भीतर अभी भी प्रेम का सूत्र कहीं न कहीं बंधा है। अगर प्रेम का सूत्र बिल्कुल टूट गया हो, तो घृणा का सूत्र भी टूट जाता है।
इसलिए मित्र और शत्रु, दोनों से हम बंधे होते हैं। मित्र से ऊपर से प्रेम होता है, नीचे से घृणा होती है। शत्रु से ऊपर से घृणा होती है, नीचे से प्रेम होता है। लेकिन बंधन दोनों से बराबर होते हैं। यह थोड़ा कठिन लग सकता है, क्योंकि प्रेम के संबंध में हमारी बड़ी अपेक्षाएं होती हैं। लेकिन हम और जीवन के दूसरे पहलू से समझें।
दिन भर एक आदमी श्रम करता है। तो होना तो यह चाहिए, जिस आदमी ने दिन भर श्रम किया है, वह रात विश्राम न कर सके। क्योंकि जिसका दिन भर का श्रम का अभ्यास है, उसे रात में नींद नहीं आनी चाहिए। लेकिन जिसका जितना श्रम का अभ्यास है, वह उतनी गहरी नींद में उतर जाता है। जिस आदमी ने दिन भर विश्राम किया है, होना तो यह चाहिए कि रात उसे गहरा विश्राम मिले, गहरी नींद आ जाए। क्योंकि दिन भर विश्राम का अभ्यास है उसका। लेकिन जिसने दिन भर विश्राम किया है, वह रात सो ही नहीं पाता। असल में, जिसने श्रम किया है, उसने श्रम का जो दूसरा विपरीत पहलू है विश्राम, वह अर्जित कर लिया। और जिसने विश्राम किया है, उसने जो विश्राम का दूसरा पहलू है श्रम, वह अर्जित कर लिया। इसलिए जिसने दिन भर विश्राम किया है, वह रात भर करवटें बदल कर श्रम करेगा। वह रात सो नहीं सकेगा।
वह जो विपरीत है, उससे हम बच नहीं सकते। वह विपरीत सदा वहां खड़ा हुआ है। अगर रात विश्राम चाहिए, तो दिन में श्रम करना पड़ेगा। और जितना ज्यादा होगा श्रम, उतना विश्राम होगा ज्यादा। इसलिए मजे की बात है, जो बहुत श्रम में जीते हैं, जिन्हें विश्राम की फुर्सत नहीं मिलती, वे गहरे विश्राम को उपलब्ध होते हैं। और जिन्हें विश्राम की पूरी सुविधा है, उन्हें विश्राम ही एक समस्या हो जाती है, क्योंकि विश्राम उपलब्ध होता नहीं है।
हम जीते हैं ऊपरी तर्क के सहारे। हम कहते हैं, अगर रात विश्राम चाहिए,
तो दिन भर विश्राम करो। यह सीधा तर्क है। लेकिन जीवन का इससे कोई संबंध नहीं है। यह वही तर्क है कि अगर हम चाहते हैं किसी से प्रेम करो, तो कलह बिल्कुल मत करो। वही तर्क है यह भी। लेकिन उलटा है जीवन। ठीक वैसा ही उलटा है, जैसे कि बिजली के निगेटिव और पाजिटिव छोर होते हैं, ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत के छोर होते हैं। उन दोनों के होने से ही विद्युत की गति है और जीवन है। इसमें से एक को हम काट दें, तो दूसरा भी खो जाता है।

लेकिन विपरीत को स्वीकार करना बड़ा कठिन है। और जो विपरीत को स्वीकार
कर लेता है, उसे मैं संन्यासी कहता हूं, उसे लाओत्से ज्ञानी कहता है--जो विपरीत को स्वीकार कर लेता है।
विपरीत को स्वीकार करने का मतलब यह है कि अगर आज आप मुझे सम्मान देने
आए हैं, तो मुझे स्वीकार कर लेना चाहिए कि किसी तल पर आपके भीतर मेरे लिए अपमान भी इकट्ठा होगा ही। इससे बचा नहीं जा सकता। और अगर मैं आपका सम्मान स्वीकार कर रहा हूं, तो मुझे तैयारी कर लेनी चाहिए कि आज नहीं कल मुझे आपका अपमान भी सहना पड़ेगा। अगर इस जानकारी के साथ मैं आपके सम्मान को स्वीकार करता हूं, तो आपका सम्मान मुझे सुख न दे पाएगा और आपका अपमान मुझे दुख न दे पाएगा। क्योंकि मैं आपके सम्मान के भीतर गहरे में देख लूंगा कि वह भी अपमान है और आपके अपमान में भी गहरे में देख लूंगा कि वह भी सम्मान है। क्योंकि एक आदमी अगर मेरे ऊपर जूता फेंक जाए, तो यह भी अकारण वह क्यों करेगा? इतना श्रम उठाता है, तो मुझसे कुछ लगाव तो है ही। मुझसे कुछ संबंध तो है ही। और एक माला जो डाल जाता है, शायद माला सस्ती भी होती, जूता उससे थोड़ा मंहगा ही है। लगाव उसका भारी है, बेचैनी उसकी तीव्र है। वह मेरे लिए कुछ न कुछ करेगा ही।
अगर मैं उसके अपमान में उसके सम्मान को भी देख लूं कि वह मेरे लिए कुछ
कर रहा है, श्रम उठा रहा है, तो उसके अपमान का दंश खो जाता है। और अगर मैं सम्मान में भी देख लूं कि आज नहीं कल दूसरा पहलू भी प्रकट होगा, तो सम्मान का जो इल्यूजन है, जो भ्रम है, जो स्वप्न है, वह तिरोहित हो जाता है। और तब सम्मान और अपमान एक ही सिक्के के दो पहलू हो जाते हैं। और जिस व्यक्ति को सम्मान और असम्मान एक ही सिक्के के दो पहलू दिखाई पड़ते हैं, वह दोनों के बाहर हो गया।
जीवन सब दिशाओं से विपरीत से बंधा हुआ है। लेकिन जब हम एक पहलू को देखते हैं, तो दूसरे को बिल्कुल भूल जाते हैं। वही भूल हमारे जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जब हम एक को देखते हैं, तो दूसरे को बिल्कुल विस्मृत कर जाते हैं। जब हम कांटे देखते हैं, तो हम फूल नहीं देखते। जब हम फूल देखते हैं, तो हम कांटे नहीं देखते। और फूल और कांटे एक ही वृक्ष पर लगे हैं। और फूल और कांटों के भीतर जो रस बह रहा है, वह एक ही रस है। वह एक ही शाखा दोनों को प्राण दे रही है। और एक ही जड़ दोनों को जीवन-दान कर रही है। और एक ही सूरज दोनों पर किरणें बरसा रहा है। और एक ही माली ने दोनों को जल दिया है। और एक ही अस्तित्व से दोनों का आगमन हुआ है। वे दोनों एक हैं गहरे में। लेकिन जब हमें फूल दिखाई पड़ते हैं, तो फूल हमारी आंखों को इस बुरी तरह छा देते हैं कि कांटों को हम भूल जाते हैं। और जितने ज्यादा आप भूलेंगे, उतने जल्दी कांटे चुभ जाएंगे, देर नहीं लगेगी। लेकिन जब कांटे चुभते हैं, तो हमें फिर चुभन ही याद रह जाती है, फूल हमें बिल्कुल भूल जाते हैं। हम यह भी भूल जाते हैं कि फूलों के लगाव में ही यह चुभन हमने कमाई है। फूलों में रस लिया था, इसीलिए यह फल भी भोगा है। लेकिन जब कांटा दिखाई पड़ता है, तो फूल तिरोहित हो जाता है।
हमारी दृष्टि सदा आंशिक है, पार्शियल है। आंशिक दृष्टि ही अज्ञान है। आंशिक दृष्टि गलत नहीं है। वह भी सत्य को तो देखती है, लेकिन अधूरे सत्य को देखती है। और शेष जो दूसरा हिस्सा है, वह इतना विपरीत मालूम पड़ता है कि हम दोनों में कोई संगति भी नहीं जोड़ पाते। कैसे संगति जोड़ें?
जो आदमी आज गले आकर लग गया है और जिसने कहा है कि तुम्हारे सिवाय मेरा कोई भी नहीं, और तुम्हीं मेरी खुशी और तुम्हीं मेरे गीत हो, हम कैसे कल्पना करें कि यही आदमी कल छाती में छुरा भी भोंक सकता है? संगति नहीं, कंसिस्टेंट नहीं मालूम होता। तर्क कंसिस्टेंसी चाहता है, संगति चाहिए। इसमें कोई संगति नहीं मालूम पड़ती। यह आदमी कैसे छुरा भोंक सकता है?
यही आदमी छुरा भोंक सकता है। जीवन की जो गहराई है, वह यही है। जीवन की
जो गहराई है, वह यही है। क्योंकि जिससे इतना संबंध न हुआ हो, वह छाती में छुरा भोंकने भी कभी नहीं आता। क्या आप किसी आदमी को बिना मित्र बनाए शत्रु बना सकते हैं? और क्या ऐसा हो सकता है कि मित्र तो वह छोटा रहा हो और शत्रु बड़ा हो जाए? नहीं, यह नहीं हो सकता। अनुपात! जितना मित्र रहा हो, उतना ही शत्रु हो सकता है। रत्ती भर ज्यादा शत्रु नहीं हो सकता।

मैक्यावेली ने अपनी सलाह में दि प्रिंस में सम्राटों के लिए लिखा है
कि जितने घनिष्ठ तुम्हारे मित्र हों, उतने ही उनसे सावधान रहना! यह सलाह तो चालाकी की है, लेकिन इसमें सत्य है। जितनी घनिष्ठ हो मित्रता, उतने ही सावधान रहना; क्योंकि उतना ही बड़ा खतरा भी निकट है। मैक्यावेली ने लिखा है कि अगर चाहते हो कि शत्रुओं को सत्य का पता न चले, तो मित्रों को पता मत चलने देना। शत्रुओं को पता न चले सत्य का, तो मित्रों को पता मत चलने देना। और यह भी लिखा है कि किसी भी शत्रु के साथ ऐसा व्यवहार मत करना कि किसी दिन वह मित्र हो जाए तो पछतावा हो, क्योंकि कोई भी शत्रु किसी भी दिन मित्र हो सकता है।
और जीवन प्रतिपल बदलता रहता है। यहां कुछ भी थिर नहीं है। एक अति से दूसरी अति पर जीवन डोलता रहता है। जीवन की गहराई में विरोध संयुक्त हैं; और जीवन की सतह पर विरोध वियुक्त हैं, अलग-अलग हैं। जो सतह को देखता है, वह लाओत्से को नहीं समझ पाएगा। क्योंकि लाओत्से जो अल्टीमेट पोलैरिटी है, जो आखिरी ध्रुवीयता है जीवन की, उसकी बात कर रहा है।
वह कहता है, "पहिए की तीसों तीलियां उसके मध्य भाग में आकर जुड़ जाती हैं, किंतु पहिए की उपयोगिता धुरी के लिए छोड़ी गई खाली जगह पर निर्भर है।" चाक देखें बैलगाड़ी का। आरे, तीलियां जुड़ी हैं केंद्र से। लेकिन बड़ी अदभुत बात है कि चाक चलता है, तीलियां घूमती हैं; लेकिन चाक के बीच में एक खाली जगह है, एम्पटीनेस है, उसी खाली जगह पर यह सारा चाक का घूमना है। उस खाली जगह में कील है। और एक मजे की बात है कि चाक तो चलता है और कील खड़ी रहती है। खड़ी हुई कील पर चक्के का चलना घूमता है। अगर कील भी चल जाए, तो चाक न चल पाए। चाक चल सकता है, क्योंकि कील नहीं चलती। अचल है कील। अचल कील पर चलता हुआ चाक घूमता है। और जितनी अचल हो कील, चाक उतनी ही कुशलता से घूम सकता है। यह विपरीत का नियम है। और खाली जगह है, चाक के बीच में खाली जगह है, उसी में तो कील आकर बैठेगी।
वह जो खाली जगह है चाक की, लाओत्से कहता है, शायद तुम्हें दिखाई भी न पड़े कि वही खाली जगह चाक का असली राज है। क्योंकि वही सेंटर है, वही केंद्र है। उस खाली जगह के बिना चाक नहीं हो सकता। इसका मतलब यह हुआ कि जहां-जहां भरापन दिखाई पड़ता हो, वहां गहरे में खालीपन भी मौजूद होगा। इसे हम थोड़ा समझ लें।
अगर आपको रास्ते पर चलते हुए भिक्षा-पात्र लिए हुए बुद्ध मिल जाएं, तो एकदम खाली आदमी मालूम पड़ेंगे। उनके पास कुछ भी नहीं है। एक भिक्षा-पात्र है, कुछ भी नहीं है। कोई धन नहीं, कोई पद नहीं, कोई प्रतिष्ठा नहीं, कोई महल नहीं। एक दिन था। अगर उस दिन आपको बुद्ध मिले होते, तो उनके पास सब कुछ था। धन था, महल था, राज्य था, साम्राज्य था; बड़ी शक्ति थी, बड़ी प्रतिष्ठा थी, वह सब था उनके चारों तरफ। एक दिन उनके पास सब था, लेकिन बुद्ध को लगा कि मैं भीतर खाली हूं। बाहर सब भरापन था, और बुद्ध को लगा कि भीतर मैं खाली हूं। चाक पूरा भरा था और कील बिल्कुल खाली थी। और बुद्ध को लगा, बाहर यह सब भरा हुआ रहा आए, इससे क्या मिलेगा, जब तक मैं भीतर खाली हूं! तो बुद्ध ने वह सब छोड़ दिया। फिर एक दिन वे भिखारी की तरह सड़क पर जा रहे हैं। अब आप अगर उनको देखेंगे, तो बाहर सब खालीपन है; लेकिन भीतर वह आदमी बिल्कुल भरा हुआ है। त्याग की, तपश्चर्या की सारी धारणा इसलिए पैदा हुई, क्योंकि इस रहस्य
को समझ लिया गयाः अगर आप बाहर भरने में लगे रहेंगे, तो भीतर खाली रह जाएंगे। क्योंकि हर भरेपन के भीतर खाली अनिवार्य है। और अगर आप भीतर भरना शुरू करते हैं, तो बाहर आपको खाली होने के लिए राजी होना पड़ेगा। क्योंकि दोनों बातें एक साथ नहीं सम्हाली जा सकतीं। आप चाहें कि बाहर भी भरा हो, भीतर भी भरा हो, यह संभव नहीं है। क्योंकि जीवन विपरीत के नियम को मान कर चलता है। तो आपको पोलैरिटी को समझना पड़ेगा। अगर आपको भीतर भरे हुए मनुष्य होना है, चाहते हैं कि भीतर परमात्मा भर जाए, तो बाहर संसार के भराव की आपको चिंता छोड़ देनी पड़ेगी। यह बाहर की पकड़ छोड़ देनी पड़ेगी, यह क्लिंगिंग छोड़ देनी पड़ेगी। तो भीतर की पकड़ उपलब्ध होगी; लेकिन बाहर? बाहर खालीपन फैल जाएगा।
बुद्ध से मिलने एक सम्राट आया है। और उसने बुद्ध से कहा है कि तुम्हारे पास सब था, और तुम छोड़ कर क्यों चले आए? अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा

है। किसी दुख में, किसी चिंता में, कभी ऐसी भूल हो जाती है। तुम्हारे पिता मेरे मित्र हैं, मैं उन्हें समझा ले सकता हूं और तुम्हारे घर तुम्हें वापस लौटा दे सकता हूं। अगर तुम्हारा पिता से ऐसा कुछ विरोध हो गया हो कि तुम घर जाना ही न चाहो, तो मैं भी कोई पराया नहीं, तुम्हारे पिता जैसा ही हूं। तुम मेरे घर आ जाओ। फिर तुम सोचते होओ कि किसी का एहसान लेना ठीक नहीं, तो मेरी एक ही लड़की है, मेरा कोई पुत्र नहीं, मैं तुम्हारा विवाह किए देता हूं। मेरी सारी संपत्ति, सारे साम्राज्य के तुम मालिक हो जाओ।
इस बीच जब वह ये सारे प्रपोजल्स, ये सारे प्रस्ताव दे रहा है, तब उसने
एक बार भी बुद्ध की तरफ नहीं देखा कि वे हंस रहे हैं। जब वह अपनी पूरी बात कह चुका और उसने कहा कि क्या इरादे हैं? तो बुद्ध ने कहा, तुम मुझे सोचते हो कि मेरे पास कुछ नहीं है और मैं सोचता हूं कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है। ऐसे तुम भी ठीक सोचते हो, मैं भी ठीक सोचता हूं; सिर्फ हमारे सोचने के क्षेत्र अलग-अलग हैं। तुम्हारे पास बाहर सब कुछ है, मेरे पास बाहर कुछ भी नहीं। इसलिए स्वभावतः तुम्हें दिखाई पड़ता हैः बेचारा! गरीब! इसे किसी तरह वापस समृद्धि में लौटा दो। मैं भी देखता हूं, मेरे भीतर सब कुछ है, तुम्हारे भीतर कुछ नहीं है। मेरा मन होता हैः बेचारा! गरीब! इसे भीतर किसी तरह भर दो। तो बुद्ध ने उस सम्राट से कहा कि मैं दोनों जान चुका हूं। जो तुम मुझे दे सकते हो, वह सब मेरे पास था। जो तुम मुझे आश्वासन दे सकते हो, उससे बहुत ज्यादा मेरे पास था। उसे मैं छोड़ कर आया हूं। और मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे पास अब सब कुछ है और तब मेरे पास कुछ भी नहीं था। और तुम्हें एक ही अनुभव है, सब कुछ होने का, जिसे तुम सब कुछ समझ रहे हो। तुम मेरी मानो, और यह भिक्षा-पात्र हाथ में लो और संन्यास में दीक्षित हो जाओ।
एक विपरीतता है कहीं भी। तो लाओत्से कहता है, बैलगाड़ी का चाक चलता है। चाक की तीलियां भरी हुई हैं, लेकिन चाक अपने केंद्र पर शून्य है। उसी शून्य पर चलता है। लेकिन वह शून्य हमें दिखाई नहीं पड़ता। शून्य का मतलब ही यह होता है कि जो दिखाई नहीं पड़ता। दृश्य सदा अदृश्य के ऊपर निर्भर होता है। यह पोलैरिटी सभी तरफ रहेगी। दृश्य अदृश्य पर निर्भर होगा; शब्द मौन से पैदा होता है; जीवन मृत्यु के साथ टिका हुआ है। लेकिन वह दूसरा दिखाई नहीं पड़ता।
लाओत्से उसे समझाने के लिए फिर कहता है, "मिट्टी से घड़े का निर्माण होता है, किंतु उसकी उपयोगिता उसके शून्य खालीपन में निहित है।"
एक घड़ा हम बनाते हैं मिट्टी का। लेकिन अगर ठीक से पूछें, तो घड़ा कहां है? उस मिट्टी में या मिट्टी के भीतर जो खालीपन है, उसमें? जब आप बाजार से घड़ा खरीद कर लाते हैं, तो आप घड़े के लिए घड़ा खरीद कर लाते हैं कि वह जो खालीपन है भीतर, उसके लिए घड़े को खरीद कर लाते हैं? क्योंकि पानी घड़े में नहीं भरा जा सकेगा, खालीपन में भरा जा सकेगा। खाली जितना होगा घड़ा, उतना ही उपयोगी है। बाहर की मिट्टी की दीवार की उपयोगिता है, क्योंकि वह एक खालीपन को घेरती है और सीमा बना देती है, बस। लेकिन असली घड़ा तो खालीपन है।
लेकिन दिखाई तो हमें पड़ता है घड़ा, खालीपन तो कोई देखता नहीं। और आप बाजार में खालीपन खरीदने नहीं जाते, घड़ा खरीदने जाते हैं। आप दाम खालीपन के नहीं चुकाते, घड़े की मिट्टी के चुकाते हैं। बड़ा घड़ा होगा तो ज्यादा दाम चुकाएंगे; छोटा घड़ा होगा तो थोड़े दाम चुकाएंगे। मिट्टी पर निर्भर करेगा कि दाम कितने हैं। मिट्टी पर निर्भर करेगा कि दाम कितने हैं, खालीपन पर निर्भर नहीं करेगा। यद्यपि घड़े की परम उपयोगिता उसके खालीपन में है। घर जाकर पता चलेगा कि मिट्टी कितनी ही प्यारी रही हो, लेकिन अगर भीतर का खालीपन नहीं है, तो घड़ा बेकार हो गया। मिट्टी कितनी ही सुंदर रही हो, लेकिन अगर भीतर घड़ा बंद है और उसमें खालीपन नहीं है, मिट्टी ही भरी है, तो घड़ा बेकार हो गया, लाना व्यर्थ हो गया।
खालीपन की उपयोगिता है।
लाओत्से कहता है, हम एक मकान बनाते हैं... ।
हम यहां बैठे हुए हैं, हम कहते हैं हम मकान में बैठे हुए हैं। लेकिन अगर लाओत्से से पूछें, तो वह कहेगा, हम खालीपन में बैठे हुए हैं। मकान तो ये दीवारें हैं, जो चारों तरफ खड़ी हैं। इन दीवारों में कोई भी बैठा हुआ नहीं है। ये दीवारें केवल बाहर के खालीपन को भीतर के खालीपन से अलग करती

हैं, बस। इनका उपयोग सीमांत का है। बाहर के आकाश को भीतर के आकाश से विभक्त कर देती हैं। इसकी सुविधा है, इसकी जरूरत है। बस दीवार का उपयोग इतना है। लेकिन दीवार में कोई बैठता नहीं, बैठते तो हम खाली आकाश में हैं। इस भवन के भीतर उपयोग हम वस्तुतः किसका करते हैं? खालीपन का। तो जितना खालीपन हो, उतना यह उपयोगी हो जाता है। जितना खालीपन हो, उतना उपयोगी हो जाता है। "मकान की उपयोगिता उसके खालीपन पर है। दरवाजे व खिड़कियों को दीवारों में काट कर हम प्रकोष्ठ बनाते हैं, कमरे बनाते हैं; किंतु कमरे की उपयोगिता उसके भीतर के शून्य पर अवलंबित होती है।"
लाओत्से यह कह रहा है कि जहां उपयोगिता दिखाई पड़ती है, वहां नहीं, उससे विपरीत में निर्भर होती है। जब आप मकान बनाते हैं, तो आपने कभी सोचा कि आप एक शून्य बना रहे हैं? एक खालीपन बना रहे हैं? नहीं, आप जब मकान बनाते हैं, तो दीवार का नक्शा तैयार करते हैं, दरवाजों के नक्शे तैयार करते हैं। शून्य का तो आप कोई नक्शा तैयार नहीं करते। लेकिन ठीक देखा जाए, तो दरवाजों और दीवारों के द्वारा आप शून्य का ही नक्शा तैयार करते हैं। वह जो शून्य है, उसको आकार देते हैं। लेकिन आकार ऊपर से दिखाई पड़ता है मूल्यवान, भीतर तो मूल्यवान शून्य ही है। और इसलिए कभी यह भी हो सकता है कि एक झोपड़ा भी बड़ा हो एक महल से। इस पर निर्भर करता हैः भीतर कितना शून्य है, कितनी स्पेस है।
अक्सर मैंने पाया है कि अगर एक गरीब आदमी से कहो कि एक मित्र आए हैं, उन्हें अपने घर में ठहरा लो; तो वह कहता है, ठीक है, ठहरा लेंगे। अगर मैं किसी बड़े आदमी को कहता हूं कि एक मित्र आए हैं, उन्हें ठहरा लो; वे कहते हैं कि स्थान नहीं है। उनके पास स्थान ज्यादा है। लेकिन वे कहते हैं, स्थान नहीं है। क्या, हुआ क्या है? गरीब के पास वस्तुतः नापने जाएं, तो स्थान कम है। अमीर के पास स्थान ज्यादा है। लेकिन अमीर का स्थान इतनी चीजों से भरा हुआ है--भरा ही हुआ है, स्थान नहीं के बराबर है।
मैं एक करोड़पति के घर में ठहरा हुआ था। उनकी बैठक देख कर मुझे लगा कि
वह बैठक नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसमें बैठने की जगह ही नहीं थी। वह कोई म्यूजियम मालूम होता था। उन्होंने न मालूम कितने ढंग का फर्नीचर वहां इकट्ठा कर रखा था। वह फर्नीचर ऐसा नहीं था कि बैठने के लिए हो, वह फर्नीचर ऐसा था, देखने के लिए था। सदियों पुराना! वे कहते थे कि यह तीन सौ साल पुराना फ्रेंच फर्नीचर है, यह इतने सौ साल पुराना फलां फर्नीचर है। मैंने उन्हें कहा कि यह सब ठीक है, लेकिन इसमें बैठक कहां है? फर्नीचर ही था, उसमें बैठ कहीं सकते नहीं थे। जगह भी, वहां मूव करने की जगह भी नहीं थी, कि उस कमरे में से निकलना हो, तो आपको बच कर निकलना पड़े। वे उसमें भरते चले गए थे; जो भी उन्हें पसंद आता था, वे लाते चले गए थे। जब मैंने उनसे कहा कि इसमें बैठक कहां है, तो वे बहुत चौंके। उन्होंने कहा, यह तो मुझे खुद भी ख्याल नहीं रहा! जब शुरू किया था, तो बैठक की तरह ही इसको शुरू किया था। फिर धीरे-धीरे सब भरता चला गया। अब तो सिर्फ कोई आता है मेहमान, तो उसे हम दिखा देते हैं लाकर। अब इसमें बैठक नहीं बची है।
ऐसा बाहर तो बहुत आसानी से घट जाता है, भीतर भी इतनी ही आसानी से घट जाता है। जब आप एक आदमी के शरीर को प्रेम करते हैं, तब आप भूल जाते हैं कि वह भीतर जो स्पेस है, जिसे हम आत्मा कहते हैं, वह भीतर जो जगह है रिक्त, वह भी है या नहीं? तो जैसे एक आदमी घड़े को खरीद लेता है ऊपर की हालत देख कर, कारीगरी देख कर, यह भूल ही जाता है कि भीतर पानी भरने की जगह भी है? वैसे ही आदमी एक शरीर को देख कर प्रेम में पड़ जाता है। यह भूल ही जाता है कि भीतर आत्मा, स्पेस जैसी कोई चीज भी है? भीतर कोई जगह है, जहां मैं प्रवेश कर सकूंगा?
नहीं, चमड़ी को देख कर, शरीर को देख कर, हड्डियों के उतार को देख कर एक आदमी प्रेम में पड़ जाता है। फिर पीछे बहुत पछताता है। फिर वह पीछे कहता है कि मैं कैसी भूल में पड़ गया! लेकिन कोई भूल नहीं, भूल इतनी है केवल कि आदमी भी शरीर से महत्वपूर्ण नहीं होता। शरीर जरूरी है। आदमी भी भीतर जितना आकाश होता है उसके, जितनी रिक्तता होती है, जितना खालीपन, विस्तार होता है, जितनी स्पेस होती है, उससे महत्वपूर्ण होता है।

उसी स्पेस का नाम आत्मा है। जब हम कहते हैं कि कितनी आत्मा है आपके भीतर, तो उसका मतलब है कि कितना समा सकते हो भीतर? कितनी जगह है? अगर एक कोई जरा सी गाली दे देता है, तो भीतर नहीं समा सकती है। तो आत्मा बहुत कम है। जरा सी गाली, अगर भवन भीतर बड़ा होता, तो शायद गूंज भी न पहुंचती, पता भी न चलता कि कोई गाली दी गई है। एक जरा सा कोई पत्थर मार देता है, तो भीतर कोई जगह नहीं कि उस पत्थर को भी विश्राम मिल जाए। नहीं, तत्काल भीतर से पत्थर दो गुना बड़ा होकर वापस लौट आता है। अगर हम एक खालीपन में पत्थर फेंकें, तो खालीपन पत्थर को वापस नहीं भेजेगा। अगर हम एक दीवार में पत्थर फेंकें, तो दीवार पत्थर को वापस भेज देगी। जो आदमी प्रतिक्रियाओं में जीता है, रिएक्शंस में, उसका मतलब है भीतर खाली नहीं है। इधर हमने फेंका, वहां से वापस लौटा। वहां कोई चीज समा नहीं सकती है। वहां कोई स्थान नहीं है। लेकिन प्रेम का वास्तविक फूल तो इसी स्थान में खिलता है। फ्रायड वाले प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं अब। अब उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसे हम जानते ही नहीं हैं। अब उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसमें हमारा प्रेम भी नहीं होता और हमारी घृणा भी नहीं होती। अब उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जहां फूल और कांटे दोनों ही नहीं होते। जहां तो केवल फूल और कांटों के नीचे बहने वाली रस की धार ही रह जाती है। लेकिन वह भीतर का रिक्तपन कहां हम देखते हैं? भीतर का रिक्तपन हम नहीं देखते।
लाओत्से के पास अगर कोई नमस्कार भी करता था, तो कभी-कभी ऐसा होता था कि उसने नमस्कार की और घंटे भर बाद लाओत्से जवाब देगा कि नमस्कार! वह आदमी अब तक भूल ही चुका था कि नमस्कार भी उसने की थी। अब तक वह न मालूम कितनी बातें लाओत्से के खिलाफ सोच चुका था कि यह आदमी ठीक नहीं है। मैं नमस्कार कर रहा हूं, इसने अब तक जवाब भी नहीं दिया।
लाओत्से के एक मित्र ने एक दिन लाओत्से को कहा कि यह भी कोई ढंग है! यह
भी कोई शिष्टाचार है कि एक आदमी नमस्कार करता है और तुम घंटे भर बाद जवाब देते हो!
लाओत्से ने कहा, कम से कम उसका नमस्कार मुझ तक तो पहुंच जाए! मेरे हृदय में मैं उसे से लूं! मेरे हृदय में वह विश्राम कर ले! इतनी जल्दी लौटा देना अशिष्टता होगी। इतनी जल्दी लौटा देना, इतना इम्पेशेंस, इतना अधैर्य, कि किसी ने कहा नमस्कार, हमने कहा नमस्कार! न हमें कोई प्रयोजन है, न उसे कोई प्रयोजन है। यह सिर्फ निपटारा है, बात समाप्त हो गई। यह झंझट खतम हुई। ऊपर से देखने पर लगेगा कि लाओत्से कैसी बात कर रहा है! लेकिन नमस्कार करने वाला भूल चुका है और लाओत्से अभी नमस्कार का जवाब दे रहा है, तो इस घंटे भर वह नमस्कार के साथ रहा। इस घंटे भर यह नमस्कार उसके प्राणों में गूंजी। यह सिर्फ प्रतिक्रिया नहीं है। यह बटन दबाई और पंखा चल गया, ऐसी यांत्रिक घटना नहीं है। यह जीवंत रिस्पांस है, रिएक्शन नहीं।
रिएक्शन तत्काल हो जाता है। प्रतिक्रिया का मतलब होता है वह यांत्रिक है। यहां हमने बटन दबाया, बिजली जली; बटन दबाया, बिजली बुझ गई। बिजली यह नहीं कह सकती कि तुम दबाते रहो बटन, मैं थोड़ी देर से बुझती हूं। वह यांत्रिक है। एक आदमी ने गाली दी, आपके भीतर क्रोध की लपट जग गई। वह उतनी ही यांत्रिक है। एक आदमी ने प्रेम की बात कही, आप गदगद हो गए, आपकी छाती फूल गई। वह उतनी ही यांत्रिक है। बटन कोई दबा रहा है, और आप फूल रहे हैं, सिकुड़ रहे हैं।
इसलिए चौबीस घंटे आपको कितनी मुसीबत से गुजरना पड़ता है, इसका हिसाब नहीं। कि हर कोई बटन दबा रहा है और वही आपको होना पड़ रहा है। एक आदमी ने गाली दी, और आप गए। एक आदमी ने मुस्कुरा कर देखा, और आपकी जिंदगी में बहार आ गई। और एक आदमी ने आपकी तरफ नहीं देखा, और आपके दीए बुझ गए और सब अमावस की रात हो गई। चौबीस घंटे आपको गिरगिट की तरह पूरे समय रिएक्ट करना पड़ रहा है। आपके पास कोई आत्मा नहीं है, भीतर कोई जगह नहीं है। इसलिए सतह ही से सब चीजें लौट जाती हैं।
भीतर जगह का अर्थ होता है धैर्य। भीतर जगह का अर्थ होता है एक प्रतिसंवेदन। भीतर की जगह का अर्थ होता है कि कोई बात मेरे भीतर जाएगी तो समय लेगी, यात्रा करनी पड़ेगी उसे मुझ तक पहुंचने को।

तो लाओत्से कहता है, मुझ तक पहुंचे उसका नमस्कार, मेरे प्राणों में गूंजे। फिर उसका प्रत्युत्तर निर्मित हो, फिर मैं प्रेम से उसके प्रत्युत्तर को वापस निवेदन करूं। समय लग जाएगा।
जब हम किसी व्यक्ति के शरीर के प्रेम में पड़ते हैं, तो हमें ख्याल में नहीं होता कि भीतर की स्पेस, भीतर के आकाश का भी पता कर लें, फिक्र कर लें। हम घड़े को खरीद लाते हैं, भीतर की खाली जगह को भूल जाते हैं।
रवींद्रनाथ ने एक बौद्ध भिक्षु पर एक गीत लिखा है। एक बौद्ध भिक्षु गुजरता है एक राह से और नगर की जो नगरवधू है, जो नगर की वेश्या है... ।
यह वेश्या शब्द बहुत अच्छा नहीं है। पुराने लोग बहुत समझदार थे, उन्होंने शब्द दिया था नगरवधू, पूरे गांव की पत्नी। अब तो हालत बिल्कुल बदल गई है। अब हालत बिल्कुल बदल गई है। अब तो जो आपकी पत्नी है, वह भी निजी वेश्या है--व्यक्तिगत। अब हालत बिल्कुल बदल गई है। क्योंकि अगर आज आप पश्चिम के मनोवैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहता है, कोई फर्क नहीं है वेश्या में और पत्नी में। वह सामूहिक है और स्थिर नहीं है। कोई स्थायी लाइसेंस नहीं है उसके साथ। समय का फर्क है, रात भर के लिए उसे खरीदते हैं। पत्नी के साथ जीवन भर का सौदा है, जीवन भर के लिए खरीदते हैं। लेकिन पूरब के लोग उसे कहते थे नगरवधू।
वह नगरवधू, झांक कर उसने देखा है नीचे और इस भिक्षु को देखा है।
और स्वभावतः, संन्यासी के पास एक और तरह का सौंदर्य पैदा होना शुरू हो जाता है, जिसे गृहस्थ कभी नहीं जान पाता। उसके कारण हैं। क्योंकि संन्यासी के साथ पैदा होती है एक स्वतंत्रता, एक बंधनमुक्त अवस्था। उस बंधनमुक्तता में एक अनूठा सौंदर्य पैदा होने लगता है। संन्यासी के साथ पैदा होता है भीतर का रिक्त आकाश, एक आत्मा। वह प्रतिक्रियाओं से अब नहीं जीता, वह अपने ढंग से जीना शुरू करता है। दूसरे उसे जीने के लिए मजबूर नहीं करते, वह अपना ही मार्ग चुनता है। वह अपना ही जीवन चुनता है। वह अपने जीवन का एक अर्थ में स्वयं नियंता और मालिक है। तो एक अनूठा सौंदर्य, एक इंटिग्रेशन, एक समग्रता उसके भीतर पैदा होनी शुरू हो जाती है। एक और ही गरिमा और गौरव, एक और ही सौंदर्य!
वेश्या ने देखा है और वह मोहित हो गई है। उसने नीचे आकर भिक्षु को कहा
कि मेरे घर आज की रात मेहमान हो जाओ। भिक्षु ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और उसने कहा, अभी तो तेरे चाहने वाले और भी बहुत होंगे। सुंदर है तू, युवा है तू। अभी मैं न भी आऊं, तो तेरी रात खाली नहीं जाएगी। किसी दिन जब तेरा कोई चाहने वाला न हो और किसी दिन जब यह गांव तुझे बाहर फेंक दे--और यह गांव फेंक ही देगा--और किसी दिन जब तू चिल्लाती हो और कोई आवाज का उत्तर भी देने वाला न हो, तब मैं आ जाऊंगा। वेश्या को दुख हुआ; अपमानित हुई। यह पहला मौका था। लोग उसके द्वार पर खटखटाते थे और वह इनकार करती थी। आज पहला मौका था कि उसने किसी के द्वार पर खटखटाया और इनकार हो गया। पीड़ा भारी थी। वह लौट गई। कोई बीस वर्ष बाद, एक अंधेरी रात, और रास्ते के किनारे कोई चिल्ला रहा
है जोर से। राह से गुजरता भिक्षु उसके पास जाकर रुका है। हाथ उसके चेहरे पर फेरा है, पूछा है उससे। प्यास उसे लगी है और पानी चाहिए। वह पास के गांव से जाकर पानी लेकर और एक दीया लेकर आया है। कोढ़ फूट गया है पूरे शरीर पर उस वेश्या के। वही वेश्या है। गांव ने उसे बाहर फेंक दिया है। कोढ़ी को भीतर रखने का कोई उपाय नहीं है। आज उसे कोई पानी देने को भी राजी नहीं है। उस भिक्षु ने कहा कि आंख खोल और देख, प्रभु की कृपा कि मैं अपना वचन पूरा कर सका हूं! मैं आ गया! बीस साल पहले तूने जो निमंत्रण दिया था, वह अब मुझ तक पहुंच गया। मैं आ गया हूं। और समय भी आ गया।
वेश्या ने आंखें खोलीं और उसने कहा कि नहीं, अब तुम न ही आते तो अच्छा था। अब आने से प्रयोजन भी क्या है? उस दिन ही आना था। उस दिन मैं युवा थी, सुंदर थी।
उस भिक्षु ने कहा, लेकिन आज, आज तुम ज्यादा अनुभवी हो, आज तुम ज्यादा ज्ञानी हो। जीवन को तुमने देखा--उसकी पीड़ा, उसके अनुभव, उसके दुख, उसका विषाद। और आज मैं समझता हूं कि तुम्हारे पास शरीर तो नहीं है, लेकिन थोड़ी आत्मा है। शरीर तो चला गया; लेकिन आज आत्मा है। उस दिन आत्मा बिल्कुल नहीं थी। उस दिन शरीर ही शरीर था।

भीतर भी कुछ है, जो हमारे शरीर से विपरीत है और फिर भी संयुक्त है। शरीर की वह जो भीतर विपरीतता है, उसे अगर हम ध्यान में रख सकें, तो लाओत्से का सूत्र हमारे ख्याल में आ जाए। घड़े की तो बात है समझाने के लिए। लेकिन गहरे में तो आदमी की ही बात है।
अस्तित्व के संबंध में वह कहता है, "इसलिए वस्तुओं का विधायक अस्तित्व तो लाभकारी सुविधा देता ही है, परंतु उनके अनस्तित्व में ही उनकी वास्तविक उपयोगिता है।"
जब चीजें होती हैं, तब तो उनसे सुविधा मिलती ही है; लेकिन उनके न होने
की भी एक और गहरी उपयोगिता है। जैसे जब जवानी होती है, तो जवानी का एक उपयोग है। लेकिन जब जवानी खो जाती है, तब उसके खो जाने का और भी गहरा उपयोग है। उसके शून्य हो जाने का और भी गहरा उपयोग है। लेकिन उस उपयोग को हम जान नहीं पाते, क्योंकि हममें से बहुत से लोग सिर्फ शरीर से बूढ़े हो जाते हैं, उनकी चेतना में प्रौढ़ता नहीं उपलब्ध हो पाती। चेतना से वे बचकाने ही बने रहते हैं। इसलिए बूढ़ा आदमी भी चेतना से बचकाना ही बना रहता है।
एक मजे की बात है, बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी जब सपना देखता है, तो सपने में सदा अपने को जवान देखता है। सदा! हजारों सपनों के अध्ययन किए गए हैं, लेकिन अब तक ऐसा सपना नहीं पकड़ा जा सका कि किसी बूढ़े आदमी ने अपने को सपने में बूढ़ा देखा हो। इसका मतलब है साफ। वासना उसकी अभी भी जवान ही अपने को मानती है। मजबूरी है कि शरीर साथ नहीं देता। मजबूरी है कि शरीर धोखा दिए जाता है। मजबूरी है कि शरीर जराजीर्ण हो गया। लेकिन भीतर, भीतर वह जो मन है, वह अभी भी अपने को जवान माने चला जाता है। सपने में तो वह जो भीतर मन मानता है, वही प्रकट होता है।
यदि कोई व्यक्ति जवानी को ही उपयोगी समझे और जब जवानी खो जाए और उसको उपयोगिता न दिखे, तो उसे निषेध का मूल्य पता नहीं चल पाया। और अगर उसे निषेध का मूल्य पता चल जाए, तो बुढ़ापा जवानी से बहुत ज्यादा सुंदर हो जाता है। क्योंकि जवानी के सौंदर्य में भी उत्तेजना तो रहेगी ही। और जहां उत्तेजना रहेगी, वहां सौंदर्य में गहराई नहीं हो सकती, डेप्थ नहीं हो सकती। तेजी हो सकती है, त्वरा हो सकती है, गति हो सकती है, लेकिन गहराई नहीं हो सकती। इसलिए जवानी का सौंदर्य उथला होगा, ओछा होगा। अगर, जवानी जब खो जाती है, उसके खोने में भी कोई समझ पाए उपयोगिता, तो बुढ़ापे को एक सौंदर्य मिलता है, जो जवान को कभी भी नहीं मिल सकता। और ठीक भी है, क्योंकि बुढ़ापा जवानी से आगे है। ठीक भी है, ज्यादा विकासमान है। तो बुढ़ापे में एक गरिमा, एक गहराई, एक अनंत गहराई उपलब्ध हो जाती है। लेकिन वह जवानी के अभाव का उपयोग है।
जीवन में तो है ही रहस्य। लेकिन जिसने जीवन में ही रहस्य को पकड़ा और मृत्यु के रहस्य को नहीं जाना, वह पूरे रहस्य को नहीं जान पाया। जीवन में मृत्यु के सामने कुछ भी नहीं है, मृत्यु के समक्ष कुछ भी नहीं है। मृत्यु अभाव है, अनस्तित्व है।
लाओत्से कहता है, विधायक अस्तित्व, पाजिटिव एक्झिस्टेंस की उपयोगिता है। लेकिन निगेटिव एक्झिस्टेंस की तो बात ही और है। वह महा उपयोगिता है। उसका अर्थ ही और है।
लेकिन हम जीवन में तो देख पाते हैं अर्थ, मृत्यु में हमें कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ता। मृत्यु हमारे लिए सिर्फ एक अंत है, समाप्त हो जाना है। प्रारंभ नहीं, एक नया उदघाटन नहीं, एक नए द्वार का खुलना नहीं, सिर्फ पुराने द्वारों का अचानक बंद हो जाना है। खुलना नहीं है कुछ भी। तो हमें मृत्यु का कोई पता नहीं। इस सबका कारण एक ही है कि हम पाजिटिव से बंधे हुए हैं। वह जो विधायक है, वह हमें परेशान किए जा रहा है। निगेटिव की हमने कभी कोई खबर नहीं ली। तो इस निगेटिव को हम थोड़ी तरफ से समझें, तो फिर यह अनस्तित्व हमारे ख्याल में आ जाए।
दिन में जागते हैं, तो हम जागने का हिसाब रखते हैं। और आदमी की चेष्टा होती है कि जितनी कम नींद से काम चल जाए, बेहतर। तो पश्चिम में बहुत से वैज्ञानिक विचार करते हैं कि आज नहीं कल हमें कोई इंतजाम करना चाहिए कि आदमी को सोना न पड़े। क्योंकि न सोना पड़े, तो उसकी जिंदगी में बीस साल और बढ़ जाएं। अगर आप साठ साल जीएंगे, तो बीस साल सोने में खो जाएंगे। तो बजाय इसके

कि आपकी जिंदगी को बीस साल लंबा करके अस्सी साल किया जाए, क्या यह उचित न होगा कि आपके बीस साल सोने के, जो व्यर्थ जाते मालूम पड़ते हैं दिन, उनको हम बचा लें और आप साठ साल पूरा जी लें? तो वैज्ञानिक सोचते हैं कि कभी ऐसा उपाय हो जाएगा कि आदमी को सोने की जरूरत न रह जाए।
लेकिन उन्हें पता नहीं है, यह विधायक पर अति जोर का परिणाम है। जो आदमी सोना भूल जाएगा, उसका जागना बिल्कुल उदास और अर्थहीन हो जाएगा। कभी आपने ख्याल किया है कि सांझ जब आप बिस्तर पर सोने जाते हैं, तो आंखें आपकी बुझ चुकी होती हैं; और सुबह जब उठते हैं, तो आंखों के दीए फिर से जगमगा जाते हैं। रात सिर्फ व्यर्थ नहीं गुजर जाती, रात अनस्तित्व के द्वारा शक्ति को पाने का उपाय है। निद्रा का अर्थ है निगेटिव में, नकार में, शून्य में डूब जाना, ताकि शून्य हमें पुनः शक्ति दे दे।
इसलिए चिकित्सक कहते हैं कि आदमी की बीमारी ठीक नहीं हो सकती, कोई भी बीमारी ठीक नहीं हो सकती, अगर साथ ही नींद असंभव हो। तो फिर बीमारी ठीक नहीं हो सकती। कोई इलाज ठीक नहीं कर पाएगा। क्योंकि आदमी अगर अपने भीतर से शक्ति पाने की समस्त संभावनाएं बंद कर दे, तो ऊपर से दी गई दवाएं कुछ कर न पाएंगी। चिकित्सक अब स्वीकार करते हैं कि हम केवल बीमारी के ठीक होने में सहयोगी हो सकते हैं, सिर्फ सहयोगी। मूल रूप से तो बीमार स्वयं ही अपने को ठीक करता है। लेकिन वह ठीक कर सकता है तभी, जब सारी विधायकता को छोड़ कर रात के अंधेरे में, शून्य में खो जाए।
शून्य में खोते ही हम प्राणों के गहरे तल पर पहुंच जाते हैं, जहां जीवन का आधार है, जहां जीवन का मूल स्रोत है; वहां से हम शक्ति को वापस पा लेते हैं। वही शक्ति सुबह हमारी आंखों में ताजगी बन कर दिखाई पड़ती है। वही सुबह पक्षियों का गीत बन जाती है। वही सुबह फूलों का खिलना हो जाती है। वही शक्ति! रात वृक्ष भी सो जाते हैं, पक्षी भी सो जाते हैं, प्राणी भी सो जाते हैं, आदमी भी सो जाता है। लेकिन कुछ आदमी हैं, जो अब नहीं सो पाते हैं। और धीरे-धीरे ऐसा लगता है कि शायद पूरी आदमियत नहीं सो पाएगी। जिस दिन आदमियत नहीं सो पाएगी, उसी दिन समझना कि पूरी आदमियत पागल हो गई। फिर हम कभी स्वस्थ नहीं हो सकते। क्योंकि हमने निषेध को छोड़ दिया।
लाओत्से कहता है, सोना प्रथम है, जागना द्वितीय। क्योंकि निषेध पहले है। विश्राम पहले है, श्रम पीछे। और जितना गहरा होगा विश्राम, उतने गहरे श्रम में उतर जाओगे।
इस निषेध को, इस अनस्तित्व को समझना पड़ेगा। इसे हम कई तरफ से समझें। जैसे मैंने कहा कि नींद है, वह अनस्तित्व है। और जागरण हमारा विधायक है, नींद हमारा निषेध है। जागने में हम सक्रिय होते हैं, नींद में हम शून्य हो जाते हैं। इसलिए जो आदमी रात भर सपने देखता रहता है, वह आदमी सुबह अनुभव करता है कि नींद नहीं हो पाई। क्योंकि स्वप्न निषेध और विधेय के बीच का हिस्सा है। सोए भी हैं और सो भी नहीं पा रहे हैं, ऐसी स्थिति है। जागे भी हैं और जागे नहीं हैं, ऐसी स्थिति है। तो बीच में डोलता है मन, तो क्रिया जारी रहती है। और कई बार तो लोग सुबह उठ कर जितने थके उठते हैं, उतने सांझ थके नहीं सोते।
मैंने सुना है कि एक ग्रामीण अपने मित्र के घर देश की राजधानी में आया। जब वह राजधानी से वापस लौटा, तो उसके मित्रों ने और गांव के लोगों ने पूछा कि गांव और शहर में तुमने क्या फर्क पाया?
तो उसने कहा, मैंने फर्क पायाः गांव में लोग सांझ थके हुए होते हैं और सुबह ताजे उठते हैं। और शहर में लोग सांझ ताजे मालूम पड़ते हैं और सुबह थके उठते हैं।
रात, सांझ शहर जगा हुआ मालूम पड़ता है--ताजा। क्लब हैं, होटलें हैं, सिनेमागृह हैं, सब आदमी ताजे मालूम पड़ते हैं। सुबह? जरा उठें, जाएं, एक काल्पनिक आंख बंद करके यात्रा करें लोगों के शयनकक्षों की, बेडरूम्स की। लोग उठ रहे हैं, मुर्दा; नहीं उठना चाहते हैं, किसी तरह उठ रहे हैं। मजबूरी है, इसलिए उठ रहे हैं। दफ्तर है, इसलिए उठ रहे हैं। दुकान है, इसलिए उठ रहे हैं। लेकिन जैसे खींचे जा रहे हैं, कोई भीतर से प्राण नहीं है, जो उठ रहा हो। मुर्दे की भांति उठाए जा रहे हैं। उठ जाएंगे, बिना रीढ़ के खड़े हो जाएंगे, चल पड़ेंगे। क्या, हुआ क्या है?

नींद का जो निषेध है, वह खो गया है। नींद का जो नकार है, अनस्तित्व है,
वह खो गया है। सुबह से सांझ तक हम बात कर रहे हैं, रात भी सपने में बात कर रहे हैं। रात भी लोग बड़बड़ाते रहते हैं। रात भी बोलते रहते हैं। भीतर नहीं, तो बाहर भी बोलते रहते हैं। चौबीस घंटे बोल रहे हैं। मौन अनस्तित्व है, शब्द अस्तित्व है। शब्द विधायक है, साइलेंस शून्य है। लेकिन जो व्यक्ति शब्दों में खो जाएगा और जिसके भीतर कभी भी शून्य घटित नहीं होता, और जिसको कभी भीतर शून्य का पता नहीं चलता, और जिसे कभी भीतर मौन की एक संधि नहीं मिलती--शब्द ही शब्द, शब्द ही शब्द--वह आदमी धीरे-धीरे जीवन की गहराइयों से वंचित हो जाता है।
शब्द उपयोगी है, लेकिन शब्द काफी नहीं है। शब्द जरूरी है, लेकिन बस शब्द ही पर्याप्त नहीं है। शब्द चाहिए, लेकिन उससे भी ज्यादा निःशब्द चाहिए, उससे भी ज्यादा मौन चाहिए।
इसलिए ध्यान रखें, जिन लोगों के शब्दों में वजन होता है और जिन लोगों
के शब्दों में प्राण होते हैं, वे वे ही लोग होते हैं जिनके पास मौन की क्षमता होती है। इस जगत में जो विराट शब्द पैदा हुए हैं, जो महाशब्द पैदा हुए हैं, वे उन लोगों से पैदा हुए हैं जो शून्य होने की कला जानते हैं। कोई बुद्ध जब बोलता है, तो उसके बोलने में एक-एक शब्द का जादू और है। कोई महावीर जब बोलता है, तो ऐसे ही नहीं बोलता जैसे हम बोल देते हैं। उसके एक-एक शब्द में सघन मौन समाया हुआ है। जब मोहम्मद बोलते हैं, तो वर्षों के मौन के बाद। जब जीसस बोलते हैं, तो तीस साल का लंबा... । पता ही नहीं है कि तीस साल जीसस क्या करते रहे। महावीर बारह वर्षों तक जंगल में चुपचाप खड़े रहे। बारह वर्ष तक नहीं बोले, इसलिए जब जो बोले, उसका गुण ही और है, उसकी खूबी ही और है, उसकी शक्ति ही और है। तब एक-एक शब्द प्रगाढ़ हो गया मौन के अर्थ से। तब मौन से यह जो शब्द पैदा हुआ, इस शब्द का वजन, इसकी कीमत, इसका मूल्य और है।
शब्द वही आप भी बोल सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि महावीर ने कोई नए शब्द नहीं बोले। बुद्ध या क्राइस्ट ने या कृष्ण ने कोई नए शब्द नहीं बोले। कृष्ण ने जो भी गीता में बोला है, वे सभी शब्द अर्जुन भलीभांति समझता था। उसने एक भी जगह ऐसा नहीं कहा कि आपके शब्द मेरी समझ में नहीं आते हैं। सब शब्द वह समझता था। वही शब्द वह भी बोल सकता था। लेकिन कृष्ण जब उसी शब्द को बोलते हैं, तो उसका मूल्य और हो जाता है। अर्जुन उसी शब्द को बोले, उसका मूल्य वही नहीं रह जाता।
तो शब्द का अर्थ एक तो भाषा-कोश में लिखा हुआ है, डिक्शनरी में लिखा हुआ है। वह एक अर्थ है। और एक और अर्थ है, जो भीतर के मौन से शब्द में प्रवेश करता है। इसलिए कोई व्यक्ति है कि वह कुछ भी बोले, तो उसके बोलने में काव्य हो जाता है। और कोई व्यक्ति है, वह कविता भी पढ़े, तो भी सब बेरौनक, सब बासा। उसके ओंठ में आकर ही शब्द जैसे मर जाते हैं। किसी के ओंठ पर आते ही शब्द अमृत हो जाते हैं, यात्रा पर निकल जाते हैं विराट की। ये वे ही ओंठ हैं, जिनके भीतर सघन मौन की क्षमता है। उसी मौन में जब कोई शब्द पलता है और बड़ा होता है, प्रिगनेंट होता है, उस मौन के गर्भ में ही जब कोई शब्द बड़ा होता है... ।
अगर हम इसको इस तरह समझ लें, तो आसानी पड़ेगी। अगर एक मां के शरीर में गर्भ निर्मित हो इसी क्षण और इसी क्षण गर्भ बाहर आ जाए और नौ महीने के मौन में न डूबा रहे, तो वह गर्भपात होगा, जन्म नहीं। वह एबॉर्शन होगा और उससे प्राण नहीं निकलेगा, उससे मृत घटना घटेगी। लेकिन नौ महीने के मौन में, नौ महीने के अंधकार में, नौ महीने के निषेध में बच्चा बड़ा होता है और जीवन को उपलब्ध होता है। ठीक वैसे ही जब किसी व्यक्ति के भीतर मां के गर्भ जैसा मौन होता है और उसमें एक शब्द पलता है, पलता है, बड़ा होता है, पोषण पाता है और कभी जन्मता है, तब उसमें प्राण होते हैं।
हमारे शब्द सब गर्भपात होते हैं, एबॉर्शन होते हैं। अखबार पढ़ा, पढ़ कर भागे कि किसी को बता दें अखबार में खबर क्या है। किताब पढ़ी कि अब बेचैन हुए कि लड़का कब स्कूल से लौटे कि उसको उपदेश दें। एबॉर्शन! शब्द को जरा भी मौन में जीने की सुविधा नहीं है। हम सब एबॉर्टिव हैं दिमाग में बिल्कुल। तो

एक-दूसरे पर अपना-अपना गर्भपात किए चले जाते हैं। और उस पर वह जल्दी दूसरे पर फेंक रहा है, दूसरा तीसरे पर फेंक रहा है, फेंके चले जा रहे हैं।
झेन फकीर बोकोजू के पास जब कोई आता था, तो फकीर बोकोजू कहता था कि अगर शब्द से सीखना हो, तो कहीं और जाओ। अगर शून्य से सीखना हो, तो यहां रुको। हम भी शब्द का उपयोग करते हैं, लेकिन बस इतना ही--शून्य की तरफ इशारा करने को, इंगित करने को। हम भी कभी-कभी शब्द का उपयोग करेंगे, लेकिन बस इतना ही-- शून्य की तरफ इशारा करने को। लेकिन असली चीज शून्य है। असली चीज मौन है। मौन अनस्तित्व है, शब्द अस्तित्व है। और जीवन के हर पहलू पर वह जो हमें दिखाई नहीं पड़ता, वही गहन है। वह जो हमारे स्मरण में नहीं आता, हमारी प्रतीति में नहीं पकड़ता, हमारे अनुभव में नहीं पकड़ में आता, वही मूल्यवान है। जो व्यक्ति विधायक, पाजिटिव को, जो दिखाई पड़ता है, पकड़ में आता है, इंद्रियां जिसे पहचान लेती हैं, उसकी फिक्र कम करता है और उसकी फिक्र ज्यादा करने लगता है, जो अनस्तित्व है, शून्य है, नकार है, मौन है, वह व्यक्ति जीवन के परम सत्य की यात्रा पर निकल जाता है।
तो लाओत्से कहता है कि सदा खोज लेना गहराई को, सतह से मत उलझ जाना। और सदा खोज लेना उस विपरीत को, जो कि सबका मूल आधार है। सदा उसकी फिक्र कर लेना। क्योंकि उसी से जीवन का रस और उसी से जीवन का सौंदर्य और उसी से जीवन की शक्ति और ऊर्जा उपलब्ध होती है। कहीं भी, निरंतर दूसरा भी गहरे में मौजूद है। उस गहरे का ख्याल रखना, तो जीवन की पूरी की पूरी दृष्टि दूसरी हो जाती है। जिसको प्रेम में भी घृणा दिखाई पड़ने लगे, वह दोनों से मुक्त हो जाता है। और तब एक अनूठे ही प्रेम का जन्म होता है। वह प्रेम हमारे लिए बिल्कुल अपरिचित और अनजान है। वह प्रेम एक संबंध नहीं, वह प्रेम एक स्वभाव है।
उसी प्रेम को क्राइस्ट कहे कि वह प्रेम ईश्वर है। उसी प्रेम को महावीर ने अहिंसा कहा, बुद्ध ने करुणा कहा। लाओत्से ने उसे नाम ही नहीं दिया, क्योंकि लाओत्से ने कहा कि सभी नाम दूषित हो गए हैं। प्रेम कहो, तो लोग समझेंगे उनका प्रेम; करुणा कहो, तो लोग समझेंगे उनकी करुणा; कुछ भी कहो, लोगों के सभी शब्द दूषित हो गए हैं, विकृत हो गए हैं। सभी शब्द बीमार हो गए हैं। क्योंकि बीमार आदमियों ने इतना उनका उपयोग किया है, संक्रामक हो गए हैं। सभी शब्दों में आदमियों की बीमारियां प्रवेश कर गई हैं। एक भी शब्द अनकंटेमिनेटेड नहीं है। ऐसा शब्द खोजना मुश्किल है, जिसको हम कह सकें कि इसमें आदमियों की बीमारियों के रोगाणु नहीं पड़ गए हैं। सभी शब्द रुग्ण हो गए हैं। कोई शब्द शुद्ध नहीं है। इसलिए लाओत्से ने कहा कि मैं कोई शब्द नहीं देता। मैं तुमसे इतना ही कहता हूं कि जहां दोनों नहीं रह जाते, वहां जो रह जाता है, वही, वही पाने योग्य है।
अगर शब्द और शून्य का ख्याल आ जाए, तो शब्द के पीछे शून्य छिपा है--एक बात आपको अंत में इशारा कर दूं--शब्द और शून्य का अगर ख्याल आ जाए, तो शब्द के पीछे शून्य छिपा है; लेकिन जो शून्य शब्द के पीछे छिपा है, वह भी शब्द से जुड़ा हुआ है। एक और शून्य है, महाशून्य है, जहां शब्द भी नहीं और शून्य भी नहीं। लेकिन उसके लिए कोई शब्द देना मुश्किल है। अस्तित्व द्वंद्व है, दो में बंटा है, विपरीत में बंटा है और विपरीत के सहारे काम करता है। लेकिन अस्तित्व की गहराई निर्द्वंद्व है, अद्वैत है, वहां दोनों खो जाते हैं। तब यह कहना मुश्किल है कि वहां एक रह जाता है। क्योंकि हमारी भाषा जैसा मैंने कहा, जब भी हम कहें एक, तब हमें तत्काल दो का ख्याल आता है। सोचना कभी बैठ कर घंटे भर कि एक का ख्याल करना और दो का ख्याल न आए, तो आप समझ पाएंगे कि जो मैं कह रहा हूं वह एक। लेकिन हम जब भी एक कहेंगे, तत्काल दो का ख्याल आ जाएगा। हमारा एक दो कीशृंखला का हिस्सा है, पार्ट, उसका अंश है। हमारे एक का कोई मतलब ही नहीं होता।
इसलिए हिंदुओं ने परमात्मा को एक नहीं कहा, अद्वैत कहा। निषेध का उपयोग किया। यह नहीं कहा कि वह एक है, कहा कि वह दो नहीं है। अद्वैत का मतलब होता है, दो नहीं है। सीधी सी बात कह सकते थे कि एक है। लेकिन एक कहने में तत्काल दो का ख्याल आता है; इसलिए उन्होंने बड़ी होशियारी की बात कही, बड़ी बुद्धिमानी की, कि वह दो नहीं है। जब कहा कि दो नहीं है, तो इशारा तो किया

कि एक है, लेकिन एक का उपयोग नहीं किया। सिर्फ ख्याल आ जाए, भनक पड़ जाए कि वह एक है--बिना शब्द का उपयोग किए।
तो द्वंद्व को जो जान लेगा, पहचान लेगा, समझ लेगा, वह द्वंद्व के पार
हो जाता है। अस्तित्व द्वंद्व है, जहां हम खड़े हैं वहां। लेकिन हमें तो द्वंद्व का भी एक ही हिस्सा दिखाई पड़ता है।
तो तीन बातें हैं। एक, हमें द्वंद्व का एक ही हिस्सा दिखाई पड़ता है, दूसरा हिस्सा भी दिखाई नहीं पड़ता। तो पहला काम तो यह है कि हमें पूरा द्वंद्व दिखाई पड़े। जब हमें पूरा द्वंद्व दिखाई पड़ेगा, तब हमें तीसरी चीज दिखाई पड़ेगी, जो द्वंद्व के पार है। हम जहां खड़े हैं, वहां हमें प्रेम दिखाई पड़ता है, घृणा दिखाई नहीं पड़ती। अगर घृणा दिखाई पड़ती है, तो प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। अगर ये दोनों हमें दिखाई पड़ने लगें, तो हमें तीसरा दिखाई पड़ेगा, जो दोनों नहीं है, दोनों के पार है।
अद्वैत सत्य की उपलब्धि द्वंद्व की पूरी-पूरी सार्थकता को समझ लेने
से संभव होती है। और द्वंद्व की पूरी सार्थकता समझनी हो, तो लाओत्से कहता है कि जहां भी पाजिटिव हो, विधायक हो, वहां निगेटिव को खोजना, नकारात्मक को खोजना। और तुम पाओगे कि नकारात्मक पर ही सारा विधायक खड़ा हुआ है। और जब दोनों ही खो जाएं, तो वह उपलब्ध होता है, जिसे उपलब्ध करने के बाद फिर कुछ और उपलब्ध करने को शेष नहीं रह जाता है।
आज इतना ही।
पाच मिनट रुकेंगे, कीर्तन में सम्मिलित हों। और बैठे न रहें, सम्मिलित हों, भागीदार बनें।

ताओ उपनिषद, भाग दो
अठ्ठाईसवां प्रवचन

ऐंद्रिक भूख की नहीं--नाभि-केंद्र की आध्यात्मिक भूख की फिक्र

Chapter 12 : Sutra 1

The Senses

Colour's five hues from the eyes their sight will take; Music's five notes the ears as deaf can make; The flavours five deprive the mouth of taste; The chariot course, and the wild hunting waste Make mad the mind; and objects rare and strange, sought for, men's conduct will be evil change. Therefore, the sage seeks to satisfy (the craving of) the belly, and not the (insatiable longing of the) eyes.
He puts from him the later, and prefers to seek the former.

अध्याय 12 : सूत्र 1

पंचेंद्रियां

पंच रंग मनुष्य की आंखों को अंधा कर जाते हैं;
पंच स्वर उसके कानों को बहरा कर जाते हैं;
पंच स्वाद उसकी रुचि को नष्ट कर देते हैं;
घुड़दौड़ और शिकार उसके मन को पागल कर देते हैं;
दुर्लभ और विचित्र पदार्थों की खोज उसके आचरण को भ्रष्ट कर देती है।
इस कारण संत बहिर नेत्रों की दुष्पूर आकांक्षाओं की तृप्ति नहीं, वरन
उस भूख की चिंता करते हैं, जो नाभि के अंतरस्थ केंद्र में निहित है।
संत एक का निषेध और दूसरे का समर्थन करते हैं।

जहां हम जीते हैं, जैसे हम जीते हैं, उस जीवन का अंतिम फल मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है। कहा जा सकता है कि हम सिर्फ जीने के नाम पर रोज-रोज मरते हैं। और मृत्यु एक दिन अचानक नहीं आती। अचानक इस जगत में कुछ भी नहीं होता है। जिन्हें हम घटनाएं समझते हैं, वे भी घटनाएं नहीं होतीं। वे भी लंबी प्रक्रियाएं होती हैं। मृत्यु भी अचानक नहीं उतर आती। मृत्यु भी रोज-रोज विकसित होती है। इट इ.ज नॉट एन ईवेंट, बट ए प्रोसेस; घटना नहीं, एक प्रक्रिया। जन्म से ही हम मरना शुरू हो जाते हैं। मृत्यु के दिन वह मरने की प्रक्रिया पूरी होती है।
तो एक तो मृत्यु अचानक नहीं घटती, एक विकास है। इसलिए मृत्यु भविष्य में घटेगी, ऐसा नहीं; अभी भी घट रही है। हम घंटे भर यहां होंगे, तो मृत्यु घंटे भर घट चुकी होगी। हम घंटा भर और मर चुके होंगे। जीवन एक घंटा और रिक्त हो जाएगा। दूसरी बात कि मृत्यु कोई बाहरी घटना नहीं है कि आपके ऊपर बाहर से आ जाती हो। हम सब इसी तरह सोचते हैं, जैसे मौत कहीं बाहर से आ जाती है, यमदूत उसे ले आते हैं, कोई मृत्यु का संदेशवाहक आ जाता है और हमारे प्राणों को खींच कर ले जाता है। गलत है वह दृष्टि। वह दृष्टि भी इसीलिए है कि हम सदा ही दुख कोई दूसरा लाता है, इस दृष्टि से बंधे हैं, इसलिए मृत्यु भी कोई लाता होगा।
नहीं, कोई मृत्यु लाता नहीं। मृत्यु भी आंतरिक घटना है; आपके भीतर ही घटित होती है। मृत्यु कहीं बाहर से आपके भीतर प्रवेश नहीं करती; आप ही भीतर मिट जाते हैं, बिखर जाते हैं। वह जो यंत्र था आपका, वह बिखर जाता है, और मौत घट जाती है।
तो एक तो मृत्यु एक प्रक्रिया है लंबी, जन्म से शुरू होती, मृत्यु पर समाप्त होती। दूसरा, बाहर से नहीं आती, भीतर ही विकसित होती है; अंतर-घटना

है। यह बात ख्याल में आ जाए, तो हमें पता चलेगा कि हमारा पूरा जीवन रोज-रोज अनेक रूपों में मरता है। आंख देख-देख कर मिटती है और नष्ट होती है। कान सुन-सुन कर मिटते हैं और नष्ट होते हैं। स्वाद, स्वाद ले-ले कर टूटता चला जाता है, बिखर जाता है। मरते हैं हम जी-जी कर। जीना ही हमारे मरने का इंतजाम है। उसी में हम घिस जाते हैं। यंत्र बिखर जाता है, टूट जाता है, उखड़ जाता है।
लाओत्से कहता है, "पंच रंग मनुष्य की आंखों को अंधा कर जाते हैं।"
कभी इस तरह सोचा न होगा आपने कि रंग और आंख को अंधा कर जाएं! रंग तो आंख
का हमें जीवन मालूम होते हैं। रंग देखने के लिए ही तो आंख जीती है और चमकती है। रंग और रूप तो हमारी आंख का भोजन हैं। और लाओत्से कहता है, वे हमारी आंख की मृत्यु हैं।
दो अर्थों में हैं। एक तो, देख-देख कर ही आंख थकती, नष्ट होती, उपयोग की नहीं रह जाती है। बुढ़ापे के कारण बूढ़े की आंख कम देखती है, ऐसा नहीं है। बहुत देख चुकी होती है, इसलिए अब कम देखती है। देख-देख कर थक गई होती है, यंत्र घिस गया होता है। बूढ़े के कान बूढ़े होने के कारण नहीं सुनते, ऐसा नहीं है। सुन चुके होते हैं, काम कर चुके होते हैं, थक गए होते हैं। विश्राम का क्षण आ गया होता है। यंत्र अपनी उपयोगिता पूरी कर चुका। अगर इस तरह देखें, तो इसका अर्थ हुआ कि जितना हम देखते हैं, उतनी ही आंख मरती है। और जितना हम सुनते हैं, उतने ही कान बधिर हो जाते हैं। और जितना हम छूते हैं, उतना ही स्पर्श नष्ट होता है। जितना हम स्वाद लेते हैं, उतनी ही रुचि विनष्ट होती है।
इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक इंद्रिय अपनी मृत्यु की कोशिश में लगी है।
और हमारा पूरा जीवन आत्मघाती है, स्युसाइडल है। कभी सिनेमागृह से लौटते वक्त आपको लगा होगा कि आंख थक गई। आपने ख्याल नहीं किया होगा कि आंख तो आप वैसे भी खोले रखते हैं, सिनेमागृह में भी खोले रखे; तीन घंटे बाहर होते, तो वहां भी खोले रखते, सिनेमागृह में भी खोले रखे; पर ज्यादा क्यों थक गई है? तो अब दुबारा जब आप जाएं, तो ख्याल करना। सिनेमागृह में देखते समय आपकी आंख का पलक झपना बंद हो जाता है।
वह जो आंख बीच-बीच में झपक लेती है, उससे ताजी हो जाती है। वह झपकना जो है, आंख के देखने के सिलसिले को तोड़ता जाता है। लेकिन जब भी आप कहीं इतनी त्वरा से देखने लगते हैं कि झपकना भूल जाते हैं आंख का, तो आंख थक जाती है। इसलिए सिनेमागृह से लौटा हुआ आदमी एकदम से सो भी नहीं पाता। आंख तीन घंटे अपलक खुली रहने के बाद एकदम से बंद भी नहीं हो पाती। और आंख बंद भी हो जाए, तो भी सिनेमागृह में जो उसने देखा है, वह भीतर के पटल पर चलता चला जाता है। अक्सर ऐसा होता है, अक्सर ऐसा होता है कि पेंटर, चित्रकार जल्दी अंधे
हो जाते हैं। होना नहीं चाहिए। जिनकी आंखों ने इतना देखा है, उनकी आंखें तो और ताजी हो जानी चाहिए। लेकिन रंगों में जी-जी कर अक्सर, देख-देख कर अक्सर अंधे हो जाते हैं। जिस इंद्रिय का हम ज्यादा उपयोग करते हैं, वही थक जाती है और मर जाती है।
एक तो यह अर्थ हुआ। इसका प्रयोजन यह है लाओत्से का कि हम अपनी इंद्रियों को मरते क्षण तक भी ताजा और युवा रख सकते हैं। और जिस व्यक्ति ने अपनी इंद्रियों को मरते क्षण तक ताजा और युवा रखा हो, वह मृत्यु का भी स्वाद ले सकता है। मृत्यु का भी रंग देख सकता है। वह मृत्यु का भी स्पर्श कर सकता है। वह मृत्यु को भी अनुभव कर सकता है। लेकिन मरने के पहले ही हमारे अनुभव की सब क्षमताएं टूट जाती हैं। इसलिए हम कई बार मर चुके हैं, लेकिन हमें मृत्यु का कोई अनुभव नहीं है। इसकी अड़चन है।
हम सब कई बार मर चुके हैं। लेकिन यदि हम किसी से पूछें कि मृत्यु क्या
है, तो वह कहेगा मैं नहीं जानता हूं। वह भी मरा है, बहुत बार मरा है। पर उसे कुछ भी याद नहीं है। क्योंकि याद तो तभी हो सकती है, जब इंद्रियां इतनी सजग रही हों कि उन्होंने अनुभव लिया हो और अनुभव स्मृति में प्रवेश कर गया हो। मरते क्षण तक अधिक लोग, मरने की घटना बाद में घटती है, उनकी सब इंद्रियां पहले ही मर चुकी होती हैं। इसलिए मेमोरी, स्मृति निर्मित नहीं हो पाती। इसलिए मजे की बात है कि अक्सर जिन लोगों को पिछले जन्म का स्मरण होता
है, सौ में निन्यानबे मौकों पर वे लोग पिछले जन्म में युवा या बच्चे ही मर

गए होते हैं। उसका कारण है। निन्यानबे मौकों पर उनका पिछला जन्म अचानक, आकस्मिक रूप से, कम उम्र में, जब सब ताजा था, इंद्रियां ताजी थीं, स्मृति ताजी थी, बुद्धि ताजी थी, तब मौत घट गई। तो वह जो इम्पैक्ट है, वह जो संस्कार है मृत्यु का, वह भूलता नहीं, वह याद रह जाता है। अभी तक ऐसी घटना नहीं घटी है कि पिछले जन्म के स्मरण करने वाले ने किसी ने कहा हो कि पिछले जन्म में मैं नब्बे वर्ष का होकर मरा। ऐसा नहीं है कि ऐसा नहीं घट सकता, ऐसा घट सकता है। लेकिन ऐसा घटने का मौका नहीं आता, क्योंकि मरने के पहले ही उसके भीतर के सब यंत्र मर चुके होते हैं।
जो साधक अमृत की खोज पर निकला है, जिसने जीवन के परम ताओ को, परम ऋत, परम धर्म को खोजना चाहा है, उसे अपनी इंद्रियों को प्रतिपल ताजा और युवा रखना जरूरी है। तो मृत्यु का अनुभव हो सकेगा--और जीवन का भी।
यह भी बड़े मजे की बात है कि जो लोग दिन-रात रंग को देखते रहते हैं, उनके रंग की आंख ही नहीं मरती, रंग का स्वाद भी मर जाता है, रंग की प्रतीति भी मर जाती है। बोथली हो जाती है, धार नहीं रह जाती। इसलिए बच्चा जब पहली दफे जगत को देखता है, तो जैसा रंगीन होता है, वैसा जगत फिर हम कभी भी नहीं देख पाते। बच्चा जब जगत को छूता है, तो स्पर्श में जैसी पुलक अनुभव होती है, वैसी फिर हमें कभी अनुभव नहीं हो पाती। बच्चा जब स्वाद लेता है, तो स्वाद जैसा उसके रोएं-रोएं को आंदोलित और आनंदित कर जाता है, वैसा फिर हम कभी नहीं कर पाते। कारण क्या है? कारण इतना ही है कि बच्चे की सभी इंद्रियां अभी ताजी हैं। और अभी वे जो भी ग्रहण करती हैं, वह समग्र रूप से प्रवेश कर जाता है। अमरीका में सेंसिटिविटी के लिए आंदोलन चलता है, और बहुत से केंद्र हैं। एक बड़ा केंद्र कैलिफोर्निया में है--बिगसोर में। संभवतः इस सदी का महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण प्रयोग बिगसोर में चल रहा है। वह प्रयोग है कि लोगों की इंद्रिय की क्षमता को वापस लाया जाए। इक्कीस दिन के प्रयोग पर लोग जाते हैं। इक्कीस दिन में उन्हें फिर से चीजों को देखना, स्पर्श करना, स्वाद लेना सिखाया जाता है; प्रशिक्षित करना होता है।
आप जब खाना खाने बैठते हैं--सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं--तो आपको पता नहीं होगा, अगर आपकी आंख बंद कर दी जाए और आपकी नाक बंद कर दी जाए, और आपके मुंह में सेव का टुकड़ा डाला जाए और प्याज का टुकड़ा, तो आप फर्क नहीं बता सकेंगे कि प्याज में और सेव में कोई फर्क है। क्योंकि फर्क का बड़ा हिस्सा स्वाद से ही नहीं आता, आंख से भी आता है, गंध से भी आता है। तो अगर नाक और आंख बंद हैं, तो आप प्याज में और सेव में फर्क नहीं कर पाएंगे। फर्क बहुत है। अगर सिर्फ स्वाद में ही फर्क होता, तो आप कर भी लेते; लेकिन आप नहीं कर पाएंगे, क्योंकि बड़ा फर्क गंध और आंख से था।
तो बिगसोर में वे खाने के लिए देते हैं, तो वे कहते हैं, पहले खाने को स्पर्श करो, उसके रंग को देखो, उसके रूप को देखो, उसे हाथ से छुओ, उसे गाल पर लगा कर छुओ, आंख बंद करके स्पर्श करो, उसकी गंध लो, आंख से देखो, फिर मुंह में उसे डालो, फिर उसका स्वाद लो। और यह सारा सचेतन रूप से करो।
इक्कीस दिन के प्रयोग में आप भोजन में नए स्वाद, नई गंध और नए स्पर्श शुरू कर देते हैं। और उनके साथ ही आपके भोजन की पूरी प्रक्रिया बदल जाती है। क्योंकि तब उतने स्वाद, उतनी गंध और उतने रूप के द्वारा बहुत थोड़ा सा भोजन भी बहुत ज्यादा तृप्तिदायी हो जाता है।
हम सब अधिक भोजन कर रहे हैं। उसका कारण यह है कि भोजन तो हम डालते चले जाते हैं, तृप्ति बिल्कुल नहीं होती। और तृप्ति की तलाश है! तो हम सोचते हैं कि इतने भोजन से नहीं हुई, तो थोड़ा और डाल लें, उससे हो जाए। थोड़ा और डाल लें। लेकिन हमें पता नहीं, जितना हम ज्यादा डालते हैं, उतनी ही हमारी तृप्ति को अनुभव करने की जो संवेदना है, वह क्षीण होती चली जाती है। एक दिन हमारा मुंह कुछ अनुभव ही नहीं करता, वह सिर्फ डालने का स्थान रह जाता है, चीजों को हम डालते चले जाते हैं। और तब हमें उत्तेजक चीजें डालनी पड़ती हैं। एक आदमी कहता, बिना मिर्च के स्वाद ही नहीं आता। उसका कुल कारण इतना है कि मिर्च जैसा तीव्र स्वाद हो, तो ही थोड़ा-बहुत आता है। स्वाद इतना मर गया है। स्वाद इतना मर गया है कि जब तक जहर ही न डाला जाए, तब तक हमें पता ही नहीं चलता कि कुछ हो रहा है।

आसाम में, बिहार के कुछ हिस्सों में, बंगाल में, जहां तंत्र की पुरानी साधनाओं के सूत्र अब भी प्रचलित हैं, वहां साधक, तंत्र के साधक... उनकी साधना का एक हिस्सा है कि समस्त तरह के नशों को लेने के बाद भी होश कायम रहना चाहिए। तो शराब तंत्र की साधना का एक अंग है। वे इतनी शराब पीने के अभ्यस्त हो जाते हैं कि शराब तो फिर उन्हें पानी जैसी हो जाती है। किसी तरह का कोई परिणाम नहीं होता। इतना गांजा पीने लगते हैं, इतनी अफीम खाने लगते हैं कि कोई परिणाम ही नहीं होता। और तब उनको अपने पास सांप पाल कर रखने होते हैं। उनसे जीभ पर कटा लेते हैं, तब उन्हें थोड़ा सा नशे का मजा आता है। तो सांप पाल कर रखना पड़ता है। उससे कम में काम नहीं चलता। फिर उसमें भी जो और आगे निकल जाते हैं, उनको छोटे-मोटे सांप भी काम नहीं देते। फिर तो भयंकर जहरीले सांप चाहिए, जो दूसरे कोई को काट लें, तो आदमी मर जाए। लेकिन ये साधक इस जगह भी पहुंच जाते हैं कि सांप काटते ही मर जाता है। तभी उनको थोड़ा सा स्वाद होता है।
हम अपनी इंद्रियों को इतना भी मार सकते हैं। हम सब ने थोड़ी-बहुत दूर
तक मारा हुआ है। इसलिए जिनको हम शिष्ट अनुभव कहें, उदार अनुभव कहें, वे हमें होते ही नहीं। वे हमें होते ही नहीं। तीव्र अनुभव चाहिए। अगर बहुत मधुर वीणा बजती हो, तो हमें कुछ अनुभव नहीं होता, जॉज! जब पूरी हुड़दंग हो और पूरा पागलपन हो, तब थोड़ा सा हमें होश आता है कि कुछ आवाज हो रही है। सब मर गया है भीतर।
लाओत्से कहता है, रंग मार जाते आंखों को, स्वर कानों को बहरा कर देते, स्वाद रुचि को नष्ट कर जाते... ।
यह हमारी इंद्रियों की जो मृत्यु है, यह हमारे मरने के पहले ही हमें
एक कब्र में बिठा देती है। फिर हम जीते चले जाते हैं, लेकिन ताबूत के भीतर, मरे हुए, अपनी-अपनी कब्र को ढोते हुए, अपनी-अपनी लाश को घसीटते हुए। अगर हम सोचेंगे अपने को तो पता चलेगा।
इसके दोहरे दुष्परिणाम हैं। पहला तो मैंने कहा कि जीवन का जो अनुभव है, वह क्षीण हो जाता; अस्तित्व की जो प्रतीति है, वह अवरुद्ध हो जाती। और मृत्यु का जो महा अनुभव है, जो होना ही चाहिए, जिसने मृत्यु का अनुभव नहीं लिया, वह जीवन के गहरे अनुभव से वंचित रह गया। उसे जीवन का सत्य दिखाई ही नहीं पड़ेगा। उसने सिर्फ जीवन की परेशानी जानी और जीवन का परम विश्राम अनजाना रह गया। उसने दौड़ तो जानी, लेकिन विश्राम का क्षण नहीं जाना। तो मृत्यु से हम अपरिचित रह जाते हैं। यह तो एक दुष्परिणाम होता है, जो बहुत स्पष्ट है।
दूसरा दुष्परिणाम और भी गहन है। और वह यह है कि हमारी प्रत्येक इंद्रिय, कहें कि द्विमुखी है। हमारी आंख बाहर भी देखती है और हमारी आंख के भीतर वह आंख भी है जो भीतर भी देखती है। हमारे कान बाहर भी सुनते हैं और हमारे कान के पास वह अंतर-इंद्रिय भी है जो भीतर भी सुनती है।
कान बिल्कुल बंद कर दें, बिल्कुल बंद कर दें कि बाहर से जरा सी भी आवाज
न आए, तो भी हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती रहेगी। अब यह बाहर से नहीं आ रही, क्योंकि बाहर तो हथौड़े भी पड़ रहे हैं, तो सुनाई नहीं पड़ रहा है। अब यह भीतर से आ रही है। आंख बिल्कुल बंद कर लें, सारे चित्र बाहर से जो पैदा हुए हैं, उनको भी छोड़ दें, सब रूप-आकार बंद हो जाएं, तब भी भीतर नए अनुभव दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। नए रंग, जो इंद्रधनुष में नहीं हैं। नया प्रकाश, जो हमने बाहर नहीं जाना। नया अंधकार, इतना गहन, जितना बाहर कभी घटित नहीं होता। इनकी यात्रा भीतर शुरू हो जाती है। ठीक प्रत्येक इंद्रिय अपने भीतर भी अनुभव करने में सक्षम है। लेकिन चूंकि हम बाहर इतने उलझे रहते हैं कि हम धीरे-धीरे यही भूल जाते हैं कि भीतर की इंद्रिय के अनुभव का भी एक जगत था, जो बिना खुला ही रह गया।
तो लाओत्से दूसरी बात इसलिए कह रहा है कि जो लोग रंगों को देख-देख कर आंखों को अंधा कर लेंगे, उनकी बाहर की आंख तो अंधी होगी ही, भीतर की आंख बिना खुली ही रह जाएगी। बाहर की आंख को जो विश्राम देगा, उसकी भीतर की आंख सक्रिय होती है। बाहर के कान को जो विश्राम देगा, उसके भीतर नाद के अनुभव का द्वार खुलता है। बाहर के स्वाद से जो बचेगा, छुट्टी लेगा, थोड़े समय के लिए बाहर के स्वाद को बिल्कुल भूल जाएगा, कबीर ने कहा है, उसे भीतर के अमृत

का अनुभव शुरू होता है, उसे भीतर अमृत बरसने लगता है। भीतर भी एक मिठास है; पर इसे जरा पहचानना कठिन है।
कभी आपने ख्याल किया कि जब आप क्रोध में होते हैं--पर शायद ख्याल नहीं किया होगा--कि क्रोध का कोई स्वाद भी होता है! क्रोध का भी स्वाद होता है। अगर आप बहुत क्रोध में भरे हों, तो एक क्षण क्रोध को भूल कर जरा आप आंख बंद कर लें और स्वाद लेने की कोशिश करें। तो आपका मुंह सूखा हुआ होगा। तिक्त, बासापन पूरे मुंह में फैल गया होगा। मधुरता का कहीं कोई पता नहीं चलेगा। जब कभी आप प्रेम में हों, तब एक क्षण आंख बंद कर लें, प्रेम का भीतर स्वाद अनुभव करने की कोशिश करें। प्रेम का अपना स्वाद है। तब एक मधुरिमा भीतर घुलती हुई मालूम होगी। एक अपरिचित, अनजान, अदृश्य मिश्री भीतर घुल गई हो। इसका क्रोध से और इस प्रेम के स्वाद का अंतर आपको स्पष्ट दिखाई पड़ेगा। तब आप प्रत्येक भाव-दशा का स्वाद अनुभव कर सकते हैं। ध्यान का भी एक स्वाद है। तनाव का भी एक स्वाद है। और जब समस्त विचार खो जाते हैं और समस्त इंद्रियां शांत हो जाती हैं, तो जो ध्यान का स्वाद आता है, उसका नाम अमृत है।
उसका अमृत दो कारण से नाम है। एक तो उससे मधुर कोई स्वाद नहीं। और दूसरा इस कारण भी कि उस स्वाद के मिलते ही पता चलता है कि मेरी कोई मृत्यु नहीं, मैं नहीं मर सकता हूं। मृत्यु मेरी असंभव है। उस स्वाद का अनुभव ही तय कर जाता है कि मृत्यु असंभव है। जो मरता है, वह केवल यंत्र है; मैं पुनः- पुनः शेष रह जाता हूं।
लेकिन अगर हमने अपनी सारी शक्ति बाहर की इंद्रियों में ही व्यतीत कर
दी हो, अगर हमने अपनी सारी शक्ति बाहर की इंद्रियों में ही व्यय कर दी हो, और हम थक गए हों, तो हमें भीतर की इंद्रियों का तो कभी ख्याल ही नहीं आता। और शक्ति भी नहीं बचती।
हम सभी को पता है, निरंतर यह होता है, अगर कोई आदमी अंधा होता है, तो उसके कान ज्यादा तीव्र हो जाते हैं। वह ज्यादा सुन पाता है। अंधे आदमी आपके पैर की आवाज से पहचान लेते हैं कि कौन आ रहा है। आंख वाला नहीं पहचान सकता। अंधा पहचानने लगता है कि कौन आ रहा है। अंधा आवाज से जानने लगता है कि कौन बोल रहा है। अंधा आवाज के द्वारा दिशा का ज्ञान कर लेता है। अंधा सड़क पर चल भी सकता है, क्योंकि लोगों के पैर की आवाज उसे अनुभव होने लगती है।
अंधे का स्पर्श-बोध भी बढ़ जाता है। अंधा दीवार के थोड़ा करीब आता है, तो उसे एहसास होने लगता है कि टक्कर होने वाली है। आपको नहीं होगा। अंधा अभी दीवार से दूर है, लेकिन दीवार के करीब आने के पहले ही उसके भीतर कोई गहन स्पर्श होने लगता है कि दीवार करीब है और टक्कर होगी। अंधे को आप चलते हुए देखें, तो ऐसे वह चलता जाएगा, दीवार जैसे ही करीब आएगी, उसकी लकड़ी उठ जाएगी और वह टटोलना शुरू कर देगा। दीवार के पास सघनता का हवा में उसे कुछ स्पर्श हो रहा है, जिसका हमें कोई पता नहीं चलता।
अगर आप किसी आंख वाले आदमी से मुस्कुराते रहें और उसका हाथ हाथ में ले लें, तो आप उसे धोखा दे सकते हैं। हो सकता है भीतर आपके बिल्कुल मुस्कुराहट न हो, जरा भी प्रेम न हो, यह सिर्फ दिखावा हो; लेकिन वह आदमी आपका चेहरा देख कर धोखे में आ जाएगा। अंधे आदमी को आप धोखा नहीं दे सकते। अंधा आदमी आपके हाथ से पहचान लेगा कि यह आदमी प्रेमपूर्ण है या नहीं है। आंखों वालों के धोखे आंखों वालों के ही काम आ सकते हैं। अंधे आदमी को आप धोखा नहीं दे सकते उतनी आसानी से। क्योंकि उसके जांचने के ढंग अलग हैं और आपके धोखा देने के ढंग अलग हैं, दोनों कहीं मिलते नहीं। इसलिए अंधा आदमी अक्सर प्रज्ञावान हो जाता है। प्रज्ञावान इसीलिए हो जाता है कि उसके पास कुछ ऐसी समझ होती है, जो हमारे पास नहीं होती।
लेकिन क्यों ऐसा होता है? ऐसा होने का कुल कारण इतना है कि आंख से जो शक्ति व्यय होती थी, वह दूसरी इंद्रियों को मिल जाती है, ट्रांसफर हो जाती है। अगर सभी इंद्रियां बंद कर दी जाएं और एक इंद्रिय शेष रह जाए, तो वह इंद्रिय इतनी तीव्र हो जाएगी कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीलिए पशुओं की इंद्रियां हमसे ज्यादा तीव्र हैं। क्योंकि उनके पास हमसे कम इंद्रियां हैं। जितना हम पशु जगत में पीछे लौटेंगे--अगर तीन

इंद्रिय वाला पशु है, तो उसकी इंद्रियां हमसे तेज होंगी। अगर दो इंद्रिय वाला है, तो उसकी और तेज होंगी। अगर एक इंद्रिय वाला है, तो उस एक ही इंद्रिय से पांच इंद्रियों की सारी शक्ति उसकी बहती है। तो अमीबा है, जो कि सिर्फ स्पर्श करता है, उसके पास और कोई इंद्रिय नहीं। तो उसके स्पर्श का अनुभव हम कभी नहीं पा सकते कि वह स्पर्श कितनी प्रगाढ़ता से करता है। लेकिन आप कभी प्रयोग करें। कान बंद कर लें, आंख बंद कर लें, ओंठ बंद कर लें और फिर किसी को छुएं। तब आप पाएंगे कि आपके छूने में कुछ और ही अनुभव हो रहा है, आपके छूने में कोई नई विद्युत प्रवाहित हो गई है। अंधे आदमी की आंख की ताकत दूसरी इंद्रिय को मिल जाती है। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि हमारी जो इंद्रियां हैं, अगर ये बाहर नष्ट न हों, व्यतीत न हों, तो इनकी ताकत भीतर की इंद्रियों को मिल जाती है। अगर हम बाहर की इंद्रियों का बहुत संयत उपयोग करें, दुरुपयोग न करें... ।
हम जो भी कर रहे हैं, वह दुरुपयोग है। रास्ते पर आप जा रहे हैं और दीवारों के पोस्टर पढ़ रहे हैं। अगर आप न पढ़ते होते, तो कोई मेहनत करके उन्हें लिखता भी नहीं। लिखने वाले भलीभांति जानते हैं कि यहां से गुजरने वाले न्यूरोटिक हैं, वे बिना पढ़े रह ही नहीं सकते। उनको पता है कि पागल गुजरते हैं यहां से, वे पढ़ेंगे ही। और आप अगर सोचते हों कि नहीं, हम चाहें तो नहीं पढ़ेंगे, तो आप कोशिश करके देखना। आप जितनी कोशिश करेंगे, पता चलेगा भीतर कोई पागल बैठा है, वह कहता है चूको मत, पता नहीं क्या लिखा हो, पढ़ ही लो! कुछ भी नहीं लिखा है, किसी को वोट देना है कि नहीं देना है, कोई साबुन बिकनी है कि नहीं, कि कोई फिल्म देखनी है कि नहीं, वह सब लिखा हुआ है। वह हजार दफे आपने देखा है, रोज उसी सड़क से निकले हैं। फिर आज देखेंगे, फिर आज पढ़ेंगे। अब तो पढ़ने की जरूरत भी नहीं पड़ती, देखा और पढ़ लिया जाता है। और आप आगे बढ़ जाते हैं। इतना अभ्यास है।
लेकिन कभी आपने सोचा कि जो आप पढ़ रहे हैं, उसमें से कितना छोड़ा जा सकता है? जो आप सुन रहे हैं, उसमें से कितना छोड़ा जा सकता है? जो आप देख रहे हैं, उसमें से कितना कम देखें तो चल सकता है?
अगर आप इस पर थोड़ा ध्यान करेंगे, तो आप पाएंगे, जो शक्ति आपकी बच जाएगी, वह आपकी भीतर की इंद्रिय को मिलनी शुरू हो जाएगी। अब एक आदमी मेरे पास आता है, वह कहता है, हम आंख बंद करके बैठते हैं, लेकिन भीतर कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
दिखाई पड़ने के लिए कुछ ऊर्जा भी बचनी चाहिए! चुक गए हैं बिल्कुल, चला हुआ कारतूस जैसा होता है, वैसे हैं। अब बंदूक में भर कर उसको चला रहे हैं। वे कहते हैं, कुछ आवाज नहीं निकलती, धुआं तक नहीं निकलता। वह नहीं निकलेगा। चला हुआ कारतूस है, उसमें से क्या निकलेगा?
हम सब करीब-करीब चले हुए कारतूस हो जाते हैं। इतना चला रहे हैं, उसमें कुछ बचता नहीं। थके-मांदे रात लौटते हैं, कहते हैं कि ध्यान करने बैठे हैं। एकाध दफे राम भी नहीं कह पाते कि नींद लग जाती है। सुबह कहते हैं, पता नहीं क्यों, जब भी ध्यान करते हैं तो नींद आ जाती है।
आएगी ही। नींद भी आती है, यह भी चमत्कार है। इतनी भी शक्ति आपकी बच जाती है कि आप सो लेते हैं, यह भी काफी है। क्योंकि चिकित्सक कहते हैं, विशेषकर पूर्वीय चिकित्सक कहते हैं कि अक्सर अस्सी साल तक कोई आदमी जिंदा बच जाए, तो फिर मरना मुश्किल होता है। क्योंकि मरने के लिए भी एक खास शक्ति चाहिए, मरने के लिए भी! अगर अस्सी साल तक कोई बच जाए, तो फिर वह मरने में बड़ी देर लगाता है। फिर वह खाट पर पड़ा रहेगा; सब तरह की बीमारियां उसको पकड़े रहेंगी; चिकित्सक सोचेंगे, आज मरेगा, कल मरेगा, परसों मरेगा; वह है कि चलता ही चला जाता है। असल में, मरने के लिए भी, आखिरी भभक के लिए भी, तेल तो चाहिए ही कि आखिरी भभक हो और दीया बुझ जाए। उतना भी नहीं बचा है। अब वह इतने मिनिमम पर जी रहा है कि मर भी नहीं सकता। इतने न्यूनतम पर जी रहा है। इसलिए बहुत हैरानी की बात है कि स्वस्थ आदमी अक्सर पहली ही बीमारी में मर जाता है। अगर एक आदमी जिंदगी भर बीमार न पड़ा हो और पहली दफे बीमार पड़े, तो पहली बीमारी मौत बन जाती है। लेकिन जिन्होंने जिंदगी भर बीमारी का रस लिया, उनको मारना इतना आसान नहीं है। उनको मारना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वे इतने मिनिमम पर जीने के आदी हो गए हैं कि मौत के लिए भी जितनी

शक्ति की जरूरत पड़ेगी, उतनी भी वहां नहीं है। वे जीए चले जाएंगे। टिमटिमाते रहेंगे। न बुझेंगे, न जलेंगे; लेकिन टिमटिमाते रहेंगे।
नींद के लिए भी ऊर्जा तो चाहिए। ये बहुत लोग नहीं भी सो पा रहे हैं आज, उसका भी कारण यही है। इतनी भी ऊर्जा नहीं बचती कि आप रिलैक्स हो सकें, इतना कि शिथिल भी हो सकें। इतनी भी ऊर्जा नहीं बचती। तने के तने ही रह जाते हैं; खिंचे के खिंचे रह जाते हैं।
लाओत्से कहता है और समस्त पूर्वीय योग जानता रहा है कि हम अगर भीतर की इंद्रियों के जगत में प्रवेश करना चाहते हैं, तो बाहर की इंद्रियों को इतना ज्यादा व्यय करना अनुचित है। इसी का नाम संयम है। संयम का और कोई अर्थ नहीं होता। संयम का केवल इतना ही अर्थ हैः जितना जरूरी है, उतना बाहर व्यय करना, शेष भीतर की यात्रा के लिए बचाना। जितना जरूरी हो, उतना बाहर देख लेना, बाकी देखने की क्षमता को बचाना। क्योंकि भीतर एक और विराट जगत मौजूद है। और जब यह जगत छिन जाएगा, तब भी वह जगत आपका होगा। और जब यह मकान और ये द्वार और दरवाजे और ये मित्र और प्रियजन, पति और पत्नी और बच्चे और धन, यह सब छिनने लगेगा, तब भी एक संपदा भीतर होगी। लेकिन तब हमारे पास उसे देखने की आंख नहीं होती।
बाहर जो हमने जाना है, वह कुछ भी नहीं है उसके समक्ष जो भीतर है। जो स्वर हमने सुने हैं बाहर, जब हम भीतर की वीणा सुन पाते हैं, तब पता चलता है कि वह सिर्फ शोरगुल था जो हमने बाहर सुना। अगर बाहर भी वीणा के स्वर प्रीतिकर लगते हैं, तो अंतर के रहस्यों को जानने वालों का कहना है कि वे इसीलिए प्रीतिकर लगते हैं कि कुछ न कुछ भीतर के स्वरों की भनक उनमें है, बस इसीलिए। अंतर-संगीत की कुछ भनक उनमें है, इसीलिए। अगर बाहर प्रकाश अच्छा लगता है, तो अंतर-प्रकाश की कुछ झलक उसमें है, इसीलिए। और अगर बाहर के स्वाद अच्छे लगते हैं, तो थोड़ी सी मिठास का एक कण उसमें है, उस मिठास का कण जो भीतर भरी है अनंत, इसीलिए। अगर बाहर का संभोग भी अच्छा लगता है, तो सिर्फ इसीलिए कि अंतर-संभोग की एक किरण, एक झलक, एक प्रतिफलन, एक ईको, एक प्रतिध्वनि उसमें मौजूद है, बस इसीलिए। लेकिन उस पर अपने को चुका मत डालना; उस अनुभव पर अपने को समाप्त मत कर देना। अभी भीतर बड़े अनुभवों के द्वार खुल सकते हैं।
तो लाओत्से कहता है, "घुड़दौड़ और शिकार मन को पागल कर जाते हैं। दुर्लभ
और विचित्र पदार्थों की खोज आचरण को भ्रष्ट कर देती है।"
घुड़दौड़ या शिकार, या हम नए पागलपन जोड़ सकते हैं, ये लाओत्से के जमाने
के पागलपन हैं। अब तो बहुत पागलपन हैं। उस वक्त उसे दो बातें पागलपन की दिखाई पड़ी होंगीः घुड़दौड़ पर लोग दांव लगा रहे हैं, शिकार पर लोग जा रहे हैं। आज तो बहुत हैं। आज तो करीब-करीब जो भी हम कर रहे हैं, वह सभी घुड़दौड़ है और सभी शिकार है। पागल कर जाते हैं मन को।
असल में, जो व्यक्ति अपने से बाहर दांव लगाना सीख लेगा, वह पागल हो जाएगा। जिसने अपना जुआ अपने से बाहर खेलना शुरू किया, वह पागल हो जाएगा। क्योंकि वह एक ऐसी चीज के लिए दांव लगा रहा है, जो मिल नहीं सकती। स्वभावतः जिसका मिलना असंभव है, जो नहीं मिल सकती। मिल भी जाए, तो भी नहीं मिलती।
कितनी ही मिल जाए, तो भी छिन जाती है।
लाओत्से का शिष्य था लीहत्जू। लीहत्जू ने लाओत्से से छुट्टी ली कि मैं कुछ दिन यात्रा पर जाना चाहता हूं। लाओत्से ने कहा, जाओ, लेकिन सम्हल कर जाना। क्योंकि यात्रा पर जाना तो आसान, लौटना बहुत मुश्किल है। लीहत्जू को कुछ समझ में नहीं आया। कम ही सौभाग्यशाली लोग हैं कि लाओत्से जैसे लोगों की बातें उनकी समझ में आ जाएं। सुन लेना एक बात, समझ लेना बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन लीहत्जू भी जानता तो था कि समझ गया, क्योंकि शब्द तो सरल थे। शब्दों की सरलता बड़ी मुश्किल में डाल देती है; क्योंकि सरल होने से लगता है समझ गए। और सरल शब्दों को समझना इस जमीन पर सबसे ज्यादा कठिन है। क्योंकि उनका अर्थ भाषाकोश में नहीं होता, उनका अर्थ हमारे भीतर की जागरूकता में होता है। उसने लौट कर भी न पूछा लीहत्जू ने कि क्या मतलब? समझा कि कहता है लाओत्से कि जाना आसान, लौटना मुश्किल। समझ गए। लेकिन दस दिन बाद ही लीहत्जू लौट आया। और लीहत्जू से लाओत्से ने पूछा, बड़े जल्दी लौट आए? लीहत्जू ने कहा कि जैसे-जैसे जाने लगा, वैसे-वैसे समझ

में आने लगा कि जितने कदम आगे बढ़ेंगे, उतना ही पीछे लौटना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए मैंने सोचा, इसके पहले कि फंसूं, लौट चलूं। लाओत्से ने कहा, ऐसी क्या फंसावट आ गई? तो लीहत्जू ने कहा कि पहली सराय में ठहरा, सराय के मालिक ने मुझे बड़ा आदर दिया। फकीर था। पहली कुर्सी पर बिठा कर भोजन करवाया। नंबर एक उसकी सेवा की। नंबर एक के कमरे में उसे ठहराया।
लाओत्से ने कहा, तो इसमें क्या तकलीफ हुई?
लीहत्जू ने कहा, तकलीफ हुई? रात भर मैं सो न सका! अकड़ पैदा हो गई भीतर
कि मैं भी कुछ हूं, मैं भी कुछ हूं। नंबर एक भोजन, नंबर एक के कमरे में ठहरना, सराय के मालिक का पैर छूना, और उसके छूते ही सारे यात्री मेरे प्रति आदर से भर गए। पता नहीं, उनका क्या हुआ, मैं रात भर नहीं सो सका।
दूसरी सराय में पहुंचा। तो सराय के बाहर ही मैंने अपने कपड़े वगैरह ठीक कर लिए, तैयार हो गया हाथ-मुंह साफ करके। मेरी चाल बदल गई। जब मैं भीतर प्रवेश किया, तो मैं वही आदमी नहीं था, जो तुम्हारे चरणों को छोड़ कर गया था। दूसरा ही आदमी था। मैं खड़े होकर देख रहा था कि जल्दी सराय का मालिक आए, पैर छुए, पहले नंबर बिठाए, पहले नंबर के कमरे में ठहराए। कोई नहीं आया। भारी पीड़ा हुई। तृतीय श्रेणी के कमरे में ठहरने को मिला। फिर भी रात भर न सो सका।
तब मुझे बड़ी हैरानी हुई। प्रथम श्रेणी में ठहरा, तब न सो सका; तृतीय श्रेणी में सोया, तब न सो सका। मैंने सोचा, लौट चलना उचित है। खतरे में उतर रहा हूं। हालांकि मन कहता था कि एक सराय में और भी तो कोशिश करके देखो। हो सकता है, यह आदमी न पहचाना हो, अज्ञानी हो। दूसरी सराय में कोई पहचान ले। तभी तुम्हारे शब्द मुझे सुनाई पड़े कि जाना तो बहुत आसान यात्रा पर, लौटना बहुत मुश्किल है। तब मैं एकदम भागा, मैंने कहा अब रुकना खतरनाक है। कहीं ऐसा न हो कि मैं उतरता ही चला जाऊं।
हम सब ऐसे ही उतर जाते हैं। दौड़ अनेक तरह की है। वह हमें बुलाती चली जाती है। और जितने हम उतरते हैं, उतने हम फंसते चले जाते हैं। फिर लौटने के दरवाजे ही धीरे-धीरे भूल जाते हैं, रास्ता भी भूल जाता है कि कहां से हम आए थे। फिर एक ही रास्ता दिखाई पड़ता हैः इस पड़ाव से दूसरा पड़ाव, दूसरे पड़ाव से तीसरा पड़ाव। और पीछे लौटने में विषाद भी मालूम पड़ता है; कोई भी लौटना नहीं चाहता।
यह बड़े मजे की बात है। कोई भी लौटना नहीं चाहता। सब आगे जाना चाहते हैं। क्योंकि आगे जाने में अहंकार को तृप्ति मिलती है। लौटना शब्द ही मन को विषाद से भर देता है। और कोई कहे, लौट आए? तो ऐसा लगता है कि समाप्त, जिंदगी बेकार चली गई। बढ़ो, तो अहंकार रोज नई पुकार देता है और नई मृग-मरीचिका दिखाई पड़ने लगती है, उसे पाना है। फिर आदमी दौड़ता चला जाता है। यह दौड़, बाहर कुछ भी पाने की दौड़ अंततः मनुष्य को पागल कर जाती है।
पागल होने का मतलब ही इतना है कि ऐसा आदमी जो अपने से इतना बाहर चला गया कि अब अपने पास, अपने भीतर ही लौटने का उसे कुछ पता नहीं रहा। वह अपना घर ही भूल गया कि मेरा घर कहां है? अब उसे एक ही बात पता है कि वह दौड़ सकता है, रुक नहीं सकता। अब उसे एक ही बात पता है कि अगर यह चीज नहीं मिली, तो दूसरी चीज पाने को दौड़े। अगर मिल गई, तो भी दूसरी चीज पाने को दौड़े। अब वह दौड़ ही सकता है। अब उसका चित्त एक फीवर, एक ज्वर से भरा है, एक रोग से भरा है। और दौड़े बिना उसको कोई चारा नहीं। रुक नहीं सकता, ठहर नहीं सकता है। एक मेरे मित्र हैं। मिलिटरी में कर्नल हैं। उनकी पत्नी मुझे सुनने आती थीं। मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारे पति कभी-कभी मुझे मिलने तो आते हैं, कभी-कभी तुम्हें छोड़ने भी आते हैं, लेकिन कभी उन्हें मैंने बैठा नहीं देखा कि कभी उन्होंने सुना हो बैठ कर। उनकी पत्नी ने कहा, वे बैठ नहीं सकते। कर्नल हैं, वे चलते रहते हैं। वे आपको बहुत सुनना चाहते हैं। टेप करके मैं ले जाती हूं, वे लगा लेते हैं टेप और कमरे में टहलते रहते हैं, तो सुन पाते हैं। वे इतना घंटे भर एक कुर्सी पर बैठ नहीं सकते। और फिर आपके सामने उनको अच्छा भी नहीं लगता कि वे करवट बदलते रहें पूरे वक्त। और वे दस-पांच दफे बीच में उठ कर बाहर जाएं, भीतर आएं, तो वह उन्हें अशोभन भी लगता है। लेकिन वे बैठ नहीं सकते।

हम सबका चित्त ऐसी ही हालत में हो जाता है। बैठ नहीं सकता, रुक नहीं सकता, विश्राम नहीं कर सकता। और-और-और, हम भागे चले जाते हैं।
लाओत्से कहता है, मन पागल हो जाता है।
पागल का एक ही अर्थ है कि जो विश्राम करने में असमर्थ हो गया। अगर आप विश्राम करने में समर्थ हैं, तो आप समझना कि आप पागल नहीं हैं। अगर विश्राम के आप मालिक हैं, तो समझना कि आप पागल नहीं हैं। और अगर आप विश्राम करने में समर्थ नहीं हैं और अपनी मौज से विश्राम नहीं कर सकते, तो समझना कि पागलपन की कोई न कोई मात्रा आपके भीतर है। मात्रा का फर्क हो सकता है, लेकिन मात्रा है। अगर आप इतने भी मालिक अपने नहीं हैं कि लेट जाएं और कहें कि शरीर को छोड़ दिया विश्राम में और शरीर विश्राम में छूट जाए, अगर आप इतने भी मालिक नहीं हैं कि आंख बंद कर लें और आंखों से कह दें कि सो जाओ तो आंखें सो जाएं, तो आपके भीतर पागलपन की एक मात्रा है।
मात्रा कम-ज्यादा हो सकती है। मात्रा कभी भी बढ़ सकती है। और चौबीस घंटे में घटती-बढ़ती रहती है। किसी दिन आसानी लगती है विश्राम करने में, किसी दिन बहुत मुश्किल हो जाता है। घटनाएं चारों तरफ घटती रहती हैं। किसी दिन ऐसी घटना घटती है कि पागलपन ज्यादा तेजी से दौड़ने लगता है। किसी ने इतना ही कह दिया कि पता है तुम्हें कि नहीं, कोई कहता था कि तुम्हारे नाम लाटरी खुल गई है! मन एकदम दौड़ पड़ेगा पूरे पागलपन से। खरीद लेगा चीजें, जो कभी नहीं खरीदनी चाहीं। न मालूम क्या-क्या कर डालेगा! फिर उस रात नींद नहीं आ सकती। लाटरी अभी मिली नहीं, लेकिन उस रात नींद नहीं आ सकती। अब विश्राम के आप मालिक न रहे। लाटरी ने बड़ी दौड़ को गति दे दी।
चित्त को चौबीस घंटे चारों तरफ कुछ घट रहा है, जो बुलाता है, दौड़ाता है। आप दौड़ने को सदा तत्पर हैं। विश्राम तो आपको तभी होता है, जब सौभाग्य से बाहर कोई दौड़ नहीं होती।
मगर वह आपके हाथ में नहीं है। वह आपके हाथ में नहीं है। वह बिल्कुल नियति है, कहें कि भाग्य है। रास्ते पर चलता एक आदमी गाली दे जाए, दौड़ हो जाएगी शुरू। वह आपके हाथ में नहीं है। करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। लोग ही नहीं हैं, पड़ोसी का कुत्ता ही जोर से भौंकने लगे, तो रात उसका भी विचार चलता है कि क्यों भौंक रहा था! घर आएं और घर का कुत्ता पूंछ ही न हिलाए, तो भी चिंता हो जाती है कि आज कुत्ते ने पूंछ नहीं हिलाई! उससे भी हमारे संबंध बन जाते हैं। हमारा अहंकार उससे भी रस लेने लगता है। अगर कुत्ते ने पूंछ नहीं हिलाई, तो गड़बड़ हो गई, सारी जिंदगी बेकार है। घर आता है आदमी, तो देखता आता है कि कुत्ता पूंछ हिला रहा कि नहीं हिला रहा। तरह-तरह के कुत्ते हैं, तरह-तरह की पूंछें हैं। छोटी सी बात, लेकिन चित्त पागल है, तो पागल हो सकता है। कोई भी बहाना काफी है, कोई भी बहाना काफी है।
लेकिन इसके पागल होने का जो सीक्रेट, जो राज है, वह एक ही है। जब तक आप अपने से बाहर किन्हीं चीजों के लिए दौड़ रहे हैं, तब तक आप अपने को पागल किए चले जाएंगे। और जितने आप पागल हो जाएंगे, उतने ही दुखी, उतने ही संताप से भर जाएंगे, उतने ही बड़े नर्क में आपका निवास हो जाएगा।
"दुर्लभ पदार्थों की खोज आचरण को भ्रष्ट कर जाती है।"
असल में, आचरण बड़ी गहरी चीज है। आचरण का ऐसा मतलब नहीं है कि एक आदमी सिगरेट नहीं पीता, तो बड़ा आचरणवान है। ऐसा कुछ मतलब नहीं है। क्योंकि कभी- कभी तो ऐसा हो सकता है कि सिगरेट न पीने के कारण वह जो कर रहा हो, वह और भी बड़ी आचरणहीनता हो। क्योंकि हमको सब्स्टीट्यूट खोजने पड़ते हैं, विकल्प खोजने पड़ते हैं।
इसलिए आपने अनुभव किया होगा कि अक्सर जो लोग सिगरेट पीते हैं, पान खाते हैं, चाय पीते हैं, काफी पीते हैं, कभी थोड़ी शराब भी पी लेते हैं, वे ज्यादा मिलनसार आदमी होते हैं। जो इनमें से कुछ भी नहीं करते, उनसे दोस्ती बनानी तक मुश्किल है, वे मिलनसार होते ही नहीं। बहुत अकड़े हुए होते हैं। क्योंकि वे सिगरेट नहीं पीते, चाय नहीं पीते, तो उनकी रीढ़ बिल्कुल अकड़ जाती है, झुकती ही नहीं। वे दूसरे की तरफ ऐसे देखते हैं, जैसे वे आसमान पर खड़े हैं, दूसरा कीड़ा-मकोड़ा है। उनको आदमी नहीं दिखाई पड़ते। आपने सिगरेट पी, गए! आप आदमी नहीं रहे, कीड़े-मकोड़े हो गए। आप पान खा रहे हैं, आप गए। आपकी कोई स्थिति न रही। तो इससे तो बेहतर था यह आदमी सिगरेट पी लेता। सिगरेट

पीने से इतना कुछ नुकसान न था। यह जो अहंकार पी रहा है, यह बहुत खतरनाक है, जहरीला है।
इसलिए तब तक मैं किसी आदमी को भला नहीं कहता, जब तक इतना भला न हो कि दूसरे की बुराई को पाप मानने की प्रवृत्ति में न पड़े। तब तक कोई आदमी भला नहीं है, तब तक आचरणवान नहीं है। आचरण का एक ही अर्थ है कि इतना भला है कि दूसरे की बुराई को भी बुराई नहीं देखता। दूसरे की निंदा करने की क्षमता का खो जाना आचरण है। तब तो हमारे तथाकथित साधु-संन्यासी आचरण में नहीं टिक सकेंगे, हैं भी नहीं। आपके और उनके आचरण में भेद नहीं है; सिर्फ चीजों का भेद है। जो आप कर रहे हो, उसकी वजह से आप पापी हो; वही वे नहीं कर रहे हैं, इसलिए पुण्यात्मा हैं। लेकिन टिके दोनों ही सिगरेट पर हैं; वे नहीं पी रहे हैं, आप पी रहे हो। लेकिन दोनों का आचरण सिगरेट से बंधा है।
अगर आप अपने साधु की साधुता पूछने जाएं, तो पता क्या चलेगा? वह यह नहीं खाता, यह नहीं पीता, यह नहीं पहनता, यह उसकी साधुता है! और आपको वह साधु लगता भी है। लगना स्वाभाविक भी है, क्योंकि आप यह खाते हैं, यह पहनते हैं, यह पीते हैं। तो यह भेद है आपके आचरण का। और अक्सर यह जो साधु है, यह खतरनाक हो जाता है। क्योंकि यह आदमी आपकी ही हैसियत का है। अगर यह सिगरेट पीता, तो आप ही जैसा होता। यह सिगरेट नहीं पीता है, तो सिगरेट न पीने का जो कष्ट उठा रहा है, जो पीड़ा झेल रहा है, उसको यह तप कहता है, उसको तपश्चर्या कहता है। अब सिगरेट न पीना कोई तपश्चर्या है? सच तो यह है कि सिगरेट पीना ही तपश्चर्या है। धुएं को डालना और निकालना काफी तप है। साधु-संन्यासी पुराने धूनी रमा कर बैठते थे। आप अपनी धूनी साथ में लिए, पोर्टेबल धूनी अपनी साथ लिए घूम रहे हैं, तप कर रहे हैं। आग और धुआं दोनों मौजूद हैं। और जहर पी रहे हैं। एक आदमी यह नहीं पी रहा है, वह तपस्वी है! वह आपके सिर पर खड़ा हो जाएगा। वह जब भी आपकी तरफ देखेगा, तो उसकी आंखों में नर्क की तरफ का इशारा रहेगा कि सीधे नर्क जाओगे। और कहीं कोई उपाय नहीं है।
आचरण इन क्षुद्र चीजों से निर्मित नहीं होता। कम से कम लाओत्से जैसे व्यक्ति की धारणा आचरण की यह नहीं है। लाओत्से की आचरण की धारणा बड़ी अदभुत है। लाओत्से कहता है, जो लोग बाहर की वस्तुओं को पाने में दौड़ते रहते हैं, दुर्लभ, विचित्र वस्तुओं को पाने में दौड़ते रहते हैं, उनका आचरण भ्रष्ट हो जाता है। तो इसका मतलब यह हुआ कि जो बाहर की वस्तुओं को पाने के लिए नहीं दौड़ते, वे आचरण को उपलब्ध हो जाते हैं। तो आचरण का अर्थ हुआ, जो इतने तृप्त हैं अपने भीतर कि बाहर की कोई चीज उन्हें पुकारती नहीं। एक अंतःतृप्ति का नाम आचरण है। एक सेल्फ कंटेंटमेंट का नाम आचरण है। इतना तृप्त है कोई व्यक्ति अपने भीतर कि बाहर की कोई चीज उसके लिए दौड़ नहीं बनती--कोई चीज दौड़ नहीं बनती। इसका मतलब हुआ कि कोई चीज उसे दौड़ा नहीं सकती है। कोई चीज इतनी महत्वपूर्ण नहीं है कि उसे दौड़ना पड़े। जो इतना थिर है अपने में कि जगत की कोई चीज उसे दौड़ा नहीं सकती। लाओत्से कहता है कि उसके पास आचरण है, करेक्टर है। उसके पास वर्चू है, उसके पास गुण है।
निश्चित ही, अगर कोई व्यक्ति अपने में इतना भरा-पूरा है, कहीं कोई कमी अनुभव नहीं करता कि किसी चीज से भरी जाए, तो उसके पास एक आत्मा होगी, एक इंटिग्रेटेड विल, उसके पास एक समग्रीभूत संकल्प होगा। उसके पास एक भीतर व्यक्तित्व होगा, एक स्वर होगा, एक ढंग होगा। उसका जीवन एक ऐसी ज्योति की तरह होगा, जिसे हवा के झोंके हिला नहीं सकते।
हमारी ज्योति ऐसी है कि हवा के झोंके भी न हों, तो भी कंपती रहती है। असल में, हवा के झोंके न हों, तो हमको बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है कि कोई क्या कहेगा, बिना ही झोंके के कंप रहे हैं। हम झोंकों को बुलाते रहते हैं कि आओ! ताकि कम से कम यह बहाना तो रहे कि हम नहीं कंप रहे हैं, ये हवा के झोंके से हम कंप रहे हैं।
अगर आदमी को चौबीस घंटे एक कमरे में बंद कर दिया जाए, तो बड़ी हैरानी की बात कि अकेला रह कर भी वह बीच-बीच में क्रोधित हो जाता है--अकेला रह कर! तीन महीने अगर आपको बंद कर दिया जाए, तो आपको पहली दफे पता चलेगा कि क्रोध के लिए किसी दूसरे की जरूरत ही नहीं है। और जिंदगी भर आप यही सोचते रहे कि फलां आदमी ने यह कह दिया, इसलिए मैं क्रोधित हो गया। नहीं तो मैं क्यों क्रोधित होता? यह सिर्फ हवा का बहाना ले रहे हैं आप।

कभी अकेले तीन महीने रह कर देखें और नोट करें, तो आप पाएंगे कि अचानक क्रोधित होते हैं, अचानक कामवासना से भर जाते हैं। तब आपको पता चलेगा कि यह सुंदर स्त्री जो दरवाजे से निकल गई, इसने हवा का झोंका नहीं भेजा था। आप तैयार ही थे, बहाना ही खोज रहे थे कि कोई हवा का झोंका आ जाए, तो मैं कह सकूं कि इसमें मेरा क्या कसूर है? यह सुंदर स्त्री यहां से निकली क्यों? यह सुंदर क्यों है? इसने ऐसा साज-शृंगार क्यों किया? अब मैं क्या कर सकता हूं?
नहीं, आप तीन महीने अकेले बंद हों, तब आपको पता चलेगा। बहुत संभावना
तो यह है कि कोई स्त्री नहीं निकलेगी और सुंदर स्त्रियां आप अपनी कल्पना में ही मौजूद कर लेंगे। और उन्हीं को आस-पास घुमाने लगेंगे। और फिर आप कंपित होने लगेंगे। यह हवा आपकी ही बनाई हुई है। यह लौ के आस-पास अपनी ही हवा के झोंके आप पैदा कर रहे हैं।
तीन महीने, वैज्ञानिक कहते हैं, एक आदमी को अगर बिल्कुल ही डिप्राइव
कर दिया जाए उसके सब अनुभव से, तो वह सभी अनुभवों को खुद पैदा कर लेगा। वह बातें करने लगेगा उन लोगों से... ।
अपने घर में आप अकेले चुप नहीं बैठते हैं और लोगों से यही कहते हैं कि क्या करें, मित्र आ गए, इसलिए बातचीत करनी पड़ी। हालांकि आप प्रतीक्षा करते हैं! जिस दिन मित्र नहीं आते, उस दिन प्रतीक्षा करते हैं कि अब तक क्यों नहीं आए! तीन महीने आपको बंद कर दिया जाए, तो आप काल्पनिक मित्र पैदा कर लेंगे और उनसे बातचीत शुरू हो जाएगी। दोनों काम आप करेंगेः अपनी तरफ से भी बोलेंगे, उनका जवाब भी देंगे। यह हो जाएगा।
यह मैं यह कह रहा हूं कि हमारे चित्त की जो दशा है, हमारे आचरण की जो दशा है, वह डांवाडोल है। कंपन हमारा स्वभाव हो गया है। वही हमारा आचरण है। लाओत्से कहता है, कंपित होना ही आचरण का नष्ट हो जाना है; अकंप होना ही आचरण है।
अकंप का क्या अर्थ हुआ? अकंप का क्या यह अर्थ हुआ कि यह खाना मत खाओ,
वह पीना मत पीओ, यह कपड़े मत पहनो? नहीं! लेकिन कोई कपड़ा ऐसा न हो कि जो कंपित करे। और कोई खाना ऐसा न हो, जो कंपित करे। क्या अकंप होने का यह मतलब है कि किसी के साथ मत रहो? नहीं, साथ सबके रहो, लेकिन किसी का साथ कंपित न करे। और अगर किसी का साथ खो जाए, तो कंपन का पता भी न चले। अकंप का अर्थ होता है भाग जाना नहीं। अकंप का अर्थ होता है, ये सारे तूफान चलते रहें, चलते रहें, मेरी चेतना की लौ धीरे-धीरे थिर हो जाए।
यह हो जाती है। अगर हमने लाओत्से की सलाह मानी और इंद्रियों को विश्राम दिया, ताजा रखा, भीतर की इंद्रियों को जगाया, अगर हम पागलपन की चीजों के पीछे न दौड़े, अगर हमने व्यर्थ की चीजों के संग्रह को अपना मोह न बनाया, अगर हम वस्तुओं के लिए दीवाने न हुए, तो धीरे-धीरे वह आचरण उपलब्ध होता है, जो कि भीतर चेतना को थिर कर जाता है।
यह आचरण की थिरता, यह ठहर जाना चेतना का बड़ी और बात है! और जब किसी की चेतना ऐसी ठहरती है, तो वह आपको निंदा से नहीं देखता। और वह यह भी नहीं देखता कि आप यह खा रहे हैं, यह पी रहे हैं, इसलिए पापी हो गए हैं। यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं, इसलिए पापी हो गए हैं। नहीं, वह तो एक ही पाप जानता है कि आप चौबीस घंटे कंपित हो रहे हैं, बस। इससे फर्क नहीं पड़ता कि आप किस चीज से कंपित हो रहे हैं। चीजें बदल सकती हैं। कंपन जारी रह सकता है। कंपन नहीं हो जाना चाहिए, शून्य हो जाना चाहिए।
"इस कारण संत बहिर-नेत्रों की दुष्पूर आकांक्षाओं की तृप्ति नहीं करते।"
इसमें शब्द देखने जैसे हैं।
"इस कारण संत बहिर-नेत्रों की--बाहर की इंद्रियों की--दुष्पूर आकांक्षाओं की... ।"
ऐसी आकांक्षाओं की जो कभी पूरी ही नहीं होतीं, जो स्वभाव से दुष्पूर हैं, जिनके पूरे होने की नियति में ही कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसा नहीं है कि हमारे श्रम की कमी है, कि हमारी दौड़ की क्षमता नहीं है। नहीं, वस्तु ही दुष्पूर है। जैसे कि कोई आदमी एक मरुस्थल में प्यास से भरा हुआ देखता है सामने भरा हुआ सरोवर। भागता है, दौड़ता है, पहुंचता है वहां, लेकिन सरोवर

वहां नहीं है--और आगे दिखाई पड़ने लगा। इसमें इस आदमी के दौड़ने में कोई कमी नहीं है, इस आदमी की प्यास में कोई कमी नहीं है, इस आदमी के श्रम, उद्योग में कोई कमी नहीं है। लेकिन जिसके पीछे यह दौड़ रहा है, वह है ही नहीं। इसलिए दुष्पूर है, यह कभी पहुंचेगा नहीं। हमेशा दौड़ सकता है और हमेशा मान सकता है कि आगे अगर थोड़ा और दौड़ जाऊं, तो मिल जाएगा। जो भी हम जीवन में पा रहे हैं, वह वैसा ही दुष्पूर है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने पहली शादी की। तो उसने अपने नगर की जो सुंदरतम स्त्री थी, उससे विवाह किया। लेकिन दो साल बाद फिर वह नई पत्नी की तलाश में घूमने लगा। तो उसके मित्रों ने कहा कि अब क्या मामला है? तुमने सुंदरतम स्त्री को ब्याहा, अब तो गांव में उससे सुंदर कोई भी नहीं! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि अब मैं सबसे कुरूप स्त्री से विवाह करना चाहता हूं। क्योंकि सुंदर को देख लिया। जो पाया, वह सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है। तो अब मैं सबसे कुरूप स्त्री से विवाह करना चाहता हूं। लोगों ने कहा, पागल हुए हो! जब सुंदर से सुख न मिला, तो कुरूप से क्या खाक मिलेगा! पर नसरुद्दीन ने कहा कि जरा विपरीत स्वाद, शायद! यह ढोल सुहावना सिद्ध हुआ, लेकिन ढोल निकला। अब जरा हम विपरीत को खोजें।
नहीं माना, ढूंढ़ कर उसने एक कुरूप स्त्री से शादी कर ली। दो साल बाद वह फिर तलाश में था। मित्रों ने कहा, क्या पागल हो गए हो? अब तो तुमने दोनों अनुभव ले लिए, जो कि बड़े असंभव हैं जगत में। सुंदरतम और कुरूपतम को, तुमने दोनों को पा लिया। अब तुम किसकी तलाश कर रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा कि अब की बार जब मैं आऊंगा विवाह करके, तभी तुम देखना।
बड़ी सनसनी रही गांव में। ऐसे सनसनी का आदमी था, अब यह क्या करेगा?
एक दिन आखिर बैंड-बाजा बजाता हुआ, घर के सामने पालकी लेकर हाजिर हो गया। सारा गांव इकट्ठा हो गया। नसरुद्दीन बड़ी अकड़ से अपने घोड़े पर बैठा हुआ है। दूल्हे का पूरा साज बना रखा है। लोग एकदम दीवाने और उतावले हुए जा रहे हैं कि डोली उतारी जाए, देखी जाए, किससे विवाह कर लाया है! डोली उतारी गई, खोली गई, वह खाली थी। उसमें कोई भी नहीं था। नसरुद्दीन ने कहा कि अब खाली डोली से विवाह कर आया हूं। हर बार भर कर डोली लाया, दुख उठाया। अब इस बार खाली डोली ले आया हूं।
और कहते हैं कि नसरुद्दीन अपनी वसीयत में लिख गया है कि जो उन दो स्त्रियों से नहीं पाया, वह खाली डोली से पाया। बड़ी शांति मिली; बड़ा सुख पाया।
खाली डोली से मिल सकता है। खाली डोली से मिल सकता है। क्योंकि जो खाली डोली को विवाह करने गया, उसकी मृग-मरीचिका टूट गई।
हम बदलते रहते हैं एक आब्जेक्ट से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा। हर बार बदल लेते हैं वस्तु को, विषय को। लेकिन दौड़ जारी रहती है। यह दौड़ दुष्पूर है। यह कभी भर नहीं सकती। ऐसा नहीं है कि किसी और के साथ भर जाती, यह भर नहीं सकती। यह वासना का स्वभाव ही दुष्पूर है।
"लेकिन संत उस भूख की चिंता करते हैं, जो कि नाभि के अंतरस्थ केंद्र में निहित है।"
उस भूख की चिंता करते हैं, जो कि नाभि के अंतरस्थ केंद्र में निहित है! मैंने पीछे आपको कहा कि लाओत्से, अस्तित्व का मूल केंद्र नाभि के निकट मानता है। और ठीक मानता है। तो एक तो हमारे बाहर इंद्रियों का फैलाव है। इन इंद्रियों का सारा का सारा संबंध मस्तिष्क से है। ध्यान रहे, आंख तो मस्तिष्क में है ही, तो उसका संबंध है; कान भी मस्तिष्क में है, उसका संबंध है; लेकिन आप जान कर हैरान होंगे कि जननेंद्रिय, सेक्स की वासना तो सिर में नहीं जुड़ी है, लेकिन वह भी मन से ही संबंधित है। इसलिए मन में जरा सी कामवासना उठे कि कामवासना का केंद्र सक्रिय हो जाता है--जरा सी वासना! तो समस्त इंद्रिय और वासनाएं मस्तिष्क में ही संयुक्त हैं। और हमारी चेतना को भी हम मस्तिष्क में ही बिठाए हुए हैं।
लाओत्से कहता है, इसे नीचे उतारो, इसे हृदय के पास लाओ। हृदय के पास आकर भी वासनाओं में रूपांतरण हो जाता है। और नीचे उतारो, नाभि के पास लाओ। तो वासनाएं शून्य हो जाती हैं और एक नई भूख का अनुभव होता है। उस भूख का नाम ही अध्यात्म है। एक नई भूख का अनुभव होता है। नाभि के पास जैसे ही

चेतना आती है, एक नई भूख का अनुभव होता है। तब यह सवाल नहीं होता कि मैं क्या पा लूं, क्या हो जाऊं। तब यह सवाल नहीं होता। तब यही सवाल होता है कि जो मैं हूं, उसे जान लूं। हो जाऊं नहीं; जो मैं हूं, उसे जान लूं। यह एक नई भूख। वस्तुतः जो मेरा सत्य है, वही मेरे सामने प्रकट हो जाए। मुझे कुछ पाना नहीं, मुझे कुछ होना नहीं। मैं जो हूं सदा से, उसे ही जान लूं, उसका ही उदघाटन हो जाए। पर्दा उठ जाए और मैं पहचान लूं कि मैं हूं कौन! यह है भूख नाभि की। जैसे ही चेतना को कोई नाभि के पास लाता है, वैसे ही उसके जीवन में एक नया प्रश्न खड़ा होता है कि मैं कौन हूं?
समस्त अध्यात्म इस भूख का उत्तर है। समस्त योग, समस्त साधनाएं, इस भूख
का उत्तर हैं। इस प्रश्न को खोज लेने, इसके उत्तर को पा लेने की विधियां हैं।
पर हमारी और सब तरह की भूख हमें पता है। हमें पता है कि एक बड़ा मकान, उसकी हमें भूख है; एक बड़ी संपदा की राशि, उसकी हमें भूख है; एक यश, उसकी हमें भूख है; प्रतिष्ठा, नाम, उसकी हमें भूख है। सब तरह की भूख हैं। एक भूख का हमें कोई भी पता नहीं--कि मैं कौन हूं, उसे भी जान लूं! मैं क्या हूं, उसे भी जान लूं!
यह अंतरस्थ नाभि की भूख है। और जिस व्यक्ति में यह भूख पैदा हो जाती है, उसका जीवन एक नई खोज पर निकल जाता है। क्योंकि भूख के बिना खोज नहीं। भूख न हो, तो खोज कोई क्यों करे? जिसकी भूख होती है, उसकी हम खोज करते हैं। तो लाओत्से कहता है कि संत इस कारण न तो रंग की भूख से भरते, न स्वाद की, न ध्वनि की, न स्पर्श की। वे इंद्रियों की भूख से अपने को आपूरित नहीं करते। वे अपनी चेतना को हटाते हैं उस भूख की तरफ, जो नाभि के अंतरस्थ केंद्र पर छिपी है--स्वयं को जानने की भूख, स्वयं होने की भूख, स्वयं को पाने की भूख।
"संत पहली का निषेध और दूसरी का समर्थन करते हैं।"
संत नहीं कहते कि तुम समस्त भूख छोड़ दो। वे कहते हैं, कुछ भूखें हैं, जिनको तुम कितना ही भरो, वे कभी पूरी न होंगी। वे तात्कालिक हैं।
इसे थोड़ा समझ लें। हमारी समस्त इंद्रियों की भूखें तात्कालिक हैं। आज आपने भोजन दिया है पेट को, चौबीस घंटे भर बाद भोजन फिर देना पड़ेगा। क्योंकि भोजन चौबीस घंटे में चुक जाएगा। वह ठीक वैसा ही है जैसे अपनी कार में आपने पेट्रोल डाला है, आप चलाएंगे कार को, वह चुक जाएगा; फिर पेट्रोल डालना पड़ेगा। लेकिन तब आप कार से कोई जद्दोजहद नहीं करते कि तू कैसी कार है, अभी आठ घंटे पहले पेट्रोल दिया था, अब फिर वही बात! तब आप संयम भी नहीं करते कि अब हम बिना ही पेट्रोल डाले कार को चलाएंगे, उपवास पर रखेंगे। आप जानते हैं कि कार की जरूरत है। अगर कार में पेट्रोल नहीं डालना है, तो कृपा करके कार से नीचे उतर जाइए। अगर शरीर को भोजन नहीं देना है, तो कृपा करके शरीर से बाहर हो जाइए, छोड़िए। शरीर की चौबीस घंटे की जरूरतें हैं, वह चौबीस घंटे में पुनरुक्त मांग करेगा।
तो शरीर की जरूरतें तो मांग पैदा करती चली जाएंगी, क्योंकि शरीर तो एक यंत्र है। इसलिए रोज उसको भर दें, वह रोज खाली हो जाएगा। कभी आप शरीर के भरेपन से उस भरेपन को नहीं पा सकेंगे, जो फिर खाली न हो।
लेकिन इसमें कुछ चिंतित होने की बात भी नहीं है। यह ठीक ही है। इसमें परेशान होने की भी जरूरत नहीं है। इसलिए कुछ नासमझ शरीर के दुश्मन हो जाते हैं। वे कहते हैं, शरीर को देने से क्या फायदा, क्योंकि यह तो फिर मांगने लगता है। लेकिन शरीर को रखना है अगर... । और शरीर को वे रखे ही चले जाते हैं। खाना कम देने लगते हैं, पानी कम देने लगते हैं, विश्राम कम देने लगते हैं। सोचते हैं कि वे शरीर के साथ कोई बड़ी भारी विजय-यात्रा पर लगे हैं।
वे सिर्फ नासमझी में लगे हैं। असल में, उनकी भी आकांक्षा यही थी कि शरीर को एक दफे तृप्त कर दें और वह सदा के लिए तृप्त हो जाए। वह नहीं हुआ, इसलिए वे परेशान हैं। आपकी नासमझी यह है कि आप सोचते हैं कि रोज-रोज तृप्त करके एक दिन ऐसी जगह पहुंच जाएंगे कि फिर तृप्त करने की जरूरत न रहेगी। उनकी भी नासमझी यही थी। लेकिन वे आपसे विपरीत हो गए। वे कहते हैं, अब हम तृप्त ही न करेंगे। क्योंकि यह तृप्ति तो पूरी होती नहीं। लेकिन दोनों की उलझन एक है। एक शरीर को तृप्त करके सोच रहा है कि परम तृप्ति पा लूंगा। एक

शरीर की तृप्ति रोक कर सोच रहा है कि परम तृप्ति पा लूंगा। लेकिन दोनों को उस परम भूख का ही पता नहीं है, जो परम रूप से तृप्त हो सकती है।
ध्यान रखें, क्षुद्र भूख क्षुद्र समय के लिए ही तृप्त होगी। जब पेट में भूख लगती है, तो यह कोई अल्टीमेट, कोई परम भूख तो नहीं है। जब प्यास लगती है, तो यह प्यास कोई चरम प्यास तो नहीं है। जितनी प्यास की हैसियत है, दो बूंद पानी डाल देते हैं, वह तृप्त हो जाती है। लेकिन दो बूंद की जितनी हैसियत है, उतनी देर में वह वाष्पीभूत होकर उड़ जाता है, प्यास फिर लग आती है। क्षुद्र भूख हो, तो क्षुद्र ही परिणाम होगा।
परम भूख का हमें पता ही नहीं है। परम भूख एक ही है--अस्तित्व को जानने की, अस्तित्व के साथ एक होने की, अस्तित्व के उदघाटन की। उसे सत्य कहें, उसे परमात्मा कहें, जो नाम देना चाहें दें। लेकिन वह परम भूख लाओत्से कहता है, इंद्रियों से हटाएं अपनी चेतना को, डुबाएं चेतना को नाभि के निकट, मस्तिष्क से नीचे उतारें। और जिस दिन नाभि के पास आप पहुंच जाएंगे, उसी दिन उदघाटन होगा--एक नई प्यास!
उसी प्यास का नाम प्रार्थना है, उसी प्यास का नाम ध्यान है। और उसी प्यास से जो खोज है, वह खोज धर्म है। और उस प्यास से चल कर जब आदमी उस सरोवर पर पहुंचता है जहां वह प्यास तृप्त होती है, तो उस सरोवर का नाम परमात्मा है।
आज इतना ही।
अब रुकें, जाएं न पांच मिनट। और कुछ लोग सम्मिलित होना चाहते हैं ऐसा लगता है, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाते। वे भी नीचे आ जाएं और सम्मिलित हों। और इतनी हिम्मत न हो, तो बैठ कर वहीं ताली दें, वहीं से सम्मिलित हों।

ताओ उपनिषद, भाग दो
उन्तीसवां प्रवचन

ताओ की साधना--योग के संदर्भ में

बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। एक प्रश्न दो-तीन मित्रों ने पूछा है और स्वाभाविक है कि आपके मन में भी उठे।

योग ऊर्ध्वगमन की पद्धति है, ऊर्जा को, शक्ति को ऊपर की ओर ले जाना है।
और लाओत्से की पद्धति ठीक विपरीत मालूम पड़ती है--ऊर्जा को नीचे की ओर, नाभि की ओर लाना है। तो प्रश्न उठना बिल्कुल स्वाभाविक है कि इन दोनों पद्धतियों में कौन सी पद्धति सही है?

हमारे मन में ऐसे प्रश्न इसीलिए उठते हैं कि हम चीजों को तत्काल विपरीत में तोड़ लेते हैं, विरोध में तोड़ लेते हैं। और हमारे मन में ख्याल ही नहीं आता कि विपरीत के बीच भी एक सामंजस्य है। लाओत्से उसी की ही बात कर रहा है। इसे ऐसा समझें, यह विपरीतता दिखाई पड़ती है। लाओत्से कहता है कि मस्तिष्क से जीवन-ऊर्जा को वापस नाभि के पास ले आना है। नाभि के पास आते ही अस्तित्व से मिलन हो जाएगा। योग कहता है, ऊर्जा को काम-केंद्र से, मूलाधार से उठा कर सहस्रार तक, मस्तिष्क तक लाना है। और सहस्रार के पार जाते ही विराट से मिलन हो जाएगा। ये दो अतियां हैं। और दोनों अतियों से छलांग हो सकती है। लेकिन मध्य से कहीं भी छलांग नहीं हो सकती। ये दो छोर हैं। या तो बिल्कुल नीचे के केंद्र पर समस्त ऊर्जा को ले आएं, तो आप छलांग लगा सकते हैं। या फिर सबसे ऊपर के केंद्र पर ऊर्जा को ले जाएं, तो भी छलांग लगा सकते हैं।
लेकिन एक बात में योग और लाओत्से दोनों सहमत हैं कि ऊर्जा बुद्धि पर नहीं रुकनी चाहिए। या तो बुद्धि से नाभि पर आ जाए, या बुद्धि से सहस्रार पर चली जाए। बुद्धि पर नहीं रुकनी चाहिए; बीच में ऊर्जा नहीं रुकनी चाहिए। और दोनों ही अतियों से जिस जगत में छलांग लगती है, वह एक ही है।
तो तीन बातें हैं। एक तो जो विरोध हमें दिखाई पड़ता है वह हमें इसीलिए दिखाई पड़ता है कि हम, विरोध के बीच भी एक सामंजस्य है, इसे समझ नहीं पाते

हैं। पानी को हम पानी से छुटकारा दिलाना चाहें, तो या तो उसे शून्य डिग्री के नीचे तक ठंडा कर देना चाहिए, ताकि वह बर्फ बन जाए; और या सौ डिग्री तक गरम कर देना चाहिए, ताकि वह भाप बन जाए। दोनों ही स्थितियों में पानी पानी नहीं रह जाएगा। दोनों स्थितियों में छलांग लग जाएगी; पानी कुछ और हो जाएगा। या तो मनुष्य की ऊर्जा पहले केंद्र पर आ जाए या अंतिम पर; दोनों से छलांग लग जाएगी।
और ज्यादा कठिन होगा समझना यह कि ऊर्जा वर्तुलाकार होती है, सरकुलर होती है। जगत में कोई भी इनर्जी सीधी नहीं चलती, वर्तुल में चलती है। असल में, ऊर्जा के चलने का मार्ग ही सदा वर्तुलाकार होता है। अगर हम एक वर्तुल खींचें, तो जिस बिंदु से मैं वर्तुल को शुरू करूं, वही बिंदु अंतिम भी होगा जब वर्तुल पूरा होगा। तो जहां नाभि केंद्र से छलांग लगा कर व्यक्ति पहुंचता है, वहीं सहस्रार से भी छलांग लगा कर पहुंचता है।
नाभि केंद्र से वर्तुल शुरू होता है, सहस्रार पर वर्तुल पूरा होता है। दोनों से छलांग लगा कर व्यक्ति वर्तुल के बाहर हो जाता है। इसलिए नाभि और सहस्रार बिल्कुल दूर दिखाई पड़ते हैं हमें, क्योंकि हमारे लिए नाभि पेट में है कहीं और सहस्रार मस्तिष्क में है कहीं। और दोनों के बीच सीधी रेखा खींचें, तो बड़े फासले पर हैं। लेकिन इस शरीर की चर्चा ही नहीं हो रही है। इससे जो सूक्ष्म शरीर है, उस सूक्ष्म शरीर में नाभि और सहस्रार निकटतम बिंदु हैं। अगर हम वर्तुल बना लें, तो निकटतम हो जाएंगे। अगर हम सीधी रेखा खींचें, तो दूर हो जाएंगे। इस शरीर में हम सीधी रेखा खींचते हैं, तो दूर मालूम पड़ते हैं। लेकिन सूक्ष्म शरीर में वर्तुल निर्मित हो जाता है। सूक्ष्म शरीर ऊर्जा-शरीर है। पदार्थ नहीं, शक्ति का शरीर है। वहां वर्तुल निर्मित हो जाता है। ये दोनों छोर निकटतम हैं।
लाओत्से कहता हैः पहले छोर पर लौट आओ। योग कहता हैः अंतिम छोर पर चले जाओ। और दो तरह के व्यक्ति हैं; इसलिए दोनों ही बातें उपयोगी हैं। कुछ लोग हैं, जो पहले छोर पर लौटना बहुत मुश्किल पाएंगे; विशेषकर पुरुष चित्त वाले लोग पहले पर लौटना बहुत मुश्किल पाएंगे। इसलिए लाओत्से स्त्रैण व्यक्तित्व की बात करता है। पुरुष आगे बढ़ना चाहेगा, पीछे नहीं लौटना चाहेगा। लेकिन पुरुष के लिए मार्ग नहीं है सत्य तक पहुंचने का, ऐसा नहीं है। उसका मार्ग भी है। लाओत्से उस मार्ग का प्रस्तोता नहीं है। लाओत्से स्त्रैण व्यक्तित्व का प्रस्तोता है।
वह कहता है, पीछे लौट आओ। जब छलांग ही लगानी है, तो आगे बढ़ने का श्रम भी क्या करना? यह श्रम तो पीछे लौट कर भी हो सकता है। और ध्यान रखें, पीछे लौटने में श्रम नहीं पड़ता, आगे जाने में श्रम पड़ता है। पीछे लौटने में कोई श्रम नहीं पड़ता। क्योंकि आगे जाने के लिए शक्ति लगानी पड़ती है। पीछे लौटने के लिए तो हम सिर्फ शक्ति लगाना बंद कर दें, हम तत्काल पीछे लौट आते हैं। जो लोग सरल हो सकते हैं बिना साधना किए, लाओत्से का मार्ग उनके लिए है। जो सरल भी नहीं हो सकते बिना साधना किए, योग का मार्ग उनके लिए है। इसलिए जान कर हैरानी होगी कि भारत ने योग की इतनी बड़ी परंपरा पैदा की, विराट परंपरा पैदा की, बड़ी साधना के सूत्र खोजे, लेकिन भारत में इतनी लंबी परंपरा के बीच भी स्त्रैण चित्त की कोई चिंता नहीं की गई। यह अधूरी है बात। और इसीलिए जैनों के चौबीस तीर्थंकर पुरुष हैं, हिंदुओं के अवतार पुरुष हैं, बुद्ध पुरुष हैं। हिंदुस्तान में एक भी स्त्री अवतार और तीर्थंकर नहीं है। वरन मान्यता तो ऐसी बन गई धीरे-धीरे--और बन ही जाएगी-- अगर पुरुष के चित्त का हम मार्ग चुनेंगे, तो यह मान्यता बन ही जाएगी कि स्त्री की देह से मोक्ष नहीं हो सकता। इसलिए जैन मानते हैं कि स्त्री की देह से मोक्ष नहीं हो सकता। स्त्री को पहले एक जन्म पुरुष का लेना पड़ेगा और तब ही मोक्ष हो सकता है।
इस तरह का ख्याल है, मुझे तो लगता है एकदम ठीक है कि जैनों में एक तीर्थंकर मल्लीनाथ पुरुष नहीं थे, स्त्री थे। मल्लीबाई उनका नाम था। लेकिन जैन यह मान ही नहीं सकते हैं कि स्त्री भी मोक्ष पा सकती है। इसलिए मल्लीबाई का नाम मल्लीनाथ कर दिया। स्त्री को पुरुष कर दिया। श्वेतांबरों और दिगंबरों में बुनियादी झगड़ों में एक झगड़ा यह भी है, श्वेतांबर मानते हैं कि वे मल्लीबाई ही थीं और दिगंबर मानते हैं वे

मल्लीनाथ थे। यह झगड़ा बहुत अनूठा है, एक व्यक्ति के संबंध में झगड़ा कि वह स्त्री था या पुरुष था! लगता ऐसा है कि वे स्त्री ही रहे होंगे। लेकिन जो परंपरागत दृष्टि है, वह यह स्वीकार नहीं कर सकी कि स्त्री के शरीर से मुक्ति कैसे हो सकती है! असल में, सारी धारा पुरुष के चित्त की है। लाओत्से स्त्रैण चित्त की बात कर रहा है। लाओत्से कहता है, साधना करके अगर सरल होना पड़े, तो वह सरलता बड़ी जटिल हो गई। अगर मुझे सरल होने के लिए भी प्रयास करना पड़े, तो वह सरलता सरलता न रही। सरलता का मतलब ही यह है कि जो मुझे कुछ न करना पड़े और उपलब्ध हो जाए। सहज का अर्थ ही यही होता है कि मुझे कुछ करना न पड़े और उपलब्ध हो जाए। अगर करके उपलब्ध हो, तो सहज कहना व्यर्थ है। तो लाओत्से दूसरी अति का पोषक है।
ये दोनों अतियां अधूरी हैं। लेकिन दोनों अतियां सत्य पर पहुंचा देती हैं। छलांग अति से ही लगती है। दि एक्सट्रीम प्वाइंट, वहीं से छलांग लगती है। अगर आप पुरुष की ही यात्रा में पड़ गए हैं, तो फिर पूरी तरह पुरुष ही हो जाएं। तो पुरुषार्थ को उस जगह तक ले जाएं कि जिसके आगे जाने की जगह न रहे। वहां से छलांग हो जाएगी। अगर आप सहजता के ही आनंद को अनुभव करते हैं, तो इतने सहज हो जाएं कि साधना मात्र व्यर्थ हो जाए। तो उसी सहजता से छलांग लग जाएगी।
जो लोग पुरुषार्थ का मार्ग पकड़ेंगे, ऊर्ध्वगमन उनकी भाषा होगी, ऊपर उठना वे कहेंगे। इसलिए वे जो प्रतीक चुनेंगे, वह प्रतीक होगा लपट का, आग का। आग सदा ऊपर उठती चली जाती है। कुछ भी करो, कहीं भी जलाओ, आग भागती है ऊपर की तरफ। इसलिए भारतीय प्रतीक है अग्नि।
लाओत्से ने जो प्रतीक चुना है, वह है जल का। वह कहता है, पानी की भांति
हो जाओ--नीचे, और नीचे, सबसे आखिरी गड्ढा चुन लो। जिसके नीचे कोई जगह न हो, वहां बैठ जाओ।
सहजता अंत में बैठ कर ही उपलब्ध हो सकती है। जो आदमी ऊपर उठना चाह रहा
है, वह सहज नहीं हो सकता। ऊपर उठने में संघर्ष होगा, प्रतियोगिता होगी। पीछे बैठने की कोई प्रतियोगिता नहीं है। अगर आप कहते हैं, मैं सबसे पीछे बैठना चाहता हूं, तो कोई शायद ही आपसे प्रतियोगिता करने आए।
लाओत्से कहता है, ऐसे हो जाओ कि लोगों को पता ही न चले कि तुम हो भी। तो अंतिम गड्ढा खोज लो। निम्नतम जो जगह हो, जहां कोई जाने को राजी न हो, जहां लोग जूते उतार देते हों, वहीं बैठ रहो। किसी पद की खोज ही मत करो। ऊपर जाने की बात ही मत सोचो। वह भाषा ही गलत है।
लाओत्से ठीक कहता है। जो लोग पानी की भांति हो सकते हैं, वे भी वहीं पहुंच जाएंगे। असल में, प्रथम और अंतिम मिल जाते हैं एक जगह, एक बिंदु पर। प्रथम भी अनंत का छोर है और अंतिम भी अनंत का छोर है। प्रथम और अंतिम एक ही चीज के दो नाम हैं। यात्रा पर निर्भर करता है! अगर आप पीछे लौट कर आए, तो उसे कहेंगे प्रथम; अगर आप घूम कर, पूरा चक्कर लगा कर आए, तो कहेंगे अंतिम। तो योग कहेगा ऊपर और लाओत्से कहेगा नीचे। योग और लाओत्से में, योग और ताओ में वह जो जीवन का परम द्वंद्व है, वह जो जीवन की पोलर डुआलिटी है, उसकी अभिव्यक्ति है।
इसलिए इसमें चिंता न लें। जो प्रीतिकर लगे, वह चुन लें--जो प्रीतिकर लगे! और सदा ध्यान रखें कि जो आपको प्रीतिकर लगे, वही आपका मार्ग है। कोई कितना ही कहे, जो आपको प्रीतिकर न लगे, वह आपका मार्ग नहीं है। अपने मार्ग पर भटक जाने से भी आदमी पहुंच जाता है; दूसरे के मार्ग पर न भटके, तो भी कभी नहीं पहुंचता है। उसका कारण है। क्योंकि जो हमारा स्वभाव है, हम उसी से पहुंच सकते हैं। तो दूसरे का कभी आकर्षक भी लगे, प्रभावित भी करे, तब भी भीतर पूछ लेना चाहिए कि मेरे अनुकूल है या नहीं! क्योंकि कई बार प्रतिकूल बातें भी आकर्षक लगती हैं, अनुकूल न हों तो भी। कई बार तो इसीलिए आकर्षक लगती हैं कि प्रतिकूल हैं, अनजानी हैं, अपरिचित हैं। सदा अपनी प्रकृति को ध्यान में रख लेना जरूरी है। अगर आपको लगता है कि मैं अंतिम बैठने में भी राजी हो सकता हूं, जरा भी पीड़ा न होगी, यही मेरे लिए सुगम है; अगर आपको लगता है कि बिना आक्रमण किए, ग्राहक होकर भी मैं सत्य को पा लूंगा, मैं सत्य को खोजने न जाऊंगा, सिर्फ अपने द्वार खोल कर बैठ जाऊंगा, प्रतीक्षा करूंगा; अगर इतना धैर्य हो--धैर्य स्त्रैण गुण है, अधैर्य पुरुष का गुण है--अगर

इतना धैर्य हो कि द्वार खोल कर प्रतीक्षा की जा सके, अनंत तक प्रतीक्षा करने की सामर्थ्य हो, तो इसी क्षण द्वार पर सत्य उपस्थित हो जाएगा।
लेकिन अगर प्रतीक्षा करने का बिल्कुल साहस ही न हो और दरवाजे पर बैठ
कर भी अधैर्य ही जाहिर करना हो, तो उससे बेहतर यात्रा पर निकल जाना है। क्योंकि दरवाजे पर भी खड़े रहे और अधैर्य भी जाहिर करते रहे और प्राण बेचैन रहे, तो एक भीतरी यात्रा भी चलती रही और यात्रा नहीं की, तो एक भीतर कष्ट और संघर्ष और दुविधा बन जाएगी। इसलिए प्रत्येक को समझ लेना चाहिए। और दो ही विराट मार्ग हैं। एक मार्ग है, जिसे लाओत्से स्त्रैण मार्ग कहता है। और एक मार्ग है, जिसे वह पुरुष का मार्ग कहता है। लाओत्से की अपनी पसंद स्त्रैण मार्ग की है। और उन सभी लोगों की पसंद होगी, जिन्हें अहंकार में रस नहीं है। उनकी सभी की पसंद होगी।
इसलिए अगर लाओत्से का अनुयायी मिलेगा, तो हमारे योगी जैसा अकड़ा हुआ नहीं मिलेगा, अति विनम्र होगा। उसकी विनम्रता लेकिन सहज होगी; वह भी थोपी हुई नहीं होगी, वह भी चेष्टित नहीं होगी। हमारा योगी अगर विनम्रता भी दिखाए, तो वह आरोपित होगी। उसका कारण है कि उसका मार्ग ही असल में, अहंकार का है। और विनम्रता वह नाहक थोप रहा है, वह झंझट में पड़ रहा है, विपरीत मार्ग की बात सोच रहा है। आग की तरह का रास्ता चुना है और पानी की तरह होने की कोशिश कर रहा है। वह दिक्कत में पड़ेगा। उसकी विनम्रता झूठी होगी। उसने मार्ग चुना है अहं ब्रह्मास्मि का। वह उस यात्रा पर निकला है कि एक दिन कह सके कि मैं ब्रह्म हूं। लाओत्से का मार्ग है--एक दिन कह सके कि मैं हूं ही नहीं।
यह साफ ख्याल में हो, तो कोई भी मार्ग पहुंचा देगा। या तो अहंकार को इतना बड़ा करो कि एक्सप्लोड हो जाए। इतना फुलाओ फुग्गे को कि फूट जाए। हालांकि फुलाने वाला यह सोच कर नहीं फुलाता है कि फूटेगा। वह सोचता है बड़ा कर रहा हूं। लेकिन फुग्गे को फुलाए चले जाओ, फुलाए चले जाओ, उसकी एक सीमा है। तुम फुलाने के लिए ही फुला रहे होओगे, कोई फिक्र नहीं। लेकिन फुग्गा अपनी सीमा पर आएगा और फूट जाएगा, और हाथ खाली रह जाएंगे। तो कोई हर्ज नहीं है, अगर अहंकार में ही रस है, तो फिर छोटे-मोटे अहंकार से राजी मत होना। फिर अहंकार को इतना फुलाना कि पूरा ब्रह्मांड बन जाए। तो फूट जाएगा। जिस दिन कोई कह सके, अहं ब्रह्मास्मि, उसी दिन अहंकार फूट जाएगा।
और या फिर अहंकार को भरो ही मत। उसमें जो थोड़ी-बहुत और हवा हो, उसको भी निकाल दो। लाओत्से कहता है, पीछे लौट आओ। ख्याल ही छोड़ दो इसे भरने का, क्योंकि जो फूट ही जाना है, उसके लिए मेहनत क्या करनी? लेकिन कुछ लोग हैं, जो बिना मेहनत किए राजी न होंगे।
लाओत्से का एक शिष्य हुआ, लीहत्जू। लीहत्जू से किसी ने जाकर पूछा, कि हमने सुना है कि बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठ कर और ज्ञान को उपलब्ध हो गए। और हमने सुना है कि कोई योगी मंत्र का जाप करके और वृक्ष के नीचे बैठ कर जाप से सत्य को उपलब्ध हो गया। लीहत्जू, तुम्हारा क्या ख्याल है? तो लीहत्जू ने कहा, जहां तक हम समझते हैं, मंत्र करना, साधना करनी, योगासन करना, ये उन लोगों के काम हैं, जो बिना किए नहीं रह सकते हैं। लेकिन असली बात यह नहीं है कि बुद्ध साधना करके पहुंच गए; बुद्ध बैठ गए, इसलिए पहुंच गए। असली बात, बैठ गए, इसलिए पहुंच गए। कोई योगी मंत्र पढ़ता रहा और पहुंच गया; मंत्र असली चीज नहीं है, बैठ गया, इसलिए पहुंच गया। मंत्र तो बहाना है; क्योंकि वह खाली नहीं बैठ सकता, इसलिए मंत्र पढ़ता रहा।
लीहत्जू यह कह रहा है कि जो भी पहुंचे हैं, वे इसलिए पहुंचे हैं कि वे
सब छोड़ कर बैठ गए। अब कुछ लोग हैं, जो बिल्कुल छोड़ कर बैठ सकते हैं, जो मंत्र भी न पढ़ेंगे। क्योंकि मंत्र भी अंततः व्यर्थ है। नाहक परेशानी उठा रहे हैं। उसको भी पढ़ने की जरूरत नहीं है। सिर्फ बैठ जाएं, कुछ भी न करें। लेकिन बड़ा कठिन है कुछ भी न करना। वह लाओत्से का ख्याल समझ में आ जाए,
तो कुछ न करना इतनी सरल जैसी बात मालूम पड़ती है, इतनी सरल नहीं है, सर्वाधिक कठिन है। मंत्र तो बच्चे भी पढ़ सकते हैं। असल में, बच्चों को अगर मंत्र न दिया जाए, तो उनको बिठाया ही नहीं जा सकता है। मंत्र कुछ भी हो, चाहे खिलौना हो, चाहे कुछ हो, मंत्र कुछ देना पड़े उनको, तो वे बैठ सकते हैं। नहीं तो बैठ भी नहीं सकते। बेचैनी इतनी ज्यादा है। तो हम भी... एक आदमी माला

लेकर फेरने बैठ जाता है। यह सिर्फ बैठने का बहाना है। माला तो सिर्फ इसलिए है कि आप बिना माला के नहीं बैठ सकते। अब यह भीतर का बच्चा है, वह बेचैन है। वह कहता है, कम से कम गुरिए ही फिराएं। कुछ होना तो चाहिए।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करेंगे, लेकिन कुछ बताइए कि करें क्या? अगर उनसे कहो कि कुछ भी मत करो, यही ध्यान है; तो वे कहते हैं कि यह कैसे होगा? कुछ तो सहारा चाहिए! सहारा का मतलब यह है कि उन्हें कुछ करने को बहाना चाहिए। राम-राम जपें, माला फेरें, कुछ भी करें! करें तो वे बैठ सकते हैं।
लीहत्जू कहता है, असली उपलब्धि तो बैठने से होती है। यह तो बहाना है,
आप खाली नहीं बैठ सकते, तो हम कुछ पकड़ा देते हैं कि इसको करके बैठे रहो। अगर बिना ही कुछ किए बैठ जाते, तो इतनी भी मेहनत न उठानी पड़ती और उपलब्धि हो जाती। लेकिन बैठना, सिर्फ बैठ जाना, बड़ी घटना है, बड़ी हैपनिंग है--बड़ी हैपनिंग है! एक क्षण को भी कोई सिर्फ बैठा रह जाए, उसका मतलब है कोई गति न रही मन में, कोई चंचलता न रही, कोई यात्रा न रही, कोई गंतव्य न रहा। शक्ति अपने में ठहर गई और रुक गई। सब मौन और शांत हो गया भीतर। जहां से हम आए थे, उसी केंद्र पर वापस पहुंच गए। विलीन हो गए अपने में ही।
एक क्षण को भी यह घटना घट जाए, तो वही क्षण सत्य का क्षण है--दि मोमेंट
ऑफ ट्रुथ! वही क्षण! यह दो तरह से घट सकता है। यह आप पर निर्भर करता है कि आप कहां से छलांग लेंगे। योग भी मार्ग है, ताओ भी।

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से द्वारा अंतरस्थ केंद्र व उसकी भूख का विकास साधक कैसे करे, इस पर कुछ कहें!

एक तो, कभी आंख बंद करके बैठें और ख्याल करें कि मेरे शरीर का केंद्र कहां है? व्हेयर इ.ज दि सेंटर ऑफ दि बॉडी? आप इतने दिन जी लिए हैं, लेकिन आपने अपने शरीर का केंद्र कभी खोजा नहीं होगा। और यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि हमें अपने शरीर के केंद्र का भी पता न हो। हमारा शरीर, उसकी कील कहां है?
अधिक लोगों को यह कील खोपड़ी में मालूम पड़ेगी। क्योंकि वहीं चलता रहता
है कारोबार चौबीस घंटे। दुकान वहां खुली रहती है। बाजार वहां भरा रहता है। अधिक लोगों को ऐसा लगेगा कि कहीं खोपड़ी में ही।
लेकिन खोपड़ी बहुत बाद में विकसित होती है। मां के पेट में जिस दिन बच्चे का निर्माण होता है, उस दिन मस्तिष्क नहीं होता। फिर भी जीवन होता है। इसलिए जो बाद में आता है, वह केंद्र नहीं हो सकता।
कुछ लोगों को, जो भावपूर्ण हैं--स्त्रियां हैं, कवि हैं, चित्रकार हैं, मूर्तिकार हैं--उनको लगेगा कि हृदय केंद्र है। क्योंकि उन्होंने जब भी कुछ जाना है, सौंदर्य, प्रेम, तो उन्हें हृदय पर ही उसका आघात लगा है। इसलिए जब भी लोग प्रेम की बात करेंगे, तो हृदय पर हाथ रख लेंगे। प्रेम में चोट खाएंगे, तो हृदय पर हाथ रख लेंगे। तो जिन लोगों का भावना से भरा हुआ चित्त है, वे हृदय को केंद्र बताएंगे।
लेकिन हृदय भी जन्म के साथ नहीं धड़कता। बच्चा जब पैदा हो जाता है, तब पहली श्वास लेता है और हृदय की धड़कन होती है। नौ महीने तो हृदय धड़कता ही नहीं। मां के हृदय की धड़कन को ही बच्चा सुनता रहता है, अपना उसके पास कोई हृदय नहीं होता। और इसलिए बच्चे को टिक-टिक की कोई भी आवाज आप सुना दें, वह जल्दी से सो जाता है। क्योंकि नौ महीने वह सोता रहा और टिक-टिक की आवाज, मां के हृदय की धड़कन, उसे सुनाई पड़ती रही। इसलिए टिक-टिक की आवाज किसी को भी नींद ला देती है। पानी टपक रहा हो टीन पर आपके मकान के, टप-टप-टप, नींद आनी शुरू हो जाती है। कमरे में कुछ न हो, सिर्फ घड़ी की आवाज आ रही हो, आप घड़ी की आवाज सुनते रहें, नींद आ जाएगी। नींद की सलाह देने वाले लोग कहते हैं कि घड़ी की आवाज सुनना काफी ट्रैंक्वेलाइजिंग है। और उसका कुल कारण इतना है कि नौ महीने तक बच्चा सोया रहा और टिक-टिक की आवाज, मां की धड़कन, उसको सुनाई पड़ती रही। कोई हृदय भी बच्चे के पास नहीं है, लेकिन फिर भी जीवन है।
इसलिए लाओत्से कहता हैः नाभि केंद्र है, न तो हृदय और न मस्तिष्क। नाभि से ही बच्चा मां से जुड़ा होता है। इसलिए जीवन की पहली झलक नाभि है। और

वह ठीक है। वह वैज्ञानिक रूप से ठीक है। तो अपने भीतर खोजें। और लाओत्से कहता है, साधना की पहली बात यह है कि खोजते-खोजते नाभि के पास अपने केंद्र को ले आएं। जिस दिन आपका असली केंद्र और आपकी धारणा का केंद्र एक हो जाएगा, उसी दिन आप इंटिग्रेटेड हो जाएंगे। जिस दिन फोकस मिल जाएगा, आपके चित्त का केंद्र, सोचने का केंद्र और आपका असली केंद्र जिस दिन करीब आकर मिल जाएंगे, उसी दिन आप पाएंगे कि आपकी जिंदगी बदल गई। आप दूसरे आदमी हो गए। ए न्यू ग्रेविटेशन, एक नई कशिश आपकी दुनिया में आ जाएगी।
लाओत्से को मानने वाले एक छोटा सा प्रयोग सदियों से करते रहे हैं। और
वह प्रयोग बड़ा बढ़िया है। वे कहते हैं कि जब तक आपके भीतर केंद्र का ही आपको पता नहीं है, यू कैन नॉट ग्रो, तब तक आपमें कोई विकास नहीं हो सकता। तो वे एक छोटा सा प्रयोग करते हैं। दो छोटे से आप हौज बना लें और पानी भर दें। बराबर एक मात्रा के हौज, एक सा पानी। एक हौज में एक लोहे का डंडा लगा दें बीच में केंद्र पर। और एक हौज में डंडा न लगाएं, खाली रखें, बिना केंद्र का। दो मछलियां, एक ही उम्र की, उन दोनों में छोड़ दें। आप हैरान होंगे, जिसमें डंडा लगा हुआ है, उसकी मछली जल्दी बढ़ेगी; और जिसमें डंडा नहीं लगा है, उसकी मछली जल्दी नहीं बढ़ेगी।
जिसमें डंडा लगा हुआ है, वह मछली उसका चक्कर लगाती रहेगी दिन-रात। केंद्र है और केंद्र के आस-पास वह घूमती चली जाती है, घूमती चली जाती है। जिस हौज में डंडा नहीं लगा है, उसकी मछली इधर-उधर भटकती रहेगी। कहीं कोई केंद्र नहीं है, जिसके आस-पास घूम सके। उसकी ग्रोथ नहीं होगी, वह स्वस्थ नहीं होगी, बीमार रह जाएगी। यह हजारों साल से चलता हुआ प्रयोग है और सदा इसका एक ही परिणाम होता है कि जिसमें केंद्र है जिस हौज में, उसकी मछली स्वस्थ, जल्दी विकसित होती है, ज्यादा ताजी, ज्यादा जीवंत होती है। लाओत्से को मानने वाले कहते हैं कि जिस व्यक्ति को अपने केंद्र का पता चल जाता है, उसकी चेतना उस केंद्र का इसी मछली की तरह चक्कर लगाने लगती है। और तब चेतना में विकास शुरू हो जाता है। जिनको केंद्र का ही पता नहीं है, वे उस मछली की तरह रह जाएंगे--बेजान, लोच, निर्जीव। क्योंकि कोई केंद्र नहीं है, जिसके आस-पास वे घूम सकें और विकसित हो सकें। उनको दिशा ही नहीं मालूम पड़ेगी--कहां जाएं? क्या करें? क्या हो जाएं? भटकेंगे वे भी। एक ही परिधि पर निरंतर परिभ्रमण से चेतना विकसित होती है।
तो लाओत्से कहता है कि यह जो नाभि का केंद्र है, आपको पता चल जाए, तो आपकी चेतना को एकाग्र गति मिल जाती है--ए कनसनट्रेटेड मूवमेंट। आपकी चेतना फिर वहीं घूमती रहती है।
लाओत्से कहता है, चलो, लेकिन ध्यान नाभि का रखो। बैठो, ध्यान नाभि का रखो। उठो, ध्यान नाभि का रखो। कुछ भी करो, लेकिन तुम्हारी चेतना नाभि के आस-पास घूमती रहे। एक मछली बन जाओ और नाभि के आस-पास घूमते रहो। और शीघ्र ही तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक नई शक्तिशाली चेतना का जन्म हो गया। इसके अदभुत परिणाम हैं। और इसके बहुत प्रयोग हैं। आप यहां एक कुर्सी
पर बैठे हुए हैं। लाओत्से कहता है कि आपके कुर्सी पर बैठने का ढंग गलत है। इसीलिए आप थक जाते हैं। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर मत बैठो। इसका यह मतलब नहीं कि कुर्सी पर मत बैठो, नीचे बैठ जाओ। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर बैठो, लेकिन कुर्सी पर वजन मत डालो। वजन अपनी नाभि पर डालो।
अभी आप यहीं प्रयोग करके देख सकते हैं। एम्फेसिस का फर्क है। जब आप कुर्सी पर वजन डाल कर बैठते हैं, तो कुर्सी सब कुछ हो जाती है, आप सिर्फ लटके रह जाते हैं कुर्सी पर, जैसे एक खूंटी पर कोट लटका हो। खूंटी टूट जाए, कोट तत्काल जमीन पर गिर जाए। कोट की अपनी कोई केंद्रीयता नहीं है, खूंटी केंद्र है। आप कुर्सी पर बैठते हैं--लटके हुए कोट की तरह।
लाओत्से कहता है, आप थक जाएंगे। क्योंकि आप चैतन्य मनुष्य का व्यवहार नहीं कर रहे हैं और एक जड़ वस्तु को सब कुछ सौंपे दे रहे हैं। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर बैठो जरूर, लेकिन फिर भी अपनी नाभि में ही समाए रहो। सब कुछ नाभि पर टांग दो। और घंटों बीत जाएंगे और आप नहीं थकोगे।
अगर कोई व्यक्ति अपनी नाभि के केंद्र पर टांग कर जीने लगे अपनी चेतना
को, तो थकान--मानसिक थकान--विलीन हो जाएगी। एक अनूठा ताजापन उसके भीतर सतत प्रवाहित रहने लगेगा। एक शीतलता उसके भीतर दौड़ती रहेगी। और एक

आत्मविश्वास, जो सिर्फ उसी को होता है जिसके पास केंद्र होता है, उसे मिल जाएगा।
तो पहली तो इस साधना की व्यवस्था है कि अपने केंद्र को खोज लें। और जब
तक नाभि के करीब केंद्र न आ जाए--ठीक जगह नाभि से दो इंच नीचे, ठीक नाभि भी नहीं--नाभि से दो इंच नीचे जब तक केंद्र न आ जाए, तब तक तलाश जारी रखें। और फिर इस केंद्र को स्मरण रखने लगें। श्वास लें तो यही केंद्र ऊपर उठे, श्वास छोड़ें तो यही केंद्र नीचे गिरे। तब एक सतत जप शुरू हो जाता है--सतत जप। श्वास के जाते ही नाभि का उठना, श्वास के लौटते ही नाभि का गिरना--अगर इसका आप स्मरण रख सकें... ।
कठिन है शुरू में। क्योंकि स्मरण सबसे कठिन बात है। और सतत स्मरण बड़ी कठिन बात है। आमतौर से हम सोचते हैं कि नहीं, ऐसी क्या बात है? मैं एक आदमी का नाम छह साल तक याद रख सकता हूं।
यह स्मरण नहीं है; यह स्मृति है। इसका फर्क समझ लें। स्मृति का मतलब होता है, आपको एक बात मालूम है, वह आपने स्मृति के रिकार्डिंग को दे दी। स्मृति ने उसे रख ली। आपको जब जरूरत पड़ेगी, आप फिर रिकार्ड से निकाल लेंगे और पहचान लेंगे। स्मरण का अर्थ हैः सतत, कांसटेंट रिमेंबरिंग।
आप जरा कोशिश करें, एक पांच मिनट के लिए प्रयोग करें कि मैं अपने पेट
के उठने और गिरने का ख्याल रखूंगा, भूलूंगा नहीं। दो सेकेंड बाद आप पाएंगे, आप भूल चुके हैं, कुछ और कर रहे हैं। फिर घबड़ाहट आएगी कि यह तो मैं भूल गया, दो सेकेंड भी याद नहीं रख सका! श्वास अभी भी चल रही है, पेट अब भी हिल रहा है; लेकिन आप कहीं गए। फिर लौटा लाएं अपने स्मरण को। अगर आप निरंतर प्रयास करें, तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, सेकेंड-सेकेंड आपका स्मरण बढ़ेगा। और जिस दिन आप कम से कम तीन मिनट सतत, मुतवातिर, एक क्षण को भी बिना चूके-- तीन मिनट कोई लंबा वक्त नहीं है, लेकिन जब प्रयोग करेंगे, तब आपको पता चलेगा कि तीन साल से भी लंबा मालूम पड़ेगा--एक दफे भी चूकें नहीं, तीन मिनट केवल! तो आपको पता चलेगा कि अब आपको केंद्र का ठीक-ठीक अनुभव होना शुरू हो गया। और तब सब शरीर अलग और केंद्र अलग झलकने लगेगा।
और यह केंद्र ऊर्जा का केंद्र है। इससे जो संयुक्त है, उसकी महिमा अपार है। क्योंकि वह निरंतर अनंत ऊर्जा को उपलब्ध कर रहा है।
तो एक तो सतत स्मरण रखें नाभि के केंद्र का और उसके आस-पास ही अपनी चेतना को परिभ्रमण करने दें। वही मंदिर है, उसकी ही परिक्रमा जारी रखें। कुछ भी हो जाए--क्रोध हो, घृणा हो, वैमनस्य हो, ईर्ष्या हो, दुख हो, सुख हो-- लाओत्से कहता है, हर हालत में, कुछ भी हो, पहला काम नाभि पर लौटने का करें, फिर दूसरा काम कुछ भी करें। किसी ने खबर दी कि प्रियजन मर गए, तो पहले नाभि पर जाएं और फिर इस खबर को ग्रहण करें। और तब, लाओत्से कहता है, कोई भी मर जाए, चित्त पर कोई चोट नहीं पहुंचेगी।
कभी आपने ख्याल न किया हो, लेकिन शायद कभी ख्याल आया भी हो, या पीछे लौट कर प्रत्यभिज्ञा हो जाए, जब भी आपको कोई बहुत गहरी खबर सुनाता है, खुशी की या दुख की, तो चोट नाभि पर लगती है। रास्ते पर आप चले जा रहे हैं, साइकिल पर या कार में और एकदम एक्सीडेंट होने की हालत आ गई, आपने ख्याल किया है कि पहली चोट नाभि पर लगती है, धड़ से नाभि पर चोट जाती है। नाभि कंपित होती है, तभी सब कुछ कंपित होता है।
लाओत्से कहता है, जब भी कुछ हो, तो आप सचेतन रूप से पहले नाभि पर जाएं। पहला काम नाभि, फिर दूसरा कोई भी काम। तो न सुख आपको सुखी कर पाएगा इतना कि आप पागल हो जाएं, न दुख आपको दुखी कर पाएगा इतना कि आप दुख से एक हो जाएं। तब आपका केंद्र अलग और परिधि पर घटने वाली घटनाएं अलग रह जाएंगी। और आप साक्षी मात्र रह जाएंगे। योग कहता है, साक्षी की साधना करो। लाओत्से कहता है, सिर्फ नाभि को सतत स्मरण रखो, साक्षी की घटना फलित हो जाएगी, घटित हो जाएगी।
यह जो नाभि का केंद्र है, जिस दिन ठीक-ठीक पता चल जाए, उसी दिन आप मृत्यु और जन्म के बाहर हो जाते हैं। क्योंकि जन्म के पहले यह नाभि का केंद्र आता है; और मृत्यु के बाद यही बचता है, बाकी सब खो जाता है। तो जो व्यक्ति भी इस केंद्र को जान लेता है, वह जान लेता है, न तो मेरा जन्म है और न मेरी मृत्यु है। वह अजन्मा और अमृत हो जाता है।

सतत स्मरण रखें। केंद्र को खोजें, सतत स्मरण रखें। पहली बात, केंद्र
को खोज लें। दूसरी बात, स्मरण रखें। तीसरी बात, बार-बार जब स्मरण खो जाए, तो स्मरण खोता है इसका भी स्मरण रखें। वह थोड़ा कठिन पड़ेगा।
जैसे कि आप किसी चीज पर ध्यान दे रहे हैं। तो लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, हमने नाभि पर ध्यान दिया, लेकिन वह खो जाता है। फिर क्या करें? तो उनसे मैं कहता हूं, खो गया, इसको भी स्मरण रखें कि अब खो गया। इसको भी ध्यान का हिस्सा बनाएं। बी अटेंटिव ऑफ दि इनअटेंशन आल्सो। वह जो घटना घट रही है खोने की, उसको भी ध्यानपूर्वक! उसको भी गैर-ध्यानपूर्वक मत खोने दें। जब भी चूक जाएं, तत्काल स्मरण करें कि चूक गया। वापस लौट जाएंगे, कुछ और करने की जरूरत नहीं, सिर्फ इतना स्मरण कि चूक गया, स्मरण वापस लौट आएगा, धारा फिर जुड़ जाएगी।
और चौथी बात, जब स्मरण पूरा हो जाए, केंद्र स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे, अनुभव होने लगे, तो सब कुछ केंद्र के लिए समर्पित कर दें, सरेंडर कर दें। उस केंद्र को ही कह दें कि तू ही मालिक है, अब मैं छोड़ता हूं। और यह आसान हो जाता है।
समर्पण बहुत कठिन है, जब तक केंद्र का पता न हो। लोग कहते हैं, परमात्मा के लिए समर्पण कर दो। लेकिन परमात्मा का कोई पता नहीं। जिसका पता नहीं, उसके लिए समर्पण कैसे कर दो? और परमात्मा आ भी जाए, तो भी समर्पण आपको करना हो, तो मालिक तो आप ही बने रहते हैं समर्पण के भी। अगर कल दिल नाराज हो जाए और लगे कि यह परमात्मा कुछ अपनी मनपसंद का नहीं, तो अपना समर्पण वापस ले ले सकते हैं कि छोड़ो, हमने अपना समर्पण वापस लिया। देने वाले हम थे, ले भी हम सकते हैं। क्या, परमात्मा करेगा क्या? अगर आप अपना समर्पण वापस ले लें, तो परमात्मा करेगा क्या? तो जो समर्पण वापस भी लिया जा सकता है, वह समर्पण तो नहीं है। वह दिया ही नहीं गया कभी।
लाओत्से की प्रक्रिया अलग है। लाओत्से कहता है, जिस दिन इस केंद्र का पता चलता है, उस दिन समर्पण करना नहीं पड़ता, आपको अनुभव होने लगता है कि केंद्र मालिक है ही, मेरे बिना केंद्र सब कुछ कर रहा है। श्वास ले रहा है, छोड़ रहा है; जीवन की धारा चल रही है; नींद आ रही है, जागरण आ रहा है; जन्म हो रहा है, मृत्यु हो रही है; सब केंद्र कर रहा है मेरे बिना कुछ किए। तो अब समर्पण का क्या सवाल है? समर्पण हो जाता है।
तो चौथी, आखिरी जो घटना है इस साधना में, वह है केंद्र के प्रति समर्पण
को अनुभव कर लेना। फिर अहंकार के बचने का कोई उपाय नहीं--कोई उपाय ही नहीं। ऐसी समर्पित अवस्था में व्यक्ति परम सत्ता को उपलब्ध हो जाता है।

एक और मित्र ने पहले प्रश्न जैसा ही प्रश्न पूछा है कि लाओत्से अक्रिया पर जोर दे रहा है और कृष्ण ने कर्म पर जोर दिया, तो इन दोनों में कोई विपरीतता है या समानता है?

ये दो छोर हैं। लाओत्से यह नहीं कहता कि कर्म मत करो। लाओत्से कहता है, कर्म करो, लेकिन ऐसे जैसे कि नहीं कर रहे हो। एज इफ यू आर नॉट डूइंग इट, रादर इट इ.ज हैपनिंग। हो रहा है। जैसे श्वास चल रही है; लो मत, छोड़ो मत, चलने दो। ठीक ऐसा ही जीवन। तुम अक्रिया में हो जाओ, क्रिया जितनी होती है, होने दो। कृष्ण भी वही कहते हैं दूसरे छोर से। वे कहते हैं, कर्म करो, कर्म से भागो मत, लेकिन कर्ता को छोड़ दो। यह भाव छोड़ दो कि मैं करने वाला हूं। परमात्मा करने वाला है।
लाओत्से की व्यवस्था में परमात्मा की कोई जगह नहीं है, क्योंकि वह कहता है, इतना इशारा भी करना द्वैत है। लाओत्से कहता है, यह भी कहना कि परमात्मा करने वाला है, इसमें कोई फर्क न पड़ा, अपना अहंकार परमात्मा में स्थापित किया। लेकिन कर्ता कोई रहा--हम न रहे, परमात्मा रहा।
लाओत्से कहता है, कर्ता कोई भी नहीं है, क्रिया हो रही है।
यह थोड़ा कठिन है। हमें आसानी पड़ती है कि हम कर्ता नहीं, कोई हर्ज नहीं, परमात्मा कर्ता है। लॉजिक हमारा जारी रहता है, तर्क हमारा जारी रहता है कि हम न रहे कर्ता, वह है कर्ता। लेकिन लाओत्से कहता है, उसको भी कर्ता बनाने के उपद्रव में क्यों डालते हो? जब तुम कर्ता नहीं बनना चाहते, जब तुम

कर्ता बनने से कष्ट में पड़ते हो, तो परमात्मा को भी क्यों कष्ट में डालते हो? कोई कर्ता नहीं है, क्रिया हो रही है। हवा के झोंके आते हैं और पत्ता हिल रहा है। हवा के झोंके आते हैं, और सागर की लहर उठ रही है और गिर रही है। यह जगत जो है, क्रियाओं का एक समूह है, कर्ता कोई भी नहीं।
अगर यह समझ में आ जाए, तो क्रियाएं होने दो। करने वाले भी तुम नहीं हो, छोड़ने वाले भी तुम नहीं हो। जो हो रहा है उसे होने दो और देखते रहो। तो वही स्थिति बन जाएगी, कृष्ण ने जो कही है।
कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू सब छोड़! शायद अर्जुन उतनी योग्यता का व्यक्ति नहीं था, जितनी योग्यता का व्यक्ति लाओत्से का शिष्य होने के लिए जरूरी है। तो कृष्ण को कहना पड़ा कि तू परमात्मा पर छोड़ दे, वही सब कर रहा है, तू बीच में मत आ! तू समझ कि वही करने वाला है, तू तो निमित्त मात्र है। और ध्यान रहे, अगर लाओत्से होते कृष्ण की जगह, तो अर्जुन को इतना लंबा उपदेश मिलने वाला नहीं था। लाओत्से पहली तो बात बोलता ही नहीं। अगर बिना बोले अर्जुन समझ जाता, तो ठीक था।
लीहत्जू कहता है कि मैंने सुना है कि वे शिक्षक हैं, जो बोल कर समझाते हैं; और वे शिक्षक भी हैं, जो बिना बोले समझाते हैं। हमारा जो शिक्षक है, वह दूसरी तरह का शिक्षक है।
लीहत्जू वर्षों तक लाओत्से के पास था। न उसने कभी सवाल पूछा और न लाओत्से ने कभी जवाब दिया। कभी कोई आकर पूछता था, तो लीहत्जू एक कोने में बैठ कर सुनता रहता था। वर्षों बाद लाओत्से ने खुद लीहत्जू से पूछा कि तुझे कुछ पूछना नहीं है?
लीहत्जू ने कहा, आपकी आज्ञा हो तो पूछूं।
तो लाओत्से ने कहा, इतने दिन तक तू चुपचाप बैठा रहा!
तो लीहत्जू ने कहा कि आपके पास चुपचाप बैठ कर इतना समझने को मिल रहा
था कि बोल कर मैंने बाधा न डालनी चाही। बोलता, तो बाधा पड़ती।
लाओत्से ने कहा कि इसलिए अब मैं तुझसे कहता हूं कि तू पूछ सकता है। जिसको बोलने से बाधा पड़ने लगी, वह बोलने की बीमारी से मुक्त हो गया। अब बातचीत हो सकती है। अब शब्द दिक्कत न देगा। जिसने शून्य में रहने का आनंद पा लिया, अब उसे शब्द मार्ग से न हटा सकेगा। अब हम शब्द का आदान-प्रदान कर सकते हैं।
लेकिन कृष्ण के सामने जो शिष्य है, वह बहुत दूसरी तरह का है। और क्षण
भी बहुत और है। युद्ध का क्षण है; यहां बारह साल चुपचाप बैठा भी नहीं जा सकता। पूरी परिस्थिति और है। और अर्जुन को अगर लाओत्से कहे कि कोई करने वाला नहीं है, जो हो रहा है, हो रहा है, तो अर्जुन भाग जाएगा। वह कहेगा, जब कोई करने वाला नहीं है, तो कोई भागने वाला भी नहीं है। वह भाग ही जाएगा, वह भाग जाएगा। यद्यपि वह भूल होगी उसकी, क्योंकि भागने में वह भागने वाला है। वह उसकी भूल है, वह सिर्फ अपने को धोखा दे रहा है।
हम सब अपने को धोखा दे सकते हैं। हम बड़े कुशल हैं। हम बड़े कुशल हैं। हम
सब अपने को धोखा दे सकते हैं। अगर हमें भागना हो, तो हम कहेंगे, भागने में हमारा हाथ ही क्या है? क्रिया हो रही है, हम सिर्फ साक्षी हैं। और हम भागेंगे; क्रिया नहीं हो रही है। क्रिया नहीं हो रही है! अर्जुन की जैसी मनोदशा है, उसमें अगर वह भागेगा भी तो कर्ता रहेगा। असल में, वह कर्ता होने के कारण ही उसको ख्याल आ रहा है भागने का, कि ये मेरे प्रियजन हैं, इनको मार डालूंगा तो पाप लगेगा, मुझे पाप लगेगा। इसलिए भागना चाहता है।
इसलिए कृष्ण जो लड़ रहे हैं अर्जुन से, वे इसलिए लड़ रहे हैं, वे यह कह रहे हैं कि तेरा यह जो ख्याल है कि तू कुछ करने वाला है, यह गलत है। और मैं जानता हूं कि अगर अर्जुन उस स्थिति में आ जाए और मैं को छोड़ दे और फिर धनुष-बाण को रख कर चला जाए, तो कृष्ण आखिरी मनुष्य होंगे उसे रोकने वाले। लेकिन वह जाना बड़े और ढंग का है।
मुझे एक लाओत्से के अनुयायी का एक स्मरण आता है। रांग कांग उनेजी नाम
का एक बहुत बड़ा धनुर्विद हुआ। अर्जुन की वजह से मुझे याद आ गया। बहुत बड़ा धनुर्विद हुआ; लाओत्से का अनुयायी था। वह कहता था, तीर तो तुम चलाओ, लेकिन हाथ की मसल न हिले। अगर मसल हिल गई, तुम कर्ता हो गए। तीर तो तुम चलाओ,

लेकिन हाथ की मसल न हिले। क्योंकि मसल हिल गई, तो तुम कर्ता हो गए। फिर तुमने तीर चलाया।
बड़ी मुश्किल बात थी। सम्राट को खबर मिली। और उसने कहा कि उस उनेजी को बुला कर लाओ। यह क्या पागलपन की बात है! इतना हम समझ सकते हैं कि एक आदमी चलाते वक्त यह भाव रखे कि मैं निमित्त मात्र हूं। यह भी हम समझ सकते हैं कि एक आदमी तीर चलाते वक्त अपने को कर्ता न माने, क्रिया का साक्षी रहे। लेकिन जब तीर चलेगा और धनुष उठेगा और प्रत्यंचा पर तीर चढ़ेगा और छूटेगा, तो मसल तो हिलेगी ही।
उनेजी बुलाया गया। उनेजी ने आकर अपना धनुष-बाण जब रखा, तो सम्राट की पूरी सभा में कोई उस धनुष-बाण को उठा भी नहीं सका। वह इतना वजनी था। कहते हैं वह अकेला आदमी था पूरे चीन में, जो उस धनुष-बाण को उठा सकता था। उसने धनुष-बाण उठा लिया, उसने बाण चढ़ाया। सम्राट ने आकर उसकी मसल देखी। वह ऐसी थी, जैसे छोटे बच्चे का हाथ हो। उसमें कहीं कोई मसल नहीं थी। उनेजी ने कहा, इसलिए मैं कहता हूं कि मैं तीर नहीं चला रहा हूं, तीर चल रहा है।
अर्जुन अगर ऐसी हालत में आ जाए और कह दे कि देखो, मैं नहीं जा रहा हूं,
यह जाना हो रहा है, तो कृष्ण भी उसे रोकेंगे नहीं। लेकिन वह उस हालत में न था। असल में, लाओत्से के शिष्य होने की अर्जुन की योग्यता न थी। वह था क्षत्रिय, पक्का पुरुष। और लाओत्से की सारी शिक्षा है स्त्रैण चित्त के लिए। हम मान सकते हैं कि अर्जुन प्रतीक पुरुष है। जैसा पुरुष होना चाहिए, वैसा पुरुष है। इसलिए कृष्ण तक उसको जोश चढ़ाने के लिए कहते हैं कि क्या तू नपुंसकों जैसी बात कर रहा है! वह पुरुष को पूरा कंपाने के लिए। कि क्या लोग तुझे कायर कहेंगे! पीढ़ियां-दर-पीढ़ियां लोग तुझे कहेंगे कि तू कायर था, नपुंसक था, क्लीव था! ये सब चोटें उसके पुरुष के लिए हैं। कि उसका पुरुष खड़ा हो जाए और वह कहे, क्या बात करते हो? वह अपना गांडीव उठा ले और युद्ध पर उतर जाए!
लाओत्से की सारी शिक्षा स्त्रैण चित्त के लिए है। तो इस शिक्षा का जो शिष्य है, वह बुनियादी रूप से अलग है। पर बात वही है--चाहे कोई अपने अहंकार को परमात्मा के लिए विसर्जित कर दे, कर्म करता रहे और कर्ता न रह जाए; या लाओत्से कहता है, अक्रिया को समझ ले कि सब क्रियाएं हो रही हैं, मैं करने वाला हूं ही नहीं। तो लाओत्से यह भी नहीं कहता कि कर्म करता रहे। यह भी क्या कहना? कर्म होता रहे, होता हो तो होता रहे, न होता हो तो न हो, रुकता हो तो रुक जाए, चलता हो तो चलता रहे। मैं कोई हूं ही नहीं बीच में पड़ने वाला। लेकिन इससे यह मतलब नहीं है कि लाओत्से को मानने वाले कर्म से भाग ही जाएंगे। और इसका यह भी मतलब नहीं है कि कृष्ण को मानने वाले कर्म में लगेंगे ही। हम दोनों को जानते हैं भलीभांति। लाओत्से को मानने वाले भी कर्म पर गए हैं, युद्ध पर गए हैं। अब यह उनेजी है, यह धनुर्विद्या का पारंगत है, कुशलतम व्यक्ति है। और हम हिंदुस्तान में संन्यासियों को भी जानते हैं, जो गीता बगल में दबाए हुए संसार को छोड़ कर भाग रहे हैं। और वे कहते हैं कि गीता प्राण है उनका।
आप क्या करोगे, यह न तो कृष्ण के हाथ में है और न लाओत्से के। यह सदा आपके हाथ में है, सदा आपके हाथ में है। असल में, शिक्षक कुछ भी नहीं कर सकते, जब तक आपका सहयोग न हो। और शिक्षक भी उतना ही कर सकते हैं, जितने दूर आप चलने को राजी हैं। दोनों की बातें एक हैं, बहुत अलग बिंदुओं से कही गईं। एक पुरुष के चित्त की बात है; एक स्त्रैण चित्त की बात है।

एक मित्र का फिर करीब ऐसा ही प्रश्न है कि आपके प्रवचन से लगता है कि लाओत्से अयात्रा की महिमा बताता था, फिर भी उसने साधना के सूत्र बताए हैंः नाभि केंद्र, श्वास की प्रक्रिया, इत्यादि। क्या इन दोनों में विरोध नहीं मालूम पड़ता है?

विरोध मालूम पड़ता है। क्योंकि जब भी हम कहें साधना, तो लगता है कुछ करना पड़ेगा। यह हमारी भाषा की भूल है। असल में, भाषा में अक्रिया के लिए कोई शब्द नहीं है। अक्रिया के लिए कोई शब्द नहीं है। सब शब्द क्रियाओं के हैं।

अगर हम एक आदमी को कहते हैं कि अच्छा, अब सो जाओ, तो मतलब होता है कि अब सोना पड़ेगा, सोने के लिए कुछ करना पड़ेगा। सोना एक क्रिया है। लेकिन हम सब जानते हैं कि सोना क्रिया नहीं है। और कोई भी कोशिश करके सो नहीं सकता है। या किसी दिन कोशिश करके देखें! जितनी कोशिश करेंगे, उतनी ही नींद मुश्किल हो जाती है। तो सोना क्रिया तो नहीं है, लेकिन भाषा में क्रिया है। सोने का मतलब भी वैसे ही होता है कि एक काम है; जैसे चलना, उठना, खाना, पीना, ऐसे ही सोना। लेकिन कोई आदमी क्रिया करके सो नहीं सकता। सोना होता ही तब घटित है, जब सब क्रिया बंद हो जाती है।
इसलिए जिनको नींद नहीं आती, उनकी सबसे बड़ी मुसीबत यही है कि कैसे सोएं, वे पूछते हैं कि कैसे सोएं? और कैसे जो है वह सोने का दुश्मन है। कैसे का मतलब है, व्हाट टु डू? क्या करें? और करना जो है वह नींद का दुश्मन है। आप कुछ भी करें, जो भी आप करेंगे, उससे नींद आने में देर लगेगी। तो क्या हम उससे कह दें कि कोई उपाय ही नहीं है तुम्हारे लिए? क्या हम उससे कह दें कि कोई उपाय ही नहीं है तुम्हारे लिए? जिसको नींद नहीं आती, क्या उससे हम कह दें कि कोई उपाय नहीं है, मरो! तुम ऐसे ही रहोगे, कोई उपाय नहीं है। क्योंकि नींद तो लाई नहीं जा सकती। आ जाए तो ठीक, न आ जाए तो ठीक।
यह तो बहुत क्रूर होगा और बुद्धिमानीपूर्ण भी न होगा। क्योंकि जिसे नींद नहीं आती, उसे भी नींद लाने में सहायता पहुंचाई जा सकती है। तब उसे ऐसी क्रियाएं बतानी होंगी, जो क्रियाएं इतनी उबाने वाली हैं कि अपने आप छूट जाती हैं। जैसे उससे कहा जाए कि तुम कुछ न करो, एक से लेकर सौ तक गिनती गिनो, फिर सौ से वापस लौटो एक तक, फिर एक से सौ तक जाओ--ऐसा करो।
अब यह उबाने वाली क्रिया है, बोर्डम की क्रिया है। अगर एक आदमी एक, दो
से लेकर सौ तक जाए और फिर सौ, निन्यानबे, अट्ठानबे फिर वापस लौटे, यह करता रहे, थोड़ी देर में मन ऐसा ऊब जाएगा, इतना ऊब जाएगा कि इसे छोड़ने की भी याद न रहेगी। यह छूट जाएगा। इसके छूटते ही नींद घटित हो जाएगी। वह नींद इसके कारण नहीं आई; फिर भी इससे सहायता मिली। इससे सहायता मिली।
लाओत्से ने जो भी साधना-प्रक्रियाएं बताई हैं, वे सब साधना- प्रक्रियाएं निगेटिव हैं, इसी तरह की नकारात्मक हैं। वह जो भी कह रहा है, वह कह रहा है, अपने केंद्र को खोजो। अब केंद्र है; खोजने की जरूरत नहीं है वस्तुतः। और हम न भी खोज पाएं, तो भी केंद्र है। हमें न भी पता हो, तो भी है। और हमें पता नहीं है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, केंद्र केंद्र ही है। हम चाहे बुद्धि में जीएं और चाहे हृदय में जीएं, जीवन नाभि में केंद्रित है। ये हमारी भ्रांतियां हैं। लाओत्से कहता है, जरा खोजो, शायद खोजने से भ्रांतियों से चित्त हट जाए, शायद खोजते-खोजते अचानक तुम करीब आ जाओ और उदघाटन हो जाए।
चीनी कथा है कि एक सम्राट पागल हो गया। और अपने महल को छोड़ कर, महल के नीचे जो तलघरा था, कबाड़खाना था--फिजूल की चीजें, महल के काम की नहीं होती थीं, डाल दी जाती थीं--उसमें रहने लगा। पहले तो वजीरों ने समझा कि वह कोई साधना करता होगा। पहले-पहले पागल साधक मालूम पड़ते हैं और आखिर-आखिर में साधक पागल मालूम पड़ने लगते हैं। कोई साधना करता होगा, क्योंकि गुफा में नीचे चला जाता है।
लेकिन धीरे-धीरे उसने ऊपर आना बंद कर दिया। तब थोड़ा शक होना शुरू हुआ। फिर वह राज्य वगैरह की बात ही भूल गया। फिर वजीर कुछ पूछने भी जाते, तो वह सुनता रहता, वह कुछ जवाब भी न देता। फिर शक पैदा हुआ। फिर वह वहीं रहने लगा, महल में आना भी उसने बंद कर दिया। तब उसे लोग समझाने लगे कि तुम ऊपर चलो। तो वह कहता था, लेकिन महल तो यही है। ऊपर जाकर क्या करेंगे! क्या यह महल नहीं है? तो वजीर इसका भी उत्तर नहीं दे पाते थे सीधा कि नहीं है; क्योंकि था तो वह भी महल ही, वह था तो महल का ही हिस्सा। तो जब वह सम्राट पूछता था कि मुझे कहो स्पष्ट कि क्या यह महल नहीं है? और अगर गलत बोले, तो गर्दन कटवा दूंगा। तो वे वजीर बड़ी मुश्किल में पड़ते थे; क्योंकि यह भी नहीं कह सकते थे कि यह महल नहीं है; था तो महल का ही हिस्सा। फिर भी महल बिल्कुल नहीं था। कबाड़खाना था, कचराघर था।
परेशान हो गए। फिर गांव के एक फकीर को जाकर कहा कि कोई रास्ता खोजें-- कोई रास्ता! क्योंकि सम्राट पूछता है, क्या यह महल नहीं है? और हम कुछ जवाब

नहीं दे सकते। वह आदमी खतरनाक है, वह कहता है, गर्दन कटवा देंगे अगर गलत सिद्ध हुआ। और गलत सिद्ध हो सकता है, क्योंकि यह महल का ही हिस्सा है। है सिर्फ कचराघर। और वह उसी में रह रहा है। वह कहता है, यह भी महल है, तो दूसरे महल में जाने की क्या जरूरत है? उस फकीर ने कहा, मैं चलता हूं।
उस फकीर ने कहा कि क्या तुम समझते हो यह महल है? सम्राट से उसने पूछा
कि क्या तुम समझते हो यह महल है? और अगर गलत बोले, तो ऐसा अभिशाप दूंगा कि यहीं श्वास बंद हो जाएगी। सम्राट ने चारों तरफ गौर से देखा कहने के पहले, सिवाय कचरा-कबाड़ के वहां कुछ भी नहीं था। उसको भी लगा कि इसको कैसे महल कहें? इसे महल कैसे कहें, यह महल है? और झूठ भी नहीं बोल सकते। और ऐसे तो यह भी महल का हिस्सा है। उसने फकीर से कहा कि तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। फकीर ने कहा, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, हम वही तर्क का उपयोग कर रहे हैं, जिससे तुम अपने वजीरों को मुश्किल में डालते रहे। अब तुम कृपा करके एक काम करो, यह महल है या नहीं, कुछ तय नहीं होता। क्योंकि वजीर जवाब नहीं दे पाते; तुम भी जवाब नहीं दे पाते। तुम मेरे साथ ऊपर आओ। हम उस पूरी जगह को देख लें, जिसके संबंध में दावा है महल होने का। फिर पीछे निर्णय कर लेंगे। लाओत्से यही कह रहा है। वह यह नहीं कह रहा है कि केंद्र आपका कहां है,
यह कोई तय करना है! वह तय ही है। लेकिन जरा आप नीचे उतर आओ और एक बार उस केंद्र को देख लो। फिर कुछ तय नहीं करना पड़ेगा कि केंद्र कहां है और क्या है। और यह नीचे उतर आना एक वापसी है, जस्ट ए कमिंग बैक, बैक टु होम। घर की तरफ वापसी है। तो लाओत्से कहता है, यह कोई साधना भी क्या है! अपने घर वापस लौट रहे हैं, जो सदा से अपना है। यह कोई क्रिया भी नहीं है।
लेकिन फिर भी आदमी जैसा है, जिस उलझन में है, वहां उसे किसी क्रिया के बहाने की जरूरत है। कोई बहाना उसे मिल जाए। वह फकीर बहाना बन गया। सम्राट ऊपर चला गया। और उसने फिर नीचे जाने से इनकार कर दिया। और उसने कहा कि सारी दुनिया उसे कहे कि महल है, अब मैं वहां वापस जाने को नहीं हूं। मैं भूल ही गया था कि महल ऊपर है; मैं भूल ही गया था।
सिर्फ विस्मरण है। सिर्फ विस्मरण है। एक मौका चाहिए स्मरण का। एक सुविधा चाहिए। उस सुविधा का नाम साधना है। वह नकारात्मक है।
आपको किसी मित्र का नाम याद नहीं आ रहा। आप सिर पचाए डाल रहे हैं, सिर ठोंक रहे हैं, माथा रगड़ रहे हैं, नाम याद नहीं आ रहा। मैं आपसे कहता हूं कि ऐसा करो, जरा इसे छोड़ो। मैं तुम्हें एक साधना बताता हूं, जिससे मित्र का नाम याद आ जाएगा। वह पूछता है, क्या साधना? तो मैं उससे कहता हूं, तुम जरा अपनी खुरपी उठा लो और जाकर बगीचे में थोड़ी मिट्टी खोदो। वह भी कहेगा कि आप पागल हो गए हैं, क्योंकि बगीचे में जाकर मिट्टी खोदने से और मित्र के नाम के याद आने का क्या संबंध है? मैं उससे कहता हूं, तुम फिक्र छोड़ो, तुम जाकर मिट्टी खोदो।
वह मिट्टी खोदने लगता है--अचानक मित्र का नाम याद आ जाता है। क्या खुरपी और मिट्टी खोदने से मित्र का नाम याद आ गया? इ.ज देयर एनी कॉजल लिंक? कोई कार्य-कारण का संबंध है?
नहीं, लेकिन फिर भी संबंध है। असल में, जब वह मिट्टी खोदने में लग गया,
तो एक स्थिति पैदा हुई, जिसमें मन का तनाव चला गया। जब वह कोशिश कर रहा था कि नाम याद आए, तो वह इतना तन गया था, इतना संकरा हो गया था कि उसमें से नाम आ भी नहीं सकता था।
हम अनेक बार कहते हैं कि जीभ पर रखा हुआ है। अब जब जीभ पर ही रखा हुआ है, तो अब और क्या दिक्कत है, निकालिए! लेकिन आप कहते हैं, जीभ पर रखा हुआ है, और निकल नहीं रहा। आपकी जीभ पर रखा है या किसी और की जीभ पर रखा है? और आपको पक्का पता है; आप कहते हैं, मुझे पता है कि बिल्कुल जीभ पर रखा हुआ है, याद आ रहा है। फिर भी क्या गड़बड़ हो रही है? इतने तन गए हैं आप, इतने तनाव से भर गए हैं कि चेतना का रूप बिल्कुल संकरा हो गया है। उसमें से एक नाम भी नहीं निकल पा रहा। वह नाम रखा हुआ है, आपको बिल्कुल उसकी धड़कन मालूम पड़ रही है, वह नाम आपको छू रहा है। आपको सब कुछ मालूम पड़ रहा है कि वह नाम यह रहा। लेकिन जरा सा, इंच भर का फासला आपके और उसके बीच में है। और उस बीच में आप इतने तन गए हैं कि जगह नहीं है। आपसे कहा, खुरपी लेकर बगीचे में लग जाओ। आप

खुरपी में उलझ गए, बगीचे में उलझ गए। वह तनाव हट गया, वह जो बीच में ग्रंथि बन गई थी, वह हट गई। नाम ऊपर आ गया।
अब सवाल यह है कि खुरपी और मिट्टी खोदने से इस नाम के आने का कोई भी संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है, कोई भी संबंध नहीं है। फिर भी संबंध है। और संबंध नकारात्मक है। मिट्टी खोदने ने सिर्फ आपके ध्यान को दूसरी तरफ हटा दिया। बस, आप भीतर शिथिल हो गए, शांत हो गए, विश्राम मिल गया। उस विश्राम में बबलिंग, भीतर का बबूला ऊपर आ गया। और नाम आपको याद आ गया। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि आपको सब पता रहता है जब तक आपसे कोई पूछे न। पूछा किसी ने कि सब गड़बड़ हो जाता है। इंटरव्यू के पहले, बाहर कतार में खड़ा हुआ वह जो आदमी इंटरव्यू देने आया है, उसको सब पता होता है। दरवाजे के भीतर पैर रखा कि सब खो जाता है। लौट कर जब वह दरवाजे के बाहर फिर पैर रखता है, वह कहता है, हद हो गई! यह इतने से दरवाजे में क्या हो जाता है? यह आदमी वही का वही है। इसकी बुद्धि को हो क्या जाता है?
असल में, बुद्धि इतनी तनाव से भर जाती है कि काम करने में असमर्थ हो जाती है, लोच खो जाती है, फ्लेक्सिबिलिटी खो जाती है, सोचने की क्षमता खो जाती है। बस अटक जाता है। वह जो अटकाव है, वह बाहरी नहीं है, भीतर की व्यवस्था का अटकाव है। इस व्यवस्था को तोड़ने के उपाय हैं। सब साधनाएं इस व्यवस्था को तोड़ने के उपाय हैं।
झेन फकीर अपने साधकों से कहते रहे हैं, जब भी कोई साधक आएगा, तो झेन फकीर उससे कहते हैं कि तू ब्रह्म और आत्मा की बात मत कर। कुछ दिन हम तुझसे जो कहते हैं, वह कर। लकड़ी फाड़, पानी भर कर ला, गड्ढा खोद, खाना बना, गाय का दूध दुह, बगीचे की सम्हाल कर, खेती-बाड़ी कर। ब्रह्मज्ञान कुछ दिन बंद! और कई बार ऐसा होता है कि साल भर वह आदमी सिर्फ लकड़ी फाड़ता रहता है, पानी ढोता रहता है, जानवर चराने चला जाता है--साल भर! वह था किसी यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि लकड़ी काटनी पड़ेगी और घास छीलना पड़ेगा। लेकिन साल भर वह यह करता रहता है।
साल भर में वह जो प्रोफेसरपन था, वह जो पागलपन था, वह छिटक जाता है। लकड़ी काटते में अब क्या करेगा? प्रोफेसर हो भी कैसे सकता है आदमी लकड़ी काटता रहे! कोई जरूरत भी नहीं है; कोई इसमें कोई बुद्धिमानी की, कोई डिग्री की, कोई ज्ञान की कोई भी जरूरत नहीं है। लकड़ी ही काट रहा है। आरा चलता रहता है, लकड़ी भी कटती रहती है, प्रोफेसर भी कटता जाता है। लकड़ी भी गिरती जाती है, प्रोफेसर भी गिर जाता है। साल भर बाद वह निपट आदमी हो जाता है, सरल आदमी।
उसका गुरु उससे कहता है, अब तू पूछ! अब तू सुन सकेगा, समझ सकेगा; क्योंकि अब तू खुला है। अब तू एक खुले आकाश की भांति हो गया है। जब तू आया था, तू एक बंद घर था, जिसमें कोई द्वार-दरवाजे नहीं थे।
तो सारी साधना का उपाय, लाओत्से की नकारात्मक साधना का उपाय इतना ही
है कि हम किस भांति उस अवस्था को पैदा कर लें, जिसमें हमारे भीतर जो ब्लाकिंग, जो जगह-जगह अटकाव खड़े हो गए हैं, वे टूट जाएं, वे बिखर जाएं--बस। समझ लें कि नदी की एक धार है और बर्फ जम गई है, और अब धार नहीं बहती। क्या करें? सुबह की थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़े, सूरज निकले, नई परिस्थिति हो, सूरज की धूप पड़े--धार पिघल जाए, फिर बहने लगे। हम भी बस फ्रोजन, कहीं-कहीं धार बिल्कुल अटक गई है, रुक गई है। तो परिस्थिति बदलनी पड़े कि पिघल जाए धार और बह जाए! इसलिए परिस्थिति का परिवर्तन कभी बड़े अदभुत परिणाम लाता है, अदभुत परिणाम लाता है।
गुरजिएफ के पास एक लेखिका, कैथरिन मैंसफील्ड--बड़ी लेखिका, नोबल प्राइज विनर--वह साधना के लिए आई। अब नोबल प्राइज विनर लेखिका हो, तो जरा ढंग की, सोच-समझ कर साधना देनी चाहिए। पर गुरजिएफ जैसे लोग बिल्कुल बेढंगे होते हैं। गुरजिएफ ने उससे कहा कि बस तू अब एक काम कर कि सामने जो सड़क है, उसको कूट! उसके गिट्टी-पत्थर निकल गए हैं, उनको बिल्कुल जमा डाल! उसने सड़क देखी, उसके प्राण के छक्के छूट गए। लंबी सड़क थी। उसने पूछा कि यह कितने समय मुझे करना पड़ेगा? गुरजिएफ ने कहा, जब तक मैं आवाज न दूं, तब तक तू अपना जारी रखा कर। जब मैं आवाज दे दूं कि बस बंद, तो तू बंद कर दिया कर। और ध्यान रखना, अगर आधी रात सोते में भी मैं कहूं कि उठ और शुरू कर, तो फिर शुरू कर देना है!

और उसने कहा कि यह कितने दिन में पूरी होगी? गुरजिएफ ने कहा, उसकी फिक्र मत कर, क्योंकि कई लोग इसको उखाड़ने की साधना में भी लगते हैं। इसकी तू फिक्र ही मत कर; यह सड़क कभी सुधरती नहीं। इसे इधर तू जमाती रहेगी, उधर दूसरा तेरे सामने ही उखाड़ता रहेगा।
और जब दूसरे दिन वह सुबह साधना में लगी, तो हैरान हो गई--वह जमा नहीं पाती है कि दूसरे उसको उखाड़ रहे हैं! वह सड़क वैसी की वैसी है। पसीना-पसीना हो जाती है। कई बार देखती है कि गुरजिएफ उसको आवाज दे। मगर वह अपना मजे से बैठा हुआ सिगरेट पीता रहता है। वहीं बैठ हुआ है आरामकुर्सी पर और अपना धुआं उड़ा रहा है। और उसका पसीना-पसीना चू रहा है, कभी उसने जिंदगी में पत्थर नहीं कूटे, कभी सड़क नहीं बनाई। हाथ में फफोले आ गए हैं, लहूलुहान हुई जा रही है। कई बार वह आवाज निकालती है कि शायद उसकी आह सुन ले। मगर वह अपना धुआं उड़ाता चला जाता है। वह उसकी तरफ भी नहीं देखता कि वह वहां है भी। वह अपने हाथ देखती है, आह करती है, कि किसी तरह हाथ देख ले, कि फफोले पड़ गए। वह देखता ही नहीं उसकी तरफ। सांझ हो गई, सूरज ढलने लगा। और वह है कि बैठा हुआ है; और वह अपना कर रही है।
कोई आठ बजे उसने आवाज दी कि बस मैंसफील्ड! वह आई अंदर, तो आशा रखती है
कि वह कहेगाः बहुत मेहनत की, पसीने-पसीने डूब गई, हाथ में खून आ गया है! लेकिन वह कुछ नहीं बोलता। वह कुछ बोलता ही नहीं। और रात दो बजे जाकर उसको फिर बिस्तर से उठा देता है कि वापस काम पर चलो! मैंसफील्ड कहती है कि मैं कितने दिन टिक पाऊंगी! यहां जिंदा रहना मुश्किल मालूम पड़ता है। गुरजिएफ ने कहा कि तुझे मिटाने का ही हम उपाय कर रहे हैं। और अगर तू राजी रही, तो तू तो मिट जाएगी, लेकिन उसको जान लेगी जो कभी नहीं मिटता है।
और तीन महीने बाद जब मैंसफील्ड लौटी, तो उसने वक्तव्य दिया कि वह आदमी अजीब है। उसने मेरा सब पुराना नष्ट कर दिया। मैं बिल्कुल नई होकर लौटी हूं। और उसकी बड़ी कृपा थी, क्योंकि मैं सोचती थी कि शायद वह मुझे कुछ अपनी किताबों के काम में लगाएगा, कुछ साहित्य के काम में लगाएगा। अगर उसने मुझे साहित्य और किताब के काम में लगाया होता, तो मैं, मैं की मैं वापस लौट आती। उसने मुझे ऐसे विपरीत काम में डाल दिया कि मेरा सब नोबल प्राइज, और मेरी सारी प्रतिष्ठा, और सारी इज्जत, सब मिट्टी में मिल गई।
तीन महीने वह सड़क ही कूट रही थी--और उस सड़क को, जिसको वह सुबह पाएगी कि
सब उखड़ी पड़ी है, फिर वहीं से काम शुरू कर देना है। बड़ा निराशाजनक काम था। सफलता तो मिल ही नहीं सकती थी उसमें। सड़क कभी पूरी हो नहीं सकती थी। लेकिन बिल्कुल विपरीत था और चित्त को तोड़ने में सहयोगी था। तीन महीने में वह भूल गई। तीन महीने में वह भूल गई; तीन महीने बाद उसने लिखा है कि उसी रास्ते से लोग गुजरते थे; जिस दिन पहले दिन मैं सड़क खोद रही थी, तो मुझे पता था कि मैं नोबल प्राइज विनर लेखिका हूं; तीन महीने बाद लोग वहां से गुजरते थे, मुझे यह भी पता नहीं था कि मैं कौन हूं। मैं राजी हो गई थी कि मैं एक सड़क पर गिट्टी जमाने वाली औरत हूं, और कुछ भी नहीं हूं। और उसने मेरे सारे अहंकार को पिघला दिया।
तो सवाल कुल इतना है कि कैसे हमारे भीतर जो इकट्ठा हो जाता है, वह पिघल जाए; और हम तरल हो जाएं, लिक्विड हो जाएं, फिर बहने में समर्थ हो जाएं।

एक दो-तीन छोटे-छोटे सवाल हैं। एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से के हिसाब से भलाई और बुराई रात-दिन की तरह जगत में हैं; और परमात्मा ने आदमी को स्वतंत्र बनाया, इसलिए वह बुरा भी कर सकता है, भला भी कर सकता है। लेकिन उन्होंने पूछा है कि प्रकृति क्यों बुराई कर रही है? नदी में बाढ़ आ जाती है, निर्दोष लोग डूब कर मर जाते हैं। या आग लग जाती है; या कुछ हो जाता है।

हमारी कठिनाई यह है कि बुराई को हम स्वीकार नहीं कर पाते कि वह भलाई
के साथ अनिवार्य है। और उसी नदी के किनारे जब बाढ़ नहीं आती और खेतों में गेहूं फलते हैं, तब? और जब उसी आग पर रोटी सिंकती है, तब? और जब उसी आग से मकान जल जाता है, तब हम कहते हैं, यह बुराई प्रकृति क्यों कर रही है? लेकिन आपको पता है कि अगर प्रकृति ऐसा इंतजाम कर दे कि आग जला न सके, तो आग से जो

भलाई होती है, वह भी नहीं हो सकेगी। और प्रकृति ऐसा इंतजाम कर दे कि नदी में पानी न आए, तो फिर ठीक है, फिर भलाई भी नहीं होगी, बुराई भी नहीं होगी। हमारी कठिनाई यह है कि हम अपने को जगत के केंद्र में रख कर सोचते हैं
कि हमारे हित में जो हो रहा है, वह भलाई; और हमारे अहित में जो हो रहा है, वह बुराई। लेकिन हम यह नहीं सोचते कि जिस कारण से हित हो रहा है, उसी कारण से अहित होता है। और कारण को अगर हटाना है, तो दोनों चीजें बंद हो जाएंगी। नदी में पानी न बहे, तो कभी बाढ़ न आएगी; और आग ठंडी हो जाए, तो कभी कोई मकान नहीं जलेगा। बिल्कुल ठीक है। लेकिन तब आपको पता है, पूरी जिंदगी ठंडी हो जाएगी आग के ठंडे होने के साथ ही। दोनों चीजें एक साथ घटित होती हैं, एक बात। इसलिए जब भी हम किसी चीज को स्वीकार करते हैं, तब हमें उसके बुराई के हिस्से को भी स्वीकार कर ही लेना चाहिए। जो नहीं करता, वह अप्रौढ़ है, बचकाना है।
जब मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो मुझे जान ही लेना चाहिए कि प्रेम टूट भी सकता है। टूटेगा ही। जो जुड़ता है, वह टूटता है। जो बनता है, वह मिटता है। जब मैं एक बेटे को जन्म देता हूं और बैंड-बाजे बजाता हूं, तो मुझे घर में अरथी भी तैयार कर लेनी चाहिए। क्योंकि कल अरथी भी उठेगी ही; जो जन्मता है, वह मरता है। लेकिन जिसने बैंड-बाजे खूब बजाए और अरथी को बिल्कुल भूल गया, वह छाती पीट कर कल रोएगा कि बड़ी बुराई हो रही है जगत में--आदमी मरता क्यों है? वह कभी नहीं पूछता कि आदमी जन्मता क्यों है? जन्मने को हम बिल्कुल स्वीकार किए बैठे हैं और मरने की बड़ी तकलीफ उठा रहे हैं।
अब यह भी इनको बुराई क्यों मालूम पड़ती है मित्र को कि नदी आ जाती है, निर्दोष लोग मर जाते हैं। इनका मतलब यह है कि दोषी मरें, तो चलेगा। दोषी कौन है? दोषी कौन है, जिसने आपकी पार्टी को वोट नहीं दिया? कि जो आपकी मस्जिद में नहीं आता? कि जो आपके मंदिर का भक्त नहीं है? कि जो गीता नहीं पढ़ता? कौन आदमी दोषी है? वह आदमी जो शराब पीता है? आपने ठेका लिया है कि कौन आदमी क्या पीए? आप निर्णायक हैं? कौन आदमी दोषी है? और कौन तय करेगा? दोषी मर जाएं, तो चलेगा। मगर आप उसी गांव में पूछें कि दोषी कौन है, तो करीब-करीब पूरा गांव दोषी होगा--अलग-अलग लोगों से पूछना पड़ेगा--पूरा गांव दोषी सिद्ध होगा। अगर एक ही आदमी के हाथ में निर्णय न दें और पूरे गांव से पता लगा लें, तो एक भी आदमी बचने योग्य नहीं मिलेगा। पूरा गांव तय हो जाएगा कि--कोई किसी के लिए तय होगा, कोई किसी के लिए तय होगा--लेकिन पूरा गांव मरेगा।
दोषी कौन है और निर्दोष कौन है? किसको निर्दोष कहते हैं आप? क्या मापदंड है आपके पास तौलने का कि यह आदमी जो मर गया, यह निर्दोष था?
और अगर कोई रास्ता भी हो जानने का कि कौन दोषी है और निर्दोष कौन है,
यह आपको कैसे पता चलता है कि मरना एक बुराई है? यह कैसे आपको पता चलता है? देख कर तो ऐसा लगता है कि सब बुराइयां जीवन में घटित होती हैं। मरने में तो कोई बुराई घटित होती देखी नहीं जाती। किसी मरे आदमी को कोई बुराई करते देखा है? अगर बुराई है, तो जिंदगी बुराई होगी। मौत ने तो अब तक कोई बुरा नहीं किया। मौत ने कोई बुरा किया है आज तक?
लेकिन जिंदगी से हमारा मोह भारी है। इसलिए हम कहते हैं मौत बड़ी बुरी चीज है। यह मौत की बुराई हम नहीं बताते, हमारी जिंदगी का मोह बताते हैं। यह खबर इस बात की है कि हम जीना चाहते हैं, बस। जीना हमारा ऐसा पागल भाव है कि मौत भर नहीं होनी चाहिए। तो हम सड़ते रहें, गलते रहें, तो भी हम जीना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते। सड़ा हुआ जीवन भी हम पसंद करेंगे स्वस्थ मौत की बजाय। क्यों? क्योंकि बस मौत बुराई है, मौत बुरी है। उसमें हम... । क्या, ऐसा क्या बुरा है? मौत ने आपको कभी सताया है, याद है? मौत ने आपको कौन सी तकलीफ दी है आज तक, पता है? जिंदगी में सब बीमारियां घटती हैं। मौत के बाद कोई बीमारी भी नहीं घटती। जिंदगी में सब उपद्रव होते हैं--मुकदमे चलते हैं, अदालतें होती हैं, चोरी होती हैं, दंगे-फसाद होते हैं, हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हैं--यह सब होता है। मौत तो परम शांति है। फिर मौत से इतनी घबड़ाहट क्या है आपको?
जो मर गए, वे नुकसान में पड़े, इसका आपको पक्का पता है? कभी मुर्दा लोगों ने कहा है कि हम नुकसान में पड़े, तुम बड़े फायदे में हो? कौन जाने,

मुर्दे सोचते हों कि ये बेचारे निर्दोष लोग बच गए और नदी में नहीं बह गए! कई निर्दोष बच गए। इन्होंने क्या बिगाड़ा था कि परमात्मा ने इनको न मारा? यह सब दृष्टिकोण की बात है, दृष्टिकोण की बात है। और अपनी दृष्टि को
जो भी अस्तित्व पर थोपेगा, वह नासमझ है। अस्तित्व आपकी दृष्टियों की फिक्र नहीं करता। आप जिस सागर में एक छोटी सी लहर हैं, आप उस पूरे सागर के संबंध में जब भी निर्णय थोपने जाते हैं, तभी नासमझी करते हैं। इसलिए ज्ञानी वह है, जो अस्तित्व के बाबत निर्णय नहीं करता। जीता है, बिना किसी निर्णय के, बिना किसी वक्तव्य के, बिना किसी भाव के। मौत है, तो मौत को देख लेता है; जीवन है, तो जीवन को देख लेता है। जानता है कि जीवन भी एक रहस्य है और मौत भी एक रहस्य है, और निर्णायक कोई भी नहीं है। इसीलिए तो जीवन एक मिस्ट्री है कि निर्णायक कोई भी नहीं है।
क्या है बुरा? क्या है भला? इतना आसान अगर होता, जितना हम सोचते हैं और जैसा हम दिन-रात कहे चले जाते हैं। हम सिर्फ अपने अज्ञान को जाहिर करते हैं। हम छोटी सी बात में कह देते हैं कि यह बुराई है, यह भलाई है। और बुराई और भलाई क्या है, अब तक निर्णीत नहीं है। अब तक निर्णीत नहीं है और कभी निर्णीत नहीं होगी।
इसका यह मतलब नहीं है कि मैं आपसे कह रहा हूं कि जो मौज में आए, करें; क्योंकि कुछ निर्णीत नहीं है। तो जाएं, दो-चार आदमियों की हत्या कर दें; क्योंकि पता नहीं भला कर रहे हों। यह मैं आपसे नहीं कह रहा हूं। अगर आपको यह भाव समझ में आ जाए, यह गहन बोध आपके भीतर उतर आए कि निर्णायक हम नहीं हैं, तो आप हत्या तो कर ही नहीं सकेंगे। क्योंकि हत्या तो निर्णय से होती है। हम मान लेते हैं कि यह आदमी बुरा है, मार डालो। इसलिए जिसको हम जितना बुरा मान लेते हैं, उतना ही मारने में आसानी हो जाती है।
इसलिए अदालतें जितने मजे से मारती हैं, उतना कोई नहीं मार सकता। क्योंकि अदालतें बिल्कुल निर्णीत हैं कि यह आदमी बुरा है। उन्होंने तीन साल मुकदमा चलाया, सब एवीडेंस इकट्ठे कर लिए, सब तय हो गया मामला। इसलिए मजिस्ट्रेट जितनी आसानी से हत्या करता है, उतनी इस दुनिया में कोई हत्यारा भी नहीं कर सकता। क्योंकि मजिस्ट्रेट के पक्ष में निर्णय पूरा है; साबित हो गया कि यह आदमी बुरा है।
अभी परमात्मा इस आदमी को जिंदा रखे जा रहा था, अभी उसके सामने भी साबित नहीं था कि यह आदमी बुरा है। लेकिन एक आदमी ने एक मंच पर बैठ कर, काला चोगा पहन कर और दस-पांच और अपने ही जैसे नासमझों की कतार खड़ी करके एक फैसला तय कर लिया कि यह आदमी बुरा है। यह आदमी खतम हो गया, यह मार डाला जाएगा। और इस आदमी की बुराई क्या थी? हो सकता है इसकी बुराई यह थी कि कहा जाता है कि इसने किसी की हत्या की है।
अब यह बड़े मजे की बात है। इसने किसी की हत्या की है, इसलिए यह आदमी बुरा हो गया, इसलिए हम इसकी हत्या करने के हकदार हो गए। लेकिन अदालत आसानी से हत्या कर सकती है, क्योंकि अदालत के हाथ में ज्यादा ताकत है, राज्य की ताकत है। और मजिस्ट्रेट मजे से रात जाकर सो जाएगा निश्चिंत, क्योंकि उसे ऐसा नहीं लगता कि वह जिम्मेवार है। जहां कोई भी जिम्मेवार नहीं होता, वहां हम कुछ भी कर सकते हैं। क्योंकि गैर-जिम्मेवारी सबसे बड़ा उपद्रव है। एक मजिस्ट्रेट बिल्कुल गैर-जिम्मेवार है। वह कहता है, कानून की किताब यह कहती है, बयान यह कहते हैं, गवाह यह कहते हैं, मामला तय हो गया। मैं तो कुछ हूं नहीं, मैं तो सिर्फ बीच का हिसाब लगाने वाला हूं। मैंने हिसाब लगा कर बता दिया कि दो और दो चार होते हैं। इस आदमी की फांसी होनी चाहिए। वह बाहर है। वह घर जाकर सांझ गीत गाएगा, रेडियो सुनेगा, ताश खेलेगा, खाने पर मित्रों को बुलाएगा, गपशप करेगा, रात प्रेम करेगा, सो जाएगा। वह सब करेगा। उसे बिल्कुल कोई मतलब नहीं है, क्योंकि वह जिम्मेवार नहीं है।
वादलेयर ने कहा है कि जब कोई आदमी पक्के भलाई के हिसाब से बुराई करता
है, तो उससे बड़ी बुराई कभी भी नहीं होती। तो अगर आपको कोई सच में ही बड़ी बुराई करनी हो, तो पहले आपको सब हिसाब जुटा लेना चाहिए भलाई सिद्ध करने के। फिर आप बुराई कर सकते हैं। फिर कोई कठिनाई नहीं होती।
इस दुनिया में सब युद्ध ऐसे होते हैं, सब राजनीति ऐसी होती है। पहले सिद्ध कर लेना होता है कि यह बुराई है, फिर आप काटिए मजे से, फिर कोई कठिनाई

नहीं होती। फिर किसी को भी काटिए। और फिर मजा यह है कि जिसको आपने काटा है, कल वह आपको काटना शुरू करेगा, तब उसको भी कोई बुराई नहीं दिखती। तब कोई बुराई नहीं दिखती। एक दफा तय हमने कर लिया कि यह भलाई है, फिर हमें स्वतंत्रता मिल जाती है।
पर मैं यह कहता हूं कि धार्मिक आदमी तय ही नहीं करता। वह कहता है कि हम असहाय हैं और हम अज्ञान में हैं। और जगत इतना विराट है कि हम क्या तय करें कि क्या भला है और क्या बुरा है! इस निर्णय को ही नहीं करता। और तब ऐसा व्यक्ति एक गहन संतत्व को उपलब्ध होता है। जिसमें कोई कंडेमनेशन, कोई निंदा, कोई प्रशंसा, दोनों ही नहीं होतीं। ऐसा व्यक्ति एकदम बालवत, लाओत्से ने कहा है, कमनीय, कोमल हो जाता है; बच्चे की भांति सरल हो जाता है। जो जरूरी प्रश्न थे, वह मैंने आपसे बात कर ली। एक-दो प्रश्न छोड़ देने पड़े हैं, क्योंकि वे सीधे संबंधित नहीं हैं। तो जिन मित्रों के हैं, वे मुझसे अलग आकर बात कर लेंगे तो उचित होगा।
और एक प्रश्न ऐसा भी छोड़ना पड़ा है, जो संबंधित है, लेकिन बहुत बड़ा है।
वह पुनर्जन्म के संबंध में है। उसे हम किसी अगली चर्चा में उठा सकेंगे। अभी बैठेंगे, जाएंगे नहीं। पांच-सात-दस मिनट, आज अंतिम दिन है, तो जितने आनंद से कीर्तन में डूब सकें, डूब जाएं। और जिन मित्रों को सम्मिलित होना हो, वे भी यहां आ जाएं। और मंच पर जो लोग खड़े रहते हैं, वे खड़े न रहें।
जिनको खड़े होना है, वे नीचे आ जाएं। मंच पर तो सिर्फ जो नाचें पूरी तरह, वही हों।

ताओ उपनिषद, भाग दो
तीसवां प्रवचन

एक ही सिक्के के दो पहलू: सम्मान व अपमान, लोभ व भय

Chapter 13 : Part 1

Praise And Blame

Favour and disgrace cause one dismay; what we value and what we fear are as if within the self.
What is meant by speaking thus of favour and disgrace?
Disgrace is being in a low position (after the enjoyment of favour).
The getting (of a favour) leads to the apprehension of losing it, and the losing of it leads to the fear of still greater calamity.
This is what is meant by saying that favour and disgrace cause one dismay.

अध्याय 13 : खंड 1

निंदा और प्रशंसा

सम्मान और अपमान, दोनों से हमें निराशा मिलती है;
हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं,
वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर हैं।
सम्मान और अपमान के संबंध में ऐसा कहने का क्या अर्थ है? सम्मान-प्राप्ति के बाद निम्न स्थिति में होना ही अपमान है। सम्मान
की उपलब्धि से उसे खोने का भय पैदा होता है; और उसे खोने पर और अधिक संकटों के भय का जन्म होता है।

निंदा और प्रशंसा, सम्मान और अपमान, दोनों से हमें निराशा मिलती है।
हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं, वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर हैं। सम्मान और अपमान के संबंध में ऐसा कहने का क्या अर्थ है? सम्मान-प्राप्ति के बाद निम्न स्थिति में होना ही अपमान है। और सम्मान की उपलब्धि से उसे खोने का भय भी पैदा होता है। और उसे खोने पर और अधिक संकटों के भय का जन्म होता है।"
इस सूत्र को समझने के पहले इस सूत्र के आस-पास और इस सूत्र की प्रतिध्वनि में छिपी बहुत सी बातों को समझ लेना जरूरी है।
सबसे पहली बात तो यह समझ लेना जरूरी है कि न तो सम्मान तथ्य है और न असम्मान। न तो प्रशंसा तथ्य है और न निंदा। प्रशंसा तब हमें अनुभव होती है, जब हमारे अहंकार को कोई फुसलाए, सहलाए। और निंदा हमें तब मालूम होती है, जब हमारे अहंकार को कोई गिराए, चोट पहुंचाए।
सम्मान और अपमान, दोनों ही अहंकार के अनुभव हैं। और अहंकार एक असत्य है। अहंकार जीवन में सबसे बड़ा झूठ है। जो हम हैं, उसका हमें कोई भी पता नहीं है। जो हम हैं और जिसका हमें पता नहीं, उसी को हम आत्मा कहेंगे। और जो हम नहीं हैं और मानते हैं कि हम हैं, उसी का नाम अहंकार है। अहंकार एक काल्पनिक इकाई है। इसके बिना हम जी नहीं सकते, क्योंकि वास्तविक इकाई हमारे पास नहीं है। यह परिपूरक इकाई है। हमारा असली मालिक तो हमें पता नहीं, इसलिए हमने एक झूठा मालिक निर्मित कर लिया है। हमारे असली केंद्र का तो हमें कोई अनुभव नहीं है। लेकिन बिना केंद्र के जीना बहुत मुश्किल है, असंभव है। इसलिए हमने एक झूठा केंद्र निर्मित कर लिया है। और उसी के पास हम अपने को चलाए रखते हैं, जिलाए रखते हैं।

इस झूठे केंद्र का नाम अहंकार है। इस झूठे केंद्र को जिन बातों से आनंद मिलता है, उन बातों को हम प्रशंसा कहेंगे; और जिन बातों से दुख मिलता है, उन्हें हम निंदा कहेंगे। क्योंकि अहंकार स्वयं ही एक असत्य है, उससे होने वाले सभी अनुभव असत्य हैं।
तो लाओत्से कहता है, जब कोई प्रशंसा करता है, तब हमें लगता है सुख मिल रहा है; और जब कोई निंदा करता है, तो लगता है कि दुख मिल रहा है। और ऐसा लगता है कि कोई दूसरा सुख दे रहा है, या कोई दूसरा दुख दे रहा है। लेकिन सुख और दुख का मूल कारण हमारे भीतर है--वह हमारा अहंकार है। जिस व्यक्ति का कोई अहंकार नहीं है, उसे न तो कोई सुख दे सकता है और न कोई दुख। और जिसे कोई भी सुख-दुख नहीं दे सकता, वही व्यक्ति आनंद में स्थापित हो जाता है।
हमें तो कोई भी सुख दे सकता है और कोई भी दुख। हम तो दूसरों के हाथों में कैद हैं। हम तो दूसरों के हाथों में बंधे हैं। हमारी लगाम सब दूसरों के हाथों में है। जरा सा इशारा, और दुख पैदा हो जाता है। और जरा सा इशारा, हम सुखी हो जाते हैं। जरा सी बात, और आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। और जरा सी बात की बदलाहट, कि चेहरे पर मुस्कान फैल जाती है। हमारे आंसू, हमारी मुस्कान, बाहर से कोई संचालित करता है।
लेकिन लाओत्से कहता है, यह जो बाहर से संचालन हो रहा है, इसका भी गहरा कारण हमारे भीतर है। वह हमारा अहंकार है। अहंकार के कारण ही हम दूसरों से प्रभावित होते हैं। चाहे मित्र, चाहे शत्रु, चाहे प्रशंसा करने वाले और चाहे निंदा करने वाले, दूसरा हमें प्रभावित कर लेता है, क्योंकि हमारे पास अपनी कोई वास्तविक आत्मा नहीं है, एक झूठा केंद्र है, एक सूडो सेंटर है, एक मिथ्या केंद्र है। उस मिथ्या केंद्र की बनावट ही ऐसी है कि वह दूसरे के कब्जे में रहेगा।
इसे थोड़ा समझ लें। अहंकार आपके कब्जे में नहीं है। यह सुन कर हैरानी होगी, क्योंकि हम सब सोचते हैं कि अहंकार मेरा है तो मेरे कब्जे में है। इस भ्रांति में कभी आप मत पड़ना। अहंकार आपके कब्जे में नहीं है। अहंकार दूसरों के कब्जे में है। इसलिए दूसरे के एक-एक शब्द का मूल्य है। रास्ते पर चार लोग नमस्कार कर लेते हैं, तो आपकी छाती फूल जाती है। और चार लोग गालियां दे देते हैं, तो छाती सिकुड़ जाती है। चार लोग आपकी तरफ देख लेते हैं प्रशंसा की आंखों से, तो आपके भीतर फूल खिल जाते हैं। और चार लोग आपकी तरफ प्रशंसा की आंखों से नहीं देखते, निंदा की आंखों से देख लेते हैं, आपके भीतर की सब खुशी मर जाती है, सब सुगंध दुर्गंध हो जाती है, सब फूल कुम्हला कर गिर जाते हैं। यह अहंकार आपके भीतर है, लेकिन आपके हाथों में नहीं है। अहंकार दूसरों के हाथों में है। इसलिए अहंकार सदा दूसरों पर निर्भर है। इसलिए अहंकार सदा ही दूसरों की खोज करता है। अहंकार अकेला नहीं रह सकता। अगर जंगल के एकांत में आपको घबड़ाहट होती है, तो वह आपकी घबड़ाहट नहीं, वह आपके अहंकार की घबड़ाहट है। अगर कमरे के एकांत में आपको घबड़ाहट होती है और चेष्टा होती है कि साथी खोजें, तो वह आपकी घबड़ाहट नहीं, आपके अहंकार की घबड़ाहट है। एकांत में अहंकार को मुश्किल हो जाता है जीना। अहंकार को प्रतिपल सहारा चाहिए।
और यह मजे की बात है, अहंकार निंदा सह सकता है, एकांत नहीं सह सकता। अहंकार निंदा में भी जी सकता है, एकांत में नहीं जी सकता। अहंकार को प्रशंसा मिले, तब तो कहना क्या! लेकिन अगर प्रशंसा न मिले, तो निंदा भी बेहतर है। लेकिन एकांत एकदम खतरनाक है। क्योंकि निंदा में भी दूसरा आपको मूल्य तो देता ही है। अगर कोई मुझे गाली देता है, तो भी मुझे स्वीकार तो करता ही है। और अगर वह मुझे गाली दिए ही चला जाता है, तो मेरी महत्ता को भी अंगीकार करता है--मैं कुछ हूं! अगर अखबार में एक अपराधी की तरह भी मेरा नाम छपता है, तो भी अहंकार जी सकता है। अगर सड़क से मेरे हाथों में जंजीरें डाल कर मुझे कारागृह ले जाया जाता है, तो भी मेरा अहंकार जी सकता है। लेकिन अकेले में अहंकार नहीं जी सकता।
मोहम्मद, महावीर या बुद्ध या जीसस के एकांत में जाने का जो मौलिक कारण है, वह इस बात की खोज है कि उनके भीतर अहंकार अभी भी बचा है या नहीं। अगर वे अकेले में जी सकते हैं और उन्हें दूसरे की कोई याद नहीं आती, तो उसका अर्थ है, अहंकार विसर्जित हो गया।

महावीर बारह वर्षों तक एकांत में थे। साधारणतः महावीर को मानने वाले सोचते हैं कि समाज को छोड़ कर गए थे। वह बहुत ऊपरी नजर है। समाज से महावीर को कुछ लेना-देना नहीं। महावीर बारह वर्ष इस परख के लिए एकांत में थे कि मेरे भीतर अब भी कोई अहंकार का केंद्र है या नहीं, जो समाज के लिए तड़पता हो, जो मांग करता हो दूसरे की। जब बारह वर्ष के निरंतर परीक्षण से उन्हें ख्याल में आ गया कि अब उनके भीतर दूसरे की कोई मांग नहीं है, तब वे वापस समाज में लौट आए। अब उनके पास अपनी आत्मा थी। अब सड़कों पर कोई फूलमालाएं उनके ऊपर फेंके, या पत्थर मारे, इससे उनके भीतर कोई भी फर्क नहीं पड़ सकता। अब वे अपने मालिक थे।
इसलिए महावीर ने कहा है कि अब मैं जिन हो गया। जिन का अर्थ है, अब मैंने अपने को जीत लिया। अब तक मैं गुलाम था दूसरों का, अब मैं जीता हुआ आदमी हूं। अब तुम कुछ भी करो, तुम मेरे भीतर कोई फर्क न कर पाओगे। मैं तुम्हारी पकड़ के बाहर हूं।
इसे हम ऐसा समझें। आपके भीतर जो अहंकार है, वह आपके चारों तरफ के लोगों के हाथ हैं आपके भीतर फैले हुए। समाज के हाथ हैं आपके भीतर फैले हुए। इसलिए समाज हर आदमी में अहंकार को पैदा करवाता है। यद्यपि मजे की बात है, सभी समाज लोगों को सिखाते हैं विनम्र होने के लिए, लेकिन सभी समाज अहंकार की शिक्षा देते हैं। और मजे की बात यह है कि विनम्रता भी समाजों के द्वारा अहंकार की ही एक व्यवस्था है।
बाप अपने बेटे से कहता है, विनम्र रहो, तो ही तुम्हें सम्मान मिलेगा। गुरु अपने शिष्यों को समझाते हैं, तुम जितने विनम्र रहोगे, जितने सरल रहोगे, उतने प्रशंसा के पात्र बनोगे। यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि प्रशंसा का पात्र तो अहंकार बनता है। विनम्रता को भी हम अहंकार का ही आभूषण बनाते हैं। हम उस आदमी को समाज में प्रतिष्ठा देते हैं, जो विनम्र है। और प्रतिष्ठा देते हैं, इसलिए उसे विनम्र होने में सुविधा भी मिलती है। क्योंकि विनम्रता अहंकार का आभूषण बन जाती है।
समाज बिना अहंकार को परिपुष्ट किए नहीं जी सकता। क्योंकि समाज चाहता है, आपके भीतर समाज के हाथ होने चाहिए। अगर समाज के हाथ आपके भीतर नहीं हैं, तो आप समाज से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए छोटे से बच्चे से लेकर बूढ़े तक, हम हर आदमी को अहंकार सिखा रहे हैं--बहुत-बहुत रूपों में। भले आदमी का अहंकार है, बुरे आदमी का अहंकार है। साधु का अहंकार है, असाधु का अहंकार है। और हम भीतर एक केंद्र निर्मित कर रहे हैं, जिस पर हमारा कब्जा होगा-- बाहर के लोगों का।
लाओत्से कहता है कि प्रशंसा हो या निंदा, बाहर से आती मालूम पड़ती है, लेकिन उसका मौलिक कारण हमारे भीतर होता है। जब कोई मुझे गाली देता है, तो उसकी गाली नहीं अखरती; मुझे देता है, इसलिए अखरती है। और जब कोई प्रशंसा करता है, तो उसकी प्रशंसा से मेरा क्या प्रयोजन है? मेरी प्रशंसा करता है, इसलिए प्रयोजन है। प्रशंसा हमारा भोजन है। निंदा भी नकारात्मक भोजन है। बर्नार्ड शॉ ने कहा है--मजाक में ही सही, लेकिन हम सबके भीतर ऐसा भाव है--बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि मैं स्वर्ग को भी इनकार कर दूंगा, अगर मुझे नंबर दो का स्थान मिले। मैं नर्क जाना भी पसंद करूंगा, अगर मैं नंबर एक होऊं। आप भी अपने मन से पूछें कि स्वर्ग में नंबर दो जगह मिलती है, तो पसंद करिएगा? कि नर्क में नंबर एक जगह मिलती हो, तो पसंद करिएगा? तो आपके भीतर से भी वही बात ख्याल में आएगी कि नंबर एक होना ही बेहतर है, चाहे वह नर्क ही क्यों न हो।
और ऐसा नहीं है कि यह कोई काल्पनिक सवाल है। जिंदगी में हम सब यही कर रहे हैं। नंबर एक होने की कोशिश में पूरा नर्क पैदा कर रहे हैं। लेकिन नंबर एक होना जरूरी है। तो नर्क को हम झेल लेते हैं। एक आदमी धन कमा रहा है, वह कितना नर्क अपने आस-पास पैदा कर लेता है! एक आदमी राजनीति की सीढ़ियां चढ़ रहा है, वह कितना नर्क अपने आस-पास पैदा कर लेता है! लेकिन वह नर्क दिखाई नहीं पड़ता। एक ही बात दिखाई पड़ती है कि मैं नंबर एक कैसे हो जाऊं?
लेकिन लाओत्से कहता है कि नंबर एक भी हो जाओ, प्रशंसा भी मिल जाए, सम्मान भी मिल जाए, तो भी दुख के बाहर न जा सकोगे। क्यों? क्योंकि जितनी प्रशंसा मिलती है, उतनी ही अहंकार की मांग बढ़ जाती है। जितनी प्रशंसा

मिलती है, उतनी तो मैं स्वीकार कर लेता हूं, वह टेकेन फॉर ग्रांटेड हो जाती है। जितना सम्मान मुझे मिल जाता है, उतना तो मैं मान लेता हूं कि मिलना ही चाहिए था। आदमी ही मैं ऐसा हूं। मांग आगे चली जाती है।
आज तक दुनिया में ऐसा आदमी नहीं हुआ, जिसे ऐसा अनुभव हुआ हो कि जितना सम्मान उसे मिलता है, वह उसके लिए काफी हो। सदा लगता है कि मैं तो बहुत ज्यादा हूं, लोग अभी समझ नहीं पा रहे हैं। जब लोग पूरा समझेंगे, तब! मेरी अपनी प्रतिमा मेरी अपनी आंखों में सदा उन सब प्रतिमाओं के जोड़ से बड़ी होती है, जो दूसरों की आंखों में दिखाई पड़ती हैं। और मेरी यह प्रतिमा कोई स्थिर बात नहीं है। जितना इसे बढ़ावा मिलता है, उतनी यह बढ़ती चली जाती है। जितनी इसे प्रशंसा मिलती है, उतना इसे पानी मिलता है, खाद मिलती है। और यह प्रतिमा बड़ी होती चली जाती है। एक बात निश्चित है कि जो भी इस प्रतिमा को दिया जाए सम्मान, यह प्रतिमा उसे आत्मसात कर लेती है। और आगे की मांग शुरू हो जाती है।
यह मजे की बात है कि जितना भी सम्मान मुझे मिले, उससे मुझे आनंद तो नहीं मिलेगा, क्योंकि उसे मैं स्वीकार कर लूंगा; उससे मुझे दुख जरूर मिलेगा, अगर फिर उतना सम्मान मुझे न मिले। आज आपने नमस्कार की और कल मुझे नमस्कार नहीं की। तो आज जब नमस्कार आप करेंगे, तब तो मैं मान लूंगा कि मैं आदमी ही ऐसा हूं कि नमस्कार आपको करनी पड़ी। लेकिन कल जब आप नमस्कार नहीं करेंगे, तब मैं दुख जरूर पाऊंगा। अहंकार से, जो मिलता है, उससे तृप्ति नहीं होती; और जो नहीं मिलता, उससे दुख होता है। जो मिलता है, उसे तो अहंकार स्वीकार कर लेता है, राजी हो जाता है। फिर जो नहीं मिलता, उससे पीड़ा आनी शुरू होती है।
फिर जो मिल जाता है, उसे बचाने का भी बड़ा भारी आकर्षण पैदा होता है। जितनी प्रशंसा मुझे मिल जाए, कम से कम उतनी प्रशंसा मिलती रहे, इसकी फिर सतत चेष्टा शुरू हो जाती है। और तब भय पैदा होता हैः कहीं छिन न जाए! जो आदर मुझे आज मिल रहा है, कल मिले न मिले! तो जो मिल जाता है, उसे बचाना है, सुरक्षा करनी है। फिर भय पकड़ता है। और अगर वह न मिले तो दुख आता है।
तो लाओत्से कहता है, सम्मान मिल जाए तो भी शांति तो नहीं मिलती, और अशांत हो जाता है मन, और दुखी हो जाता है मन। और निंदा मिले, तब तो पीड़ा होती ही है। निंदा तो पीड़ा देगी ही। यह भी थोड़ा समझ लेना चाहिए कि निंदा भी उसी मात्रा में पीड़ा देती है, जिस मात्रा में सम्मान की अपेक्षा होती है। चौदह सौ साल पहले बोधिधर्म चीन में प्रवेश किया, एक भारतीय भिक्षु। लाखों लोग उसे लेने के लिए चीन की सीमा पर इकट्ठे हुए थे। चीन का सम्राट भी उसके चरणों में सिर रख कर लेटा था। लेकिन जब उसने आंख उठा कर देखा, तो सम्राट हैरान हुआ। और वे लाखों लोग भी परेशानी में पड़ गए। बोधिधर्म एक जूता अपने पैर में पहने था और एक जूता अपने सिर पर रखे हुए था। सम्राट वू ने कहा कि मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि यह आपने एक जूता अपने सिर पर क्यों रख लिया है?
बोधिधर्म ने कहा, संतुलन की दृष्टि से। मुझे पता चला कि सम्राट मेरे चरणों में सिर रखेगा, तो संतुलित कर लेना उचित है। कहीं संतुलन खो न जाए, इसलिए एक जूता मैंने अपने सिर पर रख लिया। तुम्हारे सम्मान को मैं अपने ही हाथों अपनी निंदा करके पोंछ डालता हूं। तुमने जो सम्मान दिया है, उसे मैं ही मिटाए डालता हूं। यह लेन-देन पूरा हो गया। मैंने तुम्हारी प्रशंसा स्वीकार नहीं की। और तुम भलीभांति जान लो कि अगर कल तुम मेरे सिर पर जूता भी मार दोगे, तो निंदा से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। यह जूता रख कर मैं प्रवेश ही कर रहा हूं।
हमारी अपेक्षा ही हमारी निंदा का वजन है। मैं जितनी अपेक्षा करता हूं सम्मान की, उतनी ही निंदा में पीड़ा होगी। अगर मेरी कोई भी अपेक्षा नहीं, तो निंदा में कोई भी पीड़ा नहीं रह जाती। इसलिए इसे ऐसा भी समझ लेंः निंदा की पीड़ा निंदा में नहीं है, निंदा की पीड़ा सम्मान की अपेक्षा में है। जब आप मुझे गाली देते हैं, तो आपकी गाली में पीड़ा नहीं है। मैंने सोचा था कि आप नमस्कार करेंगे और गाली मिली, इसलिए पीड़ा है। सम्मान दुख देता है, भय देता है। और सम्मान की अपेक्षा निंदा में वजन ला देती है, निंदा को भारी कर देती है।

लाओत्से कहता है, सम्मान-अपमान दोनों से हमें निराशा मिलती है। निंदा
से तो मिलेगी ही, क्योंकि अहंकार के पैर उखड़ जाते हैं। सम्मान से भी निराशा मिलती है, क्योंकि वही निंदा का भी मूल कारण है। लाओत्से ने कहा है कि अगर तुम चाहो कि कोई तुम्हारी निंदा न करे, तो तुम किसी से सम्मान मत मांगना। वहां बड़ी कठिनाई होती है मन को। यह तो हम भी चाहते हैं कि कोई निंदा न करे; लेकिन दूसरी शर्त मानने का मन नहीं होता। यह कौन नहीं चाहता कि निंदा न की जाए? लेकिन लाओत्से कहता है, अगर चाहते हो कि कोई तुम्हारी निंदा न करे, तो सम्मान की अपेक्षा मत करना। यह दूसरी शर्त मानने का मन नहीं होता। मगर इस दूसरी शर्त पर ही सब कुछ निर्भर है। जरा सी इंच भर आकांक्षा सम्मान की, और हजार इंच निंदा का उपाय हो जाता है।
लाओत्से ने कहा है, तुम सिंहासन पर बैठना ही मत; नहीं तो नीचे गिराए जाओगे। और लाओत्से ने कहा है, असफल होने में भी राजी हो जाना; फिर तुम्हें कोई असफल न कर सकेगा। और हार को ही जीत समझ लेना; फिर इस जगत में तुम्हें हराने की किसी की क्षमता नहीं है। लेकिन यह शर्त कठिन है। लेकिन यह शर्त मौलिक जरूर है, गहरी जरूर है, जड़ों की बात है। अगर निंदा न चाहिए हो, तो सम्मान मत मांगना।
हम भी कोशिश करते हैं कि निंदा न मिले। हम किस तरह से कोशिश करते हैं? हमारी कोशिश आत्मघाती है। निंदा न मिले, इसकी हमारी कोशिश यह होती है कि हम सम्मान की और व्यवस्था कर लें। निंदा न मिले, इसका मतलब यह होता है कि सम्मान की जितनी-जितनी जरूरतें हैं, वे हम पूरी कर दें। लोग जिस ढंग से सम्मान देते हैं, हम उस ढंग के आदमी हो जाएं। लोग जिस आचरण को सम्मान देते हैं, वैसा हमारा आचरण हो जाए। लोग जिस तरह के ढोंग को सम्मान देते हैं, वैसा ढोंग हम भी आरोपित कर लें। लोग जो चाहते हैं, वह हम पूरा कर दें, ताकि सम्मान मिले।
लेकिन लाओत्से कहता है कि जितनी तुमने यह व्यवस्था की, उतनी ही तुम कठिनाई में पड़ जाओगे। क्योंकि पहली तो बात यह है कि दूसरों के हिसाब से कोई भी व्यक्ति अपने को कभी निर्मित नहीं कर सकता। सब इस भांति का निर्माण अभिनय हो जाता है, थोथा पाखंड हो जाता है। और भीतर से असली आदमी बार-बार प्रकट होता रहता है। फिर दूसरों की इच्छा से जो अपने को निर्मित करता है, वह अगर सम्मान भी पा ले, तो भी अहंकार के अतिरिक्त और कोई तृप्ति नहीं होती। और अहंकार की कोई तृप्ति नहीं है। अहंकार भिखारी का पात्र है। उसे हम कितना ही भरें, वह भरता नहीं। उसकी मांग आगे बढ़ जाती है।
"हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं, वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर मौजूद हैं।"
हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं!
प्रलोभन और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसा हम आमतौर से देखते नहीं; ऐसा हमें सीधा-सीधा ख्याल नहीं आता। लेकिन जो आदमी लोभ से भरा है, वह आदमी भय से भी भरा हुआ होगा। लोभी भयभीत न हो, ऐसा असंभव है। और जो आदमी भयभीत है, वह बिना लोभ के भयभीत नहीं हो सकता। इसलिए भयभीत आदमी के भीतर लोभ न हो, यह असंभव है। फिर वह भय कोई भी क्यों न हो।
अगर एक आदमी परमात्मा से भी भयभीत है, तो उसका कारण लोभ है। कुछ धर्मों ने आदमी को भयभीत करके ही परमात्मा की तरफ ले जाने की कोशिश की है। ईश्वर-भीरु, गॉड-फियरिंग हम धार्मिक आदमी को नाम देते हैं। गलत है वह नाम। ईश्वर का भय! तो जरूर किसी लोभ के कारण ही होगा। कुछ पाने का लोभ, कुछ खो न जाए, इस बात का लोभ ही भय पैदा करेगा। कहीं नर्क में न डाल दिया जाऊं, कहीं जन्मों-जन्मों तक दुख न झेलना पड़े, इस भय से, कि ईश्वर नाराज न हो जाए, इस भय से--ये सब लोभ के ही रूप हैं। ईश्वर के भय से ही जो संचालित हो रहा है, वह लोभ से ही संचालित हो रहा है। और लोभी का ईश्वर से कोई संबंध नहीं हो सकता। भीरु का भी कोई संबंध नहीं हो सकता।
ईश्वर से तो संबंध उसका हो सकता है, जिसके भीतर लोभ और भय का कोई उपाय
न रहा हो। और मैंने जैसा कहा, अहंकार हमारे लोभ और भय का आधार है। लोभ और भय जिसके भीतर नहीं हैं, उसके और ईश्वर के बीच कोई दीवार न रही। इसी क्षण द्वार खुल जा सकता है।

लेकिन लोभ और भय को हम एक ही शक्ल में नहीं देखते, एक ही चीज के दो पहलू
की तरह नहीं देखते। लोभ विधायक हिस्सा है और भय निषेधात्मक हिस्सा है। किसी को हम पुरस्कार की बात करते हैं, वह लोभ है। और किसी को दंड की बात करते हैं, वह भय है। और जहां भी पुरस्कार है, वहां दंड है। और जहां भी दंड है, वहां पुरस्कार है। स्वर्ग पुरस्कार है, नर्क दंड है। सम्मान पुरस्कार है, अपमान दंड है।
समाज आपकी लगाम को इसी लोभ और भय के आधार पर संचालित करता है। समाज देगा सम्मान उस व्यक्ति को, जो समाज की माने। समाज देगा दंड उस व्यक्ति को, समाज की जो न माने। समाज सम्मानित करेगा, अगर आप समाज की छाया बन जाएं। समाज अपमानित करेगा, अगर आप समाज से भिन्न और ऊपर होने की चेष्टा करें। इसलिए समाज सुकरात को या जीसस को या महावीर को या मोहम्मद को कष्ट देगा ही। वह कष्ट बिल्कुल स्वाभाविक है; क्योंकि ये व्यक्ति समाज से ऊपर होने की चेष्टा कर रहे हैं। समाज से ऊपर होने की चेष्टा का अर्थ है लोभ और भय से ऊपर होने की चेष्टा। समाज का तो सारा ताना-बाना लोभ और भय से निर्मित है। जो भी व्यक्ति इन दोनों के ऊपर होना चाहेगा, समाज को खतरा दिखाई पड़ेगा। महावीर कहते हैं, मैंने सब लोभ छोड़ दिया। और महावीर कहते हैं, मैंने
सब भय भी छोड़ दिया। यह कब संभव है? यह लोभ और भय का छूटना कब संभव है? यह तभी संभव है जब मुझे दूसरे से कोई मांग न रह जाए--कोई भी मांग न रह जाए। जब मैं अपने भीतर इतना आप्तकाम हो जाऊं, जब अपने भीतर इतना पूरा हो जाऊं कि मुझे पूरा करने के लिए किसी की भी जरूरत न रहे। फिर मैं जीऊं या मर जाऊं, लेकिन मेरी पूर्णता मेरे भीतर हो, तो मेरा लोभ और भय विसर्जित हो जाए। लेकिन हम तो हर छोटी-बड़ी बात में दूसरे पर निर्भर हैं। अगर कोई प्रेम
से मेरी तरफ देख लेता है, तो मेरे भीतर दीया जल जाता है। कोई घृणा से देख लेता है, दीया बुझ जाता है। मेरे पास कोई अपनी रोशनी नहीं है। मेरे पास जो कुछ भी है, वह सब दूसरों से मिला हुआ, उधार है। मैं एक उधारी हूं, जिसमें दूसरों ने कुछ दान दिया है। इसलिए भयभीत ही रहना पड़ता है। कभी भी अपनी ईंटें वे खींच लें, तो मेरा भवन गिर जाए। इसलिए जिन्होंने मुझे दिया है, उनसे मुझे भयभीत रहना पड़ता है। और जो उन्होंने अभी मुझे नहीं दिया है, उसके लोभ से भरा रहता हूं कि वह भी मुझे मिल जाए। इस भांति कभी अपने को सोचने की कोशिश करें कि आप भी एक मकान हैं, जिसमें दूसरे लोगों ने दान दिया है।
कुछ पुरानी यहूदी बस्तियों में एक नियम था कि जब भी कोई नया यहूदी बस्ती में आए, तो सारा गांव एक-एक रुपया उसे भेंट कर दे--प्रत्येक व्यक्ति। तो अगर दस हजार लोग होते तो दस हजार रुपए उसे मिल जाते। उसकी जिंदगी गतिमान हो जाती। मकान बन जाता, उसकी दूकान खुल जाती। फिर दुबारा कभी कोई नगर में नया आदमी आएगा, तो इस आदमी को भी उसे एक रुपया देना होगा।
यह बढ़िया सामाजिक व्यवस्था थी। गांव में कोई आदमी गरीब नहीं रह सकता था। लेकिन इस घटना को मैं किसी दूसरे प्रयोजन से कह रहा हूं। हम भी इस जिंदगी में आते हैं और चारों तरफ से थोड़े-थोड़े टुकड़े हमें दिए जाते हैं। उन्हीं टुकड़ों के आधार पर हम भीतर अहंकार का भवन निर्माण करते हैं। कुछ पिता देते हैं, कुछ मां देती है, कुछ भाई-बहन देते हैं, कुछ संगी-साथी, गांव के लोग, पड़ोस के लोग देते हैं। और उन सबसे हमारे भीतर अहंकार का भवन निर्मित होता है। फिर भय बना रहता है--कोई भी कभी एक ईंट खींच ले! इसलिए जिनसे हमें मिलता है, उनसे हमें भय भी लगा रहता है, डर भी लगा रहता है। कभी भी, जो दिया है, वह वापस लिया जा सकता है। और जो नहीं दिया है, उस पर आंख भी लगी रहती है कि वह भी हमें मिल जाए।
ये लोभ और भय हमारे भीतर हैं। और इस लोभ और भय से हम जो भी संबंध निर्मित करते हैं जीवन में, वे सभी हमें दुख लाएंगे। उनसे किसी से भी सुख आने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि परतंत्रता गहरे से गहरा दुख है। और अगर मेरी आत्मा भी उधार है और केवल दूसरों के टुकड़ों से निर्मित हुई है... । पिकासो ने एक राजनीतिज्ञ का बहुत समय पहले एक चित्र बनाया था। वह चित्र खूबी का था। उस चित्र में उसने रंगों का उपयोग नहीं किया था, केवल अखबार की कतरनों का उपयोग किया था। अखबार के टुकड़े काट-काट कर कैनवास पर चिपका दिए थे और राजनीतिज्ञ का चित्र बना दिया था।

गहरी बात है! राजनीतिज्ञ के पास अखबार की कतरन के अलावा कुछ होता भी नहीं है। वही उसकी आत्मा है। कभी आपने ख्याल किया है, एक राजनीतिज्ञ पद से उतर जाता है, अखबारों में उसकी खबर छपनी बंद हो जाती है, तब आपको यह भी पता लगाना मुश्किल है कि वह आदमी कहां खो गया! आपको अब आखिरी बार उसकी खबर तभी लगेगी, जब वह मरेगा। इस बीच आपको यह भी पता लगाना मुश्किल है कि वह आदमी जिंदा है या मर गया! अब एक ही खबर और छपेगी उसकी। अखबार के टुकड़ों का जोड़ है वह।
लेकिन राजनीतिज्ञ ही ऐसा है, ऐसा नहीं। हम भी सब इसी तरह के जोड़ हैं। अगर मैं आपसे कह दूं कि आप सुंदर नहीं दिखाई पड़ते मुझे, तो आपको इतनी पीड़ा क्यों हो जाती है? या मैं कह दूं कि आप कुरूप हैं, तो आपको इतनी पीड़ा क्यों हो जाती है?
आपको आपके सौंदर्य का कोई भी पता नहीं है। लोगों ने जो कहा है, वही आपका सौंदर्य है। मैं अपनी ईंट वापस खींच लेता हूं, मैं कहता हूं कि नहीं, मुझे आप सुंदर नहीं मालूम पड़ते। और आपके भवन में दरार पड़ जाती है। और भय पैदा हो जाता हैः आज एक आदमी ने खींचा है, कल दो आदमी खींच लेंगे, परसों तीन आदमी खींच लेंगे। सौंदर्य का क्या होगा?
मैं आपको बुद्धिमान मानता हूं, तो आप बुद्धिमान हैं। और अगर मैं आपको बुद्धू कह दूं, तो आप बुद्धू हो जाते हैं। नाराजगी क्यों पैदा होती है? नाराजगी इसलिए पैदा होती है कि आप मेरे ही सहारे बुद्धिमान हैं। अगर बुद्ध को कोई कह दे कि बुद्धिमान नहीं हो, तो बुद्ध हंस कर उस गांव से निकल जाएंगे। क्योंकि बुद्ध किसी और के कारण बुद्धिमान नहीं हैं; अपने ही कारण हैं, जो भी हैं।
हमारी पीड़ा क्या है निंदा में? हमारी पीड़ा यही है कि हम अपने भीतर कुछ
भी नहीं हैं। दूसरों ने जो बनाया है, वही हैं। तो चार आदमियों के मत पर निर्भर है हमारा होना। यह हमारा अहंकार लोगों के मतों से तय हुआ है। लोग कहते हैं। इसलिए हम बहुत डरते हैं इस बात से कि लोग क्या कहेंगे! क्योंकि हम और कुछ हैं ही नहीं।
ध्यान करने लोग मेरे पास आते हैं, तो वे कहते हैं कि अगर हमने ऐसा किया, तो लोग क्या कहेंगे?
ये लोग कौन हैं? ये लोग वे ही हैं, जिन्होंने आपका अहंकार निर्मित किया है। आपको भय है उनका, कहीं वे अपने ख्याल न बदल दें, कहीं वे यह न कहने लगें कि अब तुम पागल मालूम पड़ते हो। यह तुम क्या कर रहे हो? तो हमारी आत्मा उनके हाथ उधार रखी है। वे जो कहेंगे, वही हम हो जाएंगे। वे जो कह रहे हैं, वही हम हैं।
हमारा अपना कोई होना है? हमारी कोई प्रामाणिक सत्ता, कोई आथेंटिक एक्झिस्टेंस है? या सिर्फ हम कागज की कतरन हैं? लोगों के मतों का संग्रह हैं?
लेकिन अभी जैसे हम हैं, वह हमारी स्थिति यही है। इसलिए निंदा पीड़ा देती है। क्योंकि निंदा हमें चुभती है, हमारे भवन को गिराती है। प्रशंसा सुख देती मालूम पड़ती है, क्योंकि भवन मजबूत होता है।
मैंने सुना है, बैनिटो मुसोलिनी एक रात एक सिनेमागृह के पास से गुजरता था। सहज ही ख्याल हो आया; फिल्म तो शुरू हो चुकी थी, अंधेरे में ही जाकर वह सिनेमागृह में बैठ गया। जब फिल्म समाप्त हुई, तो मुसोलिनी को सम्मान देने के लिए इटली की फिल्मों में आखिर में मुसोलिनी का चित्र आता था और सारे लोग खड़े होकर मुसोलिनी का जय-जयकार करते थे--सारे लोग खड़े होकर मुसोलिनी का जय-जयकार किए।
स्वभावतः, मुसोलिनी तो बैठा रहा, बहुत प्रसन्न हुआ कि सारे लोग जय-जयकार कर रहे हैं। पड़ोस के व्यक्ति से उसने पूछा कि बहुत आनंद तुम्हें आ रहा है जय-जयकार करने में? उस आदमी ने कहा कि बेहतर होगा कि तुम भी खड़े होकर आनंद मनाओ। क्योंकि आनंद न मनाना बहुत मंहगा और खतरनाक है। भीतरी इच्छा तो मेरी भी यही है कि जिस शान से तुम बैठे हो, उसी शान से मैं भी बैठा रहूं। लेकिन तुम हो कौन? तुम्हें शायद पता नहीं कि तुम इटली में हो और मुसोलिनी का जय-जयकार किए बिना जीना मुश्किल है। इच्छा तो मेरी भी यही होती है कि जैसे तुम शान से पैर पसारे बैठे हो, मैं भी बैठा होता।

एक और मुझे स्मरण आता है कि चर्चिल बोलने जा रहा था पार्लियामेंट में। उसकी गाड़ी बिगड़ गई है रास्ते पर। उसने एक टैक्सी ली। लेकिन टैक्सी वाले ने कहा कि मैं नहीं ले जा सकूंगा; क्योंकि अभी-अभी रेडियो पर, चर्चिल का व्याख्यान पार्लियामेंट में हो रहा है, वह आने वाला है। मैं खुद उसको सुनने के लिए रुका हूं। चर्चिल के प्राण स्वभावतः फूल गए होंगे, खुशी का अंत न रहा, कि ड्राइवर इनकार कर रहा है ले जाने से सवारी को! चर्चिल ने एक बड़ा नोट निकाल कर उसके हाथ में दिया और कहा कि खुश हूं तुम्हारी बात से, लेकिन चलना जरूरी है। उस आदमी ने चर्चिल को बिठा कर गाड़ी शुरू कर दी। चर्चिल ने पूछा कि व्याख्यान का क्या करोगे? तो उस आदमी ने कहा, भाड़ में जाए चर्चिल!
एक क्षण पहले इस आदमी ने चर्चिल को जैसा फुला दिया होगा, एक क्षण बाद...
। लेकिन शायद चर्चिल को भी ख्याल में न आया हो कि यह आत्मा का फूल जाना और सिकुड़ जाना एक टैक्सी ड्राइवर के हाथ में है। यह कुंजी चर्चिल के अपने हाथ में नहीं है। यह टैक्सी ड्राइवर के हाथ में है।
हमारी सब कुंजियां बदल गई हैं। सब कुंजियां बदल गई हैं। और जिसे हम मालिक कहते हैं, वह भी अपने गुलामों के हाथ में अपनी कुंजियां दिए हुए है। यह जो स्थिति है, इस स्थिति के लिए ही यह सूत्र हैः "हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं, वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर हैं। सम्मान और अपमान के संबंध में ऐसा कहने का यह अर्थ है कि सम्मान-प्राप्ति के बाद निम्न स्थिति में होना अपमान है।"
अपमान का अर्थ ही क्या है? तुलनात्मक है, रिलेटिव है। अगर कोई व्यक्ति सम्मान की एक स्थिति में रहा है, तो फिर उससे नीचे की स्थिति में उसका अपमान है। तो जब भी हम कोई स्थिति खोज रहे हैं, हम साथ ही अपमान की स्थिति भी खोज रहे हैं। जब भी हम ऊपर चढ़ रहे हैं, तब हम नीचे गिरने की स्थिति भी खोज रहे हैं। जब भी हम किसी भी दिशा में, किसी भी मार्ग से, किसी भी ढंग से अपने अहंकार को भर रहे हैं, तभी हम इसके विपरीत भी रास्ता निर्मित कर रहे हैं।
वह जो विपरीत रास्ता निर्मित होता है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। जब मैं सम्मान के सिंहासनों पर चढ़ता हूं, तो मुझे यह दिखाई नहीं पड़ता कि मैं अपने गिरने का उपाय भी कर रहा हूं। मैं ही कर रहा हूं। और जब मैं गिरूंगा, तब मैं जिम्मेवारी दूसरों पर रखूंगा। और जब मैं चढ़ रहा था, तब जिम्मेवारी मेरी थी।
हर ऊंचाई के बाद नीचाई है। और हर पहाड़ के बाद खाइयां हैं। और हर शिखर, खाइयों के बिना कोई भी शिखर खड़ा नहीं हो सकता। जब कोई पहाड़ बहुत ऊंचा होने की कोशिश कर रहा है, तब उसके पास खाई निर्मित होती चली जाती है। जब कोई सफलता का शिखर चढ़ता है, तो अपने चारों तरफ असफलता की खाई भी खोद लेता है। वह प्रतिपल चल रही है। इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। इससे बचने का एक ही उपाय है कि शिखर पर चढ़ने की बात ही न हो। जो गिरने से बचना चाहता हो, वह चढ़े ही नहीं।
यह थोड़ा कठिन है। क्योंकि चढ़ना हम सब चाहते हैं, गिरना हम नहीं चाहते। दूसरे हिस्से को हम स्वीकार नहीं करते। जन्म होता है, तो हम मृत्यु को स्वीकार नहीं करते। जन्म के साथ ही मृत्यु मौजूद हो गई। जन्म लिया, उसी दिन मैंने मरने को भी स्वीकार कर लिया। लेकिन जीवन भर मैं कोशिश करूंगा कि मौत न हो। मेरी कोशिश से कोई फल होने वाला नहीं है। क्योंकि जन्म के साथ ही मौत घट गई। वह भविष्य की घटना नहीं है अब। वह भी अतीत का ही हिस्सा हो गई। मौत हो ही चुकी। क्योंकि एक छोर नहीं हो सकता, दूसरा छोर भी होगा ही। सफलता के साथ ही असफलता भी घटित होती है और सम्मान के साथ ही निंदा भी।
इसलिए बहुत मजे की बात है कि जितने ज्यादा लोग सम्मानित होते हैं, ठीक उसी अनुपात में निंदा चारों तरफ व्याप्त हो जाती है। कोई और उपाय नहीं है। संतुलन है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है इस जगत में, जिसने प्रशंसा ही पाई हो और निंदा नहीं। सम्राटों को छोड़ दें, राजनीतिज्ञों को छोड़ दें, धनपतियों को छोड़ दें, उन्हें तो निंदा मिलती है। लेकिन महावीर, बुद्ध या कृष्ण और क्राइस्ट को ही सोचें। चाहे उन्होंने सम्मान न चाहा हो और चाहे उन्हें निंदा से कोई भी फर्क न पड़ा हो, लेकिन लोगों ने सम्मान दिया, तो लोगों ने

अपमान भी दिया। और उन दोनों की मात्रा बराबर थी। उस मात्रा में कमी नहीं हो सकती।
इसलिए कृष्ण को अगर एक तरफ भगवान मानने वाले लोग हुए, तो एक तरफ कृष्ण
को नर्क में डालने वाले लोग भी होंगे ही। अगर एक ओर बुद्ध को लोग कहेंगे परम ज्ञानी, तो बुद्ध को परम अज्ञानी कहने वाले लोग भी होंगे ही। और अगर एक तरफ जीसस को लोग ईश्वर का पुत्र कहेंगे, तो ठीक दूसरी तरफ जीसस को सूली पर लटका देने वाले लोग भी होंगे ही।
और जब जीसस को सूली पर लटकाया, तो लटकाने वालों ने दो और लोगों को भी साथ में सूलियां दी थीं--दो चोरों को। जीसस को बीच में लटकाया था, दोनों चोरों को दोनों तरफ लटकाया था। चोरों के साथ सूली दी थी, ताकि यह भी वहम न रह जाए कि जीसस को हम कोई पैगंबर मान कर सूली नहीं दे रहे हैं। एक आवारा, समाज-बहिष्कृत, एक उपद्रवी, एक विक्षिप्त आदमी समझ कर सूली दे रहे हैं। और लाओत्से से अगर कोई पूछेगा, तो लाओत्से कहेगा कि यह होना ही था; यह होगा ही। जीसस को कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिए जीसस सुखी और दुखी नहीं होते। लेकिन जीसस के शिष्य बहुत दुखी हुए जब जीसस को सूली लगी। क्योंकि जीसस के शिष्यों का ख्याल था, ईश्वर का पुत्र! उसको सूली कैसे लग सकती है? लेकिन उन्हें पता नहीं था कि जब उन्होंने ईश्वर का पुत्र घोषित किया, तभी दूसरा वर्ग भी संतुलन करने को जगत में निर्मित हो जाता है।
जगत एक गहन संतुलन है। यहां प्रत्येक चीज हमेशा संतुलित होती रहती है। असंतुलन कभी भी नहीं हो पाता। क्या है उपाय?
लाओत्से के हिसाब से एक ही उपाय है। और वह उपाय यह है कि जो हमारी खोज है, उसमें हम विपरीत को भी देख लें। और जब आप सम्मान खोजते हों, तो ठीक से समझ लें कि आप अपमान भी खोज रहे हैं। जब आप लोभ करते हों, तब ठीक से सोच लें कि भय को पैदा कर रहे हैं। जब आप प्रेम पाने चलते हों, तो ठीक से समझ लें कि आपने घृणा की भी मांग उपस्थित कर ली। जब आप जीवन को जोर से पकड़ें, तब समझ लेना कि अब आप मौत को जोर से पकड़ रहे हैं।
विपरीत का दर्शन लाओत्से का बुनियादी सूत्र है। लाओत्से कहता है, हर घड़ी वह जो विपरीत है, उसे भी देख लेना। एक को ही मत देखना। जीवन द्वंद्व है। दूसरे को भी ठीक से देख लेना। और वह दूसरे से बच न सकोगे। जिसने एक को चुना, उसने दोनों को चुन लिया। और जिसको दोनों से बचना हो, उसे एक को भी नहीं चुनना चाहिए।
लाओत्से को उसके मुल्क का सम्राट प्रधानमंत्री बना लेना चाहता था। लाओत्से भागता फिरता था एक गांव से दूसरे गांव। जब दूसरे गांव में सम्राट के लोग पहुंचते, तो पता चलता कि वह तीसरे गांव चला गया। सम्राट भी हैरान था। प्रधानमंत्री बनाने के लिए उत्सुकता थी उसकी। और यह आदमी भाग क्यों रहा है? आखिर सम्राट ने एक संदेशवाहक भेजा और लाओत्से से कहा, व्यर्थ मत भागो, परेशान मत होओ। इतना ही मुझे बता दो कि मैं तुम्हें एक महान सम्मान के पद पर बिठाना चाहता हूं, इस राष्ट्र का बड़े से बड़ा सम्मान कि तुम्हें मैं प्रधानमंत्री बनाना चाहता हूं, तुम भाग क्यों रहे हो? लाओत्से ने खबर भिजवाई कि सम्मान से मैं नहीं भाग रहा हूं। मैं उस अपमान से भाग रहा हूं, जो हर सम्मान के पीछे छिपा है।
लेकिन वह दूसरा हमें दिखाई नहीं पड़ता। उस दूसरे को देख लेना ही बुद्धिमत्ता है। हर जगह--कोई एक आयाम में नहीं, सभी आयाम में दूसरा सदा मौजूद है। अगर कोई व्यक्ति जीवन को ऐसा बना ले कि उसे हर जगह यह द्वंद्व दिखाई पड़ जाए... । और ध्यान रहे, अगर द्वंद्व का दर्शन हो जाए, तो वासना क्षीण हो जाएगी।
बहुत लोग समझाते हैं कि वासना छोड़ दो, इच्छा छोड़ दो। लेकिन लाओत्से का सूत्र बहुत गहरा है। वह नहीं कहता इच्छा छोड़ दो। वह कहता है, इच्छा के जो विपरीत है, उसको भी ठीक से देख लो। इच्छा छूट जाएगी। अगर मुझे सच में यह दिखाई पड़ जाए कि मित्र बनाना शत्रु बनाने का उपाय है, अगर यह सच में मुझे दिखाई पड़ जाए, इसमें धोखा न हो, यह बौद्धिक समझ न हो, यह ऊपरी-ऊपरी न हो, यह गहरा और प्राणों में उतर जाए और मुझे दिखाई पड़ जाए कि मित्र बनाना शत्रु बनाने का पहला चरण है, तो मित्र न बनाऊं, ऐसी कोई चेष्टा न करनी पड़ेगी।
इस संबंध में एक मजे की बात ख्याल में लेनी चाहिए।

मित्र बनाना मेरे हाथ में है, शत्रु न बनाना मेरे हाथ में नहीं है। अगर मैंने पहला कदम उठा लिया, तो दूसरा कदम मेरे हाथ में नहीं है। पहला कदम हम सब उठा लेते हैं। और चाहते हैं, दूसरा कदम उठने से रुक जाए। वह हमारे हाथ में नहीं है। सफलता मैंने मांग ली। वह मैं न मांगता, वह मेरे हाथ में थी। लेकिन असफलता फिर मेरे हाथ के बाहर है। सम्मान मैंने चाह लिया, वह मेरे हाथ में था। दूसरी चीज मेरे हाथ में नहीं है।
बुद्ध ने बहुत मजे की बात कही है। बुद्ध ने कहा है, मृत्यु की फिकर छोड़ो, जन्म से बचने की कोशिश करो। क्योंकि जन्म ले लिया, तो फिर मृत्यु हाथ में नहीं है। तो बुद्ध के पास एक ब्राह्मण आया है। और वह ब्राह्मण कह रहा है, मुझे जन्म-मरण से कैसे छुटकारा मिले? तो बुद्ध ने कहा, मरण तो तू मरण पर छोड़; तू जन्म से ही छुटकारा पा ले।
आमतौर से हम कहते हैं, जन्म-मरण से कैसे छुटकारा मिले? मरण आपके हाथ में नहीं है। उससे आप छुटकारा नहीं पा सकते। आपके हाथ में पहला सूत्र है-- जन्म। उससे आप छुटकारा पा सकते हैं। और जन्म न हो, तो मरण का कोई उपाय नहीं रह जाता। जन्म होगा, तो ही मृत्यु हो सकती है।

तो बुद्ध ने उससे कहा, तू यही फिक्र कर कि जन्म कैसे न हो। जन्म क्यों होता है?
उस आदमी की समझ में नहीं आया। क्योंकि वह जो कह रहा था, जन्म-मरण से छुटकारा हो, उसमें जन्म का उसे ख्याल ही नहीं था। असल में, मरण से ही छुटकारा चाहता था। उसने कहा कि मृत्यु से बहुत भय लगता है, बड़ी घबड़ाहट होती है, इसीलिए तो छुटकारा चाहता हूं।
वह आदमी जन्म से छुटकारा नहीं चाहता, वह असल में ऐसा जन्म चाहता है, जहां फिर मृत्यु न हो। वह ऐसा जीवन चाहता है, जिसमें मृत्यु न हो। वह जन्म से छुटकारा नहीं चाहता, वह मृत्यु से छुटकारा चाहता है।
हम भी, हमारे सब के सोचने का यही भ्रांत ढंग है। लोग मेरे पास आते हैं,
वे कहते हैं, दुख से कैसे छुटकारा हो? नहीं हो सकता उनका, जब तक कि वे मुझसे पूछने न आएं कि सुख से कैसे छुटकारा हो? क्योंकि सुख चुनाव है; दुख परिणाम है। सुख मेरे हाथ में है; दुख मेरे हाथ में नहीं है।
ऐसा समझें कि मैं दौडूं और फिर मैं कहूं कि मेरे पीछे जो छाया दौड़ती है, वह न दौड़े। इस छाया के दौड़ने से कैसे छुटकारा हो? तो मैं कहूंगा, मेरा दौड़ना न दौड़ना मेरे हाथ में है, लेकिन मेरी छाया का दौड़ना न दौड़ना मेरे हाथ में नहीं है। मैं न दौडूं, छाया न दौड़ेगी। मैं दौडूं, तो फिर छाया को नहीं रोका जा सकता।
दुख छाया है; सुख चुनाव है। सम्मान चुनाव है; अपमान छाया है, परिणाम है। हम सभी परिणाम से बचना चाहते हैं। हम बीज बोते हैं, पानी डालते हैं, खाद डालते हैं। और पौधा अंकुरित न हो, इसकी चेष्टा में लगे रहते हैं। सारी चेष्टा करते हैं कि पौधा अंकुरित हो और मन में रहता है कि पौधा अंकुरित न हो। बोते हैं सुख। दुख उसका ही अंकुर है। लेकिन ये दोनों इकट्ठे नहीं दिखाई पड़ते। जिसे दिखाई पड़ते हैं, वह आदमी धार्मिक हो जाता है। धार्मिक की मेरी परिभाषा यही है कि जिसे द्वंद्व में दो नहीं दिखाई पड़ते, एक ही दिखाई पड़ने लगता है। सुख और दुख एक ही चीज के छोर हो जाते हैं। सम्मान-अपमान एक ही चीज के छोर हो जाते हैं।
और ध्यान रहे, यह जैसे ही दिखाई पड़ता है, वैसे ही मुझे पता चल जाता है
कि मैं क्या कर सकता हूं और क्या नहीं कर सकता हूं! कहां तक मेरी सामर्थ्य है और कहां से मेरी सामर्थ्य समाप्त हो जाती है!
मैं अपने हाथ में एक धनुष-बाण लिए खड़ा हूं। जब तक तीर मैंने नहीं छोड़ा है, मेरे हाथ में है। छोड़ देने के बाद फिर मेरे हाथ में नहीं है। मेरे भीतर एक शब्द घना हुआ। जब तक मैंने नहीं बोला है, तब तक मैं मालिक हूं। मैंने बोल दिया, फिर मेरी मालकियत खो गई।
पहला कदम सुख, सम्मान, सत्ता के चुनाव का है। दूसरा कदम अनिवार्य है। फिर दूसरे कदम से नहीं बचा जा सकता।
लाओत्से कहता है कि अगर ये दोनों दिखाई पड़ जाएं, तो क्या होगा परिणाम?

अगर ये दोनों एक साथ दिखाई पड़ जाएं, एक ही दिखाई पड़ जाएं, तो जीवन से वासना तिरोहित हो जाएगी। क्योंकि कोई भी दुख नहीं चाहता, हालांकि सभी को दुख मिलता है। और कोई भी दुख नहीं चाहता। सभी सुख चाहते हैं, और किसी को सुख मिलता नहीं है। और आदमी बहुत अदभुत है, गणित भी नहीं लगाता। कोई दुख नहीं चाहता जगत में, और सभी दुखी हैं। और सभी सुख चाहते हैं, और कोई आदमी छाती पर हाथ रख कर नहीं कह पाता कि मैं सुखी हूं। तो जरूर कहीं न कहीं कोई बुनियादी भूल हो रही है। और वह बुनियादी भूल एक से नहीं हो रही है, शायद सभी से हो रही है।
वह भूल यही हैः दुख को कोई भी नहीं चाहता, सुख को सभी चाहते हैं। सुख
को चुनते हैं, और दुख परिणाम बन जाता है। सुख की तरफ दौड़ते हैं, और दुख हाथ में आता है। जिसे दुख से बचना है, उसे सुख से बचना सीखना पड़े। यही साधना है। और सुख से बचना सीखना बड़ा कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन इतना कठिन नहीं है जितना दुख। जब रास्ते पर मुझे कोई नमस्कार करे, तभी मुझे बच जाना चाहिए। तभी मुझे देख लेना चाहिए कि कहीं कोने-किनारे पर गाली भी खड़ी होगी। तभी उस नमस्कार में मुझे उसकी प्रतिध्वनि भी सुन लेनी चाहिए, जो विपरीत है, तो मैं बच जाऊंगा। जरूरी नहीं है कि गाली न मिले, गाली फिर मिल सकती है। लेकिन तब मेरे लिए अर्थहीन है। मेरे भीतर उससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा। तब गाली देने वाले की और नमस्कार करने वाले की क्रियाएं होंगी, वे उनकी ही होंगी; उनसे मेरा कोई संबंध नहीं जुड़ेगा। मेरा संबंध न जुड़े, तो मैं मुक्त हो गया। और ऐसी मुक्ति में ही आनंद की धारा अवतरित होती है।
तो लाओत्से बहुत गहराई में मनुष्य के बंधन की चर्चा कर रहा है। यदि मुझे इन दोनों में--सुख और दुख में, सम्मान और अपमान में, प्रशंसा और निंदा में--एक का ही दर्शन होने लगे, जन्म और मृत्यु में एक की ही झलक मिलने लगे, तो जगत के प्रति दौड़ती हुई वासना के लिए कोई गति नहीं रह जाएगी।
एलिस नाम की लड़की स्वर्ग में पहुंच गई है--परियों के देश में। रानी के पास खड़ी है वृक्ष के नीचे। खड़ी कहना ठीक नहीं, दोनों दौड़ रही हैं। रानी भी दौड़ रही है, एलिस भी दौड़ रही है। घंटों दौड़ने के बाद एलिस ऊपर देखती है-- वृक्ष जहां था, वहीं है। और वे दोनों भी जहां थीं, वही हैं। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ। और पसीने-पसीने हो गई हैं। तो एलिस रानी से पूछती है, दिन भर हो गया दौड़ते-दौड़ते, थक गए हम, अजीब है तुम्हारा मुल्क, इतना दौड़ कर भी और कहीं पहुंचना नहीं हो रहा है! वृक्ष वहीं के वहीं, हम वहीं के वहीं। तो रानी उससे कहती है, इतने दौड़ने के कारण ही वहीं के वहीं हैं; अगर न दौड़ते, तो सोच, क्या हालत होती? इतना दौड़ने के कारण ही वहीं के वहीं हैं; सोच, न दौड़ते, तो क्या हालत होती?
हम सारे लोग भी दौड़ते हैं जिंदगी भर और वहीं के वहीं खड़े रहते हैं। और हमारे मन में भी यही तर्क होता है कि इतना दौड़ कर भी जब वहीं के वहीं खड़े हैं; अगर न दौड़ते, तो और फजीहत होती। इतनी सम्मान की कोशिश की, तब भी इतना अपमान मिला; अगर सम्मान की कोशिश न करते, तो क्या हालत होती! इतना धन खोजा, फिर भी निर्धन के निर्धन बने हैं; अगर खोजते ही न, तब तो नर्क में पड़ जाते। लेकिन लाओत्से से अगर एलिस पूछती, तो लाओत्से कहता कि मत दौड़, और रुक
कर देख! क्योंकि जब दौड़ कर भी यहीं की यहीं बनी है और कहीं पहुंचना नहीं होता, तो रुक कर भी देख लेना चाहिए।
सारी दुनिया में बस दो ही तरह के तर्क हैं। एक तो यह एलिस को परियों की रानी ने जो तर्क दिया। यह सामान्य बुद्धि का तर्क है, जो सदा यही कहती है। वह यही कहती है कि इतनी मेहनत उठा कर, इतना दौड़ कर ये कंकड़-पत्थर हाथ लगे हैं; अगर बिल्कुल न दौड़ें, तो बहुत मुसीबत हो जाएगी। दौड़ते तो रहो। दूसरा तर्क बुद्ध और महावीर और लाओत्से का है। वे कहते हैं, रुक कर भी देखो! दौड़ो ही मत।
रानी से एलिस फिर पूछती है, तो इस वृक्ष से आगे जाने के लिए क्या किया जाए? रानी ने बहुत मजेदार बात कही। और वह बात यह है, रानी ने उससे कहा कि जितनी तुममें ताकत हो, जितनी तुम दौड़ सकती हो, अगर उतनी ताकत से तुम दौड़ो, तो इस वृक्ष के नीचे बने रहने के लिए काफी है। जितनी तुममें ताकत है, अगर उतनी पूरी ताकत लगा कर दौड़ो, तो तुम इस वृक्ष के नीचे बनी रहोगी। अगर इससे आगे जाना है, तो उससे दुगुनी ताकत से दौड़ना जरूरी है।

लेकिन उससे दुगुनी ताकत हो कैसे सकती है? रानी ने कहा कि जितनी तुममें ताकत है, अगर पूरी ताकत से दौड़ो, तो इस वृक्ष के नीचे बनी रहोगी। अगर इससे आगे जाना है, तो दुगुनी ताकत से दौड़ना जरूरी है। एब्सर्ड है, बेमानी है, कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि दुगुनी ताकत का कोई प्रयोजन न रहा। जब पूरी ताकत से दौड़ कर यहीं बने रहोगे, तो दुगुनी ताकत कहां से आएगी? लेकिन एलिस को भी तर्क जंचा। और उसने कहा, यह बात ठीक है। तो हम दुगुनी ताकत से दौड़ने की कोशिश करें।
हमको भी यही जंचता है। जब हम इस जीवन में सम्मान की बहुत कोशिश करते हैं और सम्मान नहीं मिलता, तो हम सोचते हैं, और दुगुनी ताकत से कोशिश करें। यश चाहते हैं और नहीं मिलता, तो सोचते हैं, और पूरी ताकत लगा दें; शायद ताकत कम लगाई जा रही है। लेकिन ध्यान रहे कि जितनी ज्यादा ताकत यश के लिए लगाई जाएगी, उतना ज्यादा अपयश मिलेगा। और जितनी सत्कार और सम्मान के लिए चेष्टा की जाएगी, उतना ही असम्मान और असत्कार मिलेगा। क्योंकि जीवन द्वंद्व के बीच एक संतुलन है।
तो क्या हम खड़े रह जाएं? क्या हम रुक जाएं इस दौड़ से?
लाओत्से नहीं कहता कि रुक जाएं। यह थोड़ी बारीक बात है, इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लेना चाहिए कि लाओत्से नहीं कहता कि हम रुक जाएं। क्योंकि लाओत्से कहता है कि अगर हम रुकेंगे भी, तो वह भी हमारी एक दौड़ होगी, किसी लोभ के कारण रुकेंगे। अगर हम रुकेंगे भी, तो इस वजह से कि ठीक है, फिर निंदा नहीं मिलेगी, अपमान नहीं मिलेगा, असफलता नहीं मिलेगी। अगर हम रुकेंगे भी, तो हमारे मन में वही लोभ सम्मान का, यश का, प्रतिष्ठा का, सफलता का, धन का, अमरत्व का बना रहेगा।
लाओत्से कहता है, मैं रुकने के लिए नहीं कहता। मैं तो दौड़ने की व्यर्थता को देखने के लिए कहता हूं। उसके परिणाम में रुकना हो जाता है; रुकने के लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती।
बुद्ध से कोई पूछता है, क्या हम इच्छाओं को छोड़ दें, तो शांति मिलेगी?
तो बुद्ध कहते हैं, यह एक नई इच्छा है। यह एक नई इच्छा है। तो बुद्ध कहते हैं, मैं तुम्हें इच्छाएं छोड़ने को नहीं कहता, इच्छाओं को समझने को कहता हूं। क्योंकि अगर तुम समझ लोगे, तो तुम इच्छा नहीं कर पाओगे। तब तुम ऐसा नहीं पूछोगे कि क्या मैं इच्छाएं छोड़ दूं, तो मुझे शांति मिलेगी? यह शांति भी इच्छा का एक विषय बन जाती है। इच्छा जब नहीं होती, तब जो होता है, उसका नाम शांति है। और जब सुख-दुख की कोई खोज नहीं होती, तब जो होता है, उसका नाम आनंद है।
लाओत्से का सूत्र बहुमूल्य है। और इस सूत्र को प्रयोग करने के लिए न
तो किसी विशेष साधना में लगने की जरूरत है, न किसी क्रियाकांड में पड़ने की जरूरत है। इस सूत्र को तो आप चलते, उठते, बैठते, काम करते, सोते, खाना खाते, बाजार में निकलते, दुकान पर बैठते पूरा कर सकते हैं। सिर्फ इतना ही ख्याल रखेंः पहला कदम आप न उठाएं, तो दूसरा कदम कभी नहीं उठेगा। पहले कदम पर सजग हो जाएं, दूसरे कदम से छुटकारा हो जाएगा। पहले कदम उठाने से अपने को देख लें कि कहां आप जा रहे हैं।
च्वांगत्से के घर बच्चा पैदा हुआ--वह लाओत्से का शिष्य था-- च्वांगत्से के घर बच्चा पैदा हुआ। और च्वांगत्से बाहर अपने दरवाजे पर बैठ कर छाती पीट कर रोने लगा। गांव के लोग धन्यवाद देने आए थे। उन्होंने कहा, च्वांगत्से, यह तुम क्या कर रहे हो? तो च्वांगत्से ने कहा कि मेरे गुरु ने कहा है, पहला कदम ही जब उठे, तभी सम्हल जाना। मैंने जन्म में मृत्यु देख ली, इसलिए रो रहा हूं।
फिर उस च्वांगत्से की पत्नी मरी, कई वर्षों बाद। सम्राट आया। तब वह अपने झाड़ के नीचे बैठ कर ढपली बजा कर गीत गा रहा था। सम्राट शोक प्रकट करने आया है। उसने कहा कि पागल हो च्वांगत्से! दुखी मत हो, इतना ही काफी है। लेकिन गीत गाने का यह कोई मौका है? च्वांगत्से ने कहा, एक बार मैंने जन्म में मृत्यु देखी थी, इस बार मैंने मृत्यु में जन्म को भी देख लिया।
इस सूत्र को जीवन के सारे पहलुओं पर हम देखते रहें। और धीरे-धीरे आप पाएंगे कि बहुत कुछ बिना छोड़े छूट गया, बहुत कुछ बिना प्रयास के ही गिर गया। और एक दिन अचानक आदमी पाता है कि वह खड़ा है, दौड़ बंद हो गई। और एक दिन

अचानक पाता है, वह अहंकार, जो दूसरों के सहारे निर्मित था, बिखर गया। और उसके बिखरते ही उसकी प्रतीति शुरू होती है, जो हमारा वास्तविक अस्तित्व, हमारी आत्मा है।
आज इतना ही। लेकिन अभी पांच मिनट रुकेंगे। सब कीर्तन करेंगे। फिर आप जाएं। जिन मित्रों को भी कीर्तन में आना है, वे ऊपर आ जाएं। और आप लोगों में से भी कोई सम्मिलित होना चाहें, तो नीचे मंच के नीचे आ जाएं। बैठे मत रहें कोई, ताली बजाएं और कीर्तन में साथ दें।

ताओ उपनिषद, भाग दो
इकत्तीसवां प्रवचन

अहंकार-शून्य व्यक्ति ही शासक होने योग्य

Chapter 13 : Sutra 2

Praise And Blame

What does it mean to say that,
What we value and what we fear are as if within the self? We have fear because we have a self.
When we do not regard that self as the self,
what have we to fear?
Therefore he who values the self as he does
his own self--
May then be entrusted with the government
of the world;
And he who loves the world as his self--
To his care may the world then be entrusted.

अध्याय 13 : सूत्र 2

प्रशंसा और निंदा

इसका क्या अर्थ है कि सम्मान और अपमान दोनों ही
स्वयं के भीतर हैं?
हम इस कारण भयभीत होते हैं, क्योंकि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है।
जब हम अहंकार को ही अपनी आत्मा नहीं मानते,
तो डर किस बात का होगा?
इसलिए जो व्यक्ति संसार को उतना ही सम्मान दे, जितना कि स्वयं को, तो ऐसे व्यक्ति के हाथ में संसार का शासन सौंपा जा सकता है।
और जो संसार को उतना ही प्रेम करे, जितना स्वयं को,
तो उसके हाथों में संसार की सुरक्षा सौंपी जा सकती है।

कल के सूत्र के संबंध में एक प्रश्न है। प्रश्न महत्वपूर्ण है, मात्र जिज्ञासा के कारण नहीं, बल्कि साधना की दृष्टि से भी।

पूछा है, सुख की कामना का त्याग ही दुखों से निवृत्ति है। सुख का, सम्मान का, जीवन का चुनाव हमारे हाथ में है। दुख, अपमान तथा मृत्यु परिणाम मात्र हैं, उनसे बचना हमारे बस की बात नहीं है। जीवन का चुनाव हमारे हाथ में है, यह कैसे संभव है? यह जानना चाहता हूं। मुझे इतना ही जानना है कि मेरा पुनर्जन्म न हो, यह मेरे हाथ में कैसे है?

इस संबंध में दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए। पहली तो बात यह, सुख की कामना का त्याग, ऐसा मैंने नहीं कहा। कल के सूत्र को समझाते समय आपकी बहुतों की समझ में ऐसा ही आया होगा कि मैंने कहा है, सुख की कामना का त्याग। ऐसा मैंने नहीं कहा, ऐसा लाओत्से का प्रयोजन भी नहीं है। ऐसा बुद्ध और महावीर का भी अर्थ नहीं है। ऐसा क्राइस्ट का भी अभिप्राय नहीं है। लेकिन क्राइस्ट हों, कि बुद्ध, कि लाओत्से, जब भी वे इस तरह की बात कहते हैं, तो हमारी समझ में यही आता है। तो पहली बात तो यह समझ लें कि बुद्ध क्या

कहते हैं, वह अक्सर हमारी समझ में नहीं आता। और जो हमारी समझ में आता है, वह अक्सर बुद्ध का कहा हुआ नहीं होता।
सुख की कामना का त्याग, ऐसा लाओत्से का अभिप्राय नहीं है। सुख को दुख
की तरह जान लेना, ऐसा लाओत्से का अभिप्राय है। इन दोनों में फर्क है। क्योंकि त्याग भी आदमी तभी करता है, जब कुछ मिलने का प्रयोजन हो। त्याग भी एक सौदा है। और त्याग के गहरे में भी लोभ छिपा है।

एक आदमी संसार का त्याग कर सकता है मोक्ष पाने के लिए। लेकिन उस आदमी
से कहो, मोक्ष है ही नहीं, मोक्ष मिलेगा नहीं; फिर संसार का त्याग? फिर संसार का त्याग असंभव है। एक आदमी सुख का त्याग कर सकता है आनंद पाने के लिए। लेकिन सुख का त्याग आनंद पाने के लिए सुख का त्याग ही नहीं है। क्योंकि आनंद में हमारी समस्त वासना पुनः शेष रह गई; सिर्फ और नए आयाम में प्रवेश कर गई। सुख का त्याग नहीं; सुख दुख है, ऐसा जान लेना। और जब कोई ऐसा जान लेता है कि सुख दुख है, तो त्याग करना नहीं पड़ता, त्याग हो जाता है। त्याग करना और त्याग हो जाना, बुनियादी रूप से भिन्न बातें हैं। जो करता है, वह तो लोभ के कारण ही करता है, किसी और सुख की कामना में ही करता है। इसलिए कर ही नहीं पाता। लेकिन हो जाए, तब फिर बिना कामना के हो जाता है। मेरे हाथ में कंकड़-पत्थर रखे हुए हूं मैं। अगर कोई मुझसे कहे कि इनका त्याग करो, तो मैं जरूर पूछूंगा, किसलिए? क्योंकि त्याग का कोई अर्थ ही नहीं है, अगर किसलिए का उत्तर न दिया जा सके। इसलिए तथाकथित धार्मिक साधु- संन्यासी, संत, लोगों को समझाते रहते हैं कि छोड़ो, और तत्काल बताते रहते हैं कि किसलिए।
लाओत्से यह नहीं कह रहा है। मेरा भी अभिप्राय यह नहीं है। हाथ में कंकड़-पत्थर हैं। लाओत्से कहता है, जानो कि ये कंकड़-पत्थर हैं, पहचानो कि ये पत्थर हैं। लाओत्से नहीं कहता कि त्यागो। क्योंकि त्याग की बात उठाते ही प्रश्न उठेगा, क्यों?
लेकिन हाथ में कंकड़-पत्थर हैं, उन्हें मैं हीरे-जवाहरात समझ रहा हूं। हीरे-जवाहरात समझ रहा हूं, इसलिए पकड़े हुए हूं। अगर कंकड़-पत्थर दिख जाएं, तो उन्हें मुझे छोड़ना नहीं पड़ेगा, मेरी मुट्ठी खुल जाएगी। उन्हें छोड़ने के लिए मुझे रंच-मात्र भी चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी। उनके छोड़ने की नई वासना भी नहीं बनानी पड़ेगी कि इन्हें छोडूं, त्याग करूं। नहीं, कोई प्रयत्न नहीं होगा। अप्रयास, एफर्टलेसली, निष्प्रयत्न, पत्थर पत्थर दिखाई पड़ जाए, तो मुट्ठी खुल जाएगी। पत्थर नीचे गिर जाएगा। और अगर पत्थर इस भांति नीचे गिरा हो, तो क्या मैं पीछे किसी से कह सकूंगा कि मैंने पत्थरों का त्याग कर दिया? अगर पत्थर ही थे, तो त्याग का कोई सवाल न रहा। और अगर मैं पीछे कहता हूं कि मैंने त्याग कर दिया, तो मुझे वे पत्थर अभी भी स्वर्ण ही थे, हीरे- जवाहरात ही थे।
भोगी और त्यागी की दृष्टि में बहुत फर्क होता नहीं। भोगी और त्यागी एक-दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े रहते हैं, उनकी दृष्टि में कोई फर्क नहीं होता। भोगी भी मानता है कि हीरे-जवाहरात हैं, इसलिए पकड़े हुए हूं। त्यागी भी मानता है कि हीरे-जवाहरात हैं, इसलिए छोड़ रहा हूं। अगर हीरे-जवाहरात नहीं हैं, तो छोड़ने का कोई मूल्य नहीं रह गया। लेकिन त्यागी भी कहता फिरता है कि मैंने कितना त्याग किया। त्यागी भी हिसाब रखता है उतना ही, जितना भोगी रखते हैं। भोगी हिसाब रखता है, कितने लाख मेरे पास हैं। त्यागी हिसाब रखता है, कितने लाख मैंने छोड़े। लेकिन वे लाख अभी लाख हैं, इसमें कोई भेद नहीं है। मूल्यवान हैं, इसमें भी कोई भेद नहीं है।
बल्कि सच तो यह है कि भोगी कभी भी वस्तुओं को उतना मूल्य नहीं देता, जितना त्यागी देता है--तथाकथित त्यागी। क्यों? क्योंकि भोगी तो पीड़ित भी रहता है मन में कि वस्तुओं को पकड़े हूं, भोग रहा हूं, अज्ञानी हूं, पापी हूं। त्यागी भी वस्तुओं को ही भोगता है, त्याग के नाम से। क्या-क्या उसने छोड़ा है, वह उसके अहंकार का हिस्सा हो जाता है। लेकिन अब पाप का, अब अहंकार को चोट पहुंचने का भी कोई कारण नहीं। त्यागी के पास जो सिक्के हैं, वे और भी चमकदार हो जाते हैं। भोगी के सिक्के तो चोर भी चुरा ले, त्यागी के सिक्के कोई भी चुरा नहीं सकता। भोगी की संपदा में तो कोई भागीदार भी बन

जाए, त्यागी की संपदा में कोई भागीदार नहीं बन सकता। त्यागी की संपदा बहुत सुरक्षित है।
नहीं, लाओत्से का यह अर्थ नहीं है कि सुख की कामना का त्याग करें। लाओत्से कह रहा है कि सुख क्या है, इसे जानें। जानते ही सुख छूट जाता है, त्याग हो जाता है। जो त्याग करते हैं, वे अज्ञानी हैं। जिनसे त्याग हो जाता है, वे ज्ञानी हैं।
ज्ञानियों ने कभी भी कोई त्याग नहीं किया है। यह सुन कर थोड़ी कठिनाई होगी मन को। क्योंकि हमारे सोचने का ढंग यह हो गया है कि हम सोचते हैं, त्याग करने से आदमी ज्ञानी होता है। बात उलटी है, ज्ञानी होने से त्याग घटित होता है। ज्ञानियों ने त्याग कभी नहीं किया। ज्ञानियों से त्याग होता है सहज।
इसलिए उसकी कोई पीछे रूप-रेखा भी नहीं छूट जाती, कोई घाव भी नहीं छूट जाता। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता है, ऐसे ज्ञानी के पास जो व्यर्थ है, वह गिर जाता है। सूखे पत्ते के गिरने की खबर वृक्ष को होती ही नहीं; क्योंकि घाव कोई छूटता नहीं। पता ही नहीं चलता, कब पत्ता गिर गया।
लेकिन कच्चा पत्ता तोड़ें वृक्ष से, तो वृक्ष को भी चोट पता चलती है। जिसको भी त्याग का पता चलता हो, जान लेना कि अभी वह त्याग की स्थिति में पहुंचा नहीं था। जिसे ख्याल भी आता हो कि मैंने त्याग किया, समझ लेना, अभी भोग के वर्तुल से बाहर वह नहीं हुआ है।
लाओत्से कहता है, सुख में देख लेना दुख को, जन्म में देख लेना मृत्यु को, सम्मान में अपमान को। विपरीत की झलक को खोजना। मिल जाएगी; वहीं मौजूद है, छिपी है। जरा आंख गड़ा कर देखने की बात है, जरा ध्यानपूर्वक खोजने की बात है। सुख दुख हो जाएगा। फूल के पीछे कांटा निकल आएगा। फिर छोड़ना नहीं पड़ेगा। छोड़ने की बात ही लाओत्से नहीं करता। छोड़ने की भी कोई बात करनी है! अगर फूल में कांटा निकल आए, तो छूट गया।
इसलिए पहली बात तो यह समझ लें कि सुख की कामना का त्याग ही दुखों से निवृत्ति है, ऐसा नहीं। सुख को दुख जान लेना ही--दुखों से निवृत्ति है, ऐसा नहीं--सुख-दुख दोनों से निवृत्ति है।
हमारा मन बहुत अदभुत है। हम सुख को भी छोड़ने को तैयार हो सकते हैं, अगर दुख से निवृत्ति मिलती हो। लेकिन ध्यान रखें, दुख से निवृत्ति अकेली नहीं होती, सुख और दुख दोनों से निवृत्ति होती है। दुख को छोड़ने को तो कोई भी तैयार है। दुख को छोड़ने के लिए कोई प्रश्न ही नहीं है। हम सुख को भी छोड़ने को तैयार हो जाते हैं कभी, अगर दुख से निवृत्ति मिलती हो। लेकिन वह भी दुख को ही छोड़ने की चेष्टा है। सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--ऐसा जो जानेगा, वह यह भी जान लेगाः या तो दोनों बचेंगे, या दोनों छूट जाएंगे। निवृत्ति होगी, तो दोनों से; और प्रवृत्ति रहेगी, तो दोनों की।
तीसरी बात, "मुझे तो इतना ही जानना है कि मेरा पुनर्जन्म न हो।"
लेकिन क्यों? पुनर्जन्म क्यों न हो? क्योंकि जीवन में दुख है, जीवन में पीड़ा और संताप है, इसलिए पुनर्जन्म न हो? सुख की दौड़ जारी ही बनी रहती है। और पुनर्जन्म न हो, यह भविष्य की आकांक्षा हो गई। और वासना सदा ही भविष्य में होती है। किसी भी तरह की वासना हो, सदा भविष्य में होती है। कल मुझे कुछ हो! वासना सदा कल के बाबत होती है।
कभी आपने सोचा कि वासना वर्तमान में हो नहीं सकती। वासना का वर्तमान में होने का उपाय नहीं है। क्योंकि वासना को जगह चाहिए, स्पेस चाहिए। वर्तमान में कोई जगह तो नहीं होती, एक क्षण आपके हाथ में होता है। वह इतना कम होता है और वासना आपके पास इतनी होती है, उसमें नहीं फैल सकती। इसलिए वासना भविष्य खोजती है--कल, परसों, आने वाले वर्ष। लेकिन यह तो हद्द हो गई वासना की--आने वाला जन्म! तो बहुत भविष्य का विस्तार है।
न; आने वाला जन्म न हो, यह भी वासना है। और जब तक वासना है, तब तक जन्म होता ही रहेगा।
यही दुविधा है धर्म की। धर्म की गहरी से गहरी दुविधा यही है कि हम जब
भी धर्म को समझते हैं, तब तत्काल अपनी वासनाओं की भाषा में रूपांतरित कर लेते हैं। धर्म ऐसा नहीं कहता कि पुनर्जन्म न हो, इसकी कोशिश करो। धर्म ऐसा कहता है कि जीवन क्या है, इसे समझ लो, तो पुनर्जन्म नहीं होगा। वह

सिर्फ कांसीक्वेंस है, परिणाम है। फल नहीं, परिणाम! फल की तो कामना करनी होती है, परिणाम की कामना नहीं करनी होती। कुछ और करना होता है, परिणाम घटित हो जाता है।
बुद्ध का पुनर्जन्म नहीं होता; इसलिए नहीं कि बुद्ध जीवन भर यह चेष्टा करते रहे कि मेरा पुनर्जन्म न हो। अगर यह चेष्टा होती, तो बुद्ध का पुनर्जन्म होता ही। क्योंकि जिसका मन भविष्य में दौड़ रहा है, उसका मन वासना में दौड़ रहा है। अगर ठीक से समझें, तो भविष्य का कोई अस्तित्व जगत में नहीं है--सिवाय मनुष्य की वासना के। भविष्य समय का हिस्सा नहीं है, मनुष्य की वासना का हिस्सा है। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति वासनाशून्य हो जाता है, उसके लिए भविष्य मिट जाता है। भविष्य ही नहीं, समय ही मिट जाता है।
जीसस से कोई पूछता है, तुम्हारे स्वर्ग में सबसे खास बात क्या होगी?
तो जीसस कहते हैं, देयर शैल बी टाइम नो लांगर--वहां समय नहीं होगा।
जिसने पूछा था, वह पूछ रहा था, कल्पवृक्ष होंगे? वह पूछ रहा था, अप्सराएं होंगी? वह पूछ रहा था, सुख ही सुख होगा? शराब के झरने, चश्मे होंगे? कुछ ऐसी बात पूछ रहा था कि क्या होगी खास बात, जिसके लिए यह सब छोड़ने का उपद्रव मुझे करना पड़े? उसको जीसस की बात बिल्कुल न जंची होगी कि देयर शैल बी टाइम नो लांगर--समय नहीं होगा। न केवल नहीं जंची होगी, बल्कि बहुत भयभीत भी कर गई होगी। क्योंकि जहां समय नहीं होगा, वहां कोई वासना नहीं हो सकती, कोई कल्पवृक्ष नहीं हो सकता। हम तो स्वर्ग भी बनाते हैं, तो हमारी वासना का ही विस्तार है। हम तो जो भी करते हैं--हमारा धर्म, हमारा मोक्ष, हमारा स्वर्ग--हमारी वासना का विस्तार है। वे सब हमारे संसार के ही परिशिष्ट हैं। उनमें बहुत भेद नहीं है।
मित्र पूछते हैं, मेरा पुनर्जन्म न हो।
क्यों? क्यों न हो पुनर्जन्म? यही कारण न कि जीवन में दुख है! अगर जीवन में दुख है, तो पुनर्जन्म की फिक्र छोड़ें; जीवन के पूरे दुख को समझ लें।
जीवन के दुख को जो समझेगा, उसके भीतर धीरे-धीरे वासना क्षीण होने लगेगी।
क्योंकि सब ओर दुख है, चाहूं भी तो क्या चाहूं? चाहने योग्य कुछ भी नहीं है। सब चाह दुख में ले जाती है।
सब चाह दुख की ही चाह जिस दिन मालूम पड़ने लगे, जिस दिन कहीं से भी यात्रा करूं और दुख में पहुंच जाऊं, कुछ भी सोचूं और दुख में गिर जाऊं, कुछ भी चाहूं और दुख में पहुंच जाऊं, जिस दिन सब तरफ से सब यात्रा-पथ दुख में ही ले जाने वाले दिखाई पड़ने लगें, उस दिन क्या मैं चाहूंगा कि पुनर्जन्म न हो? फिर वह भी एक चाह होगी; और सभी चाह दुख में ले जाती हैं। क्या मैं चाहूंगा कि परमात्मा मुझे मिल जाए? वह भी एक चाह होगी; और सभी चाहें दुख में ले जाती हैं।
नहीं, तब मैं चाहूंगा ही नहीं। बस इतना ही होगा कि मैं कुछ भी न चाहूंगा। जिस क्षण कोई भी चाह नहीं, उसी क्षण समय मिट जाता है, भविष्य टूट जाता है, अतीत बिखर जाता है। यह वर्तमान का क्षण ही रह जाता है सब कुछ। उस क्षण में अस्तित्व तो है, जीवन नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लें। उस क्षण में अस्तित्व तो है, जीवन नहीं है। और जिस व्यक्ति ने जीवन में छिपे अस्तित्व को जान लिया, उसका फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है। क्योंकि पुनर्जन्म जीवन का है। इसे हम ऐसा समझें कि जीवन है समस्त वासनाओं का जोड़। अस्तित्व के ऊपर, बीइंग के ऊपर जो वासनाओं का जोड़ है, वही जीवन है। पुनर्जन्म आपके इसी जीवन का सिलसिला है। वह कोई नई बात नहीं है। शरीर नया है, आपकी वासना पुरानी है। और वासना इतनी तीव्र है अभी भी कि उसे नए शरीर की जरूरत पड़ती है। इसलिए नया शरीर मिल जाता है।
जिस क्षण कोई भी वासना न रही, उस क्षण नए शरीर की जरूरत न रही। तो पुनर्जन्म असंभव हो जाता है। लेकिन पुनर्जन्म न हो, ऐसी चाह मत बनाएं। अन्यथा वह कभी भी असंभव न होगा। चाह को समझें, चाह के तथ्य को पहचानें और चाह के तथ्य में गहरे उतरें, तो पाएंगे कि चाह ही दुख है।
इसलिए मैंने कहा कि जीवन का चुनाव हमारे हाथ में है। पुनर्जन्म हमारे हाथ में नहीं है। अगर हम जीवन में चुनाव करते चले जाते हैं, वासना को जगाते चले जाते हैं, तो पुनर्जन्म होगा ही। उसका कोई उपाय नहीं है। अगर मैं सुख

को पकड़े चला जाता हूं, तो दुख आएगा ही। अगर मैं सम्मान मांगे चला जाता हूं, तो अपमान निष्पत्ति बनेगी ही। दूसरी बात के संबंध में सोचना व्यर्थ है। पहली ही बात मेरे हाथ में है।
उसका अर्थ हुआ कि अगर मैंने चाह की, तो मैं दुख पाऊंगा ही। अगर मैंने चाह ही न की... । लेकिन ख्याल रखना, बारीक बात है थोड़ी सी, वहीं भूल हो जाती है। तो हम सोचते हैं कि चलो, अब हम ऐसा करें कि चाह न करें। तब हमारी यही चाह बन जाती हैः तो चलो, अब हम चाहें उस स्थिति को जहां कोई चाह नहीं होती। इच्छारहित हो जाऊं, यही चाह बन जाती है। तब हम पुनः चक्कर के भीतर खड़े हो गए।
नहीं, सिर्फ समझें, सिर्फ पहचानें, अपनी एक-एक चाह के पीछे चल कर देख लें। दुख उठाएं, अनुभव करें। और किसी दिन जब यह अनुभव गहरा उतर जाएगा और सब चाहें व्यर्थ हो जाएंगी, उस क्षण नई चाह पैदा नहीं होगी कि मैं अचाह कैसे हो जाऊं। उस दिन कोई चाह न होगी। अचाह चाहों का अभाव है, नई चाह नहीं। मुक्ति नया बंधन नहीं है, समस्त बंधनों का व्यर्थ हो जाना है। चाह है जीवन, अचाह है मुक्ति। और यह हमारे हाथ में है। यह जाग जाना हमारे हाथ में है। यह जब भी कोई चाहे, तब जाग सकता है। मजे की बात है कि चाह तो हमें बहुत दुख देती है; फिर भी हम नहीं चाहते, इसलिए नहीं जागते। चाह बहुत दुख देती है। सब सुख दुख देते हैं। और सभी फूल कांटे की तरह छाती में चुभ जाते हैं और घाव बन जाते हैं। लेकिन हम उनकी तरफ देखते भी नहीं; हम नए फूलों की तलाश में लग जाते हैं उनको भूलने के लिए। एक जगह से दुख मिलता है, तो हम सुख का दूसरा दरवाजा खोलने लगते हैं। एक दरवाजे से नर्क खुलता है, तो हम दूसरा दरवाजा स्वर्ग का खोजने लगते हैं।
हम फिक्र ही नहीं करते कि जहां नर्क का दरवाजा खुला, एक क्षण रुकें और सोचें कि कल इस दरवाजे को भी स्वर्ग का समझ कर ही खोला था। यह नर्क हो गया। और भी पहले जो-जो दरवाजे स्वर्ग के समझ कर खोले थे, वे नर्क हो गए। अब मैं फिर नए स्वर्ग के दरवाजे को खोलने चला। अगर यह मुझे दिखाई पड़ जाए। यह मेरे कहने से नहीं दिखाई पड़ सकता आपको। लाओत्से के कहने से आपको दिखाई नहीं पड़ सकता। यह आपके ही जीवन का निरंतर दुख का अनुभव ही गहन हो, तो दिखाई पड़ सकता है।
लेकिन हमारे मन की तरकीब यह है कि हम दुख को भूलना चाहते हैं और सुख को याद रखना चाहते हैं। हम दुख को भूलना चाहते हैं। लोग शराब पी रहे हैं, सिनेमागृह में बैठे हुए हैं, संगीत सुन रहे हैं, नाच देख रहे हैं। पूछें, क्या? तो वे कहते हैं कि भुला रहे हैं। कुछ भुला रहे हैं; दुख भुला रहे हैं।
दुख भुलाने योग्य नहीं है, दुख ठीक से जानने योग्य है। जो दुख को ठीक
से जान लेता है, वह सुख से छूट जाता है। जो दुख को ठीक से जान लेता है, वह चाह से छूट जाता है। जिसकी कोई चाह नहीं, उसका फिर कोई जन्म नहीं है। अस्तित्व होगा उसका--शुद्धतम। वही शुद्धतम अस्तित्व आनंद है।
लेकिन भूल मत करना आप। उस आनंद का आपके सुख से कोई भी संबंध नहीं है।
उस आनंद में दुख तो खो ही जाते हैं, सुख भी खो जाता है। इसलिए बुद्ध ने तो उस शब्द का प्रयोग करना भी पसंद नहीं किया, आनंद शब्द का। क्योंकि आनंद से सुख का आभास मिलता है। अगर शब्दकोश में जाएंगे खोजने, तो आनंद का कुछ भी अर्थ किया जाए, उसमें सुख रहेगा ही। पारलौकिक सुख होगा, अनंत सुख होगा, शाश्वत सुख होगा, लेकिन सुख होगा ही। तो शब्दकोश ज्यादा से ज्यादा इतना ही भेद कर सकता है कि यह क्षणभंगुर सुख है, वह शाश्वत होगा। लेकिन होगा सुख। बुद्ध ने शब्द ही छोड़ दिया था। बुद्ध कहते थे शांति, आनंद नहीं। वे कहते थे, सब शांत हो जाएगा, सब शांत हो जाएगा। उस शांत क्षण को आप जो भी चाहें कहें। उस शांत क्षण में कोई भविष्य नहीं, कोई यात्रा नहीं है। अस्तित्व के केंद्र-बिंदु से मिलन है।
यह हाथ में है। यह हाथ में इसलिए है कि समझ आपके पास है। यह हाथ में इसलिए है कि समझ की धारा को आप चाहें तो अभी दुख पर केंद्रित कर सकते हैं। उसी का नाम ध्यान है। समझ की धारा को दुख पर फोकस करने का नाम ध्यान है। और जो भी व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों पर अपनी समझ की धारा को नियोजित कर

लेता है, वह त्याग को उपलब्ध हो जाता है, और उस स्थिति को, जहां फिर कोई पुनरागमन नहीं है।
आज का सूत्रः "इसका क्या अर्थ है कि सम्मान और अपमान, दोनों ही स्वयं
के भीतर हैं? हम इस कारण भयभीत होते हैं, क्योंकि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है। जब हम अहंकार को ही अपनी आत्मा नहीं मानते, तो फिर डर क्या?"
यह सूत्र थोड़ा कठिन है। इसे थोड़ा दो-तीन दिशाओं से समझना पड़े।
लाओत्से किसी व्यक्तिगत आत्मा में भरोसा नहीं रखता, वह ठीक बुद्ध जैसा है। और यह मजे की बात है; इसीलिए बुद्ध के पैर हिंदुस्तान में न जम सके, लेकिन लाओत्से के चीन में जम गए। बुद्ध के पैर हिंदुस्तान में न जमे। बुद्ध ने गहरी से गहरी बात कही, जो किसी मनुष्य ने कभी कही हो। लेकिन बात इतनी गहरी हो गई कि हम किनारे पर खड़े लोगों को बिल्कुल भी समझ में न आई। वह इतनी गहरी आवाज हो गई कि वह आवाज हमारे पास तक न पहुंची। और पहुंची, तो बिल्कुल विकृत हो गई। और हमने जो अर्थ निकाले, वे हमारे अर्थ थे।
बुद्ध ने कहा कि यह आत्मा की बातचीत भी बंद करो; क्योंकि यह ख्याल भी
कि मैं आत्मा हूं, मुझे अस्तित्व से तोड़ देता है और अलग कर देता है।
कठिन हुआ। क्योंकि अगर आत्मा भी नहीं है, तो हमें तो लगा कि सब खो गया। बुद्ध से लोग जाकर पूछते थे कि अगर आत्मा भी नहीं है, तो फिर किसलिए शील? और किसलिए समाधि? और किसलिए साधना? और यह इतना उपाय किसलिए? अगर आत्मा है, तो समझ में आता है कि आत्मा को पाने के लिए। वही लोभ की भाषा हमारी काम करती है। आत्मा को पाने के लिए एक आदमी त्याग कर रहा है, तपश्चर्या कर रहा है, समझ में आता है। बुद्ध से लोग पूछते हैं कि आत्मा भी नहीं है, तो फिर त्याग किसलिए? तपश्चर्या किसलिए? बुद्ध से लोग पूछते हैं, अगर आत्मा भी नहीं है, तो मोक्ष किसका होगा? और अगर मुक्त भी हो गए और आत्मा ही नहीं है, तो बचेगा क्या?
लोगों का पूछना भी ठीक है, क्योंकि लोग लोभ की भाषा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझ सकते।
बुद्ध ने कहा है, तुम्हारा होना ही तुम्हारा दुख है; तुम हो, तब तक तुम दुखी रहोगे।
यह बहुत कठिन हो गया। चाह छोड़ देना भी समझ में आ सकता है। कम से कम मैं
तो बचूंगा। चाह भी छोड़ दूं, मैं तो बचूंगा, चाहने वाला तो बचेगा। सब छोड़ दूं, लेकिन कम से कम मैं तो बचूंगा। और बुद्ध कहते हैं कि तुम अगर बचे, तो सब बच गया। क्योंकि तुम्हारे होने में ही सारा संसार है। तुम हो ही चाहों का एक जोड़!
कभी सोचा आपने कि अगर आप अपनी सब चाहें निकाल कर अलग-अलग रख दें, तो क्या आपकी हालत वैसी न हो जाएगी, जैसे प्याज के छिलके कोई छीलता चला जाए। अपनी सब चाहें अलग रख दें, आप बचेंगे पीछे? एक बात पक्की है कि आप जो भी अपने को समझते हैं, वह तो नहीं बचेगा। और जो बचेगा, उसका आपको कोई भी पता नहीं है। आपकी तरफ से तो शून्य ही बचेगा। आप तो खो जाएंगे।
इसलिए भारत में भी बुद्ध की बात की गहराई में जड़ें नहीं पकड़ पाईं। क्योंकि जब बुद्ध ने आत्मा को ही इनकार कर दिया और कह दिया कि आत्मा भी नहीं है--तुम हो ही नहीं, यही जान लेना ज्ञान है, बुद्ध ने कहा--तो कठिन हो गया। चीन में लाओत्से के कारण ही, बुद्ध की बात जब पहुंची लाओत्से के बाद, तो चीन पकड़ पाया। क्योंकि लाओत्से ने बीज बोए थे, जिसमें लाओत्से ने कहा थाः हम इस कारण ही भयभीत हैं, इस कारण ही लोभ से भरे हैं कि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है। यह जो मेरे भीतर मैं का भाव है, मैं हूं, यही हमारे दुख, लोभ, भय का कारण है।
वस्तुतः मैं नहीं हूं; सब है। उसमें मैं भी हूं, मैं की तरह नहीं। जैसे
एक लहर सागर में है, उस तरह। लहर है सागर में; अलग नहीं, भिन्न नहीं। फिर भी भिन्न दिखाई पड़ती है, फिर भी भिन्न है। लहर जुड़ी है सागर से भीतर, फिर भी बाहर से आकृति अलग मालूम पड़ती है। यह जानते हुए भी कि लहर सागर है, फिर भी लहर को हम अलग ही जानते हैं। मैं लहर हूं। लेकिन अगर कोई लहर समझ ले कि मैं अलग हूं, तो कष्टों की यात्रा शुरू हो गई। अगर लहर समझ ले कि मैं अलग हूं,

तो फिर लहर का जन्म महत्वपूर्ण हो गया, फिर लहर की मृत्यु महत्वपूर्ण हो गई। और अब लहर के सिवाय कौन बचाएगा उसे मृत्यु के भय से?
लहर देखेगी चारों तरफः लहरें गिर रही हैं, मिट रही हैं, समाप्त हो रही हैं। कब्रें बनती जा रही हैं उसके चारों तरफ। वह भी जानती है कि मेरी कब्र करीब है, मैं भी मिटने के करीब हूं। जब लहर आकाश को छूने के उद्दाम वेग से भरी है, तब भी उसे पता है कि पैर खिसके जा रहे हैं, जमीन मिटी जा रही है, जल्दी ही कब्र मेरी बन जाएगी। चारों तरफ कब्रें बनती चली जा रही हैं। अभी जो लहर आकाश छूती मालूम पड़ती थी, वह खो गई और मिट गई। मैं भी मिटूंगी। यह लहर को मिटने का जो डर है, यह मौत का जो भय है, यह किस कारण है?
यह इस कारण नहीं है कि लहर मिटेगी। यह इस कारण है कि लहर ने अपने को सागर से अलग जाना। अगर लहर अपने को सागर से एक जाने, तो फिर कैसा मिटना? फिर तो जब लहर नहीं थी, तब भी थी; और जब नहीं रहेगी, तब भी होगी। फिर तो यह बीच का जो खेल है, यह खेल ही हो गया। इसे गंभीरता से लेने की कोई जरूरत न रही। लहर सागर है, अगर ऐसा जानें, तो फिर कोई भय नहीं है।
भय तो एक ही बात का है कि मैं अलग हूं। तो फिर मुझे बचाना पड़ेगा, इंतजाम करना पड़ेगा। लड़ना पड़ेगा मृत्यु से। और लड़-लड़ कर भी तो आदमी मिट ही जाएगा। बचने का तो कोई उपाय नहीं है।
तो लाओत्से कहता है, "इसका क्या अर्थ है कि सम्मान और अपमान, दोनों ही स्वयं के भीतर हैं? हम इस कारण भयभीत होते हैं, क्योंकि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है।"
अच्छा हो कि हम इसको कहें, अंग्रेजी का वाक्य ज्यादा बेहतर हैः वी हैव फियर्स, बिकाज वी हैव ए सेल्फ। हम भयभीत होते हैं, क्योंकि हमें लगता है कि हम आत्मा हैं। व्हेन वी डू नॉट रिगार्ड दि सेल्फ एज दि सेल्फ--और जब हम आत्मा को आत्मा नहीं मानते, जब मैं मैं को मैं नहीं मानता--व्हाट हैव वी टु फियर? और तब भय कहां? फिर भयभीत होने की क्या जगह रही? मैं हूं, यही हमारे भय का आधार है।
क्यों? क्योंकि अगर मैं हूं, तो मुझे मेरे मिटने का डर समा ही जाएगा। अगर मैं हूं, तो नहीं हो सकता हूं, यह बात मौजूद हो गई। इसे थोड़ा समझें। अगर मैं हूं, तो मैं नहीं भी हो सकता हूं। फिर भय पकड़ेगा।
बुद्ध कहते हैं कि तुम नहीं ही हो, ऐसा जान लो; फिर इस जगत में कोई भय नहीं है। क्योंकि मिटने का ही भय एकमात्र भय है। और सारे भय उससे ही पैदा होते हैं, उसकी ही उप-उत्पत्तियां हैं, उसके ही शाखा-पल्लव हैं। बुद्ध कहते हैं कि तुम हो ही नहीं, इसे जान लो। फिर कैसा भय? और लाओत्से भी यही कहता हैः आत्मा है, अस्मिता है, अहं है, मैं हूं, तो भय है। और अगर तुम नहीं ही हो, तो फिर कैसा भय?
यहां फिर एक बात ख्याल में ले लें। यह क्या हम मान लें कि मैं नहीं हूं?
मानने से कुछ भी न होगा। कौन मानेगा? जो मानेगा, वह तो पीछे बचा रहेगा। अगर मैं मान ही लूं कि मैं नहीं हूं, तो भी मैं हूं। कौन मानता है? यह भी मेरी मान्यता है।
इसलिए बुद्ध ने कहा, मानने की बात नहीं है। इसे खोजो कि सच में तुम हो? इसे खोजो, कहां हो तुम? शरीर में हो, तो शरीर में खोजो। विचार में हो, तो विचार में खोजो। भाव में हो, तो भाव में खोजो। खोजो भीतर अथकः कहां हो तुम? और बुद्ध कहते हैं, तुम खोज-खोज कर पाओगे कि तुम खो गए, तुम नहीं हो।
यह न होना मान्यता और विश्वास और सिद्धांत नहीं है। यहीं भूल हुई। भारत के पंडित को बुद्ध को समझने में भूल हुई; क्योंकि भारत के पंडित ने कहा, यह सिद्धांत है बुद्ध का कि आत्मा नहीं है। तो भारत के पंडित ने कहा कि हम सिद्ध कर सकते हैं कि आत्मा है। बुद्ध के लिए यह सिद्धांत नहीं था, यह गहन अनुभूति थी। अगर यह सिद्धांत है, तो यह गलत है।
नागार्जुन ने, बुद्ध के एक शिष्य ने, मूल माध्यमिक कारिका नाम का अपना शास्त्र लिखा। अनूठा है। संभवतः पृथ्वी पर वैसी दूसरी कोई किताब नहीं है। नागार्जुन जैसा आदमी भी खोजना पृथ्वी पर दुबारा मुश्किल है। नागार्जुन ने उसमें सिद्ध किया है कि कुछ भी नहीं है। न मैं हूं, न तुम हो, न संसार है, कुछ भी नहीं है। स्वभावतः नागार्जुन बड़ी दिक्कत में पड़ गया; क्योंकि उसको

गलत करना तो बहुत आसान है। कोई भी आकर गलत कर देता कि अगर कुछ भी नहीं है, तो यह किताब किसके लिए लिखी है? अगर तुम भी नहीं हो, तो कौन लिखता है ये बातें? कौन विवाद करता है? और यह सुनने वाला भी नहीं है, तो तुम किसको समझा रहे हो?
नागार्जुन की कठिनाई है। नागार्जुन जो कह रहा है, वह एक गहन अनुभव है।
वह असल में यह कह रहा है कि व्यक्तिशः कोई भी नहीं है। एज इंडिविजुअल नथिंग एक्झिस्ट्स--व्यक्तिशः कुछ भी नहीं है। लहर की भांति कुछ भी नहीं है; सागर है। लेकिन जब हम कहते हैं सागर है, तब सागर की भी सीमा बन जाती है। इसलिए नागार्जुन कहता है, जो है, उसके लिए कोई भी शब्द हम उपयोग करेंगे तो उसकी सीमा बन जाएगी। तो नागार्जुन कहता है कि हम, जो-जो नहीं है, वह बता देंगे; और जो है, उसे छोड़ देंगे। तो नहीं-नहीं-नहीं को जान लेना, पहचान लेना। और जब नहीं की पूरी यात्रा समाप्त हो जाए, तो जो बच रहे, जो बच रहे--दि रिमेनिंग--वही है, बाकी कुछ भी नहीं है।
लाओत्से कहता है, हमारा भय क्या है? हमें निंदा अप्रीतिकर क्यों लगती है? और प्रशंसा प्रीतिकर क्यों लगती है? प्रशंसा का मतलब है, कोई कह रहा है कि तुम बड़ी लहर हो। निंदा का अर्थ है, कोई कह रहा है, क्षुद्र सी लहर! और लाओत्से कह रहा है कि तुम हो ही नहीं। लहर तुम हो ही नहीं। जब तक तुम लहर मानोगे अपने को, तब तक प्रशंसा सुख देती मालूम पड़ेगी; निंदा दुख देगी। मित्र होंगे, जो तुम्हारी लहर को बचाएं। शत्रु होंगे, जो तुम्हारी लहर को मिटाएं।
बुद्ध को भूल से अंतिम जीवन के क्षणों में किसी ने जहर दे दिया--भूल से। किसी गरीब आदमी ने निमंत्रण किया था। और बिहार में कुकुरमुत्ते को लोग बरसात में इकट्ठा कर लेते हैं। लकड़ी पर, गीली लकड़ी पर जो फूल उग आते हैं, उनको इकट्ठा कर लेते हैं, सुखा लेते हैं। कभी-कभी वे विषाक्त हो जाते हैं। गरीब आदमी ने निमंत्रण दिया था। विषाक्त फूल थे; बुद्ध ने खा लिए। जहर था कडुवा; लौट कर आए, तो खून में जहर फैल गया। फूड पायजन से बुद्ध की मृत्यु हुई। मित्रों ने कहा कि आप कह तो देते कि कड़वा है! बुद्ध ने कहा, कड़वा तो था, लेकिन कहता कौन? लोगों ने कहा, ये बातें मत करिए। यह जीवन और मृत्यु का सवाल है! बुद्ध ने कहा, अगर मैं होता, तो मर भी सकता था। मैं हूं ही नहीं। मैं हूं ही नहीं, इसलिए मृत्यु का कोई सवाल नहीं है।
अगर हैं, तो मरेंगे। मगर क्या इसे हम मान लें? यहीं सारी कठिनाई है। मान भी सकता है कोई आदमी। करोड़ों-करोड़ों बौद्ध बुद्ध को मान कर ही चल रहे हैं कि नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई बुद्धत्व उपलब्ध नहीं होता। कितने करोड़ हैं! करोड़ों बौद्ध हैं जमीन पर, वे मान कर ही चल रहे हैं कि नहीं है। वे ऐसे ही मान कर चल रहे हैं कि नहीं है, जैसे कोई मान कर चल रहा है कि है। यह नहीं है और है, दोनों मान्यताएं हैं। इनका कोई मूल्य नहीं। जानना है। प्रवेश करें भीतर, खोजेंः मैं हूं? जैसे-जैसे खोज गहरी होगी, सतह पर तो लगता है मैं शरीर हूं। आत्मवादी लोगों को समझाते हैं कि अपने को शरीर मत मानो, समझो कि तुम आत्मा हो। एक कदम ले जाते हैं। मनसविद हैं, या मन तक मानने वाले लोग हैं, वे कहते हैं, आत्मा तो कुछ पता नहीं चलती। शरीर नहीं है, यह ठीक है। मैं मन हूं, यहां तक बात जाती मालूम पड़ती है। बुद्ध आखिरी कदम उठाते हैं। लाओत्से भी आखिरी कदम उठाता है। ये मनुष्य-जाति के अत्यधिक हिम्मतवर लोग हैं।
साधारणतः आदमी मानता है मैं शरीर हूं। उसको हम नास्तिक कहते हैं। जो मानता है मैं शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं, उसको हम आस्तिक कहते हैं। बुद्ध कहते हैं, जो मानता है कि मैं हूं, उसे अभी कुछ पता ही नहीं--चाहे शरीर, चाहे आत्मा। जो जानता है कि मैं हूं ही नहीं!
फिर भी होना तो है! जब मैं कहता हूं मैं नहीं हूं, तब भी होना तो है। पर
उस होने का मैं से कोई जोड़ नहीं है। जब मैं कहता हूं लहर नहीं है, तब भी लहर तो है। लेकिन उस लहर का लहर होने का कोई आग्रह नहीं है। वह सागर है। अगर एक लहर खोज में निकले, अपने भीतर जाए और पता लगाए कि मैं हूं? तो जल्दी ही पाएगी कि लहर तो खो गई, सागर मिल गया। जब भी कोई अपने भीतर प्रवेश करता है, तो बहुत जल्दी पाता है कि व्यक्ति तो खो गया और परमात्मा मिल गया।

लाओत्से उसे परमात्मा का नाम भी नहीं देता। क्योंकि वह नाम भी आदमी
की भाषा में बहुत जूठा हो गया है। और हमने इतने-इतने ओंठों से परमात्मा का नाम लिया है, और इतनी-इतनी नासमझियों से उस नाम को जोड़ा है और उस नाम के लिए हमने इतने उपद्रव किए हैं कि लाओत्से चुप ही रह जाता है, परमात्मा का नाम नहीं लेता। वह कहता है, इतना ही जान लो कि तुम नहीं हो, तो फिर तुम्हें प्रशंसा भी नहीं छुएगी। क्योंकि किसकी प्रशंसा? फिर तुम्हें निंदा भी नहीं छुएगी। क्योंकि किसकी निंदा? फिर तुम्हें जीवन भी नहीं छुएगा। किसका जीवन? तुम अछूते, अस्पर्शित सागर के साथ एक हो जा सकोगे।
जब हम अहंकार को ही अपनी आत्मा नहीं मानते, तो फिर भय किस बात का है?
भय का अर्थ हुआ, अपने को आत्मा, अहंकार, अस्मिता, ईगो, अपने को अलग-थलग मानना ही भय है।
"इसलिए जो व्यक्ति संसार को उतना ही सम्मान दे, जितना कि स्वयं को... ।"
और यह कब होगा? यह तभी होगा, जब मेरे भीतर कोई अहंकार न हो, कोई आत्मा
का भाव न हो। अगर मैं हूं, तो मैं आपको उतना ही सम्मान नहीं दे सकता जितना अपने को। क्यों?
नीत्शे ने कहा है और ठीक कहा है। अजीब से शब्दों में कहा है, लेकिन सच कहा है। नीत्शे ने कहा है कि अगर कहीं भी कोई ईश्वर है, तो मुझसे नंबर दो ही हो सकता है। क्योंकि मैं अपने से ऊपर किसी को कैसे रख सकता हूं?
यह बहुत मजेदार बात है। आप चाहें भी, तो भी नहीं रख सकते। आप चाहें भी किसी को अपने से ऊपर रखना, तो भी नहीं रख सकते हैं। उपाय नहीं है। भीतरी असुविधा है। और अगर आप रख भी लें किसी को अपने से ऊपर, तो भी वह आपके द्वारा ही ऊपर रखा गया है। और जिसके द्वारा ऊपर रखा गया है, वह सदा ऊपर रह जाता है। अगर मैं किसी के चरणों में जाकर सिर भी रख दूं और कहूं कि मैं समर्पण करता हूं सब अपना, तो भी समर्पण मैं ही करता हूं। समर्पण का मालिक मैं हूं। समर्पण मेरा कृत्य है। और कल अगर मैं चाहूं, तो अपना पूरा समर्पण वापस ले सकता हूं। कौन रोकेगा? तो जिसके चरणों में मैंने अपना सिर भी रखा है, वह भी मेरा ही निर्णय है। अंततः मैं ही निर्णायक हूं। और कल सिर उठा लूं, तो कोई उपाय तो नहीं है रोकने का। समर्पण में भी संकल्प तो मेरा है। तो मैं किसी को, चरणों में सिर रख कर भी, अपने से ऊपर नहीं रख सकता। इसकी दुविधा भीतरी है। यह असंभावना है।
लेकिन क्या इसका यह अर्थ हुआ कि कभी समर्पण इस जगत में घटित नहीं हुआ है?
समर्पण घटित हुआ है। लेकिन वह तब घटित होता है, जब मुझे पता चलता है कि मैं हूं ही नहीं। जब तक मैं हूं, तब तक तो समर्पण भी मेरा संकल्प है। बुद्ध के बड़े भाई, चचेरे भाई आनंद ने बुद्ध से दीक्षा ली। तो बुद्ध से कहा कि दीक्षा के बाद तो फिर मैं नहीं बचूंगा। तुम्हारी आज्ञा मेरे लिए अंतिम आज्ञा होगी। लेकिन अभी अज्ञानी हूं, अभी तुम्हारा बड़ा भाई हूं। दीक्षा के पहले तुमसे दो-चार वचन ले लेता हूं। दीक्षा के पहले, बड़े भाई की हैसियत से छोटे भाई के दिए गए वचन हैं; इनका तुम पालन करना। और उसने तीन वचन ले लिए बुद्ध से। बहुत प्यारी घटना है। और जिसने दीक्षा ली थी, आनंद ने, उनके चचेरे भाई ने, वह बहुत अदभुत आदमियों में से एक था। बुद्ध ने उससे कहा, इतनी भी क्या जल्दी है! पीछे भी तुम कहोगे, तो मैं मान लूंगा। लेकिन आनंद ने कहा, मैं बचूंगा कहां? कहेगा कौन? अभी ही तय कर लेना उचित है। अभी मैं हूं।
वचन मांग लिए। बुद्ध ने वचन दे दिए; जीवन भर उन तीन वचनों का बुद्ध ने पालन किया। और बड़े आश्चर्य की बात है कि आनंद इसके बाद चालीस वर्ष तक बुद्ध के पीछे छाया की तरह रहा। बुद्ध के सर्वाधिक निकट वही था। उतना निकट कोई दूसरा व्यक्ति कभी नहीं रहा। फिर बुद्ध की मृत्यु हो गई। फिर बुद्ध के वचन संगृहीत करने के लिए संघ बैठा। तो आनंद सर्वाधिक निकट बुद्ध के रहा था। सबसे ज्यादा प्रामाणिक वक्तव्य उसका ही था कि बुद्ध ने कब किससे क्या कहा। रात बुद्ध के कमरे में ही वह सोता था। चौबीस घंटे उनके साथ रहता था। ऐसी कोई भी घटना नहीं घटी थी चालीस वर्षों में, जो आनंद के सामने न घटी हो। सबसे ज्यादा प्रामाणिक आदमी वही था। लेकिन संघ ने आनंद को भवन के भीतर लेने से इनकार कर दिया, भिक्षुओं ने। उन्होंने कहा कि अभी आनंद को ज्ञान

उपलब्ध नहीं हुआ। आनंद गिड़गिड़ाता है दरवाजे पर, लेकिन भिक्षुओं ने द्वार बंद कर दिए। और अन्य भिक्षुओं ने कहा कि आनंद को ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ। कारण? आनंद ने पूछा, कारण? तो पता चला कि वे जो तीन वचन तुमने बुद्ध से लिए थे, वह तुम्हारे अहंकार की जरा सी रेखा--जरा सी रेखा! मिटने के पहले भी, मिटने के पूर्व जरा सी तुमने जो रेखा खींच ली थी, वह बाधा बन गई है।
और आनंद ने स्वीकार किया कि वह बाधा है और मैं योग्य नहीं कि भीतर आ सकूं। जब मैं योग्य हो जाऊंगा, तब मैं द्वार खटखटाऊंगा।
चौबीस घंटे आनंद ध्यान में बैठा रहा। भीतर सभा चलती रही, वक्तव्य संगृहीत किए जाते रहे। चौबीस घंटे बाद आनंद ने द्वार खटखटाया। दरवाजा खोल दिया गया। पूछा भिक्षुओं ने, आनंद, तुम बिल्कुल बदल कर आ रहे हो! तुम्हारे चेहरे की आभा और, तुम्हारे पैर की भनक और, तुम्हारे चलने का ढंग और। चालीस साल से तुम्हें देखा है, लेकिन यह तुम आदमी ही दूसरे हो!
तो आनंद ने कहा, इस ध्यान में मुझे पता चला कि कैसा छोटा भाई, कैसा बड़ा भाई! कैसा वचन, कैसा आश्वासन! मेरा समर्पण भी सशर्त था। उसमें जरा सी शर्त थी, एक कंडीशन थी! आज मैंने क्षमा मांग ली है। और आज मैंने वह शर्त छोड़ दी है। और आनंद ने कहा कि अब मेरा कोई आग्रह नहीं है। भीतर आने दो तो ठीक, भीतर न आने दो तो ठीक। मैं बाहर ही बैठा रहूंगा।
तो संघ ने कहा कि अब तुम्हें भीतर आने में कोई बाधा न रही। वह तुम्हारा पहले आग्रह--कि मुझे भीतर लो, क्योंकि मैं ही प्रामाणिक व्यक्ति हूं, चालीस साल मैं ही निकट था--उसी कारण हमें दरवाजे बंद करने पड़े थे। अब तुम भीतर आ सकते हो, क्योंकि बाहर और भीतर में अब कोई फर्क नहीं है।
समर्पण भी अगर शर्त से हो, समर्पण में भी अगर कृत्य हो, तो मालिक तो मैं ही बना रहता हूं। यह जो मेरा होना है, इसके द्वारा समर्पण नहीं होता।
यह नहीं हो, तो जो होता है, उसी का नाम समर्पण है।
लाओत्से कहता है कि यह मेरा होना ही मेरे सारे दुख की जड़ है।
लेकिन कैसे, इसे मिटाएं कैसे? बहुत लोग इसे मिटाने की कोशिश करते हैं। मिटा तो नहीं पाते, यह और मजबूत हो जाता है। जो है ही नहीं चीज, उसे मिटाया नहीं जा सकता। एक बात पक्की समझ लेंः अगर हो, तो मिटाया भी जा सके; जो नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। जो मिटाने चलेगा, वह भूल में पड़ेगा। उसे जाना जा सकता है, खोजा जा सकता है--कहां है?
महर्षि रमण के ध्यान की पद्धति थी, जिसमें वे साधकों को कहते थे, पूछोः मैं कौन हूं? हू एम आई?
अगर हम लाओत्से की ध्यान की पद्धति बनाना चाहें, तो उसमें हमें कहना पड़ेगाः मैं कहां हूं? व्हेयर एम आई? "हू" बेमानी है, कौन का कोई मतलब नहीं है। अगर लाओत्से की ध्यान की पद्धति बनानी पड़े, तो पूछा जाएगा भीतरः व्हेयर एम आई? व्हेयर? कहां हूं मैं? मैं कौन हूं, इसमें यह तो मान ही लिया गया कि मैं हूं। अब रह गया कि कौन हूं, यह जानना है।
लाओत्से कहता है, पहले यह तो खोजो कि तुम हो? तो खोजो--कहां हो? एक-एक इंच अपने भीतर प्रवेश करो और एक-एक इंच पर पूछो कि कहां हूं?
और मजे की बात है, वह मैं कहीं भी नहीं पाया जाता। और जब आदमी अपने भीतर सब खोज लेता है--शरीर, मन, प्राण, आत्मा--और कहीं भी नहीं पाता कि मैं हूं, तब भी पाता तो है कुछ है। कुछ है, यह तो पाता है; लेकिन मैं को नहीं पाता। वह जो कुछ है, एक्स, अज्ञात, वह सागर है। और अगर हम पा लेते हैं कि मैं यह हूं, तो वह लहर है, चाहे वह कितनी ही गहरी हो।
कोई कहे मैं शरीर हूं, तो भी नास्तिक। कोई कहे मैं मन हूं, तो भी नास्तिक। कोई कहे मैं आत्मा हूं, तो भी नास्तिक। लाओत्से और बुद्ध के हिसाब से एक कदम औरः मैं हूं ही नहीं। सब कट जाए, नेति-नेति हो जाए। कुछ भी न बचे, तब जो बच रहता है! बच तो रहता ही है। उस कुछ अज्ञात का नाम नहीं है। और उस अज्ञात में प्रवेश करते ही फिर भय नहीं है। फिर कोई प्रलोभन भी नहीं है।
"इसलिए जो व्यक्ति संसार को उतना ही सम्मान दे, जितना स्वयं को... ।"
कब? संसार को उतना ही सम्मान तभी दिया जा सकता है जितना स्वयं को, जब स्वयं का होना बिल्कुल खो गया हो। स्वयं के रहते मैं सदा ही मूल्यवान रहूंगा। कोई कितना ही मूल्यवान हो, मैं भी खुद कहूं कि तुम मुझ से बहुत

मूल्यवान, मैं तुम्हारे चरणों की धूल, तो भी मैं ही मूल्यवान रहूंगा। मेरा कोई भी वक्तव्य मेरे मूल्य का खंडन नहीं कर सकता। मेरा खुद का ही वक्तव्य कि मैं जमीन की धूल हूं तुम्हारे चरणों की, मेरे तुमसे ऊपर होने के आधार को मिटा नहीं सकता। मैं ऊपर रहूंगा ही। मैं का होना अनिवार्यतया ऊपर होना है। मैं है, तो सर्वोपरि है। वह कितनी ही घोषणाएं करे, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। मैं की घोषणा अनिवार्यरूपेण सर्वोपरि घोषणा है।
तो किस दिन यह घटना घट सकती है जब कि मैं संसार को उतना ही सम्मान दूं जितना स्वयं को?
उसी दिन, जिस दिन मेरा मैं न हो। उस दिन संसार और मेरे बीच फासला न रहा। उस दिन ऐसा कहें कि मैं ही फैल कर सबके भीतर प्रकट होने लगा। या सब मेरे भीतर बढ़ कर प्रकट होने लगे। उस दिन मेरे और तू के बीच कोई दीवार न रही। उस दिन सब का होना ही मेरा होना है। उस दिन सम्मान हो सकता है सबका समान। उस दिन सम्मान हो सकता है, उतना ही जितना मैं अपने को दूं। जीसस ने कहा है, पड़ोसी को उतना ही प्रेम, जितना तुम स्वयं को करते हो। लेकिन जब तक स्वयं है, तब तक पड़ोसी को उतना ही प्रेम नहीं हो सकता। स्वयं मिटे, तो ही पड़ोसी को उतना ही प्रेम हो सकता है जितना मैं स्वयं को करता हूं।
"तो ऐसे व्यक्ति के हाथ में संसार का शासन सौंपा जा सकता है।"
बड़ी मुश्किल है। लाओत्से की व्यवस्था बड़ी कठिन है। लाओत्से कहता है, ऐसे व्यक्ति के हाथ में संसार का शासन सौंपा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति के हाथ में शक्ति खतरनाक नहीं होगी। लेकिन ऐसा व्यक्ति शक्ति चाहता नहीं। और जैसे व्यक्ति शक्ति चाहते हैं, उनके हाथ में अनिवार्य रूप से खतरनाक होती है।
बहुत प्रसिद्ध उक्ति है बेकन कीः पावर करप्ट्स। शक्ति, सत्ता लोगों
को व्यभिचारी बनाती है।
यह अधूरी है। शक्ति व्यभिचारी इसलिए बनाती है कि सिर्फ व्यभिचारी ही शक्ति को खोजते हैं। शक्ति करप्ट नहीं करती है, लेकिन करप्टेड शक्ति को खोजते हैं। हां, अगर आपके भीतर व्यभिचार है, तो शक्ति के बिना प्रकट नहीं हो सकता। इसलिए जब शक्ति मिल जाती है, तो व्यभिचार प्रकट होता है।
इसलिए लोग अक्सर चमत्कृत होते दिखाई पड़ते हैं, कि बड़े आश्चर्य की बात है, जो आदमी इतना बड़ा सेवक था, वह सत्ता में पहुंच कर ऐसा विकृत हो गया! सत्ता सभी को खराब कर देती है।
ऐसा नहीं है। वह सेवक तभी तक था, जब तक कमजोर था। वह सेवक होना कोई भीतरी गुण न था, वह सिर्फ कमजोरी थी। सत्ता में पहुंचते ही पता चलता है कि वह आदमी असली क्या था। इसलिए जिस आदमी का असली चेहरा देखना हो, उसे सत्ता दिए बिना नहीं पता चल सकता। सत्ता मिलते ही उसे स्वतंत्रता मिलती है अब वही होने की, जो वह होना चाहता है। अब उसे दिखावा करने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए सत्ता नहीं करप्ट करती किसी को, व्यभिचारी नहीं बनाती; लेकिन सत्ता व्यभिचारी को मुक्त कर देती है प्रकट होने के लिए।
लाओत्से कहता है, ऐसा व्यक्ति ही इस योग्य है कि संसार का शासन उसे सौंपा जा सके, जिसके भीतर मैं विसर्जित हो गया। क्योंकि मैं और सत्ता का जोड़ हो जाए, तो व्यभिचार फलित होता है। अगर भीतर मैं खो जाए, तो सत्ता व्यभिचार पैदा नहीं कर सकती है। क्योंकि जो व्यभिचारी हो सकता है, वह मैं है, वह अहंकार है।
"और जो संसार को उतना ही प्रेम करे जितना स्वयं को, तो उसके हाथों में संसार की सुरक्षा सौंपी जा सकती है।"
लेकिन यहीं कठिनाई है। ऐसा व्यक्ति सत्ता न चाहे। और ऐसे व्यक्ति के हाथ में सत्ता सौंपी जा सकती है। लाओत्से क्या कहना चाहता है? लाओत्से यह कहना चाहता है, जो सत्ता चाहे, उसके हाथ में सत्ता नहीं सौंपी जा सकती। जो आदर चाहे, उसके हाथ में आदर देना खतरनाक है। जो प्रतिष्ठा चाहे, उसे प्रतिष्ठा देना उसकी बीमारी को पानी सींचना है। प्रतिष्ठा उसे देना, जो प्रतिष्ठा न चाहे। और सत्ता उसे सौंप देना, जिसके भीतर सत्ता को पकड़ने और पीने वाला अहंकार न रह गया हो। तो ही... ।
इस सूत्र के संदर्भ में दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।

विगत ढाई हजार वर्षों में, लाओत्से के बाद, सारी दुनिया में सैकड़ों तरह की क्रांतियां हुईं; और सभी क्रांतियां असफल हो जाती हैं। हर क्रांति दावा करती है कि सत्ता अब ठीक हाथों में जाएगी। लेकिन सत्ता जिन हाथों में भी जाती है, वे गलत हाथ सिद्ध होते हैं। जरूर कहीं न कहीं मामला क्रांति का नहीं है। क्रांति से कोई संबंध नहीं है। क्योंकि सब क्रांतियां असफल हो गईं। अब तक कोई क्रांति सफल नहीं हो सकी। और होगी भी नहीं। क्योंकि लाओत्से का सूत्र कोई भी क्रांति पूरा नहीं कर पाती। सत्ता चाहने वाले के हाथ में ही सत्ता आती है।

इसलिए कुछ लोग तो इतने पीड़ित और परेशान हो गए, जैसे क्रोपाटकिन या बाकुनिन, वे कहते हैं कि अब सत्ता चाहिए ही नहीं, किसी के भी हाथ में नहीं। अराजकता चाहिए, अनार्की चाहिए। क्योंकि बहुत देख ली सत्ताएं, सभी सत्ताएं मंहगी पड़ जाती हैं। और सभी सत्ताओं को उलटने के लिए पुनः-पुनः क्रांति करनी पड़ती है। क्रांति से जिन सत्ताओं को निर्मित करते हैं, उनको भी मिटाने के लिए कल क्रांति करनी पड़ती है। जिन्हें आज बड़ी मेहनत से सिंहासन पर चढ़ाते हैं, कल उतनी ही मेहनत से उन्हें सिंहासन से उतारना पड़ता है
और लोग ढाई हजार साल से--आगे का नहीं कहता, क्योंकि उसके पहले का इतिहास साफ नहीं है--ढाई हजार साल से दुनिया की जनता एक ही काम कर रही है। सही आदमियों को चढ़ाती है सिंहासन तक; सिंहासन पर पहुंचते ही पता चलता है कि गलत आदमी चढ़ गया, फिर उसे उतारना पड़ता है। यह वर्तुल चलता ही रहता है। लाओत्से कहता है, यह वर्तुल क्रांतियों से मिटने वाला नहीं है। यह वर्तुल व्यक्तियों से मिटेगा, क्रांतियों से नहीं। लेकिन ऐसे व्यक्ति के हाथ में जिस दिन भी जगत की सत्ता हो सके--किसी भी दिशा की, किसी भी आयाम की-- उसी दिन सत्ता खतरनाक और मंहगी नहीं होती।
शायद परमात्मा के हाथ में सारे जगत की सत्ता इसीलिए मंहगी और खतरनाक नहीं है। क्योंकि वह इस भांति है, जैसे हो ही नहीं। परमात्मा की मौजूदगी कहीं पता चलती है? गैर-मौजूद होना ही उसकी मौजूदगी है। अनुपस्थित होकर ही वह उपस्थित है। कितनी दफे लोगों ने चिल्ला कर नहीं कहा है कि अगर हो, तो एक दफा प्रकट होकर बता दो! कितनी चुनौतियां नहीं लोगों ने दी हैं! लेकिन कोई चुनौती उस तक नहीं पहुंचती। क्योंकि जो चुनौती सुन सके, वह अस्मिता, वह केंद्र वहां नहीं है। इसलिए परमात्मा गैर-मौजूद बना रहता है, अनुपस्थित बना रहता है। यह सारा विराट उसके हाथ से संचालित होता रहता है, सिर्फ इसीलिए कि वहां कोई संचालक नहीं है। वहां कोई अहंकार नहीं है।
और लाओत्से जैसे लोगों की कल्पना रही है यह कि मनुष्य-जाति उसी दिन उस व्यवस्था को उपलब्ध हो सकेगी जिसकी सतत चेष्टा रही है, वह व्यवस्था उस दिन फलित हो सकती है जिस दिन हम ऐसे व्यक्ति के हाथ में सत्ता दें।
लेकिन यहां तो और प्रयोजनों से भी उसने कहा है। बड़ा प्रयोजन उसने यह कहा है कि जिसके भीतर कोई अहंकार नहीं है, उसे संसार के सबसे बड़े सिंहासन पर भी बिठा दें, तो अंतर नहीं पड़ता है। वह धूल में पड़ा रहे तो और सिंहासन पर बैठ जाए तो, भीतर अंतर नहीं पड़ता है। अगर इस बात को ख्याल में ले लें, तो फिर अपने भीतर अंतर को जरा देखते रहना चाहिए, कब-कब पड़ता है। और उसे धीरे- धीरे जागरूक होकर पहचानते जाना चाहिए।
एक आदमी ने गाली दी है और एक आदमी ने फूलमाला पहना दी है। भीतर इतनी छलांग से टेंपरेचर में अंतर पड़ता है--इतनी छलांग से--कि जिसका कोई हिसाब नहीं। उसे थोड़ा देखना चाहिए। और जिस दिन आपको फूलमाला और भेंट की गई गालियां, दोनों एक सी मालूम पड़ने लगें... ।
लाओत्से के साधना-सूत्रों में एक गुप्त सूत्र आपको कहता हूं, जो उसकी किताबों में उल्लिखित नहीं, लेकिन कानों-कान लाओत्से की परंपरा में चलता रहा है। वह सूत्र है लाओत्से की ध्यान की पद्धति का। वह सूत्र यह है। लाओत्से कहता है कि पालथी मार कर बैठ जाएं और भीतर ऐसा अनुभव करें कि एक तराजू है, बैलेंस, एक तराजू। उसके दोनों पलड़े आपकी दोनों छातियों के पास लटके हुए हैं और उसका कांटा ठीक आपकी दोनों आंखों के बीच, तीसरी आंख जहां समझी जाती है, वहां उसका कांटा है। तराजू की डंडी आपके मस्तिष्क में है। दोनों उसके पलड़े आपकी दोनों छातियों के पास लटके हुए हैं। और लाओत्से

कहता है, चौबीस घंटे ध्यान रखें कि वे दोनों पलड़े बराबर रहें और कांटा सीधा रहे।
लाओत्से कहता है कि अगर भीतर इस तराजू को साध लिया, तो सब सध जाएगा।
लेकिन आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। जरा इसका प्रयोग करेंगे, तब आपको पता चलेगा। जरा सी श्वास भी ली नहीं कि एक पलड़ा नीचा हो जाएगा, एक पलड़ा ऊपर हो जाएगा। अकेले बैठे हैं, और एक आदमी बाहर से निकल गया दरवाजे से। उसको देख कर ही, अभी उसने कुछ किया भी नहीं, एक पलड़ा नीचा, एक ऊपर हो जाएगा। लाओत्से ने कहा है कि भीतर चेतना को एक संतुलन! दोनों विपरीत द्वंद्व
एक से हो जाएं और कांटा बीच में बना रहे।
लाओत्से का शिष्य लीहत्जू मर रहा था, मृत्युशय्या पर पड़ा था। लोग बहुत इकट्ठे थे अंतिम विदा के लिए। लीहत्जू लाओत्से की परंपरा के खास-खास लोगों में, दो-चार लोगों में एक है। दो ही लोगों में! च्वांगत्से और लीहत्जू उसके दो बड़े शिष्य हैं। लीहत्जू मर रहा है। लोग इकट्ठे हैं। कोई सवाल पूछता है, लीहत्जू जवाब देता है। लेकिन बीच में ही आंख बंद कर लेता है, फिर मुस्कुराता है, फिर जवाब देता है। फिर किसी ने पूछा कि लीहत्जू, यह वक्त कम है, समय थोड़ा है, मौत करीब मालूम पड़ती है, तुम बीच-बीच में आंख बंद मत करो, तुम हमारी पूरी बातों का जवाब दे दो।
लीहत्जू ने कहा कि तुम्हारी बातें तो ठीक हैं; तुमने जिंदगी भर ये सवाल पूछे और जिंदगी भर मैंने जवाब दिए, फिर भी तुम्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ा। मरते वक्त मुझे मेरे तराजू पर तो ध्यान रखने दो।
तो वह बीच-बीच में आंख बंद करके अपना तराजू देख लेता है कि वे दोनों पलड़े बराबर हैं या नहीं। और हंस लेता है कि बिल्कुल ठीक। फिर वह जवाब देने लगता है। तो एक आदमी ने पूछा कि इस वक्त, तुम्हारा तराजू तो सदा से सध गया है, अभी जांच का कोई मौका भी कहां है? न कोई तुम्हें गाली दे रहा है, न कोई सम्मान कर रहा है। मौत करीब है और हम जिज्ञासु हैं।
लीहत्जू ने कहा कि वही, तुम्हारे चेहरे मेरे पहचाने हुए हैं। पचास साल, साठ साल से कोई मुझे सुनता है। मैं अपने तराजू को देखता हूं कि कोई हलचल तो नहीं होती कि पचास साल से जो बहरे सुन रहे हैं, वे फिर पूछ रहे हैं, उनको मैं फिर जवाब दे रहा हूं। कहीं भीतर मेरा तराजू तो नहीं हिलता इस बात से कि इन नासमझों को समझाना कि नहीं समझाना। तराजू नहीं हिलता है, मुझे बड़ी हंसी आती है। फिर मैं तुम्हें जवाब दे देता हूं। लेकिन तुम्हारी तरफ देखता हूं, तो मुझे ख्याल आता है--एक दफे तराजू को फिर देखूं, वह हिलता तो नहीं है!
जीवन में सुख हो या दुख, सम्मान या अपमान, अंधेरा या उजाला, भीतर के तराजू को साधते चला जाए कोई, तो एक दिन उस परम संतुलन पर आ जाता है, जहां जीवन तो नहीं होता, अस्तित्व होता है; जहां लहर नहीं होती, सागर होता है; जहां मैं नहीं होता, सब होता है।
इतना ही आज। लेकिन पांच मिनट बैठें; कीर्तन संन्यासी करेंगे, उनके साथ सम्मिलित हों।

ताओ उपनिषद, भाग दो
बत्तीसवां प्रवचन

अदृश्य, अश्राव्य व अस्पर्शनीय ताओ

Chapter 14 : Part 1

Pre-Historic Origins

Looked at, but cannot be seen--
That is called the invisible (yi).
Listened to, but cannot be heard--
That is called the inaudible (hsi). Grasped at, but cannot be touched-- That is called the Intangible(wei). These three elude all our inquiries
and hence blend and become one.

अध्याय 14 : खंड 1

पूर्व-ऐतिहासिक स्रोत

उसे देखें, फिर भी वह अनदिखा रह जाता है;
इसीलिए उसे अदृश्य कहा जाता है।
उसे सुनें, फिर भी वह अनसुना रह जाता है;
इसीलिए उसे अश्राव्य कहा जाता है।
उसे समझें, फिर भी वह अछूता रह जाता है;
इसीलिए उसे अस्पर्शनीय कहा जाता है।
इस प्रकार वह अदृश्य, अश्राव्य और अस्पर्शनीय हमारी जिज्ञासा की पकड़
से छूट जाता है; और वह दुर्ग्राह्य बना रहता है।

अस्तित्व के परम रहस्य के संबंध में यह सूत्र है।
जिन शब्दों में उस रहस्य को कहा जाता है, वे सभी शब्द छोटे पड़ जाते हैं। न केवल छोटे, बल्कि जो कहना चाहते हैं हम, उससे विपरीत उन शब्दों से प्रकट होता है। इसे दो-तीन दिशाओं से समझना जरूरी होगा।
एक, मनुष्य के सभी शब्द अधूरे हैं। कोई शब्द पूरा नहीं है। और कोई शब्द पूरा हो भी नहीं सकता। क्योंकि शब्द जिस बुद्धि से निर्मित होते हैं, वह बुद्धि अस्तित्व का एक छोटा सा अंश मात्र है। और अंश से जो भी निर्मित होगा, वह पूर्ण नहीं होता। हमारे जीवन का भी बुद्धि एक छोटा सा हिस्सा है। बुद्धि से ज्यादा हैं हम। बुद्धि से बड़े हैं हम। बुद्धि से विराट हैं हम। हमारा जो होना है, उसमें बुद्धि भी एक बूंद है। लेकिन वह हमारा पूरा सागर नहीं। शब्द निर्मित होते हैं बुद्धि से। अंश से जो भी निर्मित होता है, वह पूर्ण नहीं होता, अंश ही होता है। इसलिए बुद्धि से निर्मित सभी शब्द छोटे पड़ जाते हैं।
दूसरी बात, हमारे सभी शब्द इंद्रियों से प्रभावित होते हैं। अगर हम कहें कि वह परम सत्य देखा जाता है, तो उसका अर्थ हुआ कि आंखें उसे पकड़ने में समर्थ हैं। अगर हम कहें वह परम सत्य सुना जाता है, तो उसका अर्थ हुआ कि कान उसे पकड़ने में समर्थ हैं। अगर हम कहें कि वह स्पर्श किया जा सकता है, तो उसका अर्थ हुआ हाथ उसके अनुभव में समर्थ हैं। हाथ स्पर्श करता है, कान सुनते हैं, आंख देखती है। लेकिन आंख जो भी देखेगी, वह सीमित होगा। आंख की अपनी सीमा जो है। हाथ जो भी छुएगा, वह सीमित होगा। हाथ असीम नहीं है, इसलिए। और कान जो भी सुनेगा, वह क्षुद्र होगा। क्योंकि कान स्वयं क्षुद्र है। इंद्रियां सीमित हैं, इंद्रियों के अनुभव सीमित हैं। और जब हम विराट

असीम को सोचने चलते हैं, तो हमारी इंद्रियों से प्रभावित सभी शब्द व्यर्थ हो जाते हैं। क्योंकि वे सभी शब्द सीमाओं की खबर देते हैं। और असीम पर सीमाएं लगाना उसकी प्रकृति को ही नष्ट कर देना है।
तीसरी बात, जब भी हम विचार से किसी वस्तु को सोचते हैं, तो द्वंद्व निर्मित हो जाता है। विचार विभाजन की प्रक्रिया है। विचार चीजों को तोड़ कर देखने का ही प्रयोग है। जैसे कोई सूरज की किरण को कांच के प्रिज्म से निकाले, तो वह सात टुकड़ों में बंट जाती है। वे ही हमारे सात रंग हैं। प्रिज्म किरण को सात हिस्सों में तोड़ देता है, तो सात रंग दिखाई पड़ते हैं। किरण रंगहीन है, टूट कर सात रंग हो जाते हैं। सात रंगों को जोड़ दें, तो फिर सफेद निर्मित हो जाता है। सफेद रंग नहीं है। कांच के टुकड़े में से जो सात रंग दिखाई पड़ते हैं, वे कांच के टुकड़े से गुजर कर दिखाई पड़ते हैं। सातों रंग जुड़ जाते हैं तो सफेद दिखाई पड़ता है, कोई रंग नहीं रह जाता।
ठीक बुद्धि भी प्रत्येक चीज को दो हिस्सों में तोड़ देती है। कहते हैं--ठंडा और गर्म। यह बुद्धि की प्रक्रिया से टूट गई स्थिति है। क्योंकि जिसे हम ठंडा कहते हैं, वह गरमी का ही एक माप है। और जिसे हम गर्म कहते हैं, वह भी ठंडक का एक माप है। ठंडा और गर्म दो चीजें नहीं हैं। ठंडा और गर्म तापमान की दो स्थितियां हैं--एक ही तापमान की। लेकिन बुद्धि दो में तोड़ देती है। बुद्धि मानने को राजी न होगी कि ठंडा और गर्म एक ही चीज है। तब तो बर्फ और आग हमें एक दिखाई पड़ने लगे!
हम कहेंगे, बर्फ और आग एक कैसे हो सकती है?
लेकिन बर्फ आग के ही तापमान का कम अंश है। और आग भी बर्फ के ही तापमान
का हिस्सा है। एक ही तापमान की डिग्रियां हैं। एक छोर पर बर्फ है, दूसरे छोर पर आग है। लेकिन तापमान एक है। तो थर्मामीटर दोनों को नाप लेगा, आग को भी और बर्फ को भी। अगर आग और बर्फ दो चीजें होतीं, तो हमें दो थर्मामीटर की जरूरत पड़ती। एक ही थर्मामीटर दोनों को नाप लेता है; क्योंकि दोनों एक ही चीज कीशृंखला हैं। लेकिन बुद्धि दो में तोड़ लेती है।
घृणा और प्रेम! ठंडक और गर्मी को समझना तो बहुत आसान हो जाएगा। इतना कठिन नहीं, क्योंकि हमसे बहुत दूर है। घृणा और प्रेम भी एक ही चीज की दो स्थितियां हैं। मन मानने को राजी न होगा। कहां घृणा, कहां प्रेम? कहां क्षमा, कहां क्रोध? कहां भोग, कहां त्याग? कहां संसार की आकांक्षा, कहां मोक्ष की? लेकिन एक ही थर्मामीटर नापने में समर्थ है। घृणा और प्रेम एक ही चीज के दो छोर हैं।
इसलिए कोई भी प्रेम कभी भी घृणा बन सकता है और कोई भी घृणा कभी भी प्रेम बन सकती है। अक्सर होता ही है। प्रेम घृणा बन जाता है; घृणा प्रेम बन जाती है। मित्र शत्रु हो जाते हैं; शत्रु मित्र हो जाते हैं। अगर घृणा और प्रेम एक ही न होते, तो मित्र के शत्रु होने का कोई उपाय न था। शत्रु फिर मित्र कैसे होता?
मैक्यावेली ने अपनी अदभुत किताब दि प्रिंस में सलाह दी है सम्राटों
को कि मित्र से भी वह मत कहना जो शत्रु से कहने में डर हो। क्योंकि मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और शत्रु के भी साथ वैसा व्यवहार मत करना जैसे व्यवहार के करने से मित्र के प्रति दुर्भावना प्रकट हो। क्योंकि जो आज शत्रु है, कभी मित्र हो सकता है। जो शत्रु है, वह बीज रूप से मित्र है, पोटेंशियली, आज भी। कभी भी मित्र हो सकता है। शत्रुता और मित्रता एक ही संबंध के दो छोर हैं।
बुद्धि सब चीजों को दो में तोड़ लेती है। जन्म और मृत्यु को तोड़ लेती है।
जन्म और मृत्यु एक ही जीवन के दो छोर हैं। एक तरफ जन्म है, दूसरी तरफ मृत्यु है। और इन दोनों में कहीं भी बीच में कोई व्याघात नहीं पड़ता, कोई गैप नहीं आता। जन्म ही तो मृत्यु बन जाता है। तो इनको दो कहना सिर्फ नासमझी है। जन्म और मृत्यु के बीच में कहीं कोई खाली जगह है, जहां जन्म समाप्त होता है और मृत्यु शुरू होती है? जन्म ही तो बढ़ते-बढ़ते मृत्यु बन जाता है। तो जन्म मृत्यु का ही एक छोर है। एक तरफ से देखते हैं जीवन को, तो जन्म मालूम पड़ता है; दूसरी तरफ से देखते हैं, तो मृत्यु मालूम पड़ती है। लेकिन वे एक ही चीज के दो हिस्से, एक ही चीज के दो नाम, दो छोर हैं।

बुद्धि हर चीज को दो में तोड़ लेती है। और दो में तोड़ने के कारण बुद्धि
जो भी वक्तव्य देती है वह अधूरा होता है। अगर हम ईश्वर को कहें कि वह प्रकाश है, जैसा कि बहुत शास्त्रों ने कहा है, कुरान ने कहा है, उपनिषदों ने कहा है, बाइबिल ने कहा है, ईश्वर को प्रकाश कहा है। वह हमारी आकांक्षा को प्रकट करता है, वहां तक तो ठीक है। वह हमारे भाव को प्रकट करता है, वहां तक तो ठीक है। काव्य की तरह तो ठीक है; लेकिन तथ्य की तरह झूठ है। क्योंकि फिर अंधेरा कौन होगा? अगर ईश्वर ही सब कुछ है, तो अंधेरा कौन होगा?
ईश्वर प्रकाश और अंधेरा दोनों है। असल में, प्रकाश और अंधेरा एक ही चीज के दो छोर हैं। ऐसा कोई भी अंधेरा नहीं है, जहां प्रकाश मौजूद न हो। अंधेरा प्रकाश की ही एक अवस्था है। और ऐसा कोई प्रकाश नहीं है, जहां अंधेरा मौजूद न हो। ऐसा कोई जन्म नहीं, जहां मृत्यु न हो। ऐसी कोई मृत्यु नहीं, जहां जन्म न हो। एक के ही दो छोर हैं। लेकिन बुद्धि दो में तोड़ लेती है। तो फिर अंधेरे को हम शैतान के हिस्से में दे देते हैं, प्रकाश को परमात्मा के हिस्से में। शुभ और अशुभ है--बुराई अलग, भलाई अलग। बुद्धि कहेगी, परमात्मा शुभ है। फिर अशुभ का क्या होगा? सचाई यह है कि शुभ और अशुभ अस्तित्व में दो नहीं, एक हैं। बुद्धि जब भी किसी चीज को देखती है, तो दो हो जाते हैं। यह बुद्धि के देखने के ढंग के कारण!
इसे ठीक से समझ लें। यह बुद्धि के देखने का ढंग है, जो चीजों को दो कर देता है। चीजें दो नहीं हैं। अगर हम बुद्धि को हटा दें, इस पृथ्वी से बुद्धि को हटा लें, एक क्षण को सोचें कि पृथ्वी से मनुष्य विलीन हो गया, तब कोई चीज कुरूप होगी और कोई चीज सुंदर होगी?
नहीं, कोई चीज कुरूप नहीं होगी, कोई चीज सुंदर नहीं होगी। चीजें होंगी; लेकिन सुंदर और कुरूप नहीं होंगी। क्योंकि सुंदर और कुरूप बुद्धि का विभाजन था। बुद्धि के हटते ही विभाजन खो जाएगा। सुंदर और कुरूप एक ही हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। वे रह जाएंगे। लेकिन विभाजन करने वाला प्रिज्म बीच से अलग हो गया, तो सब किरणें एक हो जाएंगी, रंगहीन हो जाएंगी। यह मजे की बात है कि सब किरणें मिल कर रंगहीन हो जाती हैं और टूट कर रंग वाली हो जाती हैं। बिल्कुल विपरीत! इकट्ठे होकर सातों रंग सफेद बन जाते हैं, टूट कर सात रंग बन जाते हैं। बिल्कुल विपरीत! तो जिसने प्रिज्म से किरण को देखा है, वह सोच भी तो नहीं पा सकता कि प्रिज्म के बाहर किरण कैसी होती होगी।
इंद्रधनुष बनता है आकाश में। किरणें तो सदा आकाश में आर-पार होती रहती हैं। लेकिन इंद्रधनुष तब बनता है, जब पानी की बूंदें प्रिज्म का काम करती हैं। पानी की बूंदों से गुजर कर सूरज की किरण सात रंगों में टूट जाती है, इंद्रधनुष बन जाता है। जिसने इंद्रधनुष देखा है और किरण का और कोई रूप नहीं देखा, वह जो भी कहेगा किरण के संबंध में वह गलत होगा। कभी वह कहेगा वह किरण लाल है, कभी वह कहेगा नीली है, कभी कहेगा हरी है। जो उसको प्रीतिकर होगा रंग, वही चुन लेगा। लेकिन वह किरण रंगहीन है, यह उसे ख्याल भी न आएगा। सात रंगों में से किसी एक रंग की हो सकती है, यह तो ख्याल आएगा; लेकिन रंगहीन है, यह ख्याल नहीं आएगा।
यही तकलीफ बुद्धि की भी है। बुद्धि से गुजर कर चीजें दिखाई पड़ती हैं।
तो कोई प्रकाश मान सकता है ईश्वर को, कोई अंधेरा मान सकता है।
जीसस जिस छोटे से रहस्यवादियों के संप्रदाय में सबसे पहले दीक्षित हुए, वह था इजिप्त का इसेन संप्रदाय। वह अकेला संप्रदाय है जगत में, जिसने ईश्वर को अंधकार रूप माना है। ईश्वर परम अंधकार है, टोटल डार्कनेस। वह भी काव्य है। और अंधकार की भी अपनी कविता है। और कोई कारण नहीं है कि प्रकाश से ही उस कविता को प्रकट किया जा सके। और कभी तो ऐसा लगता है कि इसेनी साधकों ने परम अंधकार कह कर ईश्वर को जो गहराई दी, वह प्रकाश कहने वाले कोई भी लोग कभी नहीं दे सके। क्योंकि प्रकाश में एक तरह की उत्तेजना है और अंधकार में परम शांति है। और प्रकाश की तो सीमा होती है, अंधकार असीम है। और प्रकाश तो आता है, जाता है; अंधकार सदा बना रहता है। और प्रकाश को तो पैदा करना पड़ता है किसी स्रोत से; अंधकार स्रोतहीन है। तो प्रकाश तो कहीं दीए से पैदा होता है, कहीं सूरज से पैदा होता है; लेकिन किसी चीज से पैदा होता है। ईंधन की भी जरूरत पड़ती है, चाहे दीए में हो और चाहे सूरज में।

वैज्ञानिक कहते हैं, सूरज का ईंधन भी चुकता जाता है। कोई तीन-चार हजार साल में वह ठंडा हो जाएगा। तो प्रकाश तो चुक सकता है; अंधकार चुकता ही नहीं। इसलिए इसेनी फकीरों ने जो धारणा की कि ईश्वर परम अंधकार है, उसमें बड़ी सूझ है। हमें नहीं पकड़ में आती, उसकी वजह है कि हमें अंधकार से डर लगता है।
इसलिए सारे भयभीत लोगों ने ईश्वर को प्रकाश कहा है, वह भय के कारण। अंधेरे में हमें लगता है डर, तो ईश्वर को अंधकार तो हम मान नहीं सकते। क्योंकि फिर अंधकार को प्रेम करना पड़ेगा। प्रकाश में भय कम लगता है।
तो हम ईश्वर को परम प्रकाश मानते हैं। ये हमारी आकांक्षाएं हैं। लेकिन कोई असुविधा नहीं है, कोई ईश्वर को अंधकार माने तो अड़चन नहीं है। लेकिन वह मानना भी उतना ही भ्रांत है, जितना प्रकाश। क्योंकि हम एक को छोड़ेंगे। इसेनी फकीर की भी तकलीफ है--अगर वह अंधकार मानता है, तो फिर प्रकाश नहीं मान सकता। क्योंकि बुद्धि कहेगी, दोनों एक साथ कैसे? जो प्रकाश मानते हैं, वे कहेंगे, अंधकार फिर नहीं हो सकता ईश्वर। दोनों एक साथ कैसे? बुद्धि ने तोड़ दिया दो में, फिर एक ही हो सकता है।
ईश्वर शुभ है; सब श्रेष्ठतम, सुंदरतम, शुभतम गुण हमने उसमें स्थापित
कर दिए। फिर अशुभ की कठिनाई हो जाती है। लेकिन ईश्वर को अशुभ मानने वाले लोगों का भी वर्ग रहा है। शैतान को भी पूजने वाले लोगों का वर्ग रहा है। और अभी अमरीका में बीसवीं सदी का पहला एक बड़ा चर्च निर्मित हुआ है--फर्स्ट चर्च ऑफ शैतान। उसके मानने वाले हैं कोई हजारों की संख्या में। वे शैतान को ही ईश्वर मानते हैं। अशुभ ही ईश्वर है। और तर्क में उनके भी बल है। क्योंकि वे कहते हैं, शुभ है कहां? सिर्फ धारणा है। तथ्य तो अशुभ है। भलाई है कहां? सिर्फ कल्पना है। बुराई तो मौजूद है। जो मौजूद है, वही परमात्मा है। जो कल्पना है, सपना है, उसके परमात्मा होने की क्या बात करनी? तो अहिंसा होगी स्वप्न में, हिंसा मौजूद है।
तो शैतान ईश्वर है। उसके पुरोहित हैं, उसके चर्च हैं। छिपे हैं, क्योंकि जो शुभ मानने वाले लोग हैं ईश्वर को, वे भी इतने शुभ नहीं हैं कि ये चर्च अगर प्रकट हो जाएं, तो इनको बचने दें। इनकी हत्या कर डालें! वही तो शैतान को ईश्वर मानने वाले लोगों का कहना है कि ये जो भला मान रहे हैं ईश्वर को, इन्होंने इतनी बुराई की है कि जिससे सिद्ध होता है कि असली ईश्वर तो बुराई है। और भलाई का बहाना लेकर भी वही बुराई प्रकट होती है। भलाई का बहाना लेकर भी बुरा ही जब प्रकट होता हो, तो असलियत बुराई ही है। क्यों न इसे स्वीकार कर लें?
शैतान को ईश्वर मानने वालों का कहना यह है कि आदमी कमजोर है, इसलिए बुराई को स्वीकार नहीं कर पाता। अन्यथा बुराई है। उससे बच-बच कर भी बचना कहां हो पाता है? उसे हम स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, हम उसे पूजते हैं, हम अंगीकार करते हैं।
जो शैतान मान ले ईश्वर को, उसको भलाई को इनकार करना पड़ेगा जगत से, है
ही नहीं। जो भलाई मान ले ईश्वर को, उसे बुराई को इनकार करना पड़ेगा कि बुराई है ही नहीं। और बुद्धि दो में तोड़ कर देखती है और एक को चुन लेती है। इसलिए तीसरी बड़ी कठिनाई है, वह यह है कि उस परम सत्य के लिए जो सब है एक साथ, सातों किरण एक साथ, रंगहीन है। उसे लाल कहें, तो गलती हो जाती है; पीला कहें, तो गलती हो जाती है; नीला कहें, तो गलती हो जाती है। और हमारी आंखें रंग ही देख पाती हैं। वह जो रंगहीन अस्तित्व है, वह हमें नहीं दिखाई पड़ता है।
इस सूत्र को अब हम समझने की कोशिश करें।
"उसे देखें, फिर भी वह अनदिखा रह जाता है।"
उसे देखना तो हो सकता है, क्योंकि देखना मेरे हाथ में है। लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता है। मैं आंखें गड़ा कर उसे खोज सकता हूं। फिर भी मेरी आंखें जिस दिन उस पर पहुंचती हैं, उस दिन कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। एक महान रिक्तता ही दिखाई पड़ती है।
इसलिए परम गोपनीय सूत्र है साधकों का कि जब तक तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता रहे, तब तक समझना कि ईश्वर नहीं दिखाई पड़ा। ध्यान में भी जब तक तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता रहे, तब तक समझना कि ईश्वर दिखाई नहीं पड़ा। प्रकाश दिखाई पड़े, आनंद दिखाई पड़े, कुछ भी दिखाई पड़े--राम दिखाई पड़ें, कृष्ण दिखाई

पड़ें, जीसस, बुद्ध दिखाई पड़ें--जब तक तुम्हें कुछ दिखाई पड़े, तब तक जानना कि वह अभी दिखाई नहीं पड़ा है।
यह बड़े मजे की बात है। यह तो सूत्र बड़ा विरोधी है! क्योंकि जब तक कुछ दिखाई पड़े, तब तक जानना कि वह दिखाई नहीं पड़ा है। तब फिर वह दिखाई कब पड़ेगा?
जब कुछ भी दिखाई न पड़े, सिर्फ देखना मात्र रह जाए। और रिक्तता रह जाए चारों ओर, शून्य रह जाए। आंखें देखती हों और देखने को कोई आब्जेक्ट, कोई विषय न बचे, कोरा आकाश रह जाए। तब जानना कि वह दिखाई पड़ा है। वह सदा अनदिखा रह जाता है।
"देखें, फिर भी वह अनदिखा रह जाता है। लुक्ड एट, बट कैन नॉट बी सीन।"
लुक्ड एट, उसकी तरफ देखा जा सकता है; लेकिन वह कभी दिखाई नहीं पड़ता।
लेकिन जो महत्वपूर्ण घटना घटती है, वह उसके दिखाई पड़ने से नहीं घटती, उसको देखने से घटती है। जो क्रांति घटित होती है, वह मेरी देखने की चेष्टा से घटित होती है, उसके दिखाई पड़ने से नहीं। इसलिए जब किसी ने कहा है कि हो गया उसका दर्शन, तो उसने यह नहीं कहा है कि वह दिखाई पड़ गया, उसने यही कहा है कि मेरी देखने की क्षमता शुद्ध हो गई और अब शून्य में भी मैं देख सकता हूं। दर्पण पूरा शुद्ध हो गया। अब उसमें कोई झलक नहीं बनती; खाली है। कोई आकार नहीं बनता, कोई प्रतिबिंब नहीं बनता; शून्य है। दर्पण जब इस शून्य की अवस्था में है, तो वह जिसका प्रतिबिंब बन रहा है उसमें--शून्य का--वही अनदिखा, अदृश्य सत्य है।
अगस्तीन ने कहा है, पूछो मत; क्योंकि जब तक तुम पूछते नहीं, मैं उसे जानता हूं। जैसे ही तुम पूछते हो, मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं। पूछो मत। देखा है मैंने उसे; लेकिन तस्वीर उसकी मैं न बना सकूंगा।
स्वभावतः, कोई भी पूछेगा कि अगर देखा है, तो तस्वीर तो बनाओ! थोड़ी कमोबेश होगी, नहीं पूरी बनेगी; लेकिन कुछ तो खबर मिलेगी!
तो सूफियों की किताब हैः दि बुक ऑफ दि बुक, किताबों की किताब। वह कोरी किताब है, उसमें कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। दो सौ पन्नों की किताब है, बिल्कुल खाली है। उसमें तस्वीर खींचने की कोशिश की गई है।
उसको कोई प्रकाशक छापने को तैयार नहीं था। क्योंकि क्या छापिएगा? तो कोई हजार, डेढ़ हजार साल से वह किताब अप्रकाशित थी। अभी किसी एक हिम्मतवर प्रकाशक ने उसे प्रकाशित की। पर वह भी तभी प्रकाशित करने को राजी हुआ, जब एक सूफी फकीर उस पर दस पन्ने की भूमिका लिखने को राजी हुआ। अन्यथा उसको छापिएगा क्या? तो दस पन्ने की जो भूमिका है, वह उसका इतिहास है। सबसे पहले किसने वह किताब लिखी; फिर उसने किसको दी; फिर किसने उसे पढ़ी--पढ़ी!
आप पढ़ सकते हैं उसे, यद्यपि पढ़ा कुछ भी न जाएगा। लेकिन करने जैसा प्रयोग है--कभी दो सौ खाली पेज पढ़ने की कोशिश! ठीक उतनी ही निष्ठा से, उतने ही भाव से, जैसे कोई दो सौ पन्नों के शब्द पढ़े। एक-एक लाइन, आंख गड़ा कर समझने की चेष्टा से! दो सौ पेज। आपका मन होगा कि उलटा दो शीघ्रता से। लेकिन इतिहास कहता है कि फलां फकीर ने उसे पढ़ा; बार-बार पढ़ा; लौट-लौट कर पढ़ा। किसी फकीर ने उसे जीवन में पचास बार पढ़ा। कोई फकीर उसे रोज सुबह जब तक पूरी न पढ़ लेता, तब तक भोजन न करता। क्या पढ़ते रहे होंगे वे लोग!
उस सूने खाली कागज पर, अगर कोई दो सौ पन्नों तक आंख को गड़ा कर देखता रहे, तो आंखें भी सूनी और कोरी हो जाएंगी। वह ध्यान का एक प्रयोग हो गया। क्या पढ़िएगा? लेकिन अगर पढ़ेंगे ही, तो धीरे-धीरे भीतर के शब्द खो जाएंगे। धीरे-धीरे भीतर कुछ भी न बचेगा। जैसे कोरे पन्ने हैं, वैसा ही कोरा मन हो जाएगा।
तो सूफियों में चलती रही है बात। लोग पूछते हैंः कुरान पढ़ा, ठीक है; बाइबिल पढ़ी, ठीक है; किताबों की किताब पढ़ी या नहीं? वह किताबों की किताब है।
अगस्तीन कहता है कि उसे देखता तो हूं; लेकिन जब तुम पूछते हो, कैसा है?
तो मुश्किल में पड़ जाता हूं।
यह सूत्र कहता है, "उसे देखें, फिर भी वह अनदिखा बना रहता है।"

इसे ख्याल रखें कि वह कभी दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि जो साधक भी उसे देखने की चेष्टा में लग जाते हैं, बहुत जल्दी अपनी कोई कल्पना पर ही समाप्त हो जाते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, कुछ तो सहारा! राम का, कृष्ण का, बुद्ध का, कोई तो सहारा दें। किस पर ध्यान करें? अगर उनसे कहो कि सिर्फ ध्यान करो, किसी पर नहीं, तो कठिन हो जाती है बात। किस पर ध्यान करें? किसे देखें? कहां आंखें गड़ाएं? कोई जगह चाहिए। कोई रूप, कोई आकार।
आंख आकार पर तो टिक जाती है। लेकिन जब तक आंख निराकार पर टिकना न सीखे,
तब तक उसका कोई अनुभव न होगा--उसका, जो परम रहस्य है। तब तक जो भी हम जानेंगे, वे हमारी बुद्धि की ही आकृतियां हैं, वे हमारे ही खिलौने हैं। कितने ही पवित्र और कितने ही पूज्य, राम हों कि कृष्ण, कितने ही आकाश में हम उन्हें बिठा दें, वे हमारे मन के ही आखिरी छोर हैं। जहां तक मन आकार बना पाता है, वहां तक उससे कोई मिलन नहीं होता, जो निराकार है।
"इसीलिए उसे अदृश्य कहा जाता है। उसे सुनें, फिर भी वह अनसुना रह जाता है।"
सब सुनाई पड़ता है जगत में। प्रत्येक वस्तु की ध्वनि है, प्रत्येक वस्तु की ध्वनि-तरंग है; सब सुनाई पड़ता है। सिर्फ परमात्मा सुनाई नहीं पड़ता। उसकी कोई ध्वनि-तरंग नहीं मालूम होती। उसे कहीं से भी पकड़ा नहीं जा सकता कि क्या है उसका संगीत! क्या है उसका स्वर! सुनें जरूर लेकिन उसे। तो क्या होगा उपाय सुनने का?
एक ही उपाय है उसे सुनने का कि धीरे-धीरे आपके कान और सब सुनना छोड़ते चले जाएं, सब ध्वनियां छोड़ते चले जाएं। एक घड़ी ऐसी आए कान की कि कान निर्ध्वनि हो जाएं, कुछ भी सुनाई न पड़ता हो, शून्य सुनाई पड़ता हो। सन्नाटा रह जाए, कोई ध्वनि पकड़ में न आती हो। तब जो सुनाई पड़ेगा--कहना पड़ता है कि जो सुनाई पड़ेगा--वह वही है, जो सदा अश्राव्य है, जो कभी सुना नहीं जाता। श्वेतकेतु अपने घर वापस लौटा सब शास्त्र पढ़ कर। पिता ने उसके पूछा कि
तू वह तो समझ कर आ गया जो सुना जा सकता है, तूने वह भी सुना जो अश्राव्य है? श्वेतकेतु बहुत अकड़ कर घर आ रहा था। समस्त वेदों का ज्ञाता हो गया था।
जो भी ज्ञान था, सब उसकी मुट्ठी में था। आ रहा था बड़ी आशा से कि पिता बहुत आनंदित होंगे और कहेंगेः श्वेतकेतु, तू सब पाकर आ गया। लेकिन पिता ने पहला ही प्रश्न पूछा कि तूने वह सुना जो अश्राव्य है? श्वेतकेतु ने कहा, ऐसा कोई शास्त्र ही नहीं था। सभी शास्त्र श्राव्य हैं। तो जो भी मैंने पढ़ा वह सब सुना जा सकता है।
इसलिए शास्त्रों का जो भारतीय नाम है, वह है श्रुति और स्मृति--जिसे सुना जा सके और जिसे याद रखा जा सके। इसलिए शास्त्र में परमात्मा नहीं हो सकता, वह अश्राव्य है। शास्त्र तो सुने जा सकते हैं, स्मरण रखे जा सकते हैं। वह उनसे दूर रह जाएगा।
तो श्वेतकेतु ने कहा, वह तो नहीं सुना। तो पिता ने कहा, वापस जा! तू सब
जो सीख कर आया वह व्यर्थ है। उससे आजीविका तो मिल सकती है, जीवन नहीं। और मैंने तुझे ब्राह्मण होने के लिए भेजा था, पुरोहित होने के लिए नहीं। ऐसे तो तू ब्राह्मण का बेटा है ही, तो आजीविका तो तुझे मिल जाएगी, लेकिन जीवन? और ब्राह्मण तू उसी दिन होगा, जिस दिन वह अश्राव्य सुना जा सके। ब्रह्म को सुना जा सके, देखा जा सके, तभी कोई ब्राह्मण होता है। तू वापस जा! श्वेतकेतु वापस चला गया। वर्षों बाद लौट सका। क्योंकि जब उसने अपने गुरु को जाकर कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। आपने तो कहा थाः जो भी जाना जा सकता है, सब बता दिया। लेकिन मेरे पिता ने पहले ही प्रश्न में मेरी सारी की सारी असफलता सिद्ध कर दी। मेरे पिता ने पूछा कि जो अश्राव्य है, वह सुना? मेरे पिता ने पूछा कि जो जाना नहीं जा सका, जाना नहीं जा सकता है, उसे जाना?
तो गुरु ने कहा कि मैं तो वही बता सकता था, जो बताया जा सकता है। मैं तो वही कह सकता था, जो कहा जा सकता है। पागल, कहने से वह कैसे कहा जाएगा, जो सुना नहीं जा सकता?
पर श्वेतकेतु ने कहा, अब तो मेरे घर लौटने का कोई उपाय नहीं, जब तक कि मैं उसे न सुन लूं।

तो गुरु ने कहा, फिर तू ऐसा कर! ये गाएं हैं आश्रम की, इनको तू लेकर गहन जंगल में चला जा। और जब तक ये हजार न हो जाएं, तब तक वापस मत लौटना। श्वेतकेतु ने पूछा, वहां मैं करूंगा क्या?
तो गुरु ने कहा, तू गायों की चिंता करना और अपनी चिंता भूल जाना। खुद
को तू भूल ही जाना कि तू है। बस इन गायों की सेवा करना। और जब ये हजार हो जाएं--चार सौ गाएं थीं, कब होंगी हजार? तब तू लौट आना!
श्वेतकेतु चला गया। स्वयं को छोड़ गया गुरु के आश्रम में ही। गायों के साथ चला गया। स्वयं को छोड़ गया। अपनी सब चिंता छोड़ गया। क्योंकि गुरु ने कहाः अपनी चिंता मत करना; नहीं तो जो अश्राव्य है, वह सुना नहीं जा सकता। तू गायों की चिंता में लगा रहना। इनकी फिक्र कर लेना, इनको पानी जुटा देना, भोजन जुटा देना, इनका विश्राम करा देना। बस तू अपने को भूल जाना। एक ही ख्याल रखना कि जब गाएं हजार हो जाएं, तब तू आ जाना!
श्वेतकेतु गायों की सेवा करता रहा, करता रहा, करता रहा। वर्ष आए और गए। रात तारे निकल आते, वह देखता हुआ सो जाता। सुबह सूरज उगता, वह देखता हुआ उठ आता। गाएं थीं, कोई बात की चर्चा का उपाय न था। कोई खबर न थी। गायों की खाली कोरी आंखें थीं।
हिंदुओं के गाय को मां मानने के बहुत गहरे कारणों में गाय की आंख भी
एक रही है। वह समस्त पशुओं में उस जैसी निराकार और शून्य आंख खोजनी मुश्किल है। वैसी ही आंख जब किसी व्यक्ति की हो जाती है, तो वह ध्यान को उपलब्ध हो जाता है।
तो गायों की आंखों में झांकता था। अपने को भूलता गया, भूलता गया, भूलता गया। फिर कठिनाई खड़ी हो गई। गाएं बड़ी मुश्किल में पड़ गईं; क्योंकि गाएं हजार हो गईं और श्वेतकेतु को गिनती का ख्याल ही न रहा। कौन गिनती करे? तो बड़ी मीठी कथा है कि गायों ने एक दिन इकट्ठे होकर कहा, श्वेतकेतु! हम हजार हो गए; वापस लौटने का वक्त आ गया।
तो श्वेतकेतु गायों को लेकर वापस लौट आया। जब वह गुरु के आश्रम में प्रवेश कर रहा था, तो गुरु भागे हुए आए, श्वेतकेतु को गले लगाया और श्वेतकेतु से कहा, अब कुछ पूछने को नहीं है। तू अपने पिता के पास वापस लौट जा सकता है। श्वेतकेतु ने पूछा कि आपको कैसे पता चला कि मैंने सुन लिया वह, जो नहीं सुना जा सकता? तो गुरु ने कहा कि मैंने देखा कि एक हजार एक गाएं आ रही हैं।
एक हजार तो गाएं थीं, एक वह श्वेतकेतु था। वह बिल्कुल गाय हो गया था। उसकी आंखों में शून्य आ गया था। गायों के बीच में वह ऐसे चला आ रहा था, जैसे वह भी एक गाय हो। तो गुरु ने कहा, अब कुछ कहने को नहीं है। तू जा सकता है। बड़ी अदभुत घटना घटी। जब श्वेतकेतु अपने गांव की तरफ आया और पिता ने खिड़की से श्वेतकेतु को आते देखा, तो उसने अपनी पत्नी से कहा--श्वेतकेतु की मां को--कि अब मैं भाग जाऊं यहां से; क्योंकि श्वेतकेतु ब्राह्मण होकर आ रहा है और मेरे पैर छुएगा तो बड़ी अड़चन होगी। मैं खुद अभी ब्राह्मण नहीं हूं। मैंने वह नहीं सुना, अभी वह मैंने नहीं सुना जो सुना नहीं जा सकता है। इसलिए पिता पीछे के दरवाजे से भाग गया।
श्वेतकेतु जब भीतर पहुंचा, तो उसने अपनी मां से पूछा कि पिता कहां हैं? तो उसकी मां ने कहा कि वे ब्राह्मण होने चले गए हैं। वे अब तभी लौटेंगे, जब वे भी उसे सुन लें, जिसे तू सुन कर आ रहा है।
यह जो अश्राव्य है, यह उस दिन सुनाई पड़ता है, जब कान सारी ध्वनियां सुनना छोड़ देते हैं। यह जो अदृश्य है, उस दिन दिखाई पड़ता है, जब आंखों में सब दृश्य खो जाते हैं, सब सपने खो जाते हैं। सत्य मिलता है उसे, जिसके सब सपने खो जाते हैं, जिसकी आंखों में फिर कोई चित्र नहीं बनते, कोई स्वप्न नहीं उभरते, आंखें कोरी और खाली हो जाती हैं।
"उसे समझें, फिर भी वह अछूता रह जाता है।"
कितना ही समझें उसे, कितना ही पकड़ें उसे, कितनी ही मुट्ठी बांधें, सच
तो यह है कि जितनी मुट्ठी बांधते हैं, उतना ही वह मुट्ठी के बाहर हो जाता है। हवा की तरह है। नहीं बांधते, तो हवा मुट्ठी में होती है; बांधते हैं, तो हवा मुट्ठी के बाहर हो जाती है।

समझ भी भीतर बुद्धि की मुट्ठी है। इसलिए समझदार आदमी तनाव से भरा रहता है; क्योंकि उसकी बुद्धि मुट्ठी बनी रहती है। जिनको हम समझदार कहते हैं, वे बहुत तने हुए लोग होते हैं। उनकी खोपड़ी के भीतर बुद्धि मुट्ठी बनी रहती है। वे पकड़े रहते हैं सारी समझ को। और जितने जोर से पकड़ते हैं, उतनी ही बुद्धि कम होती चली जाती है। इसलिए पंडित और बुद्धिमान एक साथ आदमी नहीं हो पाता। बहुत मुश्किल है। क्योंकि पंडित का मतलब है बंधी हुई मुट्ठी और बुद्धिमान का मतलब है खुली हुई मुट्ठी। खुला हो हाथ, तो सारी दुनिया की हवा हाथ पर होती है। और हाथ बंद हो, तो हाथ के भीतर की हवा भी बाहर हो जाती है।
पकड़ें उसे, और छूट जाता है। कोई पकड़ उसे पकड़ नहीं पाती। क्योंकि पकड़ हमारी बहुत छोटी है, वह बहुत बड़ा है। तो अगर हम पकड़ की जिद्द करेंगे, तो आखिर में पकड़ ही हमारी पकड़ में रह जाएगी। तो जो मुट्ठी बांधता है, मुट्ठी ही उसके हाथ में रह जाती है।
तो पंडित के पास खोपड़ी ही रह जाती है हाथ में, बंधी हुई। वह भी खुली हुई नहीं; सब द्वार-रंध्र बंद हो जाते हैं। ज्ञानी के हाथ में कुछ भी नहीं रह जाता; ज्ञानी खाली हाथ हो जाता है। और इसलिए सब कुछ उसके हाथ में आ जाता है।
यह सूत्र कहता है, "समझें उसे, फिर भी वह अछूता रह जाता है।"
समझने की बात को थोड़े गहरे में उतरना चाहिए। समझने में हम करते क्या हैं? जब हम किसी चीज को समझते हैं, तो करते क्या हैं? क्या है समझ की प्रक्रिया?
अगर आपके सामने एक नया जानवर खड़ा कर दिया जाए और आपसे कहा जाए समझें,
तो आप क्या करेंगे? पहाड़ों में नीलगाय होती है। वह गाय नहीं है; लेकिन गाय से मिलती-जुलती है। तो अगर पहाड़ की गाय आपके सामने खड़ी कर दी जाए, तो आप कहेंगे, गाय जैसी है। क्योंकि गाय को आप जानते हैं। और जो सामने खड़ा है जानवर, उसे आप जानते नहीं।
एक मेहमान मेरे घर आए हुए थे। उनके साथ एक छोटा बच्चा था। बगीचे में फूल थे। तो उस बच्चे की मां ने उसे मना कर दिया था, यहां फूल मत तोड़ना। उसकी मां तो मुझसे बातचीत में लग गई। तभी बगीचे का माली कुछ काम करता होगा, कुछ फूल काटता होगा, कुछ पत्ते निकालता होगा। उस लड़के ने दौड़ कर भीतर आकर कहा कि एक बहुत बड़ा लड़का फूल तोड़ रहा है!
लड़के से उसका परिचय है। इस आदमी को वह क्या कहे? बहुत बड़ा लड़का! यह बच्चा समझने की कोशिश कर रहा है कि जो फूल तोड़ रहा है, वह कौन है।
समझ की प्रक्रिया का पहला हिस्सा हैः जो ज्ञात है, उसको हम अज्ञात पर बिठाते हैं। जो हमें पता है, उसको हम उससे जोड़ते हैं, जो हमें पता नहीं है। समझ का मतलब ही यही है कि हम अज्ञात को ज्ञात की भाषा में अनुवादित करते हैं--दि अननोन रिड्यूस्ड टु दि लैंग्वेज ऑफ दि नोन। यही हम कोशिश कर रहे हैं पूरे समय। और जब हम अज्ञात को ज्ञात की भाषा में पकड़ लेते हैं, तो हम कहते हैं समझ गए।
लेकिन यह जो परमात्मा है, यह अगर अज्ञात होता, अननोन होता, तो इसे समझने का उपाय हो सकता था। वह अननोन नहीं है, अननोएबल है। वह अज्ञात नहीं है, अज्ञेय है। यहीं तकलीफ है।
विज्ञान दो चीजें मानता हैः नोन और अननोन, ज्ञात और अज्ञात। ये दो विभाजन हैं जगत के। अज्ञात का मतलब है, जो अभी अज्ञात है, आज नहीं कल ज्ञात हो जाएगा। समझ कर रहेंगे उसे हम। मतलब यह है कि जो हमें ज्ञात है, इसकी सीमा को हम बड़ा करेंगे और अज्ञात को इसी की परिधि में ले आएंगे। जब इतना ज्ञात हो सका है, तो जो अज्ञात है, वह भी ज्ञात हो जाएगा। यह समय की ही बात है। आज नहीं कल, आज नहीं कल अज्ञात कम होता जाएगा, ज्ञात बढ़ता जाएगा। एक दिन ऐसा आएगा कि हम कहेंगे, सब ज्ञात हो गया है।
धर्म तीन कोटियां मानता हैः ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय। विज्ञान दो कोटियां मानता हैः ज्ञात और अज्ञात। यही फर्क है धर्म और विज्ञान में। धर्म एक नई कोटि मानता है--अननोएबल। वह कहता है, कुछ ज्ञात है, कुछ अज्ञात है। ये दो विभाजन हैं, ये बुद्धि के विभाजन हैंः ज्ञात-अज्ञात, प्रकाश-अंधेरा, जन्म-मृत्यु। इनके पीछे जो छिपा है, वह अननोएबल है। अविभाजित,

बुद्धि के पार जो है, वह अज्ञेय है। वह कभी नहीं जाना जा सकेगा। तुम ज्ञात को अज्ञात बनाते रहो, अज्ञात को ज्ञात बनाते रहो; लेकिन इसका जो मौलिक आधार है, वह सदा ही अज्ञेय बना रहेगा, वह कभी भी जाना नहीं जा सकेगा।
यही धर्म का विज्ञान से भेद है। यही झगड़ा भी है। विज्ञान कहता है, अज्ञात हम मानने को तैयार हैं। अगर तुम कहो कि तुम्हारा ईश्वर अज्ञात है, तो हम मानते हैं। तो फिर हम आज नहीं कल उसको ज्ञात कर लेंगे। लेकिन धर्म कहता है, ईश्वर अज्ञेय है। तुम कभी भी उसे ज्ञात न कर सकोगे। अज्ञेय का मतलब है, जिसे ज्ञात की भाषा में रूपांतरित नहीं किया जा सकता। जीवन का जो परम सत्य है, वह अज्ञेय रहेगा ही।
उसका कारण है। उसका कारण यह है कि उस परम सत्य में मेरा होना एक परमाणु का होना है। मैं हूं जानने वाला। और जिसे मुझे जानना है, वह यह विराट विस्तार है, अनंत विस्तार है, असीम विस्तार है। मैं हूं जानने वाला, एक परमाणु, जिसका जानना बड़ी साधारण सी बातों पर निर्भर है। एक अफीम की गोली दे दी जाए, और जिसका जानना समाप्त हो जाता है। एक इंजेक्शन दे दिया जाए मार्फिया का, और जानना खतम हो जाता है। मार्फिया के एक इंजेक्शन से जो जानना खो जाता है, वह जानने की क्षमता कितनी बड़ी है? सिर पर एक पत्थर मार दिया जाए, और चेतना खो जाती है। इस विराट अस्तित्व को जानने चले हैं हम उस सिर से, जो एक छोटे से पत्थर से विनष्ट हो जाता है, एक छोटी सी अफीम की गोली जिसे बेहोश कर देती है। जानने की तो बात और, एक जरा सा इंजेक्शन जिसे जीवन के पार हटा देता है। एक छुरी छाती में घुस जाती है और जीवन तिरोहित हो जाता है। इस अत्यल्प शक्ति से हम जानने चले हैं इस विराट को!
धर्म कहता है, हम नहीं जान सकेंगे। और धर्म का कहना वैज्ञानिक मालूम पड़ता है, तर्कसंगत मालूम पड़ता है। क्षमता कितनी है हमारी जानने की?
फिर इस जानने को भी अगर हम और थोड़े गौर से देखें। तो बच्चा मां के पेट में नौ महीने बिल्कुल बेहोश होता है, कुछ भी नहीं जानता। पैदा होता है, तो बाईस घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है, अठारह घंटे सोता है। सोता रहता है। बड़ा भी हो जाता है, तो भी हम अगर साठ साल जिंदा रहें, तो बीस साल सोते हैं। तब हम कुछ नहीं जानते, बेहोश पड़े रहते हैं। बाकी जो चालीस साल हम सोचते हैं कि हम जानने की अवस्था में होते हैं, अगर उसमें भी खोजबीन करने जाएं, तो चालीस क्षण भी अगर मिल जाएं जानने के तो बहुत हैं। वह भी नींद में ही गुजरता है वक्त। वह भी नींद में ही गुजरता है वक्त। जानने के लिए जितना होश चाहिए, वह एक क्षण को भी हम नहीं जुटा पाते। बेहोशी में ही हम सरकते हैं। इस बेहोश चित्त से, इस नींद से भरे चित्त से विराट को जानने हम चलते हैं।
अगर आपसे कहा जाए कि इस दीए की लौ पर पांच मिनट ध्यानपूर्वक रुके रहें, कि आपका मन और कहीं न जाए, पांच मिनट यह दीए की लौ ही आपके लिए एकमात्र अस्तित्व रह जाए, तो आपको पता चलेगा कि कितना कठिन है। पांच मिनट इस दीए की लौ को भी सतत नहीं जाना जा सकता। बीच में हजार बाधाएं आ जाती हैं, हजार विचार आ जाते हैं। झपकी आ जाती है। मन कहीं और चला जाता है। एक क्षण को दीए की लौ भूल जाती है; कुछ और स्वप्न साकार हो जाता है। पांच मिनट दीए की लौ को सतत नहीं जाना जा सकता, तो इस विराट जीवन के विस्तार को, जो अनादि और अनंत फैला हुआ है, उसे जानने की कहां से क्षमता जुटाएंगे? कैसे?
फिर मैं आज हूं, कल नहीं था, कल फिर नहीं हो जाऊंगा। और यह अनंत विस्तार सदा से है और सदा रहेगा। मैं नहीं था, तब भी था। मैं नहीं रहूंगा, तब भी होगा। इस सबको मैं कैसे जानूंगा? मेरा होना इतना क्षणिक है! एक लहर छलांग लगाती है आकाश में और सोचती है उस बीच कि सागर को जान लूं। जब तक वह सोच भी नहीं पाती, छलांग समाप्त हो गई। लहर विसर्जित हो गई, नीचे गिर गई। आदमी की चेतना ऐसी ही एक छलांग है। जानना कैसे हो पाएगा?
लेकिन क्या धर्म यह कहता है कि अज्ञान आत्यंतिक है, जानना हो ही नहीं सकेगा?
नहीं; धर्म यह कहता है, जब तक जानने की चेष्टा है, तब तक जानना नहीं हो सकेगा। क्योंकि जानने की चेष्टा में अहंकार है, मैं है। जब तक मुट्ठी बांधने की कोशिश है, तब तक जानना नहीं हो सकेगा। क्योंकि मुट्ठी क्षुद्र है। खोलते ही मुट्ठी विराट हो जाती है। खोलते ही मुट्ठी की कोई सीमा नहीं

रह जाती। बुद्धि को खोल दें, उसके द्वार-दरवाजे तोड़ दें, उसे विराट आकाश के साथ मिल जाने दें, कोई सीमा न रखें; तो जानना घटित होगा।
लेकिन फिर भी यह सूत्र कहता है, समझें, फिर भी वह अछूता रह जाएगा। जानना घटित हो जाएगा, समझ भी आएगी, फिर भी यह ख्याल में साथ आएगा कि वह अस्पर्शित रह गया। क्यों?
अनेक कारणों से। पहला कारण तो यह है, कबीर ने कहा है, मैं खोजते-खोजते खुद खो गया। खोजने की प्रक्रिया ऐसी है कि उसमें खोजने वाला मिट जाता है। तो जब खोजने वाला मिट जाएगा, तो छुएगा कौन? स्पर्श किससे होगा? यह बड़ी अदभुत घटना है कि कभी भी कोई साधक का ईश्वर से मिलन नहीं हो पाया। होगा भी नहीं कभी। क्योंकि जब ईश्वर सामने होता है, तो साधक खो जाता है। और जब तक साधक होता है, तब तक ईश्वर सामने नहीं होता। साधक की जो होने की व्यवस्था है, अहंकार, मैं, वही तो बाधा है।
निकोडेमस ने जीसस से जाकर पूछा कि मैं क्या छोड़ दूं कि मैं परमात्मा
को पा लूं? तो जीसस ने कहा, और कुछ छोड़ने से नहीं चलेगा, निकोडेमस को ही छोड़ना पड़े। तुझे स्वयं को ही छोड़ना पड़े। निकोडेमस ने कहा, और सब तो मैं छोड़ सकता हूं, लेकिन स्वयं को कैसे छोडूंगा? और सब तो मैं छोड़ कर भाग सकता हूं, लेकिन स्वयं को छोड़ कर कहां भागूंगा? मैं तो अपने साथ ही पहुंच जाऊंगा। तो जीसस ने कहा, वही कला सीखनी पड़ेगी। जिस दिन तू भागे और निकोडेमस पीछे रह जाए, उस दिन ही मिलन हो सकता है।
जिस दिन समझने वाला न हो भीतर, उस दिन समझ आ जाएगी। और जिस दिन जानने वाला न हो भीतर, उस दिन ज्ञान प्रकट हो जाएगा। और जिस दिन बांधने वाली मुट्ठी न हो, उस दिन सारा आकाश हाथ में है।
लेकिन अहंकार बहुत कंजूस है, बहुत कृपण है--सभी दिशाओं में। और जब तक अहंकार को पक्का भरोसा न आ जाए कि मुट्ठी में कोई चीज है, तब तक वह नहीं मानता। इसीलिए तो लोग पूछते देखे जाते हैं कि जब तक मैं ईश्वर को न देख लूं, तब तक मैं कैसे मानूं? जब तक मेरी मुट्ठी में न आ जाए!
कार्ल मार्क्स ने कहा है कि जब तक प्रयोगशाला की टेबल पर डिसेक्शन न
हो जाए ईश्वर का, हम उसकी चीर-फाड़ न कर लें, तब तक हम न मान सकेंगे। लेकिन ईश्वर को प्रयोगशाला की टेबल पर लिटाना बहुत मुश्किल पड़ेगा। कम से कम ईश्वर से बड़ी तो प्रयोगशाला की टेबल चाहिए ही होगी। और मार्क्स को भी बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि उतनी बड़ी टेबल पर लेटा हुआ ईश्वर! मार्क्स बड़ा छोटा पड़ जाएगा किनारे खड़ा। जांच-पड़ताल कर नहीं पाएगा। बहुत छोटा पड़ जाएगा। जैसे हिमालय के पास कोई मच्छर खोजबीन करता हो।
फिर भी मच्छर और हिमालय में जो अनुपात है, वह बहुत भेद का नहीं है, बहुत बड़ा भेद नहीं है। मच्छर और एवरेस्ट में भी अनुपात है, वह बहुत बड़ा नहीं है। बहुत बड़ा फासला नहीं है। लेकिन मार्क्स और ईश्वर में जो अनुपात है, उसमें तो कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। एवरेस्ट के सामने मच्छर भी काफी बड़ा है, ईश्वर के सामने मार्क्स मच्छर भी नहीं हो सकता है।
लेकिन मार्क्स कहता है, जब तक हम चीर-फाड़ न कर लें टेबल पर रख कर, तब तक
हम न मान पाएंगे।
यह मार्क्स ही कहता तो ठीक था, हमारा सब का मन भी यही कहता है कि हम विराट को भी तभी मानेंगे, जब हमारे क्षुद्र की मुट्ठी में वह हो। जब तक मैं न कहूं कि वह है, तब तक वह है ही नहीं। उसके होने के लिए भी मेरी गवाही की जरूरत है।
लाओत्से कहता है, "उसे समझें, फिर भी वह अछूता रह जाता है।"
क्योंकि जो छू सकता था, वह खो चुका होता है।
"इसलिए उसे अस्पर्शनीय कहा है।"
उसे छुआ नहीं जा सकता, क्योंकि छूने के पहले ही छूने वाला पिघल जाता
है और खो जाता है। छू ही तब पाते हैं हम उसे, जब हम खो गए होते हैं, पिघल गए होते हैं। मिटे बिना उसे जानने का कोई उपाय नहीं है।
हमारे जीवन की सारी धारा होने की है। और धर्म की सारी धारा मिटने की है, न होने की है। इसीलिए तो धर्म से हमारा कोई संबंध नहीं जुड़ पाता; क्योंकि हमारे चिंतन की पूरी प्रक्रिया होने की है।

डार्विन ने कहा है कि आदमी का पूरा जीवन--न केवल आदमी का, पूरी मनुष्य-जाति का--एक शब्द में कहा जा सकता हैः स्ट्रगल फॉर सरवाइवल, बचे रहने का संघर्ष।
ठीक डार्विन कहता है। लेकिन बुद्ध को नहीं समझाया जा सकता इस बचे रहने के संघर्ष से। और अगर एक भी आदमी नहीं समझाया जा सकता, तो यह बचे रहने का संघर्ष पूरा सिद्धांत नहीं है। क्योंकि बुद्ध को अगर हम समझाएं तो हमें कहना पड़ेगाः न हो जाने का संघर्ष, न हो जाने की चेष्टा, मिट जाने की चेष्टा, खो जाने की चेष्टा।
हम सब की चेष्टा है बने रहने की, और हो जाने की, और ज्यादा हो जाने की। बुद्ध की चेष्टा है न हो जाने की, रिक्त, शून्य, खो जाने की। हम अगर पानी हैं, तो हम बर्फ होना चाहते हैं--सख्त, मजबूत, सुरक्षित। बुद्ध अगर बर्फ हैं, तो पिघल कर पानी हो जाना चाहते हैं--तरल। और बस चले उनका, तो भाप हो जाना चाहते हैं। कोई आकार भी न रहे। और बस उनका चले, तो भाप भी नहीं रह जाना चाहते हैं। क्योंकि उसका भी कहीं न कहीं अस्तित्व में कोई न कोई आकार तो है।
धर्म है मिटने का दुस्साहस। इसलिए जो आदमी भी धर्म की तरफ जाता है, उसे ठीक से समझ लेना चाहिए कि मिटने की तैयारी है? होने का दुख ख्याल में आ गया है? होने का नर्क समझ में आ गया है? तो ही धर्म की तरफ कदम बढ़ते हैं। लेकिन हमारे भी कदम बढ़ते हैं धर्म की तरफ। वह धर्म झूठा हो जाता है-- हमारे कदमों की गलती के कारण। क्योंकि हम धर्म की तरफ भी और होने के लिए बढ़ते हैं--स्वर्ग कैसे मिल जाए? कि मोक्ष कैसे मिल जाए? कि इस जीवन के पार की भी सुरक्षा कैसे कर लूं? यहां तो मौत दिखाई पड़ती है; ऐसा जीवन कैसे पा जाऊं जहां कोई मौत न हो? यह तो फिर सरवाइवल ही है। यह तो फिर बचने का ही उपाय चल रहा है।
इसलिए धर्मगुरु लोगों को समझाते दिखाई पड़ते हैं कि जो हमारे साथ होगा, वही बचेगा। जो हमारे साथ नहीं होगा, वह नहीं बचाया जाएगा। कयामत के दिन, आखिरी निर्णय के दिन, हम ही गवाह होंगे तुम्हारे कि बचाए जाओगे कि नहीं बचाए जाओगे। और ऐसे गुरुओं को बड़ी संख्या में लोग मिल जाते हैं। क्योंकि सभी की आकांक्षा बचने की है। उस आकांक्षा का शोषण किया जा सकता है।
बुद्ध जैसे गुरु को शिष्य मिलना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि बुद्ध कहते हैंः मिटो, खो जाओ, बचो ही मत। तुम्हारा होना ही तुम्हारा संताप है।
शून्य हो जाओ।
लाओत्से कहता है, "इसलिए उसे अस्पर्शनीय कहा जाता है।"
क्योंकि छूने वाला बचता नहीं। जब वह सामने आता है, तब हम खो जाते हैं।
जब तक हम होते हैं, छू सकते हैं, पकड़ सकते हैं, तब तक वह नहीं होता है। इन दोनों का कहीं मिलन नहीं है। यह मिलन असंभव है।
फिर भी मिलन होता है, लेकिन किसी दूसरे आयाम में। मेरे न होने का और उसके होने का मिलन होता है। मेरे होने का और उसके होने का कोई मिलन नहीं होता। जब तक मैं हूं, तब तक वह नहीं है। और जब मैं नहीं हो जाता हूं, तब पूरा अस्तित्व रूपांतरित हो जाता है, तब वह हो जाता है। मेरा न होना ही उसके देखने की आंख बनती है, उसके छूने का हाथ बनता है। मेरा न होना ही वह जगह बनती है, जहां वह प्रकट होता है। मेरा न होना ही सिंहासन है उसके लिए। जब तक अपने सिंहासन पर मैं ही काफी भरा हुआ बैठा हूं, उसके लिए कोई जगह नहीं है।
झेन फकीरों ने कहा है, मेहमान घर में आता है, तो हम जगह बनाते हैं, कमरा खाली करते हैं--उसके ठहराने के लिए। उस परम मेहमान को जो बुलाने गया है, उसे तो बिल्कुल खाली कर देना होगा अपने को। जरा भी भीतर स्वयं का होना न बचे।
"इसलिए वह अस्पर्शनीय कहा जाता है।"
"इस प्रकार वह अदृश्य, अश्राव्य, अस्पर्शनीय और हमारी जिज्ञासा की पकड़ के बाहर, हमारी जिज्ञासा से छूट-छूट जाता है और दुर्ग्राह्य बना रहता है।"

हमारी जिज्ञासा से छूट-छूट जाता है। इसे आखिरी बात समझ लेंः इंक्वायरी, जिज्ञासा से वह छूट-छूट जाता है।
अभी मैंने आपको कहा कि विज्ञान और धर्म में एक फर्क है--कैटेगरीज का। विज्ञान दो कोटियां मानता है अस्तित्व की, धर्म तीन। वह तीसरी कोटि ही धर्म का आधार है।
जिज्ञासा दर्शनशास्त्र का स्रोत है। इंक्वायरी, पूछताछ, प्रश्न फिलासफी का आधार है। दुनिया में कोई फिलासफी, कोई दर्शन नहीं होगा, जिज्ञासा अगर समाप्त हो जाए। लेकिन जिज्ञासा धर्म का आधार नहीं है। इसलिए पश्चिम के लोग तो कहते हैं कि हिंदुस्तान में फिलासफी जैसी कोई चीज ही नहीं है। वे थोड़ी दूर तक ठीक कहते हैं। वे थोड़ी दूर तक ठीक कहते हैं। जिस अर्थों में यूनान में फिलासफी रही और पश्चिम में है, उस अर्थों में भारत में फिलासफी कभी नहीं रही। क्योंकि भारत में जिज्ञासा से उसे पाया ही नहीं जा सकता। चीन में भी, पूर्व में, समस्त पूर्वीय चिंतना में जिज्ञासा से उसे नहीं पाया जा सकता, जिज्ञासा की पकड़ के बाहर है। हम जो प्रश्न उठा सकते हैं, वे प्रश्न उसके चरणों तक नहीं पहुंच पाते। हमारे प्रश्न छोटे पड़ जाते हैं।
हम प्रश्न भी क्या पूछ सकते हैं? प्रश्न भी तो अनुभव से उठते हैं। ध्यान रखें, प्रश्न अनुभव से उठते हैं। हम पूछते हैं कि ईश्वर को जब तक मैं आंख से न देख लूं, तब तक कैसे मानूं? क्योंकि हमारा अनुभव यह है कि जो चीज हम आंख से देख लेते हैं, वह मानने योग्य हो जाती है। फिर उसके झूठ होने का कोई सवाल न रहा।
लेकिन इस पर हमने बहुत खोजबीन नहीं की है। सपना भी हम आंख से ही देखते हैं। और जब सपना देखते हैं, तब वह पूरा सत्य मालूम पड़ता है। सुबह उठ कर पता चलता है कि वह नहीं था। जिस जिंदगी को हम जिंदगी कहते हैं, किसी दिन उससे भी उठ कर अगर पता चले कि जो हमने देखा, वह एक लंबा सपना था! एक आदमी सत्तर साल तक सपने में सोया रखा जा सकता है। उसे सत्तर साल में कभी पता नहीं चलेगा कि जो वह देख रहा है, वह असत्य है।
आंख पर हमारा भरोसा जरूरत से ज्यादा है। रेगिस्तान में कभी जाएं तो दिखाई पड़ता है कि दूर पानी का सरोवर है। आंख बिल्कुल खबर देती है। आंख इतनी पक्की खबर देती है कि सरोवर ही नहीं दिखाई पड़ता, उसके किनारे खड़े हुए वृक्षों की छाया भी उसमें दिखाई पड़ती है।
लेकिन वह केवल किरणों का धोखा है। और जब पास पहुंचेंगे, तो वृक्ष तो
उस किनारे खड़े मिलेंगे, सरोवर नहीं मिलेगा। मगर इतना साफ दिखाई पड़ रहा था-- उसमें लहरें उठ रही थीं! तरंगें उठ रही थीं! पास खड़े वृक्षों का प्रतिबिंब बन रहा था! आंख ने पूरा कहा था। पर आंख धोखा दे गई।
हम अगर ईश्वर के संबंध में प्रश्न उठाते हैं, तो हमारे प्रश्न आंख से
ही बंधे होते हैं। हम पूछते हैं, दिखाई पड़े, छू लूं हाथ से, कान से सुन लूं। हमारे प्रश्न क्या हैं? हमारी इंद्रियों के अनुभव से उठते हैं। और ध्यान रहे, इंद्रियों के अनुभव से जो प्रश्न उठते हैं, वे उसके किनारे भी नहीं पहुंच पाएंगे; क्योंकि वह अतींद्रिय है। कहीं भी उसे छू नहीं पाएंगे। हमारा अनुभव हमारे प्रश्न का आधार है। और जो हमने जाना ही नहीं है, उसके संबंध में हमारे प्रश्नों का मूल्य क्या है? यह बड़ी कठिन बात मालूम पड़ेगी। जिसे हम जानते ही नहीं, उसके संबंध में हम जिज्ञासा भी क्या कर सकते हैं? समझें, किसी अपरिचित देश में आप जाएं, जहां गुलाब का फूल न होता हो। फूल ही न होता हो। और लोगों से आप गुलाब के फूल की चर्चा करें, तो वहां के लोग पूछें, प्रश्न उठाएं--उनके अपने अनुभव से। आप कहें बहुत सुंदर होता है, तो वे एक हीरा आपके सामने रख दें और कहें ऐसा सुंदर? तो आपको कठिनाई शुरू होगी। और अगर आप कहें ऐसा सुंदर नहीं, तो वे कहें कि फिर सौंदर्य का मतलब ही क्या रहा? और आप कहें कि हां, थोड़ी दूर तक कह सकते हैं कि ऐसा ही सुंदर, तो वे पूछेंगे, वह नष्ट तो नहीं होता? क्योंकि हीरा तो टिकता है। आप कहें, नहीं, वह सुबह खिलता है, सांझ समाप्त हो जाता है। तो वे कहें, यह भी कोई बात हुई? यह भी कोई सौंदर्य हुआ?
आप लाख सिर मारें और उनसे कहें कि यह कुछ भी सौंदर्य नहीं है, क्योंकि
यह हीरा तो मुर्दा है, मरा हुआ है; फूल जिंदा सौंदर्य है, जीवित होता है; पर

आप उनको न समझा सकेंगे। और उनके जितने प्रश्न होंगे, उनके अपने अनुभव से उठे होंगे।
ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं, जो भाषा में संगत मालूम पड़ें, अस्तित्व में व्यर्थ हों। मैं पूछ सकता हूं आपसे कि हरे रंग की सुगंध क्या होती है? भाषा में बिल्कुल संगत है। अगर किसी आदमी ने रंग न देखा हो, अंधा आदमी हो, लेकिन सुगंध का प्रेमी हो और आप उससे कहें कि हरा रंग बड़ा सुंदर होता है, तो वह आदमी पूछे कि हरे रंग में सुगंध कौन सी होती है? उसका अनुभव सुगंध का है, उसका प्रेम सुगंध से है। आंख का अंधा है, हरा रंग उसने देखा नहीं। उसका प्रश्न गलत नहीं है; क्योंकि वह अपने ज्ञात से आपके अज्ञात का संबंध बना रहा है। यही तो जानने की और समझने की प्रक्रिया है। वह पूछता है, हरे रंग की सुगंध कैसी होती है?
आप कहेंगे, इररेलेवेंट पूछते हो, असंगत पूछते हो। हरे रंग का सुगंध से क्या लेना-देना? तो वह आदमी कहेगा, जब सुगंध से ही लेना-देना नहीं, तो हरे रंग से हमारा क्या लेना-देना? उसका अनुभव सुगंध का है। तो वह पूछ सकता है कि क्या हरे रंग में दुर्गंध होती है?
उसकी जिज्ञासाएं संगत हैं, फिर भी जिज्ञासाएं हैं।
लाओत्से कहता है, वह हमारी जिज्ञासा की पकड़ के बाहर है; क्योंकि जिज्ञासा तो उठेगी ज्ञात से।
तो जिज्ञासा उपयोगी है, अगर अज्ञात की खोज करनी हो। अज्ञेय की खोज करनी हो, तो जिज्ञासा व्यर्थ है। इसलिए जिज्ञासा दर्शन का आधार है, विज्ञान का भी। लेकिन जिज्ञासा धर्म का आधार नहीं है।
तो हमने अपने मुल्क में एक नया शब्द खोजा है। वह है मुमुक्षा, जिज्ञासा नहीं। वह धर्म की आधारशिला है। हम प्रश्न पूछते नहीं; क्योंकि प्रश्न तो हमारे अनुभव से आते हैं। और वह हमारे अनुभव के बाहर है अब तक। उसके संबंध में हमारे प्रश्न असंगत हैं। हम उसके संबंध में कुछ भी नहीं पूछते। हम अपने संबंध में कुछ पूछते हैं। तब मुमुक्षा शुरू हो जाती है। इसे थोड़ा समझ लें।
अंधा आदमी है। वह पूछता है कि क्या हरे रंग में सुगंध होती है? यह जिज्ञासा है। अंधा आदमी पूछता है कि मुझे तो दिखाई नहीं पड़ता, मुझे दिखाई कैसे पड़ सकता है, ताकि तुम जिस रंग की बात कर रहे हो उसे मैं जान पाऊं? यह मुमुक्षा है--मुझे दिखाई कैसे पड़ सकता है? हरा रंग कैसा है, यह जिज्ञासा है। मैं कैसा हूं और कैसा हो जाऊं, ताकि हरा रंग मुझे दिखाई पड़ सके, जिसकी तुम खबर लाए हो? यह मुमुक्षा है।
जिज्ञासा विचार में ले जाती है, मुमुक्षा साधना में। जिज्ञासा चिंतन
को जन्म देती है, मुमुक्षा ध्यान को। जिज्ञासु विचारों में ही भटकता रह जाता है, जहां तक धर्म का संबंध है। मुमुक्षु उस मंजिल पर पहुंच जाता है, जो जिज्ञासा की पकड़ के बाहर है। जो विचार से ही सत्य को समझने चलेगा, वह असफल होगा। जो विचार से ही सत्य को जानने की चेष्टा करेगा, वह कुछ भी न जान पाएगा। क्योंकि विचार हमारा अंधापन है। जो निर्विचार हो सकेगा, उसके लिए, वह जो दुर्ग्राह्य है, तत्क्षण प्रकट हो जाता है, निकट हो जाता है, भीतर-बाहर सब तरफ मौजूद हो जाता है।
आज इतना ही। पर पांच मिनट रुकें, कीर्तन में सम्मिलित हों और फिर जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
तैंतीसवां प्रवचन

अक्षय व निराकार, सनातन व शून्यता की प्रतिमूर्ति

Chapter 14 : Part 2

Pre-Historic Origins

Neither by its rising is there light,
Nor by its sinking is there darkness.
Unceasing, continuous, it can not be defined.
And it reverts again to the realm of nothingness.
That is why it is called the form of the Formless; The image of nothingness.
That is why it is called the elusive,
Meet it, and you do not see its face;
Follow it, and you do not see its back.
He who holds fast to the Tao of old,
In order to manage the affairs of now,
Is able to know the primeval beginnings, Which are the continuity (tradition) of Tao.

अध्याय 14 : खंड 2

पूर्व-ऐतिहासिक स्रोत

न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश,
न उसके डूबने पर होता अंधेरा।
ऐसा है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य,
जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।
और पुनः-पुनः वह शून्यता के आयाम में प्रविष्ट हो जाता है।
इसीलिए निराकार ही उसका आकार कहा जाता है।
वह शून्यता की प्रतिमूर्ति है।
इन सब कारणों से उसे दुर्गम्य भी कहा जाता है।
उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता;
उसका अनुगमन करो, फिर भी उसकी पीठ दिखाई नहीं पड़ती।
वर्तमान कार्यों के समापन के लिए जो व्यक्ति पुरातन व सनातन ताओ को सम्यकरूपेण धारण करता है, वह उस आदि स्रोत को जानने में सक्षम हो जाता है जो कि ताओ का सातत्य है।

बह फूल खिलते हैं, सांझ मुरझा जाते हैं। सुबह सूरज निकलता है; सांझ ढल जाता है। जन्म है और मृत्यु में समाप्ति हो जाती है। प्रत्येक घटना शुरू होती है और अंत होती है। लेकिन अस्तित्व सदा है। अस्तित्व की न कोई सुबह है, न कोई सांझ। अस्तित्व का न कोई जन्म है और न कोई मृत्यु। लाओत्से इस सूत्र में अस्तित्व की इस जन्म-मरणहीन, अनादि, अनंत सातत्य के संबंध में सूचना दे रहा है।
जो भी हम जानते हैं, उसे हम सीमाओं में बांध सकते हैं। कहीं होता है प्रारंभ और कहीं अंत हो जाता है। और जो भी इस सीमा में बंध सकता है, उसकी परिभाषा हो सकती है। परिभाषा का अर्थ ही है कि जिसे हम विचार की परिधि में घेर लें। लेकिन जो शुरू न होता हो, अंत न होता हो, उसकी परिभाषा असंभव है। क्योंकि हम विचार की परिधि में उसे घेर न पाएंगे। कहां से खींचें रेखा?

कहां करें रेखा का अंत? इसलिए अस्तित्व की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। अस्तित्ववान वस्तुओं की परिभाषा हो सकती है, स्वयं अस्तित्व की नहीं। इसे हम ऐसा समझें। और यह सूत्र कठिन है; तो बहुत-बहुत दरवाजों से इसके रहस्य को खोलना पड़े। एक फूल दिखाई पड़ता है; कहते हैं सुंदर है। चांद निकलता है; कहते हैं सुंदर है। कोई चेहरा प्रीतिकर लगता है; कहते हैं सुंदर है। कोई कविता मन को भाती है; कहते हैं सुंदर है। कोई संगीत हृदय को स्पर्श करता है; कहते हैं सुंदर है। लेकिन क्या कभी आपने सौंदर्य को देखा? कोई गीत सुंदर होता है, कोई चेहरा सुंदर होता है, कोई आकाश में तारा सुंदर होता है, कोई फूल सुंदर होता है। आपने वस्तुएं देखीं जो सुंदर हैं, लेकिन कभी आपने सौंदर्य को देखा?
तब एक बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो जाएगी। अगर आपने सौंदर्य को कभी नहीं देखा, तो आप किसी वस्तु को सुंदर कैसे कहते हैं?
फूल में आपको सौंदर्य दिखता है; लेकिन आपने सौंदर्य को कभी नहीं देखा। फूल का सौंदर्य सुबह खिलता है, सांझ खो जाता है। एक चेहरे में सौंदर्य दिखता है। आज है, कल तिरोहित हो जाता है। जो आज तक था और कल खो जाएगा, जो सुबह दिखा था और सांझ विसर्जित हो जाएगा, उसे आपने कभी वस्तुओं से अलग देखा? कभी आपने शुद्ध सौंदर्य देखा है?
आपने सुंदर चीजें देखी हैं, सौंदर्य नहीं देखा। तो फूल की परिभाषा हो सकती है। उसकी सीमा है, आकार है, पहचान है। लेकिन सौंदर्य की परिभाषा नहीं हो सकती। उसकी कोई सीमा नहीं, उसका कोई आकार नहीं, उसकी कोई पहचान नहीं। और फिर भी हम पहचानते हैं! नहीं तो फूल को सुंदर कैसे कहिएगा?
अगर फूल ही सुंदर है, तो फिर रात का चांद सुंदर न हो सकेगा। फूल और चांद में क्या संबंध है? और अगर चांद ही सुंदर है, तो फिर किन्हीं आंखों को सुंदर न कह सकिएगा। आंख और चांद में क्या लेना-देना है? सौंदर्य कुछ है, जो फूल में भी है, चांद में भी है, आंख में भी है। सौंदर्य कुछ अलग है; फूल से भिन्न है, चांद से भिन्न है, आंख से भिन्न है। और आंख जो अभी सुंदर मालूम पड़ रही थी, क्रोध से भर जाए और असुंदर हो जाएगी। घृणा से भर जाए और असुंदर हो जाएगी। आंख वही रहेगी, लेकिन कुछ खो जाएगा।
तो निश्चित ही सौंदर्य न तो फूल है, न चांद है, न आंख है। सौंदर्य कुछ
और है। लेकिन सौंदर्य को कभी देखा? आमने-सामने कभी देखा सौंदर्य को? कभी सौंदर्य से मुलाकात हुई?
सौंदर्य से कोई मुलाकात नहीं हुई। सौंदर्य को कभी जाना नहीं, देखा नहीं। सौंदर्य की परिभाषा असंभव है। फिर भी सौंदर्य को हम पहचानते हैं। और जब फूल में उतरता है वह रहस्य, वह रहस्य का लोक जब फूल में समाविष्ट होता है, तो हम कहते हैं फूल सुंदर है। वही रहस्य जब किन्हीं आंखों में समाविष्ट हो जाता है, तो हम कहते हैं आंखें सुंदर हैं। वही रहस्य किसी गीत में प्रकट होता है, तो हम कहते हैं गीत सुंदर है।
लेकिन सौंदर्य क्या है?
फूल की परिभाषा हो सकती है कि फूल क्या है; चांद की परिभाषा हो सकती है
कि चांद क्या है; आंख की परिभाषा हो सकती है कि आंख क्या है। लेकिन सौंदर्य क्या है? वह अपरिभाष्य है, इनडिफाइनेबल है। क्यों? उसकी परिभाषा क्यों नहीं हो पाती? पहचानते हम उसे हैं। किसी अनजान रास्ते से उससे हमारा मिलना भी होता है। किसी अनजान रास्ते से हमारे हृदय के भीतर भी वह प्रविष्ट हो जाता है। किसी अनजान रास्ते से हमारी आत्मा उससे आंदोलित होती है। लेकिन क्या है? जब बुद्धि उसे पकड़ने जाती है, तो हम पाते हैं वह खो गया। करीब-करीब ऐसे है, जैसे कि अंधेरा भरा हो इस कमरे में। और हम प्रकाश लेकर जाएं खोजने कि अंधेरा कहां है, और अंधेरा खो जाए! शायद जहां भी असीम शुरू होता है, वहीं बुद्धि को लेकर जब हम जाते हैं, तो असीम तिरोहित हो जाता है। क्योंकि बुद्धि सीमित को पहचान सकती है। बुद्धि सीमित को ही पहचान सकती है। जहां बुद्धि तय कर सके कि यहां होती है बात शुरू और यहां होती है समाप्त, रेखा खींच सके, एक परिधि बना सके, खंड अलग निर्मित कर सके, तो फिर बुद्धि पहचान पाती है।
इसलिए बुद्धि रोज-रोज छोटे से छोटे खंड निर्मित करती है। जितना छोटा खंड हो, बुद्धि की पकड़ उतनी गहरी हो जाती है। इसलिए विज्ञान चीजों को

तोड़ता है। क्योंकि विज्ञान बुद्धि की खोज है। और इसलिए विज्ञान परमाणु पर पहुंच गया। परमाणु पर उसकी पकड़ गहरी है। विराट पर बुद्धि की पकड़ नहीं बैठती। जितना छोटा हो, जितना छोटा हो, जितना टुकड़ा हो, बुद्धि उसे ठीक से घेर लेती है।
परमाणु को भी तोड़ लिया गया है, अब इलेक्ट्रान पर या न्यूट्रान पर बुद्धि की पकड़ गहरी है। और बुद्धि की कोशिश यह है कि न्यूट्रान से भी नीचे उतरा जा सके, इलेक्ट्रान से भी नीचे उतरा जा सके। जितना छोटा हो खंड, उतना परिभाष्य, डिफाइनेबल हो जाता है। हम उसे रख सकते हैं आंख के सामने। जितना हो विराट, जितना हो असीम, हमारी आंखें ओर-छोर खोजती हैं, कहीं कोई सीमा नहीं मिलती, हम भटक जाते हैं। बुद्धि नाप नहीं पाती और कठिनाई हो जाती है। लाओत्से कहता है, "न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा; ऐसा है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य, जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।"
वह सदा है। सूरज उगते रहते हैं और डूबते रहते हैं। फूल खिलते हैं और बिखरते रहते हैं। जीवन पैदा होता है और लीन हो जाता है। सृष्टियां बनती हैं और विसर्जित हो जाती हैं। विश्व निर्मित होता है और प्रलय को उपलब्ध हो जाता है। वह सदा है। कुछ है--हम उसे कोई भी नाम दें--कुछ है, जो पैदा नहीं होता, मरता नहीं; जो सदा है। वह है शुद्ध अस्तित्व, प्योर एक्झिस्टेंस। जैसे मैंने सौंदर्य के लिए कहा, वह सिर्फ इसीलिए कहा ताकि आप अस्तित्व को समझ सकें। हमने कभी अस्तित्व नहीं देखा। कभी हमने एक दरख्त देखा है, जिसका अस्तित्व है। कभी एक नदी देखी, जिसका अस्तित्व है। कभी एक आदमी देखा, जिसका अस्तित्व है। कभी एक सूरज देखा, जिसका अस्तित्व है। लेकिन अस्तित्व हमने कभी नहीं देखा। वस्तुएं देखी हैं, जो हैं।
लेकिन जो वस्तुएं हैं, वे खो जाएंगी। हम कहते हैं, टेबल है। इसे थोड़ा समझें। दर्शन के लिए गहनतम प्रश्नों में से एक है। और मनुष्य की प्रतिभाओं में जो श्रेष्ठतम शिखर थे, उन्होंने इसके साथ बड़ा ऊहापोह किया है। एक टेबल है; हम कहते हैं, है। एक आदमी है; हम कहते हैं, है। एक मकान है; हम कहते हैं, है। जैसे मैंने कहाः फूल सुंदर है, तारा सुंदर है, चेहरा सुंदर है; टेबल है, मकान है, आदमी है, सूरज है। यह "है", अस्तित्व क्या है? क्योंकि टेबल में भी है, सूरज में भी है, आदमी में भी है। हमने आदमी देखा, सूरज देखा, टेबल देखी; लेकिन वह जो है-पन है, इ.जनेस, वह जो अस्तित्व है, वह हमने कभी नहीं देखा।
समझें, टेबल को हमने नष्ट कर दिया। हमने कहा था, टेबल है। दो चीजें थींः टेबल थी और होना था। हमने टेबल को नष्ट कर दिया। क्या हमने होने को भी नष्ट कर दिया? फूल था। कहते थे, है; अब कहते हैं, नहीं है। फूल को हमने मिटा दिया। लेकिन फूल के भीतर जो होना था, अस्तित्व था, क्या उसे भी हमने मिटा दिया?
अस्तित्व को हमने कभी देखा नहीं। हमने सिर्फ चीजें देखी हैं। एक आदमी है, मर गया। तो आदमी है, इसमें दो चीजें थीं। आदमी थाः हड्डी, मांस-मज्जा थी, शरीर था, मन था। और होना था, अस्तित्व था। हड्डी टूट गई, शरीर गल गया; मिट्टी हो गई। लेकिन "है", वह जो होना था, क्या वह खो गया? क्या वह होना भी मिट गया?
जब हम एक फूल को मिटा देते हैं, तो ध्यान रखना, हम केवल फूल को मिटाते हैं, सौंदर्य को नहीं। जिस सौंदर्य को हमने देखा नहीं, उसे हम मिटा कैसे सकेंगे? जिस सौंदर्य को हम कभी पकड़ नहीं पाए, उसे हम मिटा कैसे सकेंगे? जिस सौंदर्य को हमने कभी छुआ भी नहीं, उसकी हम हत्या कैसे कर सकेंगे? जो सौंदर्य हमारी इंद्रिय की किसी भी पकड़ में कभी नहीं आया, उसे हम इंद्रियों के द्वारा समाप्त कैसे कर सकेंगे?
हम फूल को मिटा सकते हैं। हम एक आंख को फोड़ डाल सकते हैं। लेकिन उस सौंदर्य को नहीं, जो आंख से झलका था। वह आंख से अलग है। हम अस्तित्व को नहीं मिटा पाते हैं। सूरज बनते हैं, बिखर जाते हैं। सृष्टियां आती हैं, खो जाती हैं। आदमी पैदा होते हैं, कब्रें बन जाती हैं। लेकिन उनके भीतर जो होना था, जो अस्तित्व था; वह सदा, वह सदा ही प्रवाहित बना रहता है।

लाओत्से कहता है, न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा। क्योंकि न वह प्रकट होता है और न वह डूबता है। जो डूबता है, जो प्रकट होता है, इससे उसे मत पहचानना। वह इससे गहरा है। सूरज के प्रकट होने पर भी जो प्रकट नहीं होता और सूरज के डूबने पर भी जो नहीं डूबता, वही है। फूल के होने पर भी जो होता नहीं और फूल के न हो जाने पर भी जो मिटता नहीं, वही है। जन्म के साथ जिसका जन्म नहीं होता और मृत्यु के साथ जिसकी मृत्यु नहीं होती, वही है।
जन्मता है एक व्यक्ति, तो हम सीमा-रेखा खींच सकते हैं जन्म की। राम नाम का व्यक्ति पैदा हुआ, तो हमने सीमा खींची--इस दिन पैदा हुआ। फिर वह व्यक्ति मरा, तो हमने सीमा खींची--इस दिन मरा। यह राम नाम के व्यक्ति की सीमा है, लेकिन जीवन की नहीं।
इसमें थोड़ा हम गहरे उतरें, तो शायद हमें पता चले।
किस दिन को आप जन्म-दिन कहते हैं? इसमें झगड़े हैं। जिस दिन बच्चा पैदा होता है वह जन्म-दिन है या जिस दिन बच्चे का गर्भाधान होता है वह जन्म-दिन है? आमतौर से जिस दिन बच्चा मां के पेट से बाहर आता है, हम कहते हैं जन्म-दिन है। लेकिन जिस दिन बच्चा मां के पेट में आता है वह? तो थोड़ा पीछे हटें। ठीक जन्म-दिन तो वही है जिस दिन बच्चा मां के पेट में आता है। जन्म तो उसी दिन हो गया।
लेकिन थोड़ा और गहरे प्रवेश करें। मां के पेट में जिस दिन बच्चे का निर्माण होता है, पहला कोश जब निर्मित होता है, तो उसमें का आधा हिस्सा तो पिता में जिंदा था बहुत पहले से और आधा हिस्सा मां में जिंदा था बहुत पहले से। उन दोनों के मिलने से जन्म की शुरुआत हुई विज्ञान के हिसाब से। तो यह जन्म की घटना दो जीवन, जो पहले से ही मौजूद थे, उनके मिलन की घटना है। यह शुरुआत नहीं है, यह प्रारंभ नहीं है। क्योंकि जीवन दोनों मौजूद थे; एक पिता में छिपा था, एक मां में छिपा था। उन दोनों के मिलने से यह जीवन शुरू हुआ। इस जीवन की, राम नाम के जीवन की शुरुआत होगी यह। लेकिन जीवन की शुरुआत नहीं है। क्योंकि जीवन पिता में छिपा था, मां में छिपा था, मौजूद था। पूरी तरह जीवित था। तो यह प्रकट हुआ, मिलने से प्रकट हुआ। लेकिन मौजूद था। लेकिन और पीछे चलें। जो पिता में छिपा है, वह पिता के मां और पिता में छिपा था। और चलते जाएं पीछे। जो मां में छिपा है, वह मां के पिता और मां में छिपा था। यह जीवन कब शुरू हुआ? आपका जन्म आपका जन्म हो सकता है, लेकिन आपके भीतर जो जीवन है, उसका जन्म नहीं है। उसे हम लौटाए जाएं पीछे, तो समस्त इतिहास, ज्ञात-अज्ञात, समाविष्ट हो जाएगा। अगर कभी कोई पहला आदमी जमीन पर रहा होगा, तो आप उसके भीतर जिंदा थे। लेकिन वह पहला आदमी भी कैसे हो सकता है? पहले आदमी के होने के लिए भी जरूरी है कि जीवन उसके पहले रहा हो। तो जीवन एक सातत्य हो गया।
विज्ञान के हिसाब से थोड़ी सरल है बात; धर्म के हिसाब से और थोड़ी जटिल है। क्योंकि धर्म कहता है कि मां और पिता से मिल कर जो परमाणु निर्मित हुआ, वह तो केवल देह का जीवन है; और आत्मा प्रवेश करेगी उसमें।
इसलिए बुद्ध के पिता ने जब बुद्ध से कहा कि मैंने तुझे पैदा किया, तो बुद्ध ने कहा कि आपसे मैं पैदा हुआ, आपने मुझे पैदा नहीं किया। मैं आपसे आया हूं, आप मेरे लिए द्वार बने, मार्ग बने; लेकिन मैं आपसे पैदा नहीं किया गया हूं। आप नहीं थे, तब भी मैं था। आपने मेरे लिए मार्ग दिया, मैं प्रकट हुआ हूं। लेकिन मेरी यात्रा बहुत भिन्न है।
पिता नाराज थे। पिता नाराज थे, क्योंकि बुद्ध भिक्षा मांग रहे थे उस गांव में, जो उनकी संपदा थी; राज्य उनका था, उस गांव में भिक्षा-पात्र लेकर भिक्षा मांग रहे थे। तो बुद्ध के पिता ने कहा था कि सिद्धार्थ, हमारे परिवार में कभी किसी ने भिक्षा नहीं मांगी। बुद्ध ने कहा था, आपके परिवार का मुझे कुछ पता नहीं; लेकिन जहां तक मुझे अपनी पिछली यात्राओं का पता है, मैं बहुत पुराना भिखारी हूं। मैं इस जन्म के पहले भी भीख मांगा हूं, उस जन्म के पहले भी भीख मांगा हूं, जहां तक मुझे मेरा पता है, मैं बहुत पुराना भिखारी हूं। आपका मुझे कुछ पता नहीं है।
वे अलग-अलग बातें कर रहे थे, जिनका कहीं मेल नहीं होगा। बुद्ध के पिता वैज्ञानिक बात कर रहे थे; बुद्ध धार्मिक बात कर रहे थे।

अगर धर्म से देखें, तो जीवन की जो घटना मां के पेट में घट रही है आज, वह
भी अनंत है। और आत्मा की जो घटना उस जीवन में प्रविष्ट हो रही है, वह भी अनंत है। दो अनंत का मिलन हो रहा है मां के गर्भ में। मैं सदा था इस अर्थ में। मेरे शरीर का कण-कण सदा था। मेरी आत्मा का कण-कण सदा था। ऐसा कोई भी क्षण नहीं था इस अस्तित्व में, जब मैं नहीं था या जब आप नहीं थे। रूप कुछ भी रहे हों, आकृतियां कुछ भी रही हों, नाम कुछ भी रहे हों; ऐसा कोई क्षण कभी नहीं था अस्तित्व में, जब आप नहीं थे; और ऐसा भी कोई क्षण कभी नहीं होगा, जब आप नहीं होंगे। लेकिन बहुत बार जन्मे आप, बहुत बार मरेंगे।
लाओत्से कहता है, "न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा; ऐसा है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य, जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।"
आपकी परिभाषा हो सकती है कि आपका नाम क्या, आपका गांव क्या, आपका पता- ठिकाना क्या, आपकी परिभाषा हो सकती है। लेकिन उसकी कैसे होगी परिभाषा, जो आप में प्रकट हो रहा है--शाश्वत, अनंत। उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती-- क्या होगा उसका गांव! क्या होगा उसका नाम!
बुद्ध से कोई पूछता है कि आपका नाम क्या है? वे घर छोड़ कर चले गए हैं। अपना राज्य छोड़ दिया है, ताकि पहचानने वाले लोग न मिलें। अपरिचित स्थानों में भटक रहे हैं। कोई भी उन्हें देख कर आकर्षित हो जाता है। अप्रतिम उनका सौंदर्य है। भिखारी भी हों, तो भी उनका सम्राट होना छिप नहीं सकता। वह हर तरह से प्रकट हो जाता है। कोई भी राहगीर उत्सुक हो जाता है पूछने को कि आपका नाम क्या? कौन हैं आप?
तो बुद्ध कहते हैं, किस जन्म का नाम तुम्हें बताऊं? किस जन्म का तुम पूछते हो? क्योंकि मेरे हुए बहुत जन्म और बहुत रहे मेरे नाम। किस जन्म की तुम खबर पूछते हो? कभी मैं आदमी भी था, और कभी मैं पशु भी था, और कभी मैं वृक्ष भी था। कौन सी तुम्हें खबर दूं?
स्वभावतः पूछने वाला आदमी समझेगा कि पागल से पूछ लिया। लेकिन बुद्ध ठीक कह रहे हैं, किस जन्म की खबर दें? किस नाम की खबर दें? जिसे जीवन का बोध शुरू हो जाए, उसे बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी, क्योंकि फिर कोई परिभाषा काम नहीं करती। कोई परिभाषा काम नहीं करती। जैसे अनंत होने लगती है व्यवस्था, वैसे ही परिभाषाएं टूटने लगती हैं।
अक्षय है जीवन, कभी क्षीण नहीं होता। घटनाएं घटती हैं, बिखर जाती हैं; अस्तित्व, अस्तित्व बना रहता है। पहली बात। परिभाष्य क्यों नहीं है? क्योंकि असीम है। ओर-छोर खोजना संभव नहीं है। इसलिए नहीं कि हमारी खोजने की व्यवस्था कमजोर है, इसलिए कि ओर-छोर हैं ही नहीं।

ईसाइयत ने इस पृथ्वी के जन्म का ऐतिहासिक सूत्रपात माना है। खोजियों ने, ईसाई खोजियों ने तय ही कर रखा कि चार हजार साल पहले, ईसा से चार हजार चार साल पहले, इस पृथ्वी की शुरुआत हुई। और जिन्होंने मेहनत की उन्होंने यह भी तय कर दिया कि सुबह नौ बजे चार हजार चार साल पहले। और जिन्होंने खोज की उन्होंने मिनट और सेकेंड भी तय कर दिए।
लेकिन विज्ञान से फिर बड़ी कठिनाई हुई। ईसाइयत को पश्चिम में जो बड़े
से बड़ा नुकसान पहुंचा, वह उसकी इन डेफिनीशंस, परिभाषाओं की वजह से पहुंचा, ये सीमाओं की वजह से पहुंचा। क्योंकि विज्ञान ने सिद्ध किया कि यह तो बचकानी बात है। यह पृथ्वी बहुत पुरानी है, कम से कम चार अरब वर्ष पुरानी है। फिर सारे प्रमाण इकट्ठे हो गए कि चार हजार साल की तो बात बिल्कुल ही बेकार है। और दिन-तारीख और समय तय करना सब नासमझियां हैं। ईसाइयत को बहुत धक्का पहुंचा इस बात से, हालांकि धर्म का इससे कोई संबंध न था।
अगर धर्म को हम ठीक से खोजने चलें, तो धर्म कभी भी तय नहीं कर सकता कि कहां चीजें शुरू होती हैं और कहां समाप्त होती हैं। धर्म तो मानता ही यह है कि जो है, वह न शुरू होता और न समाप्त होता। अस्तित्व अनादि है और अनंत है। इसलिए ताओ से, लाओत्से के विचार से विज्ञान का कोई विरोध नहीं हो सकता। क्योंकि लाओत्से यह कह रहा है कि हम अक्षय अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। यह कभी शुरू नहीं हुआ और कभी समाप्त नहीं होगा। चार हजार चार साल पहले दुनिया शुरू हुई, यह तो बचकानी बात हो गई। लेकिन जो कहते हैं कि

चार अरब वर्ष पहले शुरू हुई, यह भी बचकानी बात है। सिर्फ समय को लंबा कर देने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। चार हजार साल हो कि चार अरब वर्ष हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लाओत्से तो कहेगा कि चीजें इस जगत में शुरू हो ही नहीं सकतीं। अस्तित्व सदा है। हां, रूप बदल सकते हैं। रूप बदल सकते हैं। रूप नए हो सकते हैं; पुराने हो सकते हैं। आकृतियां बदल सकती हैं। लेकिन वह जो छिपा है आकृतियों के भीतर, वह सदा है, वह सतत है।
"और पुनः-पुनः वह शून्यता के आयाम में प्रविष्ट हो जाता है।"
जटिलता और बढ़ जाती है परिभाषा की। क्योंकि अस्तित्व, जैसा हम आमतौर
से समझते हैं, अस्तित्व का मतलब होता है होना। लाओत्से के लिए न होना भी अस्तित्व है। लाओत्से के लिए होना और न होना अस्तित्व के दो पहलू हैं। तो जब लाओत्से या बुद्ध जैसे लोग कहते हैं नथिंगनेस, न होना, तो हमें बड़ी भ्रांति हो जाती है। हम समझते हैं उनका मतलब है कि जब वे कहते हैं नथिंगनेस, न होना, तो उसका मतलब है कि कुछ भी नहीं है। भूल हो जाती है। बुद्ध या लाओत्से जैसे व्यक्तियों के लिए न-होना अस्तित्व का एक ढंग है। प्रकट होना, अप्रकट होना एक ही चीज की दो व्यवस्थाएं हैं।
मैं बोलता हूं; फिर मैं मौन हो जाता हूं। अगर हम बुद्ध से पूछें तो बुद्ध कहेंगे, बोलना और मौन होना एक ही शक्ति के दो ढंग हैं। वह शक्ति कभी बोलती और कभी मौन हो जाती। मौन होने में वह शक्ति मिट नहीं जाती जो बोलती थी, सिर्फ मौन हो जाती है। न होना होने का अप्रकट हो जाना है, मिट जाना नहीं।
इसे ठीक से समझ लें तो बहुत सी बातें साफ हो सकेंगी। न होना मिट जाना नहीं है। क्योंकि लाओत्से की दृष्टि है कि जगत में मिट तो कुछ भी नहीं सकता। मिट कहां सकता है?
अब तो विज्ञान भी कहता है कि कोई भी चीज मिटाई नहीं जा सकती। कैसे मिटाइएगा? एक रेत के छोटे से कण को मिटाने लगिए, तब आपको पता चलेगा कि आप मिटा नहीं सकते। आप पीस डालेंगे। तो जो इकट्ठा था, वह टुकड़ों में मौजूद हो जाएगा। आप जला डालेंगे। तो जो अभी अनजला था, वह जल कर राख हो जाएगा; लेकिन मौजूद रहेगा। आप मिटाइएगा कैसे? आप एक रूप को मिटा कर दूसरा रूप कर देंगे। और कुछ भी न कर पाएंगे। पानी है, तो बर्फ हो सकता है। बर्फ है, तो भाप हो सकती है। नदी सागर हो सकती है। सागर आकाश के बादल बन सकता है। बादल फिर नदियां बन जाएंगे। लेकिन आप मिटा नहीं सकते। पानी की एक बूंद भी मिटाई नहीं जा सकती है। मिटाना असंभव है।
यह बहुत मजे की बात है कि विज्ञान कहता है कि जब से अस्तित्व है, न तो
एक कण इसमें बढ़ा है और न एक कण घटा है। क्योंकि घटेगा कैसे? और बढ़ेगा कैसे? इतना परिवर्तन होता रहता है, लेकिन टोटल, समग्र उतना का ही उतना है। कितना विराट है अस्तित्व! कितना उपद्रव चलता है! तारे बनते हैं, मिटते हैं, बिखरते हैं। पृथ्वियां आती हैं, खो जाती हैं। कितने लोग, कितने जीवन आते हैं, चले जाते हैं। कितने महल, कितनी कब्रें, कितना शोरगुल, फिर कितना सन्नाटा! कितनी जीवन की उथल-पुथल और फिर कितनी मृत्यु की शांति! लेकिन इस जगत में एक कण न घटता है और न बढ़ता है। बढ़ेगा कहां से?
इस जगत का अर्थ हैः सब कुछ। इसके बाहर कुछ भी नहीं है। तो बढ़ेगा कहां से? और इस जगत का अर्थ हैः सब कुछ। तो घटेगा कैसे? क्योंकि इसमें से एक कण भी तो कहीं गिर नहीं सकता। जगत की समग्रता, टोटल, जोड़ सदा वही का वही है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। रूप बदलते रहते हैं; जो रूपायित है, वह वही का वही है। चीजें खो जाती हैं, विलीन हो जाती हैं, फिर भी अस्तित्व उतना का ही उतना है।
लाओत्से कहता है, "और वह पुनः-पुनः शून्यता के आयाम में प्रविष्ट होता है।"
यह जो अस्तित्व है, इसके दो आयाम हैंः इसके प्रकट होने का अर्थ है रूप में होना, इसके शून्य में होने का अर्थ है अरूप हो जाना। एक गीत मैं गाऊं, क्षण भर पहले तक वह गीत नहीं था। फिर मैंने गाया। वह गीत हुआ। फिर क्षण भर बाद सब खो गया। वह गीत फिर शून्य में समाविष्ट हो गया। एक फूल खिला। क्षण भर पहले वह नहीं था। सौंदर्य आया। सूरज की किरणों ने उस फूल को नहलाया। वह

फूल आनंद से नाचा। उस फूल ने अपने जीवन का गीत गाया। उस फूल ने सुगंध छोड़ी।
फिर सांझ कुम्हला गया। फिर गिर गया। फिर खो गया।
प्रत्येक वस्तु होती है और नहीं हो जाती है। लेकिन नहीं हो जाने का अर्थ मिट जाना नहीं है। नहीं हो जाने का अर्थ है लीन हो जाना, खो जाना वापस शून्य में। शून्य का अर्थ है अप्रकट हो जाना, अनमेनिफेस्ट हो जाना।
मेनिफेस्टेशन और अनमेनिफेस्टेशन, होना और न होना अस्तित्व के दो पहलू हैं।
एक बहुत अदभुत घटना है। लाओत्से से कोई मिलने आया है। वह नास्तिक है।
और वह कहता है कि ईश्वर नहीं है। और लाओत्से के पास पहले से ही कोई उसका शिष्य बैठा है। वह आस्तिक है। वह कहता है, ईश्वर है। लाओत्से कहता है, तुम दोनों सही हो; क्योंकि तुम दोनों ही ईश्वर के एक-एक रूप की चर्चा कर रहे हो। तुममें कोई विवाद नहीं है। तुममें कोई विरोध नहीं है। ईश्वर का एक रूप है होना और एक रूप है न होना। नास्तिक न होने की चर्चा कर रहा है, आस्तिक होने की चर्चा कर रहा है। और तुम दोनों सही हो और दोनों गलत; क्योंकि तुम दोनों ही अधूरी बातें कर रहे हो।
लाओत्से कहता है, ईश्वर है और ईश्वर नहीं है; यह दोनों एक साथ सत्य है। क्योंकि ये दोनों उसके होने के ढंग हैं। तो लाओत्से हमारे लिए मुश्किल हो जाता है। परिभाषा कठिन हो जाती है। कोई कहे, ईश्वर है; तो परिभाषा हो गई। कोई कहे, नहीं है; तो भी परिभाषा हो गई। दोनों निश्चित हैं। लाओत्से कहता है, ईश्वर है और नहीं है, दोनों। तो परिभाषा मुश्किल हो गई।
लेकिन लाओत्से ठीक कह रहा है। लाओत्से ठीक कह रहा है। न होना भी होने
का एक ढंग है--विरोध नहीं, विपरीत नहीं। यह अगर दिखाई पड़े, तो जन्म भी मेरे होने का एक ढंग है और मृत्यु भी मेरे होने का एक ढंग है। जन्म में मैं प्रकट होता; मृत्यु में मैं लीन होता। जागना भी मेरे होने का एक ढंग है; नींद भी मेरे होने का एक ढंग है। जागने में मैं गतिमान होता; नींद में मैं गतिशून्य हो जाता। जागने में मैं बाहर चलता; नींद में मैं भीतर चलने लगता। होश भी मेरे होने का एक ढंग है और बेहोशी भी मेरे होने का एक ढंग है। होश में मेरे भीतर हलन-चलन होता; बेहोशी में सब शांत हो जाता, होश भी शांत हो जाता।
हमारे मन में होने और न होने के बीच जो विरोध है, उसे तोड़ देना जरूरी है। तो ही लाओत्से समझ में आए। दोनों में कोई विपरीतता नहीं है, कोई शत्रुता नहीं है। दोनों एक ही बात के दो ढंग हैं। तब परिभाषा और कठिन हो गई। क्योंकि पुनः-पुनः वह शून्य में प्रविष्ट हो जाता है। अगर वह सदा बना रहे, तो भी हम उसकी परिभाषा कर सकते हैं। लेकिन वह कभी-कभी खो जाता है, न हो जाता है। तो परिभाषा और मुश्किल हो जाती है।
"इसीलिए उसे निराकार रूप में वर्णित किया जाता है। दैट्स व्हाय इट इ.ज काल्ड दि फार्म ऑफ दि फार्मलेस।"
इसीलिए निराकार ही उसका आकार कहा जाता है। उसका आकार ही निराकार होना है। वह इस ढंग से है कि आकार, रूप उसमें नहीं हैं। यह भी थोड़ा कठिन पड़ेगा; क्योंकि हमारे सोचने के सभी ढंग चीजों को विपरीत कर लेते हैं। और लाओत्से के सोचने, देखने का ढंग सभी चीजों को जोड़ लेना है।
हम जानते हैं उन लोगों को, जो सगुण ईश्वर को मानते हैं। वे कहते हैं,
वह आकारवान है, रूपवान है। हम जानते हैं उन लोगों को, जो निर्गुण ईश्वर को मानते हैं। जो कहते हैं, निराकार है, उसकी कोई आकृति नहीं। और कितना विवाद है उनमें!
इस्लाम निराकार को मानता है। तो उसने सारी दुनिया से आकार तोड़ने की कोशिश की। जहां-जहां मूर्ति हो, मिटा दो; क्योंकि ईश्वर का कोई आकार नहीं है। आकार मानने वाले लोग हैं। इस्लाम ने, मक्का के मंदिर में तीन सौ पैंसठ मूर्तियां थीं, उनको तोड़ डाला। वे तीन सौ पैंसठ मूर्तियां प्रत्येक दिन के लिए एक ईश्वर का आकार था। पूरे वर्ष के लिए आकार थे। प्रत्येक दिन ईश्वर का एक आकार था। बड़े कल्पनाशील लोग थे, जिन्होंने वह मंदिर बनाया होगा। प्रत्येक दिन के लिए ईश्वर की एक आकृति स्वीकृत थी। उस दिन उस आकृति की पूजा करते थे, दूसरे दिन दूसरी आकृति की, तीसरे दिन तीसरी आकृति की। बड़ी कीमत की बात थी। कीमत यह थी कि आकार में पूजते थे, फिर भी निराकार को मानते

रहे होंगे। नहीं तो रोज आकार बदलेगा कैसे? रोज आकार उसी का बदल सकता है, जो निराकार हो। जिसका आकार है, उसका रोज आकार कैसे बदलेगा? और जो रोज आकार बदल लेता है, उसका अर्थ ही यह हुआ कि उसका कोई निश्चित आकार नहीं है। इसलिए कोई भी आकार में वह प्रकट हो सकता है।
हमारे मुल्क में हिंदुओं ने हजारों आकार निर्मित किए हैं ईश्वर के।
एक वृक्ष के नीचे रखे हुए अनगढ़ पत्थर से लेकर खजुराहो की सुंदरतम मूर्तियों तक बहुत आकार निर्मित किए हैं। तैंतीस करोड़ देवताओं की कल्पना इस मुल्क में रही है। अनंत आकार निर्मित किए हैं।
आकार वालों में और निराकार वालों में बड़ा विरोध है। क्योंकि निराकार वाला सोच नहीं सकता कि जिसका कोई आकार नहीं, उसकी मूर्ति कैसे होगी? और आकार वाला यह नहीं सोच सकता कि जो सब इतने आकारों में प्रकट हुआ है, वह मूर्ति में क्यों प्रकट नहीं होगा? इतने आकारों में जो प्रकट हो रहा है, अनंत-अनंत आकारों में, तो वह मेरी पत्थर की मूर्ति में प्रकट होने में उसे क्या बाधा है? और पत्थर भी उसी का आकार है; अन्यथा पत्थर भी होगा कैसे? इसलिए बहुत बाद में आकार वालों ने मूर्तियां गढ़नी शुरू कीं। पहले तो कोई भी पत्थर पर सिंदूर लगा कर मूर्ति निर्मित हो जाती थी। सभी पत्थरों में वही है, सिंदूर लगाने से भक्तों के लिए प्रकट हो गया था। इसलिए अगर गांव में जाएं और अनगढ़ पत्थरों पर सिंदूर पुता देखें, तो ख्याल में नहीं आता कि यह देवता कैसे बन गया है? शायद गांव के लोग आकार न बना सकते होंगे, मूर्ति न खोद सकते होंगे। नहीं, ऐसा नहीं है। कोई भी पत्थर का कोई भी आकार वस्तुतः उसी का आकार है। सब आकार उसके हैं, तो कोई भी आकार काम दे देगा।
इन दोनों विचारों में विरोध दिखाई पड़ता है, क्योंकि हमें निराकार और आकार विपरीत शब्द मालूम पड़ते हैं। लाओत्से के लिए कहीं भी विरोध नहीं है। लाओत्से की मौलिक दृष्टि जीवन में अविरोध को देखना है--सभी जगह। गुण भी उसी के हैं; निर्गुण भी वही है। आकार भी वही है; निराकार भी वही है।
इसलिए बहुत बढ़िया वचन है यह, "दैट्स व्हाय इट इ.ज काल्ड दि फार्म ऑफ दि फार्मलेस।"
हम निराकार को ही उसका आकार कहते हैं। हम निर्गुणता को ही उसका गुण कहते हैं। न होने को भी हम उसका होना कहते हैं। उसकी अनुपस्थिति उसके उपस्थित होने का एक ढंग है। हिज एब्सेंस इ.ज जस्ट ए वे ऑफ हिज प्रेजेंस। तब परिभाषा और कठिन हो जाती है। क्योंकि अगर हम शब्दों की विपरीतता मानें, तो सीमाएं खींची जा सकती हैं। अगर हम कहें वह गुणवान है, तो निर्गुण से अलग कर सकते हैं। अगर हम कहें वह आकार वाला है, तो निराकार से अलग कर सकते हैं। या हम कहें कि वह निराकार है, तो आकार को काट सकते हैं और सीमा खींच सकते हैं। लेकिन अगर वह दोनों है, तो सीमा और भी धुंधली होकर खो जाती है। फिर परिभाषा और भी कठिन है।
"वह शून्यता की प्रतिमूर्ति है।"
मूर्ति तो सदा ही वस्तुओं की होती है। शून्यता की कैसे मूर्ति होगी? मूर्ति का तो अर्थ ही होता है आकार; निराकार की कैसे मूर्ति होगी? लेकिन लाओत्से कहता है, वह शून्यता की प्रतिमूर्ति है। विपरीत को आत्यंतिक रूप से जोड़ने की चेष्टा है। नहीं है वह, यह भी उसके होने का आयाम है।
हमें कठिन पड़ेगा। क्योंकि हमें साफ है, एक चीज है और एक चीज नहीं है। लेकिन कुछ चीजें हमारे अनुभव में भी हैं, जो हैं और जिनको होने की किसी भी भाषा में नहीं रखा जा सकता। आपके हृदय में प्रेम जाग आए किसी के प्रति। है, लेकिन बिल्कुल न होने जैसा है। यही तो प्रेमी की तकलीफ है कि जो वह अनुभव करता है, उसे कह भी नहीं पाता। जो वह अनुभव करता है, उसे बता भी नहीं पाता। जो वह अनुभव करता है, अगर प्रमाण मांगे जाएं, तो कोई भी प्रमाण नहीं है। अगर पूछें किसी प्रेमी से कि तू जिस प्रेम की इतनी बातें करता है, रातों जिसका चिंतन करता है, श्वास-श्वास जिससे तेरी भर गई है, रोएं-रोएं में जिसका तू कंपन अनुभव करता है, उसका प्रमाण कहां है? कहां है वह प्रेम? तो प्रेमी के पास कोई उपाय नहीं है कि वह बता सके कि प्रेम कहां है। और जिन बातों से वह बताने की कोशिश भी करता है, वे कितनी अधूरी हैं! और इसलिए प्रेमी अनुभव करता है कि कितनी असमर्थता है! कैसे प्रकट करे? गले से किसी को लगा लेता है, लेकिन कुछ भी तो प्रकट नहीं होता। हड्डियां हड्डियों को

छूती हैं और अलग हो जाती हैं। प्रेमी को भीतर अनुभव होता हैः नहीं, प्रकट नहीं हो पाया जो प्रकट करना था। प्रेमी अपनी जान भी दे दे, तो भी कुछ प्रकट नहीं हो पाता। जान ही दी जाती है, और भीतर लगता है कि जो प्रकट करना था, वह तो अप्रकट रह गया। प्रेम है; पर ऐसा है, जैसे न हो। प्रेम के होने का ढंग ठीक वैसा ही है, जैसा परमात्मा के होने का ढंग है।
इसलिए जीसस ने परमात्मा की परिभाषा में ही प्रेम शब्द का प्रयोग किया
और कहा कि लव इ.ज गॉड।
इसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा प्रेमी है। यह भ्रांति हुई। यह भ्रांति हुई और ईसाइयत ने परिभाषा की कि परमात्मा बहुत प्रेमपूर्ण है। नहीं, ईसा का यह मतलब नहीं है। क्योंकि परमात्मा को प्रेमपूर्ण कहने का कोई अर्थ ही नहीं है। क्योंकि जहां कोई घृणा न हो, वहां प्रेमपूर्ण कहने का कोई भी अर्थ नहीं है।
परमात्मा प्रेम है, इसका अर्थ यह है कि इस अस्तित्व में प्रेम ही एकमात्र हमारे पास प्रमाण है, जिसमें होना और न होना एक साथ संयुक्त है। है प्रेम; पूरे वजन से है। और एक आदमी अपने प्रेम के लिए अपने जीवन तक को खोने को तैयार है, तो उस आदमी को प्रेम अपने जीवन से भी ज्यादा वास्तविक मालूम पड़ता है, तभी। लेकिन उस प्रेम को है की परिभाषा में कहीं भी रखने का कोई उपाय नहीं। उसे कहीं भी बताया नहीं जा सकता कि यह है। इसलिए ईश्वर को जीसस ने प्रेम कहा, सिर्फ इसलिए कि आपके अनुभव से एक सूत्र जुड़ सके। लेकिन हमें तो प्रेम का ही कोई पता नहीं होता। तो फिर बहुत कठिनाई हो जाती है। बहुत कठिनाई हो जाती है।
इसलिए जो चिंतन-प्रक्रियाएं प्रेम से जितनी दूर होती हैं, उतनी ही ईश्वर को इनकार करने वाली हो जाती हैं। जैसे गणित, गणित ईश्वर को स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि प्रेम से बहुत दूर की व्यवस्था हो गई। विज्ञान, विज्ञान ईश्वर को स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि प्रेम से विज्ञान का क्या लेना-देना?
काव्य ईश्वर को स्वीकार कर सकता है; क्योंकि काव्य प्रेम के निकट है। नृत्य ईश्वर को स्वीकार कर सकता है; क्योंकि नृत्य प्रेम के निकट है। संगीत ईश्वर को स्वीकार कर सकता है; क्योंकि संगीत प्रेम के निकट है।
जो व्यवस्थाएं प्रेम के निकट हैं, वे ईश्वर को स्वीकार करने की तरफ पैर उठा सकती हैं। जो व्यवस्थाएं प्रेम से जितनी दूर हैं, उतनी ही सख्त होती चली जाती हैं और ईश्वर को मानना उन्हें कठिन होता चला जाता है।
क्योंकि उनके लिए न होना और होना एक साथ कैसे हो सकते हैं, यह बात ही ग्राह्य नहीं होती।
लाओत्से कहता है, शून्यता ही जैसे उसकी मूर्ति है। नहीं है, यही उसका होना है।
"इन सब कारणों से उसे दुर्गम्य कहा जाता है।"
ये सब कारण हैं कि वह समझ में नहीं आता, ऐसा कहा जाता है।
"उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता; उसका अनुगमन करो, फिर
भी उसकी पीठ दिखाई नहीं पड़ती।"
यह वचन बहुत गहन हैः "उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता।"
वह मिल भी जाए, तो भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता। उसका कोई चेहरा नहीं है। उसका चेहरा हो भी नहीं सकता। सभी चेहरे चूंकि उसके हैं, कोई भी चेहरा उसका नहीं हो सकता। अगर उसका भी अपना कोई चेहरा है, तो फिर सभी चेहरे उसके नहीं हो सकते।
लाओत्से की प्रसिद्ध पंक्तियां हैंः ही इ.ज नो व्हेयर, बिकाज ही इ.ज एवरी व्हेयर। ही इ.ज नो वन, बिकाज ही इ.ज एवरी वन। कहीं भी नहीं है वह, क्योंकि सब जगह वही है। कोई भी नहीं है वह, क्योंकि सभी में वही है।
उसका कोई चेहरा नहीं हो सकता; उससे मिलन हो सकता है। इसलिए जो लोग चेहरों से आविष्ट हो जाते हैं, वे उससे कभी भी नहीं मिल पाते। कोई राम से जकड़ जाता है। कोई कृष्ण से जकड़ जाता है। कोई जीसस से जकड़ जाता है। ये चेहरे हैं। इन चेहरों में भी वही है, लेकिन ये कोई भी चेहरे उसके नहीं या सभी चेहरे उसके हैं। इसे ध्यान रखना जरूरी है; अन्यथा भूल हो जाती है। तो राम का भक्त राम के चेहरे को ही खोजता रहता है। और वह चेहरा-मुक्त है, फेसलेस

है। यह चेहरा ही फिर बाधा बन जाता है। एक सीमा तक राम का चेहरा सहयोगी होता है, क्योंकि राम के चेहरे में उसकी झलक हमें मिली। फिर एक सीमा के बाद राम का चेहरा बाधा बन जाता है, क्योंकि अब चेहरा महत्वपूर्ण हो गया और झलक गैर-महत्वपूर्ण हो गई।
श्री अरविंद ने कहा है कि थोड़ी दूर तक जो सीढ़ियां हैं, थोड़ी देर के बाद बाधाएं बन जाती हैं। थोड़ी दूर तक जो मार्ग था, थोड़ी दूर के बाद वही भटकाव है।
इसलिए हर मार्ग को चुनना ध्यान रख कर कि कब तक वह मार्ग है। और यह बहुत कठिन है, यह बहुत कठिन है। हर सीढ़ी को चढ़ना तब तक, जब तक वह सीढ़ी हो। और जब रोकने लगे, तब उससे हट जाना।
राम का चेहरा सहयोगी है, क्योंकि राम के चेहरे में जितनी सरलता से उसका शून्य चेहरा प्रकट हुआ है, वैसे कम चेहरों में प्रकट हुआ है। राम का चेहरा उपयोगी है, क्योंकि राम के चेहरे से वह शून्य प्रकट हुआ है। लेकिन फिर चेहरा महत्वपूर्ण होता चला जाएगा। और धीरे-धीरे चेहरा इतना महत्वपूर्ण हो जाएगा कि उस चेहरे से फिर शून्य प्रकट नहीं होगा।
ऐसा निरंतर होता है। बुद्ध के पास जब कोई पहली दफा जाता है, तो बुद्ध
के चेहरे से कोई लगाव तो नहीं होता, बुद्ध की आंखों से कोई लगाव नहीं होता। लगावरहित अवस्था होती है। उस क्षण में बुद्ध की आंखों से वह दिखाई पड़ जाता है, जो बुद्ध के पार है। फिर लगाव शुरू होता है। फिर लगाव घना होता है। फिर आसक्ति निर्मित हो जाती है। फिर धीरे-धीरे वह जो पार है, वह दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। फिर तो बुद्ध का चेहरा ही हाथ में रह जाता है। इसलिए बुद्ध ने मरते वक्त कहा कि मेरी मूर्तियां मत बनाना। कारण यह नहीं था कि बुद्ध मूर्ति के विपरीत थे। कारण कुल इतना था कि बुद्ध को दिखाई पड़ा कि वह जो पीछे था, वह तो खोता जा रहा है। मेरा चेहरा महत्वपूर्ण होता जा रहा है। और धीरे-धीरे मेरा चेहरा ही हाथ में रह जाएगा।
लेकिन बुद्ध का चेहरा इतना प्यारा था कि बुद्ध की भी लोगों ने फिक्र नहीं की। कहा था उन्होंने, मेरी मूर्ति मत बनाना; लेकिन जितनी बुद्ध की मूर्तियां बनीं पृथ्वी पर उतनी किसी की मूर्तियां नहीं बनीं। इतनी मूर्तियां बनीं कि बहुत सी भाषाओं में मूर्ति के लिए शब्द ही बुद्ध से बन गया। जैसे उर्दू, अरबी, फारसी में बुत। बुत बुद्ध का अपभ्रंश है। इतनी मूर्तियां बनीं कि कुछ लोगों ने तो पहली जो मूर्ति देखी, वह बुद्ध की ही थी। इसलिए मूर्ति का मतलब ही बुत हो गया, बुत यानी मूर्ति। और बुत का मतलब है बुद्ध। और जिस आदमी ने कहा था मेरी मूर्ति मत बनाना! लेकिन वह चेहरा ऐसा प्यारा था कि उसे छोड़ना मुश्किल था।
यहां कठिनाई खड़ी होती है। चेहरा सहयोगी हो सकता है, अगर पार का दर्शन होता रहे। चेहरा उपद्रव हो जाता है, अगर पार का दर्शन बंद हो जाए। फिर चेहरा दीवार है। अगर पार दिखाई पड़ता रहे, बियांड दिखाई पड़ता रहे, तो चेहरा द्वार है। तो मूर्ति द्वार हो सकती है, अगर निराकार का स्मरण बना रहे। लाओत्से कहता है, उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा नहीं दिखाई पड़ता। उसके पीछे चलो, लेकिन उसकी पीठ का कोई पता नहीं चलता।
इसे भी हमें समझना आसान होगा, अगर हम प्रेम से इसे जोड़ें।
अगर आपके जीवन में कभी भी वह सौभाग्य का क्षण आया है, जब आपने किसी को प्रेम किया हो... । यह इसलिए कहता हूं कि बहुत मुश्किल से कभी करोड़ में एकाध बार कोई आदमी किसी को प्रेम करता है। चर्चा करते हैं लोग प्रेम की। और चर्चा इसीलिए करते हैं, क्योंकि प्रेम का कोई अनुभव नहीं। चर्चा से मन को भरते हैं, समझाते हैं। संतुलन खोजते हैं चर्चा से, सांत्वना खोजते हैं। अगर कभी किसी ने किसी को प्रेम किया हो, क्षण भर को भी वह झलक मिली हो, तो एक अनूठा अनुभव होगा कि जिससे आप प्रेम करेंगे, अगर प्रेम के क्षण में आप हों तो आपको उसका चेहरा नहीं दिखाई पड़ेगा। यह बहुत कठिन मामला है। अगर आपने किसी को प्रेम किया है, एक क्षण को भी आपका हृदय प्रेम से भर गया है, तो आपके प्रेमी का, आपकी प्रेयसी का चेहरा खो जाएगा। और आपको अपने प्रेमी में, अपनी प्रेयसी में उसकी झलक मिलेगी, जिसका कोई चेहरा नहीं है।
इसीलिए जिन्होंने गहरा प्रेम किया है, उन्होंने अपने प्रेमियों की ऐसे चर्चा की है जैसे वे ईश्वर की चर्चा कर रहे हों। इसलिए बहुत मुश्किल

है, प्रेमियों के वचन खोज कर यह तय करना मुश्किल है कि वे प्रेमी की चर्चा कर रहे हैं कि परमात्मा की चर्चा कर रहे हैं! अगर आपने प्रेम-काव्य पर कभी नजर डाली है, तो आपको निरंतर कठिनाई अनुभव होगी कि यह प्रेमी की चर्चा है या परमात्मा की! यह उमर खय्याम किसकी बात कर रहा है? प्रेयसी की या परमात्मा की? शराब की या समाधि की? बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। इसलिए शराब बेचने वाली दुकानें उमर खय्याम नाम रख लेती हैं।
प्रेमी प्रेम के क्षण में निराकार से संबंधित हो जाता है, आकार खो जाता है। रूप खो जाता है, अरूप प्रकट होता है। प्रेम की कीमिया, प्रेम की अल्केमी यही है कि रूप से उसकी शुरुआत होती है, अरूप पर उसका अंत होता है। पहले तो रूप ही खींचता है। लेकिन रूप खींचता इसीलिए है कि रूप में से कुछ भीतरी स्वर्ण झलकता है, कोई भीतरी दीप्ति, जो रूप की नहीं है। खींचता तो फूल ही है पहले, लेकिन फूल भी इसीलिए खींचता है कि सौंदर्य उसके इर्द-गिर्द आभा बनाए हुए है। रूप ही खींचता है पहले, लेकिन भीतर अरूप की दीप्ति! जैसे कि हम एक कांच के घर में एक छोटा सा दीया जला दें। दीया कहीं भी दिखाई न पड़े, कांच का घर ही दिखाई पड़े; लेकिन दीए की झलक, दीप्ति बाहर आती हो। दीए की लौ तो दिखाई न पड़ती हो, लेकिन दीए की किरणें बाहर आती हों, हलकी रोशनी बाहर झलकती हो। तो कांच का घर हमें खींचे अपनी तरफ। लेकिन अगर घर पर ही हम रुक जाएं, तो भूल हो गई। घर के भीतर जो छिपा है!
एक सुंदर शरीर खींचता है निकट, कुछ भी बुरा नहीं है, कुछ भी पाप नहीं है। बुराई तो तब शुरू होती है, जब भीतर के दीए का पता ही नहीं चलता और सुंदर शरीर ही सब कुछ हो जाता है। तब उपद्रव शुरू होता है। अगर रूप खींचे और अरूप अनुभव में आने लगे, तो एक क्षण आएगा कि रूप भूल जाएगा और अरूप ही रह जाएगा। अगर कोई ठीक से प्रेम भी कर ले एक व्यक्ति को भी, तो परमात्मा को और अलग से खोजने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि वही व्यक्ति द्वार बन जाएगा। चूंकि हम प्रेम नहीं कर पाते हैं, इसलिए हमें प्रार्थना करनी पड़ती है। और चूंकि हम प्रेम नहीं कर पाते हैं, इसलिए साधना करनी पड़ती है। चूंकि प्रेम नहीं कर पाते हैं, इसलिए फिर बहुत कुछ करना पड़ता है। प्रेम ही कोई कर ले, तो फिर कोई और उपाय, कोई विधि... । तो मीरा कह सकती है कि न कोई उपाय है, न कोई विधि है, न कोई ज्ञान है, न कोई ध्यान है। मीरा कह सकती है; क्योंकि प्रेम की उसे खबर मिल गई है। कबीर कह सकते हैं कि छोड़ो सब यज्ञ-योग, छोड़ो सब जप-तप, छोड़ो सब, उसका नाम ही काफी है।
लेकिन उसका नाम उसके लिए ही काफी है, जिसके भीतर प्रेम की झलक आई हो। नहीं तो नाम बिल्कुल काफी नहीं है। रटते रहो।
यही कठिनाई है कि कबीर कहते हैं, नाम काफी है। क्योंकि प्रेम से लिया गया नाम पर्याप्त है, और क्या चाहिए? फिर लोग सोचते हैं, नाम ही काफी है। और प्रेम का उनके पास कोई अनुभव नहीं है। तो फिर नाम जपते रहते हैं जिंदगी भर। यंत्रवत तोतों की तरह दोहराते रहते हैं। और कहते हैं, कबीर ने कहा, नानक ने कहा कि नाम काफी है, तो फिर हम नाम जप रहे हैं। नाम काफी है, नाम भी काफी है। नाम से कम और क्या होगा? नाम भी काफी है। लेकिन काफी है उस हृदय को जहां प्रेम है। और प्रेम हो, तो नाम भी गैर-जरूरी है। प्रेम ही काफी है। लाओत्से कहता है, मिल जाए वह, फिर भी चेहरा दिखाई नहीं पड़ता। अनुगमन करो उसका, पीठ दिखाई नहीं पड़ती। मीट इट, एंड यू डू नॉट सी इट्स फेस; फालो इट, एंड यू डू नॉट सी इट्स बैक।
मिलते ही कोई सीमा नहीं दिखाई पड़ती। किसी भी उपाय से कोई मिले, मिलते
ही कोई अनुभव निर्मित नहीं होता। इसलिए कोई अगर कहे कि मैंने ईश्वर को देख लिया, तो समझना कि कोई स्वप्न देखा है, धार्मिक स्वप्न देखा है। प्रीतिकर, सुखद, लेकिन स्वप्न देखा है। कोई कहे कि मैंने उसका चेहरा देख लिया, तो समझना कि कल्पना प्रगाढ़ हो गई है। उसका चेहरा कभी किसी ने नहीं देखा। कभी कोई देख भी नहीं सकेगा। उसका कोई चेहरा नहीं है। उसकी कोई रूप-रेखा नहीं है। अस्तित्व रूप-रेखा शून्य है।
"वर्तमान कार्यों के समापन के लिए जो व्यक्ति इस सनातन ताओ को सम्यकरूपेण धारण करता है, वह उस आदि स्रोत को जानने में सक्षम हो जाता है जो कि ताओ का सातत्य है।"

अंतिम सूत्र साधक के लिए है। जो बातें पहले कही गईं, वे इशारे हैं उस परम रहस्य की तरफ। उस परम रहस्य को कैसे पाया जा सके, इस आखिरी सूत्र में उसकी तरफ निर्देश है। दो-तीन बातें समझनी पड़ें।
एक, समय मनुष्य की ईजाद है। परमात्मा के लिए समय नहीं है। अतीत, वर्तमान, भविष्य हमारे विभाजन हैं। परमात्मा के लिए अतीत, वर्तमान और भविष्य नहीं हैं। तो परमात्मा के लिए जो शब्द उपयोग किया जा सके समय की जगह, वह सनातन है, पुरातन है, चिरनूतन है, इटरनल है, इटरनिटी है।
समय हमारा विभाजन है। अतीत का अर्थ है, जो अब हमारे लिए नहीं है। भविष्य का अर्थ है, जो अभी हमारे लिए हुआ नहीं। वर्तमान का अर्थ है, जो हमारे लिए है। लेकिन परमात्मा तो सभी को घेरे हुए है। अतीत भी उसके लिए अभी है; भविष्य भी उसके लिए अभी है; और वर्तमान भी उसके लिए अभी है। अगर ठीक से समझें तो परमात्मा के लिए एक ही काल-क्षण है, वह वर्तमान है।
इसे ऐसा समझें कि दीवार में एक छेद कर ले कोई और बाहर से देखे। एक कोने
से देखना शुरू करे हाल के भीतर, तो सबसे पहले उसे मैं दिखाई पडूं। फिर क्रमशः उसकी नजर आप पर चलती जाए। जब आप उसे दिखाई पड़ें, तो मैं दिखाई पड़ना बंद पड़ जाऊं। फिर और पीछे उसकी नजर जाए, तो आप दिखाई पड़ने बंद हो जाएं। वह पीछे हटता जाए, कतार-कतार, दूसरे चेहरे उसे दिखाई पड़ें। जो नहीं दिखाई पड़ते अब, वे अतीत हो गए। जो अभी दिखाई पड़ेंगे, वे भविष्य हैं। जो दिखाई पड़ रहा है, वह वर्तमान है। लेकिन कोई इस कमरे के भीतर मौजूद है। बाहर के आदमी के लिए तीन हिस्से हो गए; कमरे के भीतर जो मौजूद हैं, उसके लिए एक ही है। सब मौजूद हैं, अभी-यहीं।
परमात्मा अस्तित्व के केंद्र पर मौजूद है, हम परिधि पर। हम जो भी देखते हैं, उसमें हमें बहुत कुछ छोड़ना पड़ेगा। हमारी आंखों की देखने की क्षमता सीमित है। हम चुन कर ही देख सकते हैं। जो छूट जाता है, वह अतीत हो जाता है। जो होने वाला है, वह भविष्य हो जाता है। जो है, वह वर्तमान। और मजे की बात है, परमात्मा के लिए सिर्फ वर्तमान है। कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं। इसलिए वर्तमान शब्द का उपयोग करना ठीक नहीं है उसके लिए। क्योंकि वर्तमान का मतलब ही होता हैः अतीत और भविष्य के बीच में। जिसके लिए कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं, उसके लिए वर्तमान शब्द ठीक नहीं है। इसलिए सनातन, इटरनल, सदा।
इकहार्ट ने कहा हैः इटरनल नाउ, सदा अभी।
उसके लिए सब कुछ वर्तमान है। और हमारे लिए, अगर हम खोजने जाएं, तो कुछ
भी वर्तमान नहीं है। हम कहते हैंः वर्तमान, अतीत, भविष्य। लेकिन कभी आपने देखा, आपका अतीत भी काफी बड़ा है। अगर आप पचास साल जीए हैं, तो पचास साल का अतीत है। और अगर आपको पिछले जन्मों की याद आ जाए, तो अरबों-खरबों साल का अतीत है। भविष्य भी अनंत है। अगर आपको अभी पचास साल जीना है, तो पचास साल का। और अगर आपको ख्याल आ जाए पुनर्जन्मों का, तो अनंत भविष्य है। अनंत है अतीत, अनंत है भविष्य--हमारे लिए। और वर्तमान क्या है? एक क्षण भी नहीं। अगर हम बारीकी से खोजने जाएं, तो किस क्षण को आप वर्तमान कहेंगे? जब आप कहेंगे, तब वह अतीत हो चुका होगा। जब तक आप जानेंगे कि यह वर्तमान है, वह अतीत हो चुका होगा। अगर मैं कहूं कि नौ बज कर पैंतीस मिनट पर अभी यह क्षण वर्तमान है; लेकिन मेरे इतना कहने में ही वह क्षण अतीत हो गया। अब वह है नहीं। हमारे पास वर्तमान इतना कम है कि हम उसकी घोषणा भी नहीं कर सकते। घोषणा करें, वह अतीत हो जाता है। सच तो यह है कि हमारे लिए वर्तमान का केवल एक ही अर्थ हैः जहां हमारा भविष्य अतीत होता है, वह बिंदु। व्हेयर फ्यूचर पासेस इनटू पास्ट, जहां भविष्य हमारा अतीत बनता है, बस वह जगह। वर्तमान का हमें कोई पता नहीं है।
परमात्मा के लिए सब कुछ वर्तमान है, हमारे लिए सब कुछ अतीत या भविष्य है। जहां हमारा भविष्य अतीत बनता है, उसी रेखा पर हम मान कर चलते हैं कि वर्तमान है। हमें उसका अनुभव कभी नहीं होता।
अगर उस वर्तमान को हम अनुभव करने लगें, उस वर्तमान को अगर हम पकड़ने लगें, वह वर्तमान अगर हमारी चेतना से संयुक्त होने लगे, इसी का नाम ध्यान है। हम वर्तमान को पकड़ नहीं पाते, क्योंकि चित्त हमारा इतनी तेजी से चल रहा है और समय इतनी तेजी से भाग रहा है कि इन दोनों के बीच मिलना नहीं हो

पाता। समय को हम रोक नहीं सकते, वह हमारे हाथ के बाहर है। चित्त को हम रोक सकते हैं, वह हमारे हाथ के भीतर है। अगर चित्त बिल्कुल रुक जाए, तो वह जो वर्तमान का क्षण है, उससे हमारा मिलन हो सकता है। वर्तमान के क्षण से हमारा मिलन ही परमात्मा से हमारा मिलन है। फिर धीरे-धीरे अतीत और भविष्य हमारे लिए भी खो जाते हैं, वर्तमान ही रह जाता है।
लाओत्से या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के लिए कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं; वर्तमान सब कुछ है। जिस दिन कोई व्यक्ति ऐसी अवस्था में आ जाता है कि वर्तमान सब कुछ है, उस दिन वह परमात्मा से एक हो गया, परमात्मा हो गया। अतीत और भविष्य जिस मात्रा में बड़े हैं, उसी मात्रा में हम परमात्मा से दूर हैं; जिस मात्रा में कम हैं, उतने निकट हैं; जिस दिन खो गए, उस दिन हम एक हैं।
अब इस लाओत्से के सूत्र को समझें।
वर्तमान कार्यों के समापन के लिए--रोज दैनंदिन काम में भी, क्षण-क्षण, वर्तमान क्षण में--जो व्यक्ति सनातन ताओ को सम्यक रूप धारण करता है। जो वर्तमान में जीते हुए एक-एक क्षण में भी सनातन को ही धारण करता है और स्मरण रखता है, जिसका न कोई अतीत है, न कोई भविष्य, जो सदा है। दुकान पर बैठा है, बाजार में है, दफ्तर में है, घर में है, भोजन कर रहा है, सो रहा है, लेकिन अतीत का स्मरण नहीं, भविष्य का स्मरण नहीं, सनातन का स्मरण! वह जो सदा है और अभी भी है, दि इटरनल नाउ, सनातन और अभी, उसका जिसे स्मरण है। जो सम्यकरूपेण धारण करता है सनातन को, वह उस आदि स्रोत को जानने में सक्षम हो जाता है, वह उस परम स्रोत को पहचानने में पात्र हो जाता है, जो कि ताओ का सातत्य है। ताओ का अर्थ--धर्म। ताओ का अर्थ--सत्य। ताओ का अर्थ--नियम, ऋत। ताओ का अर्थ वह परम रहस्य, जहां कोई समय नहीं है। जहां कोई बनना और मिटना नहीं है, जहां कोई सुबह और सांझ नहीं है, जहां कोई जन्म और मृत्यु नहीं है। उस परम सातत्य को उपलब्ध हो जाता है।
समय द्वार है। अगर आप अतीत और भविष्य में डोलते रहते हैं, तो आप संसार में हैं। अगर समय की दृष्टि से हम कहें, तो संसार का अर्थ हैः अतीत धन भविष्य; वर्तमान नहीं। अगर संसार से पार जाना है, तो अतीत और भविष्य जहां मिलते हैं, उस बिंदु से नीचे गिरना पड़े, वहीं से छलांग लगानी पड़े, वहीं से नीचे उतरना पड़े। शुद्ध वर्तमान अर्थात मोक्ष; शुद्ध वर्तमान अर्थात ताओ। लाओत्से से कोई पूछता है कि तुम्हारा सबसे श्रेष्ठतम वचन कौन सा है?
तो लाओत्से कहता है, यही! जो मैं अभी बोल रहा हूं। वानगाग से कोई पूछता है, तुम्हारी श्रेष्ठतम चित्रकृति कौन सी है? कौन सी सबसे श्रेष्ठ तुम्हारी पेंटिंग है? तो वानगाग पेंट कर रहा है और कहता है, यही! जो मैं अभी पेंट कर रहा हूं।
अभी जो हो रहा है, वही सब कुछ है। इस अभी में जो सनातन को स्मरण रख कर जीना शुरू कर देता है, उसे रास्ता मिल गया, उसे सेतु मिल गया। छोड़ें अतीत को, छोड़ें भविष्य को, पकड़ें वर्तमान को। धीरे-धीरे अतीत को विसर्जित करते जाएं।
हम तो उसे ढोते हैं। इसलिए बूढ़े आदमी की कमर झुक जाती है। शरीर से कम, अतीत का वजन बहुत हो जाता है। इतना अतीत हो जाता है, थक जाता है, पहाड़ छाती पर रख जाता है। सब अतीत हो जाता है। बूढ़ा आदमी बैठा हो कुर्सी पर आंख बंद किए, तो आप समझ सकते हैं कि वह क्या कर रहा होगा। वह अतीत को कुरेद रहा होगा। जवानी, बचपन; सफलताएं, असफलताएं; प्रेम, विवाह, तलाक, वह सब खोज रहा होगा। खोज रहा होगा कि क्या हुआ! बोझ बढ़ता जाता है।
उसे हटाते चलें, वह बोझ खतरनाक है। क्योंकि वह सनातन से कभी न जुड़ने देगा।
बच्चे को खोजें, जवान को खोजें, वह क्या कर रहा है? भविष्य! महल जो बनाने हैं, यात्राएं जो करनी हैं, सफलताएं जो पानी हैं--महत्वाकांक्षाएं, सपने। बच्चे को देखें, तो भविष्य का विस्तार है बड़ा। बूढ़े को देखें, तो अतीत का। भविष्य के सपने हैं बच्चे के पास, बूढ़े के पास उन्हीं सपनों की राख। इन दोनों के बीच हम चूक जाते हैं उसको, जो वर्तमान है। जैसा मैंने कहा कि हमारा वर्तमान वह बिंदु है जहां भविष्य अतीत बनता है, और हमारी जवानी

भी वह बिंदु है जहां हमारा भविष्य अतीत बनता है, जहां हमारे सपने राख बनते हैं।
कभी आपने कृष्ण की कोई मूर्ति, कोई चित्र देखा, जिसमें कृष्ण बूढ़े हों? बुद्ध का कोई चित्र देखा, जिसमें बुद्ध बूढ़े हों? महावीर की कोई प्रतिमा देखी, जिसमें महावीर बूढ़े हों? बूढ़े तो जरूर हुए थे, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। बुद्ध बूढ़े हुए थे, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। लेकिन चित्र हमने सब उनके जवानी के ही शेष रखे हैं। कारण हैं। कारण हैं, इस खबर को देने के लिए कि बुद्ध के लिए वर्तमान सब कुछ हो गया। जवानी सब कुछ हो गई, युवापन सतत हो गया। बूढ़े हो गए शरीर से, लेकिन चेतना बूढ़ी नहीं हुई। क्योंकि चेतना पर कोई अतीत का बोझ न रहा। यह जो ख्याल है, वर्तमान में अगर कोई सतत जी रहा हो, तो एक सतत युवापन, एक ताजगी, एक प्रतिपल जीवन का नया, नवीन, प्रतिपल ताजा, निर्दोष फूल खिलता चला जाता है। वह कभी बासा नहीं पड़ता।
"न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा--ऐसा
है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य, जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।"
आज इतना ही। बैठें लेकिन पांच मिनट, कीर्तन में सम्मिलित हों।

ताओ उपनिषद, भाग दो
चौंतीसवां प्रवचन

संत की पहचान: सजग व अनिर्णीत, अहंशून्य व लीलामय

Chapter 15 : Part 1

The Wise Ones Of Old

The skillful masters (of the Tao) in old times,
with a subtle and exquisite penetration, comprehended its mysteries, and were so deep that they eluded man's knowledge. As they were thus beyond man's knowledge, I will make an effort to describe of what they appeared to be.
Cautious, like crossing a wintry stream;
Irresolute, like one fearing danger all around;
Grave, like one acting as a guest;
Self-effacing, like ice beginning to melt;
Unpretentious, like wood that has not been carved. Vacant like a valley, and dull like muddy water.

अध्याय 15 : खंड 1

प्राचीन समय के संतजन

प्राचीन समय में ताओ में प्रतिष्ठित एवं निष्णात संतजन सूक्ष्म और अति संवेदनशील अंतर्दृष्टि से उसके रहस्यों को समझने में सफल हुए। और वे इतने गहन थे कि मनुष्य की समझ के परे थे।
और चूंकि वे मनुष्य के ज्ञान के परे थे, इसलिए उनके संबंध में इस प्रकार कुछ कहने का प्रयास किया जा सकता है कि वे अत्यंत सतर्क व सजग हैं, जैसा कोई शीत-ऋतु में किसी नाले को पार करते समय हो; वे सतत अनिर्णीत व चौकन्ने रहते हैं, जैसा कि कोई व्यक्ति जो कि सब ओर खतरों से घिरा हो;
वे जीवन में जैसे कि अतिथि हों, ऐसा गंभीर अभिनय करते हैं।
उनकी अस्मिता सतत विसर्जित होती रहती है, जैसे कि प्रतिपल बिखरता हुआ बर्फ हो; वे अपने बारे में किसी प्रकार की घोषणा नहीं करते, जैसे कि वह लकड़ी, जिसे अभी कोई भी रूप नहीं दिया गया है; वे एक घाटी की भांति रिक्त और मटमैले जल की भांति विनम्र होते हैं।

यह सूत्र बहुत अनूठा है। अनूठा इसलिए है कि संतों के संबंध में हमारी
जो धारणा है, उसके बिल्कुल प्रतिकूल है। संत के संबंध में जैसा हम सोचते हैं, वैसा लाओत्से नहीं सोचता।
लाओत्से का संत ज्यादा समग्र व्यक्ति है। हमारा संत अधूरा है। हम जिसे संत कहते हैं, आमतौर से उसे संत न कह कर सज्जन कहें, तो उचित हो। दुर्जन और सज्जन हमारी बुद्धि की पकड़ के भीतर होते हैं। जो बुरा कर रहा है, वह दुर्जन है; और जो भला कर रहा है, वह सज्जन है। सज्जन में हम, जो भी शुभ है, उसे जोड़ देते हैं; और दुर्जन में, जो भी अशुभ है, उसे।
लेकिन लाओत्से का संत समग्र व्यक्ति है, इंटिग्रेटेड। वह दुर्जन के खिलाफ नहीं है और मात्र सज्जन नहीं है। वह दोनों है और दोनों के पार है। वह एक साथ दोनों है, इसलिए दोनों के पार होने में समर्थ है।
इस सूत्र को समझने में दो-तीन बातें हम पहले समझ लें। और फिर सूत्र की मौलिक आत्मा में प्रवेश करें।
एक महत्वपूर्ण बात लाओत्से कहता है, "प्राचीन समय में ताओ में प्रतिष्ठित एवं निष्णात संतजन सूक्ष्म और अति संवेदनशील अंतर्दृष्टि से

उसके रहस्यों को समझने में सफल हुए। और वे इतने गहरे थे कि मनुष्य की समझ के परे थे।"
पहली बात, विज्ञान में नए सत्यों का उदघाटन निरंतर होता है। इसलिए विज्ञान के जगत में मौलिक चिंतक होते हैं, जो नई खोज करते हैं। धर्म के जगत में मौलिक चिंतन का कोई अर्थ नहीं होता। धर्म के जगत में नए सत्य की कोई खोज नहीं होती है। धर्म के जगत में सत्य न तो नया है, न पुराना। सनातन है। उसी सत्य का पुनः-पुनः उदघाटन होता है। व्यक्ति के लिए नया हो, क्योंकि उसने पहली बार जाना; लेकिन वह सत्य नया नहीं है। सत्य सदा से है।
इसीलिए विज्ञान के सत्य आज नए होते हैं, कल पुराने पड़ जाते हैं। जो भी नया है, वह पुराना पड़ेगा ही। धर्म के सत्य न तो नए होते और न पुराने पड़ते। क्योंकि जो नया नहीं है, उसके पुराने पड़ने का कोई उपाय भी नहीं है। धर्म निजी खोज है उस सत्य की, जो सदा है। इसलिए चाहे कृष्ण, चाहे क्राइस्ट, चाहे महावीर, चाहे लाओत्से, वे सभी उन ऋषियों की बात करते हैं, जिन्होंने पहले भी इस सत्य को पाया है।
यह थोड़ा विचारणीय है। वैज्ञानिक जब भी किसी सत्य की बात करेगा, तो वह कहेगा कि पहले इसे किसी ने भी नहीं पाया। अगर पहले भी इसे किसी ने पा लिया है, तो वैज्ञानिक की खोज व्यर्थ हो जाती है। अगर न्यूटन को कुछ सिद्ध करना है, तो वह कहेगा कि पहले इसे किसी ने भी नहीं पाया। विज्ञान में यह अनिवार्य है। अगर पहले किसी ने पा लिया है, तो न्यूटन के होने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए विज्ञान में हर चिंतक को सिद्ध करना पड़ता है कि मैं नया हूं, मौलिक हूं, ओरिजिनल हूं।
धर्म की स्थिति बिल्कुल उलटी है। यहां अगर कोई चिंतक यह सिद्ध करने
की कोशिश करे कि नया है, तो उसका अर्थ होगा कि वह गलत है। क्योंकि धर्म के सत्य बासे नहीं होते, उधार नहीं होते, मृत नहीं होते, जूठे नहीं होते। और जब भी कोई व्यक्ति उन्हें जानता है, तो वे ताजे और नए होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होता कि उसके पहले नहीं जाने गए होते। हजारों लोग इसके पहले भी जान चुके होते हैं। सत्य तो वही है।
इसलिए विज्ञान का सत्य आज सत्य है, कल असत्य हो जाएगा। इसीलिए तो नया
हो सकता है। इसे हम ऐसा समझें कि असत्य ही नया हो सकता है; सत्य नया नहीं हो सकता। और असत्य को खोज सकते हैं आप दूसरों से भिन्न; क्योंकि असत्य निजी हो सकते हैं, हर आदमी का अपना असत्य हो सकता है। लेकिन हर आदमी का अपना सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो एक ही होगा। और जब भी कोई व्यक्ति अपने हृदय को खोलेगा, तो उस सत्य को उपलब्ध हो जाएगा।
विज्ञान में ऐसा लगता है कि आदमी सत्य का दरवाजा खोलता है। और धर्म में अपने हृदय को सत्य के लिए खोलता है। और हृदय की अंतिम गहराई में जो छिपा है, वह एक ही है। इसलिए कृष्ण भी कहते हैं कि मुझसे पहले भी ऋषियों ने यही कहा। महावीर भी कहते हैं, मुझसे पहले तीर्थंकरों ने यही जाना। क्राइस्ट भी कहते हैं कि मुझसे पहले जो पैगंबर हुए, उन्होंने भी यही कहा। मोहम्मद भी यही कहते हैं। कोई उनमें से दावा नहीं करता कि जो मैं कह रहा हूं, वह नया है।
लाओत्से भी कहता है कि प्राचीन समय में ताओ में प्रतिष्ठित संतजनों
ने अति संवेदनशील अंतर्दृष्टि से जीवन के परम रहस्य में प्रवेश किया। लेकिन लाओत्से ने उनमें से किसी का भी नाम नहीं लिया है। यह भी विचारणीय है।
लाओत्से का ख्याल है कि इस जगत में जो लोग जितने गहरे सत्य में प्रविष्ट हुए, इतिहास उनका स्मरण रखने में असमर्थ रहा है। क्योंकि इतिहास केवल उन्हीं लोगों का स्मरण रख सकता है, जो उस समय के आदमियों की समझ में आए हों। इस जगत में बहुत से ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने उस परम रहस्य को जाना। लेकिन वह परम रहस्य इतना गूढ़ था कि जब उन्होंने उसे कहा और जीया, तो लोग उसे समझ नहीं सके। इसलिए उन परम रहस्यदर्शियों का नाम भी विस्मृत होता चला गया। बहुतों के वचन हमारे पास हैं, लेकिन नाम खो गए हैं। बहुतों के नाम हमारे पास हैं, तो वचन खो गए हैं। और बहुतों के नाम और वचन, दोनों ही खो गए हैं।

लाओत्से उन संतों की बात कर रहा है, जिनका इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि वे इतने गहन थे कि मनुष्य की समझ के परे थे।
मनुष्य की समझ बड़ा छोटा दायरा बनाती है। और मनुष्य की समझ में जो आ पाता है, वह अति क्षुद्र है। जितना विराट हो, जितना महान हो, मनुष्य की समझ के लिए उतनी ही कठिनाई हो जाती है। कई बार तो ऐसा होता है कि जैसे बहुत प्रकाश हो, तो आंखें बंद हो जाती हैं। सूरज के सामने आंखें हों, तो पलक झप जाती हैं। ठीक वैसे ही बहुत बार जिन्होंने परम सत्य को अनुभव किया, उनके सामने हमारी समझ झप जाती है, बंद हो जाती है। हम कुछ भी नहीं समझ पाते हैं। क्या कारण है?
इस संबंध में भी विज्ञान और धर्म के भेद को समझ लेना जरूरी है। अगर विज्ञान को समझना हो, तो आपकी समझ को बढ़ाने की जरूरत नहीं है; सिर्फ आपकी समझ में और जानकारी जोड़ देने की जरूरत है। अगर मैं दस तक गिनती जानता हूं, तो बीस तक गिनती जानने के लिए मेरी समझ को बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है। सिर्फ मुझे बीस तक की गिनती से परिचित हो जाना काफी है। मेरी समझ वही रहेगी; मैं बीस तक की गिनती जान लूंगा। हजार तक जान सकता हूं। सिर्फ जोड़ बढ़ता जाएगा। मेरी समझ वही रहेगी; सिर्फ मेरा संग्रह बढ़ता चला जाएगा। इसलिए मनसविद कहते हैं कि आमतौर से बच्चे की समझ अठारह साल के बाद बढ़ती नहीं। अठारह साल पर समझ तो ठहर जाती है, लेकिन संग्रह बढ़ता चला जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि अठारह साल के बच्चे और अस्सी साल के बूढ़े में फर्क नहीं होगा। फर्क होगा। लेकिन फर्क समझ का नहीं, संग्रह का होगा। बूढ़े के पास ज्यादा संग्रह होगा, जानकारी ज्यादा होगी। अठारह साल के लड़के के पास जानकारी कम होगी। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं, समझ में कोई फर्क नहीं पड़ता। समझ तो ठहर जाती है अठारह साल पर। अठारह भी आखिरी आंकड़ा है। समझ और भी पहले अधिक लोगों की ठहर जाती है।
पिछले महायुद्ध में अमरीका में उन्होंने जिन सैनिकों की भर्ती की, उनकी समझ का अंक निकालने की कोशिश की, तो बहुत हैरान हुए। लाखों लोगों के बुद्धि-अंक खोजे गए, तो साढ़े तेरह वर्ष औसत उम्र मिली--उम्र मन की। साढ़े तेरह वर्ष औसत उम्र पाई गई। आदमी, साढ़े तेरह वर्ष पर उसकी समझ रुक जाती है। फिर संग्रह बढ़ता चला जाता है। समझ के लिहाज से साढ़े तेरह वर्ष के आदमी में और अस्सी साल के बूढ़े आदमी में फर्क नहीं होता। संग्रह के हिसाब से बहुत फर्क होता है।
विज्ञान में हम आदमी का संग्रह भर बढ़ाए चले जाते हैं। इसलिए हमारी सारी शिक्षा समझ पर निर्भर नहीं करती, संग्रह पर निर्भर करती है। और हमारी सारी शिक्षा बुद्धि को नहीं बढ़ाती, केवल स्मृति को बढ़ाती है। इसलिए हमारी सारी परीक्षाएं स्मृति की परीक्षाएं हैं, बुद्धि की नहीं।
लेकिन धर्म की स्थिति बिल्कुल दूसरी है। धर्म आपके संग्रह के बढ़ने से समझ में नहीं आता, आपकी समझ बढ़नी चाहिए। आपकी समझ विकसित होनी चाहिए। आपकी समझ जितनी प्रौढ़ हो, उतना ही ज्यादा धर्म को समझना आसान हो जाएगा।
मैंने कहा कि हमारी औसत उम्र साढ़े तेरह वर्ष पर रुक जाती है--बुद्धि
की उम्र। लाओत्से के संबंध में बड़ी मीठी कहानी है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। यह बहुत प्रतीकात्मक है; क्योंकि लाओत्से के पास बचपन से वैसी समझ थी, जैसी सौ साल के बूढ़े आदमी के पास हो, अगर उसकी समझ बढ़ती चली जाए--संग्रह न हो, समझ बढ़ती चली जाए। संग्रह और समझ ही नालेज और वि.जडम का फर्क है। तो ज्ञान तो बुद्धि को बिना बढ़ाए भी बढ़ सकता है, लेकिन बुद्धिमत्ता--वि.जडम-- बुद्धि को बदले बिना नहीं बढ़ सकती। और धर्म एक ऐसे लोक की बात करता है कि जब तक हमारी बुद्धि का समस्त रूपांतरण न हो, तब तक वह हमारी समझ के बाहर होगा।
लाओत्से कहता है कि उन सूक्ष्मदर्शी, संवेदनशील संतों ने उस परम रहस्य में प्रवेश किया; लेकिन वे इतने गहन थे कि मनुष्य की समझ के परे थे। आज भी धर्म मनुष्य की समझ के परे है। और धर्म शायद सदा ही मनुष्य की समझ के परे रहेगा। क्योंकि मनुष्य की समझ वस्तुओं को समझने के लिए योग्य, लेकिन अनुभूतियों को समझने के योग्य नहीं है। मनुष्य की समझ दूसरे को समझने में समर्थ, स्वयं को समझने में अभी भी असमर्थ है। दूसरे को समझना

बहुत आसान, खुद को समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि हमारे पास वह समझ ही नहीं है जो खुद को समझ ले।
इसे हम ऐसा समझें कि अगर मेरी आंखें खराब हो जाएं और मैं दूर ही देख सकूं और पास न देख सकूं, तो उसका अर्थ होता है कि आंखें दूरी पर फिक्स हो गईं। अब मुझे पास देखना हो तो चश्मे की जरूरत पड़े। और दूर देखना हो तो चश्मे की कोई भी जरूरत नहीं है। पास देखना मुश्किल, दूर देखना आसान। करीब-करीब मनुष्य की समझ दूर पर फिक्स हो गई है, ठहर गई है। दूसरे को देखना आसान, दूसरे को समझना आसान। जितने दूर की बात हो अपने से, उतने हम बुद्धिमान होते हैं। और जितनी पास आने लगे, उतने ही हम बुद्धिहीन होने लगते हैं। और जब हमारा ही सवाल हो, तो हम बिल्कुल ही मूढ़ होते हैं।
इसलिए बहुत मजे की घटना घटती है कि हममें से सभी लोग दूसरों को सलाह देने में जितने कुशल होते हैं, खुद को सलाह देने में उतने कुशल नहीं होते। और अगर किसी आदमी को हम देखें जब वह दूसरे को सलाह दे रहा हो, तो बहुत बुद्धिमान मालूम पड़ेगा। और ठीक उसी स्थिति में वही आदमी जो करेगा, वह बिल्कुल मूढ़तापूर्ण होगा। क्या बात क्या है? दूसरा दूरी पर है। दूरी पर हमारी समझ फोकस हो जाती है। पास, हमारी समझ धुंधली होने लगती है, डगमगाने लगती है। जितने हम पास आते हैं, उतनी कंपित होने लगती हैं आंखें। और बिल्कुल पास जब केंद्र पर खड़े होते हैं, तो सब अंधेरा हो जाता है।
एक और तरह की समझ चाहिए, जो स्वयं पर केंद्रित होना जानती हो। धर्म का अर्थ हैः स्वयं पर केंद्रित होने की क्षमता। एक गहरी सेंटरिंग, अपने पर खड़े हो जाने की। और अपने को ऐसे देखने की क्षमता, जैसे दूसरे को देख रहे हों। अपने को इतने अनासक्त भाव से देखने की क्षमता, जैसे दूसरे को देख रहे हों। जैसे दूसरे को सलाह देते हों, ऐसे अपने को दूरी से देखने की क्षमता। अपने पार होकर, अपने से भिन्न होकर, अपने से अनासक्त होकर, अस्पर्शित होकर दर्शक की तरह स्वयं को देखने की क्षमता धर्म के गूढ़ रहस्य में प्रवेश करवाती है।
हम सब समझदार हैं। जहां तक व्यर्थ की चीजों का संबंध हो, हमारी समझ उतनी ही ज्यादा होती है। जितनी हो व्यर्थ बात, हम उतने ज्यादा समझदार होते हैं। जितनी हो सार्थक बात, उतनी हमारी बुद्धि खोने लगती है। कचरा हो, तो हम जैसे जौहरी खोजना मुश्किल है; हीरा हो, तो हम अंधे हो जाते हैं।
इसलिए लाओत्से कहता है कि प्रवेश तो किया बहुत लोगों ने; लेकिन आदमी
की समझ के वे परे थे। क्यों थे परे, उसके कुछ कारण भी कहता है। और चूंकि वे परे थे मनुष्य की समझ के, उनके संबंध में बड़ी भ्रांतियां पैदा होती हैं। और जब लाओत्से उनके लक्षण निर्देश करेगा, तब हमें भी समझ में आएगा कि हमारी भी भ्रांतियां कितनी गहन हैं।
"और चूंकि वे मनुष्य के ज्ञान के परे थे, इसलिए उनके संबंध में इस प्रकार कुछ कहने का प्रयास किया जा सकता है।"
ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। उनके संबंध में ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। क्योंकि जिस समझ में हम जीते हैं, उसकी तो भाषा है। और जिस समझ में हम कभी जीए नहीं, उसकी कोई भाषा नहीं है। व्यर्थ को प्रकट करना हो, हमारे पास बड़ी कुशल भाषा है।
कभी आपने ख्याल किया, अगर आपको क्रोध करना हो और गालियां देनी हों, तो
आप इतने मुखर हो जाते हैं जिसका हिसाब नहीं। और अगर प्रेम करना हो और प्रार्थना करनी हो, तो आप एकदम मूक हो जाते हैं। क्रोध की भाषा है हमारे पास; प्रेम की हमारे पास भाषा नहीं है। क्योंकि प्रेम की भाषा तो तभी हो सकती है, जब निकट की समझ हो। क्रोध की भाषा तो आसान है, क्योंकि क्रोध दूर के लिए है, पराए के लिए है, और के लिए है। तो गाली हम दे सकते हैं। और गाली हमारी जितनी अभिव्यक्ति देती है, उतना हमारा प्रेम अभिव्यक्ति नहीं देता।
प्रेमी अक्सर पाते हैं कि बोलने को कुछ भी नहीं है। क्या कहें? कैसे कहें? लेकिन वे ही प्रेमी जब क्रोध से भरेंगे और घृणा से, तो कभी नहीं पाएंगे कि क्या कहें, क्या न कहें। कहने को बहुत होगा।
भाषा हमारे पास नहीं है उस निकट को प्रकट करने की।

इसलिए लाओत्से कहता है, "इसलिए उनके संबंध में इस प्रकार कुछ कहने का प्रयास किया जा सकता है।"
ठीक-ठीक कहना कठिन है, सिर्फ प्रयास हो सकता है। टटोल सकते हैं अंधेरे में, थोड़े इशारे कर सकते हैं। लेकिन ख्याल रखें, कोई भी इशारा बहुत मजबूती से पकड़ने जैसा नहीं है। जगत इतना सूक्ष्म है भीतर का और इतना कोमल है, नाजुक है कि जोर से मुट्ठी बांधी, तो उसके प्राण निकल जाते हैं। रहस्य को पकड़ना हो, तो खुली मुट्ठी चाहिए। बहुत जोर से पकड़ने की चेष्टा नहीं चाहिए। "वे अत्यंत सतर्क व सजग हैं, जैसे कोई शीत ऋतु में किसी नाले को पार करते समय हो।"
बहुत धुंधला चित्र लाओत्से देना चाहेगा, धुंधला जान कर, ताकि हमारी समझ उस रहस्य, उस धुंधलके में प्रवेश करने के लिए ऊपर उठे। बहुत बंधे हुए शब्द नहीं लाओत्से देता, इशारे करता है।
लाओत्से कहता है, जैसे सर्दी के दिन हों, बर्फीला नाला हो, पैर डालते खून जमता हो, उस नाले को कोई पार करे, तो जैसा सजग हो, वैसे वे सजग हैं। इस जीवन को पार करते समय उनकी सजगता ऐसी है, जैसे बर्फीले नाले को कोई पार करते वक्त हो।
थोड़ा ख्याल करें। अगर बर्फीले नाले को पार करना पड़ रहा है आपको, तो रोआं-रोआं जाग जाएगा। कहीं नाले में गिर न पड़ें! एक-एक पैर उठाएंगे, तो उस पैर पर पूरा ध्यान होगा। अतीत भूल जाएगा, भविष्य भूल जाएगा। एक-एक पैर वर्तमान में ही महत्वपूर्ण हो जाएगा।
या ऐसा समझें कि किसी खंदक-खाई के ऊपर से, बहुत संकरे रास्ते से गुजरते हों, जहां जरा पैर चूके तो अतल खाई में गिर जाएं और प्राण खो जाएं। वहां आपको याद रहेंगी अतीत की बातें? वहां आपको ख्याल आएगा बीता हुआ? या वहां सपने आपके मन को घेरेंगे? या वहां भविष्य की योजनाएं आपको पकड़ेंगी? असंभव है। क्योंकि मन जरा सा भी चूक गया वर्तमान से, तो नीचे अतल खाई है। नहीं, वहां आप अत्यंत सजग होकर, जाग कर, शायद जीवन में पहली बार जाग कर चलेंगे। एक-एक कदम आपकी चेतना से भरा होगा, स्मृतिपूर्वक होगा।
इसलिए जापान में झेन फकीरों ने, जिन पर लाओत्से का भारी प्रभाव है, अनेक-अनेक उपाय खोजे हैं आदमी को सजगता सिखाने के। उनमें तलवार चलाने की कला भी एक है। सोचा भी नहीं जा सकता कि ध्यान से तलवार चलाने का क्या संबंध होगा? लेकिन लाओत्से का यह सूत्र ही कारणभूत है।

जापान के फकीरों ने अनुभव किया कि आदमी को बिठा दो और कहो कि शांत हो जाओ, तो वह शांत नहीं होता। बल्कि अशांत हालत में जितना शांत मालूम पड़ता था, ध्यान के लिए बैठ कर उतना भी शांत नहीं रह जाता, और अशांत हो जाता है। जो लोग भी ध्यान में बैठने का कभी प्रयास किए हैं, उन सभी को अनुभव होगा कि मन और अशांत हो जाता है, मन और दौड़ने लगता है, मन और व्यस्त हो जाता है। जो बातें साधारणतया ख्याल नहीं आतीं, वे भी ख्याल आने लगती हैं। और जो विचार कभी नहीं उठे, वे भी मन पर छा जाते हैं। न मालूम भीतर जैसे सब पागलपन प्रकट होना शुरू हो जाता है।
कभी आधा घंटा शांत बैठने की कोशिश करें। तो वह आधा घंटा पागलपन का हो जाएगा। भला बाहर के लोग समझते हों कि आप ध्यान कर रहे हैं, आप भलीभांति समझते हैं कि आप बिल्कुल पागल हो गए हैं। क्या कारण है?
लाओत्से कहता है कि वह सजगता तभी अनुभव हो सकती है, जब जीवन एक खतरा हो, पल-पल खतरा हो। है जीवन पल-पल खतरा। हमें उसका पता नहीं है, इसलिए हम बेहोश चलते हैं। जैसे किसी आदमी की आंख पर पट्टी बंधी हो और उसे पता न हो कि वह खाई के किनारे से गुजर रहा है और अगर एक पैर चूक जाए तो जीवन समाप्त हो जाएगा। तो आंख पर पट्टी बंधा हुआ आदमी खाई के किनारे चलते समय भी अपने विचारों में खोया रहेगा। आंख की पट्टी खोल दें, विचार बंद हो जाएंगे। खतरा दिखाई पड़ेगा।
तो झेन फकीर कहते हैं कि तलवार चलाओ और तलवार चलाने में उस जगह आ जाओ, जहां तलवार ही रह जाए और खतरा इतना तीव्र हो कि तुम्हारे मन को पीछे और आगे जाने का उपाय न रहे। इसी क्षण ठहर जाए। इसलिए झेन फकीरों के मंदिरों के

सामने तलवारों के चिह्न बने हुए हैं। और जहां तलवार सिखाई जाती है, उन कक्षों का नाम ध्यान-कक्ष है।
लाओत्से कहता है, वे पुरुष, वे संतजन सजग हो गए थे, यह पहली लक्षणा।
अगर हमसे कोई पूछे कि कौन आदमी संत है, तो हम कहेंगेः शराब नहीं पीता, मांस नहीं खाता, रात्रि-भोजन नहीं करता, झोपड़े में रहता है, नग्न रहता है।
हम कुछ ऐसी परिभाषा करेंगे, जिसका संतत्व से कोई भी संबंध नहीं है।
लाओत्से कहता हैः सजगता। और सजगता में वह सब आ गया, जो हम कहते हैं। लेकिन हम जो कहते हैं, उसमें सजगता नहीं आती।
एक आदमी मूर्च्छित ही मांसाहार कर सकता है, मूर्च्छित ही शाकाहार कर सकता है। एक बच्चा मांसाहारी के घर में पैदा होता है, मांसाहार करता रहता है। एक बच्चा शाकाहारी के घर में पैदा होता है, शाकाहार करता रहता है। दोनों मूर्च्छित हैं। न तो शाकाहारी सजग है और न मांसाहारी सजग है। इन दोनों बच्चों को हम बचपन में बदल लेते, तो जो मांसाहारी है, वह शाकाहारी हो गया होता; जो शाकाहारी है, वह मांसाहारी हो गया होता। कोई अड़चन न आती, कोई अड़चन न आती। जितने मजे से एक आदमी दूध पी लेता है, उतने ही मजे से दूसरा आदमी दूसरी व्यवस्था में खून पी लेता है। दूध पीने में भी उतनी ही बेहोशी बनी रहती है, जितनी खून पीने में।
दूध पीने वाला सोचता होगा कि हम बहुत सजगता से पी रहे हैं, तो गलत सोचता है। मांसाहारी सोचता हो कि बहुत सजगता से मांसाहार कर रहा है, तो गलत सोचता है। हमारे जीवन की जो व्यवस्था है, वह बिल्कुल मूर्च्छित है। हम कुछ भी कर सकते हैं उस मूर्च्छा में। उस मूर्च्छा में हमें कुछ भी करने के लिए निष्णात, प्रशिक्षित किया जा सकता है। अगर गैर-मांसाहारी के सामने मांस रख दें, तो उसे उलटी हो जाए। इसलिए नहीं कि उसके पास बहुत बड़ी आत्मा है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि उसके पिछले संस्कार मांसाहार के विपरीत हैं। और कुछ भी नहीं है। अभ्यास नहीं है उसका। मूर्च्छा उसकी उतनी ही है, अभ्यास भिन्न है। ऐसे लोग हैं, जो दूध को भी पीने में मांसाहार ही समझते हैं। तो उनके सामने दूध रखें तो भी वोमिट हो जाएगी। आपको दूध देख कर कभी भी वोमिट नहीं होगी। होगी ही नहीं; दूध तो शुद्ध आहार है। लेकिन ऐसे पंथ हैं, जो मानते हैं कि दूध भी रक्त का ही हिस्सा है। है भी। इसीलिए दूध पीने से इतना रक्त बढ़ जाता है। रक्त में दो तरह के कण हैंः सफेद और लाल। सफेद कण इकट्ठा होकर दूध बन जाते हैं। इसलिए दूध पूर्ण आहार है; क्योंकि पूरा रक्त आपके शरीर को मिल जाता है। जिसको यह ख्याल है और जिसका इसके लिए प्रशिक्षण हुआ है, वह दूध को देख कर भी घबड़ा जाएगा। ऐसे लोग हैं, जो अंडे को शाकाहार समझते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, जब तक जीवन प्रकट नहीं हुआ, तब तक शाक-सब्जी ही है। उनको अंडे से कोई तकलीफ नहीं होगी। आपकी सजगता पर यह निर्भर नहीं है। आपके आस-पास की व्यवस्था और संस्कार पर निर्भर है कि आपको क्या सिखाया गया है।
इसलिए लाओत्से जैसे व्यक्ति आपकी व्यवस्था पर जोर नहीं देंगे कि आप क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, कब सोते हैं, कब उठते हैं। ज्यादा गहरी बात पर उनका जोर है कि आप कुछ भी करते हों, आप जीवन में ऐसे चलते हैं, जैसे शीत ऋतु में सर्द नाले में, बर्फीले नाले में से गुजरता हुआ कोई आदमी सजग चलता है। जो भी आप करते हैं, सजग करते हैं।
और बड़े मजे की बात है, अगर कोई भी व्यक्ति अपने संस्कारों में सजग हो जाए, तो उसका जीवन रूपांतरित हो जाता है। फिर आप क्या खाते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। खाते वक्त आप सजग होते हैं या नहीं, यह महत्वपूर्ण है। और जो सजग है, निश्चित ही जो व्यर्थ है, उससे छूट जाएगा। जो सजग है, उससे जो गलत है, वह अपने आप छूट जाएगा। जो सजग है, उसके साथ सही ही बचेगा, गलत के बचने का उपाय नहीं है। सही और गलत की परिभाषा ही यही है कि जो सजग होकर भी बच जाए, वह सही; और जो सजग होते ही गिरने लगे, वह गलत। सजग होकर भी मैं जो कर सकूं, वही पुण्य है। और जिसे करने के लिए मुझे मूर्च्छित होना अनिवार्य हो, वही पाप है। मूर्च्छा पाप है और सजगता पुण्य है।
इसलिए पहली संतत्व की परिभाषा में लाओत्से कहता है, वे अत्यंत सतर्क
व सजग हैं, जैसे शीत ऋतु में कोई नाले को पार करता हो।

यहां जोर गुण पर है, आचरण पर नहीं। यहां जोर भीतरी बोध पर है, बाहरी व्यवहार पर नहीं। कल्पना में भी सोचें, आप पार कर रहे हैं बर्फीला नाला।
हर आदमी अपने ढंग से पार कर सकता है। कोई दौड़ कर करेगा, कोई धीमे करेगा। अपना-अपना ढंग होगा। कोई गीत गाकर करेगा, कोई चुप रह कर करेगा। लेकिन भीतरी एक गुण--सजगता। कौन कैसे करेगा, यह गौण है। सजग रह कर करेगा, बस इतना काफी है।
लाओत्से के समय में एक बहुत प्रसिद्ध फकीर था। फकीर वह था नहीं, सम्राट के घर पशुओं को काटने का बधिक का काम करता था। पूरे तीस वर्ष उसने सम्राट के भोजनगृह के लिए पशुओं को काटा था। बड़ा सम्राट का भोजनगृह था। अनेक पशु रोज कटते थे। लाओत्से ने अनेक बार अपने शिष्यों को कहा कि अगर कभी तुम्हें सजग आदमी देखना हो, तो उस बधिक को जाकर देखना। लोग चौंक जाते थे कि बधिक और सजग!
लाओत्से की मान कर कभी उस बधिक के पास कोई गया। उस बधिक को पशुओं को काटते देखा। एक बात तो सुनिश्चित मालूम पड़ी कि पशुओं को काटने में उसकी कुशलता अनूठी थी। और जो देखने गया था, उसने पूछा उस बधिक को कि तुम इतने पशु काटते हो, यह तुम जिस खंजर से काटते हो, कितने दिन में खराब हो जाता है? तो उस बधिक ने कहा, मेरे पिता भी इसी से काटते थे, उनके पिता भी इसी से काटते थे, मैं भी इसी से काट रहा हूं। लेकिन हम इतनी सजगता से काटते हैं कि इसकी धार मरती नहीं, रोज नई हो जाती है। हम बेहोशी से नहीं काटते कि हड्डी पर पड़ जाए। हम इतनी सजगता से काटते हैं कि जहां दो हड्डियां मिलती हैं, उनके बीच से यह शस्त्र गुजर जाता है। और वे दोनों हड्डियां इस पर धार रखने के काम आ जाती हैं।
उस आदमी ने उस बधिक से पूछा कि तुम्हें कभी तकलीफ नहीं होती इनको काटते?
तो उस बधिक ने कहा, जो कट सकता है, वही कटता है। जो नहीं कट सकता, उसके कटने का कोई उपाय नहीं है। मैं जिसे काटता हूं, वह मरा ही हुआ है। और जो जीवंत है, उसको किसी अस्त्र-शस्त्र से काटने का कोई भी उपाय नहीं है। उसने वही कहा, जो कृष्ण ने गीता में कहा है। लेकिन कृष्ण के शब्द हमारी समझ में आ सकते हैं, एक बधिक के शब्द हमारी समझ में आना मुश्किल हो जाएंगे।
वह आदमी लौटा और उसने कहा कि बात तो वह बहुत ज्ञान की करता है, लेकिन आचरण ज्ञानी का नहीं मालूम पड़ता। पता नहीं, बात ही करता हो। तो लाओत्से ने कहा कि तू जा एक तलवार लेकर और उस बधिक का हाथ काट दे। वह आदमी गया और उसने तलवार उठाई, तो बधिक ने अपना हाथ उसके सामने कर दिया और कहा कि ठीक जोड़ पर मारना, नहीं तो तलवार की धार खराब हो जाएगी। तुझे कुछ अंदाज भी नहीं है, नया-नया है। तो ठीक जोड़ पर!
उस आदमी की हिम्मत नहीं पड़ी। वह वापस लौट आया। लेकिन यह जो आदमी है, यह पशुओं को काटते वक्त ही सजग हो, ऐसा नहीं, अपने को कटाते वक्त भी उतना ही सजग है।
सजगता पर जोर है लाओत्से का, आचरण पर नहीं। सजगता है अंतस का गुण, भीतर
की घटना, होश, बोध। आचरण है बाहर की व्यवस्था। आचरण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। दो संतों के आचरण भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। होंगे ही। सिर्फ दो जड़बुद्धियों के आचरण एक जैसे हो सकते हैं। दो संतों के आचरण भिन्न-भिन्न होंगे ही। लेकिन हजार संतों की भी जागरूकता भिन्न-भिन्न नहीं होगी, एक ही होगी। और हजार मूढ़ भी इकट्ठे हों, तो उनकी जागरूकता एक सी नहीं होगी। उनके आचरण एक जैसे हो सकते हैं।
इसे हम ऐसा समझें। एक मिलिटरी की पंक्तिबद्ध कतार खड़ी है। उनका आचरण बिल्कुल एक जैसा होगा। बाएं घूमो; तो लाख लोग बाएं घूम जाएंगे। दाएं घूमो; तो लाख लोग दाएं घूम जाएंगे। उनका आचरण हम बाहर से व्यवस्थित कर सकते हैं, यूनिफार्म कर सकते हैं। और मजे की बात है कि सैनिक के शिक्षण में हमें उसके आचरण को इतना यूनिफार्म करना पड़ता है कि उसका व्यक्तित्व बिल्कुल मिट जाए। और जिस मात्रा में आचरण यूनिफार्म हो जाता है, उसी अर्थ में बुद्धि क्षीण हो जाती है। होगी ही।

सैनिक के पास बुद्धि की जरूरत भी नहीं है। अगर हो, तो दुनिया में युद्ध नहीं हो सकते। इसलिए कोई नहीं चाहता कि सैनिक के पास बुद्धि हो।
सैनिक जितना निर्बुद्धि हो, उतना कुशल होगा, उतना आज्ञाकारी होगा, उतना समान आचरण-धर्मा होगा।
एक तरफ सैनिकों की, लाख सैनिकों की पंक्ति है, जो एक व्यक्ति की तरह व्यवहार करेगी। दो संतों को भी एक साथ रखें, तो एक सा व्यवहार नहीं होगा।
बुद्ध और महावीर को एक साथ बिठा दें, एक सा व्यवहार जरा भी नहीं होगा।
लेकिन भीतर सजगता बिल्कुल एक सी होगी।
संत निर्णीत होते हैं सजगता से, साधारणजन निर्णीत होते हैं आचरण से। चूंकि हम सब आचरण से निर्णीत होते हैं, हम संतों को भी आचरण से ही सोचते हैं। इसलिए समझ मुश्किल हो जाती है। यह दुनिया में जो इतना विवाद है संतों के संबंध में, उसका कुल कारण इतना है। महावीर को जिन्होंने संत मान लिया, वे बुद्ध को कैसे संत मानें? उनके आचरण भिन्न हैं। जिन्होंने बुद्ध को संत मान लिया, वे कृष्ण को कैसे संत मानें? उनके आचरण भिन्न हैं। जिन्होंने कृष्ण को संत मान लिया, उन्हें क्राइस्ट कैसे संत मालूम पड़ेंगे? उनके आचरण भिन्न हैं। महावीर और मोहम्मद को कैसे साथ रखिएगा? कोई उपाय नहीं है। और आचरण को ही हम देख पाते हैं, इसलिए हमारी तकलीफ है।
फिर हम सब के आचरण पर भी बंधी हुई धारणाएं हैं। अगर मैं जैन घर में पैदा हुआ, तो महावीर का आचरण मेरे चित्त पर भारी हो जाएगा। फिर मैं सारे जगत में घूमूंगा उसी आचरण के नक्शे को लेकर। जीसस उसमें नहीं बैठेंगे, तो मैं समझूंगा, जीसस ज्ञानी नहीं हैं। जैन नहीं मानते कि बुद्ध को परम ज्ञान हुआ। क्योंकि परम ज्ञान होता, तो आचरण महावीर जैसा हो जाना चाहिए था।
एक बहुत विचारशील जैन ने एक किताब लिखी। बहुत सदभाव से लिखी और यह सिद्ध करने की कोशिश की कि महावीर और बुद्ध दोनों ही एक ही संदेश दुनिया को देते हैं। लेकिन किताब का नाम रखाः भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। मैंने उनसे पूछा कि यह इतना फर्क कैसा? तो उन्होंने कहा, और सब तो ठीक है, लेकिन बुद्ध उस स्थिति में नहीं पहुंचे थे। तो ज्यादा से ज्यादा महात्मा; महावीर के साथ भगवान की हैसियत में हम उन्हें नहीं रख सकते। मैंने उनसे पूछा कि यह जान कर आपने रखा? उन्होंने कहा कि नहीं, आपने पूछा तो मुझे ख्याल आया; यह अनजाने ही हुआ होगा। यानी साफ मेरे मन में ख्याल नहीं था। एक ढांचा है फिर। बुद्ध कपड़े पहने हुए हैं। महावीर नग्न हैं अगर, तो नग्न महावीर को मानने वाला सोचेगा, बुद्ध का अभी कपड़े से मोह नहीं छूटा-- स्वभावतः। और जब कपड़े ही से मोह नहीं छूटा, तो फिर और क्या मोह छूटा होगा? तो मान सकते हैं कि अच्छे आदमी हैं, महात्मा हैं, संत हैं, लेकिन महावीर के साथ नहीं रख सकते।
क्राइस्ट को कैसे रखिएगा महावीर के, बुद्ध के, कृष्ण के साथ?
क्राइस्ट को मानने वाले की भी पीड़ा यही है। उसका भी आचरण स्पष्ट है। क्राइस्ट को मानने वाला जानता है कि क्राइस्ट की हैसियत का आदमी अपने को कुर्बान कर देता है सबके लिए। महावीर ने किसके लिए अपने को कुर्बान किया? किसी के लिए नहीं। तो महावीर कितने ही अच्छे हों, स्वार्थी हैं। अपने ही लिए ध्यान है, अपने लिए मोक्ष है। अपने ही लिए सब कुछ है। क्राइस्ट की बात ही और है। अपने जीवन की आहुति दे दी सबके लिए। सब सुखी हो सकें, इसलिए अपने को सूली पर लटकवा दिया। इसलिए जीसस को मानने वाले को महावीर और बुद्ध बहुत पीछे मालूम पड़ते हैं। किसकी सेवा की? किसी की कोई सेवा नहीं की। अपनी ही सेवा की होगी, तो की। अपने ही लिए सब कुछ किया। तो यह तो बहुत गहन स्वार्थ है। और जो अभी अपने स्वार्थ से मुक्त नहीं हुए, वे अहंकार से कैसे मुक्त होंगे? इसलिए जीसस को मानने वाला जानता है कि अहंकार से तो वही मुक्त होगा, जिसने अपने स्वार्थ को छोड़ा और सबके स्वार्थों के लिए बलि दे दी। लेकिन अगर महावीर के भक्त को पूछें, तो वह कहेगा कि सूली तो कर्मों के
फल से लगती है। जरूर पिछले जन्म में कुछ पाप किया होगा। महावीर के पैर में कांटा तो चुभ जाए! सूली तो बात और। तो जैन मानते हैं कि महावीर जब रास्ते पर चलते हैं, तो सीधा कांटा भी पड़ा हो, तो तत्काल उलटा हो जाता है। क्योंकि महावीर जहां से गुजरते हों, पुण्यधर्मा, उनको एक कांटे का दुख भी तो यह जगत क्यों देगा? उन्होंने किसी को कभी कोई दुख नहीं दिया।

ये हमारे आचरण के ढांचे हैं। फिर इसमें कठिनाई शुरू हो जाती है। और सबके पास आचरण का ढांचा है; क्योंकि सब एक संत के आस-पास अपनी पूरी रूप-रेखा निर्मित कर लेते हैं। फिर उस रूप-रेखा को लेकर चलते हैं। वह किसी पर लागू नहीं होगा कभी। किसी पर कभी लागू नहीं होगा। दूसरा संत खोजना मुश्किल है, जो उससे तालमेल खा जाए। फिर हम दीन-दरिद्र हो जाते हैं। फिर सबके अपने चुनाव हो जाते हैं, और शेष सब वर्जित हो जाता है।
लाओत्से इसलिए ऊपरी गुणों की चर्चा नहीं करता। लाओत्से कहता है भीतरी बात। अगर महावीर नग्न हैं और अगर बुद्ध वस्त्र पहने हुए हैं, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। महावीर अपनी नग्नता में जितने सजग हैं, बुद्ध अपने वस्त्र पहने हुए उतने ही सजग हैं। और अगर महावीर अपने ध्यान में लीन हैं और जीसस समस्त के ध्यान में, तो महावीर अपने ध्यान में जितने सजग हैं, जीसस सब के ध्यान में उतने ही सजग हैं। वह सजगता का आंतरिक गुण ही मूल्यवान है। अगर वह आंतरिक गुण नहीं है, तो स्वार्थ भी और परार्थ भी, दोनों अंधे हैं। और अगर वह आंतरिक गुण मौजूद है सजगता का, तो स्वार्थ भी और परार्थ भी, दोनों एक से पुण्यवान हैं। अगर मैं अंधा होकर दूसरे की सेवा में लगा हूं, तो यह अंधापन उतना ही बुरा है, जितना अंधा होकर अपने स्वार्थ में लगा हूं।
स्वार्थ बुरा नहीं है; परार्थ भला नहीं है। अंधापन बुरा है; सजगता भली है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें, क्योंकि इस पर बहुत कुछ निर्भर करता है।
हमारे सोचने की, जीने की, अनुप्रेरित होने की सारी प्रक्रियाएं इस पर निर्भर करती हैं। अंतस मूल्यवान है, आचरण नहीं। और आचरण अंतस की छाया है।
और छाया अलग-अलग होगी, क्योंकि व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। मीरा नाचेगी; बुद्ध नाच नहीं सकते। महावीर के साथ नाचना जोड़िए; बहुत बेहूदा लगेगा। लेकिन महावीर मौन खड़े होकर जितने सजग हैं, मीरा नाचते क्षण उनसे जरा भी कम सजग नहीं है।
अगर नाचने पर जिद्द रखिएगा, तो मीरा का भक्त कहेगा, महावीर भी क्या रूखे-सूखे खड़े हैं, ठूंठ वृक्ष की भांति! एक हरा पत्ता नहीं उनके जीवन में! कोई पक्षी गीत नहीं गाता, कोई फूल नहीं खिलते, कोई सुगंध नहीं! मृतवत खड़े हैं। कहां मीरा, कहां उसकी पायल की झंकार, कहां उसका गीत, कहां उसकी वीणा! यहां जीवन अपनी पूरी प्रफुल्लता में प्रकट हुआ है। तो महावीर रूखे-सूखे लगेंगे।
लेकिन अगर महावीर को मानने वाला है, तो वह मीरा को कहेगा कि यह तो सब राग है, आसक्ति है। यह कृष्ण की हाय-हाय, यह तो दुखी चित्त का लक्षण है। यह कृष्ण की पिपासा, यह मांग, यह तो डिजायर है, इच्छा है, वासना है। यह मीरा का कहना कि कब आओगे मेरी सेज पर सोने, यह सब क्या है? यह तो वासना का ही वेग है, दमित वेग है। यहां-वहां से फूट कर बह रहा है। यह प्रार्थना बन रही है वासना।
आचरण को अगर हमने मूल्यवान समझा और प्राथमिक समझा, तो हम एक संत के साथ तो न्याय कर पाएंगे, जगत के सभी संतों के साथ अन्याय हो जाएगा। और यह रोज हो रहा है। जब तक हम अंतस को मूल्यवान न मानें, तब तक हम जगत के विभिन्न-विभिन्न रूपों में प्रकट हुए संतों को समझ नहीं पा सकते हैं। इसलिए सारे गुण लाओत्से ने भीतरी कहे हैं।
"वे अत्यंत सतर्क व सजग हैं, जैसे सर्दी की ऋतु में किसी नाले को पार करते समय कोई हो।"
भीतर जागा हुआ दीया हो--सतर्क, सजग।
"वे सतत अनिर्णीत और चौकन्ने हैं, जैसे कोई व्यक्ति जो कि सब ओर से खतरों से घिरा हो।"
यह बड़ा कीमती सूत्र है।
"वे सतत अनिर्णीत व चौकन्ने हैं, इररिजोल्यूट, लाइक वन फीलिंग डेंजर
आल एराउंड।"
आमतौर से हम समझेंगे कि संत तो रिजोल्यूट होगा, सुनिश्चित होगा। हमारी सभी की धारणा कहेगी कि संत तो दृढ़ निश्चय वाला होगा। लाओत्से कहता है--इररिजोल्यूट, अनिश्चितमना। बड़ी उलटी बात कहता है। इसे थोड़ा समझना कठिन पड़ेगा। कठिन इसलिए पड़ेगा कि हमें जीवन की गहरी समझ नहीं है। समझें इसे।

एक आदमी कहता है कि मैंने दृढ़ निश्चय किया है कि अब मैं झूठ नहीं बोलूंगा।
यह दृढ़ निश्चय वह किसके खिलाफ करता है? अपने ही खिलाफ। और दृढ़ता की इतनी जरूरत क्यों है? क्योंकि उसको पक्का पता है कि भीतर झूठ बोलने वाला इससे भी ज्यादा दृढ़ है। अगर उसके खिलाफ हमने दृढ़ता न रखी, तो झूठ हमसे बोला ही जाएगा। तो वह कहता है, मैं दृढ़ निश्चय कर लिया हूं। और जितना दृढ़ निश्चय करता है, उतनी जल्दी टूट जाता है। जितना टूटता है, फिर उतना ज्यादा दृढ़ निश्चय करता है। लेकिन दृढ़ता किसके खिलाफ? जिसके भीतर विपरीत स्वर न रहा हो, उसके भीतर निश्चय जैसी कोई बात न रह जाएगी।
निश्चय करते हैं हम अपने ही भीतर छिपे हुए विपरीत के प्रति। मैं करता हूं निश्चय कि क्रोध नहीं करूंगा; क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे भीतर क्रोध करने वाला छिपा है। मैं तय करता हूं कि कामवासना में नहीं उतरूंगा; क्योंकि कामवासना मेरे भीतर छिपी बैठी है। मैं कसम खाता हूं ब्रह्मचर्य की; क्योंकि मुझे मालूम है, भीतर ब्रह्मचर्य को छोड़ कर और सब कुछ है। मेरे भीतर विपरीत स्वर हैं। इसलिए विपरीत को दबाने के लिए मुझे बड़ी दृढ़ता से निश्चय करने पड़ते हैं, रिजोल्यूट होना पड़ता है, संकल्पवान होना पड़ता है। दबा-दबा कर मैं अपने को किसी तरह चलाता हूं।
लेकिन जिनके भीतर विपरीत न रहा हो, वे किसके प्रति निश्चय करेंगे? वे निश्चय-शून्य होंगे। इसका मतलब आप यह मत समझ लेना कि वे डगमगाने वाले होंगे। इसका मतलब आप यह भी मत समझ लेना कि उन्हें साफ नहीं है, इसलिए अनिश्चित हैं। उन्हें इतना साफ है कि निश्चित होने की कोई जरूरत नहीं है। महावीर सुबह उठ कर कसम नहीं लेते कि आज मैं अहिंसा का व्यवहार करूंगा। अहिंसा इतनी सहज है कि इस निश्चय की कोई भी जरूरत नहीं है। अहिंसा होगी ही। महावीर को कोई नींद से उठा ले, तो भी अहिंसा होगी। इसके लिए किसी निश्चय की कोई भी जरूरत नहीं है। बुद्ध कोई निश्चित नहीं करते कि तुम यह पूछोगे, तो मैं यही उत्तर दूंगा। यह तो सिर्फ वे ही लोग निश्चित करते हैं, जिनके पास उत्तर देने की क्षमता नहीं है। तो पहले से तय करना पड़ता है। उत्तर तय होना चाहिए, साफ होना चाहिए। कोई पूछेगा ऐसा, तो ऐसा मैं कहूंगा। लेकिन जिनकी चेतना सजग है, उनके पास कोई निश्चय नहीं होता। पूछा जाता है कुछ, उत्तर आता है। उत्तर आता है, इसके लिए पूर्व-निश्चय नहीं होता। इसके लिए पूर्व-निश्चित होने की कोई जरूरत नहीं होती।
बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा है। बर्नार्ड शॉ बोलने जा रहा है किसी सभा में; और कोई पूछता है कि क्या बोलिएगा, कुछ तय कर रखा है?
बर्नार्ड शॉ ने कहा कि जब मुझे ही तय करना है और मुझी को बोलना है, तो वहीं बोल लेंगे और वहीं तय कर लेंगे। अगर तय किसी और को करना हो और बोलना मुझे हो, तो पहले से तैयारी करवानी पड़ेगी। जब मुझे ही यह काम करना है, तो वहीं ठीक समय पर कर लेंगे।
उस आदमी ने कहा, लेकिन निश्चित होना पहले से ठीक होता; कुछ भूल-चूक हो जाए!
वह आदमी ठीक कह रहा है। अगर उसको बोलना हो, तो वह तय करेगा तो ही बोल सकता है। और मजे की बात यह है कि तय करने वाले अक्सर बोलने में भूल करते हैं। नहीं तय करने वाले से भूल हो नहीं सकती; क्योंकि जो भी निकले, वही बोलना है।
इररिजोल्यूट, अनिश्चित का अर्थ यही है कि क्षण जो भी लाएगा, उसमें मैं पूरी तरह, जो भी मुझसे हो सकेगा, उसके लिए राजी हूं। उसके लिए पूर्व-धारणा नहीं है। मैं आज तय नहीं करता कि कल कैसे जीऊंगा। और जिस आदमी ने आज तय किया कि कल कैसे जीएगा, उसका कल आज ही मर गया। उसका भविष्य आज ही अतीत हो गया। अगर मैंने तय किया कि इस शब्द के बाद कौन सा शब्द मैं बोलूंगा, तो मैं एक यंत्र हो गया, आदमी न रहा। जिस आदमी को अपने पर जितना कम भरोसा है, उतना पूर्व-निश्चय करके जीएगा। कम भरोसे के लोग सब कुछ तय कर लेंगे, तभी चल सकेंगे। जिनका भरोसा पूर्ण है, वे बिल्कुल अनिश्चय से चलेंगे। उनका हर कदम तय करने वाला होगा। उनका हर कदम तय करने वाला होगा।
जीसस से उनके शिष्य पूछते हैं। उस रात जब वे पकड़े गए और दूसरे दिन सुबह जब सूली लगाई गई, तो उनका एक शिष्य पूछता है कि जब सूली लग जाएगी तो आप

क्या करिएगा? जीसस ने कहा, कम से कम सूली तो लगने दे। सूली लगने दे। मुझे पता नहीं है; जैसे तू देखेगा कुछ हो रहा है, वैसे ही मैं भी देखूंगा कि कुछ हो रहा है। फिर अभी से निश्चय कैसे किया जा सकता है?
हमारा कमजोर मन सब निश्चय करके चलता है। ध्यान रखना, निश्चय करना कमजोर मन का लक्षण है। आमतौर से हम मानते हैं कि निश्चय करने वाला बहुत मजबूत मन वाला है। ठीक है, कमजोर मन निश्चय करे, तो उन कमजोर मनों से मजबूत हो जाएगा जो निश्चय न करें। कमजोर मन निश्चित करे, तो उन मनों से मजबूत हो जाएगा जो कमजोर हैं और निश्चित न करें।
लेकिन लाओत्से उन संतों की बात कर रहा है, जिनका मन ही न रहा। कमजोर मन
की तो बात ही अलग, मन ही न रहा। और मन जब तक रहेगा, कमजोरी रहेगी। मन कमजोरी है। वे क्या निश्चय करें? समय आता है और वे जीते हैं पल-पल, मोमेंट टु मोमेंट। दूसरे पल की कोई आयोजना नहीं है।
जीसस की प्रार्थनाओं में प्रसिद्ध प्रार्थना है कि हे परमात्मा, मुझे
आज की रोटी दे; कल की मैं चिंता न करूं। आज काफी है। आज का मतलबः अभी, यही क्षण पर्याप्त है।
वे सतत अनिर्णीत हैं। उनके पास कोई भी निर्णय नहीं है। क्योंकि उनके पास वे स्वयं हैं। जिनके पास स्वयं का होना नहीं है, वे निर्णय के आधार पर जीएंगे।
बुद्ध के पास कोई आता है; बुद्ध एक जवाब देते हैं। वही प्रश्न लेकर दूसरा आदमी आता है; बुद्ध दूसरा जवाब देते हैं। आनंद बहुत बार बुद्ध से कहता है कि आपको ऐसा नहीं लगता कि आप असंगत हैं, इनकंसिस्टेंट हैं! क्षण भर पहले आपने एक आदमी से यह कहा था और क्षण भर बाद ही आपने दूसरे आदमी से यह कहा। और उन दोनों के प्रश्न समान थे। बुद्ध कहते हैं, उन दोनों के प्रश्न समान थे; लेकिन वे दोनों व्यक्ति अलग थे। और एक ने सुबह पूछा था और एक ने दोपहर। सुबह से दोपहर तक गंगा का कितना जल बह जाता है! मैं सुबह से बंधा हुआ नहीं हूं। दोपहर हो गई, अब दोपहर का ही उत्तर होगा। सांझ होगी, सांझ का ही उत्तर होगा।
इसलिए अगर बुद्ध में कोई संगति खोजने जाए, तो बहुत गहरी खोज करनी पड़े;
तब संगति मिलेगी। ऊपर तो असंगति मिलेगी। एक वक्तव्य दूसरे वक्तव्य को खंडित करता हुआ मालूम पड़ेगा। सिर्फ क्षुद्र बुद्धि के लोग, मीडियाकर लोग कंसिस्टेंट होते हैं। उनकी जिंदगी भर खोज जाओ, तो जो उन्होंने जब दूध की चम्मच उनके मुंह में थी तब कहा था, जब वे मर रहे होंगे तब भी वही कह रहे होंगे। एकदम कंसिस्टेंट होंगे, संगत होंगे। उसका मतलब यह है कि झूले के बाद वे जीए ही नहीं। झूला ही उनकी कब्र हो गया। जो जीएगा, वह क्षुद्र अर्थों में संगत नहीं हो सकता; एक आंतरिक संगति होगी। उसे खोजना मुश्किल है। उसे वही खोज सकता है, जो आंतरिक संगति पर ध्यान रखे।
बुद्ध एक आदमी से कहते हैं ईश्वर नहीं है, एक से कहते हैं ईश्वर है, तीसरे के संबंध में चुप रह जाते हैं। अब इतना असंगत--ईश्वर है, ईश्वर नहीं है, दोनों। लेकिन भीतर एक संगति है गहरी।
आनंद रात में पूछता है कि मैं सो न पाऊंगा, मैं मुश्किल में पड़ गया। मैंने तुम्हारे तीनों उत्तर सुन लिए। तो बुद्ध कहते हैं, पहली तो बात यह आनंद कि जो तुझे नहीं कहा गया था, वह तुझे सुनना नहीं था। न तूने पूछा था, न तेरा सवाल था, तो तूने जवाब क्यों लिया? ऐसे अगर तू हर जवाब इकट्ठे करेगा, तो कैसे सो पाएगा? और जब मैं देने वाला सो रहा हूं मजे से, तुझे चिंता क्या है?
पर वह आनंद कहता है कि नहीं, आपकी आप जानें; बाकी मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं कि ये सब बातें एक साथ कैसे हो सकेंगी! सुबह आपने कहा ईश्वर नहीं है; दोपहर कहा है; सांझ चुप रह गए, जब किसी ने पूछा। असंगति दिखाई पड़ती है। मुझे थोड़ी शांति दे दें, थोड़ा बता दें, तो मैं सो जाऊं।
तो बुद्ध कहते हैं, असंगत मैं हो कैसे सकता हूं! असंगत तो वह आदमी हो सकता है, जिसका सिद्धांत तय हो। सुबह जो आदमी आया था--मैं तो दर्पण की तरह हूं--उसकी जो शक्ल थी, वह मुझमें बन गई। दोपहर जो आदमी आया, वह दूसरा था।
मैं तो दर्पण की तरह हूं। मेरा अपना कोई सिद्धांत बांध कर नहीं बैठा हूं।
उसकी जो शक्ल थी, वह मुझमें बन गई। क्या तुम दर्पण से कहोगे कि बड़े असंगत

हो! सुबह एक शक्ल दिखाई दी, दोपहर दूसरी, सांझ तीसरी। जो आदमी सुबह आया था पूछते कि ईश्वर है, वह नास्तिक था। वह मानता था कि ईश्वर नहीं है। वह मुझसे पूछने आया था, ताकि मैं भी गवाह बन जाऊं और कहूं कि नहीं है। वह आदमी गलत था। उसने बिना खोजे मान लिया कि ईश्वर नहीं है। तो मुझे उसे तोड़ना पड़ा और मुझे कहना पड़ा बलपूर्वक कि ईश्वर है। मैंने उसे हिला दिया। अब उसे खोज में लगना पड़ेगा। अब मैं उसका पीछा करूंगा जिंदगी भर। जब भी उसको ख्याल आएगा, ईश्वर नहीं है, तब बुद्ध की शक्ल उसे याद आएगी कि उस आदमी ने कहा था है। अब मैं उसका पीछा करूंगा।
जो आदमी दोपहर आया था, वह आस्तिक है; उसी तरह आस्तिक, जैसे सुबह वाला नास्तिक था। खोजा नहीं है, मान लिया कि है। उसकी आस्तिकता उतनी ही अज्ञानपूर्ण थी, जितनी सुबह वाले की नास्तिकता। मुझे उसे भी हिलाना पड़ा। मुझे उसे भी यात्रा पर भेजना पड़ा। मैंने कहा, ईश्वर? बिल्कुल नहीं है। अब यह आदमी जब मंदिर में पूजा का थाल सजा कर खड़ा होगा, तो कहीं न कहीं मैं इसे दिखाई पड़ता ही रहूंगा--बुद्ध ने कहा है। मुझसे पूछने इसीलिए आया था कि बुद्ध का वजनी सबूत साथ हो जाए। बुद्ध भी कह दें है, तो अपनी पूजा में वह और गहन उतर जाए। लेकिन उसकी पूजा झूठी है; क्योंकि अभी होने का बोध ही उसका असत्य है। अभी उसे कुछ भी पता नहीं है। बिना जाने माना कि है, बिना जाने माना कि नहीं है, ये दोनों एक जैसे हैं। आनंद, यह तुझे लगता है कि यह विपरीत। और इसलिए मुझे इनको विपरीत उत्तर देने पड़े। लेकिन दोनों उत्तरों में एक संगति है। मैं दोनों को उनकी अज्ञान की स्थिति से हिलाना चाहता था। सांझ जो आदमी आया था, वह न आस्तिक है, न नास्तिक। उसकी जिज्ञासा गवाह
को खोजने की जिज्ञासा नहीं थी। वह मुझसे कुछ अपने को सिद्ध करवाने नहीं आया था। उसकी जिज्ञासा बड़ी सरल और निर्दोष थी। उसने पूछा था, ईश्वर है? उसकी कोई मान्यता नहीं थी। बिना मान्यता के उसने पूछा था, ईश्वर है? ऐसे आदमी से अगर मैं कहूं है, तो शायद वह मेरे है के कारण मान ले कि है। ऐसे आदमी से मैं कहूं कि नहीं है, तो शायद मेरे नहीं है के कारण मान ले कि नहीं है। इतना निर्दोष कि उसके सामने शब्द का उपयोग करना खतरनाक था। इसलिए मैं मौन रह गया। और मेरे मौन ने ही उसको भी हिलाया और वह उत्तर लेकर गया है कि अगर ईश्वर को जानना है, तो मत पूछो है या नहीं, मौन हो जाओ।
ये असंगत हैं बातें--ऊपर से देखने पर। भीतर एक संगति का तार है। वह गूढ़ है, वह छिपा है। शब्द में नहीं पकड़ में आएगा।
ऐसे व्यक्ति अनिर्णीत, इररिजोल्यूट, अनिश्चित... कोई सिद्धांत नहीं
है उनका। कोई दृढ़ बंधन नहीं है उनका, कोई बंधन नहीं। मुक्त जैसे आकाश में उड़ने को सदा तत्पर। और चौकन्ने। ध्यान रहे, जो जितना निर्णीत होगा, उतना मूर्च्छित हो जाएगा। जितना अनिर्णीत होगा, उतना चौकन्ना होगा। आप निर्णीत होते ही इसीलिए हैं, इसीलिए होना चाहते हैं, ताकि शांति से सो सकें। यह चौकन्नापन न रहे चौबीस घंटे।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि आप पक्का कह दें, ईश्वर है? मैं उनसे कहता हूं, मैं कितना ही पक्का कहूं, इससे तुम्हें क्या होगा? वे कहते हैं कि हमें भरोसा हो जाएगा, निर्णय हो जाएगा कि ईश्वर है।
यह किसलिए कह रहे हैं? इसलिए नहीं कि ईश्वर को खोजना चाहते हैं; इसलिए
कि है, ऐसा पक्का हो जाए, तो इनको चौकन्ने होने की जरूरत न रहे, खोजना न पड़े। खोजने में खतरा है। खोजने में श्रम है। खोजने में शक्ति लगेगी। साहस की जरूरत होगी। चुकाना पड़ेगा मूल्य। वह सब झंझट न हो, कुछ करना न पड़े; कोई कह दे। वे कहते हैं मुझसे कि आप कह भर दें। आप क्यों संकोच करते हैं? पक्का कह दें कि है, तो हम निश्चिंत हो जाएं।
निश्चिंत आदमी किसलिए होना चाहता है? ताकि मूर्च्छित हो जाए, सो जाए, कुछ करना न पड़े। जितना अनिर्णीत होगा व्यक्ति, उतना सजग होगा।
कभी आपने ख्याल किया? एक आदमी आपके पड़ोस में, अजनबी, आकर बैठ जाता है; आपकी रीढ़ फौरन कुर्सी को छोड़ कर चौकन्नी हो जाती है। एक अजनबी आदमी बगल में बैठा है, तो आप चौकन्ने हो जाते हैं। फिर आप सिलसिला शुरू करते हैंः नाम? धाम? कितनी तनख्वाह मिलती है? कुछ ऊपर भी मिल जाता है या नहीं? थोड़ी देर में आप अपनी रीढ़ कुर्सी से टिका लेते हैं कि ठीक है जान लिया। अब आप

निश्चिंत हो गए। अब कोई इसका भय रखने की जरूरत नहीं है। अपने ही जैसा चोर है, कोई अजनबी नहीं है, ठीक अपने ही जैसा है। अब आप निश्चिंत हो जाते हैं। हमारी जो इतनी आतुरता होती है परिचय बनाने की, वह इसलिए नहीं होती कि
हम दूसरे में उत्सुक हैं। हमारी आतुरता इसीलिए होती है, ताकि हमें निश्चिंत करो, साफ हो जाए कि कौन हो--हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि जैन हो--तो हम पक्का कर लें। एक कैटेगरी हमारे मन में है कि मुसलमान ऐसा होता है, जैन ऐसा होता है, हिंदू ऐसा होता है। तो हम जल्दी से अपने खांचे में तुम्हें बिठाएं और निश्चिंत हो जाएं। यह तुम्हारी वजह से बेचैनी पैदा हो रही है। यह मन पूछता है कि कौन है यह आदमी?
यह जो पूरे समय हम हमेशा सोने की कोशिश कर रहे हैं। हमारा धर्म, हमारे शास्त्र, हमारे तथाकथित साधु-संत, वे सब हमें सोने में सहायता देते हैं, वे सांत्वना देते हैं।
लाओत्से कहता है, अनिश्चित थे वे, अनिर्णीत थे वे, चौकन्ने थे।
कुछ भी निश्चित न था, तो चौकन्ना रहना ही पड़ेगा। सारा जगत अजनबी है। किसी से कोई परिचय नहीं है। सब परिचय झूठा है। तो चौकन्ना रहना पड़ेगा। एक-एक इंच चल रहे हैं, तो अनजान रास्ते पर चल रहे हैं। अनचार्टर्ड, कोई नक्शा नहीं है, समुद्र का कोई पता नहीं है कि कहां ले जाएगा, हाथ में कोई दिशा- सूचक यंत्र नहीं है, तो चौकन्ना रहना ही पड़ेगा। जितना अनिर्णीत होगा व्यक्ति, उतना ही ज्यादा चौकन्ना होगा। जितना निर्णीत होगा, उतना सुरक्षित होगा, उतना मूर्च्छित होगा।
यह भी लाओत्से भीतर की ही बात कर रहा है--अनिर्णीत और चौकन्ने! चौकन्ने का मतलब है अलर्ट। जैसे कि सब ओर से खतरा घिरा हो!
कभी आपने किसी हिरन को देखा है जंगल में? जरा सी आवाज होती है कहीं, पत्ता सरकता है, हिरन जैसा अलर्ट, चौकन्ना होकर खड़ा हो जाता है। उसका रोआं- रोआं सुनने लगता है, कहां क्या हो रहा है। उसका पूरा व्यक्तित्व एक जागरूकता बन जाता है। खतरा चारों तरफ है। एक छोटा सा खरगोश भी जरा सी आवाज सुन कर--कभी उसे देखें--कैसा चौकन्ना हो जाता है! बिल्ली सो रही हो आपके घर में, जरा सी आवाज हो, एकदम चौकन्नी हो जाती है। नींद से एकदम छलांग जागरूकता में लग जाती है। खतरा!
आदमी सबसे सुरक्षित जानवर है। और आदमी ने इतनी सुरक्षा कर ली है कि जानवर जैसा चौकन्नापन भी उसके पास नहीं है। सुरक्षित है। मकान है, दरवाजा है, ताला है, सब सुरक्षा है। घर में पैसा था, वह भी बैंक में है। सब सुरक्षित है। कहीं कोई खतरा नहीं है। मर भी जाए, तो लाइफ इंश्योरेंस है। मर भी गए, तो भी कोई खतरा नहीं है, कोई खतरा नहीं है। मरने में भी कोई डर नहीं है। क्योंकि पैसा तो मिलने ही वाला है। यह सारी सुरक्षा, भीतर के चौकन्नेपन को खतम कर दिया। हमसे पशु भी ज्यादा चौकन्ने हैं।
लाओत्से कहता है, संत ऐसा ही चौकन्ना होता है भीतर से। कोई सुरक्षा नहीं बनाता। कोई इंतजाम नहीं बनाता। चारों तरफ जैसे खतरा हो प्रतिपल, उस खतरे में जीता है।
खतरा है भी। हम कितना ही इंतजाम करें, खतरा मिटता नहीं। खतरा है ही। मौत तो हर वक्त मौजूद है, चारों तरफ मौजूद है। किसी भी क्षण। लेकिन हम उसे टालते रहते हैं, स्थगित करते रहते हैं। हम मानते रहते हैं मन में कि मरते होंगे दूसरे लोग, यह कोई अपना काम नहीं है। मौत हमेशा दूसरे की होती है, इतना तो पक्का ही है, अपनी कभी नहीं होती। जब भी देखते हैं, कोई और मरता है।
निश्चिंत रहते हैं कि हमेशा और ही कोई मरता है। हम तो कभी नहीं मरते। लेकिन वे जो मर रहे हैं, वे भी इतने ही निश्चिंत थे। मौत है चारों तरफ।
किसी भी क्षण सब खो जा सकता है। ख्याल करें, एक आदमी आपकी छाती पर छुरा रख दे और कहे कि बस, एक सेकेंड! जो भी सोचना हो, सोच लें। सोचना बंद हो जाएगा।
एक सेकेंड ही बचा, तो सोचना क्या है? सोचना एकदम बंद हो जाएगा। सब सुरक्षा टूट गई। सोच-विचार कुछ न रहा। यही क्षण सब कुछ हो गया; क्योंकि मौत खड़ी है। चौकन्ने हो जाएंगे।
तो बुद्ध तो अपने भिक्षुओं को मरघट भेजते थे कि तुम तब तक ध्यान में न
जा सकोगे, जब तक तुम मौत की निकटता अनुभव न करो। तो जाओ, मरघट पर बैठो, जलते हुए लोगों को देखो। लाशें गलती हुई देखो। जानवर लाशों को तोड़ रहे हैं,

खींच ले जा रहे हैं, वह देखो। हड्डियां, खोपड़ियां बिखरी हुई देखो। रहो मरघट पर। जब तुम्हें मौत ऐसा मालूम पड़ने लगे कि चारों तरफ है; सुबह उठते हो, और लाश जल रही है; दोपहर उठते हो, और लाश जल रही है; रात उठते हो, और लपटें उठ रही हैं; जहां भी जाते हो, हड्डियां हैं; जहां भी हिलते हो, खोपड़ियां हैं; तुम्हें मौत चारों तरफ मालूम होने लगे।
मोग्गलायन जब बुद्ध के पास पहले गया, तो बुद्ध ने कहा, तू मरघट जा मोग्गलायन, वहीं तू चिंतन कर। मोग्गलायन ने कहा, आप मौजूद हैं, तो आपके पास ही चिंतन करूं। मरघट से क्या होगा? बुद्ध ने कहा, तू अभी चिंतन न कर सकेगा; क्योंकि मैं भी तेरे लिए एक सुरक्षा हूं कि बुद्ध के पास है। क्या डर? पहले तू जा, पहले मौत को अपने पास देख! जिस दिन मौत तेरे पास होगी, उसी दिन मैं भी तेरे पास हो सकता हूं, उसके पहले नहीं।
मोग्गलायन ने कहा कि मरघट पर तो बहुत डर लगता है। मैं तो आपके पास ही ठीक हूं।
हम संतों के पास भी जाते हैं, तो सुरक्षा के लिए। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में जाते हैं--सुरक्षा के लिए। इंतजाम कर रहे हैं हम। और आगे तक का इंतजाम कर रहे हैं। कहीं कोई खतरा न हो, सब तरफ व्यवस्था बिठा ले रहे हैं। लोग आते हैं, वे पूछते हैं, आत्मा तो निश्चित ही अमर है! निश्चित ही! अनिश्चय उनके भीतर साफ है। डरते हैं वे भी कहने में कि आत्मा अमर है।
एक महिला मेरे पास आई थी। वह कुछ अनुसंधान करती है आत्मा की अमरता के संबंध में, पुनर्जन्म के संबंध में। पर मैं थोड़ा हैरान हुआ; क्योंकि वह पुनर्जन्म और आत्मा की अमरता के सिद्धांतों की बात करती है, लेकिन बहुत भयभीत है। हाथ-पैर उसके कंपते हैं। जब वह आत्मा की अमरता की बात भी करती है, तब भी हाथ कंपता रहता है। वह मेरे पास आई थी, तो मैंने उससे कहा कि हाथ तू ऊंचा कर और फिर तू बात कर, ताकि मैं तेरे हाथ को देखता रहूं। उसने कहा, क्या मतलब?
एक कागज पड़ा था, मैंने उसे कागज दे दिया कि यह कागज तू हाथ में पकड़ ले, ताकि तेरे हाथ का कंपन मुझे कागज में साफ दिखाई पड़े। फिर तुझे जो बात करनी है, कर। उसने कहा, हाथ तो मेरे कंपते हैं और पसीना भी बहुत आता है, नर्वसनेस मुझे बहुत है। लेकिन आत्मा अमर है! शरीर ही मरता है; आत्मा कभी नहीं मरती। मैंने कहा, तुझे अनुसंधान की यह प्रेरणा कैसे मिली? तूने कुछ अध्ययन किया, कुछ ध्यान किया, आत्मा की तुझे कोई झलक मिली? उसने कहा कि नहीं, बचपन में ही मेरी मां मर गई। फिर मेरे पिता मर गए। और मृत्यु मेरे ऊपर भारी हो गई। नहीं, लेकिन मृत्यु तो सब शरीर की है। आत्मा तो अमर है।
भय मृत्यु का है, आत्मा की अमरता की पकड़ है यह भय से सुरक्षा के लिए-- कोई भरोसा दिला दे! तो अब वह अनुसंधान में लगी है; इसलिए नहीं कि आत्मा अमर है, इससे किसी को कुछ लाभ होगा; अगर सिद्ध हो जाए, तो वह जो मृत्यु का भय पीछा कर रहा है, वह छूट जाए।
बुद्ध ने मोग्गलायन से कहा कि पहले तू मौत को अनुभव कर, तभी तू चौकन्ना हो सके! और चौकन्ना हो सके, तो ध्यान में जा सके; नहीं तो ध्यान में कभी नहीं जा सकेगा।
ध्यान का अर्थ ही हैः एक चौकन्नापन, एक ताजगी, सतत जागरूकता। एक क्षण
को भी भीतर मूर्च्छा नहीं।
जैसे चारों तरफ व्यक्ति खतरों से घिरा हो, ऐसे वे चौकन्ने और अनिर्णीत थे!
"वे जीवन में जैसे कि अतिथि हों, ऐसे गंभीर अभिनय में रत थे।"
अतिथि आपके घर आता है, मेहमान आपके घर आता है। आप मेजबान होते हैं, आतिथेय होते हैं, होस्ट होते हैं। अतिथि घर में आता है, नया हो, तो गंभीर अभिनय उसे करना पड़ता है। जैसे-जैसे पुराना होने लगता है, वैसे-वैसे गंभीर अभिनय छोड़ने लगता है। आतिथेय भी नया होता है, तो पहले गंभीर अभिनय करता है। कुर्सियां पड़ोस की उठा लाता है। घड़ी दीवार पर टांग देता है किसी की मांग कर, रेडियो लाकर रख देता है। टेलीफोन, जिसमें कोई कनेक्शन नहीं, उसे जमा देता है। फिर मेहमान परिचित होने लगता है, तो ये सामान धीरे-धीरे हटा दिए जाते हैं। और जब मेहमान बहुत परिचित हो जाता है, तो मेहमान को हटाने की कोशिश शुरू हो जाती है।

अपरिचय में एक अभिनय है। तो अपरिचित आदमी से जब हम मिलते हैं, तो हम नहीं मिलते सिर्फ हमारे बनावटी चेहरे मिलते हैं। इससे बड़ी भ्रांति होती है। अगर दो व्यक्ति मित्र बन जाते हैं, तो पहली दफा जो मुलाकात होती है, वह उन दोनों की नहीं होती, वह दो झूठे चेहरों की होती है। दो-चार घंटे में--वे चेहरे कब तक चल सकते हैं--वे सरक जाते हैं, असली चेहरा बाहर आ जाता है। और तब हमें ऐसा लगता है बड़ा धोखा हुआ, क्या समझा था इस आदमी को और क्या निकला! कोई धोखा नहीं हुआ है, कोई धोखा नहीं हुआ है। जीवन में अपरिचय हो, तो लोग एक-दूसरे के प्रति गंभीर भाव रखते हैं, ताकि वही प्रकट हो जो होना चाहिए--शिष्ट, आचरणपूर्वक, व्यवस्थित, अनुशासित। फिर जब निकटता बढ़ती जाती है, तो अनुशासन छूट जाता है। दो मित्रों की गहरी मित्रता का मतलब ही यह होता है कि अब मजे से एक-दूसरे को गाली देते हैं और बुरा नहीं मानते। गंभीरता चली गई है।
लाओत्से कहता है कि वे जीवन में ऐसे जीते हैं, जैसे अतिथि हों--पूरा जीवन। पूरा जीवन, हर स्थिति में वे इस जगत में एक आउटसाइडर हैं, अतिथि हैं। इस जगत को कभी अपना घर नहीं मान पाते। संतजन इस जगत को कभी अपना घर नहीं मान पाते, कभी एट-होम इस संसार में वे अनुभव नहीं कर पाते।
कोलिन विल्सन ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी हैः दि आउटसाइडर। उस किताब में उसने बड़ी मेहनत ली है कि इस जगत के जो भी महत्वपूर्ण लोग हैं, वे सब आउटसाइडर्स हैं। बुद्ध हों, कि सुकरात हो, कि लाओत्से हो, सब आउटसाइडर्स हैं। यहां वे ऐसे रहते हैं, जैसे एक अपरिचित घर में अतिथि की तरह हों। और यह अतिथिपन उनका कभी नहीं टूटता, क्योंकि अजनबीपन कभी नहीं टूटता।
यह बड़े मजे की बात है, हम अपने से जितने कम परिचित होते हैं, उतना ही हमें लगता है कि हम दूसरों से ज्यादा परिचित हैं। और जब अपने से परिचय बढ़ता है, तो दूसरे से अपरिचय बढ़ने लगता है। इसे ऐसा समझें कि जो आदमी समझता है कि मैं इतने लोगों को जानता हूं, एक बात पक्की समझना कि अपने को नहीं जानता होगा। और जो आदमी अपने को जान लेता है, तत्क्षण उसे पता चलता है कि मैं किसी को भी नहीं जानता। अतिथि की भांति वैसा आदमी जीता है।
लेकिन लाओत्से बहुत मजे की बात इसमें कह रहा है कि वे जीवन में ऐसे होते हैं, जैसे अतिथि हों--ऐसा गंभीर अभिनय करते हैं। अतिथि की तरह होते हैं; और जो कुछ भी वे करते हैं वह एक अभिनय है, वास्तविकता नहीं है। थोड़ा उदाहरण लें, तो ख्याल में आ सके।
बुद्ध वर्षों के बाद घर लौटे हैं। तो आनंद ने बुद्ध से एक प्रतिज्ञा
ली थी दीक्षा के पहले कि मैं सदा साथ रहूंगा। बुद्ध राजमहल में आ गए हैं। राजधानी के द्वार पर सारे नगर ने स्वागत किया। सिर्फ यशोधरा, पत्नी नहीं आई। बुद्ध ने आनंद से कहा, देखते हो आनंद, यशोधरा दिखाई नहीं पड़ती।
आनंद को बड़ी चिंता हुई, कि बुद्ध होकर और अभी भी पत्नी का ख्याल! बारह वर्ष, इतने परम ज्ञान को पाया, अभी भी पत्नी का ख्याल! पर आनंद ने धीरज रखा कि देखेंगे, समय पर पूछ लेंगे।
फिर बुद्ध महल पहुंचे हैं। द्वार पर भी पत्नी नहीं है। फिर महल के भीतर प्रविष्ट हुए हैं। तो बुद्ध ने आनंद से कहा कि आनंद, तुझे मैंने आश्वासन दिया है कि तू जहां भी मेरे साथ रहना चाहेगा, रहेगा। अभी भी मैं अपना वचन नहीं तोडूंगा, लेकिन फिर भी तुझसे प्रार्थना करता हूं कि पत्नी बारह वर्ष से नाराज बैठी है; छोड़ कर मैं उसे भाग गया था। कोई और उपाय न था, कोई और उपाय न था। और अब अगर पहली दफा बारह वर्ष के बाद भी मैं किसी को लेकर भीड़-भड़क्के में उससे मिलूं, तो उसकी नाराजगी नहीं टूटेगी। उसे थोड़ा मौका दे कि वह नाराज हो ले, चिल्ला ले, जो उसने बारह वर्ष में इकट्ठा किया हो, वह निकाल ले। तो अच्छा हो कि तू थोड़ा पीछे रुक जा! मैं उससे अकेले में ही जाकर मिल लूं।
आनंद और भी घबड़ाया। पत्नी से अकेले में मिलने की क्या बुद्ध को जरूरत है?
लेकिन बुद्ध ठीक कह रहे हैं। और बुद्ध का अकेले मिलना परिणामकारी हुआ। और यशोधरा ने उनको अकेले आते देख कर निश्चित ही क्रोध निकाला, चिल्लाई, नाराज हुई, सब लांछनाएं दीं कि तुमने धोखा दिया! और तुमने इतना भी भरोसा न किया मेरा कि तुम मुझसे पूछ तो लेते!

बुद्ध चुपचाप खड़े होकर सुनते हैं। क्रोध निकल गया, नाराजगी निकल गई, फिर वह रोने लगी। फिर बारह वर्ष की पीड़ा है और बारह वर्ष का दुख है, वह सब निकला। फिर उसके आंसू सूखे। बुद्ध चुपचाप खड़े हैं। वह सब कहे चली जा रही है। फिर उसने आंखें ऊपर उठाईं, बुद्ध की तरफ देखा। और तब यशोधरा ने कहा कि तुम अकेले आए, इस बात ने ही मुझे बदल दिया। अगर तुम भीड़-भड़क्का साथ लेकर आते, तो मैं मानती कि मेरे लिए तुम्हारे मन में कोई भी जगह नहीं है। बुद्ध फिर भी चुपचाप खड़े हैं। पत्नी उनके पैरों पर गिर पड़ी है। नाराजगी निकल गई, दुख निकल गया; वह क्षमा मांग रही है। बुद्ध ने उसे कहा कि मैं जो लेकर आया हूं, एक ही आकांक्षा मेरे मन में रही है कि तुझे भी वह कब मिल जाए!
यह सब अभिनय है। बुद्ध के तल पर यह सब अभिनय है। लेकिन पत्नी दीक्षित
हो गई। वह भिक्षुणी हो गई। और पांच साल गुजर गए, ध्यान में गहरी उतर गई। तब एक दिन यशोधरा ने बुद्ध से कहा, तुमने खूब अभिनय किया! कितनी मैं पुलकित हुई उस दिन जान कर कि नगर के द्वार पर आकर तुमने पूछा, आनंद से कहा, यशोधरा नहीं दिखाई पड़ती। बारह वर्ष का दुख मेरा छूट गया। कितनी पुलकित हुई उस दिन जान कर कि तुम अकेले आए हो, आनंद को बाहर रोक कर। तुम्हारे बाबत जितनी नाराजगी थी, सब बह गई। लेकिन अब मैं जानती हूं कि तुमने खूब अभिनय किया। तुम्हारा अभिनय ही मुझे बदलने का कारण हो सका।
लाओत्से कहता है, ऐसे व्यक्ति इस जगत के भीतरी हिस्से कभी नहीं हो पाते; लेकिन निरंतर अभिनय करते रहते हैं कि इस जगत के भीतरी हिस्से हैं। ऐसे व्यक्ति इस जगत में कोई संबंध निर्मित नहीं कर पाते; लेकिन निरंतर अभिनय करते रहते हैं कि सब संबंध बहुत गहरे हैं। और यह अभिनय बड़ा गंभीर है। होगा ही गंभीर, अन्यथा अभिनय टिकेगा नहीं। अभिनय गंभीर न हो, तो टिक नहीं सकता। एक तो अभिनय और फिर गंभीर न हो, तो टिकेगा नहीं।
संत का यह भी एक भीतरी लक्षण कि जगत में वह बाहरी होकर भीतरी की तरह जीएगा, अतिथि की तरह जीएगा और एक गहन अभिनय में संलग्न होगा। कर्ता वह नहीं है अब। अब तो जो भी है, वह बाहर है और खेल है। वह रामलीला में राम का पात्र भर, राम का अभिनय भर कर रहा है। वह असली राम नहीं है।
और अगर हम असली राम का भी पता लगाने जाएं, तो फिर बहुत मजा आएगा। अगर असली राम का भी हम पता लगाने जाएं, तो वे भी रामलीला में एक अभिनय के पात्र से ज्यादा नहीं थे। और वही उनकी खूबी है। इसलिए जिस सीता को खोजने के लिए जिंदगी दांव पर लगाएं, उस सीता को एक नासमझ धोबी के कुछ कहने से जंगल छोड़ दें! जिस राज्य को जीतने के लिए अथक श्रम लें, फिर उसे ऐसा ही दान कर दें! अगर राम के लिए यह सब वास्तविक हो, तो बहुत कठिन हो जाए। यह वास्तविक नहीं है। एक बड़े अभिनय का हिस्सा है।
और राम अति गंभीर हैं। अन्यथा इस छोटी सी बात के लिए, धोबी की बात के लिए सीता को छोड़ने का कोई अर्थ न था। लेकिन अति गंभीर हैं। अभिनय को पूरा कर रहे हैं। इसलिए हमने अच्छे शब्द खोजे हैं; हम इसे कहते हैंः रामलीला। यह राम का अभिनय है कि राम रो रहे हैं। सीता खो गई है; छाती पीट रहे हैं। जंगल में दरख्तों से पूछ रहे हैं कि मेरी सीता कहां है? और मजा यह है कि एक सोने के हिरन के पीछे भागे हैं। हमको भी पता है कि सोने का हिरन नहीं होता। राम को भी पता होगा ही। सोने के हिरन के पीछे भागे हैं। वह एक बड़े अभिनय का हिस्सा है। सोने के हिरन के पीछे भागे हैं, फिर लक्ष्मण को चिल्लाए हैं कि बचाओ!
सीता ने भी बहुत मजे की बात कही है। लक्ष्मण जाने को तैयार नहीं है छोड़ कर। पहरे पर उसे खड़ा किया है। और राम कह गए हैं कि हटना मत। लेकिन राम की जिंदगी खतरे में है, कुछ उपद्रव हुआ है। और चिल्लाहट आती है कि मुझे बचाओ लक्ष्मण, भागो! लेकिन लक्ष्मण हट नहीं सकते। तो सीता लक्ष्मण से कहती है कि मुझे पता है भलीभांति कि तुम चाहते हो तुम्हारा भाई मर जाए, तो तुम मुझे पा लो।
यह बड़ी तीखी बात है। और सीता इसे तभी कह सकती है, जब यह अभिनय का हिस्सा हो। अन्यथा इसका कोई अर्थ नहीं है। मगर लक्ष्मण बेचारा फंस जाता है। उसे क्रोध आ जाता है कि हद हो गई बात की। मैं इसलिए नहीं जा रहा हूं कि राम मुझे कह गए हैं कि पहरा देना और सीता यह कह रही है कि मैं जानती हूं पहले से कि तुम्हारी नजर मुझ पर है। तो राम भूल गए लक्ष्मण के ख्याल से,

सीता भूल गई। क्रोध भयंकर हो गया। अहंकार को भारी चोट लग गई। लक्ष्मण सीता को छोड़ कर चला जाता है।
यह एक बड़े अभिनय का हिस्सा है। सीता के मुंह से ये वचन बहुत लोगों को बहुत कष्टपूर्ण हुए हैं। बहुत कष्टपूर्ण हुए हैं! लेकिन उन्हीं को होंगे, जो इस लीला की पूरी व्यवस्था को न समझें, जो इसे बहुत वास्तविक समझ लें। उन्हें सीता के शब्द अभद्र मालूम होंगे और व्यवहार कठोर मालूम होगा। और यह बात ओछी मालूम होगी। लेकिन यह अभिनय, मात्र अभिनय का हिस्सा है।
लेकिन लक्ष्मण को यह स्थिति नहीं है। लक्ष्मण को यह स्थिति नहीं है। लक्ष्मण के लिए सभी कुछ वास्तविक है। इस पूरे खेल में राम को हमने प्रमुख माना और रामलीला नाम दिया, उसका कारण है। ऐसे कोई चाहे तो भरत को भी प्रमुख मान सकता था। और कोई कमी न होती; वह नायक कुछ कम नहीं है राम से। रावण को भी प्रमुख माना जा सकता था; क्योंकि उसके बिना भी यह घटना नहीं घट सकती। और सीता तो केंद्रीय है ही; क्योंकि सारा जाल उसके आस-पास फैलता और बड़ा होता है। लेकिन हमने सब का नाम छोड़ कर राम को नायक माना। क्योंकि उस पूरे खेल में खेल ही जानने वाले वे अकेले ही व्यक्ति गहरे हैं। उनको यह सारे का सारा खेल है, यह सारी लीला है।
"उनकी अस्मिता सतत विसर्जित होती रहती है, जैसे कि प्रतिपल बिखरता हुआ बर्फ हो।"
जैसे बर्फ पिघल रहा हो धूप में, ऐसे संत की अस्मिता, आत्मा, होने का भाव कि मैं हूं, वह पिघलता चला जाता है। यह थोड़ा सोचने जैसा है। यही फर्क गहरा है। संत तब तक संत कहा जाएगा, जब तक उसकी अस्मिता का कुछ हिस्सा अभी और भी पिघलने को शेष रह गया है। जिस दिन अस्मिता बिल्कुल पिघल जाएगी, उस दिन संत संत भी नहीं रह जाएगा। उस दिन वह परमात्मा ही हो गया। अस्मिता, आत्मा का भाव... ।
अब इसे हम दो तरह से ले लें। हमारे भीतर अहंकार है--मैं हूं। यह बिल्कुल झूठा मैं है। यह पिघल जाए, तो संतत्व पैदा होगा। संतत्व में मैं पर तो जोर नहीं रहेगा, हूं पर जोर रहेगा। मैं हूं, आई एम। हमारा जोर मैं पर है। हूं सिर्फ एक पूंछ है, छाया है। संत का मैं गिर जाएगा, तभी वह संत होगा। लेकिन हूं रह जाएगा--हूं, अस्मिता। अहंकार--मैं, ईगो। एमनेस, अस्मिता-- सिर्फ होने का भाव। लेकिन यह भी उसका पिघलता चला जाएगा बर्फ की तरह। और जिस दिन यह भी पिघल जाएगा, जिस दिन मैं भी नहीं बचेगा, हूं भी नहीं बचेगी, उस दिन, उस दिन संत भी गया। उस दिन सिर्फ ईश्वर रहा, अस्तित्व रहा।
तो लाओत्से कहता है कि उनकी अस्मिता पिघलती रहती है प्रतिपल, प्रतिपल, जैसे बर्फ पिघल रही हो। यह भी भीतरी घटना है, यह भी भीतरी घटना है। अगर हम बुद्ध, महावीर, या कृष्ण या क्राइस्ट को निकट से देखें, तो कहीं भी होने पर पकड़ नहीं मालूम पड़ेगी।
महावीर गुजर रहे हैं एक रास्ते से। लोग कहते हैं, वहां से मत जाएं, वहां एक भयंकर सर्प है। वहां से कोई जाता नहीं। राह निर्जन हो गई है। सर्प बहुत भयंकर है और हमले करता है। दूर से फुफकार मार देता है, तो आदमी मर जाता है। तो महावीर कहते हैं, जब वहां से कोई भी नहीं जाता, तो सर्प के भोजन का क्या होगा?
अगर आपसे किसी ने कहा होता कि उस रास्ते पर सर्प है, सर्प को छोड़ें, चूहा है, उधर से मत जाएं, चूहा बड़ा खतरनाक है, तो आपको जो पहला ख्याल आता वह अपना आता कि जाना कि नहीं। महावीर को पहला ख्याल सर्प का आया कि भूखा तो नहीं होगा। यह अस्मिता गल गई, गली जा रही है। यहां मैं का ख्याल ही नहीं आता; उसका ख्याल आ रहा है कि फिर तो जाना ही पड़ेगा। महावीर ने कहा, भला किया कि तुमने बता दिया। जाना ही पड़ेगा। अगर मैं न जाऊंगा, तो फिर कौन जाएगा? तो महावीर उस सर्प को खोजते हुए पहुंचते हैं। मीठी कथा है कि सर्प ने उनके पैर में काट लिया, तो कथा है कि खून नहीं निकला, दूध निकला। दूध निकल सकता नहीं पैर से। लेकिन यह काव्य-प्रतीक है, यह काव्य-प्रतीक है। दूध प्रेम का प्रतीक है, मां का प्रतीक है। सिर्फ मां के पास संभावना है कि खून दूध हो जाए। और मनसविद कहते हैं कि अगर मां प्रेम से बिल्कुल क्षीण हो जाए, तो उसके भीतर भी खून दूध में परिवर्तित नहीं होगा। वह परिवर्तन भी इसीलिए संभव है कि उसका अति प्रेम ही उसके अपने खून को अपने प्रेमी के लिए, अपने

बच्चे के लिए दूध बनाता है, भोजन बना देता है। यह सिर्फ प्रतीक है कि महावीर के पैर में काटा सांप ने, तो वह दूध हो गया। इस प्रतीक को पूरा तभी समझ सकेंगे, जब समझें कि महावीर ने कहा कि सांप भूखा होगा। और मैं नहीं जाऊंगा, तो कौन जाएगा? यह ठीक मां जैसी पीड़ा है, जैसे बच्चा भूखा हो। इसलिए यह प्रतीक है कि उनके पैर से दूध बहा। दूध तो बहेगा नहीं; लेकिन महावीर के पैर से खून भी बहा हो, तो वह ठीक वैसा ही दूध जैसा बहा जैसे मां का प्रेम बहता हो भूखे बच्चे के प्रति। यह अस्मिता का विसर्जन है, मैं का भाव नहीं है।
बुद्ध को खबर मिली है कि इस रास्ते से मत जाएं। वहां अंगुलीमाल है। वह लोगों को काट देता है। उसने नौ सौ निन्यानबे अंगुलियों की माला बना ली है। एक आदमी को और मारना है। और वह इतना पागल है कि सुनते हैं अगर कोई न मिला, तो आज रात वह अपनी मां के घर पर जाकर मां की हत्या करके उसकी अंगुली की माला पहन लेगा। उसे एक हजार आदमियों की अंगुलियां चाहिए। नौ सौ निन्यानबे पूरे हो गए। तीन महीने से कोई वहां से निकलता नहीं; क्योंकि वह बिल्कुल पागल है। बुद्ध ने यह सुना और वे उस रास्ते पर चल पड़े। साथियों ने, संगियों ने, अनुयायियों ने कहा, आप क्या कर रहे हैं? वहां जाने की कोई जरूरत नहीं है। जो अपनी मां को काटने को तैयार है, वह आपको भी छोड़ेगा नहीं। बुद्ध ने कहा, मां को छोड़ सके, मुझे ले ले; इसीलिए जाता हूं।
यह अस्मिता गल रही है। यह भीतर से अब होने का भी भाव खो रहा है।
मैं तो गया, तब आदमी संत बनता है। और जब हूं भी चला जाए, तब परमात्मा हो जाता है। संत की अस्मिता गलती रहेगी; वह धीरे-धीरे परमात्मा में बिखर कर एक हो रहा है।
"वे अपने बारे में किसी प्रकार की घोषणा नहीं करते, जैसे कि वह लकड़ी जिसे अभी कोई रूप नहीं दिया गया हो।"
आप एक लकड़ी पर बैठे हैं, वह कुर्सी है। एक लकड़ी तख्त बन गई है। एक लकड़ी दरवाजा बन गई। एक लकड़ी मूर्ति बन गई। इन लकड़ियों ने घोषणा कर दी कि हम क्या हैं--एक लकड़ी मूर्ति है, एक कुर्सी है, एक दरवाजा है। लाओत्से कहता है, संत अपने संबंध में कोई घोषणा नहीं करते। वे उस लकड़ी की भांति हैं, जिसे अभी कोई रूप न दिया गया हो; जो कोई घोषणा न कर सके कि मैं कौन हूं। अभी जंगल से कटी हुई लकड़ी है, ताजी। अभी कुछ बनी नहीं है, अरूप है। बन सकती है कुछ भी; लेकिन बनी कुछ भी नहीं है।
लाओत्से कहता है कि संतजन सदा ही अनबने होते हैं। उनकी कोई घोषणा नहीं कि हम यह हैं।
ध्यान रहे, जैसे ही घोषणा हुई, वैसे ही सीमा आ जाती है। अघोषित असीम होगा। और असीम जो है, उसे अघोषित रहना पड़ेगा। वह घोषणा नहीं कर सकता कि मैं कौन हूं। कोई घोषणा नहीं होती। हम सब घोषणा करते हैं कि कौन हैं। कोई कहता है, मैं मजिस्ट्रेट हूं; कोई कहता है, मैं डाक्टर हूं; कोई कहता है, मैं नेता हूं; कोई कहता है, मैं यह हूं, वह हूं। हम सब घोषणाएं करते हैं। संत से पूछो कि तुम कौन हो, तो उसकी कोई घोषणा नहीं हो सकती कि मैं कौन हूं। बोधिधर्म से जब पूछा चीन के सम्राट वू ने कि तुम कौन हो? तो बोधिधर्म
ने कहा, आई डू नॉट नो, मुझे कुछ भी पता नहीं। वू तो बहुत हैरान हो गया। उसने कहा कि मैं तो सोचा था कि तुमसे आत्म-ज्ञान की शिक्षा लूंगा; तुमको खुद ही पता नहीं कि तुम कौन हो।
बोधिधर्म को समझना मुश्किल है। यही लाओत्से कहता है कि हमारी समझ के परे हैं। बोधिधर्म ने जब कहा कि मुझे पता नहीं, तो वू यही समझा, जैसा कोई साधारण आदमी कहता है कि मुझे पता नहीं।
बोधिधर्म हंसने लगा और उसने कहा कि तुम थोड़ा उन लोगों के पास रहो, जो
और तरह की भाषा बोलते हैं, ताकि तुम मेरी भाषा समझ सको।
बोधिधर्म का यही मतलब था--अघोषणा। क्योंकि मैं क्या कहूं कि कौन हूं? कैसे कहूं कि कौन हूं? बोधिधर्म ने कहा, मुझे कुछ भी पता नहीं है। संत अघोषित हैं। और असंत का मन बहुत घोषणाएं करना चाहेगा कि मैं यह हूं, यह हूं, यह हूं। उसे पूरे वक्त डर बना है। अगर घोषणा न की तो कौन जाने, कोई पहचाने न पहचाने। संत आश्वस्त है। जो भी है--अघोषित, मौन।
"वे एक घाटी की भांति हैं--रिक्त।"

एक पहाड़ की भांति नहीं। एवरेस्ट के शिखर की भांति नहीं; आकाश में उठे हुए नहीं, घोषणा करते हुए नहीं। एक घाटी की भांति, छिपे हुए, अंधेरे में, जिसकी कोई भी घोषणा नहीं है। आड़ में, अंधेरे में, गुप्त, मौन!
और सबसे अदभुत बात कही है, "मटमैले जल की भांति। वैकेंट लाइक ए वैली एंड डल लाइक मडी वाटर।"
संत की सोच सकते हैं आप कल्पना मटमैले पानी की भांति? बरसात में जो पानी मटमैला होकर बहता है, वैसे हैं। स्वच्छ होने तक की घोषणा नहीं, पवित्र होने तक की घोषणा नहीं, संत होने तक की घोषणा नहीं--लाइक मडी वाटर, मटमैले जल की भांति। गंगा के पवित्र जल होने की घोषणा नहीं; मटमैले जल की भांति। कोई घोषणा नहीं है। नालियों में से भी बह सकते हैं, गंगा में से भी बह सकते हैं। कोई अंतर नहीं पड़ता। निम्नतम के साथ उसी तरह जी सकते हैं, जैसे श्रेष्ठतम के साथ। स्वर्ग में हों कि नर्क में, कोई भेद नहीं।
आखिरी बात। जापान का एक सम्राट संत की खोज में था लाओत्से को पढ़ कर कि ऐसा संत कहां मिले, लाइक मडी वाटर, लाइक ए वैकेंट वैली। गहन खाई की तरह शून्य, मटमैले पानी की तरह, कहां मिले? मंदिरों में गया, जिन पर स्वर्ण-शिखर थे। वहां संत मिले, वे शिखरों की भांति थे। लेकिन वह सम्राट पूछता कि खाई की भांति, घाटी की भांति, मटमैले जल की भांति!
वह खोजता रहा। उसे कहीं भी संत नहीं मिले, जैसे संत की वह तलाश में था।
जब वह अपने गांव वापस लौट रहा था, राजधानी, तो गांव के नगर-द्वार पर ही एक भिखारी भीख मांगता था। उसने चिल्ला कर उस सम्राट को कहा कि बहुत बार तुम्हें घोड़े पर आते-जाते यहां से वहां देखता हूं, किसकी खोज कर रहे हो? सम्राट ने कहा, मैं उसकी खोज कर रहा हूं, उस संत की, जो खाई की भांति होता है लाओत्से ने कहा है; मिट्टी से मिले जल की भांति। तो वह फकीर खूब हंसने लगा और उसने कहा कि जाओ भी। सम्राट ने कहा कि तुमने पूछा और फिर कहा जाओ भी! उस फकीर ने कहा कि तुम अब जाओ ही।
सम्राट को बड़ी हैरानी हुई। और जब गौर से उस फकीर की तरफ देखा, तो उसे खाई दिखाई पड़ी उस फकीर की आंखों में। पर उसने कहा कि तुम तो भिखारी हो और तुम्हारी आंखों में खाई दिखाई पड़ती है! मैं तो इसीलिए तुम्हारी तरफ कभी न देखा कि एक भिखारी है, कुछ मांगने न लगे। और मैं जगह-जगह खोजता फिरा। तो उस फकीर ने कहा कि तुम खोजते थे वहां, जहां शिखर ही हो सकते हैं। तुमने वहां खोजा ही नहीं। लेकिन किसी को बताना मत। हम भीख मांग कर किसी तरह अपने को छिपाए हैं। किसी को बताना मत, किसी को खबर मत करना।
सम्राट तो महल आया भागा हुआ कि खबर कर दे। ले गया दरबारियों को। लेकिन फकीर फिर नहीं खोजा जा सका। दूसरे भिखारियों ने खबर दी कि वह इतना कह गया है कि मेरे गुरु की आज्ञा थी कि घोषणा मत करना और भूल से मुझसे घोषणा हो गई। सम्राट से मैंने बात कर ली। और सम्राट मेरी आंखों में झांक लिया। मेरे गुरु ने कहा था, आंखें झुका कर रखना कि कोई तेरी खाई को न देख ले। और मेरे गुरु ने कहा था कि भिखारी के वस्त्रों में रहना, ताकि मटमैले जल की भांति! लाओत्से ने ये आंतरिक संकेत दिए।
आज इतना ही। शेष कल। लेकिन पांच मिनट बैठें। कीर्तन के बाद ही जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
पैंतीसवां प्रवचन

विश्रांति से समता व मध्य मार्ग से मुक्ति

Chapter 15 : Part 2

The Wise Ones Of The Old

Who can find repose in a muddy world?
By lying still it becomes clear.
Who can maintain his calm for long?
By activity, rest comes back to life.
He who embraces this Tao,
Guards against being overfull;
Because he guards against being overfull,
He is beyond wearing out and renewal.

अध्याय 15 : खंड 2

पुराने समय के संत

इस अशुद्धि व अशांति से भरे संसार में कौन विश्रांति को उपलब्ध होता है?
जो स्थिरता में रुक कर अशुद्धियों को बह जाने देता है।
कौन अपनी समता व शांति को सतत बनाए रख सकता है?
जो प्रत्येक सक्रियता के बाद सहज ही घटित होने वाले विश्राम के राज
को जान लेता है।
अतः जो व्यक्ति ताओ को उपलब्ध होता है,
वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से बचाता है।
और चूंकि वह अति पूर्णता से बचा रहता है,
इसलिए वह क्षय और पुनर्जीवन के पार चला जाता है।

कल के सूत्र की अंतिम पंक्तियां अधूरी रह गई हैं। उनसे ही हम शुरू करें।
संत के लक्षण में अंतिम बात लाओत्से ने कही, घाटी की भांति रिक्त और मटमैले पानी की भांति विनम्र।
जैसे हम जीते हैं, जो हमारा ढंग है, वह खाली होने का नहीं, भरने का है। चाहे धन से कोई अपने को भरे और चाहे यश, पद, प्रतिष्ठा से, चाहे कोई ज्ञान से अपने को भरे और चाहे कोई त्याग से, चाहे कोई संसार की संपदा इकट्ठी करे और चाहे कोई स्वर्ग की, लेकिन हम सभी भरने को आतुर हैं। हम सभी अपने को भर लेना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि भीतर इतना खालीपन है कि वह खालीपन हमें खाए जाता है। उसे किसी भी तरह भर लेना है, ताकि खालीपन मिट जाए, रिक्तता मिट जाए, हम भरे हुए मालूम पड़ें, खाली न रह जाएं।
एक बात कि हम जीवन भर भरने की कोशिश करते हैं। और दूसरी बात कि हम अंततः खाली के खाली रह जाते हैं। कोई कभी अपने को भर नहीं पाता। चाहे दिशा हो कोई और चाहे वस्तुएं हों कोई--संसार की या पार की--हम खाली ही रह जाते हैं। सिकंदर भी मरता है, तो खाली। बड़े से बड़ा ज्ञानी भी, आइंस्टीन भी मरेगा, तो खाली। बड़ा चित्रकार, बड़ा मूर्तिकार, बड़ा राजनीतिज्ञ, बड़ा धनी मरेगा, तो खाली।
बचपन से ही दौड़ते हैं भरने के लिए और जीवन भर भरने की कोशिश भी करते हैं; फिर भी खाली मरते हैं! जो असफल हो जाते हैं इस दौड़ में, वे तो खाली मरते ही हैं। जो सफल हो जाते हैं, वे और भी ज्यादा खाली मरते हैं। क्योंकि जो

असफल होता है, उसे तो एक आशा भी बनी रहती है कि यदि सफल हो जाता तो भर जाता। सुविधा नहीं थी, संयोग नहीं मिला, भाग्य ने साथ नहीं दिया, लोग विपरीत थे, परिस्थितियां अनुकूल नहीं थीं, इसलिए खाली रह गया। लेकिन जो सफल हो जाते हैं, उनके लिए यह बहाना भी नहीं बचता। वे यह भी नहीं कह सकते कि भरने का मौका नहीं मिला, इसलिए खाली रह गए। सिकंदर कैसे कहेगा कि भरने का मौका नहीं मिला, इसलिए मैं खाली रह गया। भरने का पूरा मौका मिला, भरने की पूरी चेष्टा की, अथक; फिर भी खाली रह गए।
शायद जिसे हम भरने चले हैं, उसका स्वभाव खाली होना है। इसलिए हम उसे नहीं भर पाते हैं।
लाओत्से संत की परिभाषा में आधारभूत और अंतिम बात कहता है, घाटी की भांति खाली। संत वह है, जिसने अपने खालीपन को स्वीकार कर लिया और उसके भरने की बात बंद कर दी--किसी निराशा से नहीं, किसी विषाद से नहीं, किसी हारे हुए होने के कारण नहीं। हिंदी के प्रतिष्ठित कवि दिनकर ने अभी-अभी एक किताब लिखी हैः हारे को हरिनाम। जो हार जाता है, उसके लिए हरिनाम बचता है, और कुछ भी नहीं। और जो हार कर हरिनाम लेता है, वह हरिनाम कभी ले नहीं पाता। यह उसकी मजबूरी है, विवश है। हरिनाम ही ले सकता है अब, और कुछ ले नहीं सकता। हारे हाथ में और कुछ बचता नहीं।
लेकिन यह तो हमारी समझ में भी आ जाए, भरे हुए हाथ में भी कुछ नहीं बचता! भरा हुआ हाथ भी खाली ही सिद्ध होता है! क्योंकि हमारे भीतर जो स्वभाव है, वह स्वभाव ही खाली है। हम उसे भर नहीं सकते। जैसे हम सूरज को अंधेरा नहीं कर सकते, उसका स्वभाव ही प्रकाश है। स्वभाव के विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता। जो विपरीत करने की कोशिश करते हैं, वे असफल होंगे। असफल होंगे, विषाद से भरेंगे, दुख से भरेंगे, पीड़ा से भरेंगे। जो प्रतिकूल कोशिश करेंगे स्वभाव के, हारेंगे, अहंकार को घाव लगेगा, चोट लगेगी, अहंकार विजित होगा, आहत होगा, टूटेगा। सब बिखरेगा, प्राण संकट में पड़ेंगे।
संत का अर्थ लाओत्से यह नहीं कहता कि जिन्होंने हार कर, कोई उपाय न देख कर हरि का नाम लिया; कोई उपाय न देख कर जिन्होंने कहा ठीक है, संतोष के लिए यही उचित है कि हम जैसे हैं, हैं। नहीं, लाओत्से यह नहीं कहता। लाओत्से यह कहता है कि संत जान लेते हैं कि यह स्वभाव है--विषाद से नहीं--तथाता से, स्वीकार से, अनुभव से। और स्वभाव के प्रतिकूल जाने का कोई अर्थ नहीं है, मूढ़ता है। यह कोई पराजय नहीं है; यह ज्ञान है। यह कोई विवश होकर अपने सूनेपन को स्वीकार नहीं किया है। अनुभव से, प्रौढ़ता से, विकास से, जीवन को जान कर पहचाना है कि भीतर जो आत्मा है, भीतर जो अस्तित्व है, रिक्त होना उसका स्वभाव है, रिक्तता उसका गुण है।
और ध्यान रहे, रिक्तता ही असीम हो सकती है। भरी हुई कोई भी चीज असीम नहीं हो सकती। जहां कोई चीज भरेगी, वहीं सीमा आ जाएगी। और ध्यान रहे, रिक्तता ही स्वयं में प्रतिष्ठित हो सकती है। भराव तो सदा पराए से होता है। एक घड़ा खाली है। खाली घड़े का अर्थ हैः घड़ा सिर्फ घड़ा है। और घड़ा भर गया, तो अब वह किसी और चीज से भरेगा--पानी से भरे, कि सोने से भरे, कि मिट्टी से भरे, कि पत्थर से, कि हीरे-जवाहरात से। घड़ा जब तक खाली है, तब तक घड़ा है। जब भरेगा, तो पानी से भरेगा, पत्थर से भरेगा, हीरे-जवाहरात से भरेगा--पराए से भरेगा।
स्वयं अगर हमें होना है, तो खाली ही हो सकते हैं। भरे हुए होंगे, तो पराए से होंगे, दूसरे से होंगे। स्व का शुद्धतम रूप खाली ही होगा, क्योंकि स्वयं के अतिरिक्त वहां कुछ भी नहीं है। और जब भी हम भरेंगे, तो दूसरा मौजूद हो जाएगा। वही हमारी पीड़ा है। दूसरे से भरते हैं; मित्र से, प्रिय से, पत्नी से, प्रेमी से, धन से, पद से, किसी से भरते हैं। दूसरा वहां प्रवेश नहीं कर सकता; बाहर ही बाहर रह जाता है। दौड़ हो जाती है, थक जाते हैं, गिर पड़ते हैं, मुंह से लहू गिरने लगता है, मौत करीब आ जाती है; और पाते हैं कि भीतर सब खाली रह गया, वह भरा नहीं जा सका है।
लाओत्से कहता है, संत अपने खालीपन में जीता है। वह दूसरे से अपने को नहीं भरता--पराए से, दि अदर, चाहे वह कोई भी हो, उससे अपने को नहीं भरता। लाओत्से कहता है, संत तो ईश्वर से भी अपने को नहीं भरता; धर्म से भी अपने को नहीं भरता; पुण्य से भी अपने को नहीं भरता। खाली होना ही उसका धर्म

है; खाली होना ही उसका पुण्य है; खाली होना ही उसका ईश्वर है। क्योंकि खाली होना ही ताओ है, नियम है।
यह खालीपन हमें तो भयभीत करेगा। हम तो अकेले होने से भयभीत होते हैं। कोई दूसरा न हो, तो डर लगना शुरू हो जाता है। कोई दूसरा न हो, तो लगता है, जिंदगी बेकार हुई। दूसरा चाहिए ही। यह बहुत मजे की बात है कि हम में से कोई भी अपने साथ रहने को राजी नहीं। हम दूसरे के साथ रह सकते हैं; हम अपने साथ नहीं रह सकते।
और बड़ा मजा यह है कि जो हम अपने साथ नहीं रह सकते, वे भी सोचते हैं कि दूसरे हमारे साथ रहें तो आनंदित हों। हम अपने साथ नहीं रह सकते अकेले में, आनंदित नहीं हो सकते अपने साथ, और आकांक्षा यह होती है कि दूसरे भी हमारे साथ रह कर हमसे आनंदित हों। और दूसरे की भी हालत यही है। वह भी अपने को बर्दाश्त नहीं कर सकता अकेले में। और हम आशा करते हैं कि हम उसके साथ होकर आनंदित होंगे। वह खुद अपने साथ आनंदित नहीं हो सका है।
हम सब एक-दूसरे पर निर्भर होकर जी रहे हैं। और यह निर्भरता ऐसी नासमझी
से भरी है कि जिन पर हम निर्भर हैं, वे हम पर निर्भर हैं। हम उनके बल से जी रहे हैं; वे हमारे बल से जी रहे हैं। हम सब निर्बल हैं। लेकिन धोखा इससे हो जाता है। जिंदगी का अवसर बीत जाता है।
संतत्व सत्य को देखने की चेष्टा है। जैसा भी है सत्य, उसे वैसा ही देखने की चेष्टा है। और जो व्यक्ति भी सत्य को देखने को राजी हो जाता है, वह शीघ्र ही सत्य के आनंद का भी अनुभव शुरू कर देता है। जिन्होंने भी इस बात को पहचान लिया कि भरे होने की, भरने की, भरे जाने की सारी दौड़ नर्क है, उन्होंने अपने को भरना छोड़ दिया। और उन्होंने अपने को खाली होना ही जाना, कि मैं खाली ही हूं।
यह बहुत मजे की बात है कि विगत दो सौ वर्षों में पश्चिम ने सर्वाधिक भराव पैदा किया है आदमी के लिए। चीजों से घर भर गए हैं। यांत्रिक नई ईजादों से जमीन भर गई है। हर आदमी के पास इतना है जितना कि कभी भी किसी आदमी के पास नहीं था। बड़े से बड़े सम्राट के पास जो नहीं था, वह आज एक साधारण जन के पास पश्चिम में है। सब तरफ भराव है। और पश्चिम में दो सौ साल से जिस बात की प्रगाढ़तम अनुभूति हो रही है, वह है एम्पटीनेस। अगर पश्चिम का इन दो सौ वर्षों का सबसे महत्वपूर्ण शब्द हम खोजें, तो वह है एम्पटीनेस, खालीपन, रिक्तता। कामू, सार्त्र, हाइडेगर, पोर्तेगा वाइगासिथ, वे सभी रिक्तता की बात करते हैं। वे कहते हैं, जिंदगी बिल्कुल रिक्त है, खाली है। और बड़ी बेचैनी है, क्योंकि जिंदगी भरती ही नहीं।
कभी किसी गरीब समाज को इतना अनुभव नहीं हुआ था रिक्तता का। क्योंकि पेट खाली था, तो आत्मा के खाली होने का पता चलना ही नहीं हो पाता था। पेट खाली हो, तो और बड़े खालीपन दिखाई ही नहीं पड़ते। पेट को भरने में ही सारा समय व्यतीत हो जाता है। आज पश्चिम का पेट भर गया है, शरीर भर गया है; चीजें चारों तरफ इकट्ठी हो गई हैं। और आदमी को भीतर अनुभव हो रहा है, सब खाली है। कुछ भी नहीं है भीतर।
यह खालीपन, लाओत्से कहता है, इसके साथ हम दो काम कर सकते हैं। या तो इसे भरने में लग जाएं, जो कि कभी भरेगा नहीं। एक और उपाय हैः या हम इसे भुलाने में लग जाएं। आदमी दो ही उपाय करता हैः या तो भरने की कोशिश करता है; और जब नहीं भर पाता, तो भुलाने की कोशिश करता है। पहले सिकंदर भरने की कोशिश करेगा। और जब पाएगा कि असफल हुआ, तो शराब में भुलाएगा अपने को, नग्न स्त्रियों के नृत्य में भुलाएगा अपने को, ताकि अब खालीपन पता न चले। भरो या भुलाओ।
लेकिन लाओत्से कहता है, न भरने से भरता है और न भुलाने से भूलता है। जिंदगी के बड़े अदभुत नियम हैं। जिस चीज को जितना भुलाओ, उतनी ही याद आती है। चाह कर इस जगत में कुछ भी भुलाया नहीं जा सकता। भुलाएं! और जितना भुलाएंगे, उतना ही पाएंगे, याद आता है। असल में, भुलाने की कोशिश में भी याद तो करना ही पड़ता है। जब एक आदमी अपने भीतर के खालीपन को डुबाने को, भुलाने को शराब पी रहा है, तब भी वह गहन रूप से याद कर रहा है। होश में आएगा, तब भी गहन रूप से याद करेगा कि शराब व्यर्थ हो गई, शरीर को खराब कर गई; वह जो

घाव था, वह अपनी जगह फिर खड़ा है--और भी गहरा होकर, और भी रिक्त होकर दिखाई पड़ रहा है। न तो कोई भर सकता है और न कोई भुला सकता है।
लाओत्से कहता है, संत वे हैं जो दोनों ही काम नहीं करते। वे खाली होने
को राजी हो जाते हैं। वे कहते हैं, हम खाली हैं; बात समाप्त हो गई। न हम भरेंगे, न हम भुलाएंगे। और बड़ा आश्चर्य और बड़ा चमत्कार जो इस जगत में घटता है, वह यह है कि जो अपने खालीपन से राजी हो जाता है, उसका खालीपन मिट जाता है।
यह थोड़ा कठिन लगेगा। असल में, खालीपन अनुभव इसलिए होता है कि हम भरने
के लिए आतुर हैं। हमारी आतुरता के कारण खालीपन है। जितने हम आतुर हैं, उतना हमें खालीपन मालूम होता है। जब हम राजी ही हो गए, जब हमने भरने की दौड़ ही छोड़ दी, जब हमने भरने का स्वप्न ही तोड़ दिया, जब हमने भुलाने के भी आयोजन नहीं किए, जब हम राजी ही हो गए और जब हमने कहा कि खालीपन मेरे भीतर है ऐसा नहीं, मैं ही खालीपन हूं, तो खालीपन खो जाता है। क्योंकि खालीपन के होने के लिए पृष्ठभूमि में भरे होने की आकांक्षा चाहिए। जैसे काले तख्ते पर सफेद खड़िया से हम कुछ लिख देते हैं। फिर काले तख्ते को कोई पीछे से खींच ले, सफेद लिखा हुआ खो जाए; क्योंकि सफेद लिखा हुआ दिखाई पड़ता था काले तख्ते के कारण।
विपरीत चाहिए अनुभव के लिए। खालीपन का अनुभव होता है, क्योंकि विपरीत हमारे भीतर महत्वाकांक्षा है भरे होने की। भरे होने की आकांक्षा नहीं है, खालीपन का अनुभव खो जाता है। हमें दुख का अनुभव होता है, क्योंकि सुख की आकांक्षा है। सुख की आकांक्षा नहीं, दुख का अनुभव खो जाता है। मृत्यु हमें डराती है, क्योंकि जीवन पर हमारी पकड़ है। जीवन पर पकड़ न हो, मृत्यु की बात समाप्त हो जाती है। अपमान हमें कांटे की तरह चुभता है, क्योंकि सम्मान के फूल पाने के लिए हम पागल हैं। सम्मान के फूल पाने की बात खो जाए, अपमान का कांटा उसके साथ ही तिरोहित हो जाता है।
विपरीत चाहिए अनुभव के लिए। अगर आपको रिक्तता अनुभव होती है, तो सबूत
है कि आप भरे होने की आकांक्षा में लगे हैं। अगर आपको दुख अनुभव होता है, तो सबूत है कि आप ने सुख की मांग कर रखी है। अगर आपको अपमान पीड़ा देता है, तो आप सम्मान के लिए विक्षिप्त हैं।
अगर यह दिखाई पड़ जाए, तो लाओत्से का सूत्र समझ में आ जाए कि संत का आत्यंतिक गुण हैः रिक्त हो जाना। और उसके बाद उसने कहा है कि विनम्र, मटमैले पानी की भांति।
विनम्रता दो प्रकार की है। इसे थोड़ा समझ लें। विनम्रता दो प्रकार की है। एक तो ऐसी विनम्रता है, जो सिर्फ अहंकार का आभूषण है। अगर हम उसके लिए प्रतीक चुनना चाहें, तो हम कहेंगे, गंगा के पवित्र जल की भांति। विनम्र-- गंगा के पवित्र जल की भांति। पवित्रता का भी एक अहंकार है। और विनम्रता का भी एक अहंकार है। ऐसा विनम्र आदमी घोषणा करता फिरता है सब तरह से कि मैं बिल्कुल विनम्र हूं, मैं आपके पैरों की धूल हूं, मैं कुछ भी नहीं। उसकी आंखों में झांकें, उसके उठने में, उसके बैठने में; और दिखाई पड़ेगा, वह सब कुछ है। और अगर उस आदमी को आप कह दें कि आपसे भी ज्यादा विनम्र आदमी का आगमन गांव में हो गया है, तो वह आदमी उतना ही पीड़ित होगा, जैसा कोई और अहंकारी पीड़ित हो। उसकी विनम्रता नंबर एक है। नंबर दो का विनम्र वह न होना चाहेगा।
विनम्रता भी नंबर एक हो सकती है? और अगर विनम्रता भी शिखर बनती है, तो विनम्रता कहां रही? शिखर तो अहंकार बनता है। तो जिसे विनम्रता का पता है, वह विनम्र नहीं है। जिसे बोध है कि मैं विनम्र हूं, वह अहंकारी है। क्योंकि बिना विपरीत के विनम्रता का बोध भी नहीं होगा। जो घोषणा करता है कि मैं विनम्र हूं, वह अहंकारी है। जो कहता है चरणों की धूल हूं, वह अहंकारी है। अन्यथा यह बोध भी नहीं होगा। इस बोध का भी कोई उपाय नहीं है। अहंकार विनम्र होने का धोखा दे सकता है; देता है। क्योंकि हम सिखा रहे हैं।
मैं एक विश्वविद्यालय में गया था। वहां मैंने तख्ती लगी देखी वाइस चांसलर के कमरे में--कि जो विनम्र हैं, वे ही सम्मान को प्राप्त होंगे।
विद्यार्थियों के लिए लगाई होगी--कि जो विनम्र हैं, वे सम्मान को प्राप्त

होंगे। लेकिन यह बड़े मजे की बात है। आधा हिस्सा, पिछला हिस्सा पहले हिस्से के विपरीत है। जो विनम्र हैं, वे सम्मान को प्राप्त होंगे। तो जो सम्मान पाना चाहते हैं, वे विनम्र होने की कोशिश शुरू करें।
निश्चित ही, हमारे अहंकार से भरे समाज में जिसे भी सम्मान चाहिए, उसे विनम्र होना चाहिए। नहीं तो सम्मान नहीं मिलेगा। हम उसी को सम्मान देते हैं, जो विनम्र हो जाए। और बड़े मजे की बात है कि हमें इसका ख्याल नहीं कि वह इसीलिए विनम्र हो रहा है कि सम्मान मिले। सम्मान की आकांक्षा अगर विनम्र बना दे, हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर खड़ा करवा दे... । राजनीतिक नेतागण द्वार-द्वार खड़े रहते हैं। उनकी विनम्रता गहन अहंकार की तृप्ति की दौड़ है।
तो एक तो विनम्रता ऐसी है, जिसे विनम्रता की पवित्रता का, श्रेष्ठता
का बोध है। दूसरी विनम्रता की लाओत्से बात कर रहा है। दूसरी विनम्रता ऐसी है, जिसे अपनी पवित्रता का, अपनी श्रेष्ठता का, अपनी साधुता का भी कोई पता नहीं। इसलिए लाओत्से ने प्रतीक उपयोग किया हैः मटमैले जल की भांति, मडी वाटर। कहीं भी बह रहा है, किसी भी जमीन पर, मिट्टी से भरा हुआ। कोई बोध नहीं है पवित्रता का, श्रेष्ठता का, गंगाजल का। संत को अगर बोध हो कि मैं संत हूं, तो वह संत नहीं रहा।
लेकिन यहीं तरकीब है। तो आप संत के पास जाएं और उससे कहें कि आप बहुत बड़े महात्मा हैं, तो वह कहेगाः नहीं, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं। उसको भी पता है। खेल के नियम सभी को पता हैं। आपको भी पता है कि संत अगर खुद कहे कि हां, मैं संत हूं, तो कहेंगेः क्या संत रहा! उसे भी पता है कि अगर मैं कहूं कि हां, मैं संत हूं, तो यह आदमी दुबारा नहीं आएगा। वह कहता हैः मैं संत? मैं कहां! मुझ सा पापी तो है ही नहीं। जो मैं खोजने निकला, तो मुझ सा पापी मैंने कोई भी नहीं पाया। तब आप चरण छूकर घर लौटते हैं कि संत उपलब्ध हुआ।
लेकिन ये एक ही खेल के दो हिस्से हो सकते हैं।
लाओत्से का संत यह भी नहीं कहेगा कि मैं सबसे भला हूं और यह भी नहीं कहेगा कि मैं सबसे बुरा हूं। क्योंकि ये दोनों ही अहंकार की घोषणाएं हैं। लाओत्से का संत अघोषित रहेगा। वह कुछ भी नहीं कहेगा। अपने संबंध में कोई वक्तव्य नहीं देगा। शायद आप उसके पास से बहुत निराश लौटें। क्योंकि दो में से कोई भी बात आपके मन को तृप्ति देती। वह कह देता कि हां, मैं महान संत हूं, तो भी आप कुछ निर्णय करके लौटते। वह कह देता कि मैं तो कुछ भी नहीं, ना- कुछ हूं, नाचीज हूं, तो भी आप कुछ निर्णय लेकर लौटते। लेकिन लाओत्से का संत कुछ भी नहीं कहेगा। क्योंकि लाओत्से कहता है कि स्वयं के बाबत कोई भी बोध विपरीत के कारण होता है। इसलिए कोई बोध नहीं होगा।
लाओत्से से खुद कोई पूछने आया है कि सुना है हमने, आप परम ज्ञानी हैं! लाओत्से सुनता रहा। उस आदमी ने कहा, कुछ कहिएगा नहीं? लाओत्से चुप रहा। और तभी एक और आदमी आया और उसने लाओत्से से कहा कि सुना है हमने कि तुम अज्ञान का प्रसार कर रहे हो! ऐसी बातें कह रहे हो, जिससे जगत भ्रष्ट हो जाए और भटक जाए! लाओत्से सुनता रहा। उस आदमी ने कहा, कुछ कहिएगा नहीं?
लाओत्से ने कहा कि तुम दोनों आपस में बैठ कर तय कर लो। यह आदमी कहता है
कि महा ज्ञानी और तुम कहते हो महा अज्ञानी। मुझे कुछ भी पता नहीं। तुम दोनों जानकार हो, तुम दोनों मिल कर तय कर लो। और मुझ पर कृपा करो। मुझे हिसाब के बाहर रखो। तुम दोनों काफी जानकार हो। जिन बातों का मुझे पता नहीं, उनका तुम्हें पता है। तुम निर्णय कर लो। और मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं है।
यह अघोषित व्यक्तित्व संतत्व है।
अब हम इस सूत्र को समझने की कोशिश करें।
"इस अशुद्धि से भरे संसार में कौन विश्रांति को उपलब्ध होता है? जो ठहर कर अशुद्धियों को बह जाने देता है।"
इस संबंध में बुद्ध की एक कहानी मुझे सदा प्रिय रही है, वह मैं आपसे कहूं। यह सूत्र उस पूरी कथा का शीर्षक है।
"हू कैन फाइंड रिपोज इन ए मडी वर्ल्ड? बाई लाइंग स्टिल इट बिकम्स क्लियर।"

बुद्ध एक पहाड़ के पास से गुजरते हैं। धूप है तेज। गर्मी के दिन। उन्हें प्यास लगी। आनंद से उन्होंने कहा, आनंद, तू पीछे लौट कर जा; अभी-अभी हमने एक नाला पार किया है, तू पानी भर ला!
आनंद भिक्षा-पात्र लेकर पीछे गया। कोई दो फर्लांग दूर वह नाला था। जब बुद्ध और आनंद वहां से निकले थे, तो नाला बड़ा स्वच्छ था। जलधार धूप में मोतियों जैसी चमकती थी। छिछला था नाला; कंकड़-पत्थरों पर शोर-गुल की आवाज करता बहता था। पहाड़ी नाला था; स्वच्छ, ताजा जल उसमें था। लेकिन जब आनंद वापस पहुंचा, तो देखा कि कुछ बैलगाड़ियां उसके सामने ही उसमें से गुजर रही हैं और नाला गंदा हो गया। धूल और कीचड़ ऊपर उठ आई। सूखे पत्ते दबे जो जमीन में पड़े थे, वे फैल गए। सारा पानी गंदा हो गया; पीने योग्य न रहा।
आनंद वापस लौटा। आनंद के मन में हुआः बुद्ध इतने महा ज्ञानी हैं, उन्हें यह भी पता न चला कि जब मैं जाऊंगा, तो दो गाड़ियां वहां से निकल जाएंगी, सब पानी गंदा हो जाएगा! आनंद वापस लौटा और उसने बुद्ध से कहा कि वह पानी गंदा हो गया है। गाड़ियां उस पर से गुजर गईं। अब वह पीने योग्य नहीं है। तो मैं आगे जाता हूं। तीन मील दूर आगे नदी है; वहां से पानी ले आऊं। बुद्ध ने कहा कि नहीं, पानी तो उसी नाले का मुझे पीना है। तू वापस जा! आनंद को बड़ी कठिनाई हुई कि पहले तो समझ लो कि न जानते हुए बुद्ध ने भेजा था; अब जान कर! आनंद को ठिठकते देख कर बुद्ध ने कहा, तू जा भी!
आनंद फिर गया। लेकिन उस पानी को पीने के योग्य माना नहीं जा सकता था। पानी बिल्कुल गंदा था। आनंद बड़ी मुश्किल में पड़ा। उस गंदे पानी को बुद्ध के पीने के लिए लाए भी कैसे? फिर वापस लौटा; बुद्ध से कहा, क्षमा करें, वह पानी लाने योग्य बिल्कुल नहीं है। बुद्ध ने कहा, तू एक बार और मेरी मान और जा! आनंद का मन हुआ कि इनकार कर दे। लेकिन बुद्ध ने इतने अनुनय के स्वर से कहा कि वह फिर वापस लौटा। जाते वक्त बुद्ध ने उससे कहा, आनंद, और अब लौटना मत। किनारे पर बैठ रहना। जब तक पानी तुझे पीने योग्य न लगे, तब तक बैठे रहना।
आनंद गया। किनारे पर बैठ गया। बैठ कर देखता रहा, देखता रहा, देखता रहा। थोड़ी देर में सूखे पत्ते बह गए, मिट्टी के कण नीचे बैठ गए, धूल हट गई। पानी पुनः स्वच्छ हो गया। पानी भर कर आनंद नाचता हुआ लौटा। बुद्ध के चरणों में गिर कर उसने कहा कि तुम्हारी अनुकंपा अपार है! क्या तुमने मुझे उस पानी की धार से कुछ संदेश दिया? मैं नासमझ क्या-क्या सोचता रहा! मुझे समझ आ गया उस नदी के, उस झरने के किनारे बैठ कर कि यह मन भी ऐसा ही गंदगी से भरा है। क्या मन के किनारे भी हम ऐसे ही बैठ कर प्रतीक्षा करें, तो यह गंदगी बह जाएगी?
बुद्ध ने कहा, इसीलिए तुझे तीन बार मुझे वापस भेजना पड़ा।
लाओत्से का सूत्र उसका शीर्षक है। हू कैन फाइंड रिपोज इन ए मडी वर्ल्ड? इस मटमैली, गंदी दुनिया में, कीचड़ से भरी दुनिया में, कौन पा सकेगा विश्रांति? बाई लाइंग स्टिल इट बिकम्स क्लियर। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। इस संसार में प्रतीक्षा से शांत होकर बैठ जाना काफी है। सब स्वच्छ हो जाता है अपने से।
आनंद से बुद्ध ने बाद में पूछा कि आनंद, तुझे कभी ऐसा उस झरने के किनारे नहीं हुआ कि कूद पडूं और साफ कर दूं? आनंद ने कहा, हुआ ही नहीं, मैंने किया भी। लेकिन पानी और भी गंदा हो गया था।
मन के साथ हम भी सब यही करते हैं। कूद कर साफ करने की कोशिश करते हैं। जबर्दस्ती मन को साफ करने की कोशिश करते हैं। हमारी जबर्दस्ती, हमारा झरने में उतर जाना पानी को और गंदा कर जाता है।
इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी जो मंदिरों में बैठ कर ध्यान और पूजा और प्रार्थना करते रहते हैं, कहीं उनके मन में झांकने का आपको अवसर मिले, तो आपको पता चले कि वे मंदिर में जरूर बैठे हैं, मंदिर से उनके मन का कोई भी संबंध नहीं है। मन उनका इतनी गंदगी से इतना भर गया है जितना कि दुकान पर बैठ कर भी नहीं भरता। क्योंकि दुकान पर भी एक एकाग्रता रहती है धन पर, मंदिर में उतनी एकाग्रता भी नहीं रह जाती। और क्यों नहीं रह जाती?
सभी को यह अनुभव हुआ होगा, जो भी मन को शांत करने की कोशिश करेगा, उसे पता चला होगा कि शांत करने जाओ, तो और अशांत हो जाता है। क्योंकि शांत करने

जाएगा कौन? आप अशांत हैं और आप शांत करने जा रहे हैं! तो अशांति दुगुनी हो जाएगी। बहुगुनी भी हो सकती है। तो अगर कोई बहुत ज्यादा शांत करने की कोशिश करे, तो पहले अशांत था, पीछे विक्षिप्त हो सकता है। फिर रास्ता क्या है? लाओत्से का रास्ता ख्याल में रखने जैसा है। यह परम मार्ग है। लाओत्से कहता है, मन की धारा के पास चुपचाप बैठ जाएं, लाइंग स्टिल, लेट जाएं। बहने दें धार को, होने दें गंदगी; मटमैली है धार, रहने दें। शांत बैठ जाएं, सिर्फ प्रतीक्षा करें। और कुछ न करें। कोशिश न करें शांत करने की।
कौन आदमी इस जगत में शांति को उपलब्ध हो सकता है? वही जो अशांति को मिटाने की चेष्टा से बचे। यह बहुत अजीब लगेगा--जो अशांति को मिटाने की चेष्टा से बचे। क्योंकि सब अशांति हमारी चेष्टाओं का फल है। और अब हम शांत होने की भी चेष्टा करें, तो हम और गहन अशांति पैदा कर लेंगे।
बोकोजू अपने गुरु के पास गया। गुरु से उसने जाकर कहा कि मेरा मन बड़ा अशांत है, मुझे शांत करने का उपाय दें। क्या मैं ध्यान करूं? क्या मैं उपवास करूं? क्या मैं तप करूं? उसके गुरु ने कहा, तू इतना कर-करके अभी करने से थका नहीं? तू जिंदगी भर करता ही रहा। उस करने का ही यह तेरी अशांति फल है। और अभी भी तू करने को उत्सुक है! तो फिर मेरे दरवाजे के भीतर मत आना। क्योंकि यह न करने वालों का घर है। अगर तू यहां न करने को राजी हो, तो भीतर आ; अन्यथा अभी और भटक!
बोकोजू की कुछ समझ में नहीं पड़ा। उसने कहा, अशांति बहुत है। आपको पता नहीं मेरी पीड़ा का। इसे शांत करना ही है। उसके गुरु ने कहा, यह तेरा कहना कि इसे शांत करना ही है, और दोहरी अशांति को जन्म दे रहा है। तू कुछ मत कर; तू यहां रह! तू सिर्फ मेरे पास बैठ!
बोकोजू एक साल तक अपने गुरु के पास बैठता था। दो, चार, आठ दिन में पूछता था कि अब कुछ बताएं करने को! क्योंकि बिना किए मन मानता नहीं। कुछ तो करवाएं। कोई मूढ़तापूर्ण कृत्य भी दे दें कि चलो, माला ही फेरो। तो कुछ तो करवाएं! कोई मंत्र, कोई नाम, कुछ तो पकड़ा दें कि मैं लगा रहूं। बोकोजू का गुरु कहता है कि तू काफी कर चुका। अब कुछ दिन कुछ भी नहीं करना है। महीना, पंद्रह दिन बीतता है कि बेचैनी बढ़ जाती है उसकी। कहता है, कुछ! क्या मैं पात्र नहीं हूं? क्या अपात्र हूं? आप मुझे कुछ बताते क्यों नहीं? गुरु कहता है, तू बस बैठ!
जापान में एक शब्द है झाझेन, जिसका मतलब होता है जस्ट सिटिंग, सिर्फ बैठ। तो गुरु बस उससे, साल में जब भी वह पूछता है, गुरु इतना ही कहता है, झाझेन, तू बैठ। तू कुछ और मत कर!
सिर पच गया। कुछ बताता नहीं है यह आदमी। और बोकोजू को बैठना पड़ा, बैठना पड़ा, बैठना पड़ा। फिर उसने पूछना भी छोड़ दिया, कि इस आदमी से पूछना भी क्या!
लेकिन बैठे-बैठे इस आदमी से, इसके पास, इसकी सन्निधि में, ऐसा लगाव भी
बन गया कि अब छोड़ कर जाना भी न हो। इसके पास बैठे-बैठे कुछ चीजें जुड़ गईं भीतर कि अब इस घर के बाहर जाना भी न हो। आखिर जिस दिन चीजें जुड़ गईं भीतर, तो बोकोजू के गुरु ने कहा कि अब अगर तूने पूछा कि कुछ बताओ, तो दरवाजे के बाहर निकलने का ही एकमात्र कर्म बचा है। निकाल दूंगा बाहर। अब तू पूछना मत! जिस दिन बोकोजू के गुरु को लगा कि अब वह जगह आ गई, जहां से यह अब भाग भी नहीं सकता, बैठना ही पड़ेगा। और बैठ भी नहीं सकता; क्योंकि मन भीतर कहता हैः कुछ करो, कोई व्यस्तता, कोई आक्युपेशन, कहीं तो उलझे रहो। कुछ तो करने को चाहिए।
कहावत है, हमने सुनी है कि खाली मन शैतान का कारखाना हो जाता है। बात गलत है। शैतान के कारखाने आप हैं। खाली में आपको पता चलता है। खाली की वजह से कोई शैतान का कारखाना नहीं बनता, शैतान के आप पूरे कारखाने हैं। लेकिन फैक्टरी इतने दिनों से चल रही है कि उसके शोरगुल का पता नहीं चलता। जब बंद होती है, तब पता चलता है।
मुश्किल में पड़ गया बोकोजू। लेकिन अब जा भी नहीं सकता, कुछ कर भी नहीं सकता, बैठा है, बैठा है, बैठा है। और ठीक वही घटना घटी, जो आनंद को उस झरने के किनारे घटी। साल पूरा होते-होते, बैठते-बैठते, बैठे-बैठे-बैठे वही-वही

विचार कितनी बार सोचे? कोई उपाय नहीं। वे धीरे-धीरे विचार भी बासे पड़ गए।
उनसे भी ऊब होने लगी। वे विचार भी धीरे-धीरे बह गए। मन शांत हो गया।
एक दिन बोकोजू के गुरु ने कहा कि अब अगर तेरा इरादा हो, तो कुछ करने को बताऊं। उसने गुरु के चरण छुए और कहा कि बड़ी मुश्किल से करने से छूटा हूं।
अब कृपा करिए। अब भूल कर भी कुछ करने को मत बताइए। बोकोजू के गुरु ने कहा, शांत नहीं होना है? बोकोजू ने कहा कि अब मैं समझ गया, अब मेरा मजाक मत करें। होने की कोशिश ही, कुछ भी होने की कोशिश अशांति है।
होने की कोशिश ही, टु बी समथिंग, होने की कोशिश ही अशांति है। इसलिए शांत होने की कोई कोशिश जगत में नहीं हो सकती। अगर होने की कोशिश ही अशांति है, तो शांत होने की कोई कोशिश जगत में नहीं हो सकती। फिर शांत होने का एक ही मतलब हुआ कि होने की सब कोशिश छूट गई हो, तो जो शेष रह जाता है, वह शांति है।
लाओत्से कहता है, इस अशुद्धि और अशांति से भरे संसार में कौन विश्रांति को उपलब्ध होता है? जो ठहर कर, अपने में रुक कर, अपने में थिर होकर अशुद्धियों को बह जाने देता है।
लड़ना मत भीतर की अशुद्धियों से। लेकिन समस्त धर्म, जैसा हम समझते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कहता है लड़ो। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि धर्म को जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने नहीं कहा कि लड़ो। क्योंकि लड़ कर कोई भी शांत नहीं हो सकता। और शांत हुए बिना कोई धार्मिक नहीं हो सकता। इसलिए कुछ वक्तव्य तो धार्मिक लोगों के इतने, इतने क्रांतिकारी हैं कि हम उन्हें पचा भी नहीं पाते।
जीसस ने कहा है, रेसिस्ट नॉट ईविल--बुराई से मत लड़ना। ईसाइयत अभी तक नहीं पचा पाई--दो हजार साल होते हैं। कोई ईसाई चिंतक ठीक से यह बात नहीं कह पाया कि जीसस का क्या... । क्या कहते हैं जीसस, बुराई से मत लड़ो? तो क्रोध से न लड़ें? तो यौन से न लड़ें? तो लोभ से न लड़ें? ये शत्रु!
मेरे पास लोग आते हैं और वे कहते हैं, इन चार शत्रुओं से छूटने का कोई उपाय बताएं। ये काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, ये चार शत्रु। इनसे छूटने का कोई उपाय बताएं। कैसे इनको नष्ट करें? और जीसस कहते हैं, रेसिस्ट नॉट ईविल, बुराई से लड़ना मत। लाओत्से कहता है, ठहर जाना, बुराई को बह जाने देना। लड़े कि हारे। अगर जीतना हो, तो लड़ना ही मत।
लेकिन तथाकथित सतही धार्मिक चिंतन लोगों से कहता है कि दूसरे से भला
मत लड़ो, लेकिन अपने से तो लड़ना ही पड़ेगा। लियो टाल्सटाय ने अपनी डायरी में लिखा है कि हे परमात्मा, दूसरों को मैं क्षमा कर सकूं, ऐसा मुझे बल दे; और अपने को कभी क्षमा न कर सकूं, ऐसा भी। यह सामान्य धार्मिक आदमी की बुद्धि है। दूसरे से तो नहीं लडूं, लेकिन अपने से तो लड़ना ही पड़ेगा।
और जो लड़ेगा, वह आनंद की तरह धार में उतर गया झरने की। और गंदी हो जाएगी धार। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमियों के पास जैसी गंदी बुद्धि हो जाती है, वैसी गंदी बुद्धि अपराधियों के पास भी खोजनी मुश्किल है। सब तरफ उन्हें गंदगी का प्रोजेक्शन, गंदगी का विस्तार दिखाई पड़ने लगता है। कहीं भी, जहां उनकी आंख जाती है, वहीं उन्हें कुछ गंदगी दिखाई पड़ने लगती है। वह गंदगी उनके भीतर इकट्ठी हो गई है। और अब इतनी इकट्ठी हो गई है कि उसने बाहर भी विस्तार लेना शुरू कर दिया है।
एक फ्रेंच चित्रकार खजुराहो देखने आया था। उन दिनों मेरे एक परिचित मित्र विंध्य प्रदेश में मंत्री थे। उन मित्र को जिम्मा मिला कि वे उस चित्रकार को जाकर खजुराहो की मूर्तियां दिखा दें। वे दिखाने गए। वे बहुत घबड़ाए हुए थे; धार्मिक आदमी हैं। धार्मिक आदमी से मतलब रोज सुबह पूजा करते हैं, जनेऊ पहनते हैं, गीता-रामायण पढ़ते हैं, मंदिर जाते हैं, तिलक-टीका लगाते हैं। सब तरह से धार्मिक हैं। वे बड़े घबड़ाए कि अब ये खजुराहो की नग्न मूर्तियां, यौन भित्ति-चित्र संभोग और मैथुन के, बड़ी मुसीबत हुई। और यह परदेशी क्या सोचेगा कि ये भारतीय कैसे गंदे हैं! ये भी कोई चित्र बनाने का है और वह भी मंदिर के चारों तरफ? मगर मजबूरी थी, दिखाना जरूरी था। आदमी प्रतिष्ठित था और उसे मिनिस्टर से कम हैसियत का आदमी दिखाने ले जाए, यह उचित भी न था। राम-राम करके वे उसके साथ गए।

मुझे कहते थे कि मैं पूरे वक्त मन में यही कहता रहा कि हे भगवान, यह यह
न पूछे कि ये अश्लील, ये नग्न चित्र किसलिए बनाए हैं? किसी तरह जल्दी उन्होंने घुमाने की कोशिश की। और वह चित्रकार एक-एक मूर्ति के पास घंटों ठहरा। और वे परेशान हों कि अब चलिए भी। और वे नीचे नजर रखें कि कहीं दिखाई न पड़ जाएं। पूरी यात्रा किसी तरह समाप्त हो गई। उस चित्रकार ने पूछा नहीं। सीढ़ियों पर उनसे ही नहीं रहा गया लौटते वक्त, मिनिस्टर से न रहा गया, उन्होंने कहा कि एक बात आपसे निवेदन कर दूं कि यह मंदिर कोई हमारी भारतीय परंपरा का केंद्रीय हिस्सा नहीं है। इससे आप हमारी संस्कृति के संबंध में कुछ मत सोच लेना। यह किसी विक्षिप्त मस्तिष्क, खराब बुंदेला सम्राट की करतूत है। यह कोई भारतीय संस्कृति का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। अश्लील हैं चित्र, हम जानते हैं। और हमारा वश चले तो इन मंदिरों पर मिट्टी पुतवा दें।
उस चित्रकार ने क्या कहा? उस चित्रकार ने कहा, मुझे फिर से भीतर जाना पड़ेगा; क्योंकि अश्लीलता मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ी। मुझे भीतर ले चलें! मुझे भीतर ले चलें, मुझे दुबारा देखना पड़ेगा; क्योंकि अश्लीलता मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ी। मैंने इतने सुंदर और इतने कलात्मक और इतने सहज और इतने निर्दोष चित्र कहीं देखे ही नहीं।
कौन आदमी धार्मिक है? ये रोज पूजा-प्रार्थना करते हैं। और कैसी धार्मिकता है? इस आदमी ने शायद पूजा-प्रार्थना कभी न की हो, पर इसे मैं धार्मिक कहूंगा। इसके पास एक कचरे से भरा हुआ मस्तिष्क नहीं है। चीजों को सीधा देख पाता है; बीच में कुछ अपनी धारणाओं को नहीं रखता।
जब आपको कोई मूर्ति अश्लील मालूम पड़ती है, तो भीतर खोजना। आपके भीतर कामवासना जोर मार रही होगी; उसकी वजह से मूर्ति अश्लील मालूम पड़ती है। अगर कोई नग्न आदमी खड़ा हो और आपको लगे कि गंदा है, अश्लील है, तो जरा भीतर झांक कर देखना। नग्न आदमी को देखने की इच्छा, वासना ही भीतर कारण है। अन्यथा कोई सवाल नहीं है। अगर कोई व्यक्ति भीतर की बुराइयों से लड़ेगा, तो इस विक्षिप्तता में उतर जाएगा, परवर्शन में।
तीन स्थितियां हैं चित्त की। एक को हम कहें भोग। भोग नैसर्गिक स्थिति है। जो भोग को दबाएगा और लड़ेगा, वह भोग से भी नीचे गिर जाता है। उसको मैं कहता हूं रोग। और जो भोग को बह जाने देगा, वह भोग से ऊपर उठ जाता है। उसे मैं कहता हूं योग। रोग, भोग, योग। भोग नैसर्गिक है। भोग को जिसने विकृत किया, वह रोग की दुनिया में प्रवेश कर जाता है। भोग को जिसने बह जाने दिया सहजता से, स्वीकार से, संघर्ष के बिना--मिट्टी बैठ जाती है, पत्ते बह जाते हैं, गंदगी हट जाती है। योग उपलब्ध होता है।
इस योग की तरफ इशारा है लाओत्से का।
"कौन अपनी समता और शांति को सतत बनाए रख सकता है? जो प्रत्येक सक्रियता के बाद सहज ही घटित होने वाले विश्राम के राज को जान लेता है।" हू कैन मेनटेन हिज काम फॉर लांग? वक्तव्य को ठीक से समझना पड़े। बाई एक्टिविटी इट कम्स बैक टु लाइफ रेस्ट। कौन अपनी समता और शांति को सदा बनाए रख सकता है? शांति सभी को मिलती है कभी-कभी। और समता भी सभी को आती है कभी- कभी। सतत कौन बनाए रख सकता है?
तो दो उपाय हैं। एक उपाय तो है कि आदमी बिल्कुल मर जाए, मरा हुआ हो जाए। अशांत होने की भी ताकत न रहे। कुछ लोग इसकी कोशिश करते हैं। अगर मन में वासना उठती है, तो भोजन इतना कम कर दो कि शरीर में शक्ति न रहे कि वासना निर्मित हो। न होगी शक्ति, न उठेगी वासना। लेकिन शक्ति का न होना वासना का न होना नहीं है। वासना प्रतीक्षा करेगी। जब भी शक्ति होगी, तब प्रकट हो जाएगी। और अगर प्रकट होने का मौका भी न दिया, तो छुटकारा नहीं है, मौजूद ही रहेगी। बीज की तरह जमी रहेगी।
अमरीका में उन्होंने एक प्रयोग किया एक विश्वविद्यालय में। तीस विद्यार्थियों को एक महीने तक भूखा रखा। पांच-सात दिन की भूख के बाद कामवासना क्षीण होने लगी। नग्न तस्वीरें रखी रहें, अश्लील चित्र प्रदर्शित किया जाए, कोई आकर्षण नहीं। नग्न से नग्न चित्र रखे हैं सुंदर से सुंदर स्त्रियों के, कोई उठा कर भी नहीं देखता। पंद्रह दिन के बाद कितनी ही काम की चर्चा करो, कोई रस नहीं लेता। तीस दिन में ऐसा लगा कि

वासना बिल्कुल तिरोहित हो गई। क्योंकि शक्ति चाहिए, अतिरिक्त शक्ति चाहिए वासना के लिए।
तीस दिन के बाद भोजन दिया। पहले दिन के भोजन के बाद ही रस वापस लौटने लगा। तीन दिन के भोजन के बाद वे चित्र फिर सुंदर हो गए, आकर्षक हो गए। फिर चर्चाएं और मजाक और इशारे और कामवासना की दौड़ शुरू हो गई। अगर इनको जीवन भर उस तल पर रखा जाए, जहां कि ऊर्जा ज्यादा पैदा न हो, तो इनको वहम होगा कि इनके भीतर से वासना मर गई।
अनेक साधु-संत यही करते रहते हैं। वासना मिटती नहीं, केवल शक्ति की अभिव्यक्ति न होने से छिप जाती है।
लाओत्से कहता है, इस भांति अगर कोई अपने को समता में रखना चाहे, तो वह समता नहीं, मृत्यु है। शांति नहीं, मरघट का सन्नाटा है। शांति एक जीवित घटना है, सन्नाटा एक मृत। मरघट पर भी शांति होती है। अगर वैसी ही शांति चाहिए, तो अपने को सिकोड़ना पड़े और नष्ट करना पड़े। उससे कोई आनंद को उपलब्ध नहीं होता। उससे सिर्फ गहरी उदासी में डूब जाता है--इतनी उदासी में जहां जीवन अपने पंख सिकोड़ लेता है और यात्रा बंद कर देता है।
अक्सर साधु-संत दिखाई पड़ते हैं--मुर्दा, सूख गए, रस की धार खो गई। बस इतना ही जीवन बचा है कि चल लेते हैं, फिर लेते हैं। फिर हमें लगता है कि बड़ी ऊंची स्थिति पा ली। यह स्थिति भ्रांत है। जरूर एक ऊंची स्थिति है; लेकिन वह मृतवत नहीं, और भी जीवंत है। उसका राज क्या है?
लाओत्से कहता है, उसका राज यह है। सक्रियता तो आएगी जीवन में, सक्रियता जरूरी है। जीवन का अर्थ सक्रियता है। लेकिन जो व्यक्ति इस राज को समझ लेता है कि सक्रियता भी विश्राम का द्वार है, बल्कि सक्रियता ही विश्राम की जन्मदात्री है। और जो यह समझ लेता है कि सक्रियता विश्राम के विपरीत नहीं, विश्रांति का मार्ग है, वह सदा समता को उपलब्ध हो जाता है। इसे हम ऐसा समझें। अगर मैं दूकान पर बैठता हूं, तो क्रोध आ जाता है, लोभ आ जाता है। तो दो रास्ते हैं। दूकान छोड़ दूं। तो न होगी दूकान, न होगा क्रोध, न लोभ। पत्नी के साथ रहता हूं, तो कलह हो जाती है, ईर्ष्या आ जाती है। छोड़ दूं पत्नी को। न होगी ईर्ष्या, न कलह। ऐसे हटता जाऊं सब जगह से। जहां-जहां मुझे लगता हो कि गड़बड़ हो जाती है, वहां से हट जाऊं। लेकिन मैं तो मैं ही रहूंगा। चाहे दूकान से हटूं, हिमालय चला जाऊं; चाहे पत्नी को छोडूं, आश्रम में बैठ जाऊं; मैं तो मैं ही रहूंगा।
यह जो आदमी परिस्थितियों से हट रहा है, यह आदमी अपने को बदल नहीं रहा है। अपने को तो वैसा ही बचाए हुए है। यह भी हो सकता था कि विपरीत परिस्थितियां बनी रहतीं, तो शायद इसे कभी अपने को बदलना पड़ता। अब वह भी जरूरत न रहेगी। क्रोध आता ही रहता, तो एक न एक दिन इसको लगता कि क्रोध पागलपन है। अब इसने क्रोध की परिस्थिति से ही अपने को हटा लिया। कलह होती ही रहती, तो एक दिन आदमी कलह से भी ऊब जाता और ऊपर उठता। इसने कलह से अपने को हटा लिया।
यह सब तरफ से अपने को हटा ले सकता है। लेकिन यह क्रांति नहीं है, रूपांतरण नहीं है। यह आदमी वही है। सिर्फ परिस्थितियां इसने क्षीण कर दीं। इसमें कोई गहन अनुभव उपलब्ध नहीं होने वाला है।
लाओत्से कहता है कि दूकान है, तो दूकान पर रहो; बाजार है, तो बाजार; और
घर है, तो घर। परिस्थितियों से भागो मत। और क्रिया से हटो मत। करते ही रहो क्रिया। और ध्यान रखो कि क्रिया विश्राम के विपरीत नहीं है, बल्कि ठीक से जो क्रिया करे, वह उतने ही ठीक से विश्राम में प्रवेश करता है।
यह लाओत्से के बुनियादी साधना के सूत्रों में से एक है। इसे थोड़ा हम समझ लें।
मैं सोच सकता हूं कि रात मुझे नींद नहीं आती, तो मैं दिन भर भी सोया रहूं, ताकि रात अच्छी नींद आ सके। तो मैं दिन भर लेटा रहूं। यह तर्कयुक्त मालूम पड़ता है कि रात नींद नहीं आती, दिन भर भी लेट कर विश्राम करो। जितना ज्यादा विश्राम का अभ्यास करोगे, रात उतना ही ज्यादा विश्राम आएगा। लेकिन जो दिन भर लेटा रहेगा, रात नींद बिल्कुल असंभव हो जाएगी। क्योंकि तर्क एक बात और जीवन बिल्कुल दूसरी बात है। और जीवन तर्क को मान कर नहीं चलता।

तर्क को जीवन को मान कर चलना हो तो चले, जीवन किसी तर्क को मान कर नहीं चलता है। जीवन की अपनी व्यवस्था है।
और जीवन की व्यवस्था द्वंद्व की व्यवस्था है, डायलेक्टिकल है। जो आदमी दिन में खूब सक्रिय होगा, श्रम करेगा, दौड़ेगा, पत्थर तोड़ेगा, वह आदमी रात गहरी नींद में प्रवेश करेगा। क्योंकि जो जितना सक्रिय होगा, उसकी सक्रियता उतनी ही आयोजना कर देगी भीतर कि वह निष्क्रिय भी हो सके। जो एक छोर को छू लेगा द्वंद्व के, वह दूसरे छोर में अपने आप डोल जाएगा घड़ी के पेंडुलम की तरह। बाएं छू लिया, दाएं चला जाएगा। और जो आदमी रात ठीक से विश्राम कर लेगा और गहरी निद्रा में उतरेगा, तो आप यह मत समझना कि दूसरे दिन वह फिर दिन भर सोया रहेगा। जितनी गहरी नींद होगी, उतनी ही ताजगी से भरा हुआ सुबह वह उठेगा। और जितना गहरा विश्राम लिया होगा, उतने ही श्रम की क्षमता पुनः उपलब्ध हो जाएगी। इसे हम दो-चार तरफ से समझें, तो ख्याल में आए।
एक आदमी सोचता है कि अगर मुझे मौन होना है, तो मुझे बिल्कुल बोलना बंद
कर देना चाहिए। जो आदमी ऐसा सोचता है, वह जीवन के द्वंद्व को नहीं जानता। अगर वह बिल्कुल बोलना बंद कर देगा, तो वह चौबीस घंटे भीतर बोलता रहेगा। वह कभी मौन को उपलब्ध होने वाला नहीं है। मौन को तो वही उपलब्ध हो सकता है, जो जब बोलता हो तो इतनी प्रामाणिकता से बोलता हो कि सारे प्राण उसमें समाविष्ट हो जाएं, कुछ बचे न भीतर, सारी आत्मा बोलने लगे। वह आदमी जब बोलना बंद करेगा, परिपूर्ण मौन में प्रवेश कर जाएगा। जीवन द्वंद्व का नियम है। अगर आप पूरी आथेंटिसिटी से, पूरी प्रामाणिकता से बोल सकते हैं, अपने सारे प्राणों को बोलने में उंडेल दे सकते हैं, तो आप तत्क्षण, बोलना बंद होगा कि विश्राम में, मौन में प्रवेश कर जाएंगे।
लेकिन हम सोचते हैं कि अगर मौन चाहिए, तो बोलना बिल्कुल बंद कर दो। अगर रात में नींद चाहिए, तो दिन में श्रम बिल्कुल बंद कर दो। अगर शांति चाहिए, तो अशांति के सब स्थानों से हट जाओ।
नहीं; शांति चाहिए, जो अशांति के स्थान में पूरी तरह मौजूद हो जाओ, पूरे उपस्थित हो जाओ। भागने की कोई जरूरत नहीं है। जितनी पूर्ण उपस्थिति होगी वहां, उतनी ही शांति की तरफ यात्रा हो जाएगी।
इसलिए लाओत्से कहता है, रहस्य को समझो। हू कैन मेनटेन हिज काम फॉर लांग? लंबे समय तक कौन रह सकेगा शांत? कौन रह सकेगा समता में? बाई एक्टिविटी! उलटी बात कहते हैं।
मेरे साथ एक प्रोफेसर लाओत्से की इस किताब का, ताओ तेह किंग का अध्ययन करते थे। एक दिन उन्होंने मुझे आकर कहा कि मालूम होता है कुछ गलत छप गया है। उन्होंने कहा कि मालूम होता है बाई इन-एक्टिविटी होना चाहिए था, बाई एक्टिविटी छप गया है। उनका लगना ठीक था। क्योंकि अगर हम वचन को फिर से पढ़ेंः हू कैन मेनटेन हिज काम फॉर लांग? बाई इन-एक्टिविटी। ठीक मालूम पड़ेगा। कौन रह सकता है सदा समता में? जो निष्क्रिय हो जाए। लेकिन लाओत्से कहता है कि नहीं, जो सक्रिय हो।
लेकिन सिर्फ सक्रिय होने से नहीं होगा। सक्रिय तो हम सब हैं। कौन सक्रिय नहीं है? सिर्फ सक्रिय होने से नहीं होगा। इसलिए दूसरी शर्त है, यह भी जानें, इट कम्स बैक टु रेस्ट। यह भी जानें कि सब सक्रियता अनिवार्यतया विश्राम में आ जाती है। सब सक्रियताएं अंततः निष्क्रिय हो जाती हैं। इस सत्य को जान कर जो सक्रिय रहे, वह पूर्ण समता को, सदा समता को उपलब्ध हो जाएगा।
अगर बिल्कुल ठहरना हो, तो पूरा दौड़ना आना चाहिए। अगर परम शून्य में प्रवेश करना हो, परम शून्य में ठहर जाना हो, तो पूर्ण दौड़ आनी चाहिए। जो पूरा दौड़ेगा, वह एक क्षण पूर्ण रूप से ठहर जाएगा।
हम सब की तकलीफ यह है कि हमारी पूरी जिंदगी कुनकुनी है, ल्यूकवार्म है। पूरी कहीं भी नहीं है। दौड़ते हैं, तो मरे-मरे। इसलिए जब ठहरते हैं, तब भी पैर चलते रहते हैं। जागते हैं, तो मरे-मरे। इसलिए जब सोते हैं, तब भी सपने जगाए रखते हैं। भोजन करते हैं, तो मरे-मरे। इसलिए भोजन से उठ जाते हैं, लेकिन मन से भोजन नहीं उठ पाता। जो भी करते हैं, वह इतना अधूरा है कि वह जो आधा शेष रह जाता है, वह पीछा करता है।

लाओत्से कहेगा, जो भी करें, उसे इतने गहरे में करें कि विपरीत अपने आप आना शुरू हो जाए। और जब इस राज को कोई समझ लेता है, तो फिर भागता नहीं। किसी भी चीज से नहीं भागता। सक्रियता से, कर्म के जगत से नहीं भागता।
लाओत्से के लिए संन्यास का वही अर्थ है, जो कृष्ण के लिए है। लाओत्से
के लिए संन्यास का यह अर्थ नहीं है कि कोई छोड़ कर जगत को भाग जाए। लाओत्से के लिए संन्यास का वही अर्थ है जो कृष्ण के लिए है कि जो कर्म में अकर्म को उपलब्ध हो जाए; जो करते हुए इस रहस्य को समझे कि मैं न करने में अभी-अभी प्रवेश कर जाऊंगा; कर लूं पूरा, ताकि न करने में भी पूरा उतर जाऊं।
ऐसा व्यक्ति सतत समता में जी सकेगा। उसकी समता को कोई भी तोड़ नहीं सकेगा। कोई तोड़ने का उपाय नहीं है। क्योंकि असमता से वह भागता नहीं है, असमता में भी जीता है। हिमालय पर जो चला गया है, उस आदमी को क्रोधित कर देना बहुत आसान है। हो सकता है, उसे तीस वर्षों से क्रोध न आया हो। लेकिन क्रोधित कर देना बहुत आसान है। लेकिन जो बाजार में बैठ कर शांत हो गया हो, भला तीस ही दिन केवल उसको शांति के उपलब्ध हुए हों, तो भी उसे क्रोधित करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि क्रोध की सारी स्थितियां मौजूद हैं, उनके बीच वह शांत हो गया है। जो क्रोध की स्थितियां छोड़ कर शांत हो गया, उसकी शांति धोखा भी हो सकती है। सौ में निन्यानबे मौकों पर होगी। अन्यथा भागने का कोई कारण नहीं था, भयभीत होने का कोई कारण नहीं था।
"अतः जो व्यक्ति ताओ को उपलब्ध होता है, वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से बचाता है।"
अब यह एक और ताओ का बुनियादी नियम है।
"और चूंकि वह अति पूर्णता से बचा रहता है, इसलिए वह क्षय और पुनर्जीवन
के पार चला जाता है।"
पहले सूत्र में लाओत्से ने जो कहा, दूसरे सूत्र में जो कह रहा है, वह विपरीत मालूम पड़ेगा। विपरीत नहीं है।
पहले सूत्र में लाओत्से ने कहा कि किसी भी क्रिया की पूर्णता में प्रवेश कर जाना चाहिए। क्रिया की, ध्यान रखना, किसी भी क्रिया की पूर्णता में प्रवेश करना चाहिए--समग्र, टोटल--तो उस क्रिया के विपरीत जो स्थिति है, वह अपने आप चली आती है। इसे स्मरण रख कर जो जीएगा, वह समता को उपलब्ध हो जाता है। दूसरे सूत्र में लाओत्से कहता है, जो व्यक्ति ताओ को उपलब्ध होता है--धर्म को, स्वभाव को, परमात्मा को--वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से बचाए रखता है। कर्म में तो पूर्णता होनी चाहिए, लेकिन स्वयं को--दूसरा सूत्र स्वयं के संबंध में है, पहला सूत्र कर्म के संबंध में है। पहले सूत्र के संबंध में लाओत्से कहता है, द्वंद्व है जगत, एक को पूरा करो, अगर पूरा करो, तो विपरीत में प्रवेश हो जाता है। सहज, कोई कठिनाई नहीं है। और जब ये दोनों चीजें सध जाती हैं, तो समता, संतुलन निर्मित होता है। दूसरे सूत्र में कहता है, लेकिन तुम स्वयं पूर्ण बनने के पागलपन में मत पड़ना। क्योंकि अगर स्वयं तुम पूर्ण बनना चाहो, तो जो परिणाम होंगे, वे ये होंगे कि तुम क्षय को उपलब्ध हो जाओगे और फिर-फिर तुम्हें जन्म लेना पड़ेगा।
यह बड़ा अजीब मालूम पड़ता है। क्योंकि साधारणतया हम सभी परफेक्शनिस्ट हैं। सारी दुनिया पूर्णतावादी है। हर आदमी पूर्ण होने की कोशिश में लगा है। लाओत्से कहता है, पूर्ण नहीं होना है, समग्र होना है। अंग्रेजी में दो शब्द हैं, वे हमें ख्याल में ले लेने चाहिए। एक शब्द है परफेक्ट और एक शब्द है होल। पूर्ण और समग्र। पूर्ण होने का मतलब है, किसी एक दिशा में शिखर को छू लेना। और समग्र होने का अर्थ है, सभी दिशाओं को संतुलन से स्पर्श कर लेना। ऐसा समझें हम। एक व्यक्ति है। अगर वह ईमानदारी में पूर्ण होना चाहे, पूर्ण ईमानदार होना चाहे, तो उसका जीवन शांत जीवन नहीं होगा। बहुत तनाव से भरा हुआ जीवन हो जाएगा। चौबीस घंटे बेईमानी से लड़ने की ही स्थिति बनी रहेगी। और खींच-खींच कर उसे अपने को शिखर पर रखना पड़ेगा। यह अहंकार होगा, ईमानदार का अहंकार होगा। कठिन भी हो सकता है, कठोर, सख्त भी हो सकता है। लाओत्से कहता है, ईमानदारी या बेईमानी, बेईमानी में भी पूर्ण होने की
जो कोशिश में लगा है वह भी परेशानी में पड़ेगा और ईमानदारी में जो पूर्ण होने की कोशिश में लगा है वह भी परेशानी में पड़ेगा, क्योंकि ईमानदारी और बेईमानी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो अच्छा होने की कोशिश में लगा है

वह भी कठिनाई में पड़ेगा, जो बुरा होने की कोशिश में लगा है वह भी कठिनाई में पड़ेगा, क्योंकि दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। और आप सिक्के का एक हिस्सा बचा रहे हैं और दूसरा फेंकने की कोशिश कर रहे हैं। आप कठिनाई में पड़ेंगे।
लाओत्से कहता है, पूर्ण होने की कोशिश ही मत करना, दोनों द्वंद्वों के बीच में ठहर जाना। न बेईमान बनना और न ईमानदार बनना।
यह बड़ी कठिन बात है। ईमानदार बनना आसान है, बेईमान बनना आसान है, दोनों के बीच ठहर जाना बहुत ही कठिन है। क्यों? क्योंकि हमें दोनों बातें समझ में आती हैं। बेईमान बन जाओ, बिल्कुल समझ में आता है। ईमानदार बन जाओ, समझ में आता है। दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं। रास्ते साफ मालूम पड़ते हैं।
लाओत्से कहता है, कहीं भी पूर्ण बनने की कोशिश मत करना, बीच में ठहर जाना। ईमानदारी और बेईमानी के, शुभ और अशुभ के, अंधेरे और प्रकाश के, साधुता और असाधुता के बीच में ठहर जाना। क्योंकि जो बीच में ठहर जाएगा, उसके सारे तनाव समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि सब तनाव द्वंद्व से पैदा होते हैं। कर्म में पूरे जाना और स्वयं में हमेशा बीच में ठहर जाना।
यहां लाओत्से और बुद्ध में बड़ा तालमेल है। शायद बुद्ध की बात चीन में इतनी प्रभावी हो सकी, उसका कारण लाओत्से का यह सूत्र था। बुद्ध ने मज्झिम निकाय, दि मिडिल वे की चर्चा की है। और जगत में मज्झिम निकाय के, मध्य मार्ग के बुद्ध सबसे बड़े प्रस्तोता हैं। बुद्ध ने कहा, बीच में! कहीं अति पर मत जाना।
तो बुद्ध के जीवन की एक घटना कहूं, उससे यह ख्याल में आ जाए।
बुद्ध के पास एक राजकुमार दीक्षित हुआ, श्रोण। भोगी था बहुत। फिर त्यागी हो गया बहुत। क्योंकि आदत बहुत की थी। इससे कोई अंतर न पड़ता था कि बहुत क्या था। बहुत भोगी था। छोड़ दिया भोग, बहुत त्यागी हो गया। कहते हैं, कभी खाली पैर जमीन पर न चला था। राह से गुजरता था, तो मखमल पहले बिछाई जाती, तब वह गुजरता था। फिर दीक्षित हुआ, साधु हो गया बुद्ध का। तो भिक्षु पगडंडी पर चलते थे, तो वह कंटकित, कांटे से भरे मार्ग पर चलता था। भिक्षु देख कर चलते थे कि रास्ते पर कांटे न हों; वह देख कर चलता था कि कांटे जरूर हों। पैर उसके घावों से भर गए। भिक्षु छाया में बैठते, तो वह धूप में बैठता। भिक्षु एक दिन में एक बार खाते, तो वह दो दिन में एक बार खाता। बहुत! यह मजा है। भोग मन छोड़ सकता है, त्याग पकड़ सकता है; लेकिन अति नहीं छोड़ सकता। मन अति में जीता है। मन को अति चाहिए। छह महीने में, उसकी बड़ी सुंदर काया थी, सोने जैसा उसका शरीर था, वह सब काला पड़ गया। सारे शरीर पर फफोले हो गए। सारा शरीर जल गया। बुद्ध को अनेक बार और-और भिक्षुओं ने आकर कहा, श्रोण महा तपस्वी है! हम तो उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। बुद्ध हंसते और वे कहते कि तुम्हें पता नहीं, वह महा भोगी रहा, महा तपस्वी होना उसे आसान है।
छह महीने तक बुद्ध ने कुछ भी न कहा। श्रोण अपने को गलाता चला गया, सुखाता चला गया। फिर एक सांझ बुद्ध उसके पास गए। और बुद्ध ने कहा कि श्रोण, मैं कुछ पूछने आया हूं, कुछ बात, जिसकी मुझे कम जानकारी है, लेकिन तुम्हें है, उस संबंध में कुछ जानने आया हूं।
श्रोण चकित हुआ और उसने कहा कि आप और मुझसे जानने आए हैं! क्या?
तो बुद्ध ने कहा, मैंने सुना है कि जब तुम राजकुमार थे, तो तुम बड़े कुशल वीणावादक थे। मैं तुमसे यह पूछने आया हूं कि वीणा के तार अगर बहुत कसे हों, तो संगीत पैदा होता है या नहीं?
तो श्रोण ने कहा, तार बहुत कसे हों, तो टूट जाएंगे; संगीत पैदा नहीं होगा। टूट कर सिर्फ बिखरा हुआ विसंगीत पैदा होगा; संगीत पैदा नहीं होगा। तार टूट जाएंगे।
बुद्ध ने कहा, तो श्रोण, तार अगर बिल्कुल ढीले हों, तो संगीत पैदा होता
या नहीं?
तो श्रोण ने कहा, आप भी कैसी बातें पूछते हैं! तार ढीले हों, तो चोट ही नहीं पड़ सकती; संगीत कैसे पैदा होगा?
तो बुद्ध ने कहा, संगीत कब पैदा होता है?

तो श्रोण ने कहा कि तारों की एक ऐसी भी अवस्था है, जब न तो हम कह सकते
कि वे कसे हैं और न कह सकते कि ढीले हैं। तार एक ऐसी समता में भी खड़े हो जाते हैं जब न कसे होते हैं और न ढीले होते हैं; तभी संगीत पैदा होता है। तो बुद्ध ने कहा कि मैं तुमसे यही कहने आया हूं कि जो वीणा में संगीत
के पैदा होने का नियम है, वही जीवन में भी संगीत के पैदा होने का नियम है। न तो जीवन के तार ढीले हों भोग की तरफ, तो भी संगीत पैदा नहीं होता। और जीवन के तार विपरीत कस जाएं त्याग की तरफ, तो भी संगीत पैदा नहीं होता। जीवन के तारों की भी एक ऐसी अवस्था है श्रोण, जब तार न ढीले होते और न कसे। एक ऐसा क्षण भी है चेतना का, जब न भोग होता और न त्याग; जब न आदमी इस अति में होता और न उस अति में, बीच में ठहर जाता है; तभी जीवन का परम संगीत पैदा होता है। उस परम संगीत का नाम ही समाधि है। तो तूने जो वीणा के साथ सीखा, जीवन के साथ भी कर। देखता हूं कि पहले तेरे तार बहुत ढीले थे, तब संगीत पैदा नहीं हुआ। अब पागल की तरह तार तूने इतने कस लिए हैं कि अब भी संगीत पैदा नहीं हो रहा है।
लाओत्से कहता है, जो ताओ को उपलब्ध होता है, वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से, टू मच ऑफ परफेक्शन, वह अति पूर्णता से हमेशा अपने को बचाता है।
वह सदा मध्य में रह जाता है। न इस तरफ, न उस तरफ--बीच में।
मन है अति। और जहां कोई अति नहीं होती, वहां मन नहीं होता। मन होता है
या तो बाएं, या दाएं; मध्य में कभी नहीं। मन या तो होता है राइटिस्ट, या होता है लेफ्टिस्ट; बीच में कभी नहीं। बीच में मन होता ही नहीं।
अगर हम वीणा की ही बात को ठीक से समझें, तो ऐसा कह सकते हैं कि जब तार बिल्कुल मध्य में होते हैं, तो तार होते ही नहीं। क्योंकि जब तक तार होगा, तब तक संगीत में बाधा देगा। लोग आमतौर से समझते हैं कि वीणा जब बजती है, तो तार से संगीत पैदा होता है। गलत है बात। तार से संगीत पैदा नहीं होता, तार की समता से संगीत पैदा होता है।
इसलिए वीणा बजाना सीखना तो बहुत आसान है, वीणा को ठीक तार की अवस्था में लाना कठिन है। वीणा तो कोई सिक्खड़ भी बजा सकता है, लेकिन साज को बिठाना बहुत कठिन है। क्योंकि साज को बिठाने का मतलब है कि तार को समता में लाने की कला चाहिए। और जब भी कोई कुशल हाथ तार को समता में ले आता है, तो बड़ा काम तो हो गया। संगीत तो पैदा कर लेना फिर बच्चे भी कर सकते हैं। लेकिन उस तार को समता में ले आना! ध्यान रहे, जब तार बिल्कुल सम होता है, तो तार होता ही नहीं, संगीत ही रह जाता है। और तार जब विषम होता है, तो तार ही होता है, संगीत नहीं होता।
मन जब अति में होता है, तो मन होता है। और जब अति खो जाती है, मध्य होता है, तो मन होता ही नहीं। चैतन्य, चेतना, आत्मा ही शेष रह जाती है।
ऐसा जो व्यक्ति है, लाओत्से कहता है, वह क्षय को और पुनर्जीवन को उपलब्ध नहीं होता।
जो इस मध्य में ठहर गया, वह अमृत में ठहर जाता है। दोनों अतियों की मृत्यु है, मध्य की कोई मृत्यु नहीं है। दोनों अतियों पर तनाव है। तनाव है, इसलिए क्षय होगा। तार बहुत कसे हों, तो टूट जाएंगे। और तार बहुत ढीले हों और कोई खींचतान कर संगीत पैदा करने की कोशिश करे, तो भी टूट जाएंगे। तार जितनी समता में होंगे, उतना ही टूटना असंभव है। तनाव नहीं है, तो टूटने का उपाय नहीं है। तनाव ही तोड़ता है।
तो लाओत्से कहता है, "वह क्षय और पुनर्जीवन... ।"
क्षय समाप्त हो जाता है। जहां क्षय समाप्त हो गया, वहां मृत्यु असंभव है। मृत्यु समस्त क्षय का जोड़ है। रोज-रोज क्षय होता है; फिर मृत्यु सब का जोड़ है। जो इस भीतर की समता को अनुभव कर लेता है, वह क्षय को भी उपलब्ध नहीं होता, मृत्यु को भी नहीं।
शरीर तो जाएगा; क्योंकि शरीर अतियों में ही जीता है। जन्म एक अति है, मृत्यु दूसरी। मन भी जाएगा; क्योंकि मन भी अति में जीता है। भोग-त्याग, मित्रता-शत्रुता, प्रेम-घृणा, ऐसा ही जीता है; संसार-मोक्ष, ऐसा ही जीता है। वह भी अति में ही जीता है, वह भी जाएगा। लेकिन भीतर एक तीसरी स्थिति भी है, जो समता की है। सम होते ही उसका पता चलता है। उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। और जहां मृत्यु नहीं, वहां फिर पुनर्जीवन नहीं है।

लाओत्से बिना आवागमन की बात किए इस सूत्र में कहता है कि आवागमन से छूट जाने का यह उपाय है। दो बातें कही हैंः कर्म में समग्रता, ताकि विपरीत अवस्था में सहज प्रवेश हो; स्वयं में मध्यता, ताकि कोई तनाव पैदा न हो। और जीवन में क्षय और मृत्यु असंभव हो जाएं।
आज इतना ही। पांच मिनट बैठेंगे, कीर्तन में सम्मिलित हों।

ताओ उपनिषद, भाग दो
छत्तीसवां प्रवचन

तटस्थ प्रतीक्षा, अस्मिता-विसर्जन व अनेकता में एकता

पहला प्रश्नः ओशो, जल के निर्मल होने की प्रतीक्षा मैं बारह वर्षों
से कर रहा हूं। किंतु परिस्थितियों की गाड़ियां तो गुजरती रहती हैं; और यह आजीवन होता रहेगा। फिर भी क्या प्रतीक्षा करता रहूं?

प्रतीक्षा महत्वपूर्ण है, जरूरी, लेकिन काफी नहीं है। प्रतीक्षा के साथ-साथ मन के किनारे बैठना भी आना चाहिए। अगर नदी की धार में ही बैठ गए और प्रतीक्षा की, तो परिणाम न होगा। नदी की धार में बैठ रहे, तो खुद के होने से भी गंदगी उठती रहेगी। धार के बाहर, तट पर बैठने की कला ही ध्यान है। प्रतीक्षा ध्यान का अनिवार्य अंग है। लेकिन प्रतीक्षा ही ध्यान नहीं है। जो प्रतीक्षा नहीं कर सकता, वह तो ध्यान कर ही नहीं सकेगा। लेकिन जो प्रतीक्षा को ही ध्यान समझ ले, वह भी भूल में है। ध्यान है किनारे पर बैठने की कला।
मन की धार है, विचार हैं। मन के बीच ही बैठ कर अगर आपने मन को कितनी ही प्रतीक्षा से देखा, तो भी मन के बाहर कभी न हो पाएंगे। और न ही मन की धार कभी शुद्ध हो पाएगी। आपकी मौजूदगी भी मन को अशुद्ध बना रही है। आप मन के बाहर हो जाएं, किनारे से बैठ कर देखें, मन को देखें दूर से। जैसे कोई आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखे, ऐसे ही दूर से अपने विचारों को चलते हुए देखें। जैसे कोई नदी को बहता हुआ देखे, ऐसे ही किनारे बैठ कर अपने मन को भी बहता हुआ देखें। जितनी यह दूरी बढ़ेगी, उतनी ही जल्दी मन शांत और शुद्ध हो जाएगा, एक बात।

दूसरी बात, जीवन की अनंत कथा में बारह वर्ष कुछ भी नहीं हैं। जीवन के अनंत विस्तार में बारह वर्ष का क्या मूल्य है? तो ऐसा मत सोचें कि बारह वर्ष प्रतीक्षा की, तो बहुत बड़ी प्रतीक्षा हो गई। क्योंकि बारह वर्ष प्रतीक्षा की है, तो बारह लाख जन्म उस नदी को गंदा करने का पूरा प्रयास किया है। अनुपात कुछ भी नहीं है। इसलिए मैं कहता हूंः अनंत प्रतीक्षा। लेकिन अनंत प्रतीक्षा का यह अर्थ नहीं है कि जन्मों-जन्मों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। करने की तैयारी होनी चाहिए। घटना तो एक क्षण में भी घट सकती है। और जितनी बड़ी होगी तैयारी प्रतीक्षा की, उतनी जल्दी घटना घट जाती है। क्यों? क्योंकि अधैर्य भी मन को आंदोलित करता है। परिस्थितियों की गाड़ियां मन की गंदगी को उतना नहीं उठातीं, जितना खुद का अधैर्य मन की गंदगी को उठा देता है।
प्रतीक्षा का अर्थ है कि मैं अब धैर्य को उपलब्ध हुआ। कभी भी हो घटना, मैं प्रतीक्षा करूंगा जन्मों-जन्मों तक, मेरा कोई अधैर्य नहीं है, मेरी कोई जल्दी नहीं है। जितनी हो जल्दी, उतनी देर लगती है। और जितनी देर तक प्रतीक्षा करने के लिए राजी हो मन, उतनी जल्दी घटना घट जाती है।
तो बारह वर्ष को बहुत बड़ी बात मत समझें। और प्रतीक्षा को काफी न समझें। किनारे पर बैठने, साक्षी होने, जागरूक होने की बात पर ध्यान दें।

दूसरा प्रश्नः लाओत्से कहते हैं कि ताओ में प्रतिष्ठित संतजनों की अस्मिता पिघलते बर्फ की तरह सतत विसर्जित होती रहती है। तो क्या अस्मिता के रहते हुए भी कोई परम सत्य में प्रतिष्ठित हो सकता है? और क्या अस्मिता के रहते भी कोई व्यक्ति संत व ज्ञानी कहा जा सकता है? अस्मिता की स्थिति मानसिक ही है या मन के पार आध्यात्मिक है?
फिर आपने कहा कि अस्मिता के पूर्ण विसर्जन पर संत परमात्मा हो जाता है। तो क्या संत अस्मिता के रहने पर परमात्मा से वियुक्त रहता है?

तीन बातें हैं। दो शब्दों को ठीक से समझ लेना चाहिए। एक है अहंकार और दूसरा है अस्मिता।

अहंकार का अर्थ हैः मैं शरीर से एक हूं। जब शरीर से चेतना जुड़ जाती है, जुड़ा हुआ अनुभव करती है, तादात्म्य कर लेती है, एकता बना लेती है, तो अहंकार निर्मित होता है। जब चेतना शरीर से अपने को अलग जान लेती है, भिन्न पहचान लेती है, तादात्म्य टूट जाता है, तो अहंकार टूट जाता है। लेकिन शरीर से मैं अलग हूं, यह जान लेना जरूरी नहीं है, काफी नहीं है यह जानने के लिए कि मैं परमात्मा से एक हूं। मैं शरीर से अलग हूं, इस भाव में अगर कोई ठहर जाए और परमात्मा के साथ एकता को अनुभव न कर पाए, तो इस स्थिति का नाम अस्मिता है।
मैं शरीर के साथ एक हूं, इस स्थिति का नाम अहंकार। मैं शरीर से अलग हूं, इस स्थिति का नाम अस्मिता। और मैं परमात्मा के साथ एक हूं, यह अस्मिता के भी पार।
लाओत्से कहता है कि संत के लिए एक बात तो अनिवार्य है कि उसका अहंकार टूट जाए; वह जान ले कि मैं शरीर नहीं हूं, मन नहीं हूं। इतना पहचान ले, यह तो संत का लक्षण है। लेकिन संत यहां भी रुक सकता है। बहुत संत यहीं रुक जाते हैं। जिन संतों ने यह कहा है कि परमात्मा नहीं है, बस आत्मा ही है, वे संत इसी वर्ग के हैं। उन्होंने एक कड़ी तो तोड़ दी बंधन की, उन्होंने गलत से तो नाता तोड़ लिया--और यह बड़ी घटना है। उन्होंने क्षुद्र से तो संबंध अलग कर लिया--और यह बहुत बड़ी क्रांति है। लेकिन आधी है क्रांति। अभी एक काम और करना हैः विराट से संबंध जोड़ना है। जब विराट से भी संबंध जुड़ता है, तो अस्मिता भी खो जाती है।
मैंने आपसे कहा, मैं हूं; इसमें दो शब्द हैं। मैं अहंकार है और हूं अस्मिता है। संत का मैं तो गिर जाता है, सिर्फ हूं रह जाता है--एमनेस, हूं। लाओत्से कहता है, यह संत की परिभाषा है कि उसकी अस्मिता अभी है, अहंकार खो गया।
यह अस्मिता अगर सघन होती रहे, मजबूत होती रहे, तो अहंकार वापस लौट सकता है। अगर अस्मिता और जम जाए, गहरी हो जाए, तो अहंकार वापस लौट सकता है। यह अस्मिता पिघलती रहे--इसलिए यह बात भी लाओत्से ने जोड़ी कि संत की अस्मिता बर्फ की तरह पिघलती रहेगी; जैसे धूप में पड़ी बर्फ हो, पिघलती रहेगी--पिघलती रहे, तो एक दिन अस्मिता भी खो जाएगी। मैं तो खो गया; हूं भी एक दिन खो जाएगा। उस दिन शुद्ध अस्तित्व बचेगा। उस दिन, लाओत्से कहता है कि फिर संत भी कहने का कोई अर्थ न रहा। उस दिन वह व्यक्ति, वह लहर सागर के साथ एक हो गई।
संत होना भी तो दूरी है। असंत बहुत दूर होगा; संत निकट होगा। लेकिन निकटता भी एक दूरी है। निकटता भी एकता नहीं है। संत भी दूर है। पास है, बहुत पास है, असंत से बहुत ज्यादा पास है। लेकिन कितने ही पास हो, फासला अभी कायम है। लाओत्से का अंतिम जो लक्ष्य है, वह है जब इतना फासला भी न रह जाए, पास होना भी मिट जाए। दूर होना तो मिट ही गया, पास होना भी मिट जाए। दूरी तो खो गई, निकटता भी खो जाए। तभी, तभी एकता उपलब्ध होगी।
साधारणतः हमें दिखाई पड़ता हैः दूरी खो गई, तो एकता हो गई। दूरी खोने
से एकता नहीं होती, बल्कि सच तो यह है कि जितने निकट आते हैं, उतनी दूरी मालूम पड़ती है। असंत को कभी भी नहीं अखरती ईश्वर की दूरी। ईश्वर की दूरी असंत को अखरती ही नहीं। दूरी इतनी बड़ी है कि उसे पता भी नहीं चलता। वह पूछता है, कहां है ईश्वर? दूरी इतनी बड़ी है कि उसे ईश्वर कहीं दिखाई भी नहीं पड़ता।
संत की पीड़ा बढ़ जाती है। निकट इतने होता है कि हाथ बढ़ाए और ईश्वर है, श्वास ले और ईश्वर है, हिले और ईश्वर से धक्का लगता है। इतनी निकटता है! और तभी, जिसको संतों ने विरह कहा है... । असंत को विरह पैदा नहीं होता। वह इतने दूर है कि विरह का कोई सवाल नहीं है। संत को विरह पैदा होता है। इतने निकट है, फिर भी एक नहीं हो पाता। वह निकटता भी कष्ट देने लगती है। बहुत झीना सा पर्दा रह जाता है।
लेकिन दीवार हो बीच में, तो हमें दिखाई भी नहीं पड़ता उस पार। आकांक्षा
भी नहीं होती; आशा भी नहीं उमड़ती; प्यास भी नहीं जगती। अहंकार पत्थर की दीवार है। अस्मिता बहुत ट्रांसपैरेंट, पारदर्शी कांच की दीवार है। उस पार सब दिखाई पड़ता है, जैसे बीच में कोई दीवार ही न हो। लेकिन जब भी संत बढ़ने की

कोशिश करता है, तभी वह दीवार टकराती है। तब पीड़ा भारी हो जाती है और विरह सघन हो जाता है।
संतों ने ही ईश्वर का विरह जाना है। संत भी वियुक्त है, अभी संयुक्त नहीं है। एक पारदर्शी दीवार संत को भी दूर करती है। जिस दिन यह पारदर्शी दीवार भी पिघल जाती है, उस दिन न दूरी रहती है, न निकटता रहती है। उस दिन एकता सधती है। उस दिन संत खो जाता है और परमात्मा ही शेष रह जाता है।
यह जो अस्मिता है, यह आध्यात्मिक स्थिति है या मन की? यह भी पूछा है।
यह मन की अंतिम स्थिति है और अहंकार मन की प्रथम स्थिति है। अहंकार मन
की स्थूलतम स्थिति है, अस्मिता मन की सूक्ष्मतम।
हम ऐसा समझें कि मन है बीच में। एक तरफ जगत है और एक तरफ परमात्मा है,
और मन है बीच में। जहां मन जगत से जुड़ता है, वहां अहंकार पैदा होता है। और जहां मन परमात्मा से जुड़ता है, वहां अस्मिता खड़ी है। ये दो जोड़ हैं। जहां मन जगत से जुड़ता है, उस जोड़ का नाम है अहंकार। और जहां मनुष्य का मन परमात्मा से जुड़ता है या टूटता है--क्योंकि सब जोड़ तोड़ भी होते हैं; जहां चीजें जुड़ती हैं, वहीं टूटती भी हैं--वह है अस्मिता।
संत लाओत्से कहता है उसे, जिसका पहला जोड़ टूट गया, जगत से संबंध विच्छिन्न हुआ; लेकिन जिसका अभी दूसरा तोड़ कायम है, अभी परमात्मा से एकता नहीं सधी। तो अस्मिता कायम है। अस्मिता मन का सूक्ष्मतम रूप है और अहंकार मन का स्थूलतम। लेकिन दोनों ही मन की घटनाएं हैं।
ध्यान रहे, असंत भी मन है और संत भी। मन के बाहर जाकर तो दोनों नहीं रह जाते। श्रेष्ठतम भी मन के भीतर है और निकृष्टतम भी। क्योंकि मन के पार जाकर तो न श्रेष्ठ रहता है और न निकृष्ट। अशुभ भी मन का है, शुभ भी। बुरा भी मन का है, भला भी। मन के पार जाकर न तो बुरा रह जाता है और न भला। द्वंद्व खो जाते हैं। जब तक द्वंद्व है, तब तक जानना कि मन है। जहां द्वंद्व नहीं, वहां मन नहीं। संत भी द्वंद्व का हिस्सा है। असंत और संत दो छोर हैं द्वंद्व के।
अगर यह ख्याल में आ जाए, तो अंतिम छलांग! पहली छलांग अहंकार से और अंतिम छलांग अस्मिता से। पहली छलांग "मैं" से और अंतिम छलांग "होने" से। इसलिए बुद्ध अनात्मा की बात कहते हैं। बुद्ध ने अस्मिता की जगह आत्मा शब्द का उपयोग किया है। बुद्ध कहते हैं, अहंकार छूटे और फिर आत्मा भी छूटे; तभी परम सत्य में प्रवेश है।
इस सारी बात में जो कठिनाई हमारे मन में होती है, वह यह कि फिर क्या ऐसे व्यक्ति को हम संत कहेंगे जो अभी मन में ही हो? क्या हम कहेंगे कि उसने परम सत्य को पा लिया?
भाषा में सभी बातें सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। जब हम कहते हैं, संत ने परम सत्य पा लिया, तो उसका इतना ही मतलब होता है कि जहां हम खड़े हैं, वहां से संत परम सत्य के बहुत निकट पहुंच गया। हमारे और सत्य के बीच पत्थर की दीवार है; उसके और सत्य के बीच कांच की दीवार है, जो दिखाई भी नहीं पड़ती। अब सत्य उसे इतना ही साफ है, जैसे कि दीवार न हो। लेकिन दीवार अभी है।
वह दीवार हमें दिखाई नहीं पड़ेगी, एक बात समझ लें। जो स्वयं संत नहीं
हो गए हैं, उन्हें वह दीवार बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगी। वे तो कहेंगे कि संत के लिए अब कोई दीवार न रही। लेकिन जो उस दीवार के पास पहुंच गया है, स्वयं संत, उसे वह दीवार पता चलेगी। क्योंकि दीवार पारदर्शी है; दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन स्पर्श होता है। पार होना चाहो, तो सिर टकराता है। उस पार का सब कुछ दिखाई पड़ता है; लेकिन दिखाई ही पड़ता है, अगर उसमें प्रवेश करना चाहो, तो दीवार बीच में खड़ी हो जाती है।
अस्मिता इतनी सूक्ष्म दीवार है कि सिर्फ संत को दिखाई पड़ती है। संत
के भक्तों को भी दिखाई नहीं पड़ सकती। संत के भक्तों को तो लगता है कि संत परमात्मा हो गया। स्वाभाविक! संत के भक्तों ने कांच की कोई दीवार नहीं देखी, पत्थर की दीवारें देखी हैं। लेकिन संत को स्वयं प्रतिपल अनुभव होता है कि एक सूक्ष्म दीवार अभी भी उसे घेरे हुए है। अभी वह मिट नहीं गया है। अभी भी वह है।
लाओत्से संत के अनुभव से कह रहा है कि अस्मिता भी पिघल जाए, पिघल जाए,
खो जाए, तभी; उसके पहले नहीं। लेकिन हमारे अनुभव से हम कह सकते हैं कि संत

ईश्वर हो गया। सापेक्ष है। हम भी जब संत होंगे, तब हम पाएंगे कि नहीं, अभी एक दीवार और रह गई है। अभी होना भी बाधा है। वह भी खो जाना चाहिए; वह भी मिट जाना चाहिए। जब तक संत की जगह शून्य न आ जाए, तब तक वह दीवार भी नहीं गिरती।

तीसरा प्रश्नः ताओ में निष्णात एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति के लक्षण बताते समय लाओत्से कहता है कि ऐसे व्यक्ति अपने बारे में किसी प्रकार की घोषणा नहीं करते हैं। लेकिन मंसूर कहते हैं, अनलहक! उपनिषद के ऋषि कहते हैं, अहं ब्रह्मास्मि! जीसस कहते हैं, मैं परमात्मा का पुत्र हूं! मेहरबाबा कहते हैं अवतार, भगवान स्वयं को। तो इन सबकी घोषणाओं का लाओत्से के उपरोक्त वचन से क्या संबंध है?

इस सूत्र को समझना हो, तो दो बातें समझनी जरूरी हैं।
पहलाः जीवन को समझने के, जीवन को प्रकट करने के, जीवन को शब्द देने के
दो ढांचे हैं। एक विधायक, एक नकारात्मक; एक पाजिटिव, एक निगेटिव। जब भी हम कोई चीज कहना चाहें, तो दो ढंग से कह सकते हैं। इस कमरे में अंधेरा हो, तो हम कह सकते हैं, अंधेरा है; और हम यह भी कह सकते हैं कि प्रकाश नहीं है। एक आदमी जीवित हो, तो हम यह भी कह सकते हैं, वह जीवित है; और हम यह भी कह सकते हैं कि वह अभी मरा नहीं है। विधायक, पाजिटिव अभिव्यक्ति हो सकती है और नकारात्मक, निषेधात्मक, निगेटिव। निर्भर करता है व्यक्तियों के ऊपर। लाओत्से और बुद्ध नकारात्मक शब्दों को अत्यंत प्रेम करते हैं। किसी
भी चीज को कहना हो, तो वे नकारात्मक ढंग से ही कहना उचित मानते हैं। उसके कारण भी हैं। उसके अनेक कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि जैसे बुद्ध को जब अपने अनुभव को कहना पड़ा, तो बुद्ध को अनुभव हुआ कि चारों तरफ विधायक बातें कही गई हैं और उन विधायक बातों को मान कर लाखों लोग भटक गए हैं। जैसे एक आदमी कहता है कि मैं ईश्वर हूं। इसमें दो संभावनाएं हैं। एक संभावना यह है कि वह जो कहता हो, वह सच हो। इसमें दूसरी संभावना यह है कि वह जो कहता हो, वह झूठ हो और पाखंड हो। ये दोनों बातें संभव हैं। अगर सौ आदमी घोषणा करते हों ईश्वर होने की, तो बहुत संभावना यह है कि निन्यानबे लोग झूठ ही घोषणा करते हों। आदमी का अहंकार इसमें भी मजा ले सकता है कि मैं ईश्वर हूं। अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। और अहंकार को इससे ज्यादा मजा और किस बात में आएगा कि मैं ईश्वर हूं?
तो बुद्ध को ऐसा लगा, लाओत्से को भी ऐसा लगा, कि इस संबंध की विधायक घोषणा खतरनाक है। जरूरी रूप से गलत है, ऐसा नहीं। क्योंकि मंसूर जब कहता है अनलहक, तो ठीक ही कहता है। मंसूर की तरफ से इसमें कहीं भी भूल-चूक नहीं है। जब मंसूर कहता है मैं ब्रह्म हूं, तो मंसूर असल में यही कहता है कि मैं नहीं हूं, ब्रह्म है। और जब उपनिषद के ऋषि कहते हैं अहं ब्रह्मास्मि--मैं ब्रह्म हूं--तो उनका भी यही अर्थ होता है कि मैं अब कहां, ब्रह्म ही है। मैं ब्रह्म हूं, इसका यही अर्थ होता है। लेकिन अगर सत्य हो स्थिति, तब।
लेकिन कोई पागल भी कह सकता है कि अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। और उसको रोका नहीं जा सकता। और डर इस बात का है कि ऐसे लोग भी लोगों को प्रभावित करेंगे। ऐसे लोग भी लोगों को आंदोलित करेंगे। और ऐसे लोग गलत रास्तों पर भटकाने का कारण भी बनेंगे।
तो बुद्ध ने कहा, घोषणा नहीं, घोषणा नहीं। लाओत्से ने भी कहा, घोषणा नहीं। संत घोषणा नहीं करेगा; चुप रहेगा।
लेकिन चुप होना भी घोषणा है। आदमी कुछ भी करे, घोषणा होगी ही। और अगर समझ लें कि यहां जितने लोग बैठे हैं, वे सब यह मानते हों कि संत का लक्षण है कि वह घोषणा न करे, तो जो घोषणा नहीं करेगा उसे वे संत मानेंगे। तो जिसे संत अपने को मनवाना हो, वह घोषणा से बच सकता है।
बुद्ध और लाओत्से ने नकारात्मक का उपयोग किया। लेकिन बहुत शीघ्र दोनों मुल्कों में पाया गया कि अहंकार के रास्ते बड़े अदभुत हैं; वह विधायक से भी शोषण कर सकता है, नकारात्मक से भी शोषण कर सकता है। अगर आप मेरे पास आकर कहते हैं कि फलां व्यक्ति कहता है कि मैं ईश्वर हूं, तो मैं कहूंगाः वह संत नहीं है, क्योंकि संत घोषणा नहीं करते। मुझे देखो, मैं घोषणा नहीं करता।

घोषणा हो गई। घोषणा नकारात्मक भी हो, तो हो जाएगी।
मेहरबाबा कहते हैं, मैं अवतार हूं। यह विधायक घोषणा है। कृष्णमूर्ति कहते हैं, मैं अवतार नहीं हूं। यह नकारात्मक घोषणा है। लेकिन दोनों घोषणाएं हैं। घोषणाओं से बचना मुश्किल है। कैसे बचिएगा? कहां भागिएगा? कुछ भी करिएगा, कुछ मत करिएगा; लेकिन आपका हर कृत्य वक्तव्य है। वक्तव्य से कैसे बचिएगा? मैं चुप रहता हूं, तो भी वक्तव्य देता हूं।
बर्नार्ड शॉ को एक मित्र अपना नाटक दिखाने ले गया था। मित्र ने एक नाटक लिखा है। और नाटक खेला जा रहा है। बर्नार्ड शॉ के बहुत पीछे पड़ा था। बामुश्किल, नहीं माना, तो बर्नार्ड शॉ गया। लेकिन पूरे समय सोया रहा। वह मित्र बहुत बेचैन हुआ। बामुश्किल तो यह आदमी आया और फिर पूरे समय घर्राटे लेता रहा। जब नाटक समाप्त हुआ, तो बर्नार्ड शॉ ने कहा कि बहुत अच्छा नाटक था। उस मित्र ने कहा, मुझे आप धोखा मत दें। क्योंकि आप पूरे समय सोए रहे, आपको वक्तव्य देने का कोई हक नहीं है। बर्नार्ड शॉ ने कहा, मेरा सोया हुआ होना ही मेरा वक्तव्य था। और जो मैं कह रहा हूं बहुत अच्छा नाटक है, वह इसलिए कह रहा हूं कि नींद बहुत अच्छी आई।
बुद्ध और लाओत्से ने चेष्टा की। चेष्टा बहुत महत्वपूर्ण है। लेकिन चेष्टा सफल नहीं हो सकती। और आदमी किसी भी तरह से धोखे का यंत्र पैदा कर ले सकता है। आत्मा जिन्होंने मानी, जिन्होंने घोषणा की परमात्मा होने की, उन्होंने तो धोखा दिया ही; बुद्ध के बाद बुद्ध के भिक्षुओं ने भी वही किया। उन्होंने कोई घोषणा नहीं की; लेकिन तब भी धोखा दिया। धोखा कहीं से भी दिया जा सकता है। धोखे से बचने का कोई उपाय नहीं है।
फिर इसका अर्थ हुआ कि यह निर्भर करेगा व्यक्ति के अपने रुझान पर कि वह कैसे प्रकट करे। लाओत्से और बुद्ध की रुझान, उनकी पसंदगी नकार की है, नेति- नेति की है। किसी बात को कहना हो, तो वे कहते हैं, वह जो नहीं है, उससे ही कहो। अगर उनका बस चले, तो वे चाहते हैं कि मौन रह कर ही कहो। लेकिन यह निर्भर करेगा। मीरा मौन नहीं रह सकती; मंसूर भी मौन नहीं रह सकता। यह मंसूर और मीरा के व्यक्तित्व में फर्क है। चैतन्य मौन नहीं रह सकते; नाचेंगे, गाएंगे और घोषणा करेंगे। यह घोषणा की नहीं जा रही है, हो रही है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। एक आदमी चुप बैठ सकता है। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो बुद्ध सात दिन तक बोले नहीं। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो वे सात दिन तक चुप रह गए। और बड़ी मीठी कथा है कि देवताओं ने बुद्ध के चरणों पर सिर रखा और प्रार्थना की कि करोड़ों-करोड़ों वर्षों में कभी कोई व्यक्ति इस परम अवस्था को उपलब्ध होता है; जन्मों-जन्मों से न मालूम कितने लोग प्रतीक्षा करते हैं कि कोई बुद्ध हो और बोले; आप बोलें, चुप न रह जाएं। आप चुप रह जाएंगे, तो जो सुनने को आतुर हैं, उनका क्या होगा? जो प्यासे हैं, चातक की तरह जिन्होंने प्रतीक्षा की है जन्मों-जन्मों तक, वे प्यासे ही रह जाएंगे।
लेकिन बुद्ध का तब भी मन न हुआ। बुद्ध ने कहा कि मेरी समझ में नहीं आता
कि क्या बोलूं? क्योंकि जो भी मैं कहूंगा, वह गलत होगा। शब्द ही गलत है; मौन ही सही है। तो जो मौन से समझ सकते हों, वे समझ लें।
लेकिन अगर मौन से ही लोग समझते हों, तो आकाश मौन है। अगर मौन से ही लोग समझते हों, तो बुद्ध के लिए रुकने की क्या जरूरत? चांद-तारे मौन हैं। अगर मौन से ही लोग समझते हों, तो पहाड़, पत्थर, झीलें, फूल, सब मौन हैं। चारों तरफ मौन का विराट साम्राज्य है। मौन से कहां कौन समझता है! बुद्ध का मौन भी इस मौन को गहरा तो न कर पाएगा।
देवताओं ने कहा कि नहीं, आप बोलें, चाहे बोलने में गलती हो और चाहे लोग
न समझ पाएं। अगर सौ सुनें और एक भी समझ जाए, तो भी काफी है, तो भी बहुत है। बुद्ध ने कहा, कुछ लोग हैं, जो मेरे बोलने से गलत न समझेंगे, ठीक समझेंगे। जो मेरे बोलने को ठीक समझ सकते हैं, वे मेरे बिना बोले भी समझ लेंगे। और कुछ लोग हैं, जो मेरे बोलने से भी गलत समझेंगे। जो मेरे बोलने से भी गलत समझने वाले हैं, उनके लिए तो बोलने का कोई प्रयोजन नहीं है। तुम मुझे चुप रह जाने दो।
लेकिन देवताओं ने भी एक तर्क उपस्थित किया। और प्रीतिकर तर्क था। और उन्होंने कहा, आपकी बात ठीक है। अगर जगत में दो ही तरह के लोग होते, तो हम

मान जाते। तीसरे तरह के भी लोग हैं, जो दोनों के बीच में हैं। जो आप न बोलेंगे, तो न समझ पाएंगे; आप बोलेंगे, तो समझ जाएंगे। किनारे पर खड़े हैं। आप न बोलेंगे, तो न समझ पाएंगे; आप बोलेंगे, तो समझ जाएंगे। जरा सा धक्का, और उनकी छलांग लग सकती है। उनके लिए बोलें।
स्वभावतः जो आदमी मौन का आग्रह कर रहा था, जब बोलेगा, तो उसका बोलना नकारात्मक होगा। उससे आप पूछें कि ईश्वर क्या है? तो वह बताएगा, ईश्वर यह नहीं है, ईश्वर यह नहीं है, ईश्वर यह नहीं है। मौन का जिसका आग्रह था, निषेध उसकी पसंदगी होगी।
लेकिन चैतन्य हैं, या मीरा है, इनका ज्ञान नृत्य बन गया, अभिव्यक्ति
बन गया। इनका ज्ञान गीत बन गया। इनके ज्ञान और इनकी अभिव्यक्ति में क्षण भर का फासला न पड़ा। ये काफी मुखर हैं। मुंह से ही नहीं, शरीर से भी। सारा व्यक्तित्व मुखर है। इन्होंने कभी रुक कर नहीं सोचा कि कहें तो भूल हो जाएगी। इन्हें पता ही नहीं चला कि कब कहना शुरू हो गया है।
यह व्यक्तित्व पर निर्भर है। इनकी भाषा पाजिटिव होगी। मीरा जब बोलेगी, तो वह परमात्मा में यह नहीं कहेगी कि वह क्या नहीं है, वह कहेगी कि वह क्या है। सारे भक्त विधायक भाषा का उपयोग करेंगेः परमात्मा क्या है। इसलिए भक्तों का परमात्मा निर्गुण नहीं बन पाएगा, सगुण! क्योंकि विधायकता का अर्थ है--सगुण, साकार। समस्त ज्ञानी निषेध का उपयोग करेंगे। इसलिए उनका परमात्मा शून्य रह जाएगा--निराकार। उसमें कोई गुण नहीं होंगे। वे इनकार करेंगेः यह नहीं, यह नहीं। भक्त कहेंगेः यह, यह।
ये दोनों ही सही हैं और दोनों ही गलत हैं, क्योंकि दोनों अधूरे हैं।
और पूरा अभिव्यक्ति में होने का कोई उपाय नहीं है। अभिव्यक्ति अधूरी होगी ही। जैसे ही शब्द का उपयोग किया, शब्द आधा कहेगा, आधा छूट जाएगा। क्योंकि विपरीत शब्दों को एक साथ कहने का कोई अर्थ नहीं है। ऐसा भी प्रयास हुआ। उपनिषदों ने कहा है, वह दूर से दूर और पास से पास। अब भाषा में यह कहना... । पश्चिम में नया स्कूल है दार्शनिकों काः पाजिटिव एनालिस्ट्सि, विधायक विश्लेषक। तर्कशास्त्रियों का वर्ग है। वे इस वक्तव्य को कहेंगे नानसेंस; यह वक्तव्य जो है, अर्थहीन है। क्योंकि जब तुम कहते हो दूर से दूर, तो रुको, फिर तत्काल मत कहो कि पास से पास। क्योंकि दोनों एक-दूसरे को काट कर व्यर्थ कर देते हैं।
अगर लाओत्से का वचन सुनें ये पश्चिम के विचारक कि निराकार ही उसका आकार है, तो वे कहेंगे एब्सर्ड। फिर भाषा का कोई मतलब ही नहीं रहा। आकार का मतलब आकार होता है, निराकार का मतलब निराकार होता है। और आप कहते हैं, निराकार ही उसका आकार है। तो फिर कहिए ही मत। जैसे हम कहें कि मरा होना ही उनका जीवन है। कोई अर्थ न हुआ। कि कुरूप होना ही उनका सौंदर्य है; कि अंधा होना ही उनकी आंखें हैं। तो फिर भाषा का उपयोग मत करिए। भाषा पर कृपा करिए। क्योंकि आंखों का मतलब आंखें रहने दीजिए और अंधेपन का मतलब अंधापन। अगर आंख का मतलब अंधापन और अंधेपन का मतलब आंख है, तो फिर बोलिए ही मत।
इस स्कूल के बहुत बड़े विचारक लुडविग विटगिंस्टीन ने कहा है, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड। अगर नहीं कह सकते हैं, तो चुप रहिए।
जो नहीं कहा जा सकता, उसको कहिए ही मत। लेकिन इस तरह तो मत कहिए कि भाषा ही सब अस्तव्यस्त हो जाए।
तो तीन ही उपाय हैं अब तक। एक, विधायक भाषा का उपयोग करो। विधायक भाषा
के खतरे हैं। सीमा बनेगी, परिभाषा बनेगी और विराट संकीर्ण हो जाएगा। दूसरा, निषेध भाषा का उपयोग करो। सीमा नहीं बनेगी, आकार नहीं बनेगा, विराट सीमित नहीं होगा; लेकिन विराट समझ के पार हो जाएगा, बेबूझ हो जाएगा। तीसरा उपाय है, दोनों का एक साथ प्रयोग करो। कहो कि वह है भी और नहीं भी; कहो कि वह बड़ा भी है और छोटा भी। दोनों का एक साथ प्रयोग करो। तब भाषा पहेली हो जाएगी, अभिव्यक्ति नहीं। फिर क्या करो?
चौथा विकल्प है, चुप रह जाओ। उससे भी कुछ हल नहीं होता। जरूरी बुराई
है भाषा। और उसमें चुनाव करना होता है। और चुनाव पसंदगी की बात है। लाओत्से की पसंदगी निषेध की है। मंसूर की, जीसस की पसंदगी विधेय की है। कोई नहीं कह सकता कि दोनों में कौन ठीक है। जीसस के लिए जीसस का वक्तव्य

ठीक है; लाओत्से के लिए लाओत्से का वक्तव्य ठीक है। यह उनके देखने के ढंग पर निर्भर करता है।
और हमारी यह तकलीफ है कि हम सदा इस कोशिश में रहते हैं कि उन सबके वक्तव्य एक से होने चाहिए, तो ही ठीक होंगे। हमारी तकलीफ है। हमारी तकलीफ यह है कि या तो लाओत्से ठीक है या जीसस ठीक हैं, या तो बुद्ध ठीक हैं या कृष्ण ठीक हैं। दोनों ठीक नहीं हो सकते।
तो मैं आपसे कहता हूं, आप दोनों की चिंता छोड़ दें। आपको जो दो में से ठीक लगता हो, उसके पीछे चुपचाप चल पड़ें, दूसरे की फिक्र छोड़ दें। जिस दिन आप मंजिल पर पहुंचेंगे, उस दिन आपको दोनों ठीक मालूम पड़ेंगे। लेकिन जब तक मंजिल पर नहीं पहुंचे हैं, तब तक जो आपके लिए रुचिकर लगता हो, आपके व्यक्तित्व के अनुकूल लगता हो, उसके साथ चल पड़ें। और कभी भूल कर यह कोशिश मत करें कि जो आपको ठीक लगता हो, वह दूसरे को भी ठीक लगे। इसकी बहुत चेष्टा में मत पड़ें। क्योंकि हो सकता है, दूसरे के व्यक्तित्व के वह अनुकूल न हो। और आप उसकी हत्या के जिम्मेवार हो जाएं।
हम सब एक-दूसरे की हत्या के लिए जिम्मेवार हैं। एक आदमी नाच रहा है, कीर्तन कर रहा है। दूसरा आदमी कहता है, क्या मूढ़ता कर रहे हो? कुछ तो बुद्धि से काम लो! वह असल में यह कह रहा है कि अगर मैं नाचूं, तो वह मूढ़ता का काम होगा। वह यह कह रहा है कि अगर मैं नाचूं, तो वह बुद्धिहीनता होगी। लेकिन वह सीमा से बाहर जा रहा है। वह दूसरे व्यक्ति से कह रहा है कि क्या मूढ़ता कर रहे हो? वह अपने को मापदंड बनाए ले रहा है। वह अपने को मापदंड बनाए ले रहा है।
दुनिया में कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के लिए मापदंड नहीं है। और जो व्यक्ति सोचता है कि मैं दूसरे के लिए मापदंड हूं, वह बहुत गहन हिंसा का जिम्मेवार है, अपराधी है। हो सकता है, जो मुझे मूढ़ता मालूम पड़ती हो, वह दूसरे के लिए परम आनंद हो। और जो मुझे परम ज्ञान मालूम पड़ता है, दूसरे के लिए मूढ़ता दिखाई पड़ती हो। लेकिन दूसरा विचारणीय नहीं है, सदा मैं ही विचारणीय हूं अपने लिए। मेरे लिए जो आनंद है, वह सारे जगत के लिए भी मूढ़ता हो, तो भी मुझे अपने ही आनंद की तलाश करनी चाहिए।
इसलिए कृष्ण ने कहा है कि स्वयं का धर्म, स्वधर्म ही श्रेयस्कर है। और दूसरे के धर्म से भयभीत होना चाहिए। वह पराए का जो धर्म है, वह भय का कारण है।
लेकिन हमें कोई चिंता नहीं है। हम सब अपना धर्म दूसरे पर थोपने की चेष्टा में संलग्न होते हैं।
लाओत्से उनके लिए समझ में पड़ जाएगा, जो निषेध की रुचि रखते हैं, जो नकार की भाषा में आनंद लेते हैं। लाओत्से उनकी समझ में नहीं पड़ेगा, जो विधायक भाषा में आनंद लेते हैं। पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। आप कहां से चलते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। आप अंततः वहां पहुंच जाएं, जिसकी लाओत्से और कृष्ण दोनों ही चर्चा करते हैं। जिस दिन आप पहुंच जाते हैं, उस दिन सभी रास्ते वहीं आते हुए मालूम पड़ते हैं। जब तक आप नहीं पहुंचते, तब तक आपको एक रास्ता चुन लेना जरूरी है।
एक और खतरा होता है। कुछ लोग हैं, जो बहुत बुद्धिमान हो जाते हैं। बहुत बुद्धिमान का मतलब यह कि वे कहते हैं कि दोनों ठीक हैं। वे कभी चल ही नहीं पाते। क्योंकि दो रास्तों पर दुनिया में कोई भी नहीं चल सकता। चलना तो एक ही रास्ते पर पड़ता है।
इस सदी में ऐसे बुद्धिमानों की संख्या बड़े पैमाने पर बढ़ गई है जो कहते हैं, ईसाइयत भी ठीक, हिंदू भी ठीक, मुसलमान भी ठीक, कुरान भी ठीक, बाइबिल भी ठीक, गीता भी ठीक, सब ठीक हैं। अल्ला ईश्वर तेरे नाम, सब ठीक हैं। ये वे लोग हैं, जो चल ही नहीं पाते। ये वे लोग हैं, जो चल ही नहीं पाते। क्योंकि सब रास्ते ठीक हैं, तो पैर उठते ही नहीं। और एक रास्ते पर चलो, तो लगता है कि दूसरा ठीक है, थोड़ा उस पर चलो। दूसरे पर चलो दो कदम कि तीसरा बुलाता है कि ठीक तो मैं भी हूं, थोड़ा मुझ पर चलो। चलने वाले के लिए सदा एक ही रास्ता ठीक है; सोचने वाले के लिए सब रास्ते ठीक हो सकते हैं। चलने वाले के लिए सदा एक ही रास्ता ठीक है।

हां, पहुंचने वाले को भी सब रास्ते ठीक हो जाते हैं। लेकिन जब तक आप पहुंच नहीं गए हैं, तब तक पहुंचने वाले की भाषा बोलना ही मत। वह मंहगा काम है। खड़े हैं दरवाजे पर और महल के भीतर की भाषा अगर आपकी पकड़ में आ गई, तो आप अभागे हैं, मुश्किल में पड़ेंगे। क्योंकि अभी यात्रा करनी थी वहां तक; अब वह यात्रा भी नहीं होगी। सब ठीक हैं, लेकिन उसके लिए जो पहुंच गया केंद्र पर और उसने केंद्र पर खड़े होकर देखा कि सभी रास्ते चले आ रहे हैं यहीं। लेकिन जो अभी परिधि पर खड़ा है और एक रास्ते पर भी नहीं चला है, वह कहता है सब रास्ते ठीक हैं, वह चलने के लिए अपने हाथ से अपने पैर काटे डाल रहा है। वह चल नहीं पाएगा।
इसलिए कई दफे बड़ी मजेदार घटनाएं घटती हैं। सभी धर्मों ने कहा है कि बाकी सब धर्म गलत हैं। सभी धर्मों ने कहा है। और बड़ा कीमती है उनका वक्तव्य--खतरनाक भी। सभी कीमती चीजें खतरनाक होती हैं। सिर्फ गैर-कीमती चीजें खतरनाक नहीं होतीं। जितना महत्वपूर्ण सत्य हो, उतना ही खतरनाक भी होता है। क्योंकि अगर उसमें जरा भी भूल-चूक हुई, तो खतरा हो जाएगा। सभी धर्मों ने कहा है कि यही धर्म सत्य है। यह खतरनाक वक्तव्य है, बहुत शक्तिशाली वक्तव्य है।
खतरनाक है, अगर आपने इसका मतलब लिया कि दुनिया में मेरे अलावा कोई भी सत्य नहीं। अगर इतना ही मतलब लिया, तो बहुत खतरनाक है। इसका मतलब कुछ और था। इसका मतलब यह था कि जिसे चलना है, उसके लिए एक ही सत्य हो, तो ही चल सकता है। और धर्मों ने फिक्र नहीं की परम सत्य की घोषणा की। क्योंकि जब कोई पहुंच जाएगा, तो वह खुद ही पता चल जाएगा। उसकी जल्दी नहीं है।
हम सब के पास बहुत अबॉर्टिव माइंड हैं; गर्भपात हो गया जिन मस्तिष्कों का, ऐसे मस्तिष्क हैं हमारे पास। पूरा हो नहीं पाता कुछ भी और वक्तव्य हमारे भीतर घने हो जाते हैं। चल नहीं पाते और मंजिल की भाषा पकड़ जाती है। लाओत्से ठीक है और मंसूर भी। लेकिन यह उस दिन पता चलेगा, जब आप पहुंचेंगे। अभी जल्दी न करें। अभी आपको जो ठीक लगे, उसको ठीक मान लें। और जो गलत लगे, उसे बिल्कुल गलत मान लें। लेकिन ठीक मान कर अगर बैठना हो, तो इसका कोई प्रयोजन नहीं है। ठीक मानने का एक ही अर्थ होना चाहिए कि मुझे चलना है।
लोग समझते हैं कि दुनिया में हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध के बीच वैमनस्य कम हो रहा है; दुनिया अच्छी हो रही है। मामला ऐसा नहीं है। वैमनस्य इसलिए कम नहीं हो रहा है कि दुनिया अच्छी हो रही है, वैमनस्य इसलिए कम हो रहा है कि अब किसी को भी किसी धर्म पर नहीं चलना है। झगड़े की भी क्या जरूरत है? वैमनस्य इसलिए कम नहीं हो रहा है कि लोग बड़े उदार और भले हो गए हैं। वैमनस्य इसलिए कम हो रहा है कि धर्म की अब उपेक्षा की जा सकती है। वह इतना महत्वपूर्ण ही नहीं है कि उस पर झगड़ा किया जाए। उस पर झगड़ा करने का भी मन नहीं रहा।
अगर कोई आज आदमी कह देता है ईश्वर नहीं है, तो कोई झगड़ा करने का भी मन नहीं होता। ठीक है, नहीं होगा। यह कुछ उदारता बढ़ गई है, ऐसा नहीं है। उपेक्षा बढ़ गई है। उपेक्षा है, कोई मतलब नहीं है, ठीक है। अगर आज कोई कहता है कि गीता और कुरान में एक ही बात लिखी है, तो हम कहते हैं कि होगी। इसका यह मतलब नहीं है कि हमको पता है कि एक ही बात लिखी है। इसलिए कि बेमानी है, क्यों व्यर्थ समय खराब करते हो! होगी, मान लिया, ज्यादा बातचीत न चलाओ।
एक मित्र ने मुझे किताब भेजी है। उन्होंने गीता और बाइबिल दोनों में
एक ही संदेश है, इसके लिए बड़ी खोजबीन की है। मैं उनकी पूरी किताब देख गया। खोजबीन बिल्कुल बेकार है। कहीं भी कोई तालमेल वे बिठा नहीं पाए। एक वक्तव्य से भी दूसरे वक्तव्य का कोई मेल नहीं है। लेकिन राधाकृष्णन से लेकर विनोबा तक सबने सम्मतियां दी हैं उनको कि आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। उनकी सम्मतियां देख कर मुझे लगा कि उनमें से किसी ने भी वह किताब नहीं पढ़ी है। सिर्फ यह देख कर कि गीता और बाइबिल को समतल बनाने की कोशिश की है, काम अच्छा है, सब ने सम्मतियां दी हैं। क्योंकि एक भी वक्तव्य का कोई मेल नहीं है।
पर उनको प्रसन्नता हुई होगी; प्रसन्नता--ये सब के वक्तव्य कि बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि सच में कोई बहुत अच्छा

काम... । इतनी उपेक्षा है कि होगा बाइबिल में कुछ, होगा गीता में कुछ; किसको प्रयोजन है? किसको लेना-देना है?
दोनों सही हैं--विधायक और निषेधात्मक वक्तव्य--लेकिन उनके लिए ही, जो पहुंच गए हों। आपके लिए, मैं कृष्ण पर भी बात करता हूं। अगर आपको विधायक ठीक लगता हो, विधायक को पकड़ कर चल पड़ें। लाओत्से की बात जान कर कर रहा हूं; क्योंकि निषेध का इतना सुंदर वक्तव्य जगत में दूसरा नहीं है। लाओत्से शिखर है निषेध के वक्तव्य में। तो जिनके मन में भी निषेध के प्रति आकर्षण हो, वे उस मार्ग पर चल पड़ें। वक्तव्य सही क्या है, इसकी चिंता न करें। क्या आपको सही लगता है जिससे आप चल सकें, वही प्राथमिक मूल्य की बात है।

चौथा प्रश्नः कल के अंतिम सूत्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति प्रत्येक सक्रियता के बाद सहज ही घटित होने वाले विश्राम के राज को जान लेता है, वह अपनी समता को सतत बनाए रख सकता है।
फिर आपने कहा कि सघन सक्रियता के बाद गहन विश्रांति उपलब्ध होती है।
लेकिन अनुभव ऐसा है हमारा कि सघन सक्रियता के बाद उपलब्ध होने वाली समता अस्थायी होती है, जो मिल कर पुनः-पुनः बिखर जाती है।
कृपया बताएं कि व्यक्ति स्थायी समता को कैसे उपलब्ध हो सकता है।

हमारे चित्त की दो अवस्थाएं हैंः अशांति और शांति। जब भी हम सक्रिय होते हैं, तो चित्त अशांत होगा। क्रिया पैदा होगी, तनाव पैदा होगा, विचार जगेंगे। काम भीतर भी शुरू होगा, जब बाहर शुरू होगा। जितना बड़ा काम बाहर होगा, उतना ही बड़ा काम, अनुपात में, भीतर भी होगा। वही अशांति है। फिर काम विसर्जित हो जाएगा। अगर काम में, लाओत्से कहता है, समग्रता से प्रवेश किया, तो जैसे ही काम समाप्त होगा, वैसे ही भीतर का काम भी समाप्त हो जाएगा। और शांति उपलब्ध होगी।
हमारी अवस्था ऐसी है कि हम न कभी ठीक से अशांत होते और न कभी ठीक से शांत। और जिसे ठीक से शांत होना है, अगर वह ठीक से अशांत ही न हुआ हो, तो बड़ा मुश्किल है। हमारी अशांति भी पूरी नहीं है। इसलिए जब अशांति का काम भी चला जाता है, तो जो बच गई अशांति है, वह भीतर सरकती रहती है, सस्पेंडेड हो जाती है।
समझ लें कि मैंने आप पर क्रोध किया। तो मैं क्रोध कभी पूरा नहीं करूंगा, दबा लूंगा कुछ। क्रोध भी करूंगा और पूरा भी नहीं करूंगा। आप भी चले गए, बात भी समाप्त हो गई। जो भीतर अटका रह गया क्रोध, अब चलेगा। अगर मैं पूरा क्रोध कर लूं, तो घटना के साथ ही भीतर भी क्रोध समाप्त हो जाएगा। जॉर्ज गुरजिएफ अपने शिष्यों को क्रोध करना सिखाता था। इस सदी में अकेला शिक्षक था--समझदार। नासमझ शिक्षकों की तो कोई कमी नहीं है, जो समझा रहे हैं कि क्रोध न करना, यह न करना, वह न करना। वे पिटी हुई बातें दोहरा रहे हैं, जिनका उन्हें भी पता नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं। गुरजिएफ कहता था--अगर कोई क्रोधी आता, तो वह कहता--कि अब तुम पहले ठीक से क्रोध करना सीखो। सुनने वाला भी मुश्किल में पड़ जाता। वह कहता, मैं क्रोध छोड़ने आया हूं आपके पास। क्या कहते हैं, ठीक से क्रोध! मुझसे ठीक से और कौन क्रोध करेगा? उसी में मैं जल रहा हूं।
तो गुरजिएफ कहता, अगर ठीक से क्रोध किया होता, तो उतनी जलन को तुम सह न पाते, बाहर निकल गए होते। जब घर में आग लगती है, तो आदमी कूद कर बाहर निकल जाता है। वह यह भी नहीं पूछता कि रास्ता कहां है? कौन गुरु से रास्ता पूछूं? किसको मानूं? और फिर कोई रास्ता भी बता दे, तो वह बैठ कर विचार नहीं करता कि पहले विचार तो कर लूं--कि तुम ठीक कहते हो कि गलत कहते हो? यह रास्ता ठीक है कि नहीं? इस पर पहले भी महाजन गए हैं कि नहीं गए?
जब घर में आग लगी हो और लपटें पकड़ लें, तो आदमी छलांग लगा कर बाहर हो जाता है। फिर रास्ता नहीं पूछता। जहां आंख पड़ जाती है, वहीं रास्ता बना लेता है। जैसे भी हो, बाहर निकलना महत्वपूर्ण हो जाता है, रास्ता महत्वपूर्ण नहीं रहता। यह ध्यान रखने की बात है, जब तक आपको रास्ता बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, उसका मतलबः घर में आग लगी है, इसका आपको अनुभव नहीं है। जब घर में आग लगती है, तो रास्ता महत्वपूर्ण नहीं होता, निकलना

महत्वपूर्ण होता है। कोई भी रास्ता जो सामने पड़ जाए, आदमी उससे निकल जाता है। यह जितनी शांति से बैठ कर हम पूछते हैंः रास्ता क्या है? कहां से जाएं? कैसे जाएं? उसका मतलब यह है कि घर में लगी है आग, वह हमें दिखाई नहीं पड़ती। गुरजिएफ कहता था कि पहले तुम ठीक से क्रोध ही कर लो। तो क्रोध सिखाता
था कि कैसे क्रोध करो और क्रोध में कैसे पूरे उतर जाओ। कुछ भी मत रोको। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जो भी व्यक्ति पूरे क्रोध में उसके पास उतरना सीख जाता, वह एक दिन आकर कहताः हैरानी की बात है, क्रोध के पीछे बड़ी शांति अनुभव होती है। एकदम सब शांत हो जाता है; जैसे तूफान आए और चला जाए और सब तरफ सन्नाटा हो जाए।
तो पहली तो नैसर्गिक बात समझ लेनी चाहिए, जो लाओत्से कह रहा है। वह यह
है कि हर सक्रियता के बाद अनिवार्य विश्राम। लेकिन सक्रियता पूर्ण होनी चाहिए--एक। लेकिन इतना काफी नहीं है समता के लिए। समता इससे भी गहरी बात है और एक अनुभव पर निर्भर है। जब एक आदमी देखता है कि क्रोध के बाद शांति आ जाती है, शांति के बाद क्रोध आ जाता है; सुबह के बाद सांझ आती है, सांझ के बाद सुबह आ जाती है; अंधेरा होता है, प्रकाश होता है, फिर अंधेरा हो जाता है; जब एक आदमी यह अनुभव कर पाता है कि यह द्वंद्व का खेल मेरे चारों तरफ चलता ही रहता है, तब उसे तत्काल एक और नई बात पता चलती है कि मैं इन दोनों से अलग हूं।
अगर मैं देखूं कि मुझ पर क्रोध आया, घना क्रोध आया, और फिर क्रोध चला गया, फिर शांति आई, घनी शांति आई, फिर क्रोध आया, फिर शांति आई, तो यह ठीक वैसे ही हो गया कि मैं एक कमरे में बैठा हूं--सुबह हुई, सूरज निकला, किरणों ने मुझे घेर लिया, फिर सांझ होने लगी, ढल गया सूरज, रात हो गई, अंधेरे ने मुझे घेर लिया। क्या मैं कहूं कि मैं अंधेरा हूं या मैं कहूं कि मैं प्रकाश हूं? मैं कहूंगा, मैं दोनों को देखने वाला हूं। मैंने दोनों अनुभव किए; मैंने दोनों जाने। मैं दोनों का साक्षी हूं। सुबह भी आती है, सुबह चली जाती है। सांझ भी आती है, सांझ भी चली जाती है।
समता का अर्थ शांति नहीं है। समता का अर्थ शांति और अशांति के भीतर तीसरे को जान लेना है। जो आदमी कहता है मुझे शांति चाहिए, वह समता को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि शांति चाहिए का मतलब है, फिर अशांति का क्या होगा? आपको शांति चाहिए, अशांति का क्या होगा? आपको दिन चाहिए, रात का क्या होगा? आपको सूर्योदय चाहिए, सूर्यास्त का क्या होगा? जिसको सूर्योदय चाहिए, उसे सूर्यास्त भी झेलना पड़ेगा। और जिसको शांति चाहिए, उसको अशांति से गुजरना ही पड़ेगा। जिसको जन्म चाहिए, उसे मृत्यु को स्वीकार करना पड़ेगा।
लेकिन हम कहते हैं कि नहीं, जन्म तो चाहिए, मृत्यु नहीं चाहिए। सुबह चाहिए, सांझ नहीं चाहिए। जवानी चाहिए, बुढ़ापा नहीं चाहिए। हम कुछ काट कर चाहते हैं। वह नहीं हो सकता। वह अस्तित्व का नियम नहीं है। तो फिर हम समता को कभी उपलब्ध नहीं होंगे।
शांति तो सभी चाहते हैं। जितने जोर से चाहते हैं, उतनी अशांति सिर पर टूट जाती है। और जो आदमी कहता है कि मुझे सुबह चाहिए, सांझ नहीं चाहिए; वह सुबह से ही चिंतित हो जाता है कि सांझ आ रही है, सांझ आ रही है; कैसे बचूं? वह सुबह को गंवा देता है सांझ से बचने में। और जब सांझ आ जाती है, तो सांझ का दुख भोगता है। और सुबह का सुख कभी नहीं भोग पाता, क्योंकि सांझ तो मौजूद हो जाती है सुबह के साथ।
जो आदमी बहुत शांति चाहने की कोशिश में लगता है, जब शांति होती है, तब
वह डरा और भयभीत और चिंतित और घबड़ाया रहता है कि अब टूटी, अब टूटी। अशांति आती ही है। जब अशांति आती है, तब वह शांति चाहता रहता है। और जब शांति आती है, तब वह अशांति से भयभीत प्रतीक्षा करता रहता हैः अब आई, अब आई, अब आई। समता असंभव हो जाती है।
समता कीमती शब्द है। समता का अर्थ हैः अशांति है, तो वह जानता है कि अशांति है; और शांति है, तो वह जानता है कि शांति है। समता का अर्थ हैः वह अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक। अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक, क्योंकि वह जानता है, जीवन का नियम है, सुबह होती है, सांझ होती है। शांति को भी गुजारता है शांतिपूर्वक; अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक। इस

स्थिति का नाम समता है। समता का अर्थ है, न अब अशांति छूती उसे, और न अब शांति छूती उसे। न तो अब वह चाहता है कि अशांति न हो और न चाहता है कि शांति हो। अब वह कुछ भी नहीं चाहता। अब वह देखता रहता है। एक साक्षी! जो होता है, देखता रहता है।
इस साक्षी-भाव में समता घटित होती है। वह समता स्थिर है; क्योंकि अशांति उसे मिटा नहीं सकती और शांति उसे ज्यादा नहीं करती। वह दोनों के बीच स्थिर है। ऐसी समता हो, तो स्थायी हो सकती है। शांति स्थायी नहीं हो सकती; अशांति भी स्थायी नहीं हो सकती। क्योंकि शांति और अशांति एक ही बड़ी घटना के दो हिस्से हैं। समता स्थिर हो सकती है। समता शाश्वत हो सकती है, सदा हो सकती है।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा कि जो लोग ताओ को प्राप्त होते हैं, वे जीवन
को प्रतिपल एक खतरे की तरह देखते हैं और गंभीर हो जाते हैं। ऐसे लोग अतिथि की तरह हो जाते हैं, ऐसा उनका स्वभाव हो जाता है। दूसरी तरफ जब आप कृष्ण की बात कहते हैं, तो कहते हैं कि जीवन उनके लिए खेल है, वे हंसते हुए जीवन को पार कर जाते हैं, जो वे करते हैं, वह नृत्य है, मजा है। साथ ही आप कहते हैं, संतों के आचरण की भिन्नता होगी ही। आचरण की भिन्नता की बात तो समझ में आती है, किंतु लाओत्से और कृष्ण के इस स्वभाव की भिन्नता समझ में नहीं आती। कृपया समझाएं।

स्वभाव कृष्ण का आपकी समझ में कभी नहीं आएगा। स्वभाव लाओत्से का आपकी समझ में कभी नहीं आएगा। कृष्ण का स्वभाव कृष्ण की समझ में आता है। लाओत्से का स्वभाव लाओत्से की समझ में आता है। आपको अपना स्वभाव समझ में आएगा। स्वभाव का मतलब ही यही होता है।
जो हमें दूसरे का समझ में आता है, वह आचरण है। दूसरे का आचरण ही दिखाई पड़ता है। स्वभाव कैसे दिखाई पड़ेगा? कृष्ण क्या करते हैं, वह दिखाई पड़ता है। कृष्ण क्या हैं, वह कैसे दिखाई पड़ेगा? बुद्ध क्या करते हैं, वह दिखाई पड़ता है। क्या बोलते हैं, वह सुनाई पड़ता है। क्या हैं, वह कैसे दिखाई पड़ेगा? स्वभाव का अर्थ है, जो अप्रकट भीतर छिपा है। वह आपको नहीं दिखाई पड़ेगा। आपको तो आचरण ही दिखाई पड़ेंगे।
अगर बुद्ध शांत बैठे हैं और कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं। तो आपको दिखाई पड़ता है कि कृष्ण बड़े मजे में हैं; क्योंकि बांसुरी बजा रहे हैं। मजा बांसुरी बजने के कारण आप अनुमान कर रहे हैं। बुद्ध मजे में नहीं होंगे, क्योंकि आंख बंद करके बैठे हैं, बांसुरी नहीं बजा रहे हैं। लेकिन स्वभाव आपको दिखाई नहीं पड़ सकता। बुद्ध और कृष्ण एक ही स्वभाव में हैं। लेकिन वह स्वभाव बुद्ध अपने ढंग से प्रकट करेंगे। प्रकटीकरण व्यक्तित्व की बात है।
ऐसा समझ लें कि यहां बिजली के दस बल्ब जल रहे हैं। एक ही बिजली दस में दौड़ती है। एक बल्ब नीला है, और एक लाल है, और एक पीला है। आपको लाल बल्ब से लाल बिजली निकलती हुई बाहर मालूम पड़ती है। नीले से नीली निकलती मालूम पड़ती है। बल्ब व्यक्तित्व है; बिजली एक है।
कृष्ण का शरीर उनका बल्ब है; बुद्ध का शरीर उनका बल्ब है; लाओत्से का शरीर उनका बल्ब है। ये व्यक्तित्व हैं। और भीतर जो स्वभाव है, वह एक है। लेकिन वह आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। वह तो जब आप अपने बल्ब के भीतर प्रवेश करेंगे, और जानेंगे कि वह स्वभाव रंगहीन है, न लाल, न पीला, न हरा।
तो जो बुद्ध दिखाई पड़े थे, वह बुद्ध का व्यक्तित्व था; जो कृष्ण दिखाई पड़े थे, वह कृष्ण का व्यक्तित्व था। व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है, आचरण दिखाई पड़ता है, व्यवहार दिखाई पड़ता है। वह जो भीतर घटित हो रहा है, वह दिखाई नहीं पड़ता। बल्ब बदल दें--जहां लाल बल्ब लगा है, वहां हरा लगा दें; और जहां हरा लगा है, वहां लाल लगा दें--तब आपको पता चलेगा कि अरे, जहां लाल रंग दिखता था, वहां अब हरा दिखता है। हमारे हाथ में अगर संभव हो कि बुद्ध के बल्ब को कृष्ण पर लगा दें, कृष्ण के बल्ब को बुद्ध पर लगा दें, तो आप देखेंगेः बुद्ध बांसुरी बजा रहे हैं और कृष्ण चुप होकर बैठे हैं।

लेकिन वह हमारे हाथ में नहीं है। लेकिन एक बात हमारे हाथ में है कि अपने बल्ब के भीतर हम प्रवेश करके स्वभाव को देखें। तब हम पाएंगे कि उस स्वभाव में सब शांत है, सब मौन है। सब निर्विकार हो गया, सब निराकार हो गया।
लेकिन जब उस निराकार को प्रकट करेंगे, तो इस शरीर का उपयोग करना पड़े,
मन का उपयोग करना पड़े। बुद्ध पाली भाषा में बोलते हैं। बोलेंगे ही; वे पाली भाषा जानते हैं। कृष्ण संस्कृत में बोलते हैं। बोलेंगे ही; वे संस्कृत ही जानते हैं। लेकिन सत्य क्या संस्कृत है या पाली? जीसस हिब्रू में बोलते हैं। बोलेंगे ही। अगर कोई ने ऐसा समझा हो कि सत्य संस्कृत में ही बोला जाता है, तो हिब्रू में बोलने के कारण ही असत्य हो गया। लेकिन क्या जब जीसस को सत्य का अनुभव हुआ, वहां भीतर हिब्रू मौजूद है? या जब कृष्ण ने सत्य को जाना होगा, तो वहां संस्कृत रही होगी भीतर? या बुद्ध ने जब सत्य को अनुभव किया, तो वहां पाली थी?
नहीं, वहां न हिब्रू थी, न संस्कृत थी, न पाली थी। वहां तो सब शब्द खो गए, सब भाषा खो गई; वहां तो विराट मौन था, विराट शून्य था। जब सत्य को कोई जानता है, तो सब भाषा खो जाती है। लेकिन जब सत्य को कोई बोलता है, तो किसी न किसी भाषा का उपयोग करना पड़ता है। बुद्ध हिब्रू का उपयोग नहीं कर सकते। और जीसस संस्कृत का उपयोग नहीं कर सकते। और कृष्ण पाली का नहीं कर सकते। यह व्यक्तित्व का हिस्सा है। भाषा व्यक्तित्व का हिस्सा है। विधायक या नकारात्मक ढंग व्यक्तित्व का हिस्सा है। नाचना या मौन हो जाना व्यक्तित्व का हिस्सा है। लेकिन अनुभव उस स्वभाव का व्यक्तित्व के पार है।
लेकिन वह हमें दिखाई नहीं पड़ेगा। उसे हम नहीं समझ पाएंगे। उसे हम तभी देख पाएंगे, जब हम अपने स्वभाव में उतरें, उसके पहले नहीं। भिन्नता दिखाई पड़ेगी ही; भिन्नता है। क्योंकि जहां हम खड़े हैं, वहां से अभिन्नता का कोई दर्शन नहीं हो सकता। अभिन्नता का दर्शन करना हो, तो अपने उस केंद्र पर खड़े होना पड़ेगा, जहां विभिन्नता पैदा करने वाले, भिन्नता पैदा करने वाले सारे कारण तिरोहित हो जाते हैं। फिर वहां कोई भिन्नता न होगी।
ऐसा समझें कि हम यहां सौ कागज के टुकड़े डाल दें--खाली, कोरे। तो उनमें कोई भिन्नता नहीं है। फिर हम सौ लोगों के हाथों में दे दें, और उनसे कहें कि एक-एक आदमी की तस्वीर बना दें। सौ ही लोग आदमी की तस्वीरें बनाएंगे, लेकिन दो तस्वीरें एक सी नहीं होंगी। सौ तस्वीरें हो जाएंगी। आदमियों की तस्वीरें बनाईं, सौ ने ही बनाईं; सौ भिन्न हो गईं। फिर वे कागज के टुकड़े बड़े भिन्न हो गए।
जिस पर पिकासो ने तस्वीर बनाई होगी, उसकी करोड़ों कीमत हो सकती है। और जिस पर आपने तस्वीर बनाई होगी, उसको कोई रद्दी में भी लेने को तैयार नहीं होगा। अब क्या करिएगा? और ये दोनों कागज थे, अभी क्षण भर पहले दोनों की कीमत बराबर थी। ये दोनों कागज के टुकड़े थे, बराबर कीमत के थे, एक से खाली थे--अपने स्वभाव में थे। अब इन पर व्यक्तित्व आ गया। पिकासो ने जो बनाया, तो उसके व्यक्तित्व की कीमत है। आपने जो बनाया, तो आपका व्यक्तित्व उतरेगा। मैंने जो बनाया, तो मेरा व्यक्तित्व उतरेगा। उसके अनुसार कीमत होगी। कागज अलग-अलग हो गए अब।

बुद्ध और कृष्ण और लाओत्से और जीसस भीतर तो कोरे कागज हैं। लेकिन जैसे ही हम उनको देखते हैं बाहर से--तस्वीर बन गई। वह तस्वीर उनका व्यक्तित्व है। वह अस्तित्व नहीं है, व्यक्तित्व है। यह शब्द व्यक्तित्व बड़ा अच्छा है। इसका मतलब है कि जो छिपा है, वह नहीं; बल्कि माध्यम से जो प्रकट हुआ है, वह।
एक दीया जल रहा है लालटेन के भीतर। थोड़ी सी रोशनी बाहर आ रही है। कांच
पर धुआं जम गया है। दूसरी लालटेन है, दीया जल रहा है, कांच साफ है; काफी रोशनी बाहर आ रही है। दोनों के भीतर एक सी रोशनी है। लेकिन दोनों के कांचों में बड़ा फर्क है। व्यक्तित्व अलग हैं। व्यक्तित्व, भीतर से जो आ रहा है, उसे गंदा भी कर देते हैं, स्वच्छ भी कर देते हैं।

अगर कबीर बोलेंगे, तो बोली जुलाहे की होने वाली है। इसलिए कबीर के सब प्रतीक जुलाहे के प्रतीक हैं। जुलाहे वे थे; कपड़ा जिंदगी भर बुनते रहे। तो वे कहते हैंः झीनी-झीनी बुन दीन्ही रे चदरिया। बुद्ध नहीं कह सकते यह वक्तव्य। कभी बाप-दादे ने चदरिया बुनी नहीं। कोई संबंध नहीं चादर बुनने का। चादर बुनने का ख्याल भी नहीं आ सकता, कि झीनी-झीनी बुन दी। कबीर को आता है; कबीर जुलाहे हैं। जिंदगी चादर बुनने में बीती है।
तो कबीर जब बोलते हैं तो ऐसा लगता है कि खोपड़ी पर लट्ठ मार दिया। ग्रामीण प्रखरता है वक्तव्य में। बुद्ध लट्ठ भी मारें, तो ऐसा लगेगा, फूल मारा। एक शाही अभिजात्य है। वह व्यक्तित्व का हिस्सा है। इसलिए मोहम्मद या जीसस के वचनों में जो तीव्रता है, त्वरा है, वह न बुद्ध के वचनों में है, न कृष्ण के वचनों में है, न महावीर के वचनों में है। वह त्वरा नहीं है। मोहम्मद और जीसस के वचनों में जो धार है, वह इनमें से किसी के वचनों में नहीं है। उसका कारण है। ये बिल्कुल अपढ़, ठेठ ग्रामीण लोग हैं। तो ग्रामीण के पास भाषा ज्यादा नहीं होती। थोड़े ही शब्द होते हैं उसके पास, लेकिन अनगढ़ होते हैं। बुद्ध और महावीर के पास जो भाषा है, वह ऐसी है जैसे कि तराश कर बनाया गया पत्थर हो--मूर्ति। मोहम्मद और जीसस के पास सीधा पत्थर है। उसमें कोई तराश वगैरह नहीं है।
इसलिए कोई आश्चर्य नहीं है कि मोहम्मद और जीसस आम जनता के जीवन में ज्यादा दूर तक प्रवेश कर गए और बुद्ध और महावीर बहुत पीछे पड़ गए। आम जनता उनकी बात को समझ पाती है, निकट मालूम पड़ती है। बुद्ध और महावीर बहुत दूर मालूम पड़ते हैं। बहुत शिखर के उनके वचन हैं। वे वचन ऐसे हैं कि हमारे और उनके बीच बहुत फासला है।
ये व्यक्तित्व के भेद हैं। और ध्यान रहे कि अगर महावीर और बुद्ध जीसस
की भाषा या मोहम्मद की भाषा हिंदुस्तान में बोलते, तो कोई उनको सुनता भी नहीं। क्योंकि जिन दिनों में उन्होंने वह भाषा बोली, उन दिनों में यह मुल्क अभिजात्य के शिखर पर था। और अगर मोहम्मद भूल करते बुद्ध की भाषा बोलने की, तो कोई सुनने वाला नहीं मिलने वाला था उनको। क्योंकि जिनके बीच वे बोल रहे थे, वे ठीक मरुस्थली, खतरनाक, खूंखार लोग थे। उनके पास तलवार की धार वाली बात चाहिए थी। नहीं तो कोई मतलब न था।
व्यक्तित्व, समय, वे सारी की सारी चीजें हमें दिखाई पड़ती हैं। भीतर का
जो अस्तित्व है, वह तो दिखाई नहीं पड़ता। उसकी चिंता न करें। इतना ख्याल में भर आ जाए, तो धीरे-धीरे अपने भीतर के अस्तित्व का पता लगाने में लगें। जिस दिन आपको अपना अस्तित्व अपने व्यक्तित्व से अलग मिल जाएगा, उस दिन आपके लिए द्वार खुल जाएंगे, आप झांक पाएंगे।
बुद्ध भी वस्त्रों का एक ढेर हैं; कृष्ण भी वस्त्रों का एक ढेर हैं; लाओत्से भी वस्त्रों का एक ढेर हैं। वह जो भीतर छिपा है, वह वस्त्रों से बिल्कुल अलग है। वस्त्रों से उसे मत सोचें। लेकिन हम क्या करें? हम अपने को वस्त्र ही मानते हैं। भीतर का हमें कुछ पता नहीं है। अपने वस्त्रों के पार जाकर जो छिपा है, उसे देखें; तो फिर सभी वस्त्रों के पार आपकी आंख पहुंचनी शुरू हो जाएगी।
चार-छह प्रश्न और रह गए हैं, वे अगली लाओत्से की बैठक होगी, तब हम उनकी चर्चा करेंगे। आज के लिए, इस चर्चा के लिए जो जरूरी प्रश्न थे, वे मैंने ले लिए हैं।
आज इतना ही।
अब कीर्तन में सम्मिलित हों। चाहे मूढ़ता ही किसी को मालूम पड़े, पर सम्मिलित हों। और फिर जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
सैंतीसवां प्रवचन

निष्क्रियता, नियति व शाश्वत नियम में वापसी

Chapter 16 : Sutra 1

Knowing The Eternal Law

Attain the utmost in passivity,
Hold firm to the basis of quietude.
The myriad things take shape and rise to activity, But I watch them fall back to their repose.
Like vegetation that luxuriously grows,
But returns to the root (soil) from which it springs. To return to the root
is repose;
It is called going back to one's Destiny.
Going back to one's Destiny
is to find the eternal law.
To know the eternal law is Enlightenment.
And not to know the eternal law is to court disaster.

अध्याय 16 : सूत्र 1

शाश्वत नियम का ज्ञान

निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें,
और प्रशांति के आधार से दृढ़ता से जुड़े रहें।
सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं;
लेकिन हम उन्हें विश्रांति में पुनः वापस लौटते भी देखते हैं। जैसे वनस्पति-जगत लहलहाती वृद्धि को पाकर
फिर अपनी उदगम-भूमि को लौट जाता है।
उदगम को लौट जाना विश्रांति है;
इसे ही अपनी नियति में वापस लौटना कहते हैं।
स्वयं की नियति को पुनः उपलब्ध हो जाना
शाश्वत नियम को पा लेना है।
शाश्वत नियम को जानना ही ज्ञान से आलोकित होना है।
और शाश्वत नियम का अज्ञान ही समस्त विपत्तियों का जनक है।

अभी आकाश खाली है। जल्दी ही बादलों से भर जाएगा। बादल आएंगे; घने होंगे, वर्षा करेंगे और फिर समाप्त हो जाएंगे। आकाश फिर भी वैसा ही बना रहेगा। आकाश एक निष्क्रियता है, पैसिविटी। बादल एक सक्रियता है, एक्टिविटी। बादल बनते हैं, मिटते हैं; आकाश बनता भी नहीं, मिटता भी नहीं। बादल कभी होते हैं, कभी नहीं होते। आकाश सदा होता है। बादलों का अस्तित्व जन्म और मृत्यु के बीच में है। आकाश के अस्तित्व के लिए न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। आकाश समय के बाहर है। बादल समय के भीतर बनते हैं और बिखर जाते हैं। आकाश शाश्वत है।
इस सूत्र का नाम हैः शाश्वत नियम का ज्ञान--नोइंग दि इटरनल लॉ।
जहां भी सक्रियता है, वहां शाश्वतता नहीं होगी। क्योंकि क्रिया को तो विश्राम में जाना ही पड़ेगा। कोई भी क्रिया, कोई भी एक्टिविटी शाश्वत, सदा नहीं हो सकती। थकेगी; और विश्राम में लीन होना पड़ेगा। सिर्फ निष्क्रियता शाश्वत हो सकती है।

इस सूत्र को समझ लेना बहुत जरूरी है। धर्मों ने कहा है, ईश्वर स्रष्टा है, गॉड इ.ज दि क्रिएटर। लाओत्से राजी नहीं है। लाओत्से कहता है, सृजन तो एक क्रिया है। और अगर ईश्वर स्रष्टा है, तो कभी तो थक ही जाएगी क्रिया। और हर करने से विश्राम लेना ही होता है। करने का अंतिम परिणाम सदा न करना है। तो अगर ईश्वर स्रष्टा है, अगर सृजन ही उसका स्वरूप है, तो ईश्वर शाश्वत नहीं हो सकता। शाश्वत तो सिर्फ आत्यंतिक निष्क्रियता ही हो सकती है। अगर आकाश भी बनता हो, सक्रिय होता हो, आकाश भी अगर कुछ करता हो, तो बादलों की तरह ही कभी न कभी विलीन हो जाएगा। आकाश कुछ भी नहीं करता। बादल कुछ करते हैं। करते हैं, तो रिक्त हो जाते हैं। अभी वर्षा से भरे आएंगे, उमड़ेंगे, घुमड़ेंगे; शोरगुल होगा, बड़ी गति होगी, बिजलियां चमकेंगी। फिर पानी झर जाएगा, बादल रिक्त हो जाएंगे, खो जाएंगे। सभी क्रिया रिक्त हो जाती है। हो ही जाएगी। क्योंकि सभी क्रियाएं प्रारंभ होती हैं। और जो भी प्रारंभ होता है, वह अंत भी होगा। जो प्रारंभ नहीं होता, वही अंत से बच सकता है। लाओत्से का ईश्वर निष्क्रियता है। इसलिए लाओत्से उसे ईश्वर भी नहीं कहता। वह उसे शाश्वत नियम कहता है--ताओ। जीवन के बहुत पहलुओं में हम इसे देखें, तो फिर स्वयं के भीतर भी देखना आसान हो जाएगा। और तब लाओत्से की साधना हमारे ख्याल में आ जाएगी--वह क्या चाहता है और कैसे आदमी उस परम शाश्वतता को उपलब्ध हो सकता है। एक बीज हम बो देते हैं; वृक्ष जन्म जाता है। शाखाएं-प्रशाखाएं फैलती हैं; फूल खिलते हैं। और फिर एक दिन वह वृक्ष उसी मिट्टी में वापस गिर कर खो जाता है। एक व्यक्ति पैदा होता है। और फिर एक दिन हम उसे कब्र में सुला कर वापस मिट्टी में मिल जाने देते हैं। सुबह आप जागते हैं। सांझ थक जाते हैं और नींद में खो जाते हैं। जन्म भी एक जागना है और मृत्यु भी एक सांझ है। फिर वापस हम वहीं गिर जाते हैं, जहां से हम आते हैं। लेकिन क्या हमारे भीतर भी ऐसा कुछ है, जैसा बादलों के साथ आकाश है? वृक्ष जन्मा, मिट्टी उठी आकाश की तरफ। मिट्टी वृक्ष के पत्ते बनी। मिट्टी ने वृक्ष में फूल खिलाए। फिर फूल गिर गए, पत्ते गिर गए, वृक्ष गिर गया। मिट्टी वापस मिट्टी में मिल गई। क्या वृक्ष में ऐसा भी कुछ था जो आकाश जैसा था? यह तो बादल जैसा हुआ--वृक्ष का होना, पत्तों का फैलना, सक्रियता। यह तो बादलों जैसा था। वृक्ष में क्या कुछ ऐसा भी था जो आकाश जैसा था? जो तब भी था जब बीज अंकुरित न हुआ और तब भी है जब वृक्ष वापस मिट्टी में खो गया?
एक आदमी जन्मा; यह एक बादल का जन्म है। उमड़ेगा, घुमड़ेगा, युवा होगा, वासनाएं पकड़ेंगी, दौड़ आएगी, जीवन एक गहन सक्रियता बन जाएगीः चिंता और तनाव और बेचैनी, सफलताएं और असफलताएं। और एक लंबी कथा होगी। और फिर सब मिट्टी में गिर जाएगा। उमर खय्याम ने कहा हैः डस्ट अनटू डस्ट। और फिर मिट्टी वापस मिट्टी में गिर जाएगी। क्या इस आदमी में बादल ही बादल थे या आकाश जैसा भी कुछ था? ये वासनाएं तो बादल हैं। और कभी बहुत भरी होती हैं। एक जवान आदमी को देखें; वह पानी से भरा हुआ बादल है। एक बूढ़े आदमी को देखें; वर्षा हो गई, बादल रिक्त हो गया है। जो भरा था, वह बिखर गया। एक बूढ़ा आदमी सूख गया बादल है। लेकिन क्या इस आदमी की वासनाओं, क्रियाओं, इसकी दौड़, इसकी उपलब्धियों, इन सबके पीछे कुछ आकाश भी है या नहीं?
अगर कोई आकाश पीछे नहीं है, तो कोई आत्मा नहीं है। और अगर पीछे कोई आकाश है, तो ही आत्मा है। जो मानते हैं मनुष्य के भीतर कोई आत्मा नहीं है, वे कह रहे हैं कि बादल तो उठते हैं, लेकिन आकाश नहीं है। लेकिन आकाश के बिना बादल उठ भी नहीं सकते। आकाश तो हो सकता है बादलों के बिना, लेकिन बादल आकाश के बिना नहीं हो सकते। या कि हो सकते हैं? आकाश के होने में कोई भी अड़चन नहीं है। बादल न हों, तो आकाश के होने में जरा भी कमी नहीं पड़ती। न होने से आकाश में कुछ बढ़ती होती है, न न होने से कुछ घटता है। आकाश होता है बादलों के बिना भी। बादल एक दुर्घटना है; या कहें, एक घटना है; आकाश एक अस्तित्व है। बादल सांयोगिक हैं, एक्सीडेंटल हैं, किन्हीं कारणों पर निर्भर हैं।
इसे थोड़ा समझें। आकाश में बादल बनते हैं, तो किन्हीं कारणों पर निर्भर हैं--संयोगात्मक हैं। सूरज निकलेगा, पानी भाप बनेगा, आकाश की तरफ उठेगा, तो बादल बनेंगे। अगर सूरज ठंडा हो जाए, धूप न पड़े, पानी उबले नहीं,

तो बादल नहीं बनेंगे। सूरज तपता रहे, आग बरसाता रहे, पानी न हो, तो बादल नहीं बनेंगे। आकाश अकारण है। सूरज हो या न हो, पानी हो या न हो, बादल बनें या न बनें, चांद-तारे रहें या न रहें, पृथ्वी बचे या न बचे, आदमी हो या न हो, आकाश अकारण है, अनकंडीशनल है। उसके होने में कुछ भी अंतर न पड़ेगा।
इसका अर्थ हुआ कि जिन चीजों का भी कारण होता है, वे चीजें बादलों की तरह होती हैं; और जिनका कोई कारण नहीं होता, अकारण, वे चीजें आकाश की तरह होती हैं। आप पैदा हुए, तो आपके पैदा होने में दो हिस्से हैं। एक बादल जैसा। आपके माता-पिता न होते, तो आपको यह शरीर नहीं मिल सकता था। हजार-हजार कारण हैं, जिनसे आपको यह शरीर मिला। लेकिन आप कारण में ही समाप्त अगर हो जाएं, तो फिर आप नहीं हैं, आपके भीतर कोई आकाश नहीं है। आपके माता-पिता भी न होते, आपका शरीर भी न होता, तो भी आप होते, तो ही आपके भीतर आत्मा है। अन्यथा आत्मा का कोई अर्थ नहीं रह जाता।
लाओत्से कहता है, हमारे सबके भीतर बादल भी हैं और आकाश भी है। और जैसे बादल नहीं हो सकते आकाश के बिना, आपकी वासनाएं भी नहीं हो सकतीं आत्मा के बिना। जैसे आकाश चाहिए बादलों को तैरने के लिए, वैसे ही आत्मा भी चाहिए वासनाओं को तैरने के लिए। आत्मा हो सकती है बिना वासनाओं की; वासनाएं नहीं हो सकतीं बिना आत्मा के।
लेकिन जब आकाश बादलों से घिरा होता है, तो आकाश बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता, बादल ही दिखाई पड़ते हैं। और जब मनुष्य भी वासनाओं से घिरा होता है, तो आत्मा बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ती, वासनाएं ही दिखाई पड़ती हैं।
और हर वासना सक्रियता में ले जाती है। जिन्होंने कहा है कि जब तक आदमी निर्वासना में न पहुंच जाए, डिजायरलेसनेस में न पहुंच जाए, तब तक आत्मा को न पा सकेगा, उनका प्रयोजन यही है। क्योंकि जब तक निर्वासना में न पहुंचें, तब तक निष्क्रियता में न पहुंचेंगे। हर वासना क्रिया का जन्म है। यहां वासना के पैदा होने का अर्थ ही यह है कि आप एक क्रिया की यात्रा पर निकल गए। चाहे स्वप्न में ही सही, चाहे वस्तुतः, आप कुछ करने में संलग्न हो गए। वासना जन्मी कि क्रिया शुरू हो गई, बादल घिर गए।
जितने होंगे ज्यादा बादल, उतना ही आकाश दिखाई नहीं पड़ेगा। बादल बिल्कुल न हों, तब आकाश दिखाई पड़ता है; या दो बादलों के बीच में दिखाई पड़ता है। दो वासनाओं के बीच में जो अंतराल होता है, उसमें कभी भीतर की आत्मा दिखाई पड़ती है। लेकिन हमारी वासनाएं ऐसी हैं कि अंतराल बिल्कुल नहीं है। एक वासना समाप्त नहीं हो पाती, उसके पहले हम हजार पैदा कर लेते हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि एक वासना समाप्त हो जाए और दूसरी अभी पैदा न हो और बीच में खाली जगह छूट जाए, जिसमें से हम अपने आकाश में झांक लें। एक वासना पूरी नहीं होती कि हजार को हम बो देते हैं। एक मरती है, तो हजार जन्म जाती हैं। आकाश हमारा सदा ही बादलों से भरा रह जाता है।
इसलिए आदमी अगर अपने को समझने की कोशिश करे, तो पाएगा, मैं सिर्फ क्रियाओं का एक जोड़ हूं। और हम सब ऐसा ही अपने को मानते हैं। अगर कोई आपसे पूछे कि आप क्या हैं, तो आप क्या बताएंगे? बताएंगे कि आप ने क्या-क्या किया है, कितने मकान खड़े किए हैं, कितना धन अर्जित किया है, कितनी उपाधियां इकट्ठी की हैं। आप ने क्या किया है, वही आपका जोड़ है। तो आप अपने को बादल समझ रहे हैं; आकाश का आपको कोई पता नहीं है। क्योंकि आकाश का करने से कोई संबंध नहीं है। आकाश तो सिर्फ है। और उसके होने के लिए आपको कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। उसका होना किसी कर्म पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक घटना में ये दोनों सूत्र एक साथ मौजूद हैंः क्रियाओं का जगत है और निष्क्रियता की आत्मा है।
लाओत्से कहता है, इस निष्क्रियता को जान लेना ही शाश्वत नियम को जान लेना है।
उसके सूत्र को हम समझें।
"निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें; और प्रशांति के आधार से दृढ़ता से जुड़े रहें।"
अपने ही भीतर निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप कुछ करें नहीं। जीवन है, तो कर्म तो होगा ही। जीवन है, तो कुछ न कुछ तो आप करते ही रहेंगे। अगर आप बिल्कुल ही मूर्तिवत भी बैठ

जाएं, तो वह बैठना भी कर्म ही है। और आप मुर्दे की तरह शवासन में लेट जाएं, वह लेट जाना भी कर्म ही है। और आप सब छोड़ कर जंगल में भाग जाएं, वह भाग जाना भी कर्म ही है।
झेन फकीर हुई-हाई के पास एक युवक आया है। और वह उस युवक से कहता है, लाओत्से का यह सूत्र याद रखोः अटेन दि अटमोस्ट इन पैसिविटी, उस चरम को निष्क्रियता में उपलब्ध करो।
वह युवक सब तरह के उपाय करता है। वह दूसरे दिन सुबह आकर बिल्कुल बुद्ध
की पत्थर की मूर्ति होकर बैठ जाता है। हुई-हाई उसे हिलाता है और वह कहता है, हमारे मंदिर में पत्थर के बुद्ध काफी हैं। और ज्यादा जरूरत नहीं है। ऐसे नहीं चलेगा। अटेन दि अटमोस्ट इन पैसिविटी, निष्क्रियता में उसकी चरमता में प्रवेश करो। यह तो तुम ही बैठे हुए हो। और इस बैठने में तुम्हें कर्म करना पड़ रहा है।
और आदमी साधारण बैठा हो, तो कम कर्म करना पड़ता है; ठीक बुद्ध जैसा बन
कर बैठ जाए, तो बहुत कर्म करना पड़ता है। वह कई तरह के उपाय करता है; सब असफल हो जाते हैं। क्योंकि कोई भी उपाय निष्क्रियता पाने में सफल नहीं हो सकता। उपाय का अर्थ ही है कर्म। तो कर्म अकर्म को पाने में कैसे होगा सफल? कोई रुकना चाहता हो, तो दौड़ने से कैसे रुकने तक पहुंचेगा? और कोई मरना चाहता हो, तो जीवन उसके लिए रास्ता नहीं है। कर्म से कोई कैसे अकर्म को पाएगा?
तो वह युवक परेशान हो गया। उसने हुई-हाई के आश्रम में वृद्धजनों को जाकर पूछा कि मैं क्या करूं? मैं परेशान हो गया। मेरी बुद्धि तो अंत पर आ गई। मेरा तो समाप्त हो गया सोच-समझ सब। सब उपाय करके देख चुका हूं। आप हैं पुराने, आप गुरु के साथ बहुत दिन रहे हैं। और निश्चित ही आप भी इस परीक्षा से गुजरे होंगे। मुझे कुछ सलाह दें। यह मैं निष्क्रियता कैसे प्राप्त करूं? तो जिससे उसने पूछा था, उसने कहा कि जब तक मर ही न जाओ, तब तक निष्क्रियता प्राप्त नहीं होती। जीते जी कैसी निष्क्रियता? जीओगे, तो कर्म तो होगा ही। जीना क्रिया का ही नाम है। जीवन अर्थात सक्रियता। मर ही जाओ, तो ही परीक्षा में पास हो सकते हो। उस युवक ने सोचा, यह भी कोशिश कर ली जाए।
वह दूसरे दिन सुबह जब गुरु के पास गया, तो गुरु ने पूछा कि पा लिया वह सूत्र? वह तत्क्षण वहीं गुरु के सामने गिर कर मर गया। गुरु उसके पास आया और उसने कहा कि जरा एक आंख खोलो। तो उसने एक आंख खोल कर गुरु को देखा। तो गुरु ने कहा कि मरे हुए लोग आंख खोल कर देखा नहीं करते। यह तुम किससे सीख कर आ गए हो? और सिखावन से कोई कभी सत्य को उपलब्ध नहीं होता। तो वह युवक रोने लगा और उसने कहा कि मैं सब उपाय कर चुका, और यह आखिरी उपाय था। अब कुछ करने को बचा नहीं। यह निष्क्रियता कैसे उपलब्ध हो?
उसके गुरु ने कहा कि जब तक तुम पूछते हो कैसे, हाऊ, तब तक तुम कभी उपलब्ध न हो सकोगे। क्योंकि कैसे का मतलब ही क्या होता है? उसका मतलब होता हैः किस प्रकार, किस विधि से, किस प्रयत्न से, किस काम से मैं पा सकूंगा? तुम कर्म को ही पूछे चले जाते हो।
निष्क्रियता, हुई-हाई ने कहा है, पाई नहीं जाती, निष्क्रियता मौजूद है। और निष्क्रियता पाने का कोई उपाय नहीं; वह मौजूद है। सिर्फ सक्रियता से ध्यान निष्क्रियता पर हट जाए। यह सिर्फ ध्यान के हटने की बात है। बादल से ध्यान आकाश पर हट जाए। आकाश को पाना नहीं है, आकाश है। और हमने उसे कभी खोया भी नहीं है। ज्यादा से ज्यादा हम भूल सकते हैं। और आकाश को बनाना भी नहीं है। और हमारे किसी प्रयत्न से वह बन भी न सकेगा। और हमारे प्रयत्न से जो बन जाए, वह आकाश नहीं होगा।
इसलिए आत्मा को पाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं है। और आत्मा को पाने
के लिए कोई भी साधना नहीं है। सारी साधनाएं और सारे प्रयास, वह जो हमारे भीतर बादलों का जगत है, उस जगत से ध्यान को हटाने के लिए ही हैं।
लाओत्से का यह सूत्र, "निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें।" शब्दों के कारण भ्रांति पैदा करता है। इससे लगता है उपलब्ध करें, कुछ पाने को है। लेकिन यह भाषा की मजबूरी है। और लाओत्से पहले ही कह चुका है कि जो मैं कहना चाहता हूं, वह कहा नहीं जा सकता। और जो मैं कहूंगा, उसमें भूल

हो जानी अनिवार्य है। हमारी सारी की सारी भाषा क्रिया पर निर्भर है। अगर एक आदमी मर जाता है, तो भी हम कहते हैं वह आदमी मर गया, जैसे मरना उनका कोई काम हो। मरना एक क्रिया है। हम कहते हैं फलां आदमी मर गया, जैसे कि मरने का कोई काम उन्होंने किया हो। मरने के लिए आपको कुछ करना नहीं पड़ता। लेकिन हमारी पूरी भाषा क्रिया पर चलती है। चलेगी ही। हम जीवन को बादलों से ही जानते हैं। और वहां तो सब कर्म है, गति है। इसलिए जो भी हम... ।
हम किसी को कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, जैसे कि प्रेम कोई कर्म हो। अब तक दुनिया में कोई प्रेम कर नहीं सका है। प्रेम कोई कृत्य नहीं है कि आप कर लें। प्रेम या तो होगा या नहीं होगा; करने का कोई सवाल नहीं है। अगर है तो ठीक; नहीं है तो ठीक। चेष्टा करके आप प्रेम नहीं कर सकते हैं। प्रेम का क्रिया से कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन भाषा में प्रेम भी क्रिया है। हम कहते हैं, मां बेटे को प्रेम करती है। मां और बेटे के बीच प्रेम होता है; करती नहीं है। करने का तो कोई उपाय ही नहीं है। हम तो प्रेम जैसी घटना को भी क्रिया बना लेते हैं। ठीक ऐसे ही हमने ध्यान को भी क्रिया बना लिया है। एक आदमी कहता है, मैं ध्यान करता हूं। मजबूरी है। भाषा सभी चीजों को क्रिया में बदल देती है। स्थितियों को भी क्रिया में बदल देती है।
इसलिए बड़ा विपरीत है यह सूत्र, "निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें।"
उपलब्ध करने में क्रिया है। और निष्क्रियता की स्थिति पानी है। निष्क्रियता पानी है, तो उपलब्धि तो नहीं हो सकती। सब उपलब्धियां क्रियाएं हैं। धन पा सकते हैं आप, धन की उपलब्धि हो सकती है। यश पा सकते हैं, पद पा सकते हैं। वे सब क्रियाएं हैं। लेकिन निष्क्रियता कैसे पाइएगा? लाओत्से का मतलब है कि हमारे भीतर दो तल हैं। एक तल पर क्रियाएं हैं; बादल हैं, लहरें हैं, तरंगें हैं। और ठीक उसी के नीचे गहराई में आकाश है। उसी आकाश में ये सारे बादल घिरे हैं। और वह आकाश असीम है। और ये बादल बड़े सीमित हैं। इन बादलों को पार करके देखने की क्षमता ही निष्क्रियता की उपलब्धि हो जाती है।
इसलिए दूसरे ही सूत्र में वह कहता है, इसी सूत्र के दूसरे हिस्से में, "निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें; और प्रशांति के आधार से दृढ़ता से जुड़े रहें।"
और जब आपको दिखाई पड़ जाए आपके ही भीतर कि आकाश भी है, तो फिर बादलों में मत भटकें। और चाहे कितनी ही बादलों में यात्रा करें, लेकिन आकाश से सतत जुड़े रहें। स्मरण आकाश का ही रखें। कितने ही दूर निकल जाएं, लेकिन ध्यान सदा उस आकाश का ही रखें, जो भीतर अनुभव में हुआ है। कितने ही कर्म करें, कितने ही दौड़ते रहें, लेकिन ध्यान उसका ही रखें, जो भीतर नहीं दौड़ रहा है, कभी नहीं दौड़ा, जिसके दौड़ने का कोई उपाय ही नहीं है।
कभी आपने कोशिश की? कभी दौड़ कर देखें। आप ट्रेन पर सवार होते हैं। आपके भीतर कुछ ऐसा भी है, जो ट्रेन पर सवार नहीं होता। ट्रेन चलती है। आप भी ट्रेन के साथ गतिमान होते हैं। आपके भीतर कुछ ऐसा भी है, जिसमें कोई गति नहीं होती। आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं। लेकिन आपके भीतर कुछ ऐसा भी है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। आप कितने ही चलते- फिरते रहें, आपके भीतर एक अचल तत्व भी है।
उस अचल, निष्क्रिय आकाश को ही सदा ध्यान में रखें। आपके ऊपर क्रोध के बादल आ गए, या कामवासना ने मन को धुएं से भर दिया, या लोभ का जहर फैल गया; तब भी इन बादलों के बीच पीछे छिपे आकाश को स्मरण रखें। क्योंकि बादल अभी नहीं थे, अभी हैं, अभी फिर नहीं हो जाएंगे। और जो क्षण भर को आया है और क्षण भर में चला जाएगा, उसके कारण विचलित होने का कोई भी कारण नहीं है। उससे विचलित वही होता है, जो भीतर के शांति के प्रगाढ़ आधार को भूल जाता है।
एक सूफी कथा है। एक सम्राट ब.ूढा हुआ। उसने अपने मंत्रिमंडल को बुलाया और उनसे कहा कि मैं बूढ़ा हुआ और मौत करीब आती है। अब तक मैंने ज्ञान की कोई कभी चिंता नहीं की। लेकिन मौत करीब आती है, तो ज्ञान की भी चिंता पैदा होती है। अगर मौत न होती, तो शायद दुनिया में ज्ञानी ही मुश्किल से होते। अगर मौत न होती, तो शायद धर्मों का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता था।

अगर मौत न होती, तो तत्व-चिंतन की कोई जगह नहीं बन सकती थी। उस बूढ़े सम्राट ने कहा कि मन बहुत घबड़ाता है। और अब मैं कोई ऐसा आधार चाहता हूं, जहां इस घबड़ाहट से मैं बच सकूं। और अब तक मैंने जो भी इंतजाम किए, वे सब व्यर्थ हुए जाते हैं। अब तक उनका भरोसा था बहुत। फौजें थीं, तोपें थीं, महल थे, किले थे; सुरक्षित था। लेकिन अब ये फौजें और ये पत्थर की दीवारें कुछ भी न कर पाएंगी। मौत करीब आई चली जाती है। मुझे कोई ऐसा सूत्र चाहिए कि मौत मुझे भयभीत न करे। यह बुढ़ापा द्वार पर दस्तक देता है; बहुत कंपता है मन। मंत्रियों ने कहा, हम सलाह दे सकते थे कि और बड़ा किला कैसे बनाया जाए;
हम सलाह दे सकते थे कि फौजें और बड़ी कैसे की जाएं; लेकिन जिस संबंध में आप पूछ रहे हैं, उस संबंध में तो हमें कुछ भी पता नहीं है।
तो सारे राज्य में खबर, खोजबीन की गई। एक बूढ़े फकीर ने आकर कहा कि मैं
एक सूत्र दिए देता हूं, जो वक्त पर काम पड़े। लेकिन जब तक वक्त न आ जाए, तब तक इसे खोल कर देखना मत। वक्त! जब तुम्हें ऐसा लगे कि सब उपाय व्यर्थ हो गए, तुम जो भी कर सकते थे, अब किसी काम का न रहा। जब तक तुम कर सको, तब तक तुम कर लेना। जब तुम पाओ कि तुम्हारी करने की क्षमता चुक गई, अब तुम कुछ भी न कर पाओगे, तभी इस सूत्र को देखना। उसने एक ताबीज में बंद करके वह सूत्र दे दिया।
सम्राट ने वह ताबीज अपनी बांह पर बांध लिया। कई मौके आए, जब मन हुआ कि खोल कर ताबीज देख ले; लेकिन तभी उसे पता चला कि अभी तो मैं कुछ कर सकता हूं। वर्षों बीत गए। फिर दुश्मन का हमला हुआ और वह राज्य हार गया। और हारा हुआ घोड़े पर भागा जा रहा है, दुश्मन उसके पीछे हैं। तब अचानक उसे ताबीज का ख्याल आया। पर उसे लगा, अभी तो मैं कुछ कर ही सकता हूं। अभी दुश्मन दूर हैं, तेज घोड़ा मेरे पास है, अभी मैं इन सीमाओं के बाहर निकल ही जा सकता हूं। वह भागता रहा। लेकिन अचानक एक ऐसे मोड़ पर पहुंचा पहाड़ के कि आगे रास्ता समाप्त था और गड्ढ आ गया। पीछे लौटने का कोई उपाय न रहा, पीछे दुश्मन हैं। उनके घोड़ों की टाप प्रतिपल बढ़ती चली जाती है। और आगे खड्ड है, और आगे जाया नहीं जा सकता। और रास्ता बस एक छोटी पगडंडी है। आखिरी घोड़े की टाप मालूम पड़ने लगी कि बस अब छाती पर ही पड़ रही है, सिर पर ही पड़ रही है, तब उसने तोड़ कर ताबीज पढ़ा। उसमें एक छोटा सा वाक्य लिखा था। लिखा थाः यह भी बीत जाएगा, दिस टू विल पास। और कुछ भी न था। कोई उपाय भी न था करने का। ताबीज हाथ में लिए वह खड़ा रहा। बुद्धि कुछ साथ न देती मालूम पड़ी। यह भी फकीर ने क्या धोखा दिया! सोचता था, कोई मंत्र होगा, कोई जादू होगा, कोई चमत्कार की ताकत होगी कि कुछ भी कर लूंगा। इसमें कुछ भी न था; एक कागज के छोटे से टुकड़े पर लिखा थाः यह भी बीत जाएगा।
खड़ा रहा शांत। घोड़ों की टापों की आवाजें बढ़ती गईं, बढ़ती गईं, बढ़ती गईं--और फिर धीमी पड़ने लगीं। उन्होंने कोई दूसरा रास्ता पकड़ लिया था। फिर घोड़े दूर निकल गए। फिर उसने ताबीज को वापस बांध लिया। वापस उसकी फौजें जीत गईं। वह अपने राज्य में लौट आया।
लेकिन तब से वह हर घड़ी ताबीज को खोल कर और पढ़ने लगा। हर घड़ी! किसी ने उसे गाली दे दी है, अपमान कर दिया है, और वह कागज को पढ़ लेता और मुस्कुराता और ताबीज को बंद कर लेता। उस दिन से उसे किसी ने चिंतित नहीं देखा। उस दिन से उसे किसी ने दुखी नहीं पाया। उस दिन से किसी ने उसे क्रोधी नहीं पाया। उस दिन से मौत, जीवन, कोई चिंता उसकी न रह गई। उसके मंत्री उसके आस-पास घूमते थे कि कभी उसके कागज में झांक लें--क्या है मंत्र! आदमी बिल्कुल ही बदल गया। क्या है जादू उस मंत्र में? बस एक छोटा सा सूत्र थाः यह भी बीत जाएगा।
अगर ठीक से समझें, तो जो भी बीत जाता है, वह आपके भीतर बादल है। और जो नहीं बीतता, वही आप हैं। जो भी आता है और बीत जाता है, वह आप नहीं हैं। इस बात की स्मृति गहरी हो जाए, तो आप प्रशांति के आधार से जुड़ गए। वह सम्राट जुड़ गया प्रशांति के आधार से। जो मेरे भीतर नहीं बीतता है कभी, वही मैं हूं। लेकिन मेरी सब क्रियाएं बीत जाती हैं। मैं कुछ भी करूं, वह बीत जाता है। तो मेरे करने से शाश्वत नियम से कोई जोड़ नहीं है। वरन मेरे न करने की जो अवस्था है, वही शाश्वत से संयुक्त है।
"सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं।"

सभी चीजें रूप लेती हैं, सक्रिय हो जाती हैं। बादल रूप लेता है, सक्रिय हो जाता है। वृक्ष रूप लेता है, सक्रिय हो जाता है। वासना आपके भीतर रूप लेती है, सक्रिय हो जाती है।
"सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं; लेकिन हम उन्हें विश्रांति में पुनः वापस लौटते भी देखते हैं।"
लाओत्से कहता है, सभी कुछ बनता है, निर्मित होता है। फिर हम इन्हें लौटते भी देखते हैं, वापस विश्रांति में गिरते भी देखते हैं। जब सभी बन कर गिर जाता है... । अगर यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, अगर यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि सभी रूप, चाहे वे सुंदर हों या कुरूप, चाहे वे प्रीतिकर हों या अप्रीतिकर, बनते हैं और बिखर जाते हैं; बिखरना अनिवार्य नियम है; बनने का ही हिस्सा है बिखर जाना; जो आज पैदा हुआ है, वह मरने को ही पैदा हुआ है; और जो फूल खिला है, वह गिरने को ही खिला है; वह गिरना, कुम्हलाना, बिखर जाना खिलने का ही दूसरा हिस्सा है; अगर इतना आर-पार दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, तो आपके पास धर्म की आंख पैदा हो गई।
बुद्ध कहते थे धर्म-च्रु इसको। वे कहते थे, सब अनित्य है, सब मरणधर्मा है; कुछ भी टिकेगा नहीं, कुछ भी बचेगा नहीं; जिसका भी आदि है, उसका अंत है; इसे जो देख लेता है, उसे धर्म-च्रु उपलब्ध हो जाता है। उसे वह आंख मिल जाती है, जिसको हम धर्म की आंख कहें। कुरान को कोई कंठस्थ कर ले, तो वह आंख नहीं मिलती। और न गीता को कंठस्थ करने से मिलती है। वह आंख मिलती है इस अनुभव से।
हमें तो रूप दिखाई पड़ता है। आकाश में एक बादल बना, तो हमें बादल दिखाई पड़ता है, आकाश खो जाता है। जो सदा था और जो अभी भी है और जो आगे भी होगा, वह भूल जाता है; और बादल सब कुछ हो जाता है। और जब बादल होता है, तो हम यह भूल ही जाते हैं कि थोड़ी देर में बादल बिखर जाएगा। यह बादल कुछ भी नहीं है, सिर्फ घनी हो गई भाप है, सिर्फ सघन हो गया धुआं है। यह खो जाएगा। जो व्यक्ति, बादल घिरे हों, तब भी यह देख पाता है; जिस व्यक्ति के लिए, जब बादल घिरे हों, तब भी आकाश स्वच्छ दिखाई पड़ता है, उसे धर्म की आंख उपलब्ध हो गई। सब रूप निर्मित होते हैं, बिखर जाते हैं। लेकिन रूप मन को बड़ा पकड़ लेते हैं। वास्तविक रूपों को तो हम छोड़ दें; अगर एक सुंदर शरीर की तस्वीर भी है, तो लोग उसको भी छाती से लगाए देखे जाते हैं। कागज के टुकड़े पर स्याही की रेखाएं एक रूप बन जाती हैं। लोग उससे भी आंदोलित होते हैं। लोग उससे भी प्रभावित होते हैं। लोग उससे भी जकड़ जाते हैं। तो जो कागज पर खींची गई रेखाओं से आंदोलित हो जाते हैं, वे अगर मांस-मज्जा और हड्डी की रेखाओं से प्रभावित हो जाते हों तो आश्चर्य तो नहीं है।
लेकिन जो कागज पर खींची रेखाओं से आंदोलित होते हैं, वे अगर थोड़ा गौर
से देख पाएं, तो पीछे कोरा कागज ही दिखाई पड़ेगा। और जो हड्डी-मांस-मज्जा से भी प्रभावित होते हैं, वे भी थोड़ा गहरा देख पाएं, तो उन्हें भी पीछे कोरा आकाश ही दिखाई पड़ेगा। सभी रूप स्याही से खींची गई रेखाओं के ही रूप हैं। सभी रूप--चाहे एक वृक्ष निर्मित हो रहा हो, और चाहे एक व्यक्ति निर्मित हो रहा हो, और चाहे एक सूर्य निर्मित हो रहा हो--सभी रूप... ।
बुद्ध ने कहा है, सभी चीजें संघात हैं, जोड़ हैं। सभी जोड़ बिखर जाते हैं।
बुद्ध की मृत्यु करीब आई है। भिक्षु रो रहे हैं। एक भिक्षु बुद्ध से पूछता है कि अब आपका क्या होगा? आप कहां जाएंगे? किस मोक्ष में?
बुद्ध ने कहा, मैं कहीं भी नहीं जाऊंगा। और जिसे तुम समझते थे मेरा होना, वह तो सिर्फ संघात है। वह तो केवल रेखाओं का जोड़ है। वह तुम्हारे सामने बिखर कर यहीं मिट्टी में मिल जाएगा। तुम ही उसे दफना आओगे। जिसे तुम समझते हो मेरा होना, वह तो यहीं मिट्टी में मिल जाएगा। वह रूप तो इसी मिट्टी से निर्मित हुआ है। और जो मैं हूं, उसका कहीं कोई आना-जाना नहीं है। लेकिन उसे तुम नहीं जानते हो।
प्रत्येक रूप के भीतर अरूप छिपा है। बिना अरूप के रूप नहीं हो सकता; जैसे मैंने कहा, बिना आकाश के बादल नहीं हो सकते। अरूप अनिवार्य है रूप के लिए।
लेकिन रूप हमें दिखाई पड़ता है, अरूप हमें दिखाई नहीं पड़ता।

लाओत्से कहता है, "सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं; लेकिन हम उन्हें विश्रांति में पुनः वापस लौटते भी देखते हैं।"
यही देख लेना धर्म है।
"जैसे वनस्पति-जगत लहलहाती वृद्धि को पाकर फिर अपनी उदगम-भूमि में लौट जाता है।"
एक पौधा निर्मित होता है। फूल खिलते हैं, सुगंध आती है, हवाओं से टक्कर लेता है, सूरज को छूने की आकांक्षा से आकाश की यात्रा पर निकलता है। कितना रंग! कितना रूप! कितनी आकांक्षा! कितना दृढ़ विश्वास! फिर सब खो जाता है। फिर साल-छह महीने बाद वहां जाकर देखें, तो कुछ भी नहीं है। मिट्टी वापस मिट्टी में गिर गई। जैसे एक लहर ने छलांग ली हो और फिर वापस गिर गई हो। लेकिन जब यह पौधा होता है और जब इसमें फूल खिलते हैं, जब यह रूपायित होता है, तब हमें पीछे का खाली आकाश दिखाई नहीं पड़ता।
लाओत्से वही कह रहा है, लेकिन सब चीजें वापस लौट जाती हैं।
जिस व्यक्ति को चीजों का वापस लौटना भी दिखाई पड़ने लगता है, वही व्यक्ति निष्क्रियता की चरम सीमा को छू पाएगा। और वही व्यक्ति विश्रांति के आत्यंतिक आधार के साथ जुड़ जाएगा।
"उदगम को लौट जाना विश्रांति है।"
यह तो दृष्टि की बात हुई। यह तो दृष्टि उपलब्ध होनी चाहिए। यह दिखाई पड़ना चाहिए।
एक पौधे को तो हम देख भी सकते हैं आर-पार कि कल यह मिट जाएगा। लेकिन यह पौधे को हम देख रहे हैं। एक बादल को तो हम देख भी सकते हैं कि घड़ी भर बाद बिखर जाएगा। लेकिन यह बादल को हम देख रहे हैं। जिस दिन कोई व्यक्ति इस अंतर्दृष्टि को स्वयं पर भी लागू कर लेता है, जिस दिन वह कहता है कि मुझमें भी जो दिखाई पड़ रहा है--यह मेरी देह, और यह मेरा मन, और ये मेरे विचार, और यह मेरी अस्मिता, मेरा अहंकार, यह मेरी बुद्धि--यह जो कुछ भी मुझे दिखाई पड़ रहा है मुझमें, यह भी वापस उदगम में गिर जाएगा, वैसे ही जैसे सब रूप गिर जाते हैं। जब कोई व्यक्ति इस दृष्टि को अपने पर भी लौटा लेता है, तब लाओत्से कहता है, उदगम को लौट जाना विश्रांति है। और ऐसे अनुभव में जो भर जाता है, वह लौट गया अपने उदगम को। जिसे यह दिखाई पड़ गया अपने भीतर कि मेरा भी सब जो भी रूपायित है, वह सब बिखर जाएगा; वह आज ही अपनी विश्रांति में लौट गया।
यह वचन बहुत कीमती है, "टु रिटर्न टु दि रूट इ.ज रिपोज।"
वह जो मूल उदगम है, जो जड़ें हैं, वहां लौटने का जो बोध है, वह लौट जाना है। और अपनी जड़ों को, अपने उदगम को पा लेना परम विश्रांति है।
वह जो बुद्ध के चेहरे पर शांति की छाया है, वह किसी ध्यान का परिणाम नहीं है, वह किसी मंत्र-जप का परिणाम नहीं है। अगर एक व्यक्ति मंत्र को जपता रहे, तो भी चेहरे पर एक शांति आनी शुरू हो जाती है--कल्टीवेटेड, चेष्टा से निर्मित। अगर एक व्यक्ति को केमिकली शांत करना हो, तो किया जा सकता है। उसके सारे खून में अगर ट्रैंक्वेलाइजर्स ही डाल दिए जाएं, तो चेहरे पर एक शांति आ जाएगी; लेकिन मुर्दा, मरी हुई, मरघट की शांति! बुद्ध के चेहरे पर जो जीवित शांति है, वह किसी क्रिया का फल नहीं है। वह उस उदगम में लौट जाने से जो रिपोज, जो विश्रांति मिलती है, वही है। बुद्ध को बैठा हुआ देखें, उनकी मूर्ति को देखें। तो जो भी उनकी मूर्ति को गौर से देखेगा, उसे लगेगा जैसे इस मूर्ति के भीतर भी कोई सेंटर है जिस पर यह पूरी मूर्ति उस केंद्र से जुड़ी है। यह पूरी मूर्ति भी जैसे किसी केंद्र से जुड़ी है। कोई केंद्र सब चीजों को सम्हाले हुए है।
अगर आपको कोई देखे चलते, उठते, बैठते, तो ऐसा पता चलेगा कि आपके भीतर कोई केंद्र नहीं है। या बहुत केंद्र एक साथ हैं। एक भीड़ आपके भीतर है। एक बाजार भरा है; उसमें कई तरह के लोग हैं, बड़े विपरीत स्वर हैं। जो बादलों से अपने को जोड़ेगा, उसकी यही हालत हो जाएगी। आकाश तो एक है, बादल अनेक हैं। और जो अभी छोटा बादल है, थोड़ी देर बाद बड़ा हो जाएगा। और जो अभी बड़ा बादल है, थोड़ी देर बाद टुकड़े-टुकड़े में बिखर जाएगा। और बादल के रूपों का भी कोई भरोसा है? अभी जो बादल बहुत सुंदर लग रहा था, क्षण भर बाद कुरूप हो जाएगा। बादल तो धुआं है, वह प्रतिपल रूप बदल रहा है।

तो जो व्यक्ति भी अपने को अपनी क्रियाओं से जोड़ता है, जो व्यक्ति भी अपने को अपनी उपलब्धियों से जोड़ता है, जो व्यक्ति भी अपने भीतर बादलों का ही इकट्ठा अहंकार है, वह व्यक्ति प्रतिपल एक भीड़ में डोल रहा है। जैसे ही किसी व्यक्ति को यह ख्याल में आना शुरू हो जाता है... ।
कठिन है यह ख्याल में आना। और सिर्फ तात्विक चिंतन से नहीं ख्याल में आएगा। मैं यह भी देख सकता हूं कि यह वृक्ष कल गिरेगा; यह देखना बहुत कठिन है कि कल मैं गिरूंगा। सभी लोग जानते हैं कि सभी लोग मरेंगे--सिर्फ स्वयं को छोड़ कर। सभी लोग जानते हैं कि सभी हड्डी-मांस-मज्जा के पुतले हैं--स्वयं को छोड़ कर। स्वयं को हम जोड़ते ही नहीं कभी, वह हिसाब में ही नहीं है। उसे हम बचा कर ही चलते हैं। यह ख्याल में ही नहीं आता कि इस सारे बदलते हुए रूप के जगत में मैं भी एक रूप हूं। बहुत पीड़ा होगी यह ख्याल में लाना। उस पीड़ा को ही तपश्चर्या कहें। यह मानना कि मैं भी हड्डी-मांस-मज्जा हूं, यह जानना कि मैं भी कागज पर खींची गई रेखाओं की एक आकृति हूं, यह अनुभव करना, प्रतिपल इस अनुभव को स्मरण रखना कि धुएं का एक बादल हूं, अति कठिन है। क्योंकि यह अगर ख्याल में रहे, तो अहंकार को खड़े होने की जगह कहां? फिर मैं अपनी प्रतिमा कैसे बनाऊं? मेरा फिर इमेज कहां बने? फिर मैं कौन हूं?
खलील जिब्रान ने कहा है कि जब तक अपने को नहीं जानता था, तब तक समझता
था एक ठोस प्रतिमा हूं। और जब अपने को जाना और मुट्ठी खोली, तो पाया कि हाथ में सिर्फ धुएं को मुट्ठी में बंद करके बैठा था।
हम सब की मुट्ठियों में भी धुआं बंद है। लेकिन इसे सुन लेते हैं, शायद बौद्धिक रूप से समझ में भी आ जाए; लेकिन अंतस्तल में प्रवेश नहीं होता। क्यों नहीं होता? क्योंकि हमने जो भी अपने चारों तरफ जिंदगी बना कर रखी है, अगर मैं यह जान लूं कि मैं मुट्ठी में बंद एक धुआं का टुकड़ा हूं, तो मेरे चारों तरफ जो मैंने बना कर रखा है वह अभी बिखर जाए। किसी ने मुझसे कहा है कि आप बहुत सुंदर हैं और मुझे आपसे प्रेम है। और अगर मुझे आज पता चले कि मैं एक धुएं का टुकड़ा हूं, तो मेरे प्रेम का क्या होगा? और किसी से मैंने कहा है कि मेरा प्रेम कोई कथा-कहानियों का प्रेम नहीं है, यह शाश्वत प्रेम है, मैंने किया है तो सदा करूंगा। अगर मुझे पता चले कि जिसने यह आश्वासन दिया है, वह खुद ही धुएं का एक पिंड है, उसके आश्वासनों का कोई भरोसा नहीं है, तो मेरे प्रेम का क्या होगा? मैंने अपने चारों तरफ जो इनवेस्टमेंट किए हैं जिंदगी में, वे सब मुझे कहेंगे कि ऐसी बातें मत सोचो, तुम काफी ठोस हो, तुम्हारे वचनों का अर्थ है, तुम्हारे वक्तव्य टिकेंगे। लोग गीत गाते हैं कि चांद-तारे नहीं रहेंगे, तब भी उनका प्रेम रहेगा। उस सब का क्या होगा? वह जो दूर अनंत पर हमने सपने फैला रखे हैं!
अगर मैं ही धुआं हूं, तो मेरे प्रेम का क्या अर्थ है? और अगर मैं ही धुआं हूं, तो मेरे वचन का क्या मूल्य है? और जब मैं ही मिट जाऊंगा, तो मेरे वचन और मेरे कृत्य, उन सब को किस तराजू पर तौलने का उपाय है? कोई उपाय नहीं है। इसलिए कठिनाई होती है। बात कभी समझ में भी आ जाती है। किन्हीं क्षणों में लगने भी लगता है, ये सब पानी पर खींची गई लकीरें हैं। लेकिन तब भय मन को पकड़ता है; क्योंकि वह चारों तरफ जो जाल हमने फैला कर रखा है, उसका क्या होगा? घबड़ा कर हम वापस, जैसी जिंदगी चलती है, उस ढांचे में उसे चलने देते हैं।
हर ढांचा हमारी दृष्टि पर निर्मित है। अगर हमारी दृष्टि बदलती है, तो पूरा ढांचा बदलना पड़ेगा, पूरा पैटर्न जिंदगी का बदलना पड़ेगा।
लिन यूतांग ने एक संस्मरण लिखा है। चीन से किसी मित्र ने एक जर्मन विचारक को एक छोटी सी लकड़ी की पेटी भेंट की--बहुत खूबसूरत, बहुत कलात्मक, हजारों वर्ष पुरानी। लेकिन जिसने भी उस पेटी को निर्मित किया था, उस पर एक शर्त खुदी थी कि पेटी का मुंह सूरज की तरफ ही होना चाहिए। और हजारों वर्षों में जितने लोग उस पेटी के मालिक रहे थे, उन्होंने उस शर्त को पाला था। चीनी मित्र ने कहा कि मैं यह भेंट तो कर रहा हूं, लेकिन एक शर्त के साथः सूरज की तरफ इस पेटी का मुंह होना चाहिए। इसे किसी हालत में न तोड़ा जाए; यह हजारों वर्ष की वसीयत है। मित्र ने कहा, ऐसी क्या कठिनाई है, इसका हम पालन करेंगे।

लेकिन जब मित्र ने आकर अपने बैठकखाने में पेटी रखी और उसका मुंह सूरज
की तरफ किया, तो पूरा बैठकखाना बेजोड़ मालूम पड़ने लगा। तो उसने बजाय पेटी को बदलने के, पूरे बैठकखाने को बदलवा दिया। खर्चीला था काम। सब फर्नीचर फिर से बनाया गया, दीवारों का रुख ठीक किया गया, दरवाजे बदले गए। लेकिन तब बैठकखाना पूरे घर में गैर-मौजूं हो गया। हिम्मतवर आदमी था, उसने पूरे घर को बदलवा कर बैठकखाने के हिसाब से बनवाया। लेकिन तब उसने पाया कि उसका घर पूरे पड़ोस से बेमौजूं हो गया। पर उसने कहा, अब तो मेरी सीमा के बाहर है मामला।
एक छोटी सी बदलाहट चारों तरफ बदलाहट लाना शुरू कर देती है। और दृष्टि
की बदलाहट छोटी बदलाहट नहीं है। दृष्टि की बदलाहट गहरी से गहरी बदलाहट है। जैसे ही दृष्टि बदलती है, आप वही आदमी नहीं रहे, जो एक क्षण पहले थे। आपका सब बदलेगा। वह घबड़ाहट कि यह सबको कैसे बदला जाएगा, आदमी को रोक लेती है। और यही साहस न हो, तो आदमी जीवन भर धर्म की बातें सुनता रहे, धार्मिक नहीं हो पाता।
लाओत्से कहता है, "उदगम को लौट जाना विश्रांति है।"
वह जो मूल आकाश है, वह जो शून्य छिपा है भीतर--और आकाश का अर्थ शून्य है, आकाश का अर्थ है नथिंगनेस। आकाश कोई वस्तु तो नहीं है। आकाश है अस्तित्व, वस्तु नहीं। आकाश का कोई रूप तो नहीं है, आकाश में कोई ठोसपन तो नहीं है, फिर भी आकाश है, रिक्त स्थान है आकाश, अवकाश है, स्पेस है। सब कुछ उसी में होता है और मिटता है। और वह अछूता, अस्पर्शित बना रहता है।
"इसे ही अपनी नियति में वापस लौटना कहते हैं।"
लाओत्से कहता है, इस उदगम में गिर जाना, मूल स्रोत में गिर जाना या मूल स्रोत के साथ अपने को एक अनुभव कर लेना ही नियति में वापस लौटना है, स्वभाव में, प्रकृति में। वही हमारी डेस्टिनी है, वही हमारी नियति है। और जब तक कोई व्यक्ति इस मूल उदगम के साथ एक नहीं हो जाता, तब तक भटकता ही रहता है। जन्मों-जन्मों भटक सकता है। जब तक किसी ने रूप के साथ अपने को जोड़ा, आकृति के साथ अपने को जोड़ा, तब तक भटकता ही रहेगा। यह जो जन्मों की इतनी लंबी यात्रा है, यह रूप के पीछे है, आकार के पीछे है।
"स्वयं की नियति को पुनः उपलब्ध हो जाना शाश्वत नियम को पा लेना है।"
तो जगत में दो नियम हैं। एक जिसे हम जगत कहते हैं, वहां परिवर्तन नियम है, दि चेंज इ.ज दि लॉ। जिसे हम जगत कहते हैं, वहां परिवर्तन नियम है। सब कुछ नदी की तरह बहा जाता है। वहां कुछ भी पुनरुक्त नहीं होता और वहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। विज्ञान इसी परिवर्तन के जगत की खोज है। और इसलिए विज्ञान को रोज अपने नियम बदलने पड़ते हैं।
एक मजाक वैज्ञानिकों में चलता है। जैसा कि बाइबिल में कहा है कि ईश्वर ने कहा कि प्रकाश हो जा, और प्रकाश हो गया! तो वैज्ञानिकों में एक पुराना मजाक था कि जब न्यूटन पैदा हुआ, तो न्यूटन के साथ इतिहास एक नया मोड़ लेता है। विज्ञान के जगत में न्यूटन से ज्यादा कीमती आदमी दूसरा नहीं है। तो वैज्ञानिकों में एक मजाक प्रचलित हुआ कि ईश्वर ने कहा कि न्यूटन हो जा और न्यूटन हो गया! और फिर दुनिया कभी वैसी नहीं हो सकी, जैसी न्यूटन के पहले थी।
फिर हुआ आइंस्टीन, तो किसी ने उस मजाक में थोड़ी बात और जोड़ दी। क्योंकि न्यूटन के साथ पैदा हुआ कानून, नियम। और न्यूटन ने जगत को समझाने के तीन नियम स्थापित किए, और सब चीजें व्यवस्थित हो गईं। न्यूटन पैदा हुआ, और सब चीजें व्यवस्थित हो गईं। तीन नियम सुनिश्चित रूप से निर्धारित हो गए। और सारा जगत न्यूटन के पहले एक केऑस था, एक अराजकता थी, न्यूटन के बाद एक व्यवस्था हो गई। फिर मजाक में किसी और दूसरे ने जोड़ दिया कि फिर ईश्वर न्यूटन से परेशान हो गया, और उसकी व्यवस्था से; क्योंकि सब व्यवस्थाएं उबाने वाली हो जाती हैं। तो ईश्वर ने कहा कि आइंस्टीन हो जा, और आइंस्टीन हुआ! एंड ही ब्राट दि ओल्ड केऑस बैक। और वह जो पुरानी अराजकता थी न्यूटन के पहले, आइंस्टीन ने वापस खड़ी कर दी। उसने सब नियम डगमगा दिए। सब अस्तव्यस्त हो गया। न्यूटन ने बामुश्किल, दो और दो चार होते हैं, यह सिद्ध किया। और आइंस्टीन ने कहा कि दो और दो चार कभी हो ही नहीं सकते। सब अस्तव्यस्त हो गया।

और आइंस्टीन ने भी जो कहा, वह रोज बदलना पड़ता है, रोज बदलना पड़ता है। विज्ञान रोज बदलता रहेगा; क्योंकि विज्ञान जिसकी खोज करता है, वह जगत ही रोज बदलता चला जाता है। जिस चीज की हम खोज कर रहे हों अगर वह रोज बदलती जाती हो, तो उसका कोई भी फोटोग्राफ ज्यादा देर तक काम का नहीं रहेगा। दो- चार दिन बाद हमें पता चलेगा कि यह तो किसी और का चित्र है। चित्र तो ठहर जाएंगे और जगत चलता चला जाएगा। इसलिए जगत का कोई चित्र आत्यंतिक, अल्टीमेट नहीं हो सकता। आइंस्टीन ने कहा है कि जगत का ज्ञान कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता; क्योंकि वह रोज बदलता चला जा रहा है।
यह मामला कुछ ऐसा है कि आपके गांव का जो रास्ता है, स्टेशन पहुंच जाता है; क्योंकि स्टेशन चलती-फिरती नहीं है। कल आप जिस रास्ते से गए, आज भी जाएंगे, वहीं मिल जाएगी। लेकिन अगर स्टेशन चलती-फिरती हो, तो फिर रास्ते तय नहीं रह जाते। तब कभी गलत रास्ते से चला हुआ आदमी भी पहुंच सकता है और कभी सही रास्ते से चला हुआ आदमी भी न पहुंचे। वह तो स्टेशन थिर है, इसलिए रास्ते तय हैं।
अगर जगत ही एक अथिरता है, एक परिवर्तन है, तो उसके कोई नियम थिर नहीं
हो सकते। इसलिए विज्ञान को हर दो, चार, पांच वर्षों में करवट बदल लेनी पड़ती है। तो विज्ञान आज से तीन सौ साल पहले तो कहता था कि सत्य की हमारी खोज है। बर्ट्रेंड रसेल ने अभी कुछ वर्ष पहले कहा था, सत्य की बात बंद कर दो; सिर्फ सत्य के निकट पहुंचने की खोज काफी है। डोंट टाक अबाउट एब्सोल्यूट ट्रुथ, ओनली एप्रॉक्सीमेट ट्रुथ इ.ज इनफ। बस करीब-करीब सत्य।
लेकिन ध्यान रहे, करीब-करीब सत्य कुछ होता है? करीब-करीब प्रेम कुछ होता है? करीब-करीब चोरी कुछ होती है? करीब-करीब सत्य कुछ भी नहीं होता। करीब-करीब सत्य का मतलब यह है, ऐसा असत्य जो अभी काम दे रहा है। कल पता चल जाएगा, काम नहीं देगा। तब दूसरे असत्य से काम लेना पड़ेगा। परसों पता चल जाएगा, फिर तीसरे असत्य से काम लेना पड़ेगा। करीब-करीब सत्य का अर्थ होता है, जो असत्य अभी असत्य सिद्ध नहीं किया जा सका है।
लेकिन यह स्वाभाविक है, यह स्वाभाविक है। क्योंकि जिस विषय से विज्ञान का संबंध है, वही बदलता चला जाता है।
लाओत्से कहता है, एक शाश्वत नियम भी है, एक इटरनल लॉ भी है; वह नहीं बदलता। लेकिन उसके लिए फिर जो-जो बदलता है, उसे छोड़ कर खोजना पड़ेगा। जो भी बदलता है, उसे छोड़ कर खोजना पड़ेगा। इसलिए धर्म के नियम बदलते नहीं। पश्चिम में कई विचारकों को चिंता जन्मती है। बुद्ध ने कुछ कहा, कृष्ण
ने कुछ कहा, या क्राइस्ट ने कुछ कहा। और आज तो हमारे मुल्क में भी बहुत लोगों को पश्चिम का ख्याल महत्वपूर्ण मालूम होगा। कि बुद्ध को मरे ढाई हजार वर्ष हो गए, बुद्ध का सत्य आज भी सत्य कैसे हो सकता है? ठीक है, अगर सौ वर्ष पहले के विज्ञान का सत्य सौ वर्ष बाद सत्य नहीं रह जाता, दस वर्ष पहले का विज्ञान का सत्य दस वर्ष बाद सत्य नहीं रह जाता, तो ढाई हजार साल पहले हुए कृष्ण या बुद्ध या महावीर का सत्य कैसे सत्य रह जाएगा? और उनका कहना ठीक है; क्योंकि जो भी सत्य की तरह वे जानते हैं, वह रोज बदलता चला जाता है। लेकिन उन्हें कृष्ण के सत्य का कोई पता नहीं है। उन्हें लाओत्से के सत्य का कोई पता नहीं है।
लाओत्से उस सत्य की ही बात कर रहे हैं, जहां परिवर्तित होने वाला सब छोड़ दिया गया है। वह शर्त पहले ही पूरी कर दी गई है। जो बदलने की धारा है, उस धारा को छोड़ ही दिया गया है। धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं है। धर्म का तो उससे लेना-देना है, जिसमें यह बदलती धारा बह रही थी। बादलों से कोई प्रयोजन नहीं है; आकाश की खोज है, जिसमें बादल बनते हैं और बिगड़ते हैं। निश्चित ही, कोई आदमी कह सकता है कि बादल सुबह देखो, दोपहर वही नहीं रह जाते, सांझ वही नहीं रह जाते। और एक से बादल तो दुबारा कभी देखे नहीं जा सकते। यह तुम किस आकाश की बात कर रहे हो? जब बादल बदल जाते हैं, तो आकाश भी बदल जाता होगा। तुम उसी आकाश की बात किए चले जाते हो। लेकिन आकाश सनातन है। जो भी बदलता है, वह आकाश में है; लेकिन आकाश नहीं है वह। जो भी बदलता है, वह आकाश में ही बदलता है; पर आकाश नहीं बदलता।
इस आकाश की जो खोज है, इस इनर स्पेस की, अंतर-आकाश की जो खोज है, इसे लाओत्से कहता है, जब भी कोई पा लेता है, तो उसने अपनी नियति पा ली। उसने पा

लिया, जिसे पाने पर सब मिल जाता है और जिसे न पाने पर कुछ भी नहीं मिलता। उसने अपना घर पा लिया। उसने खोज लिया घर, अब सरायों में ठहरने की जरूरत न रही। अब वह अपने घर आ गया है। अब कहीं जाने का कोई सवाल नहीं है। अब वह जगह मिल गई, जिसकी तलाश थी।
हर आदमी तलाश में है, पता हो उसे, न हो पता। हो सकता है, यह भी पता न हो, क्या खोज रहा है। सच तो यही है कि पता नहीं है कि क्या खोज रहे हैं। अगर कोई आदमी आपसे पूछे कि कहें ईमानदारी से, क्या खोज रहे हैं? तो आपको बड़ी बेचैनी मालूम होगी। और इसीलिए इस तरह के अशिष्ट प्रश्न कोई किसी से पूछता नहीं, क्योंकि ये बेचैनी पैदा करते हैं। और अगर कोई जोर से पूछता ही चला जाए, तो थोड़ी देर में घबड़ाहट शुरू हो जाएगी। आप क्या खोज रहे हैं? दूसरे दिन सुबह बिस्तर से उठना मुश्किल हो जाएगा--किसलिए उठ रहे हैं? क्या है खोज? कुछ पता नहीं है, क्या खोज रहे हैं। लेकिन खोज जरूर रहे हैं कुछ--कुछ अनजान। कोई चीज धकाए चली जाती है।
और फिर ऐसा भी नहीं है कि इस खोज में कुछ मिलता न हो। बहुत कुछ मिलता है; और तृप्ति बिल्कुल नहीं होती। इस जगत का मजा यही है कि यहां जो भी चाहो, वह कोशिश करने से मिल ही जाता है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कोशिश करने से मिल ही जाता है। और जब मिल जाता है, तब पता चलता है कि कोशिश व्यर्थ गई। मिल तो गया; कुछ मिला नहीं। जो आदमी अपनी सब आकांक्षाएं पा ले, उससे ज्यादा दुखी आदमी खोजना फिर मुश्किल है।
थोड़ा सोचें। अगर परमात्मा एकदम प्रकट हो जाए आज इस भवन में, और आपसे कहे कि आपकी सब इच्छाएं पूरी हो गईं! आपसे ज्यादा दुखी आदमी इस पृथ्वी पर फिर दूसरे नहीं होंगे। क्या करिएगा? कहां जाइएगा फिर? श्वास लेने की भी तो जरूरत न रह जाएगी। मरने के सिवाय कोई उपाय न बचेगा। यही होती है हालत। जो भी पा लेता है अपनी आकांक्षाओं को, वह अचानक पाता है कि अब कुछ बचा नहीं है। अब क्या करना है? और तृप्ति बिल्कुल नहीं होगी। सब मिल जाए, तो भी तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि अभी तक हमने उसे तो खोजने की शुरुआत ही नहीं की है, जो नियति है। नियति का अर्थ होता है, डेस्टिनी का अर्थ होता हैः जिसे पा लेने पर तृप्ति हो जाए।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना आप। उसे नियति नहीं कहते, जिसे आप पाना चाहते हैं। आप जिसे पाना चाहते हैं, वह नियति हो भी सकती है, न भी हो। पता तो तब चलता है, जब वह आपको मिल जाए। जब आपको मिल जाए, तब अगर आपको कोई तृप्ति न हो, तो समझना कि वह नियति नहीं थी। नियति का अर्थ ही यह है कि उस क्षण आप उस परम बिंदु पर पहुंच गए, जहां फिर कोई और इच्छा नहीं है, जहां फिर कोई खोज नहीं है, और तृप्ति है। जहां कोई भविष्य नहीं है, और परम तृप्ति है।
लेकिन हम जो-जो चाहते हैं... । एक आदमी यश चाहता है, यश मिल जाता है एक दिन। और तब वह पाता है कि क्या है मेरे हाथ में, कुछ भी नहीं है। पास-पड़ोस के लोग मेरे संबंध में अच्छा सोचते हैं, बस यही मेरी मुट्ठी में है, और तो कुछ भी नहीं है। एक आदमी धन इकट्ठा कर लेता है। और एक दिन फिर धन को देखता है और पाता है कि पूरा जीवन चुका दिया इन टुकड़ों को इकट्ठा करने में। अब ये इकट्ठे हो गए। अब इनको गले में बांध कर फांसी ही लगाई जा सकती है, और कुछ नहीं किया जा सकता।
बर्नार्ड शॉ ने लिखा है कि जिन लोगों ने कहा है कि नरक में बहुत सताए जाओगे, वे बहुत कल्पनाशील नहीं थे। बर्नार्ड शॉ ने कहा, अगर मेरे बस में हो नरक की तस्वीर देनी तो मैं दूंगा ऐसी तस्वीर कि जहां तुम जो चाहोगे वह उसी वक्त मिल जाएगा। इससे बड़ा नरक दूसरा नहीं हो सकता। तुमने चाहा नहीं कि मिला नहीं। इधर चाह और उधर पूरी हो गई। और तृप्ति बिल्कुल नहीं होगी, क्योंकि हमारी कोई भी चाह नियति की चाह नहीं है।
हम जो भी चाह रहे हैं, वह शायद हमारी चाह ही नहीं है। एक पड़ोस का आदमी
एक कार खरीद लाता है, और आप में भी एक चाह पैदा हो जाती है कि यह कार मेरे पास भी हो जाए। एक पड़ोस का आदमी एक मकान बना लेता है, और आपकी भी चाह हो जाती है कि आप भी एक मकान बना लें। हम उधार जी रहे हैं, चाहें भी हमारी उधार हैं; वे भी हमारी अपनी नहीं हैं।

नियति का अर्थ है, वह चाह जो आपके स्वभाव में है, जिसको आपने किसी से सीख नहीं लिया है।
इसलिए आज भलीभांति, बाजार में जो व्यापार की कला को जानते हैं, वे भलीभांति जानते हैं कि वह पुराना अर्थशास्त्र का नियम गलत है कि जब लोगों में मांग होती है, तो ही तुम चीजें पैदा करो तो वे बिकेंगी। अब तो लोग भलीभांति जानते हैं कि लोगों की कोई मांग तो है ही नहीं, तुम पहले मांग पैदा करवाओ। इसलिए बाजार में दस साल बाद अगर उत्पत्ति आने वाली हो आपकी, आपका सामान आने वाला हो, तो दस साल पहले से एडवरटाइज करो। अभी बाजार में कोई चीज ही नहीं है। पहले वासना पैदा कर दो।
और लोग उधार वासना से जीते हैं। दूसरे उनको पकड़ा देते हैं। फिर वे उसी
के पीछे दौड़ने लगते हैं। और जीवन भर आदमी ऐसा दौड़ता रहता है। इसलिए जब आपकी वासना पूरी होती है, तब आप पाते हैंः यह तो कुछ भी न हुआ, यह तो राख हाथ लग गई। अब मैं क्या करूं? लेकिन सोचने की अभी फुर्सत नहीं है। क्योंकि तब तक और लोग कुछ और पकड़ा देते हैं और आप भागे चले जाते हैं।
हर आदमी मरते वक्त जानता है कि मैं न मालूम किन-किन के पीछे दौड़ता रहा,
न मालूम किन-किन की इच्छाएं मैं पूरी करने की कोशिश करता रहा! मेरी भी कोई अपनी नियति थी? मैं भी कुछ पाने को इस जगत में था? मेरा भी कोई होने का क्रम था? अवसर तो खो गया, समय तो व्यतीत हो गया--कभी कपड़े जुटाने में, कभी मकान बनाने में, कभी नाम-यश कमाने में। लेकिन मेरी नियति क्या थी? मैं क्या पाने को था?
लाओत्से कहता है, नियति तो उसी दिन उपलब्ध होती है, जिस दिन कोई इस शाश्वत नियम को, इस आकाश को अपने भीतर पा लेता है।
"स्वयं की नियति को पुनः उपलब्ध हो जाना शाश्वत नियम को पा लेना है। शाश्वत नियम को जानना ही ज्ञान से आलोकित होना है। और शाश्वत नियम का अज्ञान ही समस्त विपत्तियों का जनक है।"
यह बादलों के पीछे जो भागने से विपत्तियां पैदा हो रही हैं; यह जो इतना दुख आदमी उठाता है उन सुखों को पाने के लिए, जिनको पाने पर कोई सुख नहीं मिलता; इतना जो दुख उठाता है उन मंजिलों पर पहुंचने के लिए, जहां पहुंच कर सिवाय थकान के कुछ हाथ नहीं लगता; और हर मंजिल एक पड़ाव सिद्ध होती है फिर किसी नई मंजिल की खोज के लिए; यह इतना दुख, लाओत्से कहता है, उस शाश्वत नियम को न जानने का परिणाम है।
काश, हम जान सकें कि हमारे भीतर कोई एक ऐसा तत्व भी है, अपरिवर्तनीय, अमृत, सदा; और हम उसके साथ अपना संबंध जोड़ लें, एक हो जाएं! फिर कितने ही बादल घिरें, और कितनी ही आंधियां उठें, फिर कोई अंतर न पड़ेगा, फिर कोई अंतर न पड़ेगा। फिर जरा सा कंपन भी भीतर पैदा न होगा। बादल आएंगे और चले जाएंगे, तूफान उठेंगे और बिखर जाएंगे, और भीतर सघन शांति बनी रहेगी।
इस सघन शांति के सूत्र को पाने के लिए तीन बातें आखिरी मैं आपसे कहूं।
एक, सदा अपने भीतर और अपने बाहर भी, क्या परिवर्तित हो रहा है, वह, और क्या परिवर्तित नहीं होता, इसमें विवेक को, डिस्क्रिमिनेशन को बनाए रखें। निरंतर यह ख्याल रखें कि महत्वपूर्ण वही है, जो बदलता नहीं है। जो बदल जाता है, वह महत्वपूर्ण नहीं है, वह गैर-महत्वपूर्ण है। अपने भीतर भी जो बदल जाता है, उसका कोई मूल्य नहीं है। जो नहीं बदलता, वही मूल्यवान है। उठते, बैठते, चलते, उसका ही स्मरण रखें। रास्ते पर चल रहे हैं, तो ध्यान रखें भीतर उसका जो नहीं चलता। जो चल रहा है, वह ठीक है। भोजन कर रहे हैं, ध्यान रखें उसका जो भोजन नहीं करता और जिसे भूख भी नहीं लगती। ठीक है, शरीर को भोजन देना है, उसे देते रहें। रात बिस्तर पर गए हैं सोने को, जानें कि शरीर थक गया है और सोने जा रहा है, लेकिन वह भी है भीतर जो कभी नहीं सोता। हर क्रिया में उसका स्मरण रखें, जो साक्षी है, जो देख रहा है।
भूख लगती है, तो हम तत्काल कहते हैं, मुझे भूख लगी। लेकिन भला बाहर ऐसा कहना पड़े, भीतर ऐसा स्मरण रखें कि मुझे पता चल रहा है कि शरीर को भूख लगी, मुझे पता चल रहा है कि पेट को भूख लगी। अपने को द्रष्टा से ज्यादा नहीं, कर्ता कभी न मानें। क्योंकि जैसे ही कर्ता माना, कर्म से संबंध जुड़ गया। जब आपको भूख लगेगी, तो फिर आपको ही भोजन भी करना पड़ेगा। जब आप जानेंगे कि शरीर को भूख लगी, तो आप भोजन में भी जानेंगे कि शरीर ने ही भोजन किया।

और पीछे एक रिक्त द्रष्टा, एक ऑनलुकर, एक दर्शक, भीतर देखने वाला पैदा
हो जाएगा। और तब सारी जिंदगी एक नाटक हो जाती है। तब क्रिया का जगत एक नाटक हो जाता है। और वह निष्क्रियता ही आपका अस्तित्व बन जाती है। निष्क्रियता को उपलब्ध करें, निष्क्रियता को सदा स्मरण रखें। ध्यान को सदा निष्क्रियता पर दौड़ाते रहें। ध्यान जिस चीज पर दें, वह दिखाई पड़ने लगता है।
इस कमरे में हम बैठे हैं। इसको मनोवैज्ञानिक गेस्टाल्ट कहते हैं। इस मकान में हम बैठे हैं। एक बार इस तरह देखें कि यह मकान दीवारों से बना है। ध्यान दीवारों पर दें। बीच-बीच में दरवाजे भी दिखाई पड़ेंगे, लेकिन वे केवल दीवारों के बीच-बीच में होंगे। दीवारें महत्वपूर्ण हैं। ध्यान दीवारों पर दें। फिर अचानक, ख्याल भूल जाएं कि मकान दीवारों से बना है, ख्याल करें कि मकान तो एक रिक्तता है; मकान दरवाजों से बना है, दीवारें बीच-बीच में हैं। और तब आप पाएंगे कि इसी कमरे के भीतर आपको दो तरह के अनुभव होंगे। शायद यह कठिन मालूम पड़े, तो कुछ ऐसा करेंः अपनी तीन अंगुलियां अपनी आंख के सामने कर लें और ध्यान दें कि बीच की अंगुली केंद्र है। बीच की अंगुली पर ध्यान दें, कि वह केंद्र है, दोनों अंगुलियां उसके आजू-बाजू हैं। और देखें, एक-दो मिनट ऐसे देखें। फिर अचानक ध्यान को बदलें, वहीं आंख रखें, दोनों अंगुलियों पर ध्यान दें कि दोनों अंगुलियां महत्वपूर्ण हैं, बीच की अंगुली बस बीच में है। और तब आपको पता चलेगा कि इतने से फर्क से आपके भीतर सब बदलाहट हो जाती है। जब आप बीच की अंगुली पर ध्यान देंगे, तो दोनों अंगुलियां बिल्कुल फीकी, मुर्दा मालूम पड़ेंगी, जैसे हैं ही नहीं। कहीं दूर मालूम पड़ेंगी। जब आप दोनों अंगुलियों पर ध्यान देंगे, तो बीच की अंगुली गौण हो जाएगी।
या ऐसा करें। एक हाथ नीचे रखें, अपना दूसरा हाथ ऊपर रखें और दूसरे हाथ
को चलाएं। और ध्यान दें कि मैं, जो हाथ चल रहा है, उसमें हूं। तो आपको दूसरा हाथ बिल्कुल पराया मालूम पड़ेगा, अपना नहीं है। फिर ध्यान को बदल दें और ख्याल करें कि जो हाथ ठहरा हुआ है, वह मैं हूं; और हाथ को चलाएं। तब आप फौरन पाएंगे कि जो हाथ ठहरा हुआ है, वह आप हैं; जो हाथ चल रहा है, वह किसी और का है।
यह इसलिए कह रहा हूं कि ध्यान की बदलाहट सिर्फ फोकस बदलने की बात है, सिर्फ फोकस बदलने की। ये दोनों हाथ मेरे हैं। और आपको पता भी नहीं चलेगा कि मैं इस समय किस हाथ से अपने को जोड़े हुए हूं। जो हाथ ऊपर चल रहा है, अगर मैंने उससे अपने को जोड़ा है, तो नीचे का हाथ पराया हो गया। वह मैं नहीं हूं। और आप बराबर अनुभव करेंगे कि नीचे का हाथ आप नहीं हैं; जो चल रहा है, वह आप हैं। फिर ठहरे हुए के साथ ध्यान को बदल दें। बाहर कोई बदलाहट नहीं हो रही, लेकिन भीतर फोकस बदल गया। ध्यान की धारा ऊपर के हाथ में बह रही थी, वह नीचे के हाथ में चली गई। ऊपर का हाथ दूसरे का मालूम पड़ने लगेगा।
जब आप भोजन कर रहे हैं और सोचते हैं, मैं भोजन कर रहा हूं, तब एक हालत
है ध्यान की। और जब आप कहते हैं, अनुभव करते हैं कि भोजन शरीर कर रहा है, मैं देख रहा हूं, तब ध्यान का फोकस बदल गया, ध्यान दूसरा हो गया। जब आप रास्ते पर चलते वक्त सोचते हैं, मैं चल रहा हूं, तो ध्यान एक है। अगर आप ऐसा ध्यान कर पाएं कि मैं देख रहा हूं और शरीर चल रहा है, तत्काल फोकस बदल गया, गेस्टाल्ट बदल गया, पूरा ढांचा बदल गया।
लाओत्से की निष्क्रियता को अगर अनुभव करना हो, तो अपने भीतर जो आकाश है, सदा उस पर ध्यान रखें, और जो-जो बादल हैं, उन पर ध्यान मत रखें। उनको उड़ने दें, चलने दें, लेकिन ध्यान आकाश पर हो।
क्या है आपके भीतर आकाश? भूख लगती है, यह एक बादल है; आता है, चला जाता है। क्रोध आता है, यह एक बादल है; आता है, चला जाता है। घृणा आती है, यह एक बादल है; प्रेम आता है, यह एक बादल है; आता है, चला जाता है। दुख या सुख, सम्मान या अपमान, कुछ भी आता है, चला जाता है बादल की तरह। कौन है जो इस सबको देखता रहता है? कौन है भीतर जो जाग कर इस सबको देखता रहता है? ध्यान उसका रखें। सारी ध्यान की धारा को उससे जोड़ दें। देखने वाले के साथ एक हो जाएं। करने वाले के साथ संबंध छोड़ दें; द्रष्टा के साथ एक हो जाएं। और तत्काल आप पाएंगे कि आप भीतर उससे जुड़ गए, जो आकाश है--निष्क्रिय। इस

निष्क्रिय के साथ जुड़ते ही जीवन के सारे दुख विसर्जित हो जाते हैं; मृत्यु, परिवर्तन, सब स्वप्न हो जाते हैं।
लाओत्से कहता है, यही है शाश्वत नियम।
आज इतना ही। लेकिन बैठें। पांच मिनट कीर्तन करके जाएं। और कीर्तन में
भी ख्याल रखें, जो किया जा रहा है, वह आप नहीं हैं; जो हो रहा है, वह आप नहीं हैं।
बैठे रहें! जिनको कीर्तन करना है, वे ऊपर आ जाएं या नीचे आ जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
अड़तीसवां प्रवचन

ताओ का द्वार--सहिष्णुता व निष्पक्षता

Chapter 16 : Sutra 2

Knowing The Eternal Law

He who knows the eternal law is tolerant; Being tolerant, he is impartial;
Being impartial, he is kingly;
Being kingly, he is in accord with nature; Being in accord with nature,
he is in accord with Tao;
Being in accord with Tao, he is eternal;
And his whole life is preserved from harm.

अध्याय 16 : सूत्र 2

शाश्वत नियम का ज्ञान

जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है;
सहिष्णु होकर वह निष्पक्ष हो जाता है;
निष्पक्ष होकर वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है;
इस गरिमा के साथ प्रतिष्ठित हो वह हो जाता है स्वभाव के साथ अनुरूप; स्वभाव के अनुरूप हुआ वह ताओ में प्रविष्ट होता है;
ताओ में प्रविष्ट वह अविनाशी है;
और इस प्रकार उसका समग्र जीवन दुख के पार हो जाता है।

उन्नीस सौ उनसठ में एक बहुत अनूठी नोबल प्राइज दो अमरीकी वैज्ञानिकों
को दी गई। एक का नाम है डाक्टर सेग्रेल और दूसरे का नाम है डाक्टर चैंबरलेन। अनूठी इसलिए कि उन्होंने जो खोज की, वह अब तक की सारी वैज्ञानिक व्यवस्था के प्रतिकूल है। और जिस कारण से उन्हें नोबल पुरस्कार मिला, वह कारण, अब तक के विज्ञान का जो भवन है, उस पूरे भवन को भूमिसात कर देता है। उन्होंने जो बात कही, वह लाओत्से के तो करीब पड़ती है, न्यूटन के करीब नहीं पड़ती। उन्होंने जो खोज की, उससे गीता का मेल बैठ सकता है, मार्क्स का मेल नहीं बैठ सकता।
वह खोज है एंटी-प्रोटोन की। इन दोनों वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया
है कि जगत में पदार्थ है, मैटर है, तो एंटी-मैटर भी होना जरूरी है। क्योंकि इस जगत में कोई भी चीज बिना विपरीत के नहीं हो सकती है। यहां प्रकाश है, तो अंधकार है। और जन्म है, तो मृत्यु है। अगर पदार्थ है, मैटर है, तो एंटी- मैटर, पदार्थ के प्रतिकूल भी कुछ होना चाहिए। और उन्होंने जो कहा, वह सिर्फ कहा नहीं, उसे सिद्ध कर लिया। उनका कहना है, इस पदार्थ के बीच भी, जहां प्रोटोन काम कर रहा है, जहां पदार्थ के अन्यतम आधारभूत अणु काम कर रहे हैं, वहां एंटी-प्रोटोन, ठीक उनके विपरीत भी एक शक्ति काम कर रही है। वह शक्ति हमें साधारणतः दिखाई नहीं पड़ती और उसका हमें कोई अनुभव नहीं होता। लेकिन इस जगत में कोई भी चीज बिना प्रतिकूल के नहीं हो सकती है। दि अपोजिट इ.ज इनएविटेबल। वह जो प्रतिकूल है, वह अनिवार्य है, अपरिहार्य है। उससे बचा नहीं जा सकता। उन प्रतिकूलों से मिल कर ही जगत निर्मित होता है। उसे सेग्रेल और चैंबरलेन ने एंटी-प्रोटोन कहा है, या एंटी-मैटर कहा है। और लाओत्से, कृष्ण, बुद्ध और क्राइस्ट उसे दूसरे नाम देते रहे हैं--आत्मा कहें, शाश्वत नियम कहें, मोक्ष कहें, परमात्मा कहें। एक बात उन सब की समान

है कि वह इस संसार के प्रतिकूल है, इस संसार से बिल्कुल विपरीत है। और समस्त धर्म की अब तक की खोज यही है कि संसार नहीं हो सकता, अगर इसके प्रतिकूल कोई संसार न हो।
बहुत मजे की बात है कि सेग्रेल और चैंबरलेन ने यह भी अनुमान दिया है...
।
यह तो अभी अनुमान है। जो उन्होंने सिद्ध किया, वह मैंने आपसे कहाः एंटी-मैटर के बिना मैटर नहीं हो सकता। उसके उन्होंने वैज्ञानिक प्रमाण दिए। उस पर ही उन्हें नोबल पुरस्कार मिला है। उनकी एक परिकल्पना भी है, जो कभी सही हो सकती है। क्योंकि वह परिकल्पना भी इसी सिद्धांत पर आधारित है, जो कि सिद्ध हो गया है।
उनका कहना है कि जैसे हमारे इस जगत में नियम हैं--जैसे ग्रेविटेशन नीचे की तरफ खींचता है, पानी नीचे की तरफ बहता है, आग ऊपर की तरफ उठती है, प्रोटोन एक खास परिक्रमा में घूमते हैं--इन दोनों वैज्ञानिकों का कहना है कि ठीक इस जगत को बैलेंस करने के लिए कहीं एक जगत और होना ही चाहिए, जो इसके बिल्कुल प्रतिकूल हो, जहां पानी ऊपर की तरफ जाता हो और जहां आग नीचे की तरफ बहती हो और जहां प्रोटोन उलटी परिक्रमा करते हों।
यह तो अभी परिकल्पना है। लेकिन यह सबल है; क्योंकि जिन आदमियों ने कही है, वे कोई मिस्टिक, कोई रहस्यवादी नहीं हैं, कोई कवि नहीं हैं। और उनके कहने का कारण भी है, क्योंकि इस जगत में भी विपरीत के बिना कुछ नहीं चलता। तो इस बात की संभावना हो सकती है कि जिस जगत को हम जानते हैं, इससे विपरीत जगत भी हो, तभी यह पूरा विश्व संतुलित रह सके, तराजू के दोनों पलड़े संतुलित रह सकें। विज्ञान कब उसे सिद्ध कर पाएगा, नहीं कहा जा सकता। लेकिन धर्म सदा से ही यह मानता रहा है कि संसार के प्रतिकूल मोक्ष की संभावना है। ठीक संसार से विपरीत नियम वहां काम करते हैं।
जीसस ने कहा है, जो यहां प्रथम है, वहां अंतिम हो जाएगा; जो यहां अंतिम है, वहां प्रथम हो जाएगा। जो यहां इकट्ठा करेगा, वहां उससे छीन लिया जाएगा; जो यहां बांट देगा, वहां उसे मिल जाएगा।
यह कवि की भाषा में विपरीत की सूचना है कि वहां विपरीत नियम काम करेंगेः जो यहां अंतिम है, वहां प्रथम होगा। वहां यही नियम काम नहीं करेंगे; इनसे ठीक विपरीत नियम काम करेंगे। जीसस की भाषा कवि की भाषा है। समस्त धर्म काव्य की भाषा में बोला गया है। शायद उचित भी यही है। क्योंकि विज्ञान की भाषा में जीवंतता खो जाती है, सुगंध तिरोहित हो जाती है, लय नष्ट हो जाती है, गीत समाप्त हो जाता है। मुर्दा आंकड़े रह जाते हैं।
और लाओत्से जिसे शाश्वत नियम कह रहा है, उस नियम को हम संक्षेप में ख्याल में ले लें, तो उसके सूत्र में प्रवेश हो जाए।
वह कह रहा है, एक तो जगत है परिवर्तन का, जहां सब चीजें बदलती हैं। लेकिन यही जगत नहीं है काफी। बल्कि इस जगत के होने के लिए भी एक जगत चाहिए, जहां परिवर्तन न हो, इससे विपरीत जहां शाश्वतता हो, जहां इटरनिटी हो, जहां कोई चीज बदलती न हो, जहां कोई चीज तरंगित न होती हो, जहां सब शून्य और परम शांत हो, जहां कोई भी कंपन न हो।
यहां सब चीजें कंपती हुई हैं। अगर हम विज्ञान से पूछें, तो विज्ञान कहेगा, इस जगत में जो कुछ भी है, सभी कुछ वाइब्रेशंस हैं, तरंगें हैं। तरंग का अर्थ है सभी कुछ कंपित है, सब कंप रहा है, हिल रहा है। कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, एक क्षण भी ठहरी हुई नहीं है। जितनी देर में मैं बोलता हूं, उतनी देर में भी वह बदल जाती है। यह जगत एक गहरी बदलाहट है। इसे हम जगत न कहें, एक बदलाहट की प्रक्रिया ही कहें--एक प्रवाह, एक फ्लक्स।
लाओत्से कहता है, ठीक इस जगत के नियम के प्रतिकूल, इसी जगत में छिपा हुआ वह सूत्र भी है, जहां सब सदा ठहरा हुआ है, जहां कुछ भी बदलता नहीं, जहां कोई तरंग नहीं है--निस्तरंग, वेवलेस! उसे वह कहता है शाश्वत नियम! और अगर यह परिवर्तन संभव होता है, तो उसी शाश्वत नियम के संतुलन में। अगर वह शाश्वत नियम नहीं है, तो परिवर्तन भी संभव नहीं है। और हर चीज विपरीत से निर्मित है। तो आपके भीतर शरीर भी है और आपके भीतर अशरीर भी है। मैटर भी और एंटी-मैटर भी, प्रोटोन भी और एंटी-प्रोटोन भी। आपके भीतर परिवर्तन भी है, और वह भी जो शाश्वत है।

लाओत्से कहता है, जो परिवर्तन को ही अपना होना समझ लेता है, वह विक्षिप्त है। वह पीड़ित होगा, दुखी होगा, परेशान होगा। क्योंकि जिससे वह अपने को जोड़ रहा है, वह एक क्षण भी ठहरा हुआ नहीं है। वह उसके साथ घसिटेगा; और जितनी भी आशाएं निर्मित करेगा, सभी धूल-धूसरित हो जाएंगी। क्योंकि परिवर्तन के साथ कैसी आशा? परिवर्तन का कोई भरोसा ही नहीं है। परिवर्तन का अर्थ ही है कि जिसका कोई आश्वासन नहीं है। परिवर्तन का अर्थ ही है कि जहां हम घर नहीं बना सकते--रेत पर घर नहीं बना सकते। वहां सब बदल रहा है। और इसके पहले कि हम घर की बुनियादें रखेंगे, वह भूमि बदल जाएगी जिस पर हमने बुनियादें खोदनी चाही थीं। और जब तक हम बुनियाद के पत्थर रख पाएंगे, तब तक वह आधार तिरोहित हो जाएगा जिस पर हमने सहारा लिया था।
इसलिए जो भी व्यक्ति परिवर्तन के जगत में अपने को जोड़ेगा, दुख उसकी नियति है। दुख का अर्थ हैः उसकी सभी आशाएं टूट जाएंगी और उसके सभी सपने खंडित हो जाएंगे। और जितने भी इंद्रधनुष वह फैलाएगा आशाओं के, अपेक्षाओं के, उतने ही उसके हाथ रिक्त होंगे; और उतनी ही दीनता उसके ऊपर होगी; उतनी ही पीड़ा, उतना ही संताप उसके जीवन का अनिवार्य अंग बन जाएगा। दुख का अर्थ है परिवर्तन से अपने को जोड़ लेना; आनंद का अर्थ है शाश्वत से अपने को संयुक्त कर लेना। दोनों हैं। हमारे ऊपर निर्भर है कि हम किससे अपने को जोड़ लेते हैं।
शाश्वत नियम का अर्थ हैः जो भी परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है, उससे विपरीत; जो भी दिखाई पड़ रहा है, उससे विपरीत। दिखाई पड़ने वाले में जो छिपा है, अदृश्य है। और जब हम छूते हैं, तो जो छूने में आता है, वह नहीं; बल्कि जो छूने में नहीं आता, वह।
एक शब्द मैं बोलता हूं या वीणा का एक तार छेड़ देता हूं, आवाज गूंज उठती है। एक स्वर कंपित होता है, आकाश उससे आंदोलित होता है, आपके कान पर उसका संघात पड़ता है, आपके हृदय में भी उसकी तरंग प्रवेश कर जाती है। फिर थोड़ी देर में वह स्वर खो जाएगा; क्योंकि स्वर परिवर्तन का हिस्सा है। थोड़ी देर पहले नहीं था; अब है; थोड़ी देर बाद फिर नहीं हो जाएगा। थोड़ी देर बाद स्वर खो जाएगा, झंकार लीन हो जाएगी, शब्द शून्य हो जाएगा। फिर सन्नाटा छा जाएगा। तार कंपेगा, ठहरता जाएगा, ठहर जाएगा। हृदय कंपित होगा, रुक जाएगा। स्वर सुनाई पड़ेगा; फिर शांति, सन्नाटा रह जाएगा।
स्वर परिवर्तन है। स्वर के पहले जो शून्यता थी, वह शाश्वतता है। और स्वर के बाद भी फिर जो शून्यता घिर जाएगी, वह शाश्वतता है। और स्वर भी जिस शून्यता में तरंगित हुआ, स्वर भी जिस शून्यता में गूंजा, वह भी शाश्वत है। प्रत्येक घटना शून्य में घटती है। शून्य से ही जन्मती है और शून्य में ही लीन हो जाती है।
लाओत्से कहता है, इस शाश्वत को जान लेना ही ताओ है। इस शाश्वत को जान लेना ही धर्म है।
अब हम उसके सूत्र को समझें।
"जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है। ही हू नोज दि इटरनल लॉ इ.ज टॉलरेंट।"
शायद यह कहना ठीक नहीं कि जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु
हो जाता है। कहना यही ठीक होगा कि ही हू नोज दि इटरनल लॉ इ.ज टॉलरेंट। हो जाता है नहीं, जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु है। उसे कुछ करना नहीं पड़ता सहिष्णु होने के लिए। शाश्वत को जानते ही सहिष्णुता आ जाती है। क्यों? हमारी असहिष्णुता क्या है? हमारा अधैर्य क्या है?
वह जो परिवर्तित हो रहा है, वह कहीं परिवर्तित न हो जाए, यही तो हमारा अधैर्य है। वह जो बदल रहा है, वह कहीं बदल ही न जाए, यही तो हमारा संताप है। वह जो बदल रहा है, वह भी न बदले, यह हमारी आकांक्षा है। इसलिए हम सब बांध कर जीना चाहते हैंः कुछ भी बदल न जाए।
मां का बेटा बड़ा हो रहा है। वह खुद उसे बड़ा कर रही है। लेकिन जैसे-जैसे बेटा बड़ा हो रहा है, मां से दूर जा रहा है। बड़े होने का अनिवार्य अंग है। वह मां ही उसे बड़ा कर रही है; अर्थात मां ही उसे अपने से दूर भेज रही है। फिर छाती पीटेगी, फिर रोएगी। लेकिन बेटे को बड़ा करना होगा। प्रेम बेटे को बड़ा करेगा। और जो प्रेम बेटे को बड़ा करेगा, बेटा उसी प्रेम पर पीठ करके एक दिन

चला जाएगा। तो मां जब बेटे को बड़ा कर रही है, तब वह बड़े सपने बांध रही है कि यह प्रेम सदा उस पर बरसता रहेगा! और उसने इतना किया है, यह बेटा भी उसके लिए इतना ही करेगा! हजार-हजार सपने बनाएगी। फिर वे सब सपने पड़े रह जाएंगे और बिखर जाएंगे।
वह जो परिवर्तित हो रहा था, उसके साथ कोई भी आशाएं बांधीं, तो कष्ट होगा। प्रेम भी एक बहाव है। और गंगा एक ही घाट पर नहीं रुकी रह सकती। और प्रेम भी एक ही घाट पर रुका नहीं रह सकता। आज मां के साथ प्रेम है, कल किसी और के साथ होगा। आज मां बांध कर दुखी होगी; कल पत्नी बांधने लगेगी और दुखी होगी। जो भी बांधेगा, वह दुखी होगा। परिवर्तन को बांधने की जो भी चेष्टा करेगा, वह दुखी होगा। फिर असहिष्णुता पैदा होगी, फिर बेचैनी पैदा होगी। फिर सहने की क्षमता बिल्कुल कम हो जाएगी।
हम सब असहिष्णु हैं, हम कुछ भी सह नहीं सकते। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं और मैं जिसे प्रेम करता हूं वह किसी दूसरे की तरफ प्रेम भरी आंख से देख ले, तो मैं विक्षिप्त हो जाता हूं। सह नहीं पाता।
लाओत्से कहता है, जो इस शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु है। क्योंकि वह जानता है, परिवर्तन के जगत में जो भी है, वह सभी परिवर्तित होता है। वहां कुछ भी ठहरता नहीं। वहां प्रेम भी ठहरता नहीं। वहां कोई आशा बांध कर नहीं जीना चाहिए। कोई जीए, तो दुखी होगा।
आप उलटे-सीधे चलेंगे, गिर पड़ेंगे, पैर टूट जाएगा, तो आप ग्रेविटेशन को, गुरुत्वाकर्षण को गाली नहीं दे सकते और न किसी अदालत में मुकदमा चला सकते हैं। और न आप परमात्मा से यह कह सकते हैं कि कैसी पृथ्वी तूने बनाई कि जरा ही संतुलन खोओ कि पैर टूट जाते हैं। यह गुरुत्वाकर्षण न होता तो अच्छा था! गुरुत्वाकर्षण आपका पैर नहीं तोड़ता; नियम को न जान कर आप जो करते हैं, उससे पैर टूट जाता है। आप सम्हल कर चलते रहें तो गुरुत्वाकर्षण आपके पैर को तोड़ता नहीं, बल्कि सच तो यह है कि गुरुत्वाकर्षण के कारण ही आप चल पाते हैं। नहीं तो चल ही नहीं सकेंगे।
नियम को जो जान लेता है, वह नियम के विपरीत आशाएं नहीं बांधता। जो जान लेता है कि परिवर्तन का नियम ही कहता है कि कुछ भी ठहरेगा नहीं। इसलिए जहां भी मैं ठहरने की इच्छा करूंगा, वहीं कठिनाई और जिच पैदा हो जाएगी। वहीं ग्रंथि बन जाएगी, वहीं अड़चन खड़ी हो जाएगी। जो व्यक्ति शाश्वत को जान लेता है, वह परिवर्तन को पहचान कर सहिष्णु हो जाता है। आज सम्मान है, कल अपमान है। तो सम्मान को पकड़ कर नहीं बैठता; जानता है कि सम्मान आज है, कल अपमान हो सकता है। आज आदर है, कल अनादर हो सकता है। क्योंकि यहां कोई भी चीज ठहरती नहीं, और आदर थिर नहीं हो सकता। और अनादर भी थिर नहीं होगा। वह भी आज है और कल नहीं हो जाएगा। जब ऐसा कोई देख पाता है, तो असहिष्णुता कैसी?
आप कल मुझे सम्मान दे गए, आज गालियां लेकर आ गए। असहिष्णुता पैदा होती है, क्योंकि मैं सोचता था, आज भी सम्मान लेकर ही आएंगे। आपके कारण नहीं, आपकी गालियों के कारण कोई पीड़ा नहीं पैदा होती; मेरी भ्रांत अपेक्षा टूटती है, इसलिए। क्योंकि मैं सोचता था, मान कर चलता था कि कल जो पैर छू गया, वह आज भी पैर ही छूने आएगा।
किसने कहा था मुझे कि यह आशा मैं बांधूं? और इस बदलते हुए जगत में कौन
सा कारण था इस आशा को बांधने का? कल का गंगा का पानी कितना बह गया! कल के आदमी भी सब बह गए! कल का सम्मान-सत्कार भी बह गया होगा। चौबीस घंटे में क्या नहीं हो गया है! कितने तारे बने और बिखर गए होंगे! और कितने जीवन जन्मे और खो गए होंगे! इस चौबीस घंटे में इतना विराट परिवर्तन सारे जगत में हो रहा है, कि एक आदमी जो मेरे पैर छूने आया था, आज गाली लेकर आ गया, इस परिवर्तन को परिवर्तन जैसा कहने की भी कोई जरूरत है? जहां इतना सब बदल रहा हो, वहां इस आदमी का न बदलना ही हैरानी की बात थी। इसके बदल जाने में तो कोई हैरानी नहीं है। यह तो बिल्कुल नियमानुसार है। लेकिन अगर मेरी अपेक्षा थी कि कल भी आदर मिलेगा, तो मेरी अपेक्षा टूटेगी। और वही पीड़ा और वही मेरा दुख बनेगी। और उसके कारण ही असहिष्णुता पैदा होती है।
सहिष्णु का अर्थ हैः जो भी हो रहा है, परिवर्तन के जगत में होगा ही, इसकी स्वीकृति। जो भी हो रहा है। आज जीवन है, कल मृत्यु होगी। अभी सुबह है,

अभी सांझ होगी। और अभी सब कुछ प्रकाशित था, और अभी सब कुछ अंधेरा हो जाएगा। और सुबह हृदय में फूल खिलते थे, और सांझ राख ही राख भर जाएगी। यह होगा ही। न तो सुबह के फूल को पकड़ने का कोई कारण है और न सांझ की राख को बैठ कर रोने की कोई वजह है।
परिवर्तन के सूत्र को जो ठीक से जान लेता है और अपने को उससे नहीं जोड़ता, बल्कि उससे जोड़ता है जो नहीं बदलता... । सिर्फ एक ही चीज हमारे भीतर नहीं बदलती है, वह है हमारा साक्षी-भाव। सुबह मैंने देखा था कि फूल खिले हैं हृदय में, सब सुगंधित था, सब नृत्य और गीत था। और सांझ देखता हूं कि सब राख हो गई, सुर-ताल सब बंद हो गए, सुगंध का कोई पता नहीं, स्वर्ग के द्वार बंद हो गए और नरक में खड़ा हूं। सब तरफ लपटें हैं और दुर्गंध है; कुछ भी सुबह जैसा नहीं रहा। सिर्फ एक चीज बाकी हैः सुबह भी मैं देखता था, अब भी मैं देखता हूं। सुबह भी मैंने जाना था कि फूल खिले और अब मैं जानता हूं कि राख हाथ में रह गई है। सिर्फ जानने का एक सूत्र शाश्वत है। एक दिन जवान था, एक दिन बूढ़ा हो गया हूं। एक दिन स्वस्थ था, एक दिन अस्वस्थ हो गया हूं। एक दिन आदर के शिखर पर था, एक दिन अनादर की खाई में गिर गया हूं। एक सूत्र शाश्वत है कि एक दिन आदर जानता था, एक दिन अनादर जाना। जानना भर शाश्वत है; बाकी सब बदल जाता है। सिर्फ द्रष्टा शाश्वत है; विटनेसिंग, चैतन्य शाश्वत है।
तो लाओत्से जब कहता है कि शाश्वत नियम को जो जान लेता है वह सहिष्णु
हो जाता है, तो वह यह कह रहा है कि जो साक्षी हो जाता है वह सहिष्णु हो जाता है। साक्षी से इंच भर भी हटे कि पीड़ा और परेशानी का जगत प्रारंभ हुआ। एक क्षण को भी जाना कि परिवर्तन के किसी हिस्से से मैं जुड़ा हूं, एक क्षण को भी तादात्म्य हुआ कि शाश्वत से पतन हो गया।
"जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है; सहिष्णु होकर
वह निष्पक्ष हो जाता है।"
सहिष्णुता का अर्थ हुआः कुछ भी हो, असंतोष का उपाय नहीं है। कुछ भी हो--बेशर्त कुछ भी हो--संतोष मेरी स्थिति है। सहिष्णु का अर्थ हुआ कि मेरा संतोष किन्हीं कारणों पर निर्भर नहीं है।
एक आदमी कहता है, बड़ा संतोष है, क्योंकि बैंक में बैलेंस है। एक आदमी कहता है, बड़ा संतोष है; बच्चे हैं, पत्नी है, भरा-पूरा घर है। एक आदमी कहता है, बड़ा संतोष है; प्रतिष्ठा है, सम्मान है, लोग आदर देते हैं।
ये कोई भी संतोष नहीं हैं। ये कोई भी संतोष नहीं हैं, क्योंकि ये सब सकारण हैं। कल सुबह एक ईंट खिसक जाएगी इस भवन से और असंतोष ही असंतोष हो जाएगा। यह संतोष का धोखा है।
संतोष का अर्थ हैः अकारण। एक आदमी कहता है, मैं संतोषी हूं, संतोष है-- कोई कारण से नहीं। शाश्वत को परिवर्तन से पृथक अनुभव करता हूं; शाश्वत में ठहरा हूं, परिवर्तन को पहचान लिया है। कारण हटाया नहीं जा सकता, कारण किसी के हाथ में नहीं है अब--अकारण, अनकंडीशनल, बेशर्त। सहिष्णुता या संतोष बेशर्त घटनाएं हैं।
बुद्ध को किसी ने आकर पूछा है कि आपके पास कुछ दिखाई तो नहीं पड़ता, फिर
भी आप बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हैं! स्वाभाविक है उसका प्रश्न। कुछ दिखाई पड़ता हो, तो प्रसन्नता समझ में आती है। बुद्ध के पास कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। वे एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। उनकी प्रसन्नता बेबूझ है। वह आदमी कहता है कि आप क्या मुझे समझाएंगे थोड़ा? सिर्फ पागल आदमी ही बिना कारण के ऐसा आनंदित हो सकता है। आप पागल भी दिखाई नहीं पड़ते। आप कौन हैं? लगता है ऐसा कि जैसे सारी पृथ्वी का साम्राज्य आपका हो। आप कोई सम्राट हैं? बुद्ध ने कहा, नहीं। उस आदमी ने पूछा, फिर क्या आप कोई देव हैं, जो पृथ्वी पर उतर आए? बुद्ध ने कहा कि नहीं, मैं देव भी नहीं हूं। वह आदमी ऐसे पूछता जाता है कि आप यह हैं, आप यह हैं? और बुद्ध कहते जाते हैं, नहीं, मैं यह भी नहीं हूं। नहीं, मैं यह भी नहीं हूं। वह आदमी बेचैन हो जाता है और वह कहता है कि कुछ भी आप नहीं हैं! कुछ तो आप कहें, आप कौन हैं?
तो बुद्ध ने कहा कि कभी मैं पशु भी था। पशु होने के कारण थे। वासनाएं ऐसी थीं कि पशु होना अनिवार्य था। कभी मैं मनुष्य भी था। वासनाएं ऐसी थीं, जो मुझे मनुष्य बनाती थीं। कभी मैं देव भी था। वासनाएं ऐसी थीं, जो मुझे

देव बनाती थीं। वे सब कारण-अस्तित्व थे। अब तो मैं सिर्फ बुद्ध हूं। न मैं मनुष्य हूं, न मैं देव हूं, न मैं पशु हूं; मैं सिर्फ बुद्ध हूं।
उस आदमी ने पूछा कि बुद्ध का क्या अर्थ?
तो बुद्ध ने कहा, अब मैं सिर्फ जागा हुआ हूं। अब सिर्फ मैं एक जागी हुई चेतना हूं। अब मैं सिर्फ एक होश हूं, एक चैतन्य हूं। अब मैं कोई व्यक्ति नहीं हूं। क्योंकि व्यक्ति तो निर्मित ही होता है परिवर्तन को पकड़ लेने से, रूप को पकड़ लेने से। कभी मैंने पशुओं के रूप पकड़े, कभी मैंने मनुष्यों के, कभी मैंने वृक्षों के; वे मेरे व्यक्तित्व थे। अब मैं कोई व्यक्ति नहीं हूं। अब मैं सिर्फ एक चैतन्य मात्र हूं--एक ज्योति का दीया।
शाश्वत नियम को उपलब्ध कर लेने का यह अर्थ है कि साक्षीत्व का एक दीया--परिवर्तन मैं नहीं हूं, शाश्वत मैं हूं। फिर कोई असहिष्णुता पैदा नहीं होती। क्योंकि परिवर्तन से कोई लगाव ही न हो, तो लगाव के टूटने का भी कोई उपाय नहीं रह जाता। जो आशा रखते हैं, वे कभी निराश हो सकते हैं। लेकिन जो आशा ही नहीं रखते, उनके निराश होने का उपाय कहां? और जिनके पास संपत्ति है, वे कभी दरिद्र हो सकते हैं। लेकिन जिनके पास कुछ भी नहीं है, जो किसी संपत्ति से अपने को पकड़ नहीं लिए हैं, उनके दरिद्र होने का कोई उपाय नहीं है।
अगर मैंने कुछ पकड़ा नहीं है, तो आप उसे मुझसे छीन न सकेंगे। आपका छीनना संभव हो पाता है मेरे पकड़ने की वजह से। आप छीन सकते हैं, अगर मैं कुछ पकड़े हुए हूं। और अगर मैं कुछ भी पकड़े हुए नहीं हूं, तो आप छीन कैसे सकते हैं?
यह जो साक्षी-भाव है, यह जो शाश्वत नियम का बोध है, यह सारे परिवर्तन
के जगत से पकड़ का छूट जाना है। फिर गंगा बहती रहती है और मैं किनारे बैठा हूं। और गंगा के पानी में कभी फूल बहते हुए आ जाते हैं, तो उनको देख लेता हूं। और कभी किसी का अस्थिपंजर बहता हुआ आता है, तो उसे देख लेता हूं। और कभी गंगा गंदे पानी से भर जाती है वर्षा के, मटमैली हो जाती है, तो उसे देख लेता हूं। और कभी ऐसी स्वच्छ हो जाती है कि आकाश के तारे उसमें झलकते हैं, तो उसे देख लेता हूं। लेकिन मैं गंगा नहीं हूं; उसके किनारे बैठा हूं। परिवर्तन के किनारे जो साक्षी का भाव है, वह थिर हो जाए, तो फिर गंगा में क्या बहता है और क्या नहीं बहता, इससे मेरे भीतर कोई चिंता पैदा नहीं होती। और गंगा के निरंतर प्रवाह को देख कर मैं जानता हूं, आशा नहीं बांधनी चाहिए। इसमें कभी फूल भी आते हैं और कभी राख भी बहती है; इसमें कभी तारे भी झिलमिलाते हैं और कभी यह गंगा बिल्कुल गंदी हो जाती है और कुछ भी नहीं झिलमिलाता। और कभी यह गंगा विक्षिप्त होकर बहती है, बाड़ तोड़ देती है। और कभी यह गंगा सूख कर दुबली-पतली धारा हो जाती है और शांत मालूम होती है। यह गंगा का होना है; इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। मैं उसके किनारे खड़ा हूं। शाश्वत नियम का बोध, परिवर्तन के किनारे जो साक्षी का भाव है, उसमें थिर हो जाने का नाम है।
लाओत्से कहता है, "जो सहिष्णु हो जाता है, वह निष्पक्ष हो जाता है।"
इसे समझना पड़े। असल में, पक्ष तभी तक हैं, जब तक परिवर्तन में कोई चुनाव है। मैं कहता हूं यह आदमी अच्छा है, क्योंकि यह आदमी मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसी मेरी अपेक्षा है। और मैं कहता हूं यह आदमी बुरा है, क्योंकि यह आदमी वैसा व्यवहार करता है जैसी अपेक्षा नहीं है। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा ही न हो, तो कौन आदमी अच्छा है और कौन आदमी बुरा है? मैं कहता हूं यह आदमी संत है और कहता हूं यह आदमी दुष्ट है। जिसे मैं दुष्ट कहता हूं, वह दुष्ट है या नहीं, मुझे पता नहीं; लेकिन मेरी कुछ अपेक्षाएं हैं, जो वह तोड़ता है। और जिसे मैं संत कहता हूं, वह संत है या नहीं, पता नहीं; लेकिन मेरी कुछ अपेक्षाएं हैं, जिन्हें वह पूरी करता है। अगर आप अपने संतों के आस-पास जाकर देखें और अपने दुष्टों के आस-पास जाकर देखें, तो आपको पता चलेगाः जो आपकी अपेक्षाएं पूरा कर दे, वह साधु। अगर आप मानते हैं कि मुंह पर एक पट्टी बांधने से आदमी साधु होता है, तो मुंह पर पट्टी बांधे मिलेगा तो आप पैर छू लेंगे। वही आदमी कल मुंह की पट्टी नीचे उतार कर रख दे, तो आप उसको घर में नौकरी देने को भी राजी न होंगे। अगर आपकी धारणा है कि... । आपकी धारणा जो भी पूरा कर दे! अगर साधुओं

की जांच-पड़ताल करने जाएं, तो आप पाएंगे, उनमें जो आपकी धारणा जितनी पूर्णता से पूरी करता है, उतना बड़ा साधु है। जो थोड़ी-बहुत ढील-ढाल करता है, जो थोड़ा-बहुत इधर-उधर डांवाडोल होता है, वह उतना छोटा साधु है। साधु कौन है? आपकी अपेक्षा जो पूरी कर दे। असाधु कौन है? जो आपकी अपेक्षा तोड़ दे। लेकिन जिसकी कोई अपेक्षा न हो, उसके लिए कौन साधु और कौन असाधु?
लाओत्से यह कहता है, जो शाश्वत को जान लेता है, वह निष्पक्ष हो जाता है। उसके लिए राम और रावण में कोई भी फर्क नहीं है। क्योंकि राम और रावण का जो भी फर्क है, वह हमारी अपेक्षाओं का फर्क है। हम पर निर्भर है वह फर्क। वह हमारा विभाजन है। हमारी धारणाएं काम कर ही हैं। अगर मेरी कोई धारणा नहीं है, तो कोई भी फर्क नहीं है। निष्पक्ष होने का अर्थ है कि अब मेरा कोई चुनाव न रहा। निष्पक्ष होने का यह भी अर्थ है कि अब मैं आपसे नहीं कहता कि आप ऐसे हो जाएं।
एक मेरे मित्र हैं, वृद्ध हैं। उनके बड़े लड़के की मृत्यु हो गई। बड़ा लड़का उनका मिनिस्टर था। और मन ही मन आशाएं थीं कि आज नहीं कल वह मुल्क का प्रधानमंत्री भी हो जाए। जिनके लड़के मिनिस्टर भी नहीं हैं, वे भी अपने लड़कों के प्रधानमंत्री होने की आशा रखते हैं, तो कोई उन पर कसूर नहीं है। उनका लड़का कम से कम मंत्री तो था ही। प्रधानमंत्री भी हो ही सकता था। आशा बांधने में कोई असंगति नहीं थी। फिर लड़का मर गया। वे बहुत रोए-धोए, बहुत पीटे, छाती पीटे। आत्महत्या का सोचने लगे।
मैंने उनसे पूछा, इतनी पीड़ा का क्या कारण है? उन्होंने कहा, मेरा बेटा
मर गया! मैंने कहा कि मैं ऐसा समझूं, आपका बेटा चोर होता, बदमाश होता, लफंगा होता, बदनामी का कारण होता और फिर मर जाता; आप उसके लिए आत्महत्या करने को राजी होते? उनके बहते आंसू सूख गए और उन्होंने कहा, क्या आप कहते हैं! ऐसा लड़का तो अगर होता तो मैं चाहता कि यह होते से ही मर जाए। तो मैंने कहा, फिर आप यह मत कहें कि आप लड़के के लिए रो रहे हैं। इस लड़के में कोई महत्वाकांक्षा मर गई, कोई एंबीशन। इस लड़के के कंधे पर चढ़ कर आप कोई यात्रा कर रहे थे। क्योंकि यह लड़का जब प्रधानमंत्री होता, तो यह लड़का ही प्रधानमंत्री नहीं होता, आप प्रधानमंत्री के बाप भी हो जाते। बड़ी महत्वाकांक्षा थी। और जो लड़का चोर होता, डाकू होता, बदनामी लाता, तो लड़का ही चोर-डाकू नहीं होता, आप चोर के पिता भी हो जाते। कोई महत्वाकांक्षा इस लड़के के कारण मर गई है; उसके लिए आप रो रहे हैं।
बड़े नाराज हुए कि मैं इतने दुख में पड़ा हूं और आपको ऐसी बात कहते संकोच नहीं आता! मैंने उनको कहा कि इस दुख में अगर सत्य आपको दिख जाए! कभी-कभी दुख में सत्य को देखना आसान होता है। क्योंकि जब आपने ताश का
घर बनाया हो और घर अभी गिरा न हो, तब मैं कितना ही कहूं कि यह ताश का घर है और गिर जाएगा; दिखाई पड़ना मुश्किल है। हवा का एक झोंका लगे और ताश का घर गिर गया हो, और आप जार-जार रो रहे हों; और तब मैं कहूं कि आप व्यर्थ रो रहे हैं, यह तो बनाते समय ही जानना था कि ताश का घर है और गिरेगा। यह नाव कागज की है और डूबेगी। लेकिन कागज की नाव भी थोड़ी-बहुत देर तो चल सकती है। चलते समय कागज की नाव को कागज का मानना बहुत मुश्किल है। चलना काफी प्रमाण है। डूबते में ही ख्याल आता है। इस जगत में सत्य का जो अवतरण है, दुख में आसान है। क्या है अच्छा? क्या है बुरा? यह बेटा अच्छा था, यह बेटा बुरा है; इसमें भी परिवर्तन के जगत में मेरी कोई आकांक्षाओं-अपेक्षाओं का जोड़ है, तो ही।
लाओत्से कहता है, जो सहिष्णु हो जाता है, वह निष्पक्ष हो जाता है। निष्पक्ष का अर्थ है कि जब भीतर कोई अपेक्षा न रही, तो बाहर कोई पक्ष न रहा। लाओत्से से अगर कोई कहे कि फलां आदमी को अच्छा बनाओ, फलां आदमी बुरा है, तो लाओत्से कहेगा कि मेरी कोई अपेक्षा नहीं। कौन बुरा है, मुझे पता नहीं चलता; और कौन अच्छा है, मुझे पता नहीं चलता। और क्या करने से कौन अच्छा हो जाएगा, मुझे पता नहीं चलता। और मुझे अच्छा हो जाएगा, तो दूसरे को भी अच्छा होगा, कहना मुश्किल है। दूसरे की अपेक्षाएं हैं।
इस दुनिया में बुरे से बुरा आदमी भी कुछ लोगों के लिए तो अच्छा होता
ही है। इस दुनिया में अच्छा से अच्छा आदमी भी कुछ लोगों के लिए तो बुरा होता ही है। इस दुनिया में शत-प्रतिशत अच्छे होने का कोई उपाय नहीं है। शत-
231

प्रतिशत बुरे होने का कोई उपाय नहीं है। अगर जमीन पर आप अकेले ही हों, तो शत-प्रतिशत कुछ भी हो सकते हैं। लेकिन जमीन पर और लोग भी हैं। और उनकी अपेक्षाएं हैं।
तो जीसस दस-बारह लोगों को अच्छा आदमी था, जब सूली लगी तो। बाकी सब को बुरा आदमी था। क्योंकि जो भी अपेक्षाएं थीं, इसने पूरी नहीं कीं। अच्छे आदमी के लक्षण सदा से जाहिर रहे हैं।
जीसस वेश्या के घर में ठहर गया। अब इससे और ज्यादा बुरे आदमी का क्या लक्षण होगा? तो जिन-जिन के मन में वेश्या के घर जाने की आकांक्षा रही होगी, उन सब को मौका मिला कि इस आदमी पर सारा क्रोध निकाल लिया जाए। जिसको हम अच्छाई से पैदा हुआ क्रोध कहते हैं, उसमें निन्यानबे प्रतिशत तो ईर्ष्या होती है। ये वे ही लोग थे जो वेश्या के घर जाना चाहे होंगे; लेकिन लोग बुरा कहेंगे, इसलिए नहीं जा सके। और यह हद हो गई कि एक आदमी जिसको लोग अच्छा कहते हैं, वह वेश्या के घर में ठहर गया। तो अब दो में से एक ही बात रही। या तो तय हो जाए कि यह आदमी बुरा है, तो इनको शांति मिले; या यही तय हो जाए कि अच्छा आदमी भी वेश्या के घर में जा सकता है, यह स्वीकृत हो जाए, तो भी शांति मिले।
यह दूसरी बात बहुत मुश्किल है। इस दूसरी बात का बड़ा जाल है। इस दूसरी बात का भारी इतिहास है। और जब तक विवाह पवित्र है, तब तक वेश्या अपवित्र रहेगी ही। जब तक विवाह ही न मिट जाए जमीन से, तब तक वेश्या तिरोहित नहीं हो सकती। वह उसकी बाई-प्रोडक्ट है। तो इसकी तो लंबी जटिलता है। यह तो हो नहीं सकता। अब एक ही उपाय है कि जीसस बुरा आदमी करार दे दिया जाए। और यह सबको ठीक लगेगा। पिता भयभीत है कि उसका लड़का वेश्या के घर न चला जाए। पत्नी भयभीत है कि उसका पति कहीं वेश्या के घर न चला जाए। सारा समाज भयभीत है। और वेश्या इसी समाज की उत्पत्ति है। इन्हीं सबने मिल कर वेश्या को निर्मित किया है। और ये सभी भयभीत हैं। और ये सभी वेश्या को सहारा दे रहे हैं। लेकिन वे अंधेरे में फैले हुए हाथ हैं। जीसस की गलती है तो एक कि वे उजाले में वेश्या के घर चले गए। वही उनकी भूल है। वे फांसी से बच सकते थे, थोड़ी कुशलता चाहिए थी। सभी जाते थे वेश्या के घर--ऐसी कोई अड़चन न थी-- जिन्होंने सूली दी थी। लेकिन वे ज्यादा कुशल थे, ज्यादा होशियार थे। वे जानते थे, काम करने का एक ढंग होता है। इस आदमी ने गैर-ढंग से किया।
फिर भी उपाय थेः माफी मांगी जा सकती थी, पश्चात्ताप किया जा सकता था, व्रत-नियम लिए जा सकते थे। इसने और जिद्द की। इस आदमी ने कहा कि इसमें पाप कुछ है ही नहीं। और वेश्या होगी वह तुम्हारे लिए, मेरे लिए नहीं है। क्योंकि वेश्या एक संबंध है; व्यक्ति नहीं होता कोई वेश्या। कोई औरत वेश्या नहीं होती, न कोई औरत पत्नी होती है। किसी के लिए वेश्या होती है, किसी के लिए पत्नी हो सकती है--वही औरत। क्योंकि वेश्या होना एक संबंध है दो व्यक्तियों के बीच। जीसस ने कहा, मेरे लिए वह वेश्या नहीं है, तुम्हारे लिए रही होगी। तुम मत जाओ।

लेकिन यह समझ के बाहर थी बात। इस आदमी को सूली लगानी जरूरी हो गई।
जो इसके पीछे चल रहे थे, वे भी सोचते थे कि ऐन वक्त, आखिर में परमात्मा कुछ ऐसा करेगा, चमत्कार दिखाएगा, कि सिद्ध हो जाएगा कि जीसस सही है। शक तो उनको भी होता रहा होगा; क्योंकि वे भी उसी समाज से पैदा हुए थे। उनको भी लगा तो होगा कि लोग ही ठीक कह रहे हैं। लेकिन जीसस का प्रभाव था, जीसस के प्रति प्रेम था, तो पीछे चलते रहे। दस-बारह लोग ही थे। जीसस भलीभांति जानते थे कि ये वक्त पर भाग जाएंगे। और वक्त पर वे सब भाग गए। और जब जीसस की सूली से उनकी लाश उतारी गई, तो वही वेश्या लाश को उतार रही थी, बाकी सब शिष्य भाग गए थे।
निश्चित ही, जीसस के लिए वह वेश्या वेश्या नहीं थी। और उस वेश्या के लिए जीसस सिर्फ एक पुरुष नहीं थे, एक खरीददार नहीं थे। और जब निकटतम शिष्य भाग गए, जो बाद में एपास्टल्स हो गए, जो बाद में बारह महा संत हो गए, वे सब भाग गए थे, तब एक वेश्या ने उन्हें उतारा था। वही आखिर तक खड़ी रही थी उस भीड़ में।

कौन भला है, कौन बुरा है, कौन तय करे? कैसे तय करते हैं हम? क्या है क्राइटेरियन? क्या होता है मापदंड तय करने का? एक ही मापदंड होता है सदाः आपकी अपेक्षाओं के लिए जो अनुकूल पड़ता है; आपकी अपेक्षाओं के जो प्रतिकूल पड़ता है। लेकिन अगर किसी व्यक्ति की कोई अपेक्षा ही नहीं है, तो वह निष्पक्ष हो जाता है। जीसस जैसे लोगों की यही मुसीबत है। एक वेश्या ने कहा कि चलें और मेरे घर ठहर जाएं आज रात, तो जीसस की कोई भी तो अपेक्षा नहीं है। आप होते तो सोचते कि कल बदनामी होगी, गांव में खबर हो जाएगी, पत्नी क्या कहेगी, बच्चे क्या कहेंगे, क्या होगा, क्या नहीं होगा, आप हजार बातें सोचते। जीसस बस चल पड़े।
बुद्ध के साथ भी ऐसा हुआ। एक दिन एक वेश्या ने आकर सुबह ही निमंत्रण
दे दिया भोजन का। उसके ही पीछे रथ पर सवार प्रसेनजित आता है, सम्राट है। और प्रसेनजित आकर कहता है कि मेरे घर पधारें! पर बुद्ध ने कहा, निमंत्रण तो मुझे आपके पहले मिल गया। पर प्रसेनजित ने कहा कि अगर इसकी खबर भी लोगों को हो जाएगी कि आप आम्रपाली वेश्या के घर भोजन करने गए, महा अनर्थ हो जाएगा, प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी। आप और वेश्या के घर जाएंगे!
पर बुद्ध ने कहा, निमंत्रण उसका ही पहले है और हां भी भरी जा चुकी है।
और जिन बातों से आप मुझे भयभीत करते हैं, अगर मैं उनसे भयभीत ही होता हूं, तो फिर मैं बुद्ध ही नहीं हूं। अब तो होगी बदनामी, तो अच्छा। इस जगत में बदनामी होगी। लेकिन अगर वेश्या के घर जाने की बदनामी से डर कर प्रसेनजित, तुम्हारी मैं मान लूं, तो अनंत-अनंत काल में जो बुद्ध हुए हैं, वे मुझ पर हंसेंगे। वहां मेरी बड़ी बदनामी हो जाएगी। तो इस बदनामी को हो जाने दो। लाओत्से कहता है, निष्पक्ष हो जाता है वैसा व्यक्ति। जीता है--पक्षों
से नहीं, सहजता से। कोई निर्णय नहीं लेता--क्या बुरा है और क्या भला है, क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए।
थोड़ी कठिनाई लगेगी; क्योंकि जिनकी नैतिक बुद्धि है और जो सोचते हैं
कि जीवन की जो ऊंची से ऊंची बात है, वह नीति है, उनको बहुत कठिनाई होगी। नीति ऊंची से ऊंची बात उनके लिए है, जिनके जीवन अनैतिक हैं। जैसे औषधि उनके काम की है जो बीमार हैं। लेकिन भूल कर भी स्वस्थ लोगों को औषधि मत पिलाने लगना। नीति उनके काम की है, जो अनीति में भरे हैं और पड़े हैं। लेकिन जो धर्म को उपलब्ध होते हैं, उनसे नीति वैसे ही छूट जाती है जैसे अनीति छूट जाती है। पक्ष छूट जाते हैं।
नैतिक चिंतन तो पक्ष करता है। इसलिए नैतिक चिंतन कभी निष्पक्ष नहीं होता। नैतिक चिंतन तो साफ-साफ निर्णय करता है--यह ठीक है और यह गलत है। गणित से चलता है, हिसाब रख कर चलता है। कभी-कभी हिसाब सीमा के बाहर चला जाता है, तो भी हिसाब से ही चलता है। क्या करना है, क्या नहीं करना है, वह सब हिसाब रखता है। धर्म कोई हिसाब नहीं रखता। शाश्वत में प्रतिष्ठा जिसकी हो गई, वह फिर उस प्रतिष्ठा पर ही सब कुछ छोड़ देता है। और वह जहां ले जाए शाश्वत नियम--चाहे पूर्व तो पूर्व और चाहे पश्चिम तो पश्चिम; जहां ले जाए, अंधेरे में या प्रकाश में--वह शाश्वत नियम जहां ले जाए, उस पर ही अपने को छोड़ देता है।
इस फर्क को हम ऐसा समझें कि एक डांड से खेने वाला नाविक है। वह पतवार चलाता है और अपनी नौका को खेता है। सारा श्रम उसे करना होता है। एक और नाविक भी है, जिसने एक नियम खोज लिया कि खुद पतवार चलाने की कोई जरूरत नहीं है; हवाएं, पाल बांध दो, और नाव को ले जाती हैं। तो वह पाल बांध लेता है, पतवार अलग रख देता है, हवाएं उसकी नाव को चलाने लगती हैं।
नैतिक व्यक्ति पतवार से नाव चलाता है पूरे वक्त; बाएं, दाएं, सब उसे हिसाब रखना पड़ता है। पूरे वक्त श्रम उठाना पड़ता है। नाव और नदी के बीच एक संघर्ष है, नाविक और नदी के बीच एक दुश्मनी है। लड़ना पड़ता है। फिर वह भी है, जिसने पाल बांध लिया। अब सिर्फ उसे हवाओं के ऊपर अपने को छोड़ देने की हिम्मत भर जुटानी होती है। फिर हवाएं उसकी नाव को ले जाने लगती हैं। धार्मिक व्यक्ति दूसरी तरह का व्यक्ति है, जिसने अपना पाल बांध लिया
है नाव में और जिसने परमात्मा की या शाश्वतता की हवाओं को कहा कि बस अब जहां ले जाओ। अब जहां पहुंच जाए, वही मुकाम है। और नाव अगर मझधार में डूब जाए, तो वही मंजिल है। अब कोई किनारा नहीं है। अब तो जो मिल जाए, वही किनारा

है। अब अपना कोई चुनाव नहीं है कि वहां पहुंचूं; और अगर वहां नहीं पहुंचा, तो दुखी होऊंगा; और वहां पहुंचा, तो सुखी हो जाऊंगा। धार्मिक व्यक्ति कहीं पहुंचने की चेष्टा में नहीं है। पहुंच गया।
नैतिक व्यक्ति कहीं पहुंचने की चेष्टा में लगा है। तो नैतिक व्यक्ति
तो पक्षपाती होगा। इसलिए नैतिक व्यक्ति कभी सहिष्णु नहीं हो सकता। और अगर उसकी सहिष्णुता भी होगी, तो थोपी हुई और आरोपित होगी, कल्टीवेटेड होगी। सम्हाल-सम्हाल कर वह सहने की कोशिश कर सकता है। लेकिन सहिष्णुता उसकी सहज नहीं हो सकती। शाश्वत को जान कर जो सहिष्णुता आती है, वह निष्पक्ष कर जाती है।
कठिन है यह बात; क्योंकि हमें तो नैतिक तक होना कठिन है। लाओत्से कहीं
और दूर की बात कर रहा है। वह कह रहा है, नैतिकता भी एक बीमारी है। वह कह रहा है कि जब तक द्वंद्व है--यह ठीक और यह गलत--तब तक बेचैनी रहेगी ही। अगर मुझे दिखता है कि यह ठीक और यह गलत, तो बेचैनी रहेगी।
इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी जो हैं, जिन्हें नैतिक आदमी कहना चाहिए,
वे बड़े बेचैन रहते हैं। वे कहते हैं, यह गलत हो रहा है, वह ठीक हो रहा है। सारे संसार में जो गलत और ठीक हो रहा है, सबकी चिंता उन्हीं को होती है। उनकी बेचैनी का कोई अंत नहीं है। रातें उनकी हराम हो जाती हैं, नींद उनकी नष्ट हो जाती है। कहां क्या गलत और कहां क्या सही हो रहा है, सब का हिसाब उनके पास है। और सारे जगत में ठीक होना चाहिए, इसके लिए उनकी चिंता इतनी ज्यादा होती है कि इसी चिंता में घुल-घुल कर वे मर जाते हैं। जगत में कुछ ठीक होता या नहीं होता उनकी चिंता से, वह दिखाई नहीं पड़ता।
लाओत्से की बात समझनी थोड़ी कठिन है। और इसलिए पश्चिम में बहुत नासमझी
भी पैदा होती है। लाओत्से जैसे लोगों के विचार जब पश्चिम में पहुंचते हैं, तो उन्हें लगता है, यह तो बहुत इम्मॉरल थिंकिंग है, यह तो बहुत नीतिविहीन चिंतन है। निष्पक्ष? कैसे निष्पक्ष हो सकते हैं हम? जहां इतना संघर्ष है अच्छाई और बुराई में, वहां हम कैसे निष्पक्ष हो सकते हैं? उसका कारण है कि अगर हम परिवर्तन से ही अपने को देखेंगे, तो निष्पक्ष नहीं हो सकते; शाश्वत से देखेंगे, तो निष्पक्ष हो सकते हैं। शाश्वत के तल से देखने पर परिवर्तन का जगत स्वप्नवत हो जाता है।
रात एक सपना देखा। देखा कि राम और रावण में बड़ी कलह चल रही है। पूरी रामायण देखी। अगर नैतिक आदमी हैं, तो राम के साथ तादात्म्य बन जाएगा। अगर अनैतिक आदमी हैं, तो रावण के साथ तादात्म्य बन जाएगा। लेकिन सुबह जाग कर देखा, सपना टूट गया, सुबह जाग कर देखा। सुबह जाग कर, उस रात सपने में राम और रावण का जो संघर्ष था, उसमें क्या कोई भी पक्ष जाग कर रह जाएगा? अगर रह जाए, तो समझना अभी नींद खुली नहीं, सपना जारी है। सुबह अगर हंसी आए और पता चले कि सब ठीक था; और सपने में रावण जीते तो और राम जीतें तो कोई अंतर न पड़े और सुबह पूरी बात पर हंसी आ जाए, तो समझना नींद खुल गई, अब आप निष्पक्ष हो गए। लाओत्से जैसे व्यक्ति के लिए परिवर्तन का जगत एक स्वप्न है। स्वप्न
से ही जो घिरा है, वह पक्ष करेगा। स्वप्न में ही जो बंधा है, वह पक्षपात करेगा। लेकिन जहां पक्षपात है, वहां असहिष्णुता होगी, अधैर्य होगा, असंतोष होगा, संताप होगा। अगर उठना है आनंद तक, तो अभेद और निष्पक्ष हुए बिना कोई रास्ता नहीं है।
"जो निष्पक्ष हो जाता है, निष्पक्ष होकर वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है। बीइंग इम्पार्शियल ही इ.ज किंगली, निष्पक्ष होकर वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है।"
सम्राटों की भी गरिमा कुछ नहीं है जैसी गरिमा को वह उपलब्ध होता है जो निष्पक्ष हो जाता है। क्योंकि उसकी आंखों की शांति की फिर कोई कल्पना नहीं, कोई तुलना नहीं हो सकती। क्योंकि उसकी आंख में कहीं कोई पक्ष न रहा, तो आंख ट्रांसपैरेंट हो जाती है, पारदर्शी हो जाती है। जिसका कोई पक्ष न रहा, उसकी गति अकंप हो जाती है। पक्ष के कारण हम झुकते हैं, और हमारा सारा जीवन कंपित होता रहता है।
अभी तो वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारी शरीर तक की भाषा में पक्षपात होता है। अभी बॉडी लैंग्वेज पर बहुत काम चलता है; बहुत खोज चलती है शरीर की भाषा पर। आप किसी आदमी के पास किस ढंग से खड़े होते हैं, बताया जा सकता है कि

आपका पक्ष क्या है; उस आदमी के पक्ष में हैं कि विपरीत हैं। जब आप किसी आदमी के विपरीत में हैं, तो आप हटे हुए खड़े होते हैं; खड़े भी रहते हैं और भीतर से हटे भी रहते हैं--कहीं पास न आ जाएं। जिस आदमी के आप पक्ष में होते हैं, गिरे हुए होते हैं, निकट आ जाएं। स्त्रियां तो बहुत साफ बता देती हैं उनके शरीर की भाषा से। अगर एक स्त्री को किसी से प्रेम है, तो वह गिरने को बिल्कुल तैयार है। अगर प्रेम नहीं है, तो वह पीछे दीवार खोज रही है कि कहीं टिक जाए, बच जाए, हट जाए। शरीर-भाषाशास्त्री कहते हैं कि अगर स्त्री का आपसे प्रेम है, तो उसके बैठने का ढंग और होगा; अगर नहीं है, तो और होगा। और एक-एक सिंबल, एक-एक संकेत उसके शरीर से मिलेंगे।
शरीर तक, जब आप चलते हैं, उठते हैं, लोगों के बीच घूमते हैं, तो खबर देता है। अगर वेश्यालय पड़ गया, तो आपकी चाल तेज हो जाती है; मंदिर आ गया, तो नमस्कार हो जाता है। अगर वेश्याओं के मुहल्ले से गुजर रहे हैं, तो धड़कन बढ़ जाती है--कहीं कोई देख न ले। आपके पक्ष, आपके विपक्ष पूरे वक्त आपको कंपित किए हुए हैं।
लाओत्से कहता है, जो निष्पक्ष हो जाता है, वह सम्राट की गरिमा को उपलब्ध हो जाता है।
शायद और कोई बेहतर प्रतीक लाओत्से को नहीं सूझा; क्योंकि सम्राट निष्पक्ष नहीं होते। लेकिन कोई और उपाय नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि सम्राटों के पास भी सम्राटों की गरिमा नहीं होती।
जीसस ने कहा है, जीसस ने एक दिन कहा है अपने साथियों को कि देखो लिली
के खिले हुए इन फूलों को, सम्राट सोलोमन भी अपनी पूरी गरिमा में इनके सामने फीका है।
फूल जब खिलता है तो जिस गरिमा को उपलब्ध होता है, मनुष्य जब खिलता है
तब वह भी उसी गरिमा को उपलब्ध होता है। वह गरिमा अकंपता की गरिमा है। जैसे कि किसी घर में दीया जले, हवा का कोई झोंका न हो, और लौ ठहर जाए, जरा भी कंपित न हो; वैसे ही जब कोई चेतना भी भीतर ठहर जाती है और जरा भी कंपित नहीं होती।
अब इसके दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि पक्ष तो बने रहें, जबर्दस्ती
इस चेतना को अकंप कर लिया जाए; जो कि तथाकथित साधु, धार्मिक व्यक्ति करते रहते हैं। पक्ष तो बने रहें कि यह बुरा है और यह ठीक है, और वह सुंदर है और वह कुरूप है, और यह पाने योग्य है और वह नहीं पाने योग्य है, यह तो सब बना रहे; लेकिन अपने को सम्हाल कर और अपनी चेतना को थिर कर लिया जाए। इस तरह जो थिरता आती है, वह जबर्दस्ती थोपी हुई थिरता है, झूठी है। क्योंकि जरा ही रिलैक्स किया, जरा ही शिथिल हुए--पक्ष की तरफ चेतना बह जाएगी, अपक्ष की तरफ से हट आएगी।
एक दूसरी गरिमा है, जिसकी लाओत्से चर्चा कर रहा है। वह कह रहा है, खुद
की उतनी फिक्र मत करो; जबर्दस्ती खुद को ठहराने की फिक्र मत करो। शाश्वत नियम को जान लो, परिवर्तन को पहचान लो, और तुम पाओगे कि पक्ष गिर गए। और पक्ष के गिरते ही तुम अकंप हो जाओगे। क्योंकि कोई जगह न रही जहां कंपो; किसी तरफ झुको, वह कोई स्थान न रहा; किसी तरफ से हटो, वह कोई स्थान न रहा। तब जो अकंपता आती है, वह सहज है। उस सहजता के बिना साधुता भी एक जटिलता है, एक जबर्दस्ती है, एक दमन है।
और इसलिए फर्क देखा जा सकता है। जब भी कोई सहजता की साधुता को उपलब्ध होता है, तो एक अपरिसीम सौंदर्य को उपलब्ध होता है। और जब भी कोई जबर्दस्ती साधुता को उपलब्ध होता है, तो एक गहन कुरूपता को उपलब्ध हो जाता है। कुरूपता स्वाभाविक ही आ जाएगी। क्योंकि जहां सब चीजें खींच-तान कर, तनाव से बिठाई जाएंगी, वहां सब चीजें खिंच जाएंगी। सहज साधु खोजना मुश्किल है; यद्यपि सहज ही साधु हो सकता है। लेकिन उसके बड़े चुनाव हैं। एक साधु मेरे साथ यात्रा करते थे। जिस कार में हमें जाना था, मैं जाकर बैठ गया। वे आए और कहने लगे, ऐसे तो मैं न बैठ सकूंगा; मैं तो सिर्फ चटाई पर बैठता हूं। इसमें कौन सी कठिनाई है, मैंने कहा। जिनके घर मैं मेहमान था, उनसे मैंने कहा कि लाकर एक चटाई कार के सोफा पर बिछा दो।
चटाई बिछा दी गई। साधु बिल्कुल सम्हल कर सोफा पर बैठ गए। बीच में चटाई
आ गई; परम शांति उनको मिली। सोफा वही है, कार वही है; लेकिन वे चटाई पर बैठे

हैं। उनको देख कर दया ही आ सकती है, और क्या हो सकता है! सोफा पर वे बैठे ही नहीं हैं; कार में वे हैं ही नहीं। वे अपनी चटाई पर हैं। और अपनी सादगी को उन्होंने सुरक्षित रख लिया है। ऐसी सुरक्षित व्यवस्था से जो जी रहा हो, उसका सब कुछ कुरूप हो जाएगा; सब अपंग, सब पक्षाघात हो जाएगा।
लाओत्से कहता है, निष्पक्ष जो है, वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है।
इसमें एक बात और ख्याल लेने जैसी है। सम्राट जैसी गरिमा का अर्थ यह हुआः भागना, छोड़ना, यह नहीं, वह नहीं--उसे कोई अर्थ का नहीं रह जाता; वह जहां है, सम्राट की तरह ही है। उसे महल में खड़ा कर दें तो, और उसे किसी दिन नग्न रास्ते पर खड़ा कर दें तो, उसकी गरिमा में फर्क नहीं लाया जा सकता। महल उसे डराएगा नहीं; वह वहां भी उतनी ही शांति से सो सकेगा। वृक्ष उसे आकर्षित नहीं करेगा; वहां भी उतनी ही शांति से सो सकेगा। न महल आकर्षित करेगा, न वृक्ष विकर्षित करेगा। जो भी हो, जहां भी हो, वह सम्राट जैसी गरिमा में ही जीएगा।
इसलिए बुद्ध जैसे व्यक्ति को महल से हट कर भी हमने देखा, पर उनकी गरिमा में कोई फर्क नहीं पड़ता। शायद गरिमा और बढ़ जाती है। शायद गरिमा और बढ़ जाती है। अगर किसी कुरूप शरीर पर कपड़े पहना दिए जाएं, तो कुरूपता कम हो जाती है। इसलिए दुनिया में जब तक बहुत सौंदर्य नहीं होता, तब तक कपड़े आदमी का बहुत पीछा करेंगे ही। कपड़े सौंदर्य तो नहीं ला सकते, लेकिन कुरूपता को ढांक सकते हैं। नहीं जिनके पास सौंदर्य है, उनके लिए इतना भी क्या कम है कि कुरूपता ढंक जाती है! कुछ तो बहाना सुंदर होने का हो जाता है। लेकिन अगर अन्यतम सुंदर व्यक्ति हो, तो कपड़े हट जाने पर उसका सौंदर्य और पूरी तरह प्रकट होता है। तो जो दीन-दरिद्र हैं, उन्हें महलों में बिठाल दो, तो उनकी दीनता-दरिद्रता छिप जाती है। गरिमा नहीं आ जाती सम्राट की। लेकिन अगर गरिमा सम्राट की हो, तो छीन लो महल, हटा लो ताज-तख्त, तो उस नग्नता में वह और भी जोर से प्रकट हो जाती है।
यह जो सम्राट की गरिमा है, यह एक आंतरिक मालकियत का परिणाम है--एक इनर,
एक आंतरिक मालकियत, एक स्वामित्व। जो परिवर्तन से बंधा है, वह हमेशा गुलाम रहेगा। आज इस पर निर्भर रहना पड़ेगा, कल उस पर निर्भर रहना पड़ेगा। परिवर्तन के जगत में हजार-हजार चीजों पर निर्भर रहना पड़ेगा। जो परिवर्तन से हट कर शाश्वत से अपने को जोड़ लेता है, अब वह मालिक हुआ। अब उसे किसी पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। अब वह सारे परिवर्तनों के बीच से मालिक की तरह गुजर सकता है। उसकी मालकियत आंतरिक है।
"सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होकर स्वभाव के साथ अनुरूप हुआ वह ताओ में प्रविष्ट होता है।"
धर्म के गहनतम लोक में वही प्रविष्ट होते हैं, जो सम्राट की गरिमा से प्रविष्ट होते हैं। दीनता से, रो-पीट कर, मांग कर वहां कोई प्रविष्ट नहीं होता। जीसस ने कहा हैः जिनके पास है, उन्हें और दे दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे और छीन लिया जाएगा।
पागल रहा होगा जीसस! लेकिन यह एंटी-मैटर, वह दूसरे जगत के नियम हैं। बड़ी उलटी बात है। साधारण बुद्धि भी कहेगी, जिनको थोड़ा भी गणित आता है, वह भी कहेगा, जिनके पास नहीं है, उन्हें दो। अगर छीनना ही है, तो उनसे छीन लो, जिनके पास है। और उन्हें दे दो, जिनके पास नहीं है। यह सीधा गणित है। लेकिन जीसस कहते हैं, जिनके पास है, उन्हें और दे दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, सावधान रहें वे, उनसे और छीन लिया जाएगा।
उस जगत में कोई दीन की तरह प्रविष्ट नहीं हो सकता। उस जगत में तो सम्राट की तरह ही कोई प्रविष्ट होता है। असल में, उस जगत की चाबी ही स्वामित्व है। इसलिए हम संन्यासी को स्वामी कहते रहे हैं। सभी संन्यासी स्वामी होते हैं, ऐसा नहीं। लेकिन संन्यासी को हम स्वामी इसलिए कहते रहे हैं--उस इनर, उस भीतरी मालकियत। वही तो चाबी है उस महल में प्रवेश की, जिसको लाओत्से ताओ कहता है, बुद्ध ने जिसे धम्म कहा है, वेद ने जिसे ऋत कहा है, जीसस ने जिसे किंगडम ऑफ गॉड कहा है। ये सिर्फ शब्दों के फर्क हैं। "स्वभाव के अनुरूप हुआ वह ताओ में प्रविष्ट होता है। ताओ में प्रविष्ट होकर वह अविनाशी है।"

जब तक हम परिवर्तन से अपने को जोड़े हुए हैं, तब तक हम विनाश से अपने को जोड़े हुए हैं। तब तक हम मिटते ही रहेंगे, मिटते ही रहेंगे। बनेंगे और मिटेंगे। बनेंगे इसीलिए कि मिटें। वहां बनना और मिटना अनिवार्य है। जो आदमी समझ ले कि मैं वस्त्र हूं, तो दो-तीन महीने में उसको मरना पड़ेगा। दो- तीन महीने में वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो जाएंगे, छोड़ने पड़ेंगे, फिर नए वस्त्र पहनने पड़ेंगे। अगर किसी आदमी ने ऐसा समझ लिया कि मेरे वस्त्र ही मैं हूं, तो हर तीन महीने में मरना और पुनर्जन्म। फिर नए कपड़े, तो फिर नया जन्म। फिर अ ब स से शुरू करेगा वह आदमी।
जितनी परिवर्तनशील चीज से आप अपने को बांधेंगे, उतना ज्यादा विनाश, उतना रोज-रोज सब बदलना पड़ेगा। रोज मरना होगा, रोज जन्मना होगा। हम अपने को वस्त्रों से नहीं बांधते हैं, शरीर से बांधते हैं। इसलिए पचास-साठ साल, सत्तर साल, अस्सी साल में मरना पड़ता है।
क्या ऐसा भी कोई सूत्र है, जो वस्त्र की तरह नहीं है हमारे लिए, अस्तित्व है हमारा? अगर उससे हम अपने को एक जान पाएं, तो फिर कोई विनाश नहीं है। मृत्यु है इसीलिए कि हम मरणधर्मा से अपने को जोड़ लेते हैं। मृत्यु है इसीलिए कि जो मरने वाला है, उसके साथ हम अपने को एक समझ लेते हैं। उसी क्षण मृत्यु विसर्जित हो जाती है, जिस दिन हमने मरणधर्मा के साथ अपना संबंध छोड़ दिया। उस दिन जिससे हमारा संबंध है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है।
तो लाओत्से कहता है, "ताओ में प्रविष्ट हुआ वह अविनाशी है। और इस प्रकार उसका समग्र जीवन दुख के पार हो जाता है।"
दुख ही क्या है? मृत्यु की ही छाया है दुख। मृत्यु की ही लंबी हो गई छाया दुख है। जहां-जहां मृत्यु दिखाई पड़ती है, वहीं-वहीं दुख है। और जहां भी हम थोड़ी देर को मृत्यु को भुला पाते हैं, वहीं सुख मालूम पड़ता है। लेकिन आदमी बड़े दुष्टचक्र में घूमता है। भुलाने से कुछ भूलता तो नहीं है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक सांझ शराब पी रहा है। अपने घर
के सामने वृक्ष के नीचे बैठ कर शराब के प्याले पर प्याले ढाले चला जा रहा है। मेहमान एक घर में आया है। वह मुल्ला को कहता है कि नसरुद्दीन, क्यों इतनी शराब पीते हो? तो नसरुद्दीन कहता है, भुलाने के लिए। तो वह मेहमान पूछता है, क्या भुलाने के लिए? तो नसरुद्दीन कहता है, अपनी बेशर्मी, अपना पाप, अपना अपराध। तो वह मेहमान पूछता है, क्या है अपराध? क्या है पाप? क्या है बेशर्मी? नसरुद्दीन कहता है, यही कि यह शराब की लत पड़ी है। पाप यह है कि शराब पीता हूं; इस पाप को भुलाने के लिए शराब पीए चला जाता हूं।
अगर हम अपने जीवन के क्रम को गौर से देखें, तो वह ऐसा ही मिलेगा। उसमें
हम एक चक्कर में घूमते रहते हैं। एक चीज से बचने को दूसरी चीज पकड़ते हैं; दूसरी से बचने को तीसरी पकड़ते हैं; और तीसरी से बचने के लिए उसको पकड़ते हैं, जिससे बचने के लिए इन सब को पकड़ा था। और तब हम एक गोल चक्र में वर्तुलाकार घूमते रहते हैं। इससे घूमना तो हो जाता है काफी, यात्रा भी बहुत हो जाती है, पहुंचना नहीं हो पाता। पहुंचने का कोई उपाय भी नहीं है इसमें। दुख यही है कि सुख का तो हमें कोई पता नहीं है, दुख का ही पता है। और कभी-कभी दुख को भुला लेते हैं, तो उसको हम सुख कहते हैं। और जिन-जिन चीजों से हम दुख को भुलाते हैं, वे सभी चीजें और दुख को लाने वाली हैं। तब हम वर्तुल में फंस जाते हैं।
एक बात बहुत गहरे में समझ लेने की जरूरत है कि जब तक मैं मरने वाला हूं, तब तक मैं कोई भी उपाय करूं, मैं सुखी नहीं हो सकता। मौत वहां खड़ी है और उसकी छाया मेरे ऊपर पड़ रही है। वह मेरे हर सुख को जहर में डुबा देगी। आप भोजन कर रहे हैं, बहुत सुस्वादु भोजन है। और तत्काल आपको खबर मिलती है कि आज ही सांझ आपको फांसी लग जाने वाली है, स्वाद खो जाएगा। आप लाख उपाय करें, स्वाद नहीं आ सकता अब। आप किसी के प्रेम में डूबे हैं, और सोचते हैं, चांद जमीन पर उतर आया है। और अचानक खबर मिलती है कि सांझ आपको फांसी हो जाएगी। आपके पास कौन है, उसका आपको पता भी नहीं रहेगा। सब बेमानी हो गया।
कामू ने कहीं लिखा है कि जब तक मौत है, तब तक कैसे सुख संभव है? इसलिए जानवर थोड़े सुखी मालूम पड़ते हैं; क्योंकि मौत का उन्हें बोध नहीं है। और

आदमी सुखी मालूम नहीं पड़ता; क्योंकि मौत का उसे बोध है। जानवर सुखी मालूम पड़ते हैं; क्योंकि मौत का कोई बोध नहीं है, कोई धारणा नहीं है।
इसलिए आदमियों में भी जो जानवरों के थोड़े ज्यादा निकट हैं, वे थोड़े ज्यादा सुखी मालूम पड़ते हैं। वे भी मौत को भुलाए रखते हैंः कि होगी, कोई और मरता है सदा, हम तो कभी नहीं मरते। कभी अ मरता, कभी ब मरता, कभी स मरता; हम तो अभी तक नहीं मरे। और जब अभी तक नहीं मरे, तो मरने का आगे भी क्या कारण है? हमेशा कोई और ही मरा है, हम तो कभी नहीं मरे। सीधा-साफ तर्क है कि हम नहीं मरेंगे।
पशुओं को कोई बोध नहीं है कि मृत्यु है, क्योंकि पशुओं को समय का बोध नहीं है, पशुओं को भविष्य का बोध नहीं है। इसलिए पशु एक अर्थ में सुखी हैं। आदमी को बोध है कि मौत है। तो आदमी ज्यादा से ज्यादा दुखी हो सकता है, या दुख को भुला सकता है; दो ही काम कर सकता है। सुखी नहीं हो सकता--जब तक कि लाओत्से की बात न समझ ले, जब तक कि शाश्वत से एक न हो जाए।
पशु सुखी हो सकते हैं; मौत का भाव नहीं है। आदमी सुखी नहीं हो सकता। पशुओं के ढंग से आदमी सुखी नहीं हो सकता। असल में, उस यात्रा के हम पार आ गए हैं; उस जगह को हम छोड़ चुके हैं। एक जवान आदमी बच्चे के ढंग से सुखी नहीं हो सकता। कितने ही खिलौने उसके चारों तरफ रख दो, कितना ही कहो कि इतने खिलौने हैं, पूरा घर खिलौनों से भर देते हैं; लेकिन एक जवान आदमी बच्चों के ढंग से सुखी नहीं हो सकता। और अगर आप सच में बूढ़े हो गए हैं, वृद्ध हुए हैं, तो जवान के ढंग से आप सुखी नहीं हो सकते। कितनी ही खूबसूरत औरतें चारों तरफ बिठा दी जाएं, और कितना ही नाच-रंग हो जाए, अगर आप सच में वृद्ध हो गए हैं, तो फिर ये खिलौने ही मालूम पड़ेंगे, फिर इनसे सुखी नहीं हो सकते। जहां से चेतना आगे बढ़ जाती है, फिर उस तल के सुख बेमानी हैं।
आदमी सुखी नहीं हो सकता पशु के ढंग से। लेकिन सब आदमी उसी ढंग से सुखी होने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए सिर्फ दुखी होते हैं। वह कोई उपाय न रहा। चेतना पीछे नहीं लौट सकती। चेतना और आगे जा सकती है।
मृत्यु की छाया जब तक बनी रहेगी, आदमी सुखी नहीं हो सकता। तो क्या किया जाए? एक तो उपाय यह है कि शरीर को जितनी देर तक बचाया जा सके, बचाया जाए; ताकि मृत्यु दूर हटाई जा सके। लेकिन कितना ही हटाओ मौत को दूर, दूर भी हट जाए तो भी खड़ी रहती है। उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चार दिन और हट जाए, आठ दिन और हट जाए, आदमी अस्सी साल न जीकर सौ साल जीए, कि डेढ़ सौ साल जीए, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। मौत पीछे भी हट जाए, तो भी खड़ी रहती है।
और सच तो यह है, आदमी जितनी ज्यादा देर जीएगा, मौत का बोध उतना सघन हो जाएगा। अगर दस साल का बच्चा मर जाए, तो उसे मौत का कोई खास पता नहीं होता। चालीस साल का जवान मर जाए, तो अभी उसे मौत की थोड़ी-थोड़ी झलक मिलनी शुरू हुई थी। अस्सी साल का बूढ़ा आदमी मरता है, तो मरने के बहुत पहले मौत में काफी बुरी तरह डूब चुका होता है। जिस दिन डेढ़ सौ साल का आदमी मरता है, उस दिन और भी ज्यादा मौत... । अगर हम आदमी को हजार साल जिंदा रखने में सफल हो जाएं, तो मौत की जो छाया है, और सघन हो जाएगी, और भारी हो जाएगी। क्योंकि जितनी उम्र बढ़ेगी, जितना अनुभव बढ़ेगा, उतने ही जीवन के सब खिलौने बेकार होते चले जाएंगे। और एक जगह आएगी कि सिर्फ मौत ही एकमात्र अर्थ रह जाएगा, बाकी सब अर्थ खो जाएगा।
इसलिए हमारे बीच जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी है, वह सबसे ज्यादा मौत के प्रति सचेतन हो जाता है। अगर बुद्ध को रास्ते पर मरे हुए आदमी को देख कर ख्याल उठा कि जीवन बेकार है... । आपको नहीं उठता। आपको रोज रास्ते पर मरे हुए आदमी मिलते हैं। आपको इतना ही ख्याल आता हैः बेचारा! उस पर दया आती है, अपने पर नहीं। और मन में थोड़ी प्रसन्नता भी होती है कि चलो, हम तो अभी जिंदा हैं। तो बाजार की तरफ कदम और जोर से बढ़ जाते हैं कि हम तो अभी जिंदा हैं। हर मरा हुआ आदमी आपको सिर्फ इतनी ही खबर देता है कि आप अभी जिंदा हैं। बुद्ध को मरे हुए आदमी को देख कर खबर मिली कि मैं भी मर गया इसके साथ।
आयरिश कवि मुनरो ने लिखा है कि जब भी कोई मरता है, तो मैं ही मरता हूं।
और इसलिए कभी बाहर पूछने को मत भेजो कि किसकी अरथी गुजरती है; मेरी ही अरथी गुजरती है।

बुद्ध को मरा हुआ आदमी देख कर लगा कि मैं मर गया; अगर एक आदमी मर गया,
तो मैं मर गया। मौत निश्चित है; तो अब जीवन बेकार हो गया।
जितनी सचेतन आत्मा होगी, उतनी जल्दी मौत की छाया पकड़ेगी। आपको बूढ़े होने में अस्सी साल लगते हैं; बुद्ध बीस साल में बूढ़े हो गए।
इससे आप यह मत समझना कि बूढ़े ही आदमी... । भारत में यह धारणा ही रही है सदा से कि वृद्ध को ही संन्यास लेना चाहिए। मेरे पास बहुत लोग आते हैं और वे कहते हैं कि आपको वृद्ध को ही संन्यास देना चाहिए, सत्तर-पचहत्तर साल पार कर जाए! मैं उनसे कहता हूं, तुम्हें पता नहीं कि आदमी कब वृद्ध हो जाए। पचहत्तर साल में भी कई लोग हैं, जो वृद्ध नहीं होते। कई क्या, बहुत लोग नहीं होते। आसान तो नहीं है वृद्ध हो जाना। बूढ़ा हो जाना बहुत आसान है; वृद्ध हो जाना उतना आसान नहीं। क्योंकि बूढ़ा होना तो सिर्फ उम्र से हो जाता है, वृद्ध होना तो बुद्धि की बात है। कोई आदमी बहुत पहले वृद्ध हो जाता है।
बुद्ध बीस साल में वृद्ध हो गए। जो अस्सी साल के बूढ़े की भी बुद्धि में नहीं आता है, वह बीस साल के बुद्ध की बुद्धि में आ गया, वे वृद्ध हो गए। उन्हें दिखाई पड़ गया कि मौत सुनिश्चित है। अब कब होगी, यह बात गौण है। यह नासमझों पर छोड़ा जा सकता है कि वे तय करें कि कब होगी। मेरे लिए होगी, तो कब होगी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अब मुझे यही जानना जरूरी हो गया कि क्या मेरे भीतर ऐसा कुछ है, जो अमृत है! अगर नहीं है, तो सब व्यर्थ है। अगर है, तो उसी को खोजने में सार्थकता है।
लाओत्से कहता है, ताओ में जो प्रविष्ट हो जाता है, वह अविनाशी है। वह अमृत हो गया। उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। और जो अविनाशी है, वह समग्र दुखों के पार हो जाता है। क्योंकि सारे दुख विनाश के दुख हैं। मेरा विनाशी होना ही मेरे दुख का कारण है। अविनाशी हो जाना ही मेरे आनंद का सूत्रपात है।
आज इतना ही। बैठें लेकिन; कोई उठे न। पांच-दस मिनट कीर्तन के बाद जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
उनचालीसवां प्रवचन

श्रेष्ठ शासक कौन? --जो परमात्मा जैसा हो

Chapter 17 : Part 1

Rulers

Of the best rulers
The people do not know that they exist;
The next best they love and praise;
The next they fear;
And the next they revile.
When they do not command the peoples faith, Some will lose faith in them.
And then they resort to oaths!
But (of the best) when their task is accomplished, their work is done,
The people all remark: "we have done it ourselves".

अध्याय 17 : खंड 1

शासक

सर्वश्रेष्ठ शासक कौन है?
जिसके होने की भी खबर प्रजा को न हो;
उससे कम श्रेष्ठ को प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है; उससे भी कम से वह डरती है;
और सब से घटिया शासक की वह निंदा करती है।
जब शासक प्रजा की श्रद्धा के पात्र नहीं रह जाते,
और प्रजा उनमें विश्वास नहीं करती,
तब ऐसे शासक शपथों का सहारा लेते हैं!
लेकिन जब श्रेष्ठ शासक का काम पूरा हो जाता है,
तब प्रजा कहती हैः "यह हमने स्वयं किया है।"

पहले एक प्रश्न।

किसी ने पूछा हैः लोग अक्सर कहते सुने जाते हैं, जो होता है ठीक ही होता है। इस ठीक का क्या अर्थ है? क्या यह सिर्फ एक सांत्वना है मन को समझाने के लिए? क्या यह संभव है कि जो भी होता हो, सभी ठीक होता हो? कहीं यह वैसा ही तो नहीं है, जैसा ईसप की कथा में लोमड़ी को अंगूर खट्टे मालूम पड़े; क्योंकि वह उन तक पहुंच नहीं सकी!

श्रेष्ठतम नियम भी निकृष्टतम उपयोग में लाए जा सकते हैं। जीवन की परम रहस्य की बातें भी क्षुद्रताओं को छिपाने का कारण बन सकती हैं। ऐसा ही यह सूत्र भी है, और लाओत्से से संबंधित है, इसलिए इस पर विचार करना उचित है। लाओत्से कहेगा, जो होता है ठीक ही होता है। इसलिए नहीं कि यह कोई सांत्वना है, कोई कंसोलेशन है; बल्कि इसलिए कि ऐसी ही लाओत्से की दृष्टि है। लाओत्से कहता है, जो गलत है, वह हो ही कैसे सकता है? और जो भी हो सकता है, वह ठीक है।
यहां ठीक से संबंध, जो हो रहा है, उसके संबंध में वक्तव्य नहीं है, बल्कि जो हो रहा है, उसको देखने वाले के संबंध में वक्तव्य है। जब लाओत्से

कहता है, जो होता है ठीक होता है, तो वह यह कह रहा है कि अब इस जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मेरे लिए बुरा हो। यह वक्तव्य, जो होता है, उसके संबंध में नहीं है। यह वक्तव्य साक्षी के संबंध में है, लाओत्से के खुद के संबंध में है। लाओत्से यह कह रहा है कि अब ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मेरे लिए बुरा हो सके। मैं उस जगह खड़ा हूं, जहां बुराई नहीं छू सकती है। अब सभी कुछ ठीक है। अब इसलिए सभी कुछ ठीक है कि लाओत्से उस आनंद में है, जिस आनंद को नष्ट करने का अब कोई उपाय नहीं है।
आपके लिए सभी कुछ ठीक नहीं हो सकता। आपके लिए वही ठीक होगा, जिससे सुख मिले; और वह गलत होगा, जिससे दुख मिले। जब तक आपको दुख मिल सकता है, तब तक सभी कुछ ठीक नहीं हो सकता। जब तक आप दुखी हो सकते हैं, तब तक सभी कैसे ठीक होगा? छोटा बच्चा आपका पैदा हो प्यारा और मर जाए, कैसे कह सकेंगे कि ठीक हुआ? जिसे प्रेम करते हों और वह न मिल सके, कैसे कह सकेंगे कि ठीक हुआ? जीवन भर, जो आप समझते हैं अच्छा है, करते रहें और परिणाम बुरे हों, कैसे कह सकेंगे कि ठीक हुआ?
नहीं कह सकेंगे; क्योंकि आपका सुख कारण-निर्भर है। तो जिन कारणों से सुख सध जाता है, वे ठीक हैं; और जिन कारणों से नहीं सधता, वे ठीक नहीं हैं। जब तक आपको सुख-दुख में फर्क है, तब तक कुछ गैर-ठीक होगा ही। बीमारी को कैसे ठीक कहिएगा? और मौत को कैसे ठीक कहिएगा?
जब तक जीवन की चाह है, तब तक मौत तो बुरी होगी ही। और जब तक स्वास्थ्य
की आकांक्षा है, तब तक बीमारी शत्रु है। जब हम किसी चीज को ठीक और गैर-ठीक कहते हैं, तो चीज ठीक या गैर-ठीक है, इससे कोई संबंध नहीं है; हमारी अपेक्षाओं की हम खबर देते हैं।
और अगर ऐसा आदमी कहे कि सब ठीक है, तो यह कंसोलेशन, सांत्वना ही होगी।
और इस कहने में कोई आनंद न होगा, सिर्फ एक निराशा, एक उदासी होगी। इस वक्तव्य में कोई विजय की घोषणा नहीं है; इस वक्तव्य में पराजय का स्वीकार है। कुछ नहीं कर पाते हैं, इसलिए समझा लेते हैं अपने को कह कर कि सब ठीक है। संतोष पराजितों की भी सहायता करता है। लेकिन वह संतोष झूठा होता है। वास्तविक संतोष तो उन्हें ही मिलता है, जो जीवन के विजेता हैं। विजेता इन अर्थों में कि अब कोई उपाय नहीं है उन्हें हराने का; विजेता इन अर्थों में कि अब उन्हें हार भी हार नहीं है। और लाओत्से ने कहा है, तुम मुझे हरा न सकोगे, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ हूं। तुम मुझे मेरे सिंहासन से उतार न सकोगे, क्योंकि मैं जहां बैठा हूं, वह अंतिम स्थान है। उससे नीचे उतारने का कोई उपाय नहीं है। तुम मुझे दुख न दे सकोगे, क्योंकि मैंने सुख की आकांक्षा को ही विसर्जित कर दिया है। इस अर्थ में जो विजेता है, संतोष उसके जीवन में प्रकाश की तरह है।
हम जैसे हारे हुए लोग... । और हम बहुत हारे हुए लोग हैं; क्योंकि जो भी
हम चाहते हैं, वह नहीं मिलता। जो भी हम कामना करते हैं, वही कामना टूट जाती है, बिखर जाती है। हम बुरी तरह हारे हुए लोग हैं--सर्वहारा, सब कुछ हारे हुए हैं; कुछ मिलता नहीं है। इस हार में भी संतोष का उपयोग किया जा सकता है। तब वह झूठा है। तब ऊपर से थोपा हुआ, चिपकाया हुआ है। तब भी हम कह सकते हैं, सब ठीक है। तब ईसप की कथा ठीक है।
ईसप की कथा हम सबको ज्ञात है कि लोमड़ी ने बहुत छलांग मारीं, अंगूरों
तक नहीं पहुंच सकी। लेकिन अहंकार यह भी तो स्वीकार नहीं कर सकता कि मेरी छलांग छोटी है। अहंकार यही कहेगा कि अंगूर खट्टे हैं।
लेकिन यह कहानी अधूरी है। ईसप दुबारा आए, तो कहानी को पूरा करे। मैं कहानी को पूरा कर देता हूं। जब इस लोमड़ी ने ईसप की कहानी पढ़ी, तो उसने तत्काल एक जिम्नाजियम में जाकर व्यायाम करना शुरू कर दिया। छलांग लगानी सीखी, दवाएं लीं, ताकत के लिए विटामिन्स लिए। और लोमड़ी इतनी ताकतवर हो गई कि वापस गई उसी वृक्ष के नीचे और पहली ही छलांग में अंगूर का गुच्छा उसके हाथ में आ गया। लेकिन जब उसने चखा, तो अंगूर सच में ही खट्टे थे। लेकिन अब लोमड़ी क्या करे? उसने लौट कर लोगों से कहा कि अंगूर बहुत मीठे हैं। अहंकार है, तो कहीं से भी भर लेगा। न पहुंच पाएं अंगूर तक, तो अंगूर खट्टे हैं। और पहुंच जाएं, तो खट्टे भी हों तो भी मीठे हैं। एक बात ध्यान रख लेनी जरूरी है कि हम जो भी वक्तव्य दे रहे हैं, वह वक्तव्य हमारी पराजय

से तो नहीं निकलता है? हार से तो नहीं निकलता है? हारे हुए वक्तव्यों का कोई भी मूल्य नहीं है।
और लाओत्से आपको यह नहीं सिखा रहा है कि आप थोप लें संतोष। लाओत्से यह
कह रहा है कि संतोष जीवन के साथ संगीत का संबंध है, पराजय का नहीं। दुश्मनी का नहीं, मैत्री का संबंध है। लाओत्से यह कह रहा है कि जो भी होता है, वह इतनी विराट घटना है और इतने विराट उसके कारण हैं और इतना विराट उसका फैलाव और रहस्य है कि आप बचकानापन करेंगे, अगर आप निर्णय करें कि ठीक है या गलत है। आप निर्णायक नहीं हो सकते।
जगत इतनी बड़ी घटना है कि उसमें जो होता है, वह तो एक फ्रैगमेंट, एक टुकड़ा है। जैसे कि किसी आदमी को एक उपन्यास का एक पन्ना में हाथ लग जाए और वह उस पन्ने को पढ़ कर निर्णय ले कि उपन्यास नैतिक है या अनैतिक है, अश्लील है कि श्लील है, श्रेष्ठ है कि निकृष्ट है, और उस पन्ने पर वह निर्णय करे ठीक या गलत होने का, तो हम उसे नासमझ कहेंगे। हम कहेंगे, पूरी कथा से परिचित हो जाना जरूरी है निर्णय के पहले। लेकिन जगत के संबंध में हम रोज निर्णय लेते हैं। और जगत की पूरी कथा से परिचित होने का कोई भी उपाय नहीं है।
अगर हिटलर मर जाए बचपन में ही, तो उसकी मां सोचेगीः बहुत बुरा हुआ। क्योंकि यह एक टुकड़ा है। लेकिन हिटलर ने जो किया, अगर उसकी मां जिंदा हो, तो सोचेगीः यह पैदा होते ही मर जाता, तो अच्छा था। लेकिन यह भी एक टुकड़ा है। और अभी इसके वृहत्तर... हिटलर भला समाप्त हो जाए, लेकिन हिटलर ने जो किया है, वह सक्रिय रहेगा। और यह भी हो सकता है कि दुनिया में अब कोई युद्ध न हो, सिर्फ इसलिए कि हिटलर हो गया। तब? तब हिटलर का होना अच्छा होगा या बुरा?
यह हो सकता है कि हिटलर के कारण ही युद्ध रुक जाए। और मुझे दिखता है! बुद्ध और महावीर के कारण युद्ध नहीं रुक सके; हिटलर के कारण रुक सकते हैं। क्योंकि हिटलर ने युद्ध को ऐसा विषाक्त रूप दे दिया, उसको उसकी चरम परिणति तक पहुंचा दिया, बीमारी आखिरी जगह पहुंच गई, कि अगर आदमी अब भी युद्ध करे, तो फिर हमें मानना चाहिए कि आदमी में आदमियत जैसा कुछ भी नहीं है। हो सकता है जगत में अब कोई विराट महायुद्ध न हो। लेकिन तब उसका सारा श्रेय हिटलर पर ही जाएगा।
कौन कह सकता है कि हिटलर का होना अच्छा हुआ या बुरा हुआ?
हम टुकड़े पर निर्णय करते हैं, एक खंड पर निर्णय करते हैं। जीवन अखंड धारा है। और अनंत है, अनादि है। न उसका प्रारंभ है, न उसका कोई अंत है। तो सिर्फ निर्णायक परमात्मा ही हो सकता है। जिस दिन सृष्टि समाप्त हो, उस दिन ही तय हो सकता हैः क्या था ठीक, क्या था गलत। हम कैसे निर्णय ले सकते हैं? लाओत्से जब कहता है कि सब ठीक है, तो वह यह कह रहा है कि निर्णय हम ले नहीं सकते। यह निर्णय नहीं है। जब लाओत्से कह रहा है, सब ठीक है, तो यह "सब गलत है," उसके विपरीत निर्णय नहीं है। जब लाओत्से कह रहा है, सब ठीक है, तो वह यह कह रहा है कि मैं विराट की इच्छा के साथ अपने को एक करता हूं; मेरी अपनी कोई अलग इच्छा नहीं।
जीसस को सूली लग रही है। आखिरी क्षण में एक संदेह जीसस को पकड़ जाता है। जब हाथ पर कीले ठोंक दिए गए हैं, तब जीसस के मुंह से आह निकलती है और वे कहते हैं, हे परमात्मा, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है?
कहीं छिपी कोई आकांक्षा रही होगी, कहीं दूर गहरे में, जिसका जीसस को
भी पता न हो। ठोंके गए कीलों ने उसे जगा दिया होगा। कहीं किसी गहरे में प्रसुप्त कोई बीज रहा होगा, यह भरोसा रहा होगा कि ईश्वर मुझे सूली नहीं लगने देगा। कहीं गहरे में ईश्वर के प्रति यह धारणा रही होगी कि सूली तो बुरी है, तो मुझे ईश्वर सूली कैसे लगने देगा! सूली अच्छी है, ऐसा जीसस को ख्याल नहीं रहा होगा। नहीं तो जीसस के मुंह से यह वचन न निकलता कि हे परमात्मा, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? इसमें ईश्वर पर संदेह तो हो गया। और इसमें सर्व-स्वीकार नहीं रहा। सूली बुरी हो गई। और जो हो रहा है, वह गलत हो रहा है।
लेकिन तत्क्षण जीसस जैसे व्यक्ति को बोध आ गया होगा। तत्क्षण जीसस को लगा होगा, यह भूल हो गई। यह तो भूल हो गई साफ, मैंने ईश्वर से अपने को

ज्यादा बुद्धिमान मान लिया। मैंने निर्णय दे दिया कि जो हो रहा है, वह गलत हो रहा है; और जो होना चाहिए था सही, वह नहीं हो रहा है। इस जरा सी आह में मैं नास्तिक हो गया; मेरी श्रद्धा खंडित हो गई। तो तत्क्षण जीसस ने क्षमा मांगी है। उनकी आंखों से आंसू बह गए और उन्होंने कहा, हे परमात्मा, मुझे क्षमा कर! तेरी मर्जी ही मेरी मर्जी है। तेरी मर्जी पूरी हो; क्योंकि तेरी मर्जी ही शुभ है।
लाओत्से जब कहता है, सब ठीक है, तो वह यह कह रहा है, उस शाश्वत नियम के विपरीत हमारे वक्तव्य नासमझी से भरे हुए हैं। वह शाश्वत नियम इतना बड़ा है--होगा ही। हम उससे ही पैदा होते हैं। मेरी मृत्यु होगी कल, तो मैं कहूंगा बुरा हो रहा है। लेकिन जिससे मेरा जन्म हुआ था, उससे ही मेरी मृत्यु हो रही है। और जिस शाश्वत नियम से मैं प्रकट हुआ था, वही शाश्वत नियम मुझे वापस बुला रहा है। अगर उसके भेजने से मैं राजी था, तो उसके बुलाने से क्यों राजी नहीं हूं? और अगर उसका दिया हुआ जीवन अच्छा था, तो उसकी दी हुई मौत बुरी कैसे हो सकती है? एक ही स्रोत से सब कुछ जन्म रहा है। उसी स्रोत से खिलते हैं फूल और उसी स्रोत से लगते हैं कांटे। अगर उसके फूल भले हैं, तो उसके कांटे बुरे क्यों होंगे?
और लाओत्से यह कह रहा है कि कांटे भी उसी के हैं, फूल भी उसी के हैं, इसलिए सब ठीक है। यह "सब ठीक" वस्तुओं के प्रति वक्तव्य नहीं, स्वयं और शाश्वत के साथ जो संगीत सध गया है, उसकी खबर है। यह कोई सांत्वना नहीं है। क्योंकि सांत्वना का तो अर्थ ही यही होता है कि सब गलत है, और हम अपने को समझा रहे हैं कि सब ठीक है। जो ठीक नहीं है, उसको हम समझा रहे हैं कि सब ठीक है, तब सांत्वना है। लेकिन अगर ऐसी ही प्रतीति है कि सब ठीक है, तो फिर सांत्वना नहीं है।
धर्म का निकृष्ट रूप सांत्वना है, कंसोलेशन है। और धर्म का श्रेष्ठतम रूप संगीत है। व्यक्ति और विराट के बीच जो संगीत है, वह धर्म का श्रेष्ठतम रूप है। व्यक्ति और विराट के बीच जो संघर्ष है, उसमें व्यक्ति की जो पराजय है, उस पराजय में जो सांत्वना खोजी जा रही है, वह धर्म का निकृष्टतम रूप है। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह इस शाश्वत नियम को सांत्वना बनाता है या सत्य। इसे केवल एक मलहम-पट्टी समझता है कि घाव को भीतर छिपा लिया, या एक अनंत संगीत की संभावना--यह व्यक्ति पर निर्भर है। यह आप पर निर्भर है। अधिक लोग सांत्वना में ही जीते हैं। इसीलिए आदमी दुख में धर्म की तलाश करता है; क्योंकि दुख में सांत्वना की जरूरत है। दुखी आदमी के पैर मंदिर की तरफ बढ़ने लगते हैं। मार्क्स ने तब तो ठीक ही कहा है कि धर्म दुखी आदमी की आह है और धर्म जनता के लिए अफीम है। ठीक ही कहा है। धर्म का जो निकृष्टतम रूप है, वह यही है। और यही बड़ा रूप है। सौ में निन्यानबे लोग इसी भांति धार्मिक हैं। और आश्चर्य नहीं है कि मार्क्स को सौवां आदमी न मिला हो। वह आसान भी नहीं है सौवां आदमी मिलना। निन्यानबे आदमी जगह-जगह मौजूद हैं। अगर मार्क्स को ऐसा लगा हो कि धर्म अफीम का एक नशा है, तो कुछ गलत नहीं लगा।
लेकिन इसमें निंदा भी क्या है? चिकित्सक भी, अगर आप बहुत दर्द में हों,
तो नशा देकर आपके दर्द को भुलाता है। मार्फिया देता है। दर्द के साथ एक मजा है कि उसका पता चले, तो ही होता है। पता ही न चले, तो कहां है? दर्द के साथ हम दो काम कर सकते हैंः दर्द को मिटाने का--वह धर्म की श्रेष्ठतम संभावना है; दर्द को भुलाने का--वह धर्म की निकृष्टतम संभावना है। जब दुखी आदमी धर्म की तरफ बढ़ता है, तो वह सांत्वना के लिए जा रहा है। जब सुखी आदमी धर्म की तरफ बढ़ता है, तब वह संगीत के लिए जा रहा है।
इसलिए मैं कहता हूं, जब आप सुख से भरे हों, तब धर्म की तरफ बढ़ना। बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। दुख से जब भरे होते हैं, तब बहुत सरल है। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि दुखी, दीन, दरिद्र, गरीब समाज धार्मिक नहीं हो पाते। उनके लिए धर्म अफीम ही है। समृद्ध, सुखी, संपन्न समाज ही धार्मिक हो पाते हैं। क्योंकि सुख जब व्यर्थ मालूम होता है, तब ठीक और गैर-ठीक की सब धारणाएं गिर जाती हैं। जब सुख ही व्यर्थ मालूम होने लगता है, तो फिर क्या ठीक है और क्या गलत है?

जब तक दुख गलत मालूम होता है, तब तक हम ज्यादा से ज्यादा सांत्वना खोज सकते हैं। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि आप धर्म को सांत्वना बनाते हैं। अगर आप धर्म को सांत्वना बनाते हैं, तो धर्म आपके लिए एक ड्रग, अल्कोहल, इससे ज्यादा नहीं है।
नीत्शे ने कहा है, पश्चिम में दो मादक द्रव्य हैंः क्रिश्चियनिटी और अल्कोहल, शराब और ईसाइयत।
वह ठीक कहा है। अधिक लोग शराब और धर्म से एक ही काम लेते हैं। जो लोग शराब से ले सकते हैं, वे धर्म की फिक्र नहीं करते। जो शराब से लेने में डरते हैं, वे धर्म से वही काम ले लेते हैं। इसलिए जो धार्मिक, तथाकथित धार्मिक आदमी, जो धर्म से शराब का ही काम ले रहा है, वह शराबियों के बड़े खिलाफ होगा। सजातीय हैं वे। और शराब काम्पिटीटर है उनके धर्म का। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी शराब के बड़ा खिलाफ होगा। क्योंकि उसे पक्का भरोसा है कि अगर शराब ज्यादा चलती है, तो धर्म कम चलेगा। वह काम्पिटीटर है।
ठीक धार्मिक आदमी को शराब से क्या विरोध हो सकता है! बल्कि एक अर्थ में बेहतर है कि आदमी शराब पीकर भुला ले। धर्म पीकर जो भुलाता है, वह ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि धर्म का दुरुपयोग है वह। और शराब का यह सदुपयोग है। शराब की श्रेष्ठतम संभावना यही है कि आपको भुला दे। धर्म की यह निकृष्टतम संभावना है कि भुला दे।
तो जो धर्म का शराब की तरह उपयोग करता है, वह धर्म को भी नुकसान पहुंचाता है। उससे बेहतर है वह शराब ही पी ले। कम से कम रास्ता सीधा, साफ-सुथरा तो है। अपने को धोखा तो नहीं दे रहा है। लेकिन अधिक लोग धर्म को भी विस्मरण के लिए ही काम में लाते हैं। उनके कारण ही पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाती।
यह प्रश्न ठीक है। सर्व-स्वीकार परम आस्तिकता है--टोटल एक्सेप्टबिलिटी। सर्व-स्वीकार में कोई दंश नहीं है। कुछ ऐसा नहीं है कि कोई तकलीफ है, इसलिए सब स्वीकार। बल्कि यह स्मरण आ गया है कि एक लहर अगर सागर को स्वीकार न करे, तो व्यर्थ ही परेशान होगी। एक लहर का होना ही सागर का होना है। सागर का अस्तित्व ही लहर में आंदोलित हो रहा है। अगर लहर अपनी इच्छा निर्मित कर ले, तो दुखी होगी, पीड़ित होगी। लहर सागर पर ही सब छोड़ दे, तो चिंता का भार हट जाएगा।
चिंता हमारी यही है कि हम लहर होकर अपने को सागर समझ लेते हैं, लहर होकर सागर के विपरीत खड़े हो जाते हैं। तब अस्वीकार पैदा होता है। तब यह ठीक है और यह गलत, हम निर्णायक हो जाते हैं।
लाओत्से इतना ही कहता है कि निर्णय लहर क्या लेगी! लहर है ही कहां, जो निर्णय ले सके? उसका अलग होना ही नहीं है, सागर का एक हिस्सा है; सागर से ही जन्मी है, सागर में ही लीन हो जाएगी। जन्म को जिस सदभाव से स्वीकार किया है, उसी भाव से मृत्यु को भी स्वीकार कर लेना जरूरी है। दोनों ही सागर का दान हैं। सुख को जिस भांति माना, वैसे ही दुख को भी मान लेना जरूरी है। दोनों ही सागर के दान हैं। इस अर्थ में सर्व-स्वीकार परम क्रांति है, उससे बड़ी और कोई क्रांति नहीं है। क्योंकि तब व्यक्ति की बूंद खो जाती है, और सागर ही रह जाता है।
अब हम सूत्र को लें।
निष्क्रियता लाओत्से के लिए परम सत्य है, आत्यंतिक, अल्टीमेट। लेकिन निष्क्रियता का ऐसा अर्थ नहीं है कि वह परिणामकारी नहीं है। लाओत्से कहता है, निष्क्रियता परम परिणामकारी है। उसके होने से ही घटनाएं घट जाती हैं। एक शांत व्यक्ति आपके पास से गुजर जाए--शांत व्यक्ति, कि जिसके भीतर एक भी तरंग नहीं, एक मौन झील, जिसमें सब शांत हो गया है, जिसके भीतर कोई आंदोलन नहीं, वह आपके पास से गुजर जाए--तो जैसे हवा का एक शांत झोंका आपके पास से गुजर गया हो। वह कुछ करता नहीं है। सिर्फ आपके पास मौजूद था, अचानक आप पाएंगे, आपके भीतर कोई शांति की वर्षा हो गई। शायद आपको ख्याल भी न हो कि जो पास से गुजर गया है, उसके कारण। और जो गुजर गया है, उसको तो बिल्कुल ही ख्याल नहीं होगा कि उसके कारण किसी पर शांति की वर्षा हो गई है। उसकी निष्क्रियता भी, उसकी शून्यता भी परिणामकारी है।

लाओत्से कहता है, श्रेष्ठतम परिणाम शून्यता से आते हैं। क्योंकि शून्यता में कोई हिंसा नहीं है। अगर मेरी शांति आपको छू ले और आप शांत हो जाएं, तो मैंने आपको बदला नहीं, आप बदल गए। लेकिन अगर मुझे चेष्टा करनी पड़े आपको बदलने की और आपको शांत करने के लिए उपाय करने पड़ें, तो मेरे उपाय कितने ही शुभ मालूम हों, उनमें हिंसा होगी ही। क्योंकि जब एक व्यक्ति तय करता है दूसरे को बदलने का, तभी हिंसा शुरू हो जाती है।
इसलिए साधु-महात्मा बड़े सूक्ष्म रूप में हिंसक होते हैं; क्योंकि वे आपको वैसा ही स्वीकार नहीं कर सकते, जैसे आप हैं। वे आपको बदलेंगे। वे आपको अच्छा बनाएंगे। वे आपको शुभ बनाएंगे। वे आपके जीवन से मिट्टी अलग करेंगे और सोना डालेंगे।
बड़े अच्छे उनके ख्याल हैं। लेकिन दूसरे को बदलने का ख्याल ही दूसरे
को मिटाने का ख्याल है। दूसरा जैसा है, उसमें रत्ती भर भी फर्क करने का अर्थ है कि हमें दूसरे की स्वतंत्रता स्वीकार नहीं। और हम में से कोई भी दूसरे की स्वतंत्रता बर्दाश्त नहीं करता। बाप बेटे को बदलने में लगा है, बनाने में लगा है; बिना इसकी फिक्र किए कि वह खुद भी बन पाया है या नहीं। हर बाप बेटे के साथ हिंसा करता है। इसलिए दुनिया इतनी बुरी है। फिर बेटे अपने बेटों के साथ निकाल लेते हैं। और सिलसिला जारी रहता है। ऐसी पत्नी खोजनी मुश्किल है, जो पति को बदलने में न लगी हो। अब तक ऐसा पति नहीं हो सका--हो ही नहीं सका, श्रेष्ठतम रहा हो, तो भी--जिसमें पत्नी के लिए बदलाहट का काम बाकी न हो। सुकरात जैसा पति मिल जाए, तो भी पत्नी बदलने की कोशिश करती है। बड़ी भली आशा से, बड़ी अच्छी आकांक्षा से--अच्छा बनाने की।
और एक मजे की बात है, जब आप किसी को अच्छा बनाने की कोशिश में लग जाते हैं, तो आप बड़ी कुशलता से दुष्ट हो सकते हैं। और दुष्टता चूंकि अच्छाई में छिपी होती है, इसलिए उसका विरोध भी नहीं किया जा सकता। इसलिए जो नासमझ दुष्ट हैं, वे सीधे-सीधे दुष्ट होते हैं। जो समझदार और चालाक दुष्ट हैं, वे अच्छाई के नाम पर दुष्ट होते हैं। अगर कोई आदमी आपको ही बदलने के लिए आपकी गर्दन पकड़ ले, तो विरोध भी तो नहीं किया जा सकता, बगावत भी तो नहीं की जा सकती। इसलिए तथाकथित अच्छे आदमियों के साथ में बेचैनी मालूम पड़ती है।
तो मैं आपको सूत्र देता हूंः वही है ठीक अच्छा आदमी, जिसके साथ बेचैनी मालूम न पड़े। अगर किसी अच्छे आदमी के पास बेचैनी मालूम पड़े, तो समझना कि उस अच्छे आदमी से कुछ न कुछ हिंसा आपकी तरफ बहती है। इसलिए महात्माओं के दर्शन किए जा सकते हैं, उनके साथ रहना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि चौबीस घंटे उनकी आंखें आप पर गड़ी हुई हैं--आपने यह तो नहीं खाया, यह तो नहीं पीया, ऐसे तो नहीं बैठे, वैसे तो नहीं सोए। वे चौबीस घंटे आपके पहरे पर हैं। आप जैसे हैं, वह उन्हें स्वीकार नहीं है।
बड़ा मजा है, आप जैसे हैं, परमात्मा को आप बिल्कुल स्वीकार हैं। अब तक मैं नहीं समझता कि बुरे से बुरे आदमी से भी परमात्मा ने शिकायत की हो कि तू थोड़ा अच्छा हो जा! थोड़ा तो सुधर! परमात्मा ने अब तक शिकायत ही नहीं की। और महात्माओं के पास सिवाय शिकायत करने के दूसरा कोई काम नहीं है। ऐसा लगता है कि महात्माओं का धंधा और परमात्मा के धंधे में बुनियादी दुश्मनी है। परमात्मा को सर्व-स्वीकार है।
लाओत्से का यह सूत्र इसी ओर इशारा करने वाला सूत्र है।
लाओत्से कहता है, "सर्वश्रेष्ठ शासक कौन है? जिसके होने की भी खबर प्रजा को न हो।"
पता ही न चले कि वह है भी। क्योंकि होने की भी खबर हिंसा है। अगर बेटे
को पता चलता है घर में कि बाप है, तो बाप की तरफ से कोई न कोई हिंसा जारी है। अगर पति को पता चलता है कि घर में पत्नी है और दरवाजे पर सम्हल कर और टाई वगैरह ठीक करके उसको भीतर प्रवेश करना पड़ता है, तो समझना कि हिंसा है। अगर पति के आने से पत्नी ठीक वैसी ही नहीं रह जाती जैसी अकेले में थी, तो समझना कि पति की तरफ से हिंसा है। होने का पता ही नहीं चलना चाहिए। प्रेम की जो परम अभिव्यक्ति है, वह यही है कि प्रेमी का पता ही न चले, उसकी मौजूदगी कहीं भी चोट न करे।
ध्यान रखें, पता ही चलता है चोट से। संस्कृत में बड़े कीमती शब्द हैं।
एक कीमती शब्द है वेदना। वेदना के दोनों अर्थ होते हैं, दुख भी और ज्ञान

भी। वेद का अर्थ होता है ज्ञान। उसी विद से बनता है विद्वान, जानने वाला; उसी से बनता है वेदना, दुख। एक ही शब्द के दो अर्थ और बड़े अजीब! अगर वेदना का अर्थ दुख हो और वेदना का अर्थ ज्ञान भी हो, तो समझ में नहीं पड़ता, दुख और ज्ञान में क्या संबंध है? अगर दुख की जगह सुख और ज्ञान होता, तो संबंध भी बन सकता था।
लेकिन संबंध है। आपको दुख का ही ज्ञान होता है, सुख का ज्ञान नहीं होता। इसलिए जिन क्षणों को आप कहते हैं कि बड़े सुख में बीते; वे वे क्षण हैं, जिनके बीतते वक्त आपको उनका बिल्कुल भी पता नहीं चला। दुख का बोध होता है। पैर में कांटा गड़ जाए, तो पैर का पता चलता है; नहीं तो पैर का पता नहीं चलता। सिर में दर्द हो, तो पहली दफे सिर का पता चलता है; नहीं तो सिर का पता नहीं चलता।
तो जिस आदमी को सिर का पता चलता हो, उसे जानना चाहिए कि उसे सिर की कोई बीमारी है। जिस आदमी को शरीर का पता चलता हो, उसका अर्थ है कि वह बीमार है, रुग्ण है। स्वास्थ्य की एक ही परिभाषा है कि शरीर का पता न चले। स्वस्थ आदमी विदेह हो जाएगा, उसे पता ही नहीं चलेगा कि देह भी है। सिर्फ बीमार आदमी के पास शरीर होता है, स्वस्थ आदमी के पास शरीर नहीं होता। और बीमार आदमी के पास बड़ा शरीर होता है। जितनी बीमारियां, उतना बड़ा शरीर। क्योंकि उतना शरीर का बोध होता है।
दुख, बोध एक ही बात है। जिसकी मौजूदगी पता चले, उससे आपको कोई दुख मिल रहा है। जिसकी मौजूदगी पता न चले, उससे ही आनंद मिलता है। अगर दो प्रेमी एक कमरे में बैठे हैं, तो वहां दो व्यक्ति नहीं बैठे हैं। वहां एक-दूसरे से एक-दूसरे को कोई बोध नहीं है। वहां एक ही चेतना रह गई है।
लाओत्से कहता है, सर्वश्रेष्ठ शासक वह है, जिसके होने का पता ही शासितों को न चले।
शायद परमात्मा के अतिरिक्त ऐसा और कोई शासक नहीं है। उसका भर हमें पता नहीं चलता। खोजें, तो भी पता नहीं चलता। पता लगाने जाएं हिमालय में, तो भी पता नहीं चलता। काशी, मक्का, मदीना भटकें, तो भी पता नहीं चलता।
थोड़ा ख्याल करें। आपके मन की एक इच्छा होती है कि आप जहां भी जाएं, वहां लोगों को पता चले कि आप आए हैं। कितना उपाय नहीं करते हैं हम इसका कि लोगों को पता चले कि आप आ गए। आप इस भवन में आएं और किसी को पता न चले, तो आप बड़े पीड़ित हो जाएंगे, बड़े पीड़ित हो जाएंगे।
आसपेंस्की पहली दफा जब गुरजिएफ को मिलने गया, तो बीस लोग बैठे थे। आसपेंस्की बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति था, बड़ा गणितज्ञ था, वैज्ञानिक चिंतक था--अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध। गुरजिएफ को कोई जानता भी नहीं था। किसी अचेतन मन में आसपेंस्की ने सोचा होगाः गुरजिएफ उठ कर मिलेगा, जो लोग बैठे होंगे, चमत्कृत होंगे कि आसपेंस्की जैसा अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का व्यक्ति अनजान गुरजिएफ से मिलने आया है! वहां बीस लोग बैठे थे और गुरजिएफ भी बैठा था। आसपेंस्की को जब भीतर ले जाया गया, तो आसपेंस्की ऐसा हैरान हुआ, ऐसा मरा हुआ कमरा उसने कभी देखा ही नहीं था। उन बीस में से कोई हिला भी नहीं, किसी ने आंख भी उसकी तरफ न की। उन बीस ने जैसे जाना ही नहीं कि कोई आया। गुरजिएफ वैसा ही बैठा रहा, जैसा बैठा था।
आसपेंस्की जाकर खड़ा हो गया। यह बड़ा अजीब परिचय का क्षण था। यह भी न पूछा--कैसे आए? यह भी न पूछा--कौन हैं? यह भी न कहा--बैठें, कृपा करें। सर्द रात थी। आसपेंस्की ने लिखा है, माथे पर मेरे एक क्षण में पसीना झलकने लगा। यह मैं कहां आ गया हूं? वहां से पैर भी वापस लौटाने की हिम्मत न रही। वहां मैं जड़ की तरह खड़ा रह गया। कोई कहे कि बैठो, तो बैठ भी जाऊं। लेकिन वहां कोई देखता ही नहीं है। मिनट, दो मिनट... ! आसपेंस्की ने लिखा है, पहली दफे मुझे समय का बोध हुआ कि समय कितनी भारी चीज है। मेरे सिर पर जैसे पहाड़ गुजरने लगा। क्या होगा अंत? जो आदमी दरवाजे पर छोड़ कर गया था, वह दरवाजा बंद करके लौट गया है। क्या होगा अंत? क्या रात भर ऐसे ही बीतेगी? यह तो नरक हो गया। और इतने चुप बैठे हैं वे लोग, इतने मूर्तिवत, कि अपनी तरफ से उस मौन को भंग करना भी अशिष्टता मालूम पड़ती है। आसपेंस्की ने लिखा है कि मैं बिल्कुल नाचीज मालूम पड़ने लगा--नोबडी, जैसे मैं कुछ भी नहीं हूं।

यह कोई पंद्रह मिनट हालत रही। और तब गुरजिएफ ने ऊपर चेहरा उठा कर देखा
और कहा, पसीना पोंछ लो, रात ऐसे बहुत सर्द है; बैठ जाओ। जान कर ही हमने यह किया। हम जानना चाहते थे कि तुम कैसे व्यक्ति हो। क्या तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी उपस्थिति अनुभव करें। क्योंकि हम इसे हिंसा मानते हैं। तुम पंद्रह मिनट भी बर्दाश्त न कर सके। तुम पंद्रह मिनट भी ऐसे न हो सके, जैसे मौजूद ही न हो! अगर तुम ऐसे हो सकते, तो फिर मेरे पास तुम्हें सिखाने को कुछ भी नहीं था। लेकिन तुम ऐसे नहीं हो सके, तो मुझे तुम्हें सिखाने को बहुत कुछ है। तुम हिंसक हो।
हम हिंसा बहुत तरह से करते हैं। प्रकार अनेक हो सकते हैं। एक आदमी ऐसे वस्त्र पहन कर आ जाता है कि आपको देखना ही पड़े; कि एक आदमी ऐसी चाल-ढाल से आता है कि आपको देखना ही पड़े। हर आदमी शोरगुल करता आता है, चाहे कितना ही चुप आ रहा हो। और हर आदमी धक्का देता आता है, चाहे कितना ही धक्कों से बचता हुआ आ रहा हो। हर आदमी यह खबर लाता है कि मैं आ गया हूं, मैं यहां हूं। सिर्फ परमात्मा ऐसी कोई खबर नहीं करता। नास्तिक कहते हैं, वह दिखाई पड़े, तो हम मान लें। नास्तिक यह कहते हैं कि वह भी हमारी ही तरह सूचना दे अपनी मौजूदगी की, तो हम मान लें।
नास्तिकों को पता नहीं कि परमात्मा के होने का जो गुण है, जो गहरा गुण
है उसके अस्तित्व का, वह यही है कि वह न होने जैसा हो, उसका कोई पता न चले। जिस दिन परमात्मा का पता चल जाए, उस दिन वह परमात्मा न रहा। और जिस दिन वह स्वयं अपनी घोषणा करने लगे, उस दिन वह परमात्मा न रहा। जिस दिन वह आकर आपकी गर्दन हिला कर आपको कहने लगे कि मैं यहां हूं, देखो, मैं यहीं मौजूद हूं, तुम बिना देखे ही चले जा रहे हो, उस दिन वह परमात्मा न रहा।
परमात्मा का अर्थ ही यह है कि जिसकी उपस्थिति और अनुपस्थिति में रंच मात्र का फर्क नहीं है। जिसके लिए एब्सेंस और प्रेजेंस, दोनों शब्द पर्यायवाची हैं, एक ही अर्थ रखते हैं। जिसके उपस्थित होने का ढंग ही अनुपस्थिति है।
तो लाओत्से कहता है, श्रेष्ठतम शासक है वही, जिसके होने की खबर भी प्रजा को न हो।
ईश्वर के सिवाय ऐसा कोई शासक नहीं है। कभी अगर कोई शासक इस ईश्वर की स्थिति के निकट पहुंच जाता है, तो ही... । इसलिए पुराने दिनों में, कम से कम लाओत्से के समय के और कोई दो-ढाई हजार वर्ष पहले, ईश्वर का अवतार मानते थे सम्राट को। अब तो ऐसा लगता है कि वह चालबाजी थी। अब तो इधर दो-तीन सौ वर्षों में जो चिंतन चला है, उसने समझाया है कि यह सब शरारत थी, यह पुरोहितों और राजाओं का शड्यंत्र था। बहुत दूर तक यह सही भी है; लेकिन पूरे रूप से सही नहीं है। कभी-कभी कोई राजा ऐसा भी हुआ है, जिसकी उपस्थिति का प्रजा को न के बराबर पता चला। तब उस राजा को लाओत्से जैसे लोगों ने ईश्वरीय कहा है; जिसके होने का पता ही न चला हो या कम से कम पता चला हो। इतना ही पता चला हो कि वह है, और कोई खबर न मिली हो।
लाओत्से कहता है कि अगर कोई शासक, कोई सम्राट इस तरह अनुपस्थित हो जाए अपने भीतर, तो उसकी मौजूदगी से ही प्रजा का कल्याण हो जाता है।
ये बातें आज समझनी बहुत मुश्किल हो गई हैं। क्योंकि आज तो राजपद की तरफ वही आदमी जाता है, जो बेचैन है अपनी उपस्थिति बताने को। जिसकी एक ही बेचैनी है कि लोग जान लें कि वह कुछ है। इसके लिए वह लोगों के चरणों पर भी सिर रख कर सिंहासन की यात्रा करता है।
लोग बड़े परेशान होते हैं कि कल जो आदमी चरणों में सिर रखने को राजी था
एक मत पाने के लिए, अचानक विजेता होकर वही आदमी उनकी तरफ देखता भी नहीं! शायद वही आदमी उनके सिर को भी इस योग्य नहीं मानता कि उस पर चरण रखे।
जनता बेचैन होती है, लेकिन बेचैन बिल्कुल नहीं होना चाहिए। गणित बिल्कुल साफ है। तुम्हारे चरणों पर सिर रखा ही इसलिए गया था, ताकि तुम्हारे सिरों पर चरण रखे जा सकें। सीधा गणित है। इसमें कुछ बेचैन होने जैसा नहीं। इसमें कहीं कुछ गलती नहीं हो रही है। इसमें वही हो रहा है, जो पूर्व नियोजित था। और जब आप इतने प्रसन्न हो गए थे चरणों पर सिर रखते वक्त, तो अब उनको भी प्रसन्न होने दें। यह लेन-देन है।

आज तो राजपद की तरफ वही आदमी जाता है, जो अनुभव करता है कि बिना पद पर हुए कोई अनुभव नहीं करेगा कि मैं भी था। होने का अनुभव अब तो कुर्सी पर ही होकर हो सकता है। इसलिए आज लाओत्से जैसे लोगों की बात समझनी बड़ी कठिन है। लेकिन कभी यह बात भी सार्थक थी और कभी इस पृथ्वी पर वैसे राजा भी हुए हैं, जिनके होने की कोई खबर लोगों को नहीं हुई, या इतनी ही ज्यादा से ज्यादा खबर हो सकी कि वे हैं।
लाओत्से कहता है कि सम्राट का यह गुण है, वही सम्राट है, कि जो अपने भीतर अहंकार को इस तरह पोंछ डाले कि एक शून्य हो जाए। सिंहासन पर अगर शून्य बैठा हो, तो राज्य में मंगल होगा, ऐसा लाओत्से की धारणा है! लेकिन अब तो सिंहासनों पर अहंकार के सघन रूप बैठे हैं। मंगल असंभव है। लाओत्से कहता है, पद पर होने का वही हकदार है, जो मिट ही गया हो, जो हो ही नहीं। जो जितनी ज्यादा मात्रा में है, उतना ही पद पर होने का अधिकारी नहीं है। अहंकार और सिंहासन का जोड़ जहरीला है। अहंकार और शक्ति का जोड़ खतरनाक है। शक्ति वहीं होनी चाहिए, जहां निरहंकार हो। जहां निरहंकार हो, वहीं शक्ति प्रवाहित होनी चाहिए।
इसलिए हमने इस मुल्क में एक अदभुत प्रयोग किया था कि हमने क्षत्रिय
के ऊपर भी, राजा के ऊपर भी, ब्राह्मण को रख दिया था। यह अनूठा प्रयोग था मनुष्य-जाति के इतिहास में। असफल गया। जितना बड़ा प्रयास हो, उतनी असफलता की ज्यादा संभावना होती है; जितना क्षुद्र प्रयास हो, उतनी सफलता की ज्यादा संभावना होती है। कम्युनिज्म सफल होकर रहेगा; क्योंकि मनुष्य-जाति के इतिहास में क्षुद्रतम प्रयोग है। असफल नहीं हो सकता। यह प्रयोग असफल हुआ कि हमने ब्राह्मण को ऊपर रख दिया; भिखारी को, जन्मजात भिखारी को, जिसके पास कुछ भी न था, उसे हमने सम्राट के ऊपर रख दिया।
बुद्ध एक गांव में आए हैं। उस गांव का सम्राट अपने मंत्रियों को पूछता है कि क्या यह उचित होगा कि मैं बुद्ध का स्वागत करने गांव के द्वार पर जाऊं? उसका जो प्रधानमंत्री है, उसने यह सुनते से ही अपना इस्तीफा लिख कर उस राजा को दे दिया। और उसने कहा कि मुझे क्षमा कर दें, अब मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता हूं। पर उस सम्राट ने कहा, इसमें अभी ऐसी क्या बात हो गई? उसने कहा, यह पूछना ही कि क्या यह उचित होगा कि मैं बुद्ध का स्वागत करने जाऊं, आपकी अयोग्यता का प्रमाण है। बात समाप्त हो गई। मैं आपके नीचे नहीं रुक सकता अब। ऐसे आदमी के पास रुकना पाप है। यह पूछना ही हद्द हो गयी अशिष्टता की। सम्राट ने कहा, इसमें... । मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि न जाऊं; पूछता हूं, क्या यह उचित होगा कि एक सम्राट और एक भिखारी का स्वागत करने जाए? उस आमात्य ने, उस वृद्ध मंत्री ने कहा, यही सम्राट की शोभा है। और ध्यान रखें, भूल न जाएं कि वह जो भिखारी की तरह आज गांव में आ रहा है, वह भी कभी सम्राट था। वह साम्राज्य को छोड़ कर भिखारी हुआ है; अभी आप साम्राज्य को पकड़े हुए हैं। आपकी हैसियत उसके मुकाबले नहीं है। वह सम्राट होने योग्य भिखारी है; आप भिखारी होने योग्य सम्राट हैं।
जो ना-कुछ हो गया है, वह श्रेष्ठतम है। जो कुछ भी नहीं है, वही सब कुछ है।
इसलिए लाओत्से कहता है, श्रेष्ठतम शासक कौन? जिसके होने की भी खबर न हो।
"उससे कम श्रेष्ठ को प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है।"
हम सोचेंगे, तो हमें कठिन लगेगा। हमें लगेगा, जो श्रेष्ठतम है, उसे प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है। लेकिन लाओत्से कहता है, वह नंबर दो का शासक है। क्योंकि प्रेम और प्रशंसा पाने के लिए उसे कुछ करना पड़ता है। और प्रजा उसे प्रेम और प्रशंसा इसीलिए देती है कि वह कुछ करता है। जो कुछ भी नहीं करता, जो शून्यवत है, प्रजा को उसका पता ही नहीं चलेगा। यद्यपि बहुत कुछ उससे होगा, लेकिन प्रजा को पता नहीं चलेगा।
वह जो शून्यवत है, उसके संबंध में आखिरी सूत्र में लाओत्से कहता है, "और जब श्रेष्ठ शासक का काम पूरा हो जाता है, तब प्रजा कहती है, यह हमने स्वयं किया है।"

क्योंकि वह कभी घोषणा भी नहीं करता कि यह मैं कर रहा हूं। यह कभी किसी
को पता भी नहीं चलता कि यह किसने क्या है। और जब पता नहीं चलता, तो हर आदमी सोचता है, यह मैंने किया है।
उससे कम श्रेष्ठ को प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है, आदर करती है।
आपका आदर पाना हो, प्रशंसा पानी हो, प्रेम पाना हो, तो फिर अपनी मौजूदगी आपको अनुभव करवानी ही पड़ेगी। अच्छे ढंग से, ऐसे ढंग से कि आप प्रशंसा करें, प्रेम करें। लेकिन निष्क्रियता के बिंदु से यह आदमी सक्रियता में उतर आया, कुछ करने में लग गया। और चाहे प्रेम भी किया जाए... । प्रेम हो, यह बिल्कुल और बात है। लेकिन साधारणतः जो प्रेम होता है, उसका आपको पता भी नहीं चल सकता। अगर कोई आपको प्रेम करता है, तो उसका पता कैसे चलता है? वह कहे कि आपको प्रेम करता है, कि आभूषण लाकर भेंट करे--कुछ करे कि पता चले कि प्रेम करता है। अगर कोई आपको प्रेम करता है और कभी न कहे, और न कभी कुछ भेंट करे, और उसका प्रेम मौन हो और चुप हो, तो आपको पता भी नहीं चलेगा।
प्रेम का भी पता तब चलता है, जब प्रेम एग्रेसिव, आक्रामक हो जाता है। इसलिए जितना आक्रामक प्रेमी होता है, उतना पता चलता है। जो जितना हमलावर प्रेमी होता है, उतना पता चलता है। जो शांत प्रेमी होता है, उसका पता भी नहीं चलेगा। क्योंकि शांत प्रेम के अनुभव के लिए आपकी चेतना भी इतनी ऊपर उठनी चाहिए कि शांति के संदेश को भी पकड़ पाए। आप हिंसा का संदेश ही पकड़ पाते हैं, आक्रमण को ही पकड़ पाते हैं। इसलिए जो प्रेमी जितना आक्रामक है, वह उतना ज्यादा प्रेमी मालूम पड़ता है।
अगर सम्राट द्वितीय कोटि का है, तो ही, लाओत्से कहता है, प्रजा उसको प्रशंसा और प्रेम दे पाएगी। क्योंकि द्वितीय कोटि का होगा, तो ही प्रजा को पता चलेगा।
प्रेम भी शून्य से नीचे की घटना है। एक प्रेम है, जो शून्य में भी होता है। लेकिन फिर उसका कोई पता नहीं चलता। उसका कोई पता नहीं चलता। परमात्मा के प्रेम का आपको कभी कोई पता चला है? यद्यपि उसके बिना प्रेम के आपकी श्वास भी नहीं चल सकती। उसके बिना प्रेम के एक फूल भी नहीं खिल सकता। उसके बिना प्रेम के कुछ भी संभव नहीं है। उसका प्रेम ही सब संभावनाओं का स्रोत है। लेकिन उसका कोई पता नहीं चलता। इसलिए परमात्मा को हम प्रेमी नहीं बना पाते। हम एक क्षुद्रतम आदमी को प्रेमी बना लेंगे। उसका प्रेम आक्रामक है, पता चलता है।
इसलिए प्रेम का अभिनय भी किया जा सकता है। क्योंकि आप पता भर चलवा दें, तो प्रेम का अभिनय पूरा हो जाएगा। प्रेम न हो, तो भी आप प्रेमी बन सकते हैं, अगर आप थोड़ा अभिनय कर सकें, प्रकट करने में अभिनय कर सकें। और प्रेम हो, तो भी पता न चलेगा, अगर आप कृत्य तक उसको प्रकट न होने दें। शायद सच्चा प्रेमी कभी भी पता नहीं चल पाता; क्योंकि सच्चा प्रेमी इतना भी आक्रमण नहीं कर सकता कि कहे कि मैं प्रेम करता हूं। पर वह हमारी सीमा के बाहर छूट जाता है। वैसा शासक, वैसा प्रेमी हमारी सीमा के बाहर छूट जाता है।
"उससे भी कम से प्रजा डरती है, भयभीत होती है।"
और आमतौर से जिससे हम भयभीत होते हैं, उसको हम प्रेम करते हैं। वह तृतीय कोटि का व्यक्तित्व है।
तुलसीदास ने कहा हैः भय बिन होय न प्रीति, बिना भय के प्रेम नहीं होता। निश्चित ही वे इस तीसरी कोटि की बात कर रहे हैं। हम सब ऐसे ही लोग हैं, जिनकी तुलसीदास बात कर रहे हैं। हमको भय हो, तो ही प्रेम होता है। हम परमात्मा से भी प्रेम करते हैं, भय के कारण। जितना परमात्मा हमें डराए या डराता हुआ मालूम पड़े कि नरक में डाल दूंगा, आग में जला दूंगा, पाप किया तो सदा-सदा के लिए, अनंतकाल तक सड़ोगे, ऐसी कोई बातें परमात्मा की तरफ से हमारे लिए कही जाएं, तो हम तत्काल प्रेम से भर जाते हैं, हमारे हाथ प्रार्थना में जुड़ जाते हैं। हम भय को समझ पाते हैं। शून्य को तो हम क्या समझ पाएंगे, हम प्रेम तक को नहीं समझ पाते! हम भय को समझ पाते हैं।
इसलिए जो हमें जितना भयभीत कर दे, वह उतना बड़ा शासक मालूम होता है। अगर हम इतिहास उठा कर देखें, तो हम उन शासकों के ही नाम पाएंगे स्वर्ण-अक्षरों में लिखे, जिन्होंने लोगों को जितनी ज्यादा मात्रा में भयभीत

किया है। फिर चाहे वे सिकंदर हों, चाहे नेपोलियन हों, चाहे चंगीज हों, चाहे कोई और हों। हमारा सारा इतिहास भयभीत करने वालों और भयभीत होने वालों का इतिहास है। जो जितना भयभीत कर दे, उतना बड़ा शासक हमें मालूम पड़ता है। क्यों? हमें प्रेम भी, अगर आक्रमण न करे, तो पता नहीं चलता। और प्रेम आक्रमण करना नहीं चाहेगा। भय का हमें पता चलता है, क्योंकि भय शुद्ध आक्रमण है। भय का अर्थ ही है कि किसी ने आपके अस्तित्व को कंपा दिया। थोड़ा समझें इस बात को। श्रेष्ठतम शासक वह है, जिसके होने का आपको पता नहीं चलता। और निकृष्टतम शासक वह है, जो आपके होने को भी खतरे में डाल देता है। श्रेष्ठतम वह है कि आप उसकी तरफ देखें भी न। निकृष्टतम वह है कि उसकी नजर आपके प्राणों की जड़ों को कंपा दे। आप कंपे हुए हों, भयभीत हों।
भय हमारी सारी स्थिति बदल देता है। चंगीज ने हमला किया है, तो जिस गांव पर चंगीज हमला करता है, उस गांव के बच्चों को कटवा कर भालों पर छिदवा देता है उनके सिरों को। दिल्ली में उसने दस हजार भाले बच्चों के सिरों पर छिदवा दिए। जहां से गुजरता है, वहां गांवों में आग लगा देता है, ताकि उसकी फौजों को प्रकाश मिल सके। चंगीज को आदमियत भूल नहीं सकती। तैमूर को लोग भूल नहीं सकते।
तैमूर ने हमला किया था मुल्ला नसरुद्दीन के गांव पर। खबर मिली तैमूर
को कि गांव में एक ज्ञानी है, नसरुद्दीन। पकड़वा भेजा, अदालत में खड़ा किया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम एक मिस्टिक हो, एक रहस्यवादी हो। प्रमाण दो! अन्यथा यह तलवार रखी है। मैं प्रमाण मानता हूं, बातचीत नहीं। नसरुद्दीन ने आंखें बंद की, खुशी से भर गया आकाश की तरफ देखा और कहा कि देखो, देवता मौजूद हैं। नीचे आंख की और कहा, यह सातवां नरक! सब मुझे दिखाई पड़ रहे हैं। तैमूर ने कहा, हद! क्या है इसकी तरकीब, क्या है इसकी विधि जिससे तुम देवता देख लेते हो और नरक देख लेते हो?
नसरुद्दीन ने कहा, विधि? नथिंग बट फियर। वह तुम्हारी तलवार की वजह से
सब मुझे दिखाई पड़ रहा है। कुछ और नहीं है विधि, सिर्फ भय। रहस्यवादी वगैरह मैं नहीं हूं। मगर अब क्या कर सकता हूं? भय तो आदमी को कुछ भी दिखा देता है।
आपको आकाश में देवता और स्वर्ग और नरक और ईश्वर वगैरह जो-जो दिखाई पड़ते हैं, वह भी भय ही कारण है। इसलिए बूढ़ा आदमी ज्यादा धार्मिक हो जाता है; क्योंकि बूढ़ा आदमी ज्यादा भयभीत हो जाता है। जवान आदमी को धार्मिक बनाना जरा मुश्किल है; बूढ़े आदमी को धार्मिक बनने से बचाना बहुत मुश्किल है। और लोग कहते हैं कि अभी तुम्हारी उम्र नहीं धार्मिक होने की! उनका मतलब साफ है कि जरा भय बढ़ने दो, फिर तुम्हें स्वर्ग-नरक सब दिखाई पड़ने लगेंगे। मौत जैसे करीब आती है, वैसे आदमी धार्मिक होने लगता है--अनुपात में। जैसे मौत करीब आती है, आदमी धार्मिक होने लगता है। मौत के करीब आने से धार्मिक होने का क्या लेना-देना होगा? भय बढ़ने लगता है, हाथ-पैर कंपने लगते हैं, डर लगने लगता है, घबड़ाहट होने लगती है।
जिससे हम भयभीत होते हैं, वह परमात्मा नहीं है। वह हमारे भय का ही विस्तार है।
लाओत्से कहता है, "उससे भी कम से वह डरती है।"
तृतीय कोटि का जो शासक है। अगर हम सारी दुनिया में शासन को देखें, तो
वह तृतीय कोटि का ही होगा। क्योंकि सारा शासन भय पर खड़ा है। कानून, अदालत, सब भय पर खड़े हैं।
"और सबसे घटिया शासक की वह निंदा करती है।"
चौथी कोटि, इस सीमा पर पहुंच जाती है स्थिति कि लोगों को निंदा करनी पड़ती है।
लेकिन एक मजे की बात है। चेस्टरटन ने कहा है कि किसी जगह से मैं गुजरूं, तुम अगर मेरी प्रशंसा न करो, तो कम से कम निंदा तो करो। क्योंकि निंदा करके भी तुम स्वीकार करते हो कि मैं कुछ हूं।
ध्यान रहे, इस जगत में उपेक्षा से बड़ी पीड़ा नहीं है। निंदा भी इतनी बड़ी पीड़ा नहीं है। जब लोग आपकी निंदा भी करते हैं, तब भी आपको स्वीकार करते हैं कि आप कुछ हैं। अगर लोग निंदा भी न करें, प्रशंसा भी न करें, उपेक्षा करें, तो फिर अहंकार को कोई जगह नहीं मिलती खड़े होने के लिए।

चौथे शासक वे हैं, जो आपकी निंदा से भी जीते हैं, आपकी निंदा पर ही जीते हैं। आपको इस हालत में खड़ा कर देते हैं कि आपको सतत उनकी निंदा तो करनी ही पड़ेगी। मगर तब भी ध्यान आपको उन पर ही देना पड़ता है। कोई हर्ज नहीं, बदनामी ही सही, गाली-गलौज ही सही। किसी रास्ते पर फूल मिलें, तो ठीक; पत्थर मिलें, तो भी ठीक। लेकिन किसी रास्ते पर कुछ भी न मिले, कोई देखे ही नहीं; तब बहुत पीड़ा होगी। क्योंकि अहंकार ध्यान मांगता है, आकर्षित करना चाहता है लोगों को।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुनिया में इतने ज्यादा अपराधों का कारण? कारण वही है, जिस कारण से लोग साधु होते हैं। कारण में कोई फर्क नहीं है। जो साधु होकर प्रशंसा पा सकता है, वह साधु हो जाता है। जो उतना नहीं कर सकता, वह अपराधी होकर निंदा पा लेता है। लेकिन दोनों अखबार में सुर्खियां बना देते हैं। बुरा आदमी भी तब तक न मिटेगा दुनिया से, जब तक हम बुराई की निंदा करते हैं। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। यह उलटा गणित है।
जीसस ने कहा है, रेसिस्ट नॉट ईविल, बुराई का भी विरोध मत करो। क्योंकि विरोध करके भी तुम बुराई को आदर दे रहे हो। और विरोध करके भी तुम बुराई पर ध्यान दे रहे हो। और विरोध करके भी तुम बुराई को प्राण दे रहे हो। बुराई का भी विरोध मत करो। क्योंकि बुरा आदमी भी, जब तुम निंदा करते हो, तो आनंदित होता है।
आप ऐसा मत समझना कि हायरेरकी राजधानियों में ही होती है; जेलखानों में भी होती है। जेलखानों में आप जाएं, तो वहां भी दादा अपराधी होते हैं। साधारण अपराधी भी होते हैं; बड़े, महान अपराधी भी होते हैं। और जब जेल में नया अपराधी पहुंचता है, तो लोग उससे पूछते हैं, पहली दफे ही आ रहे हो? यानी सिक्खड़ हो, नए-नए हो, एमेच्योर! वहां गुरुजन भी होते हैं; वे जो काफी निष्णात हैं, जो कुशल हैं, बहुत बार आए-गए हैं। वहां भी हायरेरकी है। कितने अपराध किए हैं, उससे उतना ही आदर मिलता है जेलखाने में; जैसे मंदिर में कितना दान किया है, उससे मिलता है। कितना आतंक फैला दिया है लोगों में, उससे भी आनंद मिलता है। अहंकार के तृप्त होने के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। लाओत्से कहता है, जो चतुर्थ कोटि है, वह सबसे घटिया शासक की है। प्रजा उसकी निंदा करती है। लेकिन वह निंदा से ही जीता है।
"जब शासक प्रजा की श्रद्धा के पात्र नहीं रह जाते और प्रजा उनमें विश्वास नहीं करती, तब ऐसे शासक शपथों का सहारा लेते हैं।"
ईसाइयों का एक संप्रदाय है, क्वेकर। वे शपथ नहीं लेते अदालत में, कसम नहीं खाते; कसम खाने को पाप मानते हैं। इसके लिए उन्होंने बहुत मुसीबत सही; क्योंकि अदालत तो कसम पहले दिलवाएगी कि कसम खाओ बाइबिल को हाथ में लेकर, या ईश्वर को साक्षी रख कर, कि तुम जो कहोगे, वह सच होगा। ईसाई क्वेकर कहते हैं कि जो शपथ मैं लूंगा, अगर मैं असत्य ही बोलने वाला हूं, तो शपथ भी असत्य ली जा सकती है। कम से कम शपथ लेने के पहले तो मैंने कोई शपथ नहीं ली है। जब मैं कहता हूं कि जो मैं बोलूंगा, वह मैं सत्य ही बोलूंगा, इसके पहले मेरी क्या शपथ है? मैं यह भी तो झूठ बोल सकता हूं। और अगर मुझ पर भरोसा है, तो शपथ की कोई भी जरूरत नहीं। और अगर मुझ पर भरोसा नहीं है, तो मेरी शपथ पर भरोसा करने का क्या कारण?
फिर क्वेकर कहते हैं कि हम शपथ खाएं, उसका मतलब यह है कि हम झूठ भी बोलते हैं। मैं कसम खाऊं कि मैं सच ही बोलूंगा अदालत में, उसका मतलब यह है कि मैं झूठ भी बोलता हूं। इसलिए शपथ झूठ बोलने वाला ही खा सकता है। इसलिए जितनी कसमें खाने वाले लोग होते हैं, उनसे जरा सावधान रहना! जो घड़ी-घड़ी कसम खाते हैं, खतरनाक लोग हैं। असल में, कसम खाकर वे आपको और अपने को भरोसा दिलाना चाहते हैं कि आदमी अच्छा हूं, कसम खाता हूं।
जब सम्राट के पास कोई उपाय नहीं रह जाता लोगों में श्रद्धा जगाने का,
तब शपथ उतर आती है। अगर सम्राट लोगों में श्रद्धा जगा सकता है, तो कसम खाने का कोई भी सवाल नहीं है।
एक व्यक्ति मेरे पास आए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। आपकी बात मुझे ठीक लगती है, आपके पास मैं आना चाहता हूं; लेकिन मैं पहले एक गुरु बना चुका हूं। और उन गुरु ने मुझे कसम खिला दी है कि अब दुबारा किसी को गुरु मत बनाना।

तो मैंने उनको कहा कि तुम्हारे गुरु को पहले ही शक रहा होगा अपने पर! अपने पर शक रहा होगा, भरोसा न रहा होगा अपनी गुरुता का, इसीलिए तुम्हें शपथ दिला दी है। अगर यह भरोसा होता, तो यह शपथ की कोई जरूरत ही न थी। डर रहा होगा कि आज नहीं कल छोड़ कर तुम किसी और गुरु के पास चले जाओगे। इस भय का उपाय किया है। तो मैंने उनसे कहा, जो गुरु शपथ दिलाता हो, शपथ देने के पहले ही भाग खड़े होना। क्योंकि आज नहीं कल भागोगे ही, यह गुरु भी जानता है। उसे खुद भी भरोसा नहीं है अपने पर कि तुम्हें रोक पाएगा।
श्रद्धा शपथ नहीं दिलाती, सिर्फ संभावना जगाती है। शपथ श्रद्धा के अभाव से पैदा होती है। अदालत, मंदिर में हमें शादी करवा कर कसम दिलवानी पड़ती है पति-पत्नी को कि सदा मैं तुम्हारा रहूंगा, कि सदा मैं तुम्हारी रहूंगी। उसी दिन बात खराब हो गई। वह शपथ ही बता रही है कि मामला टूट चुका है। शादी के पहले तलाक हो गया। यह शपथ किस बात की खबर है? यह इस बात की खबर है कि पक्का पता है कि आज नहीं कल तुम अलग होना चाहोगे। अगर दो व्यक्तियों में प्रेम है, तो यह ख्याल भी नहीं आएगा कि हम कसम खाएं कि हम सदा साथ रहेंगे। यह प्रेम न होने की खबर है। लोग प्रेम के कारण विवाह नहीं करते; प्रेम नहीं है, इस डर से विवाह करते हैं। जमीन पर प्रेम हो, तो शायद विवाह अनावश्यक हो जाए। जब तक प्रेम नहीं है, तब तक विवाह अनिवार्य है। क्योंकि जो हम नहीं कर सकते, वह हम कसमें खाकर आयोजन कर लेते हैं। जो सहज नहीं हो सकता, उसकी हम नियम बना कर व्यवस्था कर लेते हैं।
लाओत्से कहता है, जो शासक श्रद्धा पैदा नहीं करवा पाते... । वे शासक कोई भी हों। चाहे वे राज्य के शासक हों और चाहे धर्मगुरु हों; जिनसे भी शासन मिलता है, डिसिप्लिन मिलती है, जिनसे भी जीवन को दिशा मिलती है, वे सभी शासक हैं। वे चाहे माता-पिता हों, चाहे गुरुजन हों, चाहे वृद्धजन हों; जिनसे भी शासन मिलता है जीवन को, अनुशासन मिलता है और जिनसे भी मार्ग-निर्देश मिलता है, जब वे श्रद्धा नहीं पैदा करवा पाते, तब वे शपथ पर उतर आते हैं।
"लेकिन जब श्रेष्ठ शासक का काम पूरा हो जाता है, तब प्रजा कहती है, यह हमने स्वयं किया है।"
जब श्रेष्ठ गुरु का काम पूरा हो जाता है, तो शिष्य अनुभव करता है, यह मैंने स्वयं पाया है। जब श्रेष्ठ पिता का काम पूरा हो जाता है, तो बेटा अनुभव करता है, यह मेरी अपनी उपलब्धि है। और गुरु का यही आनंद है कि एक दिन शिष्य जान पाए कि जो भी उसने जाना है, उसने ही जाना है। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु ने इतनी भी बाधा नहीं डाली, इतनी भी अड़चन नहीं डाली कि शिष्य को याद रहे कि गुरु ने कुछ किया है।
गुरु के करने के भी ये ही चार ढंग हैं, जो शासक के हैं।
और लाओत्से निष्क्रियता को श्रेष्ठतम मानता है। और जितनी सक्रियता बढ़ती जाती है, उतनी बात निकृष्ट होती जाती है। शून्यता सर्वश्रेष्ठ है।
और जितनी शून्यता के बाहर हम आते हैं और आंधी में पड़ते जाते हैं, उतने निकृष्ट होते चले जाते हैं।
आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
चालीसवां प्रवचन

ताओ के पतन पर सिद्धांतों का जन्म

Chapter 18 : Sutra 1

The Decline Of Tao

On the decline of the great Tao,
The doctrines of humanity and justice arose.
When knowledge and cleverness appeared,
Great hypocrisy followed in its wake.
When the six relationships no longer lived at peace,
There was (praise of) kind parents and filial sons. When a country fell into chaos and misrule,
There was praise of loyal ministers.

अध्याय 18 : सूत्र 1

ताओ का पतन

महान ताओ के पतन पर,
मानवता और न्याय के सिद्धांत का उदय हुआ।
और जब ज्ञान और होशियारी का जन्म हुआ,
तब पाखंड भी अपनी पूरी तीव्रता में सक्रिय हो गया।
जब संबंधों के बीच शांति असंभव हो गई,
तब दयालु माता-पिता और आज्ञाकारी पुत्रों की प्रशंसा शुरू हुई।
और जब देश में कुशासन और अराजकता छा गई,
तब स्वामिभक्त मंत्रियों की प्रशंसा होने लगी।

जीवन की अत्यंत कठिन पहेली के संबंध में यह सूत्र है।
लाओत्से, जिन्हें हम बड़े नैतिक सिद्धांत कहते हैं, उनके विपरीत है, उनके विरोध में है। क्योंकि लाओत्से का मौलिक सिद्धांत यही है कि जीवन में एक गहरा संतुलन प्रतिपल स्थापित होता रहता है।
अगर हम साधुता पर जोर देंगे, तो असाधुता बढ़ेगी। अगर हम नैतिकता पर बल देंगे, तो अनैतिकता भी उसी मात्रा में विकसित होगी। अगर हम चाहेंगे कि लोग अच्छे हों, तो हम उसी मात्रा में बुरे लोगों को भी पैदा करने का कारण बनेंगे।
अगर हम जीवन को समझने की कोशिश करें, तो पहली बात तो यह ख्याल में आएगी
कि जीवन संतुलन के बिना असंभव है। और यह संतुलन सर्व-व्यापक है--सभी आयामों में, सभी दिशाओं में।
अभी वैज्ञानिक एक अनूठे ख्याल पर पहुंचे हैं। हमें चिंता से भरता है; लेकिन लाओत्से को चिंता से नहीं भरेगा। आज से सौ वर्ष पहले फ्रांस में विनेट नाम के विचारक और मनोवैज्ञानिक ने मनुष्य की बुद्धि को नापने का पहला प्रयोग किया। इन सौ वर्षों में विनेट की विधियां काफी विकसित हो गई हैं। और अब हम मनुष्य का बुद्धि-माप, आई. क्यू., इंटेलीजेंस कोशिएंट जान सकते हैं। एक आदमी के पास कितनी बुद्धि की मात्रा है, वह जानी जा सकती है। यह जो बुद्धि की मात्रा है, इसके निरंतर अनेक-अनेक प्रयोगों ने, जिसकी कल्पना भी नहीं थी, उस दृष्टि को दिया। और वह यह है कि अगर सौ व्यक्तियों में एक व्यक्ति प्रतिभाशाली होता है, जीनियस होता है, तो एक व्यक्ति ईडियट होता है, महामूढ़ होता है। अगर दस व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि के होते हैं, तो दस व्यक्ति मंद बुद्धि के होते हैं। अगर हम सौ व्यक्तियों को दो हिस्सों

में बांट दें, तो जो ऊपर पचास लोग हैं, ठीक उनको संतुलित करते हुए पचास लोग दूसरे छोर पर होते हैं। अगर आपको दस प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा करने हैं, तो आप अनिवार्य रूप से दस मूढ़ व्यक्ति पैदा करने में सफल हो जाएंगे।
यह बहुत हैरानी की बात मालूम पड़ती है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जितने
हम लोगों को तीक्ष्ण बुद्धि देंगे, उसी अनुपात में हम कुछ लोगों से बुद्धि छीन भी लेंगे। जीवन सभी आयामों में संतुलन है, इसका अर्थ यह हुआ कि अगर एक मात्रा स्वस्थ लोगों की होगी, तो उसे संतुलित करती उतनी ही मात्रा अस्वस्थ और बीमार लोगों की होगी।
लाओत्से कहता है कि संतुलन से बचा नहीं जा सकता। अगर हम अच्छे लोग दस पैदा कर लेंगे, तो दस बुरे लोग अनिवार्य रूप से पैदा हो जाएंगे। वे अच्छे दस लोगों का दूसरा पहलू है। और जैसे एक सिक्का एक ही पहलू का नहीं हो सकता, वैसे ही इस जीवन के रहस्य में भी एक व्यक्तित्व एक ही पहलू का नहीं हो सकता। तो जब एक साधु पैदा होता है, तो अनिवार्य रूप से एक असाधु पैदा होता है।
यह समझने में थोड़ी कठिनाई पड़ेगी, क्योंकि साधु से असाधु का क्या लेना? लेकिन चेतना भी एक विस्तीर्ण भूमि है, ऐसा समझें। तो जब एक पहाड़ खड़ा होता है, तो पास एक खाई भी निर्मित हो जाती है। और हम पहाड़ खड़ा नहीं कर सकते बिना खाई बनाए। अगर हमें घाटियों से बचना है, तो हमें पहाड़ों से भी बच जाना होना। अगर हम पहाड़ की चोटियां चाहते हैं, तो हमें घाटियों की अंधेरी स्थिति को भी स्वीकार कर लेना होगा। क्योंकि पहाड़ का जो शिखर है, वह एक पहलू है; उसके पास ही पैदा हो गया जो गड्ढ है, वह भी उसी का दूसरा पहलू है। वह पहाड़ का ही हिस्सा है। अगर समतल भूमि चाहिए, तो ही हम पहाड़ और घाटियों से बच सकते हैं।
और जैसे यह जमीन के संबंध में सही है, लाओत्से कहता है, चेतना, कांशसनेस के संबंध में भी यही सही है। कांशसनेस भी एक भूमि है। और जब कांशसनेस में, चेतना में एक पहाड़ की तरह व्यक्ति खड़ा होता है, तो तत्क्षण उसको संतुलित करता एक व्यक्ति खाई बन जाता है। जब एक व्यक्ति राम होगा, तो दूसरा व्यक्ति अनिवार्यरूपेण रावण हो जाएगा। अगर राम चाहिए, तो रावण से बचने का कोई उपाय नहीं है। और अगर रावण से बचना है, तो राम का आकर्षण और मोह छोड़ देना होगा।
यह जटिलता है। रावण से हम बचना चाहेंगे, राम को बचाना चाहेंगे। चाहेंगे कि राम ही राम हों, रावण बिल्कुल न हो। लेकिन हमें ख्याल नहीं है जीवन के संतुलन का। और हमें यह भी ख्याल नहीं है कि अगर पृथ्वी पर राम ही राम हों, तो उससे ज्यादा उबाने वाली और घबड़ाने वाली पृथ्वी दूसरी नहीं हो सकती। अगर सारे लोग राम जैसे हों, तो बहुत बोर्डम और बहुत ऊब पैदा करने वाले होंगे। बीच-बीच में वह रावण भी चाहिए। वह राम से ऊब पैदा नहीं होने देता। वह राम में रस को बनाए रखता है।
रावण भी अकेले नहीं हो सकते। भले आदमी के होने के लिए बुरा आदमी जरूरी है, बुरे आदमी के होने के लिए भला आदमी जरूरी है। सब भले आदमी बुरे आदमियों पर निर्भर होते हैं; सब बुरे आदमी भले आदमियों पर निर्भर होते हैं। इंटर-डिपेंडेंट हैं। न तो भले आदमी स्वतंत्र हैं और न बुरे आदमी स्वतंत्र हैं; एक-दूसरे पर निर्भर हैं।
यह निर्भरता बड़ी कठिन है समझनी। क्योंकि हजारों-हजारों साल से हमारी आकांक्षा रही हैः भले लोग हों, बुरे लोग न हों; बुद्धिमान लोग हों, बुद्धिहीन लोग न हों; चरित्रवान लोग हों, चरित्रहीन लोग न हों। हम इस कोशिश में लगे हैं कि प्रकाश ही प्रकाश हो, अंधेरा न हो। हम इस कोशिश में लगे हैं कि जीवन ही जीवन हो, मौत न हो। हम इस कोशिश में लगे हैं कि सुख ही सुख हो, दुख न हो।
लाओत्से कहता है, हमारी कोशिश असफल होगी ही। इसलिए मजे की बात है कि
जो आदमी जितना सुख चाहेगा, उतना दुखी हो जाएगा। जो आदमी सुख नहीं चाहेगा, वह दुख से बच सकता है। दुख से बचने का एक ही सूत्र है, सुख को न चाहना। दुख बड़ा हो जाएगा, अगर सुख की आकांक्षा प्रबल है।
जीवन एक द्वंद्व है और द्वंद्वों के बीच एक संतुलन है। इस सूत्र को समझने के पहले यह द्वंद्व और संतुलन का ख्याल समझ लेना जरूरी है। विरोध भी

है दोनों में और भीतर जोड़ भी है। अब रावण और राम में विरोध साफ है। कौरव और पांडवों में विरोध साफ है; दुश्मनी स्पष्ट है। यह दुश्मनी बहुत ऊपर की बात है। लेकिन गहरे में दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। हम सोचते हैं आमतौर से कि एक तरफ अमीर हो जाते हैं लोग, तो एक तरफ लोग गरीब हो जाते हैं। तो हम अमीरों के खिलाफ हैं; क्योंकि एक तरफ लोग अमीर होते हैं, तो एक तरफ लोग गरीब हो जाते हैं।
लेकिन जब हमें जीवन के और सूत्रों का पता चलेगा, तो हमें पता चलेगा, यह सिर्फ धन के संबंध में ही लागू नहीं है। जार्ज गुरजिएफ का ख्याल था कि ज्ञान की भी सीमित मात्रा है। और इस सदी में बुद्धिमान से बुद्धिमान लोगों में एक था। उसका ख्याल था, ज्ञान भी सीमित है। इसलिए जब कोई आदमी ज्ञान इकट्ठा कर लेता है, तो दूसरा आदमी ज्ञान की दृष्टि से दरिद्र हो जाता है। चेतना भी सीमित है। और जब एक व्यक्ति परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाता है, तो कोई दूसरा व्यक्ति चेतना की दीनता को उपलब्ध हो जाता है। और न केवल सीमित होने के कारण, बल्कि संतुलन के लिए भी आवश्यक है। अन्यथा जीवन की व्यवस्था टूट जाए, सब बिखर जाए।
इसलिए एक अनूठी बात मनुष्य के इतिहास में दिखाई पड़ती है कि जैसे-जैसे सदगुणों की आकांक्षा बढ़ती है, वैसे-वैसे दुर्गुण भी विकसित होते हैं। लाओत्से कहता है कि एक ऐसी अवस्था भी है प्रकृति की, जब हम द्वंद्व पर ध्यान नहीं देते। वही परम अवस्था है। उसे वह ताओ कहता है, उस स्वभाव की अवस्था को, जब हमें दुर्गुण का भी पता नहीं और सदगुण का भी पता नहीं। जब हमें यह भी पता नहीं कि साधुता क्या है और असाधुता क्या है। वह परम शांति की अवस्था है। जैसे ही हमें पता चला कि साधुता क्या है, उसका अर्थ हुआ कि असाधुता का हमें बोध हो गया है।
इसलिए एक बहुत मजे की बात है कि साधुओं को पाप की जितनी समझ होती है, असाधुओं को उतनी नहीं होती। और साधु जितनी बारीकी से पाप को जानते हैं, असाधु उतनी बारीकी से नहीं जानते। अगर किसी व्यक्ति को स्वास्थ्य का ख्याल आ गया, तो उसका अर्थ है कि वह बीमार हो गया है। जिन लोगों को जितना स्वास्थ्य का बोध होता है, वे उतने ही बीमार होते हैं। और जो आदमी चौबीस घंटे स्वास्थ्य का ख्याल करता है, वह आदमी कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। यह भी एक बीमारी है और गहरी बीमारी है।
लाओत्से कहता है कि ताओ का पतन, वह स्वभाव का पतन कब हुआ।
"महान ताओ के पतन पर मानवता और न्याय के सिद्धांत का जन्म हुआ-- ह्यूमैनिटी एंड जस्टिस।"
लाओत्से कहता है, जब मनुष्य मनुष्य न रहे, तब मानवता के सिद्धांत का जन्म हुआ।
हम उलटा ही सोचते हैं। हम सोचते हैं, मानवता के सिद्धांत को मान कर हम चलेंगे, तो मनुष्य हो पाएंगे। और लाओत्से कहता है, जब मनुष्य मनुष्य न रहा, तब मानवता के सिद्धांत का जन्म हुआ। तब हमने कहना शुरू किया लोगों से कि मनुष्य बनो!
मनुष्य तो मनुष्य है ही। बनने की कोई बात नहीं है। बनने का तो मतलब यह हुआ कि गिरना हो चुका है। किसी मनुष्य से यह कहना कि मनुष्य बनो, क्या अर्थ है इसका? इसका यही अर्थ है कि मनुष्यता से गिरना हो चुका है।
लाओत्से कहता है, मानवता का महान सिद्धांत मनुष्य के पतन की स्थिति में पैदा होता है। नहीं तो आदमी सहज ही मनुष्य होता है। न्याय की बात ही तभी उठती है, जब अन्याय शुरू हो जाए।
इसे हम समझ लें। विपरीत के साथ ही बोध शुरू होता है। जब हम कहते हैं, अन्याय नहीं होना चाहिए, न्याय होना चाहिए, तो एक बात साफ है कि अन्याय हो रहा है। और जितनी हम न्याय की पुकार बढ़ाते जाएंगे, उतना ही अन्याय बढ़ता चला जाएगा। हम कहते हैं, ज्ञान चाहिए, क्योंकि अज्ञान घना है। और जितना हम ज्ञान को बढ़ाते चले जाते हैं... ।
अब लाओत्से की यह बात पश्चिम को भी समझ में आनी शुरू हो गई है। और इस समय पश्चिम में ऐसे बहुत से विचारशील लोग हैं, जो सोचते हैं कि हमें अब लाओत्से को केंद्र मान कर अपनी पूरी व्यवस्था को रि-ओरिएंट कर लेना चाहिए, पुनर्निर्मित कर लेना चाहिए।

अभी तक हमने जो व्यवस्था निर्मित की है जगत में, वह हमने लाओत्से के विपरीत निर्मित की है। हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, अच्छाई होनी चाहिए; हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, न्याय होना चाहिए; हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, समानता होनी चाहिए; हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, मनुष्यता, स्वतंत्रता, समानता, ये सिद्धांत हैं। लेकिन परिणाम क्या है?
अगर हम परिणाम को देखें, तो हमें बहुत बात साफ हो जाएगी। आज जमीन पर जितना ज्ञान है, इतना शायद कभी भी नहीं था। और आज आदमी जितना अज्ञानी है, इतना भी कभी नहीं था। यह पैराडाक्सिकल मालूम होता है। इतना ज्ञान और इतना अज्ञान एक साथ! लाओत्से को मालूम नहीं होता। लाओत्से तो कहता है, तुम जितना ज्ञान बढ़ाओगे, उतना अज्ञान बढ़ेगा। लेकिन हमें मालूम होगा। क्योंकि हमारी धारणा यह रही है कि जितना ज्ञान बढ़ेगा, उतना अज्ञान कम होगा। हमारे सोचने का तर्क यह है कि जितना ज्ञान बढ़ जाएगा, उतनी अज्ञान की राशि कम हो जाएगी।
लेकिन इतिहास हमें गवाही नहीं देता, हमारा प्रमाण नहीं देता। ज्ञान
की राशि तो बढ़ी, कोई शक-शुबहा नहीं है। प्रति सप्ताह पांच हजार नए ग्रंथ सारी दुनिया में निर्मित हो जाते हैं। प्रति सप्ताह पांच हजार नए ग्रंथ गतिमान हो जाते हैं। हमारे पुस्तकालय बढ़ते चले गए हैं। हमारे विश्वविद्यालय फैलते चले गए हैं। हमारे ज्ञान की शाखाएं-प्रशाखाएं नई होती चली गई हैं। आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी तीन सौ साठ विषयों में शिक्षण देती है।
हर तरफ हम ज्ञान की राशि को बढ़ाते चले गए हैं। और हर रोज हमें ज्ञान की
नई शाखाएं तोड़नी पड़ती हैं। क्योंकि ज्ञान इतना हो जाता है कि एक ही शाखा पर भारी हो जाता है, सम्हाला नहीं जा सकता। आज अगर कोई आदमी सिर्फ छोटी सी आंख के संबंध में भी पूरा विश्व-साहित्य जानना चाहे, तो एक जीवन छोटा है। वह कितना ही जानता चला जाए, छोटी सी आंख के संबंध में भी आज पूरा ज्ञान नहीं हो सकता।
इसलिए हमको बांटते चलना पड़ता है। एक दिन हमारा डाक्टर पूरे शरीर का इलाज करता था। ज्ञान बहुत कम था। एक डाक्टर ही सारे ज्ञान को जान लेता था। फिर ज्ञान बढ़ा, तो हमें स्पेशलिस्ट निर्मित करने पड़े, विशेषज्ञ निर्मित करने पड़े। क्योंकि ज्ञान इतना हो गया कि एक ही डाक्टर पूरे शरीर को नहीं जान सकता। तो फिर हमें अलग अंगों के अलग डाक्टर खोज लेने पड़े।
अब एक-एक अंग का भी इतना ज्ञान है कि एक ही डाक्टर की सीमा के बाहर है जान लेना। इसलिए अब अमरीका में तो ख्याल ही यह है कि भविष्य में ज्ञान इतना होता जा रहा है कि आदमी पर भरोसा नहीं किया जा सकता, कम्प्यूटर ही सहायता करेंगे। तो भविष्य में तो यही स्थिति हो जाने वाली है कि ज्ञानी वह आदमी है, जो कम्प्यूटर का उपयोग करना जानता है। तो डाक्टर को डाक्टरी जाननी जरूरी नहीं है, बल्कि कम्प्यूटर से पूछ सके, फलां बीमारी के लिए कौन सा इलाज होगा--इतनी कुशलता आवश्यक होगी। क्योंकि ज्ञान इतना होता जा रहा है कि आदमी के मस्तिष्क में उसे समाया नहीं जा सकता।
पुस्तकें इतनी होती जा रही हैं कि अब बड़ी लाइब्रेरीज नहीं निर्मित की
जा सकतीं, क्योंकि वे सारी जमीन को घेर लेंगी। सिर्फ मास्को की लाइब्रेरी में इतनी किताबें हैं कि अगर हम एक के बाद एक आलमारी को रखते जाएं, तो पूरी जमीन का एक चक्कर हो जाएगा। इन किताबों को कौन पढ़ेगा?
इसलिए माइक्रो बुक्स का ख्याल पैदा हुआ है। छोटी किताबें होनी चाहिए। फिल्म रहेगी छोटी। एक हजार पन्ने की किताब एक पन्ने पर आ जाएगी। वह पन्ना संगृहीत रखा जा सकता है। और जब भी किसी को पढ़ना हो, तो पढ़ने का ढंग पुराना नहीं रह जाएगा। फिल्म और प्रोजेक्टर के द्वारा ही किताब पढ़ी जा सकेगी। किताबें बढ़ती जाती हैं। ज्ञान बढ़ता जाता है। और अभी तो पश्चिम के वैज्ञानिक चिंतित हो गए हैं कि हम अपने बच्चों को, जितना ज्ञान हमारी पीढ़ी पैदा कर रही है, उसको कैसे ट्रांसफर करें? इसलिए नया ख्याल आ रहा है, वह यह कि शिक्षा बीस-पच्चीस साल में समाप्त नहीं हो जानी चाहिए। कम से कम पचास साल तक अगर हम शिक्षा न दें, तो इस सदी के बाद शिक्षा का कोई अर्थ नहीं रह

जाएगा। लेकिन अगर एक व्यक्ति को हम पचास साल तक शिक्षा दें, तो वह जीएगा कब? उसके जीने का कोई उपाय नहीं मालूम होता।
इसलिए एक नया ख्याल आया है। और वह नया ख्याल यह है मेमोरी ट्रांसप्लांटेशन का, कि जब एक आदमी मरे, तो उसकी हम स्मृति को बचा लें और छोटे बच्चे के ऊपर स्मृति आरोपित कर दें, रिप्लांट कर दें। ताकि छोटे बच्चे को वे बातें न सीखनी पड़ें, जो उसके बाप ने सीखी थीं। बाप की स्मृति उसे सीधी उपलब्ध हो जाए, तो छोटा बच्चा आगे बढ़ सके, कुछ नया सीख सके। ज्ञान इतना! लेकिन दूसरी तरफ आदमी को हम देखें, तो अज्ञान भयंकर है। चांद-तारों का हमें पता है; अपना हमें कोई पता नहीं है। कैसे पहुंचें मंगल पर, उसकी हम तलाश में हैं और हम रास्ते बना लिए हैं। कैसे पहुंचें अपने तक, बहुत दूर मालूम पड़ती है यह यात्रा, पहुंचना संभव नहीं मालूम पड़ता। इतना ज्ञान है और आदमी इतना अनाश्वस्त! उसको कोई आश्वासन नहीं है कि कभी अपने को जान सकेगा।
इतना ज्ञान है हमें अब कि हम सब जानते हैं, क्रोध कैसे पैदा होता है, कैसे कार्य करता है। कामवासना कैसे जगती है, कैसे कार्य करती है, क्या उसकी बायो-केमिस्ट्री है, क्या उसके कार्य करने का ढंग है, सब हमें पता है। बुद्ध को इतना पता नहीं था। लेकिन बुद्ध को इतना पता था कि क्रोध उनके भीतर काम नहीं कर पाता था। हमें क्रोध के संबंध में सब कुछ पता है; लेकिन क्रोध पर हमारा रत्ती भर भी कोई वश नहीं है। कामवासना के संबंध में हमें जितना ज्ञात है, मनुष्य-जाति के इतिहास में कभी किसी को ज्ञात नहीं था। लेकिन कामवासना से जिस बुरी तरह हम पीड़ित हैं, वैसा कभी कोई समय इस बुरी तरह पीड़ित नहीं रहा।
हमारा ज्ञान तो बढ़ता गया है राशि में। और हमारा अज्ञान भी बढ़ता गया है। जितना कंपता हुआ आदमी आज का है--खुद पर उसे कोई भरोसा नहीं है; एक क्षण का कोई विश्वास नहीं है; कोई सुरक्षा नहीं है; जीवन अर्थहीन मालूम पड़ता है। तो निश्चित ही जिस तर्क का सहारा लेकर हम चले थे, वह गलत सिद्ध हुआ है। अरस्तू का तर्क लेकर मनुष्य-जाति चली है। अरस्तू ने कहा था कि ज्ञान
बढ़ जाए, तो अज्ञान कम हो जाएगा। यह सीधा गणित है। लाओत्से का गणित तो उलटा मालूम पड़ता है। लाओत्से कहता है, ज्ञान बढ़ेगा, तो अज्ञान भी बढ़ेगा। लाओत्से की कभी किसी ने सुनी नहीं। सुनने जैसी बात भी नहीं थी। बिल्कुल अर्थहीन मालूम पड़ती है, तर्कहीन मालूम पड़ती है। स्वाभाविक बात है कि ज्ञान बढ़े, तो अज्ञान कम हो जाना चाहिए। हमारे मन को समझ में आती है। इसलिए अरस्तू सारी मनुष्य-जाति के लिए केंद्र बन गया। और पश्चिम ने अरस्तू को आधार मान कर सारा विज्ञान विकसित किया।
लेकिन अब जब चीजें विकसित हो गई हैं, तो पता चलता है कि शायद लाओत्से
ही सही है। इधर पचास वर्षों में पश्चिम में जो भी बुद्धिमान लोग हैं, उन सब की प्रतीति एक ही है कि जीवन बिल्कुल अर्थहीन हो गया है, मीनिंगलेस हो गया है। कोई अर्थ नहीं सूझता। किसलिए हम जी रहे हैं, कुछ पता नहीं चलता। क्यों यह भाग-दौड़ है, क्यों यह आपाधापी है, कुछ पता नहीं चलता। जीएं ही क्यों, इसका भी कोई कारण नहीं मालूम होता।
सार्त्र ने कहा है, बिना हमारी मर्जी के हमें जीना पड़ता है। बिना हमारी मर्जी के न मालूम क्यों हम पैदा किए जाते हैं! बिना हमारी मर्जी के न मालूम किस दिन हम उठा लिए जाते हैं! सार्त्र ने कहा है कि एक ही बात है जिसमें हम अपनी मर्जी जाहिर कर सकते हैं और वह आत्मघात है, स्युसाइड है। और तो हमारी कोई मर्जी नहीं है। न कोई हमसे पूछता जन्म के समय; न कोई हमसे पूछता मृत्यु के समय। यह जीवन एक दुख-स्वप्न, एक नाइटमेयर मालूम होता है। इधर पचास वर्षों में न मालूम कितने विचारशील लोगों ने आत्महत्या की है। ऐसा कभी नहीं हुआ था। पचास साल के पहले दुनिया में आत्महत्याएं हुई हैं--विचारहीन लोगों के द्वारा। इन पचास वर्षों में जो आत्महत्याएं हुई हैं, वे हुई हैं विचारशील लोगों के द्वारा। यह गुणात्मक भेद है। पचास साल पहले जो आदमी आत्महत्या करता था, वह कोई बहुत बुद्धिमान आदमी नहीं था। कोई उसे बुद्धिमान नहीं मानता था। और आज हालत ऐसी है, पश्चिम में कम से कम, कि जिसको लोग बुद्धिमान मानते हैं, अगर उसने अब तक आत्महत्या नहीं की है, तो उसकी बुद्धि पर शक होता है। क्योंकि अगर जीवन व्यर्थ है, तो आत्महत्या ही

एकमात्र उपाय है। अगर मुझे यह पक्का पता चल जाए कि जीवन में कोई भी सार नहीं है, तो फिर जीने के लिए चेष्टा ही... !
निजिंस्की ने आत्महत्या करने के पहले एक पत्र में लिखा है कि मैं आत्महत्या कर रहा हूं; लेकिन कोई यह न समझे कि मैं कायर हूं। स्थिति उलटी है। तुम अपनी आत्महत्या नहीं कर सकते, कायर हो, इसलिए जीए चले जाते हो। मैं कर सकता हूं; मैं कायर नहीं हूं। इसलिए मैं तुम्हारे इस व्यर्थ जीवन की दौड़-धूप से अपना छुटकारा चाहता हूं।
निजिंस्की की बात एकदम गलत नहीं मालूम पड़ती है। अगर आप भी अपने से पूछेंगे कि क्यों जीए चले जाते हैं, तो शायद कायरता ही कारण हो। मरने की हिम्मत न जुटा पाते हों, तो जीए चले जाते हैं, ढोए चले जाते हैं। यह ढोने का भाव पहली दफा आया है दुनिया में। ज्ञान के बढ़ने के साथ आत्म-अज्ञान बढ़ गया। इधर राशि बढ़ गई बाहर के ज्ञान की, उधर भीतर अज्ञान की राशि बढ़ गई। संतुलन पूरा हो गया।
लाओत्से कहता है कि आत्मज्ञान नहीं जन्म सकता, जब तक इस बाहर के ज्ञान
से छुटकारा न हो।
इधर हम देखते हैं, अगर हम तीन सौ वर्ष के मनुष्य के विचार को उठा कर देखें, तो ह्यूमैनिटी, मनुष्यता का सिद्धांत बहुत गति पाया। लेकिन इन तीन सौ वर्षों में हमने जितने युद्ध किए और जिस भयंकर ढंग से युद्ध किए, उनकी कोई तुलना इतिहास में नहीं है। इधर मनुष्यता का ख्याल बढ़ता चला गया और उधर हम हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम भी गिरा दिए। इधर सारी दुनिया में चीख-पुकार चलती है मनुष्यता की और उधर वियतनाम में युद्ध चलता चला जाता है। जो मनुष्यता की बात करते हैं, वे ही युद्ध को चलाए भी चले जाते हैं। अगर मनुष्यता का इतना बोध दुनिया में पैदा हो गया है, तो युद्ध बंद हो जाने चाहिए। लेकिन युद्ध बंद होते नहीं दिखाई पड़ते।
इधर हम न्याय की बड़ी चिंता करते हैं। और अन्याय का कोई हिसाब नहीं है।
और न्याय के नाम पर जब भी हम कोई बदलाहट करते हैं, तो अन्याय की एक नई व्यवस्था निर्मित हो जाती है। और कोई फर्क नहीं पड़ता है। हमारी सब क्रांतियां बीमारियों को नष्ट नहीं करतीं, केवल बीमारियों को कंधे बदल देती हैं। और हमारे सब सुधार सिर्फ आशा बंधाते हैं, परिणाम कोई भी नहीं आता।
जो हम चाहते हैं, उससे उलटा परिणाम आता है। सोचते हैं हम कि जितनी अदालतें होंगी, जितना कानून होगा, उतने अपराध कम होंगे। लेकिन आंकड़े उलटी कहानी कहते हैं। जितने कानून बढ़ते हैं, जितनी अदालतें बढ़ती हैं, जितने न्यायाधीश बढ़ते हैं, उतने अपराधी बढ़ते हैं। अपराधी कम नहीं होते। अगर हम दो हजार साल का अपराध का इतिहास देखें, तो ठीक अनुपात में बढ़ती होती है। कानून बढ़ते हैं, अपराधी बढ़ते हैं। अपराधी बढ़ते हैं, तो कानूनविद डरते हैं कि कानून शायद कम हैं, इसलिए अपराधी बढ़ रहे हैं। वे और कानून बढ़ा लेते हैं। अपराधी और बढ़ जाते हैं।
किसी भ्रांत तर्क में मनुष्य का मन घूमता है। जब अपराधी और बढ़ जाते हैं, तो हम और कानून की व्यवस्था जमा लेते हैं। और तब ऐसा मालूम पड़ता है कि अपराधी और न्यायाधीश के बीच एक गहरा संबंध है। और तब ऐसा मालूम पड़ता है कि चोर और पुलिसवाला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे दो चीजें नहीं हैं। कहीं भीतर जुड़े हैं। एक बढ़ता है, दूसरा भी बढ़ता है। एक की ग्रोथ दूसरे की ग्रोथ तभी हो सकती है, जब दोनों जुड़े हों। कहीं भीतर जोड़ है। और एक का रस दूसरे को भी मिलता है, और एक का जीवन दूसरे को भी मिलता है।
लाओत्से की दृष्टि बिल्कुल और है। लाओत्से कहता है कि तुम्हारे सब अच्छे सिद्धांत, तुम्हारी सब अच्छी धारणाएं तुम्हारी सारी बुराइयों की जड़ में हैं।
"मानवता और न्याय के सिद्धांत का उदय हुआ, जब ताओ का पतन हुआ। और जब ज्ञान और होशियारी का जन्म हुआ, तब पाखंड भी अपनी पूरी तीव्रता में सक्रिय हो गया।"
कभी आपने ख्याल किया कि शिक्षित आदमी को बेईमानी से बचाना बहुत मुश्किल है! लेकिन तब भी हम ऐसा सोचते हैं कि यह शिक्षा की भूल से ऐसा हो

रहा है; शायद शिक्षा में कोई कमी है; शायद शिक्षा ठीक नहीं है। अगर ठीक शिक्षा हो, राइट एजुकेशन हो, तो ऐसा नहीं होगा। फिर हम गलती कर रहे हैं।
लाओत्से कहता है कि शिक्षित आदमी को बेईमानी से बचाना असंभव है। असंभव इसलिए है कि शिक्षा होशियारी देती है; होशियारी चालाकी बन जाती है। शिक्षा समझ देती है; हृदय को नहीं बदलती। हृदय तो वही होता है। समझ भर बदल जाती है। हृदय जो कल कर सकता था अशिक्षित होकर, अब और दुगुने वेग से कर सकता है। सिर्फ, एक आदमी के हाथ में तलवार थी; आदमी वही है, हमने उसको एटम बम दे दिया। यह आदमी कल तलवार चलाता, दो-चार को मारता; आज यह लाखों को मार सकता है। इसके भीतर क्रोध वही है। इसके हाथ में पत्थर होता, तो पत्थर फेंक कर मार देता। इसके हाथ में एटम बम है, तो एटम बम फेंक कर मार देगा। यह आदमी वही है।
इधर शिक्षा बढ़ती है, बेईमानी बढ़ती चली जाती है। इमर्सन या और विचारक,
जो मानते हैं कि जिस दिन सारा जगत सुशिक्षित हो जाएगा, उस दिन कोई बुराई न रह जाएगी, बुनियादी रूप से गलत हैं। हम देख रहे हैं कि जगत सुशिक्षित होता जा रहा है, और कुछ मुल्क तो पूरी तरह सुशिक्षित हो गए हैं। आज अमरीका तो पूरी तरह सुशिक्षित है। लेकिन उसकी शिक्षा से ही उसकी सारी बीमारियों का जन्म हो गया है। अच्छे लोग भी गलत तर्क को मान कर चलें, तो नुकसान पहुंचाते हैं।
एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने अपना पूरा जीवन आदिवासियों को शिक्षा देने में लगाया। बड़े प्रसन्न हैं कि उन्होंने भारी काम किया, बड़ा त्याग किया। काफी आनंदित हैं। शहीद होने का मजा है, कि मैंने अपनी पूरी जिंदगी लगा दी, एक पैसा नहीं कमाया। मैं क्या नहीं कमा सकता था! जेल गया; आज केंद्रीय मंत्रिमंडल में हो सकता था, पार्लियामेंट में हो सकता था। उस सब पर लात मार दी। आदिवासी बच्चों को शिक्षा देने में मैंने सब जीवन कुर्बान कर दिया।
मैंने उनसे पूछा कि तुम जो शिक्षा दे रहे हो, यह भी तो देखो कि जिन बच्चों को शिक्षा मिल गई है, उनको क्या हुआ है? तुम मर जाओगे शिक्षा दे-दे कर इस ख्याल में कि बड़ा उपकार कर रहे हो, लेकिन दूसरी तरफ भी नजर डालो-- जिनको शिक्षा मिल गई है, उनको क्या हो गया है?
अमरीका तो आज शिक्षित मुल्क है। हम आशा कर सकते हैं कि अमरीका सारे जगत का भविष्य है। सब लोग शिक्षित हो जाएंगे, तो सभी मुल्क अमरीका जैसे हो जाएंगे। लेकिन यह पूरी शिक्षा का परिणाम क्या है? अपराध कम नहीं हुए, बढ़ गए। बेईमानी कम नहीं हुई, बढ़ गई। हत्याएं कम नहीं हुईं, बढ़ गईं। पाप कम नहीं हुए, बढ़ गए। जिस मात्रा में शिक्षा बढ़ी, उसी मात्रा में सब बढ़ गया। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि हम विपरीत को मिटा नहीं सकते;
एक को बढ़ा कर हम उसके विपरीत को मिटा नहीं सकते, सिर्फ बढ़ा सकते हैं।
किसी और पहलू से देखें। आज जमीन पर जितनी दवाएं हैं, कभी भी नहीं थीं। लेकिन बीमारियां कम नहीं हुईं। बीमारियां बढ़ गई हैं। सच तो यह है कि नई-नई मौलिक बीमारियां पैदा हो गईं, जो कभी भी नहीं थीं। हमने दवाओं का ही आविष्कार नहीं किया, हमने बीमारियां भी आविष्कृत की हैं। क्या होगा कारण? दवाइयां बढ़ें, तो बीमारियां कम होनी चाहिए; यह सीधा तर्क है। दवाइयां बढ़ें, तो बीमारियां बढ़नी चाहिए, यह क्या है? यह कौन सा नियम काम कर रहा है? असल में, जैसे ही दवा बढ़ती है, वैसे ही आपके बीमार होने की क्षमता बढ़ जाती है। भरोसा अपने पर नहीं रह जाता, दवा पर हो जाता है। बीमारी से फिर आपको नहीं लड़ना है, दवा को लड़ना है। आप बाहर हो गए। और जब दवा बीमारी से लड़ कर बीमारी को दबा देती है, तब भी आपका अपना रेसिस्टेंस, अपना प्रतिरोध नहीं बढ़ता। आपकी अपनी शक्ति नहीं बढ़ती। बल्कि जितना ही आप दवा का उपयोग करते जाते हैं, उतना ही बीमारी से आपकी लड़ने की क्षमता रोज कम होती चली जाती है। दवा बीमारी से लड़ती है, आप बीमारी से नहीं लड़ते। आप रोज कमजोर होते जाते हैं। आप जितने कमजोर होते हैं, उतनी और भी बड़ी मात्रा की दवा जरूरी हो जाती है। जितनी बड़ी मात्रा की दवा जरूरी हो जाती है, आपकी कमजोरी की खबर देती है। उतनी बड़ी बीमारी आपके द्वार पर खड़ी हो जाती है। यह सिलसिला जारी रहता है। यह लड़ाई दवा और बीमारी के बीच है; आप इसके बाहर हैं। आप सिर्फ क्षेत्र हैं, कुरुक्षेत्र, वहां कौरव और पांडव लड़ते हैं। वहां

बीमारियों के जर्म्स और दवाइयों के जर्म्स लड़ते हैं। आप कुरुक्षेत्र हैं। आप पिटते हैं दोनों से। बीमारियां मारती हैं आपको; कुछ बचा-खुचा होता है, दवाइयां मारती हैं आपको। लेकिन दवा इतना ही करती है कि मरने नहीं देती; बीमारी के लिए आपको जिंदा रखती है।
दवाओं और बीमारियों के बीच कहीं कोई अंतर-संबंध है।
अगर हम लाओत्से से पूछें, तो लाओत्से कहेगा कि जिस दिन दुनिया में कोई दवा न होगी, उसी दिन बीमारी मिट सकती हैं। लेकिन यह बात हमारी समझ में न आएगी। क्योंकि लाओत्से का तर्क ही कुछ और है। वह यह कहता है, कोई दवा न हो, तो बीमारी से तुम्हें लड़ना पड़ेगा। तुम्हारी शक्ति जगेगी। दवा का भरोसा खुद पर भरोसा कम करवाता जाता है। हम देख सकते हैं कि किस भांति हमारे शरीर दवाओं से भर गए हैं। लेकिन कोई उपाय नहीं है। क्योंकि पूरा तर्क... ।
इसे हम ऐसा समझें। जितनी हम सुरक्षा में हो जाते हैं, उतने असुरक्षित
हो जाते हैं। जितने असुरक्षित होते हैं, उतने सुरक्षित होते हैं। क्या मतलब हुआ इस पहेली का? इस पहेली का यह मतलब हुआ, जितने आप सुरक्षित होते हैं, उतने कमजोर हो जाते हैं।
हम एक एयरकंडीशंड कमरे में बैठे हुए हैं। अपने एयरकंडीशंड कमरे की खिड़की से आप बाहर एक मजदूर को सड़क पर से धूप में निकलते देखते हैं। आप सोचते हैं, बेचारा कितनी धूप झेल रहा है! लेकिन आप नहीं जानते कि हो सकता है, उसे धूप का पता भी न चल रहा हो। यह धूप का ख्याल आपका है। और यह बात सच है कि आप अगर इस मजदूर की जगह चलेंगे, तो भयंकर धूप होगी। लेकिन एक ही सड़क पर एक सी धूप नहीं होती, क्योंकि अलग-अलग आदमी अलग-अलग धूप का अनुभव करते हैं। धूप सूरज पर ही निर्भर नहीं है, आप पर भी निर्भर है। इसलिए जब आप सड़क पर चल कर पसीने से तरबतर हो जाएंगे, तो आप सोचते हैं, बेचारा मजदूर! यह सिर्फ आप ही बेचारे हैं; बेचारा मजदूर नहीं। मजदूर को, हो सकता है, धूप का पता ही न चल रहा हो। क्योंकि धूप के पता चलने के लिए एयरकंडीशनिंग पहले जरूरी है। वह अनिवार्य है।
इसका मतलब यह हुआ कि जितनी एयरकंडीशनिंग बढ़ेगी, उतनी धूप बढ़ेगी। और जितनी दुनिया को हम शीतल कर लेंगे, उतनी दुनिया गरम हो जाएगी। यह विपरीत दिखाई पड़ता है। लेकिन जोड़ हैं भीतर। गहरे जोड़ हैं। जितनी देर आप एयरकंडीशनिंग में हैं, उतनी आपके शरीर की अपनी क्षमता धूप से लड़ने की कम होती जा रही है। स्वभावतः जिस चीज की जरूरत नहीं है, वह क्षमता कम हो जाएगी। आपका शरीर जो काम करता, वह एयरकंडीशनिंग की मशीन कर रही है। तो जब आप अचानक धूप में खड़े हो जाएंगे, आपका शरीर एकदम असुरक्षित हो जाएगा; वह नहीं सह पाएगा। मशीन सह रही थी धूप आपके लिए; आप नहीं सह रहे थे। तो आपकी अपनी सहने की क्षमता तो कम हो ही जाएगी। धूप में जब आप निकलेंगे, तो भयंकर पीड़ा अनुभव होगी। यह जो पीड़ा का अनुभव है, यह बढ़ गया आपका। जब तक एयरकंडीशनिंग नहीं थी, तब तक दुनिया में धूप का ऐसा कोई अनुभव नहीं था। इसलिए अब रूस में वे विचार करते हैं कि हमें पूरे नगर को एयरकंडीशन कर लेना चाहिए। लेकिन जिस दिन आप पूरे नगर को एयरकंडीशन कर लेंगे और बच्चे एयरकंडीशनिंग में ही पैदा होंगे और बूढ़े एयरकंडीशनिंग में ही मरेंगे, उस दिन आप समझना कि मनुष्य को अंडरग्राउंड चले जाना पड़ेगा। ऐसी कथाएं हैं कि कभी-कभी सभ्यताएं इस ऊंचाई पर पहले भी पहुंच चुकी हैं। और जो भी सभ्यता आखिरी ऊंचाई पर पहुंची, उसको अंडरग्राउंड, भूमिगत जाना पड़ा है।
दक्षिण अमरीका में एक झील है, टिटीकाका। बहुत अनूठी झील है; और वैज्ञानिक बहुत परेशान रहे हैं। क्योंकि झील में एक नदी गिरती है। करोड़ों गैलन पानी रोज उस झील में गिरता है। और झील से बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं है पानी का। लेकिन झील में कभी इंच भर पानी बढ़ता नहीं। तो वैज्ञानिक बहुत परेशान हुए स्वभावतः। यह सारा पानी जाता कहां है? यह टिटीकाका मिस्टीरियस झील है सारी जमीन पर। इसका पानी जाता कहां है? इतना पानी प्रति सेकेंड गिर रहा है, और उसमें कभी इंच भर बढ़ती नहीं होती! कभी बढ़ती नहीं हुई सैकड़ों वर्षों के रिकार्ड में। पानी उसका उतना ही रहता है।
कुछ रहस्यवादियों का ख्याल है कि टिटीकाका झील के नीचे कभी किसी पुरानी इन्का सभ्यता की बस्ती थी। और यह टिटीकाका झील उस बस्ती में पानी पहुंचाने का उपाय करती थी। वह बस्ती तो नष्ट हो गई है; लेकिन अंडरग्राउंड

जो पानी को सोखने की व्यवस्था थी, वह जारी है। तो पानी ऊपर से पहुंचता जाता है और वह नीचे झील पीती चली जाती है। उस झील के नीचे एक बस्ती थी, ऐसा ख्याल है। और अब वैज्ञानिक भी थोड़ा इससे राजी होते चले जाते हैं। इस पर काफी खोज चलती है कि उस बस्ती का कोई पता चल सके।
ऐसा ख्याल है कि जब भी कोई सभ्यता पूरी विकसित होती है, तो वह अंडरग्राउंड हो जाती है। हम जो मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में सात-सात पर्तें देखते हैं नगरों की, वह जरूरी नहीं है कि विध्वंस के कारण, भूकंप के कारण जमीन के भीतर चली गई हों। बहुत संभावना यह है कि सभ्यता स्वयं भूमिगत हो गई हो। क्योंकि एक-दो पर्त नहीं हैं, मोहनजोदड़ो में सात पर्तें हैं।
तो अब तक वैज्ञानिक कहते थे, भूगर्भशास्त्री कहते थे, स्थापत्यविद कहते थे कि सात बार मोहनजोदड़ो बसा और सात बार भूकंप के कारण भूमिगत हो गया। यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती है। और एक के बाद एक सात सभ्यताएं नगर की जमीन में डूब गईं। ज्यादा ठीक यह बात मालूम पड़ती है कि सभ्यता उस शिखर पर पहुंच गई, जहां भूमिगत हो जाना अनिवार्य हो गया। क्योंकि भूमि के बाहर की कोई भी व्यवस्था को सहने की क्षमता आदमियों में न रही।
दो सौ साल के भीतर अगर हम एयरकंडीशनिंग को बस्तियों पर फैला देते हैं,
तो आदमी को जमीन के भीतर जाना पड़ेगा। क्योंकि फिर सूरज की रोशनी में बाहर निकलना ही मौत का कारण हो जाएगा। अगर बच्चा एयरकंडीशनिंग में ही पैदा हो और बड़ा हो, तो सूरज की रोशनी में निकलना ही मृत्यु हो जाएगी। सूरज अब तक जीवन रहा है; कल वह मौत भी हो सकता है।
जैसे-जैसे हम सुरक्षित होते हैं, वैसे-वैसे असुरक्षित हो जाते हैं। जैसे-जैसे हम इंतजाम करते हैं बचने का, वैसे-वैसे हमारे द्वार खतरों के लिए खुल जाते हैं।
लाओत्से कहता है कि जब ज्ञान का जन्म होगा, तो पाखंड पैदा होगा, हिपोक्रेसी पैदा होगी, बेईमानी पैदा होगी, धोखा पैदा होगा। लोग प्रवंचक हो जाएंगे। जानने वाला आदमी ईमानदार हो, यह बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है। इस संबंध में बाइबिल की कथा स्मरणीय है। और ईसाइयों की कथाओं में अगर कोई कथा मूल्यवान है, तो बस एक यही कि अदम और ईव को ईश्वर ने बगीचे से बाहर कर दिया स्वर्ग के, क्योंकि उन्होंने ज्ञान का फल चख लिया। ईश्वर ने जब अदम और ईव को बनाया, तो उसने कहा कि यह सारा बगीचा तुम्हारा है, सिर्फ एक वृक्ष को छोड़ कर--दि ट्री ऑफ नालेज। ज्ञान के वृक्ष को छोड़ कर सारा बगीचा तुम्हारा है। तुम सब फल चखना, बस इस ज्ञान के फल को मत चखना।
शायद इसी कारण अदम और ईव ज्ञान के फल के लिए बहुत उत्सुक हो गए। और शायद इसी कारण शैतान ईव को समझाने में सफल हो गया। शैतान ने ईव को समझाया कि इस फल का वर्जन इसीलिए किया गया है कि जो भी इसके फल को खा लेगा, वह ईश्वर जैसा हो जाएगा, देवताओं जैसा हो जाएगा। ज्ञान आदमी को देवता बना देता है। और ईश्वर ने तुम्हें सब छुट्टी दे दी है, सिर्फ इससे रोका है; इसीलिए कि तुम देवताओं जैसे न हो जाओ। जो जान लेगा, वह देवता जैसा हो जाएगा।
ईव को उसकी बात जंची। क्योंकि अज्ञान ही तो पतन है; और ज्ञान श्रेष्ठता है। तो ज्ञान का फल वर्जित किया ईश्वर ने, इसका मतलब साफ है कि ईश्वर हमें अपने जैसा नहीं होने देना चाहता। शैतान ने भी ईव को पहले समझाया; क्योंकि किसी पति को सीधा समझाने की कोई जरूरत नहीं है। पत्नी राजी है, तो पति बेचारा राजी ही है। और पत्नी को राजी कर लेना आसान है, क्योंकि ईर्ष्या जगानी आसान है। और शैतान ने ईर्ष्या जगा दी। उसने कहा कि तुम देवताओं जैसे हो जाओगे। आदम ने बहुत कहा कि जब ईश्वर ने मना किया है, तो हम क्यों झंझट में पड़ें? लेकिन जब पत्नी और परमात्मा के बीच चुनना हो, तो पत्नी को ही चुनना पड़ता है। ईव मानने को राजी नहीं थी। और जितना अदम ने रोका, उतना ईव का आकर्षण बढ़ता चला गया। और वह फल चखना पड़ा। उस फल के चखते ही उन्हें स्वर्ग के बगीचे के बाहर कर दिया गया।
ज्ञान आदमी के पतन का कारण बना, बाइबिल में। यह बड़ी हैरानी की बात है। इससे लाओत्से का मेल है। लाओत्से भी यही कहता है कि ज्ञान पतन का कारण है आदमी का। और तब से अदम भटक रहा है, और उस अदम के बेटे आदमी भटक रहे हैं। और

तब तक वापस नहीं लौट सकते, जब तक वे ज्ञान को तिलांजलि न दे दें। स्वर्ग का द्वार उनके लिए फिर से खुल सकता है, अगर वे ज्ञान को तिलांजलि दे दें।
एक मजे की बात है कि ज्ञान के तिरोहित होते ही अज्ञान भी तिरोहित हो जाता है। सच बात तो यह है कि अज्ञान है, यह भी ज्ञान के ही कारण पता चलता है। इसलिए जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना अज्ञान का बोध बढ़ता है। अगर आप जमीन पर बिल्कुल अकेले हों, तो आप अज्ञानी होंगे कि ज्ञानी? क्या होंगे आप? आप सिर्फ होंगे। क्योंकि कंपेरिजन की, तुलना की कोई जगह न होगी। किससे तौलेंगे कि आप ज्ञानी हैं कि अज्ञानी? अगर आप अकेले हों जमीन पर, तो चरित्रवान होंगे कि चरित्रहीन? किससे तौलेंगे? साधु होंगे कि असाधु? कैसे जानेंगे? कैसे तौलेंगे? क्या होगा मापदंड?
लाओत्से कहता है कि ताओ की स्थिति वह सरल स्थिति है, जैसे हर आदमी जमीन पर अकेला हो। न कोई तौलने का उपाय है; न कुछ बुरा है, न कुछ भला है; न कुछ ज्ञान है, न कुछ अज्ञान है; न कुछ साधुता है, न कुछ असाधुता है। सिर्फ होना मात्र है--जस्ट बीइंग।
बाइबिल की इस कथा में एक और मजेदार बात है कि जैसे ही फल को चखा ईव ने, उसने जल्दी से पत्ते उठा कर अपने शरीर को ढंका। अब तक वह नग्न थी। ज्ञान के साथ ही पाप का बोध आ गया। ज्ञान के साथ ही, कुछ छिपाना है, इसका ख्याल आ गया। ज्ञान के साथ ही पूरे शरीर की स्वीकृति न रही, कुछ अस्वीकृत हो गया। तब तक अदम और ईव नंगे थे। तब तक वे छोटे बच्चों की तरह निर्दोष थे। ज्ञान के साथ ही दोष शुरू हो गया।
लाओत्से कहता है कि ज्ञान जब तक न खो जाए, तब तक इनोसेंस, निर्दोषिता उपलब्ध नहीं होती।
इसलिए बहुत मजे की बात है कि परम ज्ञान को वे ही लोग उपलब्ध होते हैं,
जो ज्ञान को भी छोड़ने में समर्थ हो जाते हैं। तब वे निर्दोष हो जाते हैं, तब वे सरल हो जाते हैं।
जीसस ने कहा है कि वे ही मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करेंगे, जो
इन छोटे बच्चों की तरह निर्दोष हैं।
पता नहीं, छोटे बच्चे निर्दोष हैं या नहीं। क्योंकि फ्रायड नहीं मानता कि निर्दोष हैं। फ्रायड तो मानता है कि सब दोष उनमें मौजूद हैं; सिर्फ प्रकट होने की देर है। सब उपद्रव मौजूद हैं। आपके सहारे की जरा जरूरत है; सब प्रकट होने लगेंगे। थोड़ा शिक्षित करिए, थोड़ा बड़ा करिए, खिलाइए-पिलाइए, तैयार करिए; सब बीमारियां तैयार हैं, वे प्रकट होने लगेंगी।
लेकिन जीसस का मतलब और है। जीसस का मतलब यह है कि जहां बोध नहीं है, अबोध! अबोध ही निर्दोषिता है।
जैसे ही ज्ञान आया ईव को और अदम को, उन्होंने ढंक लिया अपने को। वे अपने ही प्रति निंदा से भर गए। शर्म मालूम पड़ने लगी। शर्म का अर्थ ही है कि आदमी को दोष का बोध शुरू हो गया। स्त्रियों में हम शर्म को बड़ा गुण मानते हैं; वह गुण है नहीं। लज्जा को हम गुण मानते हैं; वह गुण है नहीं। क्योंकि लज्जा का मतलब यह होता है कि स्त्री को दोष का बोध हो गया। कुछ गलत है, इसका पता चल गया। बिना अनुभव के पता कैसे चलेगा? किसी न किसी रूप में गलत भीतर प्रवेश कर गया है।
निर्दोष व्यक्तित्व में लज्जा भी नहीं है, शर्म भी नहीं है, बेशर्मी
भी नहीं है। क्योंकि बेशर्मी के लिए पहले शर्म आ जानी जरूरी है। निर्दोष व्यक्तित्व में लज्जा भी नहीं है, निर्लज्जता भी नहीं है। क्योंकि निर्लज्जता बाई-प्रोडक्ट है; लज्जा के बाद ही! किसी में लज्जा आ जाए और फिर वह लज्जा की फिक्र न करे और जीता चला जाए, तो निर्लज्ज होता है।
लाओत्से कहता है कि एक ऐसी सरल स्थिति भी है जीवन की, जहां अभी द्वंद्व का पता ही नहीं है कि क्या है काला और क्या है सफेद। वह कहता है, वही परम धर्म है। उसके नीचे जितनी बातें धर्म की कही जाती हैं, वे सब पतन की हैं।
कनफ्यूशियस मिलने आया है लाओत्से को। तो कनफ्यूशियस ठीक उलटा आदमी है। वह ठीक अरस्तू से मेल खाता है, हमसे मेल खाता है। कनफ्यूशियस कहता है कि लोगों को सिखाओ कि अच्छाई क्या है। कनफ्यूशियस सदधर्म, नीति, नियम का

पक्का पाबंद है। इंच-इंच जीवन को नियम से बांध कर, अनुशासन से बांध कर चलना चाहिए। उठना कैसे, बैठना कैसे, बोलना कैसे, उस सब की उसकी व्यवस्था है। इस जगत में उससे ज्यादा बड़ा अनुशासनविद और अनुशासनप्रेमी नहीं हुआ है। हर चीज का नियम उसने बना दिया है। जीना कैसे, मरना कैसे, सब का नियम है। कनफ्यूशियस मर रहा है। उसका शिष्य उससे मिलने आया है। तो कनफ्यूशियस उससे पूछता है। क्योंकि कई वर्षों बाद, बीस वर्ष बाद शिष्य वापस आया है मरते गुरु के पास। मरता गुरु और कुछ नहीं पूछता, मरता गुरु यह पूछता है कि तू जिस बैलगाड़ी में बैठ कर आया है, गांव के बाहर उससे नीचे उतर गया था या गांव के भीतर भी बैठ कर आया? उसके शिष्य ने कहा, आपका शिष्य होकर ऐसी भूल कैसे कर सकता हूं? जिस गांव में मैं पैदा हुआ, उसमें बैलगाड़ी में बैठ कर कैसे आ सकता हूं? गांव के बाहर उतर गया था। कनफ्यूशियस ने कहा, तब ठीक है; मैं शांति से मर सकता हूं।
ऐसा नियमविद! हर चीज को नियम, डिसिप्लिन, कानून, उसमें बांधना।
लाओत्से बिल्कुल उलटा आदमी था। वहां कोई नियम ही न थे। क्योंकि नियम
ही लाओत्से के लिए पतन था। नियम का मतलब ही है कि बीमारी आ गई; अब उसे बांधना है, सम्हालना है, किसी तरह चलाना है।
कनफ्यूशियस मिलने गया लाओत्से को। तो कनफ्यूशियस ने कहा कि आपका क्या संदेश है? लोगों को मैं अच्छा बनाना चाहता हूं; आप मुझे कुछ सलाह दें, यह मैं कैसे करूं? तो लाओत्से ने कहा कि तुम अच्छे बनाने की कोशिश भर मत करो। नहीं तो तुम लोगों को बुरा बनाने में सफल हो जाओगे। तुम्हारी इतनी कृपा काफी होगी कि तुम लोगों को अच्छा बनाने की कोशिश मत करो।
कनफ्यूशियस की तो कुछ समझ में न आया; क्योंकि उसके तो चिंतन की एक धारा थी। उसने कहा, यह भी क्या बात है? इससे तो अराजकता फैल जाएगी! इससे तो अनार्की हो जाएगी! अगर हम लोगों को अच्छा न बनाएं, तो सब अराजकता हो जाएगी। लाओत्से ने कहा, राजकता लाने की चेष्टा से अराजकता पैदा होती है। कनफ्यूशियस ने कहा कि लोग बिल्कुल स्वच्छंद हो जाएंगे। लाओत्से ने कहा, नियम के कारण ही लोग स्वच्छंद होते हैं। अगर नियम नहीं, तो कैसी स्वच्छंदता? लोग सहज होंगे। नियम हैं, तो लोग स्वच्छंद हो जाएंगे। और सब नियम सहजता के विपरीत होते हैं; इसलिए सब नियम लोगों को स्वच्छंद होने के लिए मजबूर कर देते हैं।
यह थोड़ा समझने जैसा है, सब नियम लोगों को स्वच्छंद होने के लिए मजबूर
कर देते हैं। सहजता तो एक प्रवाह है, और नियम तो एक बांध है।
मैं छोटा था, तो मेरे स्कूल के एक शिक्षक की मृत्यु हुई। उन्हें स्कूल में हम सारे लोग भोले शंकर कह कर चिढ़ाया करते थे। बहुत भोले आदमी थे। सच में ही भोले आदमी थे। और सब तरफ से उन्हें परेशान किया जा सकता था। और सब तरफ से चौबीस घंटे स्कूल में वे परेशान किए जाते थे। उनकी मृत्यु हो गई। सारे स्कूल के बच्चे उनको अंतिम विदा देने गए। उनसे प्रेम भी था, लगाव भी था। उनको इतना परेशान भी किया हुआ था। मैं सामने ही खड़ा था, उनकी अरथी के बिल्कुल पास। उनकी पत्नी बाहर निकली और जोर से उनकी छाती पर गिर पड़ी और उसने कहा, हे मेरे भोले शंकर! तो मुझे हंसी रोकनी बिल्कुल मुश्किल हो गई। यह कभी नहीं सोचा था कि मरने पर और उनकी पत्नी उनको भोले शंकर कहेगी। भोले शंकर कह कर तो हम उन्हें चिढ़ाते थे। तो उनकी मौत की जो गमगीनी थी, वह तो खतम हो गई। वह तो भूल ही गया ख्याल कि वे मर गए हैं और अभी हंसना उचित नहीं है। हंसी इतने जोर से फैली कि करीब-करीब पूरे स्कूल के लड़के हंसने लगे। क्योंकि सभी को पता था कि भोले शंकर! हद हो गई! यह तो मजाक की आखिरी सीमा हो गई।
बहुत डांट-डपट पड़ी। घर लौट कर हर एक के घर पर डांट-डपट पड़ी; और कहा गया
कि अब तुम्हें कभी ऐसी जगह नहीं ले जाया जा सकता। आदमी मर गया और तुम हंस रहे हो! कुछ नियम का ख्याल होना चाहिए। फिर इतने जोर से हंसने की क्या बात थी? अगर हंसी भी आ गई थी--और जब बताया कारण, तो सब को समझ में आया कि हंसी का कारण था--तो भी अपने मन में ही। पर कारण जोर से हंसने का यह था कि नियम के ख्याल के कारण सभी ने रोकने की कोशिश की। फिर रोकना इतना असंभव हो गया कि वह इतने जोर से फूटी कि वह एक्सप्लोसिव हो गई। उनकी पत्नी के भी आंसू सूख गए। वह भी घबड़ा कर खड़ी हो गई कि क्या हुआ!

नियम अक्सर विपरीत को शक्ति देते हैं। नियम था साफ था कि नहीं हंसना है। हंसने की कोई बात बिल्कुल ही गैर-मौजूं है। लेकिन जिंदगी नियम नहीं मानती। वहां भीतर तो हंसी आ गई, और वह बिल्कुल सहज थी। कोई दुर्भाव भी न था। लेकिन नियम ने उसे रोका। नियम बांध बनाता है। जो सहज धारा आ गई थी, नियम ने बांध बनाया। और बांध जब टूटेंगे, तो स्वच्छंदता पैदा होती है। बांध के कारण पैदा होती है, नदियों के कारण नहीं। और जब बांध टूटते हैं, तो भयंकर उत्पात हो जाता है।
तो जिन्होंने जीवन को बांध की भाषा में देखा है, जैसे कनफ्यूशियस ने,
तो उसने कहा, सब स्वच्छंद हो जाएगा। कोई किसी की मानेगा नहीं, कोई किसी की सुनेगा नहीं। प्रजा राजा की नहीं सुनेगी; बेटे पिता की नहीं सुनेंगे; पत्नियां पतियों की नहीं मानेंगी; नौकर मालिक की नहीं सुनेंगे।
लाओत्से ने कहा कि तुम जितनी कोशिश करोगे कि बेटे पिता की सुनें, बेटे पिता के उतने ही विपरीत होते चले जाएंगे। और लाओत्से सही सिद्ध हुआ है। पांच हजार साल से हम कोशिश कर रहे हैं कि बेटे बाप की सुनें। और परिणाम केवल एक हुआ कि बेटे और बाप के बीच की खाई बड़ी होती चली गई। कोशिश हमारी यही रही है कि नौकर मालिक की सुनें। और परिणाम यह हुआ है कि नौकर ने कहा कि तुम मालिक हो, यह तुमसे कहा किसने? भ्रांति में हो। ज्यादा से ज्यादा हम पार्टनर्स हैं, साझेदार हैं। प्रजा राजा की माने, इसका कुल परिणाम इतना हुआ कि आज जमीन पर राजा नहीं हैं।
यह बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि पांच हजार साल की सतत चेष्टा का यह
फल कि प्रजा राजा की माने, परिणाम यह हुआ कि राजा कहीं भी नहीं हैं। और अगर हैं भी, तो उनकी हैसियत नौकरों की हो गई है। आज इंगलैंड की रानी की हैसियत एक नौकर से ज्यादा नहीं है; क्योंकि तनख्वाह भी पार्लियामेंट तय करती है। कम भी कर सकती है, बढ़ा भी सकती है, बंद भी कर सकती है। कोई मूल्य नहीं रह गया। किस वजह से?
कनफ्यूशियस की वजह से। लाओत्से ने उसी दिन कनफ्यूशियस को कहा था कि तुम बर्बाद कर दोगे दुनिया को। तुम नियम थोपोगे, अनियम पैदा हो जाएगा। तुम अनुशासन चाहोगे, अनुशासनहीनता जन्मेगी। लाओत्से ने कहा था, तुम अच्छा करने की कोशिश ही छोड़ दो। अगर तुम अच्छा करने की कोशिश छोड़ दो, तो दुनिया में बुरा होना बंद हो सकता है।
मगर यह बड़ा कठिन है; और बड़ा मुश्किल है; बड़ा मुश्किल है। यह मान कर चलना बड़ा मुश्किल है कि दवा मत दो, तो बीमारी अच्छी हो सकती है।
लेकिन अभी पश्चिम के बहुत से अस्पतालों में प्रयोग चलते हैं। और लाओत्से सही निकलता है--न मालूम कितने-कितने कोनों से। एक आदमी को एलोपैथिक दवा दें, एक आदमी को होमियोपैथिक दवा दें। एक सी बीमारी दोनों की है। एक को नेचरोपैथी करवा दें, एक को किसी बाबा की भभूत दिलवा दें। परिणाम परसेंटेज में बराबर निकलते हैं। सत्तर परसेंट लोग हर हालत में ठीक होते हैं--चाहे एलोपैथी हो, चाहे नेचरोपैथी हो, चाहे होमियोपैथी हो, चाहे बायोकेमी हो, कुछ भी हो। चाहे बाबा की भभूत हो, और चाहे कुछ भी हो, सत्तर परसेंट मरीज तो तय किए बैठे हैं, ठीक होंगे ही।
अभी इस पर बहुत प्रयोग चले, तो फिर यह सोचा कि कुछ होमियोपैथी की दवा
भी करती ही होगी, कुछ बायोकेमी की दवा भी करती ही होगी, कुछ नेचरोपैथी की विधियां भी करती ही होंगी। तो फिर शुद्ध पानी मरीजों को देकर देखा गया न मालूम कितने अस्पतालों में। दस मरीज हैं एक ही बीमारी के। पांच को दवा दी जा रही है, पांच को पानी दिया जा रहा है। पानी भी उतना ही काम करता है, जितनी दवा काम करती है।
अब तो वे कहते हैं कि अगर सर्दी-जुकाम है, दवा लो तो सात दिन में ठीक हो जाओगे, दवा न लो तो एक सप्ताह में ठीक हो जाओगे। दवा लो, सात दिन में ठीक हो जाओगे। दवा न लो, एक सप्ताह में ठीक हो जाओगे। क्या होता होगा आदमी को? अभी तक साफ नहीं है।
लाओत्से कहता है, प्रकृति स्वयं ही अपना सुधार कर लेती है। तुम सिर्फ प्रकृति पर छोड़ो। तुम कृपा करो और बीच में दखलंदाजी मत करो। तुम ही उपद्रव हो। तुम जरा दूर रहो और प्रकृति पर छोड़ दो। प्रकृति अपना उपाय कर लेती है। जिसने तुम्हें पैदा किया, जिसने तुम्हें जीवन दिया, जिससे तुम श्वासें ले

रहे हो, जिसके कारण तुम चेतन हो, वह विराट है ऊर्जा; वह तुम्हारी बीमारियों को भी बहा ले जाएगी, तुम बीच में मत आओ। वह तुम्हारी बुराई को भी बहा ले जाएगी, तुम बीच में मत आओ। तुम ही उपद्रव हो। तुम बीच में आओ ही मत। तुम इस धारा के साथ सहज एक हो जाओ। यह धारा जो चाहे और जहां ले जाए और जो करवाए! बीमारी आए, तो बीमारी से राजी हो जाओ। प्रकृति को छोड़ दो, जो उसे करना हो। अगर ऐसा हम समझें, तो लाओत्से ही अकेला प्रकृतिवादी है। अगर ठीक से कहें, तो वह जो कह रहा है, वही सिर्फ नेचरोपैथी है। पेट पर पट्टी बांधे हैं मिट्टी की, या कपड़ा बांधे हुए हैं, या टब में बैठे हुए हैं, या एनिमा ले रहे हैं--कोई भी नेचरोपैथी नहीं है। क्योंकि क्या संबंध है नेचर का एनिमा से? लाओत्से कहता है, बिल्कुल छोड़ दो प्रकृति पर। जो प्रकृति करना चाहे, होने दो। तुम सिर्फ राजी रहो बहने को। लाओत्से कहता है, तैरो मत, बहो। छोड़ दो नदी पर, जहां ले जाए। और तुम मत कहो कि मेरी मंजिल कौन सी है; नदी पर छोड़ दो। जहां तू पहुंचा दे, वही मेरी मंजिल है। लाओत्से कहता है, ऐसी अवस्था में ही धर्म के फूल खिलते हैं।
"और जब ज्ञान और होशियारी का जन्म हुआ, तब पाखंड भी अपनी पूरी तीव्रता में सक्रिय हो गया। जब संबंधों के बीच शांति असंभव हो गई, तब दयालु माता- पिता और आज्ञाकारी पुत्रों की प्रशंसा शुरू हुई।"
जब हम कहते हैं कि फलां का बेटा बड़ा आज्ञाकारी है, तो उसका मतलब क्या होता है? उसका मतलब है कि वह अपवाद है, एक्सेप्शन है।
लाओत्से कहता है, बेटा होने का अर्थ ही आज्ञाकारी होना होना चाहिए। बेटा आज्ञाकारी, यह पुनरुक्ति है, रिपीटीशन है। अगर हम कहते हैं कि फलां मां कितनी दयालु है, तो उसका मतलब यह हुआ कि मां और दया दो अलग चीजें हैं? कि कभी मां के साथ जुड़ती है और कभी नहीं जुड़ती दया! लेकिन मां होना ही दया है। इसलिए यह कहना कि फलां मां दयालु है, इस बात की खबर है कि अब माताएं भी दयालु नहीं होती हैं। यह अपवाद है। तभी तो हम इसकी प्रशंसा करते हैं, कहते हैं, फलां का बेटा कितना आज्ञाकारी है। इसका मतलब कि अब बेटे आज्ञाकारी नहीं होते; अब पिता दयालु नहीं होते; अब मां ममता से भरी नहीं होती। लाओत्से कहता है, ये पतन के लक्षण हैं। जब किसी मां की प्रशंसा करनी पड़े कि वह प्रेम से भरी है, यह पतन का लक्षण है। जब पिता को कहना पड़े कि वह दयालु है, यह पतन का लक्षण है। और जब बेटे के लिए आज्ञाकारी होना प्रशंसा का कारण हो जाए, तो समझना चाहिए बीमारी आखिरी सीमा पर पहुंच गई।
यह लाओत्से बिल्कुल उलटा आदमी मालूम होता है। लेकिन यह भी हो सकता है
कि हम सब उलटे हों और वह सीधा खड़ा है, इसलिए हमें उलटा मालूम पड़ता है। बात तो उसकी ठीक लगती है। मां के प्रेम की क्या बात करनी है? मां के होने का अर्थ ही प्रेम होता है। यह चर्चा ही नहीं उठानी चाहिए। मां प्रेमी है, यह बात ही बेकार है। बेटा आज्ञाकारी है, यह व्यर्थ पुनरुक्ति है। बेटा होने का फिर अर्थ ही न रहा। बेटे होने का अर्थ ही क्या है? बेटे होने का अर्थ है कि वह मां और पिता का एक्सटेंशन है, उनका फैलाव है, उनका विस्तार है। उनका ही हाथ है, उनका ही भविष्य है। इसमें आज्ञा और न आज्ञा की बात कहां है? मैं नहीं कहता कि मेरा हाथ मेरा बड़ा आज्ञाकारी है। लेकिन अगर किसी दिन दुनिया में ऐसी कोई बात चले कि फलां आदमी का हाथ बड़ा आज्ञाकारी है, तो समझ लेना कि दुनिया में सभी लोग पैरालाइज्ड हो गए हैं। क्या मतलब होगा इसका कि अखबार में फोटो छपे कि इस आदमी का हाथ बिल्कुल आज्ञाकारी है! जब पानी उठाना चाहता है, पानी उठा लेता है; जो भी करना हो, करो; इसका हाथ बड़ा आज्ञाकारी है। तो उसका मतलब है कि पैरालिसिस जीवन का सहज हिस्सा हो गई है; सब लोग पैरालाइज्ड हैं; अब हाथ भी अपनी नहीं मानते।
हम जिस दुनिया में रह रहे हैं, वह पैरालाइज्ड है, लकवा खा गई दुनिया है, पक्षाघात से भरी दुनिया है। किसी बाप को भरोसा नहीं है कि बेटा आज्ञा मानेगा। और अगर बेटे आज्ञा मानते मालूम पड़ते हैं, तो वे गोबर-गणेश बेटे होते हैं, बिल्कुल गोबर के गणेश। उनसे कोई तृप्ति भी नहीं होती। उनसे कहो बैठो, तो वे बैठ जाते हैं। जब तक न कहो उठो, तब तक वे उठते ही नहीं। उनसे कोई तृप्ति नहीं मालूम होती। जिन बेटों में थोड़ी बुद्धि दिखाई पड़ती है, वे सुनते नहीं। वे बाप को आज्ञाकारी बनाने की कोशिश करते हैं।

पचास साल पहले अमरीका में, मनोवैज्ञानिक कहते थे कि बेटे घर में घुसते डरते हैं, लड़कियां घर में घुसते डरती हैं। अब हालत उलटी है। बाप-मां घर में घुसते डरते हैं, कि पता नहीं बेटे-बेटियां क्या उपद्रव खड़ा कर दें! पचास साल पहले बेटे और बेटियां अमरीका में मां-बाप से पीड़ित थे, ऑप्रेस्ड थे। अब मां-बाप उनसे ऑप्रेस्ड हैं। हर बात में मां-बाप को डरना पड़ता है कि कोई गलती तो नहीं कर रहे! कहीं कोई कांप्लेक्स बच्चे में पैदा तो नहीं हो जाएगा! कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि मनोवैज्ञानिक कहें कि तुमने बच्चे को बीमारी दे दी, इसका मन खराब कर दिया! डरे हुए हैं, घबड़ाए हुए हैं।
यह जो पक्षाघात से ग्रस्त दुनिया है, यह लाओत्से की सलाह न मानने के कारण है। लाओत्से कहता यह है कि जीवन की जो सहजता है, उसको बांधने की चेष्टा मत करो; अन्यथा टूट भी पैदा होगी। आज्ञा मनवाने की चेष्टा मत करो; अन्यथा अवज्ञा पैदा होगी। अनुशासन थोपो मत; अन्यथा दूसरे के भीतर भी अहंकार है, वह अहंकार प्रतिकार करेगा। और जब बाप कहता है कि मैं मनवा कर रहूंगा, तो बेटे का अहंकार भी कहता है कि देखें, कैसे मनवा कर रहेंगे! बाप का अहंकार बेटे का अहंकार पैदा करवा देता है। और जब बाप के मन में मनवाने की कोई आकांक्षा नहीं होती, तो बेटे के मन में भी न मानने का कोई प्रतिरोध पैदा नहीं होता है।
इसे थोड़ा समझ लें। जब बाप सचेत होता है कि ऐसा करवा कर ही रहेंगे, तो बेटा भी सचेत हो जाता है। और ध्यान रहे, अगर बेटे और बाप में लड़ाई होगी, तो अंततः बेटा जीतेगा। क्योंकि बाप तो हारती हुई बाजी है, बाप जीत नहीं सकता। वह कितना ही वहम पाले, वह जीत नहीं सकता। बेटा ही जीतेगा। बेटा है उठती हुई ताकत, और बाप है डूबती हुई ताकत। अगर विरोध खड़ा होगा, तो बेटा जीतेगा, बाप हारेगा। और सारी दुनिया में बाप हार रहे हैं; जगह-जगह उनके पैर उखड़ते जा रहे हैं। और बड़ी हैरानी की बात है कि बाप और बेटों के बीच संघर्ष... । तुर्गनेव ने एक किताब लिखी हैः फादर्स एंड संस। कीमती किताब है। बाप
और बेटों के संघर्ष की कथा है। हर बाप हर बेटे से लड़ रहा है। हर बेटा हर बाप से लड़ रहा है। लाओत्से कहेगा, इससे ज्यादा रुग्ण और विक्षिप्त अवस्था क्या होगी, जहां बाप और बेटों को लड़ना पड़ता है! तो फिर दुनिया में और क्या उपाय होगा जहां लड़ना न हो!
लेकिन हम देखते हैं कि लड़ाई जारी है। हर घर में लड़ाई जारी है। हर इंच
पर लड़ाई जारी है। और हर इंच पर तय करना होता है--कौन जीता, कौन हारा। रोज बाप हारता जाएगा। लेकिन इस बाप के हारने में कोई गहरा नियम काम कर रहा है, जो हमारे ख्याल में नहीं है। और लाओत्से उसी नियम की याद दिलाता है। वह दिलाता है याद कि जब बाप सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि मैं बाप हूं और मेरी मानो, और जब गुरु कहेगा कि मैं गुरु हूं, मेरा आदर करो; तो इसकी जो प्रतिध्वनि है, वह अनादर है। जब गुरु ऐसा होता है कि उसे पता ही नहीं कि उसे भी आदर दिया जाना चाहिए, तब उसे आदर मिलता ही है।
मैं विश्वविद्यालय के शिक्षकों के एक सम्मेलन में था। वहां बड़ी चर्चा यही थी कि शिक्षक का आदर खतरे में है। पूरी चर्चा यही थी। तो है ही खतरे में। खतरे में है, यह भी कहना क्या ठीक है? अब तो खतरा भी बीत चुका। अब तो आदर कहीं बचा भी नहीं है। मरीज मर ही चुका है। अब क्या खतरे में है? लेकिन अभी भी बचाने की कोशिश में लगे हैं। और जितनी बचाने की कोशिश करते हैं, उतना उपद्रव फैलता चला जाता है। हर स्कूल, हर कालेज, हर यूनिवर्सिटी, अनुशासनहीनता से, इनडिसिप्लिन से भर गई है। लेकिन कोई भी यह नहीं सोचता कि इसकी जिम्मेवारी कहां है?
तो मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी यह चिंता कि विद्यार्थी तुम्हें आदर नहीं देते, बड़ी खतरनाक है। इस चिंता का एक ही परिणाम हो सकता है कि विद्यार्थी तुम्हें और भी आदर न दें। तुमसे कहा किसने कि गुरु को आदर मिलना चाहिए? असल में, पुरानी परिभाषा बिल्कुल और है। वह परिभाषा यह है कि जिसको आदर मिलता है, वह गुरु है। गुरु को आदर मिलना चाहिए, इसका कोई संबंध ही नहीं है। गुरु को आदर का सवाल ही नहीं है। जिसको आदर मिलता है, वह गुरु है। नहीं मिलता, वह गुरु नहीं है। बात समाप्त हो गई। अगर तुम्हें विद्यार्थी आदर नहीं देते, तुम गुरु नहीं हो। और हो भी नहीं। व्यर्थ मोह को क्यों खींचे चले जाते हो?

बाप वह है, जिसकी आज्ञा मानी जाती है। अगर बेटा आज्ञा नहीं मानता, तो समझना चाहिए आप बाप नहीं हैं। सिर्फ बायोलाजिकली बाप हैं, और कुछ नहीं हैं। तो बायोलाजिकली होना कोई इतनी महत्ता की बात भी नहीं है। एक इंजेक्शन से, एक इंजेक्शन भी बायोलाजिकली पिता हो सकता है। तो बायोलाजिकली पिता होने की कोई महत्ता भी ऐसी नहीं है कि आपकी आज्ञा मानी जाए।
पिता होना एक आध्यात्मिकता है। एक बात ही अलग है। बच्चे तो बहुत लोग पैदा करते हैं, पिता मुश्किल से कभी कोई हो पाता है। और बच्चे करना कोई गुण है? मक्खियां-मच्छर इतने करते हैं कि उसमें कोई गुणवत्ता समझ में नहीं आती। आपका कोई कृत्य है, ऐसा भी कुछ समझ में नहीं आता।
लेकिन पिता होना एक बड़ी बात है। और ध्यान रहे, मां से बड़ी बात है। क्योंकि मां नैसर्गिक घटना है, पिता एक उपलब्धि है। मां तो प्राकृतिक घटना है; लेकिन पिता नहीं है प्राकृतिक घटना। इसलिए जब कोई व्यक्ति पिता हो पाता है, तो मां बिल्कुल फीकी पड़ जाती है। हालांकि पिता होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि पिता होने के लिए कोई नैसर्गिक इंतजाम नहीं है। पशुओं को तो पिता का कोई पता नहीं होता। और आपको भी पता होता है, तो कितना इंतजाम करना पड़ा वह पता रखने के लिए! शादी करो, पहरे रखो, कानून बनाओ, सारा इंतजाम करो, फिर भी पिता पक्के भरोसे में नहीं होता कि मेरे बेटे का पिता मैं ही हूं। यह पक्का भरोसा हो भी नहीं सकता। इस भरोसे के लिए सती और पतिव्रता और न मालूम कितने सिद्धांत और कितनी नैतिकता--सिर्फ एक बात को पक्का रखने के लिए कि मेरे बेटे का बाप मैं ही हूं। सारा इतना इंतजाम, इतनी घबड़ाहट, इतना डर, इतना भय! और जीवन एक संस्था जैसा बन जाता है--सिर्फ इस इंतजाम के लिए कि मेरी वसीयत, मेरे धन का जो मालिक हो, वह पक्के रूप से मेरा ही बेटा हो। बस इतने इंतजाम के लिए कितना कष्ट उठाया जाता है और कितनी कलह झेली जाती है!
लेकिन पिता कोई नैसर्गिक घटना नहीं है। अगर बच्चे कल समाज पालने लगे
और इंतजाम करने लगे, तो पिता की संस्था खो जाएगी। पिता की संस्था सदा नहीं थी, बहुत बाद में आई है। पर मां नैसर्गिक घटना है। पिता होना एक आध्यात्मिक बात है। इसलिए हमने परमात्मा को पिता कहना पसंद किया, बजाय मां कहने के। क्योंकि मां होना एक नैसर्गिक घटना है; और पिता होना एक आध्यात्मिक उपलब्धि है। पिता होने का अर्थ ही इतना है कि बेटा उसकी मानता है। इस मानने का कहीं पता भी नहीं चलता। इस मनवाने की कहीं कोई चेष्टा भी नहीं है। यह तो पिता की गरिमा ही... ।
पुराना नियम था कि जिस दिन बेटे का विवाह हो जाए, उस दिन से पिता ब्रह्मचारी हो जाए। हो ही जाना चाहिए। जिस घर में बाप भी बेटे पैदा कर रहा हो और बेटा भी बेटा पैदा कर रहा हो, उस घर में बाप का कोई आदर हो नहीं सकता है। ज्यादा से ज्यादा मित्रता हो सकती है थोड़ी-बहुत, कंधे पर हाथ रखा जा सकता है, आदर नहीं हो सकता। क्योंकि बेटा जो मूढ़ता कर रहा है, बाप भी वही मूढ़ता में अभी पड़े हुए हैं, तो बाप होने का हक खो देते हैं।
तो हमने व्यवस्था की थी कि पच्चीस वर्ष में बेटे घर लौटेंगे आश्रमों से, पच्चीस वर्ष के होकर घर लौटेंगे विवाह के लिए; तब तक पिता और मां पचास वर्ष के हो चुके होंगे। जिस दिन बेटे घर में प्रवेश करेंगे, उसी दिन मां- बाप वानप्रस्थ हो गए। उनका मुंह अब जंगल की तरफ हो गया। अब शरीर और वासना और वह सब बच्चों के खेल उनके लिए न रहे। अब बच्चे उन खिलौनों से खेलने लगे, अब उन्हें उनके पार हो जाना चाहिए। इसलिए पचास साल के मां-बाप वानप्रस्थ हो गए। पच्चीस साल बाद बेटों के बेटे गुरुकुल से लौटेंगे। तब तक मां-बाप पचहत्तर साल के हो चुके होंगे। अब उनके बेटों का वक्त आ गया वानप्रस्थ होने का। तब वे संन्यस्त हो जाएंगे। तब बात समाप्त हो गई। अब उनकी दुनिया बिखर गई।
तो बाप के प्रति एक आदर था। और ये जो पचहत्तर साल के बूढ़े थे--बूढ़े नहीं कहना चाहिए, वृद्ध, क्योंकि बुढ़ापा तो उम्र से आता है; वार्धक्य, ज्ञान, अनुभव प्रतीतियों का फल है--ये जो पचहत्तर साल के वृद्ध हैं, ये जाकर गुरुकुलों में गुरु का काम करेंगे। ये जिन्होंने जीवन की इन तीन सीढ़ियों को पार किया, ब्रह्मचर्य को जाना पच्चीस वर्ष तक, पच्चीस वर्ष तक

संसार को पहचाना, पच्चीस वर्ष तक संसार के बीच रह कर संसार के बाहर रहने की कला सीखी, ये गुरु होंगे।
इन गुरुओं के प्रति अगर आदर सहज होता, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। छोटे-छोटे बच्चे जो गांव से इनके पास पढ़ने आएंगे, उनके लिए ये हिमालय के शिखर मालूम पड़ेंगे। इनको छूना भी बहुत दूर की बात है। इनका पैर भी छू लेना परम सौभाग्य होगा। ये इतने फासले पर हैं, इतना डिस्टेंस है, इतनी दूरी है कि कभी इन तक पहुंच पाएंगे, इसकी कल्पना भी बांधनी मुश्किल है। इन गुरुओं को आदर सहज मिल जाता। वे गुरु थे। और गुरु होने के पहले वे पिता थे। पिता होने के पहले वे ब्रह्मचर्य के जीवन में थे। यह सारी एक लंबी प्रक्रिया है, सहज।
लाओत्से कहता है, लेकिन सहज। अगर जीवन अपनी सहज धारा से बहता चला जाए,
तो धर्म का फूल खिलता है। और अगर हम बांधें उसे मर्यादाओं में, नियमों में, तो धर्म का फूल खिलना तो मुश्किल है, अगर हम नैतिकता के थोड़े-बहुत कागज और प्लास्टिक के फूल लगाने में सफल हो जाएं, उतना काफी है।
"और जब देश में कुशासन और अराजकता छा गई, तब स्वामिभक्त मंत्रियों की प्रशंसा होने लगी।"
एक ही बात है अलग-अलग पहलुओं पर कि सहजता को छोड़ना ही अधर्म है। साधुता धर्म नहीं है लाओत्से के लिए, सहजता धर्म है। बस यह आखिरी बात ख्याल में ले लें। साधुता धर्म नहीं है लाओत्से के लिए, क्योंकि साधुता असाधुता के विपरीत नियम है। सहजता धर्म है। सहजता किसी के विपरीत नहीं है। असाधु भी सहज अगर जीए, तो साधु हो जाएगा। और साधु भी अगर असहज जीता है, तो सिर्फ छिपा हुआ असाधु है। एक स्पांटेनियस, एक सहज-स्फूर्त जीवन ही लाओत्से के लिए धर्म है। फूल खिलते हैं, पक्षी गीत गाते हैं, सूरज उगता है; आदमी भी जिस दिन ऐसा ही सहज होता है, कहीं कोई असहजता नहीं, कोई आरोपण नहीं।
हमें बहुत कठिन लगेगा। क्योंकि सुनते ही हमें लगेगा कि अगर कहीं कोई आरोपण नहीं, तो हम क्या करेंगे अगर हम पर से सब आरोपण उठा लिए जाएं? जरा सोचें कि आप पर कोई नियम नहीं, कोई आरोपण नहीं, पहला काम आप क्या करेंगे? कोई अपने पड़ोसी की पत्नी को ले भागेगा; कोई बैंक पर डाका डाल देगा; कोई किसी की हत्या कर देगा। आपको ख्याल जो आएगा। सोचना आप एक क्षण बैठ कर कि आप पर कोई नियम न रहे, आपने लाओत्से को बिल्कुल मान लिया, क्या करिएगा?
सुना है मैंने, एक दफ्तर में एक मनोवैज्ञानिक की सलाह मान कर मालिक ने
एक तख्ती लगा ली। लोग थे अलाल दफ्तर के, कोई काम नहीं करता था। उसने एक तख्ती लगा ली--कि जीवन है छोटा; जो कल करना है, वह आज करो; जो आज करना है, वह अभी करो।
फिर बड़ी मुश्किल में पड़ा। दूसरे दिन ही दफ्तर बंद करना पड़ा। क्योंकि
एक क्लर्क दफ्तर की सेक्रेटरी को लेकर भाग गया। कैशियर ने डाका डाल दिया। सोचता था बहुत दिन से डाका डालने का; जो कल करना है, वह आज ही करो। और जो आफिस बॉय था, उसने मालिक की जूतों से पिटाई कर दी। वह भी कई दिन से सोच रहा था; सभी आफिस बॉय सोचते हैं। लेकिन अब तक यह सोचता था कि कर लेंगे कभी, पोस्टपोन करता जा रहा था। जब यह नियम मालूम पड़ा--काल करंते आज कर, आज करंते अब--उसने भी जूते... ।
मालिक ने कहा, वह तख्ती अलग करो!
अगर आप भी लाओत्से का नियम सोचेंगे, तो सोचना थोड़ा, ध्यान करना। उससे लाओत्से के नियम पर कोई बाधा नहीं पड़ेगी, आपको अपने व्यक्तित्व का पता चलेगा कि अगर आप पर कोई नियम न हों तो आप क्या करेंगे, वही आपका असली चरित्र है। आप पर कोई नियम न हों तो आप क्या करेंगे, वही आप हैं। वही आपका असली चरित्र है। नियमों की वजह से जो आप कर रहे हैं, वह आप नहीं हैं। वह आपका चरित्र भी नहीं है। वह आपका अभिनय है। वह जबर्दस्ती है। उसका कोई मूल्य नहीं है।
तो आपको अपने भीतर उतरने में, सेल्फ-आब्जर्वेशन में बड़ी सहायता मिलेगी लाओत्से से। सोच लें, एक दिन चौबीस घंटे के लिए कोई नियम नहीं है आपके लिए। अब आप वही करें, जो सहज हो रहा है। सोचें सिर्फ, अभी करना मत।

सिर्फ सोचना। तो पता चलेगा कि मनुष्यता कितनी विकृत हो गई है नियमों के कारण।
आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, फिर जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
इकतालीसवां प्रवचन

सिद्धांतों व आचरण में नहीं, सरल-सहज स्वभाव में जीना

Chapter 19 : Sutra 1

Realize The Simple Self

1. Banish wisdom, discard knowledge,
And the people shall profit a hundredfold;
Banish humanity, discard justice,
And the people shall recover love of their kin; Banish cunning, discard utility,
And the thieves and brigands shall disappear.

अध्याय 19 : सूत्र 1

स्वयं को जानो

1. बुद्धिमत्ता को छोड़ो, ज्ञान को हटाओ,
और लोग सौ गुना लाभान्वित होंगे;
मानवता को छोड़ो, न्याय को हटाओ,
और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे;
चालाकी छोड़ो, उपयोगिता को हटाओ,
और चोर तथा लुटेरे अपने आप ही लुप्त हो जाएंगे।

लाओत्से को समझने में जो बड़ी से बड़ी कठिनाई है, वह हमारे चिंतन की कोटियां हैं। चिंतन का जो ढंग हमारा है, लाओत्से को उसी ढंग से पकड़ना बहुत मुश्किल होगा। और लाओत्से का चिंतन का ढंग ही विपरीत है; उसका तर्क ही विपरीत है। वह दूसरे ही आयाम से जीवन को देखता है। इसलिए आप जो प्रश्न भी पूछते हैं, वे लाओत्से से कम संबंधित और आपसे ही ज्यादा संबंधित होते हैं। लाओत्से की दृष्टि को समझना हो, तो अपनी दृष्टि को थोड़ा छोड़ कर ही देखना पड़ेगा। अगर आप अपनी दृष्टि, अपने शब्द और अपने बंधे हुए ख्यालों से ही लाओत्से को देखेंगे, तो यह निर्णय करना तो बहुत मुश्किल है कि लाओत्से सही है या गलत, आप समझ भी नहीं पाएंगे कि वह क्या कह रहा है।
आपके चिंतन का जो ढंग है, उसे एक तरफ रखें, तो लाओत्से को समझ पाएंगे। फिर निर्णय आपके हाथ में है कि आप तय करें कि वह गलत है या सही। लेकिन समझने के पहले ही तय करना उचित नहीं है। और समझने में अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि हमारा एक ढांचा है देखने का; लाओत्से उस ढांचे के बिल्कुल प्रतिकूल है। जैसे हम हाथ से छूते हों और वह आंख से देखता हो; या जैसे हम आंख से देखते हों और वह कान से सुनता हो; और सारी भाषा अलग हो। जैसे मैंने कल कहा कि अगर चेतना बढ़ेगी, तो दूसरी तरफ अचेतना बढ़ जाएगी, मूर्च्छा बढ़ जाएगी। चेतना का जो भी अर्थ हमें पता है वह महावीर, कृष्ण और बुद्ध से हमें मिला है। वह अर्थ लाओत्से के साथ काम नहीं पड़ेगा। तो आपके मन में जो प्रश्न उठ आते हैं, वे प्रश्न आपके नहीं हैं। चिंतन की एक धारा आपके मन में है। तब हमें बड़ी घबड़ाहट होती है, इसका क्या मतलब हुआ?
इसका मतलब हुआ कि अगर एक महावीर चेतना को उपलब्ध हो जाएगा, परम चेतना को, तो महावीर के कारण एक व्यक्ति को परम अचेतना में पड़ना पड़ेगा! तो यह तो हिंसा हो गई। और महावीर को ऐसा करते हम सोच भी नहीं सकते कि उनके कारण कोई अचेतना में पड़ जाए। और यह बात अजीब सी लगती है कि कोई आदमी की चेतना बढ़े, तो किसी दूसरे को अकारण ही अचेतना में पड़ना पड़े, जिसका कोई संबंध नहीं है।

लेकिन अगर हम लाओत्से से पूछें, तो लाओत्से नहीं कहेगा कि महावीर की चेतना बढ़ गई। लाओत्से कहेगा, महावीर चेतना-अचेतना दोनों के पार हो गए। और जब कोई दोनों के पार हो जाता है, तो उसका कोई परिणाम, कोई रेखा जगत पर नहीं छूटती है। लाओत्से से हम पूछें, तो वह यह नहीं कहेगा कि कृष्ण जो हैं, परम चैतन्य पुरुष हैं। अगर वे परम चैतन्य पुरुष हैं, तो परम मूर्च्छित पुरुष उनको संतुलित करेगा ही। लाओत्से के हिसाब में वे चेतना-अचेतना के पार गए पुरुष हैं, अतिक्रमण कर गए, द्वंद्व के बाहर हो गए, द्वंद्वातीत हो गए। तब उनके कारण इस जगत में कहीं भी कोई रेखा नहीं पड़ेगी।
तो जो लोग द्वंद्व के भीतर हैं, वे तो संतुलन करेंगे ही। महावीर को इसलिए लाओत्से साधु नहीं कहेगा। क्योंकि साधु तो असाधु पैदा करेगा ही। साधु-असाधु द्वंद्व है; बुरा-भला द्वंद्व है। लाओत्से कहेगा, महावीर दोनों के पार हो गए। न अब वे बुरे हैं, न अब वे भले हैं। क्योंकि भले होने के लिए भी बुरे से तो जुड़ा ही रहना पड़ता है। भले होने का कोई अर्थ ही नहीं होता, अगर हम बुरे के साथ जोड़ कर न सोचें। भले हैं, क्योंकि झूठ नहीं बोलते; लेकिन झूठ से जोड़ना पड़ेगा। भले हैं, क्योंकि क्रोध नहीं करते; लेकिन क्रोध से जोड़ना पड़ेगा। भले हैं, चोरी नहीं करते; लेकिन चोरी से जोड़ना पड़ेगा। सब भलाई बुराई से जुड़ी हुई होगी। अगर महावीर को हम भला कहते हैं, तो महावीर द्वंद्व के बाहर नहीं हैं। और तब तो उनके द्वारा बुरा भी पैदा होगा। लेकिन महावीर भले नहीं हैं। महावीर बुरे भी नहीं हैं। ये दोनों कोटियां उनके ऊपर लागू नहीं होतीं। वे दोनों के बाहर हो गए।
हमें समझना कठिन पड़ेगा। क्योंकि हमने सोचने की एक धारा बना रखी है। हमने बुरे और भले में सबको बांट रखा है। तीसरी कोई कोटि नहीं है। और तीसरी कोटि ही असली कोटि है। उस तीसरी में जो प्रवेश करता है, वही जीवन की परम अवस्था को, जिसे लाओत्से ताओ कहता है, सहज धर्म को उपलब्ध हो जाता है।
तो हमारी सारी कठिनाई एक ही पड़ेगी बार-बार लाओत्से को समझने में। और
वह यह कि आपकी एक बंधी हुई धारणा है। उसे एक तरफ रखें। जरूरी नहीं है कि उसे रखने से आप लाओत्से को सही ही मानें। लेकिन उसे एक तरफ रखें, ताकि लाओत्से को समझ सकें--वह क्या कह रहा है? फिर पीछे तय कर लेना कि वह सही है या गलत है।
और जहां तक मैं समझता हूं, जो समझ पाएगा कि वह क्या कह रहा है, वह कभी
भी इस ख्याल का नहीं हो सकता कि वह गलत कह रहा है। और जिसका यह ख्याल हो कि वह गलत कह रहा है, उसका एक ही मतलब होता है कि वह समझ ही नहीं पाया कि लाओत्से क्या कह रहा है। उसके कहने का ढंग अलग है, उसकी पहुंच अलग है, उसके प्रकट करने का ढंग अलग है। अगर ढंग को आप जोर से पकड़ेंगे, तो मुश्किल में पड़ेंगे। और आदमी हमेशा मुश्किल में पड़ता रहा है। महावीर के कहने का ढंग एक है; बुद्ध का बिल्कुल विपरीत है। कृष्ण एक ढंग से कहते हैं; क्राइस्ट बिल्कुल दूसरे ढंग से कहते हैं। यह सारी दुनिया में इतने धर्मों का जो उपद्रव है, यह कहने के ढंग को न समझ पाने की भूल है। और अब तक मनुष्यता इतनी प्रौढ़ नहीं हो पाई कि हम शैलियों के भेद को, भाषाओं के भेद को सत्य का भेद न समझें।
महावीर से अगर पूछें कोई बात, तो महावीर की अपनी कहने की व्यवस्था है। होगी ही। बुद्ध की अपनी कहने की व्यवस्था है। और सत्य इतना बड़ा है कि बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट, सबके लिए उसमें जगह है। हम सबका ख्याल यह होता है कि सत्य बड़ी छोटी चीज है। जब हम उसमें बैठ गए, तो दूसरा उसमें कैसे बैठेगा? सत्य बहुत बड़ी चीज है, काफी जगह है। आपके जो प्रतिकूल है, उसको भी काफी जगह है वहां होने की। पर हम सबका ख्याल यह होता है कि जब मैं ही बैठ गया सत्य पर, तो अब जगह कहां बची कि कोई दूसरा उस जगह में समा जाए। बाकी जो भी है, वह असत्य होगा। सत्य बड़ी घटना है। विपरीत को भी सत्य समा लेता है।
यह बड़े मजे की बात है कि असत्य बहुत छोटी चीज है, विपरीत को नहीं समा सकता। कभी आपने ख्याल किया, अगर आप एक असत्य बोल रहे हैं, तो उसके विपरीत को आप कभी स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि उसको स्वीकार करने का मतलब होगा, आपका असत्य टूट जाएगा। असत्य बड़ी संकीर्ण चीज है। उसमें ज्यादा जगह नहीं है। इसलिए जो असत्य बोलता है, वह किसी दूसरे को स्वीकार नहीं कर सकता।

सत्य बहुत बड़ी घटना है। आप जो बोल रहे हैं, उससे बिल्कुल विपरीत भी सत्य हो सकता है। और सत्य में दोनों के लिए जगह है। और परम सत्य को वही उपलब्ध होता है, जो सभी सत्यों के लिए जगह को देख पाता है।
लेकिन हम सब संकीर्ण होते हैं; अपनी दृष्टि से बंधे होते हैं। महावीर
ने कहा है कि जब तक तुम दृष्टि से ऊपर न उठो, तब तक दर्शन को उपलब्ध न हो सकोगे। उलटी बात लगती हैः दृष्टि से ऊपर न उठो, तब तक दर्शन को उपलब्ध न हो सकोगे। महावीर ने कहा है, सम्यक-दृष्टि वह है, जिसकी सब दृष्टियों से जो ऊपर उठ गया।
दृष्टि का मतलब होता है, मेरे देखने का ढंग। अगर मैं अपने देखने के ढंग से बंध गया हूं, तो आपके देखने के ढंग को मैं समझ ही न पाऊंगा। और अगर मेरे देखने के ढंग में कोई बंधन नहीं है, तो मैं सभी दृष्टियों को समझ पा सकता हूं। और तब एक दिन मुझे समझ में आ सकता है कि नदियां कितनी ही प्रतिकूल क्यों न बहती हों, वे सभी सागर में पहुंच जाती हैं। और तब मैं यह न कहूंगा कि जो नदी पूर्व की तरफ जा रही है, वह गलत है; क्योंकि मेरी नदी पश्चिम की तरफ जा रही है। तब मुझे सागर दिखाई पड़ेगा सभी नदियों से। लेकिन दृष्टि बंधी हो, तो बहुत कठिनाई हो जाती है। और तब हम समझ ही नहीं पाते। फिर तो सोचने का उपाय नहीं रह जाता।
लाओत्से कठिन है इस लिहाज से। क्योंकि उसकी सोचने की पद्धति, उसके देखने का ढंग, उसके बोलने की व्यवस्था अनूठी है। और इसीलिए उसे समझने में मजा भी है। अगर आप समझ पाए, तो आप विकसित हो जाएंगे, फैल जाएंगे, विस्तार होगा आपके बोध का। अगर आप न समझ पाए, तो संकीर्ण रह जाएंगे।
और सदा अच्छा है अपने से प्रतिकूल भाषा में सोचने वाले को समझना। जो आपकी ही भाषा में सोचता है, वह आपको बदल नहीं पाता, सिर्फ आपका संग्रह बढ़ाता है। आपके पास दस बातें थीं, बारह हो जाती हैं, पंद्रह हो जाती हैं। लेकिन जो आपसे भिन्न सोचता है, वह आपके लिए नया आकाश खोल देता है। सिर्फ बढ़ती नहीं होती, आपकी चेतना समृद्ध होती है।
तो लाओत्से को समझने के लिए थोड़ा अपनी दृष्टियों को एक तरफ रख देने की जरूरत है। नहीं तो आपकी दृष्टि प्रश्न खड़े करेगी, वे प्रश्न बेमानी हैं।
क्योंकि वे समझ कर खड़े नहीं हो रहे हैं।
इस सूत्र को समझें, तो ख्याल में आएगा।
"बुद्धिमत्ता को छोड़ो।"
कठिन लगेगा। बुद्धिमत्ता को खोजो, यह समझ में आता है। बुद्धिमत्ता को छोड़ो! तीन शब्द हैं हमारे पास। एक शब्द हैः इनफरमेशन, सूचना। दूसरा शब्द हैः नालेज, ज्ञान। और तीसरा शब्द हैः विजडम, बुद्धिमत्ता। अधिक लोग तो सूचना को ही ज्ञान समझते हैं, इनफरमेशन को ही नालेज समझते हैं। जितना ज्यादा जानते हैं, सोचते हैं, उतने ज्ञानी हो गए। मात्रा ही उन्हें गुण मालूम होती है, क्वांटिटी को वे क्वालिटी समझते हैं; कि अगर मैं हजार बातें जानता हूं, तो मैं ज्ञानी हो गया।
आप थोड़े बड़े कम्प्यूटर हो गए। आपकी स्मृति ज्यादा हो गई, संग्रह बढ़ गया, आप नहीं बढ़ गए। स्मृति ज्ञान नहीं है। सूचना ज्ञान नहीं है। सूचना बहुत हो सकती है; तब आदमी जानकार होता है, शिक्षित होता है। ज्ञानी नहीं होता।
लेकिन यह बहुत कठिन नहीं है। जगत में बहुत लोगों ने कहा है कि सूचनाओं
को छोड़ो, ज्ञान को पाओ। सूचनाओं से कोई सार नहीं है। कितना भी इकट्ठा कर लोगे, उससे क्या होगा! और जो भी इकट्ठा है, वह उधार है। सब सूचनाएं उधार होती हैं। और ज्ञान होता है अपना। इसलिए उधार को छोड़ो और अपने अनुभव को उपलब्ध होओ। यह भी समझ में आ जाएगा।
लेकिन लाओत्से कहता है, ज्ञान भी छोड़ो। यह जानना भी छोड़ो। क्योंकि यह जानना और न जानना एक द्वंद्व है। यह भी एक संघर्ष है। यह भी छोड़ो।
यह भी हम मान ले सकते हैं। बुद्ध ने भी कहा है, जान कर क्या होगा? शास्त्र जान लिए, तो क्या होगा? जानने का सवाल नहीं है, प्रज्ञा बढ़नी चाहिए; अंतर-बोध बढ़ना चाहिए। समझ, अंडरस्टैंडिंग बढ़नी चाहिए।
बुद्धिमत्ता ज्ञान का सार है। जैसे फूलों को निचोड़ कर इत्र बन जाए, सार।
ऐसे समस्त अनुभव, समस्त ज्ञान का जो सार है, वह बुद्धिमत्ता है।

बुद्धिमत्ता एक सुगंध है। हजार ज्ञान निचुड़ें, तो बूंद भर बुद्धिमत्ता बनती है।
लेकिन लाओत्से कहता है, बुद्धिमत्ता भी छोड़ो। तो बहुत कठिन मालूम होता है। सूचना छोड़ें, समझ में आ सकता है; उधार है। ज्ञान भी छोड़ दें, समझ में आ सकता है; क्योंकि द्वंद्व है ज्ञान और अज्ञान का। यह बुद्धिमत्ता भी छोड़ दें, तो तत्काल हमारा मन कहेगा, पत्थर की भांति हो जाएंगे। फिर हममें और जड़ में फर्क क्या होगा? फिर आप जिस कुर्सी पर बैठे हैं, उसमें और आप में फर्क क्या होगा?
लेकिन हमारा यह जो मन सवाल उठाता है, यह लाओत्से को समझने में कठिनाई पैदा करेगा।
लाओत्से कहता है, बुद्धिमत्ता छोड़ो। इसका अर्थ क्या है? लाओत्से कहता है, जो चीज पकड़ी जा सकती है, छोड़ी जा सकती है, वह तुम्हारी है ही नहीं। जो तुम छोड़ ही न सकोगे, वही बुद्धिमत्ता है। बाकी तुम सब छोड़ो। जो तुम छोड़ सकते हो, छोड़ते चले जाओ। एक घड़ी ऐसी आएगी कि तुम कहोगे, अब मेरे पास छोड़ने को कुछ बचा ही नहीं--धन नहीं, मकान नहीं, जानकारी नहीं, स्मृति नहीं, ज्ञान नहीं, कोई बुद्धिमत्ता नहीं, कोई अनुभव नहीं। जिस क्षण तुम कह सकोगे कि अब मेरे पास कुछ भी नहीं है, जिसे मैं छोड़ सकूं; लाओत्से कहता है, इसे शब्द देना उचित नहीं, पर यही बुद्धिमत्ता है।
जिस बुद्धिमत्ता को छोड़ने से आप डरते हैं कि छोड़ने से मैं जड़ जैसा हो जाऊंगा, वह बुद्धिमत्ता है ही नहीं। ठीक से समझें, तो इसका अर्थ यह होता है कि जो छोड़ी ही नहीं जा सकती, वही बुद्धिमत्ता है। इसलिए लाओत्से बेफिक्री से कहता है, बुद्धिमत्ता छोड़ो। क्योंकि जो तुम छोड़ सकोगे, वह बुद्धिमत्ता नहीं थी। बुद्धिमत्ता, लाओत्से के हिसाब से, स्वभाव है। वह छोड़ा नहीं जा सकता। जो भी छोड़ा जा सकता है, वह स्वभाव नहीं है।
लाओत्से कहता है, आत्यंतिक रूप से वही बच जाए, जो मैं हूं। कोई संग्रह मेरे ऊपर न रहे। दूसरे का ज्ञान तो छोड़ ही दो; अपने ज्ञान को भी क्या ढोना, उसे भी छोड़ दो। दूसरे के अनुभव तो उधार हैं ही, अपने अनुभव भी मृत हैं। मैंने जो कल जाना था, वह आज मुर्दा हो गया। मैंने जो कल जाना था, उसका जो सार है, वह मेरी बुद्धिमत्ता है। वह भी अतीत हो गया, व्यतीत हो गया। छोड़ो उसे भी, राख है।
अंगार जलता है, तो राख इकट्ठी होती है। कभी आपने ख्याल किया कि जो अभी राख है, वह भी थोड़ी देर पहले अंगार थी। कहीं बाहर से नहीं आई है, अंगार का ही हिस्सा है। लेकिन अगर अंगार को जलता हुआ रहना है, तो राख को छोड़ते जाना है।
लाओत्से कहता है, तुम्हारी बुद्धिमत्ता भी तुम्हारे स्वभाव पर राख है; तुमसे ही आती है। तुम अंगार हो। राख को भी झाड़ते चले जाओ। सिर्फ प्रज्वलित अग्नि रह जाए; सिर्फ तुम्हारा स्वभाव रह जाए। उस पर कुछ भी न हो। दूसरे के द्वारा डाली गई राख और अपने ही अंगार से पैदा हुई राख में भी क्या फर्क है? क्या इसी कारण कि यह राख मुझसे पैदा हुई है, प्यारी है, और इससे चिपके रहो।
आप पचास साल जीए हैं, तो पचास साल के अनुभव की राख आपके पास इकट्ठी हो
गई है। इसमें जो आपने दूसरों से सीखा, वह सूचना है, इनफरमेशन है। इसमें जो आपने अपने से जाना, वह नालेज है, ज्ञान है। ज्ञान और सूचना, सब के तालमेल से जो निचोड़, जो एसेंस, जो सुगंध आपके भीतर पैदा हो गई, वह आपकी बुद्धिमत्ता है। लाओत्से कहता है, इसे भी छोड़ो। तुम सिर्फ वही रह जाओ, जो तुम हो--निपट तुम्हारे स्वभाव में। नेकेड नेचर, शुद्धतम वही रह जाए, जो है। इसको महावीर आत्मा कहते हैं। इसको बुद्ध शून्यता कहते हैं। ये शब्दों के फासले हैं। लाओत्से इसको सिर्फ स्वभाव कहता है; ताओ कहता है।
"छोड़ो बुद्धिमत्ता, ज्ञान को हटाओ! और लोग सौ गुना लाभान्वित होंगे।"
अगर लोग निपट अपने स्वभाव में थिर हो जाएं, तो उनके जीवन से दुख, पीड़ा, बेचैनी, बोझ, तनाव, चिंता, सभी विसर्जित हो जाएंगे; तब वे निर्दोष खिल जाएंगे अपने में। लोग लाभान्वित होंगे, अगर यह सारा ज्ञान, जानकारी, बुद्धिमानी, पांडित्य, यह सारा बोझ हट जाए। यह सारे अनुभव कीशृंखला हट जाए और चेतना, आत्मा--या जो भी नाम हम देना पसंद करें--वह जो हमारे भीतर छिपा है

सत्व, वह अपनी निजता में रह जाए, उसके ऊपर कुछ भी न हो, खाली, शुद्ध, जिसको हाइडेगर ने अभी-अभी प्योर बीइंग कहा है, उसकी ही बात लाओत्से कर रहा है, लोग हजार गुना लाभान्वित होंगे।
हम तो सोचते हैं, लोगों का जितना ज्ञान बढ़ेगा, अनुभव बढ़ेगा, जानकारी बढ़ेगी, बुद्धिमानी बढ़ेगी, उतना लाभ होगा। लाओत्से उलटी बात कह रहा है। असल में, जितना ज्ञान बढ़ेगा, जानकारी बढ़ेगी, बुद्धिमानी बढ़ेगी, उतना ही आपके स्वभाव पर पर्त दर पर्त राख इकट्ठी होती चली जाएगी। आपका अंगारा राख की पर्तों में खो जाएगा। खुद तक पहुंचना मुश्किल हो जाएगा। इतने वस्त्र हो जाएंगे शरीर पर कि शरीर तक पहुंचना मुश्किल हो जाएगा।
आमतौर से हर आदमी प्याज की गांठ की भांति है। पर्त-पर्त उखाड़ते चले जाएं, दूसरी पर्त निकल आती है। और उखाड़ें, तीसरी पर्त निकल आती है। आप अनुभव, ज्ञान, जानकारी, समझ, शिक्षा, संस्कार, सभ्यता, संस्कृति, इन सबकी पर्तों का एक जोड़ हैं। आप कहां खो गए हैं, कुछ पता नहीं है। आदमी अपने वस्त्रों में ही खो जाता है। लाओत्से कहता है, हटा दो सब वस्त्र! रह जाए वही, जिसे तुम हटा ही न सको। बस एक ही उसकी शर्त है कि जिसे तुम हटा ही न सको, वही रह जाए। तब तुम वस्तुतः लाभान्वित होओगे। अन्यथा बड़ी से बड़ी हानि जगत में एक ही है--स्वयं को खो देना।
इस सूत्र का नाम हैः स्वयं को जानो। अंग्रेजी में नाम और भी सुंदर हैः रियलाइज दि सिंपल सेल्फ। "सिंपल" विचारणीय है--सरल, सहज। स्वयं को जानो में थोड़ी सी असहजता है।
जीसस या सुकरात शब्द का उपयोग करते हैंः नो दाई सेल्फ--स्वयं को जानो। उपनिषद उपयोग करते हैंः स्वयं को जानो, आत्मविद बनो। लाओत्से कहता हैः दि सिंपल सेल्फ। अध्यात्मवादियों की आत्मा नहीं, सिद्धांतवादियों की आत्मा नहीं, ज्ञानियों की, पंडितों की आत्मा नहीं, दि सिंपल सेल्फ, वह सरल सी आत्मा जो अज्ञानियों के भीतर भी है। कोई बड़े सिद्धांत की, शास्त्र की बात नहीं, सरलतम तुम जो हो--नग्न, सहज--वही, उसे ही जानो। लेकिन उसे जानना हो, तो तुम जो भी जानते हो, उसे हटाओ। जो भी अब तक जाना है, उसे अलग कर दो। सब प्याज के छिलके अलग निकाल डालो। जब निकालने को कुछ भी न बचे, शून्य रह जाए, तभी तुम जानना कि अब सहज स्वभाव, सिंपल सेल्फ के करीब आए।
"ज्ञान को हटाओ, और लोग सौ गुना लाभान्वित होंगे। मानवता को छोड़ो, न्याय को हटाओ; और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे।"
अक्सर ऐसा होता है कि जो आदमी किसी को भी प्रेम नहीं कर पाता, वह मानवता को प्रेम करने लगता है। एक आदमी को प्रेम करना बहुत मुश्किल है, मनुष्यता को प्रेम करना बहुत आसान है। पड़ोसी को प्रेम करना बहुत मुश्किल है; मनुष्य-जाति को प्रेम करना बहुत आसान है। एक व्यक्ति को प्रेम करो, तो झंझटें शुरू होती हैं; मनुष्यता को प्रेम करने में कोई भी झंझट नहीं है। मनुष्यता है ही कहां? मनुष्य हैं, मनुष्यता तो कहीं भी नहीं है। और जहां भी जाएंगे, मनुष्य मिलेगा; मनुष्यता तो कहीं मिलेगी नहीं। मनुष्यता तो एक एब्सट्रैक्ट, एक ख्याल है। ख्याल को प्रेम करना बहुत आसान है। भारत-माता को प्रेम करना हो, मजे से करो; अपनी मां को प्रेम करना बहुत मुश्किल है, बहुत मुश्किल है। क्योंकि दूसरी तरफ जीवित व्यक्ति है। और किसी भी जीवित व्यक्ति से संबंधित होना हो, तो झंझट है, कलह है, उपद्रव है। बहुत कठिनाई है। शब्द को प्रेम करने में कोई कठिनाई नहीं है।
इसलिए अक्सर जो मानवतावादी हैं, जो कहते हैं पूरी मनुष्यता को प्रेम करते हैं, अगर उनके जीवन में तलाश करें, तो पाएंगे कि वे एक भी व्यक्ति को प्रेम करने में सफल नहीं हो पाए। और तब उन्होंने एक सपने को, एक शब्द को, एक आदर्श को प्रेम करना शुरू कर दिया। उस आदर्श के साथ, उस शब्द के साथ, स्वप्न के साथ कोई अड़चन नहीं है, कोई दुविधा नहीं है, कोई जटिलता नहीं है। लेकिन एक बड़ा धोखा है; क्योंकि मानवता को प्रेम किया ही नहीं जा सकता, मनुष्यों को ही प्रेम किया जा सकता है। प्रेम तो एक यात्रा है। और प्रेम तो एक निखार है प्रतिपल, कसौटी है, एक आग है, जिसमें से गुजरना है। लेकिन मानवता है, वहां फिर कोई आग नहीं है। दूसरी तरफ कोई है ही नहीं, आप अकेले हैं। उचित हो यह कहना कि हमने प्रेम ही नहीं किया किसी को। मनुष्यता को प्रेम किया, तो धोखा है। नहीं प्रेम किया, इस बात को छिपाने की तरकीब है कि

मनुष्यता को प्रेम किया। अक्सर ऐसा होता है कि जो एक व्यक्ति को प्रेम नहीं कर सकते, वे ईश्वर को प्रेम कर लेते हैं। हालांकि व्यक्ति को भी प्रेम करना जिनकी सामर्थ्य नहीं है, वे ईश्वर को प्रेम नहीं कर पाएंगे। ईश्वर का प्रेम व्यक्तियों के प्रेम से बचने का उपाय नहीं है; ईश्वर का प्रेम व्यक्तियों के प्रेम की ही गहनता का अंतिम फल है। एक व्यक्ति को कोई प्रेम करे और इतना प्रेम करे, इतना प्रेम करे कि व्यक्ति एक द्वार बन जाए और मिट जाए और अनंत व्यक्ति में से झांकने लगे, तो ईश्वर आ गया द्वार पर! लेकिन हर व्यक्ति तो बंद दरवाजा है। वहां से दीवार है, वहां तो कोई द्वार मिलता नहीं, वहां प्रवेश हो नहीं सकता। एक आदमी आंख बंद करके ईश्वर को प्रेम करता है। यह ईश्वर इस आदमी की कल्पना में ही है, और कहीं भी नहीं। ईश्वर चारों तरफ मौजूद है। लेकिन हम जहां से भी उसे छुएंगे, वहीं व्यक्ति मिलेगा। अगर कोई सोचे कि निर्व्यक्ति ईश्वर को प्रेम करना है, तो वह अपने को धोखे में डाल लेगा। वह प्रेम के अभाव को परमात्मा का प्रेम समझ कर भूल में पड़ सकता है, वंचना में पड़ सकता है।
लाओत्से कहता है, छोड़ो मानवता को, ताकि मनुष्य के प्रति प्रेम हो सके। छोड़ो बड़े सिद्धांत; वह तुम्हारी पात्रता नहीं है। छोड़ो दूर की बातें; ताकि निकट से प्रेम हो सके।
और चलना हो किसी को, तो निकट से चलना पड़ता है। अगर मुझे यात्रा करनी है, तो मुझे पहला कदम तो अपने पास ही उठाना पड़ेगा। हजार मील दूर की मंजिल से तो कदम नहीं उठाए जा सकते; वहां तो मैं हूं नहीं। मैं जहां हूं, वहां से मुझे यात्रा करनी होती है। प्रेम का भी कदम उठाना हो, तो मुझे अपने पास ही उठाना पड़ता है। धर्म का भी कदम उठाना हो, तो मुझे पास ही उठाना पड़ता है। एक आदमी कहता है कि नहीं, आदमियों को मैं प्रेम नहीं कर सकता, मैं तो मनुष्यता को प्रेम करूंगा। यह मंजिल से यात्रा शुरू कर रहा है। जहां यह है ही नहीं, वहां से यह यात्रा शुरू कर रहा है। एक आदमी कहता है, मैं तो ईश्वर को प्रेम करूंगा। ईश्वर ही मिल गया होता, तो ईश्वर को प्रेम करने की अब कोई जरूरत न थी। और जो मिला ही नहीं है, उसे प्रेम कैसे करिएगा? जिसे जाना नहीं, उसे प्रेम कैसे करिएगा? लोग कहते हैं कि प्रेम करके हम ईश्वर को जान लेंगे। लेकिन जिसे जाना नहीं, उसे प्रेम कैसे करिएगा? जिससे कोई परिचय नहीं, जिससे कोई मिलन नहीं, उसे प्रेम कैसे करिएगा? तो हमारा प्रेम कहीं धोखा न हो! जिन्हें हम जानते हैं, उनसे बचने का उपाय न हो! जिन्हें हम प्रेम कर सकते हैं, कहीं उनसे भाग जाने की विधि न हो!
ईश्वर को प्रेम किया जा सकता है; विराट को प्रेम किया जा सकता है; लेकिन यात्रा सदा ही निकट से शुरू करनी पड़ती है। आकाश में भी जाना हो, तो घर की अपनी सीढ़ी पर ही पहला पैर रखना पड़ता है। दूर जिन्हें जाना है, उन्हें समीप से शुरू करना पड़ेगा। अंतिम कदम पहले कदम से ही शुरू होता है। अंतिम कदम से कोई यात्रा शुरू नहीं होती।
लेकिन सिद्धांत हमें अंतिम कदम को पहले पकड़ा देते हैं। हम सबके मन में ऊंचे शब्द हैं। और लाओत्से दुश्मन है शब्दों का। हम सबके मन में बड़े अच्छे सिद्धांत हैं। सिद्धांतों की कोई कमी नहीं है हमारे मन में। हम नरक में हों भला, हमारे पास स्वर्ग के शब्द हैं। और हम इन शब्दों को जोर से पकड़ते हैं। क्योंकि हमें डर भी लगता है कि अगर ये शब्द भी हम से छूट गए, तो नरक, जिसमें हम खड़े हैं, वह साफ-साफ दिखाई पड़ने लगेगा। नरक दिखाई न पड़े, इसलिए हम स्वर्ग के शब्दों की चर्चा में तल्लीन रहते हैं। नरक को भुलाने के लिए हम शब्दों का जाल बिछाए हुए हैं अपने चारों तरफ। नरक में खड़े हुए ईश्वर की बातें करते रहते हैं। वे ईश्वर की बातें सिर्फ भुलावा हैं। लाओत्से कहता है, छोड़ो इन शब्दों को! छोड़ो यह ज्ञान, छोड़ो ये शास्त्र! अगर प्रेम नहीं है जीवन में, हर्ज नहीं कोई; लेकिन मनुष्यता को प्रेम मत करो।
यह बहुत मजे की बात है, और गहरी है। आदमी बिना प्रेम किए तो रह नहीं सकता। अगर उसे पता चल जाए कि मनुष्यता को मैं प्रेम कर नहीं सकता और मनुष्य को मैं प्रेम कर नहीं पाता हूं, तो उसके जीवन में पहली दफा क्रांति शुरू होगी। एक इतनी बेचैनी शुरू होगी, एक ऐसा संताप शुरू होगा कि उस संताप से ही, उस अग्नि से ही रूपांतरण हो जाएगा। लेकिन एक आदमी पड़ोसी को तो प्रेम

कर नहीं सकता, कर नहीं पाता, ईश्वर को प्रेम करता रहता है। तो खाली जगह पैदा नहीं होती, जिसमें क्रांति हो जाए। ऐसा लगता है कि प्रेम तो कर रहा हूं। अगर यह पता चल जाए कि ईश्वर को प्रेम मैं कर कहां सकता हूं! कर सकता हूं पड़ोसी को, और पड़ोसी को कर नहीं पाता हूं।
इसे थोड़ा ठीक से समझें। अगर पड़ोसी को प्रेम करना हो, तो आपको अपने को बदलना पड़ेगा। ईश्वर को प्रेम करना हो, तो कुछ भी बदलने की जरूरत नहीं है। अगर मनुष्यता को प्रेम करना हो, तो आप जैसे हैं, वैसे ही योग्य हैं। कोई शर्त नहीं है, कोई पात्रता नहीं है। एक छोटे से बच्चे को प्रेम करें, और आपको बदलना पड़ेगा। एक छोटे से बच्चे का प्रेम से हाथ हाथ में ले लें, और आपकी पूरी जिंदगी आपको बदलनी पड़ेगी। आप वही आदमी नहीं हो सकते। प्रेम आग है; वह आपको बदल ही डालेगी। और अगर कोई प्रेम आपको नहीं बदल रहा है, तो उसका मतलब यह है कि आप सिर्फ ख्याल में हैं; कोई प्रेम नहीं है।
लाओत्से कहता है, हटाएं बड़े शब्दों को। मानवता, ईश्वर, विराट--हटा दें। अनुभव करें कि कोई प्रेम आपके जीवन में नहीं है। और ध्यान रहे, लाओत्से की कीमिया, उसकी अल्केमी यही है कि खाली तो प्रेम के बिना आप नहीं रह सकते। अगर आप अपने को धोखा न दें, तो जो निकट है, उसे आपको प्रेम करना ही पड़ेगा।
इसलिए वह कहता है, "मानवता को छोड़ो, न्याय को हटाओ; और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे।"
अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे! आज अपनों को कोई प्रेम करता ही नहीं है।
मैं पढ़ रहा था, फोर्कविथ ने लिखा है कि अंतर्राष्ट्रीयतावादी वह है,
जो अपने देश को छोड़ कर और सब देशों को प्रेम करता है। मानवतावादी भी वह है, जो अपने निकट के लोगों को छोड़ कर दूर के लोगों को प्रेम करता है।
दूर में अड़चन ही नहीं है कोई। क्या अड़चन है? आपके दरवाजे पर एक भिखारी भूखा बैठा हो, तो कोई अड़चन नहीं आती; बंगला देश में कोई भूखा है, तो आप बड़े बेचैन होते हैं। बहुत मजेदार बात है। आपकी सड़क पर कोई मरा हुआ पड़ा हो, तो कोई हर्ज नहीं है। वियतनाम में कोई मर गया, तो आप पर बड़ा आध्यात्मिक संकट आ जाता है! क्या, हो क्या गया है आदमी को? यह दूर इतना क्यों आकर्षित करता है?
यह इसलिए आकर्षित करता है कि दूर के लिए सदा आप दूसरों को जिम्मेवार ठहरा सकते हैं। आपकी सड़क पर जो आदमी भूखा मर रहा है, उसके लिए आप जिम्मेवार ठहरेंगे। बंगला देश में कोई मर रहा है, तो भुट्टो होंगे जिम्मेवार, कोई और होगा जिम्मेवार; आप नहीं। वियतनाम में कोई मरता है, तो अमरीका होगा जिम्मेवार, निक्सन होंगे जिम्मेवार; आप नहीं।
टाल्सटाय ने लिखा है कि मेरी मां बड़ी दयालु थी। उसकी दया का अंत नहीं था। शाही परिवार था। टाल्सटाय शाही.जार परिवार का आदमी था। मां काउंटेस थी। टाल्सटाय ने लिखा है कि मां की ऐसी दया की हालत थी कि नाटक देखते वक्त उसकी आंखें सूज जाती थीं रो-रो कर। दो नौकरानियां दोनों तरफ आंसू पोंछने के लिए रूमाल बदलती रहती थीं। उसके हृदय पर ऐसे आघात होते थे नाटक में। नाटक में कोई भूखा मर रहा है, किसी के मकान में आग लग गई, किसी को उसके प्रेम में असफलता मिली, और वह जार-जार हो जाती थी।
और टाल्सटाय ने लिखा है कि बाहर हमारा जो कोच, जिस पर हम बैठ कर बग्घी
पर जाते थे, बर्फ पड़ती रहती मास्को में, और अक्सर ऐसा होता कि हमारा जो कोचवान होता, वह बर्फ में गल कर, दब कर मर जाता। जब बाहर काउंटेस मेरी मां आती, देखती कि कोचवान मर गया, उसको हटा कर, फेंक कर सड़क के किनारे, दूसरा कोचवान रख कर वह कोच चल पड़ती। और मेरी मां अपने आंसू पोंछती रहती--नाटक में जो हुआ था।
टाल्सटाय ने लिखा है कि उसी दिन से मुझे पता चला कि आदमी कैसा धोखा दे सकता है!
निकट बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ता। निकट के प्रति एकदम अंधे हैं, बहरे हैं। दूर के प्रति बड़े सचेत हैं। क्या इस टाल्सटाय की मां को यह दिखाई नहीं पड़ता होगा कि यह आदमी मर गया? लेकिन कोचवान भी कहीं आदमी होता है? और

जो नाटक में रो सकती थी, बड़ी हैरानी मालूम पड़ती है कि उसको ख्याल में नहीं आता होगा!
नहीं, ख्याल में नहीं आएगा। असल में, नाटक में रोना एक बचाव है। जो नाटक में रो सकते हैं, वे जिंदगी में बिल्कुल बधिर और अंधे होंगे। असल में, नाटक में रोकर वे अपना रोना निकाल लेते हैं। और वह रोना बिना खर्च के है, सस्ता है। क्योंकि कोचवान के लिए रोना मंहगा पड़ेगा, और कुछ करना पड़ेगा। आदमी ने बड़ी व्यवस्था की है। दूर के प्रति सिद्धांत निर्मित करके वह पास के प्रति जिम्मेवारी से बच गया है। इतनी गहन बेईमानी है इसमें कि जिसका कोई हिसाब नहीं है।
लाओत्से कहता है, छोड़ो मानवता, छोड़ो न्याय; और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे। यह जीवन को बिल्कुल दूसरे ही ढंग से देखने की व्यवस्था है। लाओत्से कहता है, छोड़ दो फिक्र दूर की। अगर प्रेम निकट है, तो कभी दूर भी फैल सकता है। एक पत्थर को हम फेंक देते हैं पानी में। लहर उठती हैं पास; फिर फैलती चली जाती हैं दूर। कोई ऐसा पत्थर आपने फेंकते देखा कि लहरें पहले उठें दूर और फिर आती चली जाएं पास? जिस दिन ऐसा आप पत्थर फेंक सकें, उस दिन लाओत्से गलत हो जाएगा। उसके पहले गलत नहीं हो सकता।
जीवन के तो नियम हैं। यहां सभी कुछ पास से शुरू होता है। अगर मेरे हृदय में प्रेम है, तो उसकी पहली लहर मेरे पास के लोगों को छुएगी। अगर मेरे हृदय में तरंग उठी है प्रेम की, तो जो मेरे निकटतम है, वह पहले आंदोलित होगा; उसको मेरा प्रेम पहले छुएगा। और अगर मेरे प्रेम की लहर इतनी बड़ी है कि उसके पार भी जा सके, तो उससे जो दूर है, उसको छुएगी। अगर और बड़ी है, तो और दूर। अगर मेरा प्रेम इतना बड़ा है कि सारे संसार को पार करके परमात्मा तक पहुंच सके, तो ही मेरा प्रेम उसके चरणों में निवेदित हो सकता है। उसके पहले नहीं।
लेकिन मैं हूं कंजूस। मैं सोचता हूं, यहां फालतू आदमियों में प्रेम खर्च करके क्या है सार? बचा कर रखूं; परमात्मा के चरणों में ही सीधा चढ़ा दूंगा। मात्रा भी ज्यादा होगी, लाभ भी ज्यादा मिलेगा।
लेकिन परमात्मा के चरणों तक पहुंचने का उपाय ही नहीं है। और प्रेम कोई संपदा नहीं है कि उसे बचाया जा सके। प्रेम एक ग्रोथ है, एक विकास है; जो जितना करता है, उतना ज्यादा प्रेम हो जाता है। जो जितना करता है, उतना ज्यादा हो जाता है। प्रेम कोई संपत्ति नहीं है कि खर्च हो जाए। प्रेम कोई संपत्ति होती, तो मैं जितना बांट दूं, उतना कम हो जाएगा। परमात्मा के दरवाजे पर पहुंचूंगा भिखारी की तरह। क्योंकि वह तो मैं पहले ही बांट चुका; जो रास्ते में मिले, उन्हीं को दे दिया। तो फिर बचाना जरूरी है।
लेकिन प्रेम संपदा नहीं है। प्रेम तो वैसे ही है, जैसे जीवन की और सब गहन क्रियाएं हैं। आप श्वास लेते हैं। जितनी ज्यादा श्वास लेते हैं, उतने जीवंत हो जाते हैं। जितने पैर चलते हैं, उतनी चलने की क्षमता बढ़ जाती है। जितनी आंख देखती है, उतनी देखने की क्षमता बढ़ जाती है। जितना आप प्रेम करते हैं, उतना प्रेम बढ़ जाता है। ये क्षमताएं हैं--विकासमान। ये कोई जड़ संपदाएं नहीं हैं कि इनमें कुछ कमी हो जाए। ऐसा मत सोचिए कि दौड़ेंगे, तो फिर आपकी चलने की क्षमता कम हो जाएगी, संपत्ति चुक जाएगी। जो जितना दौड़ेगा, उतना ज्यादा दौड़ सकेगा। जो जितना ज्यादा प्रेम करेगा, उतना ज्यादा प्रेम कर सकेगा। यह हर बार बढ़ता चला जाएगा। और हर बड़ी लहर और बड़ी लहर को जन्म दे जाएगी।
परमात्मा के चरणों तक तो वही आदमी पहुंच पाता है, जो इतना प्रेम करता है, इतना प्रेम करता है कि उसके प्रेम की लहरें उठती ही चली जाती हैं। और कोई उसके प्रेम को चुका नहीं पाता। सबको उसका प्रेम पार करके निकल जाता है। सब उसके प्रेम में नहा जाते हैं। लेकिन उसका प्रेम चुकता नहीं, और बढ़ता जाता है। एक दिन वह प्रेम विराट के चरणों को भी स्पर्श कर लेता है। जो कंकड़ छोटा सा हमने फेंका था सागर में, वह किसी दिन सागर के अनंत तटों को भी स्पर्श कर सकती है उसकी लहर। लेकिन वह कंकड़ डर जाए और सोचे कि छोटा हूं कंकड़, अपनी ताकत कितनी, बिसात क्या, एकाध-दो लहरें उठ भी सकती हैं, बचा कर रखूं; तभी उठाऊंगा, जब तट पर पहुंच जाऊंगा। फिर वे लहरें कभी भी नहीं उठेंगी।

लाओत्से कहता है, छोड़ो मानवता, छोड़ो न्याय।
ध्यान रहे, लाओत्से न्याय के बहुत खिलाफ है, जस्टिस! हैरानी लगती है।
क्यों, न्याय के इतने क्यों खिलाफ है? हम तो कहते हैं, फलां आदमी बड़ा न्यायपूर्ण है। और हमें ख्याल भी नहीं है... ।
इसे थोड़ा हम समझें। ईसाई कहते हैं कि ईश्वर न्यायपूर्ण, प्रेमी, दयालु है। लाओत्से बहुत हंसेगा, अगर उसको पता चल जाए। क्योंकि लाओत्से कहता है कि जो प्रेमी है, वह दयालु नहीं हो सकता। और जो प्रेमी है, वह न्यायविद भी नहीं हो सकता, न्यायी भी नहीं हो सकता।
इसे हम थोड़ा समझें। अगर परमात्मा न्यायपूर्ण है, जस्ट है, तो दयालु नहीं हो सकता। कैसे दयालु होगा? तब जिसको जो दंड मिलना चाहिए, वह मिलना चाहिए; दया का कोई सवाल नहीं है। जिसको नरक में पड़ना चाहिए, पड़ना चाहिए; दया का कोई सवाल नहीं है। और अगर परमात्मा दयालु है और वह आदमी भी स्वर्ग में प्रवेश कर जाता है जिसे नरक में होना चाहिए था, तो फिर जो नरक में पड़ गए हैं, उनके साथ बड़ी अदया हो रही है। तब तो इसका मतलब यह हुआ कि परमात्मा प्रशंसकों को, खुशामदियों को स्वर्ग में जगह दे देता है।
जैनियों ने इसीलिए परमात्मा को बीच से हटा दिया है। वे कहते हैं, सीधा कर्म! नहीं तो बीच में गड़बड़ होगी। तुमने बुरा किया है, बुरा फल मिलेगा; कोई बीच में निर्णायक नहीं है, कर्म स्वयं ही अपना निर्णायक है। क्योंकि वे कहते हैं, अगर बीच में हम किसी व्यक्ति को रखें, तो कठिनाई होगी। क्योंकि व्यक्ति कभी दया भी खा सकता है, कभी प्रेम में भी पड़ सकता है। कभी रहम, कभी बेरहम हो सकता है। अपनों पर, परायों पर कुछ भेद हो सकता है। और जैन कहते हैं कि अगर परमात्मा ऐसा है कि वह दया नहीं करता, कोई प्रेम नहीं करता, तो उसे बीच में रखने की जरूरत भी क्या है? फिर तो कानून काम करता है। आग में हाथ डालोगे, हाथ जल जाएगा। आग दया नहीं करती, प्रेम नहीं करती, न्याय भी नहीं करती। आग का तो एक जड़ नियम है; वह पूरा होता है। तो जैन कहते हैं, कर्म का नियम पूरा होता रहता है; कोई नियंता बीच में नहीं है।
एक लिहाज से ठीक बात है। नियंता को मानते हैं, तो फिर उसमें दो बातें समझ लें। अगर नियंता जस्ट है, न्याय ही उसका जीवन है, तो फिर दया असंभव है। और सब प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं; स्तुति का कोई सार नहीं है। लाख चिल्लाओ ईश्वर के दरवाजे पर कि मुझे क्षमा कर दो, मुझसे भूल हो गई; कोई चीज क्षमा नहीं की जा सकती। अगर न्याय है ईश्वर, तो प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं, कोई सार नहीं है उनमें।
और अगर ईश्वर दया है, तो चरित्र बिल्कुल व्यर्थ है, प्रार्थनाएं काफी हैं। तब सारी ताकत प्रार्थना में लगानी चाहिए। फिर फिजूल की बातों में नहीं पड़ना चाहिए कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, बुरा मत करो। यह सब नासमझी है। इतनी ताकत से तो परमात्मा की दया ही पाई जा सकती है। यह सब भी करो और प्रार्थना करो।
उमर खय्याम ने कहा है। उमर खय्याम से एक मौलवी ने गांव के कहा है कि उमर खय्याम, अब तुम बूढ़े हो गए, अब बंद करो यह शराब पीना! अब कुछ तो ख्याल करो कयामत का; याद करो उस दिन का, जब जजमेंट होगा, निर्णय होगा और परमात्मा के सामने खड़े होओगे। उमर खय्याम तो पीए था; हाथ में प्याली लिए था। उसने धीमे से आंखें खोलीं और उसने कहा कि मुझे उसके रहमवर होने का पक्का भरोसा है। वह परमात्मा दयालु है। और तुम मरते वक्त मुझमें अश्रद्धा पैदा मत करो। मेरी श्रद्धा मजबूत है। यह छोटा सा प्याला और यह थोड़ी सी शराब और यह तुच्छ सा उमर खय्याम, इसको वह माफ न कर सकेगा, तो बड़े पापियों का क्या होगा? परमात्मा दयालु है।
दया अगर है, तो न्याय असंभव है। अगर न्याय है, तो दया असंभव है। दोनों चीजें साथ नहीं हो सकतीं। और दुनिया के अधिक धर्म परमात्मा को दयालु और न्यायप्रिय इकट्ठा मानते हैं।
लाओत्से कहता है, न्याय को हटाओ, प्रेम काफी है।
यह भी थोड़ी सोचने जैसी बात है कि न्याय आता ही तब है, जब प्रेम नहीं होता। न्याय की पूरी दृष्टि ही प्रेम के अभाव में जन्मती है। इसे हम ऐसा समझें। आप अपने पिता के पैर दाब रहे हैं। आप कहते हैं, ड्यूटी है, कर्तव्य है--पिता हैं। आप बूढ़ी मां की सेवा कर रहे हैं। आप कहते हैं, कर्तव्य है।

लेकिन क्या आपने कभी ख्याल किया कि कर्तव्य बहुत कुरूप शब्द है, ड्यूटी बहुत अग्ली शब्द है। क्योंकि कर्तव्य का मतलब यह हुआ कि करने योग्य है, करना चाहिए, इसलिए कर रहा हूं; लेकिन हृदय करने में बिल्कुल नहीं है। मां है, बूढ़ी है, अपनी ही मां है, इसलिए अस्पताल ले जा रहे हैं। कर्तव्य है! लेकिन जब आप अपनी प्रेयसी को अस्पताल ले जा रहे हैं, तब आप कहते हैं कि कर्तव्य है?
प्रेम है, तो कर्तव्य बिल्कुल नहीं पैदा होगा। प्रेम नहीं है, तो कर्तव्य पैदा होगा। कर्तव्य सब्स्टीट्यूट है। जब प्रेम मर जाता है, तो वे ही चीजें जो प्रेम होता तो करते, वे फिर कर्तव्य के नाम से करनी पड़ती हैं। प्रेम होता, तो करने में होता आनंद। और जब कर्तव्य होता है, तो सिर्फ होता है एक बोझ, जिसे किसी भांति उतार देना है।
लाओत्से कहता है कि न्याय प्रेम का अभाव है। अगर प्रेम है लोगों में,
तो अन्याय ही नहीं होगा और न्याय की कोई जरूरत न पड़ेगी। अन्याय होता है, इसलिए न्याय की जरूरत पड़ती है। और लाओत्से कहता है, जब अन्याय होता ही है, तो तुम न्याय से कुछ हल न कर पाओगे। अन्याय न हो! इसे हम ऐसा समझें। दो तरह की दवाएं हो सकती हैं। एक दवा, जिसको हम प्रिवेंटिव कहें। बीमार आप न हों, इसलिए दी जाती है। और एक दवा, जब आप बीमार हो जाते हैं, तब दी जाती है। एक बीमारी के पहले और एक बीमारी के बाद।
लाओत्से कहता है, न्याय बीमारी के बाद की गई दवा है। अन्याय हो रहा है, इसलिए न्याय की जरूरत पड़ती है। लाओत्से कहता है, मैं तो उस धर्म की बात करता हूं कि अन्याय न हो, न्याय की जरूरत ही न रहे। इसलिए कहता है, न्याय को छोड़ो। क्यों? क्योंकि अगर न्याय छोड़ोगे, तो तुम्हें अन्याय दिखाई पड़ेगा। न्याय के धुएं में तुमने अन्याय को अच्छी तरह छिपा लिया है। और न्याय के नाम से अन्याय तो नहीं रुकता, अन्याय दिखाई नहीं पड़ता है।
लाओत्से का एक अनुयायी लीहत्जू कुछ दिनों के लिए एक राज्य का मंत्री
हो गया था। पहला ही जो मुकदमा उसके हाथ में आया, एक आदमी ने चोरी की थी। बड़ी चोरी थी, और गांव के सबसे बड़े संपत्तिशाली आदमी के घर हुई थी। लीहत्जू ने मुकदमा सुना; जिसने चोरी की थी, उसे छह महीने की सजा; और जिसके घर चोरी हुई थी, उसे भी छह महीने की सजा दे दी। अमीर तो बौखला गया। उसने कहा कि लीहत्जू, तुम पागल तो नहीं हो? न्याय की कुछ बुद्धि भी है? कभी सुना है ऐसा अन्याय? और अभी पहले ही दिन तुम बैठे हो न्यायाधीश के पद पर और यह तुम क्या कर रहे हो? सम्राट से शिकायत करूंगा, यह तुम मजाक कर रहे हो! छह महीने की सजा मुझे भी, जिसकी चोरी हुई?
लीहत्जू ने कहा कि तुमने इतना पैसा गांव में इकट्ठा कर लिया कि अब चोर तुम्हारे कारण पैदा होंगे ही। तुम जब तक हो, तब तक चोरी नहीं रुक सकती। और जुर्मी तुम पहले हो; यह तो नंबर दो है। न तुम इतना धन इकट्ठा करते, न यह आदमी चोरी करता। इसकी चोरी में तुम्हारा हाथ है, तुम साझेदार हो। तुम दोनों पार्टनर हो। आधा काम तुमने किया है, आधा इसने किया है। इसलिए मैं तो जड़ से ही अन्याय मिटाऊंगा। अन्याय मिटाने को हम न्याय कहते हैं, लीहत्जू ने कहा।
लेकिन सामान्य न्याय यह होता कि चोर को छह महीने की सजा मिलनी थी, साहूकार को नहीं। यह न्याय होता, जो कि हर अदालत में हो रहा है। लाओत्से कहता है, छोड़ो यह न्याय! क्योंकि तुम सिर्फ अन्याय छिपा रहे हो। तुम्हारी सब अदालतें, तुम्हारे सब कानून, तुम्हारी सब विधान-सभाएं बड़े महत्वपूर्ण, सदा से चलने वाले ऐतिहासिक अन्यायों पर पर्दा डालने के उपाय से ज्यादा नहीं हैं। और उस अन्याय के कारण जो और अन्याय पैदा हो रहे हैं, उनको तुम रोके चले जा रहे हो। लेकिन मूल अन्याय नष्ट नहीं होता।
लीहत्जू को सम्राट के सामने जाना पड़ा। सम्राट ने कहा, ऐसा न्याय हमने
भी कभी नहीं सुना। तुम जैसे आदमी को मैं अपना न्याय-मंत्री नहीं रख सकता; क्योंकि आज नहीं कल तुम मुझे सजा दे दोगे। सारी व्यवस्था की बात है। और अगर यह साहूकार जुर्मी है, तो मैं कितनी देर तक जुर्म के बाहर रहूंगा? लीहत्जू ने कहा कि महाराज, यही आपको स्मरण दिलाने के लिए यह सजा दी है।
हम सब अपराधी हैं। लेकिन बड़े अपराधी बच जाते हैं, छोटे अपराधी फंस जाते हैं। बड़े अपराधियों के हाथ में सारी व्यवस्था है; छोटे अपराधियों के

हाथ में व्यवस्था नहीं है। इसलिए बड़े अपराधियों के विपरीत जो भी चलता है, वह फंस जाता है।
लीहत्जू ने कहा कि मैं तो न्याय ऐसा ही करूंगा। चाहें तो रहूं, अन्यथा बाहर हो जाऊं। क्योंकि जिसको आप न्याय कहते हैं, मेरे गुरु ने सिखाया है कि वह तो न्याय नहीं है। वह न्याय छोड़ो।
इसे ऐसा हम समझें कि हमारी बहुत अच्छी-अच्छी धारणाओं के नीचे बड़े गहन पाप छिपे हुए हैं, जो हमें दिखाई ही नहीं पड़ते। दिखाई न पड़ने का कारण है, हम अभ्यस्त हो गए हैं। वे इतने पुराने हैं और इतने प्राचीन हैं और इतने परंपरागत हैं और उनकी आदत इतनी गहरी हो गई है कि वे हमें दिखाई नहीं पड़ते। वे हमें दिखाई नहीं पड़ते; हम उनके प्रति बिल्कुल ही बेहोश की तरह जीए चले जाते हैं। हमारे खून और हड्डी में वे मिल गए हैं। अगर कोई हमें बताए, तो हमें बहुत हैरानी होती है कि यह क्या बात है!
अगर यह लीहत्जू कहे कि छह महीने की सजा उसको भी जिसके यहां चोरी हुई है, तो हमें बहुत चौंकाने वाली बात मालूम पड़ती है। लेकिन क्या सच में ही यह चौंकाने वाली बात है? या सिर्फ हमारी एक आदत हो गई है? इसमें चौंकाने वाला क्या है? यह बात तो गहरे में ठीक ही है। लेकिन हमारी धारणा में उसके लिए कोई जगह नहीं है। इसलिए बात एकदम चौंकाने वाली मालूम पड़ती है।
आस्कर वाइल्ड ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैंने जिंदगी में बहुत तरह से लोगों को चौंकाने के उपाय किए, लेकिन सबसे ज्यादा लोग तभी चौंकते हैं, जब तुम कोई सत्य कह दो। बड़े से बड़ी झूठ भी इतना नहीं चौंकाती, क्योंकि लोग अभ्यस्त हैं; लेकिन सत्य बहुत चौंकाता है।
दो-चार शब्दों को हम देखें, जिनके नीचे हमारे गहरे असत्य छिपे हुए हैं। न्याय एक शब्द है, जिसके अंतर्गत हम न मालूम कितना पाप करते हैं। एक बात, अभी तक हम उन सारे लोगों को, जो भी संपत्ति की व्यवस्था के विपरीत कुछ करते रहे, अपराधी मानते रहे हैं। लेकिन संपत्ति की पूरी व्यवस्था भी अपराधी हो सकती है, यह हमारे ख्याल में नहीं आता। पूरी व्यवस्था ही अपराधी हो सकती है, अगर यह ख्याल में आ जाए, तो फिर जिनको हम अपराधी ठहराते हैं, वे अपराधी न रह जाएंगे।
एक छोटी क्लास है स्कूल की, प्राइमरी स्कूल की। और एक बच्चा अपने पड़ोसी बच्चे की कलम उठा कर अपने खीसे में रख लेता है। यह चोरी है। प्राइमरी स्कूल के शिक्षक से लेकर दिल्ली के प्रेसीडेंट तक सभी उसके खिलाफ हो जाएंगे। लेकिन उस बच्चे की तरफ से हम समझने की कोशिश करें। सब बच्चों के पास रंगीन कलमें हैं; उसके पास नहीं है। रंग उसे आकर्षित करते हैं; सभी बच्चों को करते हैं। वह भी एक रंगीन कलम अपने खीसे में रखना चाहता है, जैसे दूसरे बच्चे रखते हैं। और बूढ़े तक जब चीजें रख कर अकड़ते हैं, तो छोटे बच्चे अगर रख कर अकड़ना चाहें, तो बुराई क्या है? और जब आपके पास नई कार आती है, नए रंग की, तो आपकी चाल बदल जाती है, और जवानी लौट आती है, उम्र दस साल कम हो जाती है। यह छोटा सा बच्चा एक कलम को खीसे में रख कर यह भी अकड़ सके, इसमें ऐसा एतराज क्या है?
लेकिन यह बच्चा अपराधी है। दूसरे बच्चों के पास कलमें क्यों हैं और
इस बच्चे के पास कलम क्यों नहीं है? अगर इसके हम पीछे यात्रा करना शुरू करें, तो हम पाएंगे, दूसरे बच्चों के बाप इस बच्चे के बाप से ज्यादा बेईमान सिद्ध हुए, ज्यादा चालाक सिद्ध हुए, ज्यादा होशियार सिद्ध हुए। अगर हम इस कलम का पूरा इतिहास खोजने जाएं, तो हम न मालूम कितने पाप और न मालूम कितने अपराध इस कलम तक पाएंगे, जो इसके पीछे छिपे हैं! लेकिन उनसे कोई संबंध नहीं है। इस बच्चे ने कलम उठा ली, क्योंकि रंग उसे भी पसंद है। जो कलम दूसरे के पास है, वह उसे भी पसंद है। वह भी इस कलम को रख कर शान से चलना चाहता है। इस बच्चे के इस भाव में कहीं भी कुछ पाप नहीं है। ऐसा होना ही चाहिए। यह स्वाभाविक है। इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। ऐसा न हो, तो अस्वाभाविक है। लेकिन यह बच्चा अपराधी है।
और हमारे सारे अपराध ऐसे ही अपराध हैं। फिर इस पर न्याय की व्यवस्था है। समाज एक तरफ अपराध पैदा करवाए चला जाता है, दूसरी तरफ से न्याय बिठाए चला जाता है। इस न्याय से अपराध मिटते नहीं, मिट नहीं सकते। क्योंकि न्याय खुद ही उनको छिपाने और ढांकने की व्यवस्था है। अपराध बढ़ते चले जाते हैं;

न्याय की धारणा बढ़ती चली जाती है। लोग न्याय का नारा लगाए चले जाते हैं और अपराध गहरे होते चले जाते हैं।
लाओत्से कहता है, इन थोथे शब्दों को हटाओ; और जीवन की जो सच्चाई है, सीधी-साफ, उसे देखो। हटाओ न्याय की धारणा। अन्याय है, तो अन्याय को देखो, ठीक सीधा। छिपाओ मत। वस्त्रों में ढांको मत।
और अगर अन्याय हमारे सबके सामने प्रकट हो जाए, तो शायद अन्याय बच नहीं सकता। लेकिन अन्याय दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए बच सकता है। बीमारी अगर छिपी हो, तो बच सकती है। अगर उघड़ आए, तो बच नहीं सकती। हम उसे तोड़ ही फेंकेंगे, हटा ही डालेंगे। जो भी अन्याय अन्याय की तरह साफ हो जाए, वह टिकेगा नहीं। आदमी उसे बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। लेकिन अन्याय के ऊपर फूल लगा दो, रंगीन कागज चिपका दो, इत्र छिड़क दो, फिर अन्याय बच जाएगा।
और हम सब कुशल हो गए हैं। समाज के कोढ़ पर रंगीन चीजें चिपकाने में हम कुशल हो गए हैं। अब धीरे-धीरे भीतर सब कोढ़ हो गया है; सिर्फ ऊपर रंगीन चीजें रह गई हैं। कभी यहां से उखड़ जाती हैं, कभी वहां से। थोड़ी दुर्गंध आती है। फिर यहां से चिपका देते हैं; फिर वहां से बंद कर देते हैं। भीतर एक लाश रह गई है सड़ी हुई।
लाओत्से का अर्थ केवल इतना ही है कि जो है, उसे सीधा देख लो; उसके विपरीत सिद्धांत मत खड़ा करो। हम सबकी आदत क्या है? जो है, उसकी तो हम फिक्र नहीं करते; तत्काल उसके विपरीत सिद्धांत खड़ा करते हैं। और विपरीत सिद्धांत हमारा उपद्रव बन जाता है। भीतर हिंसा है, तो हम तत्काल अहिंसा का सिद्धांत खड़ा कर लेते हैं। हिंसक आदमी अहिंसा परमो धर्मः लिख कर अपनी तख्ती लगा लेता है अपने मकान पर। भीतर हिंसा है, वह कहता है, अहिंसा सिद्धांत है। वह कहता है, आज अहिंसक नहीं हूं, कल अहिंसक हो जाऊंगा, परसों अहिंसक हो जाऊंगा। कोशिश तो कर रहा हूं, अहिंसा को मानता भी हूं। महावीर के चरणों में जाता हूं, बुद्ध को मानता हूं, अहिंसा में मेरी बड़ी आस्था है। कमजोर हूं, अभी हिंसा है। लेकिन सिद्धांत मेरे पास है; आज नहीं कल अहिंसक हो जाऊंगा।
आपको पता है, क्या कर रहा है यह आदमी? हिंसा का जो कोढ़ है, उसको देखने
से बचने की तरकीब निकाल रहा है। हिंसा भारी है। और अगर यह अपनी हिंसा को देखे, तो एक दिन भी उस हिंसा में खड़ा हुआ नहीं रह सकता। जैसे घर में आग लग गई हो और पता चल जाए कि आग लग गई है, तो आप फिर एक क्षण रुक नहीं सकते। फिर आप यह भी नहीं पूछने रुकेंगे कि मैं किस गुरु से रास्ता पूछूं बाहर निकलने का? कि सदगुरु कौन है, उसकी ही मान कर निकलूंगा! कि खिड़की से निकलूं, कि दरवाजे से निकलूं, कि छलांग लगाऊं, कि रस्सी लटकाऊं, कि सीढ़ी लगाऊं? आप कुछ न पूछेंगे। इतनी फुर्सत न होगी, इतना समय भी न होगा। सच तो यह है कि आपको पता ही न चलेगा, कब आप बाहर निकल गए हैं। बाहर निकल कर ही पता चलेगा कि मैं बाहर आ गया हूं। तभी आप श्वास लेंगे और विचार शुरू करेंगे।
अगर किसी व्यक्ति को अपने भीतर हिंसा का, अपने कोढ़ का ऐसा ही बोध हो जाए, तो वह यह नहीं कह सकता कि कल निकलूंगा। मकान में आग लगी है, तब आप यह नहीं कह सकते कि कल निकलेंगे, परसों निकलेंगे, अभी सोचने का मौका चाहिए, और फिर जल्दी क्या है, अभी उम्र तो पड़ी है। ये सब बातें नहीं हैं। आग लगी है, तो आदमी निकल जाता है। लेकिन जिंदगी की जो आग है, हमारी बचने की एक तरकीब है गहरी से गहरीः क्रिएट दि अपोजिट, विपरीत को पैदा कर लो, उसको सिद्धांत बना लो। भीतर के कोढ़ पर नजर मत रखो, सिद्धांत पर नजर रखोः अहिंसा परम धर्म है! और सोचो निरंतर कि आज नहीं कल अहिंसक हो जाएंगे। इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में हो जाएंगे। कोशिश जारी रखेंगे; और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अहिंसा आ जाएगी, हिंसा चली जाएगी।
यह अहिंसा कभी भी न आएगी। यह पोस्टपोनमेंट है। यह तरकीब है। यह स्थगित करना है। और मजे की बात यह है कि हिंसा जारी रहेगी। आपके भीतर दो तल हो जाएंगेः आपका असली आदमी हिंसक बना रहेगा, आपका नकली आदमी अहिंसक हो जाएगा। और नकली आदमी नकली अहिंसा के इंतजाम कर लेगा--रात खाना नहीं खाएगा; दिन में पानी छान कर पी लेगा।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पानी छान कर मत पीएं। हाइजिनिक है। लेकिन अहिंसा मत समझें। अच्छा है; लेकिन अहिंसा मत समझें। अहिंसा इतनी सस्ती

बात होती कि आप एक कपड़ा खरीद लाए और पानी छान लिया! और कितनी मौज से जब लोग पानी छान कर पीते हैं, तो वे सोचते हैं, स्वर्ग का बिल्कुल पक्का हो गया, अब मोक्ष में कोई बाधा न रही। दिखा देंगे यह कपड़ा, कि देखो पानी छान कर पीया था, और रात कभी खाना नहीं खाया।
मैं देखता हूं। कभी-कभी ऐसे घरों में ठहरने का मुझे मौका मिलता है। भीतर अंधेरा हो गया, तो बाहर बैठ जाते हैं। सूरज तो डूब रहा है, डूबने के करीब है, या डूब भी गया है। बाहर बैठ जाते हैं इस भरोसे में कि अभी सूरज नहीं डूबा है। जल्दी खाना खा रहे हैं कि रात... ।
इनका खाना खाना तक हिंसा है। इतनी तेजी से खा रहे हैं कि वह भी एक प्रेमपूर्ण, आनंदपूर्ण कृत्य नहीं है। वह भी हिंसा है। लेकिन वे जल्दी खाए चले जा रहे हैं। रात हुई जा रही है; रात वे खाना नहीं खाएंगे।
रात लाखों पशु-पक्षी खाना नहीं खाते। अगर वे सब मोक्ष में जा रहे हैं,
तो आप मत जाना। यह कोई गुण नहीं है। नहीं खाते, बड़ा अच्छा है; स्वास्थ्यपूर्ण भी है। और आपके हित में है; आपके शरीर के हित में है। आत्मा का कुछ बहुत लेना-देना नहीं है।
झूठा आदमी जो अहिंसक है, ऊपर वह झूठी अहिंसा पैदा कर लेता है। वह कहता है, हरी सब्जी नहीं खाएंगे। अब कितने होशियार लोग हैं! और कितने बेईमान! इन्हीं को लाओत्से कहता है, छोड़ो बेईमानी, छोड़ो होशियारी!
एक घर में मैं रुका था। तो जैनों के पर्यूषण के दिन थे। तो हरी सब्जी नहीं खाएंगे, लेकिन केला खा रहे थे। मैंने कहा, यह क्या हुआ? उन्होंने कहा, यह हरा नहीं है, रंग हरा नहीं है। हरी सब्जी से मतलब रंग हरा! यह होशियारी है, कानूनी होशियारी है। हरे का मतलब होना चाहिए गीला। सूखा खा सकते हैं। लेकिन हरे का मतलब ले लिया है कि रंग हरा न हो बस, फिर कोई बात नहीं है। तो केले का रंग हरा नहीं है; फिर मजे से खा सकते हैं।
कुछ लोग हैं, जो सोचते हैं कि सूखा ही खाना चाहिए। लेकिन महावीर का ख्याल ऐसा था कि जो चीज वृक्ष से अपने आप पक कर गिर पड़ी हो और सूख गई हो; तोड़ी न गई हो। लेकिन सूखा ही खाना चाहिए व्रतों के दिनों में, तो लाकर लोग चीजों को सुखा कर पहले से रख लेते हैं। आप ही सुखा रहे हैं। अभी सुखाते हैं कि आठ दिन बाद सुखा कर खाते हैं, या गीला खाते हैं, क्या फर्क पड़ रहा है? आठ दिन पहले सुखा कर रख लिया है, फिर बाद में खा रहे हैं, क्योंकि सूखी चीज खा रहे हैं।
एक दिन ऐसा हुआ कि बुद्ध का एक भिक्षु भिक्षा मांगने गया। और एक चील आकाश में उड़ती थी और उसके मुंह में मांस का टुकड़ा था और वह भिक्षा के पात्र में गिर गया।
भिक्षु बड़ा मुश्किल में पड़ा। क्योंकि बुद्ध ने कहा था, भिक्षा के पात्र में जो भी मिल जाए, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। अब यह भिक्षा के पात्र में मांस मिल गया!
वह आया लौट कर। उसने बुद्ध से कहा कि अब मैं क्या करूं? आपने कहा है कि भिक्षा के पात्र में जो भी आ जाए! एक चील एक मांस का टुकड़ा मेरे भिक्षा के पात्र में गिरा गई है।
ऐसा बहुत कम उल्लेख है कि बुद्ध ने किसी का उत्तर देते वक्त सोचा हो। लेकिन इस भिक्षु को उत्तर देते वक्त, कहते हैं, सोचा। आंख बंद कर ली; और फिर कहा कि ठीक है, जो भी भिक्षा-पात्र में आ गया है, उसे तू ले ले।
आनंद ने कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं? मांस!
तो बुद्ध ने कहा, चीलें रोज-रोज भिक्षा-पात्रों में मांस नहीं गिराएंगी। संयोग की बात है। अब शायद दुबारा ऐसा फिर कभी नहीं होगा इतिहास में भी। लेकिन इस संयोग की बात के लिए अगर मैं यह कहूं कि नहीं, भिक्षु तुम स्वयं चुन लेना कि क्या लेना और क्या नहीं लेना, तो लोग सिर्फ मिठाइयां ही लेंगे और बाकी चीजें छोड़ देंगे। लोग होशियार हैं आनंद, लोग चालाक हैं। चीलें इतनी चालाक नहीं हैं कि रोज-रोज... । तो मैंने यही सोचा कि चीलें ज्यादा चालाक हैं कि आदमी ज्यादा चालाक हैं; उस हिसाब से नियम बनाना चाहिए।
लेकिन बुद्ध को पता नहीं कि आप कोई भी नियम बनाओ, आदमी की चालाकी में फर्क नहीं पड़ता। और आज चीन और जापान, सब बौद्ध मुल्क मांसाहारी हैं। और हर

बौद्ध होटल के ऊपर लिखा रहता है कि यहां मारे गए जानवर का मांस नहीं मिलता, अपने आप मर गए जानवर का मांस मिलता है। क्योंकि मारने में हिंसा है; अब एक जानवर अपने आप ही मर गया, इसमें किसी ने हिंसा तो की नहीं। अब इसका मांस खा लेने में क्या हर्ज है?
इतने जानवर अपने आप मरते भी नहीं। लेकिन वह मारने का काम कोई और करते हैं। होटल में तो मांस ही आता है मरा-मराया। होटल के मैनेजर को इससे कुछ लेना-देना नहीं है। वह खुद भी बौद्ध है, तख्ती लगी हुई है कि मरे हुए जानवरों का ही मांस मिलता है।
सारी दुनिया में बौद्ध मांसाहारी हैं। और कुल कारण इतना है--यह एक छोटी सी घटना कारण बनी। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि न तो इस भिक्षु ने किसी को मारा है--मारा होता तो हिंसा होती--इसने न तो मारा है, न चील से यह मांगने गया था। यह संयोग है। तो बौद्ध भिक्षु मांगते नहीं हैं मांस; लेकिन आप डाल दें, तो मजे से स्वीकार करते हैं। मजे से स्वीकार करते हैं।
आदमी विपरीत सिद्धांत को अगर झूठा बना ले, तो रास्ते निकाल लेता है। रास्ते निकालने में कोई कठिनाई नहीं है। नीचे असली आदमी चलता चला जाता है; ऊपर एक झूठा आदमी चलता चला जाता है। यह झूठा आदमी अच्छा आदमी होता है; इसकी सब आशाएं भविष्य में होती हैं। असली आदमी अभी होता है; उसके सब काम वर्तमान में होते हैं। और इन दोनों के बीच धीरे-धीरे इतना फासला हो जाता है कि आपके अच्छे आदमी को ही आपके झूठे आदमी की कोई खबर नहीं रह जाती। आप भूल ही जाते हैं कि आपके नीचे असली आदमी छिपा हुआ है। और वही असली आदमी आप हैं।
लाओत्से कहता है, विपरीत का निर्माण मत करो। तुम जो हो, उसी को जानो, उसी में जीओ। और यह बहुत गहन सूत्र है। अगर मैं अपनी हिंसा में जीऊं और अहिंसा का सिद्धांत निर्मित न करूं, तो एक दिन मैं अहिंसक हो जाऊंगा। अगर मैं अपने क्रोध में जीऊं और अक्रोध का सिद्धांत निर्मित न करूं, तो क्रोध ही मुझे बदल डालेगा। अगर मैं अपनी कामवासना में जीऊं और ब्रह्मचर्य की कोई धारणाएं न बनाऊं, तो मेरी कामवासना ही मुझे बदल जाएगी। जो गलत है, जो दुखदायी है, जो पीड़ा है, उसमें ज्यादा देर रहा नहीं जा सकता। वह आग है। उसमें हम जलेंगे, झुलसेंगे, अनुभव से सीखेंगे और किसी दिन छिटक कर बाहर हो जाएंगे।
लेकिन एक आदमी कीचड़ में खड़ा है, कांटों में खड़ा है, गंदगी में खड़ा है। अगर इसकी आंखें नीचे लगी रहें--गंदगी देखे, कीचड़ देखे, मक्खी हैं, मच्छर हैं, बदबू आ रही है--कितनी देर खड़ा रहेगा? लेकिन यह आदमी एक तरकीब कर सकता है। यह आंखें आकाश की तरफ उठा ले, चांद-तारों का चिंतन करे, भूल जाए नीचे की कीचड़, चांद-तारों में जीने लगे, तो यह जिंदगी भर खड़ा रह सकता है इस कीचड़ में। क्योंकि कीचड़ नहीं है दुखदायी, कीचड़ का बोध दुखदायी है। हिंसा नहीं है दुखदायी, हिंसा की प्रतीति। क्रोध नहीं है दुखदायी, क्रोध की प्रतीति, क्रोध का अनुभव, क्रोध की आग, उसका अहसास।
लाओत्से कहता है, जो है, उसमें ही जीएं। वह अपने से तिरोहित हो जाएगा। क्योंकि अगर वह गलत है, तो बदल जाएगा; अगर सही है, तो बदलने का कोई सवाल नहीं है।
इसलिए लाओत्से कहता है, "छोड़ो मानवता को, न्याय को हटाओ; और लोग अपनों
को पुनः प्रेम करने लगेंगे। चालाकी छोड़ो, उपयोगिता को हटाओ; और चोर तथा लुटेरे अपने आप ही लुप्त हो जाएंगे।"
चालाकी छोड़ो, उपयोगिता को हटाओ! ये दो बातें भी समझ लेने जैसी हैं।
बड़े मजे की बात यह है कि जब चालाकी आदमी किन्हीं ऐसे कामों में करता
है जिन्हें हम बुरा कहते हैं, तब तो हम उसे चालाकी कहते हैं; और वही काम अगर वह उन कामों में करे जिन्हें हम अच्छा कहते हैं, तो फिर हम चालाकी नहीं कहते। फिर हम उसे बुद्धिमानी कहते हैं, होशियारी कहते हैं। यह भी चालाकी का ही एक हिस्सा है। जैसे, चालाकी का अर्थ यह है कि जो भी मैं करूं, वह परिणाम के ध्यान से करूं।
चालाकी का अर्थ क्या होता है? कनिंगनेस का मतलब क्या है?
रास्ते पर आप मिले। अगर मैं नमस्कार भी करूं, तो परिणाम को ध्यान में
रख कर करूं कि इस नमस्कार से क्या मिलेगा? यह आदमी किस मिनिस्टर का

रिश्तेदार है? या रिश्तेदार का रिश्तेदार है? कहां तक इसकी पहुंच है? या इससे क्या काम निकालना है? इससे क्या मिलेगा? एक नमस्कार भी कैलकुलेशन है, गणित है।
अगर एक नमस्कार भी गणित है, तो चालाकी हो गई। तो फिर जिस दिन इस आदमी
से कुछ नहीं मिलेगा, उस दिन बात व्यर्थ हो गई।
तुर्गनेव ने एक कहानी लिखी है। एक होटल के सामने लोग इकट्ठे हैं। और
एक कुत्ते को एक आदमी दोनों पैर पकड़ कर पटकने के लिए तैयार है, मार डालने को। क्योंकि उस कुत्ते ने इसे काट लिया है। तभी दो पुलिस वाले वहां आते हैं और एक पुलिस वाला नीचे झांक कर कहता है कि ठीक है, मार ही डालो इस कुत्ते को! यह हम पुलिस वालों को भी बड़ा परेशान करता है; रात भौंकता-भांकता है। पुलिस वालों और कुत्तों के बीच कोई जन्मजात विरोध है। मुझे भी बहुत परेशान करता है, इसको मार ही डालो। तभी बगल वाला पुलिस वाला कहता है, जरा सोच कर कहना, यह हमारे बड़े साहब का कुत्ता मालूम पड़ता है। वह पहला पुलिस वाला फौरन झपट कर उस आदमी की गर्दन पकड़ लेता है जो कुत्ते को पकड़े हुए है, और कहता है कि तू समझता नहीं क्या कर रहा है! यह कुत्ता कोई साधारण कुत्ता है? छोड़ इसको! कुत्ते को छुड़ा कर गोदी में ले लेता है। और अपने दूसरे साथी से कहता है, हथकड़ी डालो इस आदमी को। यह बलवा खड़ा कर रहा है यहां सड़क पर। तभी वह दूसरा साथी कान में कहता है, लेकिन नहीं, यह कुत्ता वह नहीं मालूम होता। तो वह उस कुत्ते को पटक देता है और कहता है, मार डालो इस कुत्ते को! सब गंदा हो गया। स्नान करना पड़ेगा। लेकिन तभी वह साथी कहता है कि नहीं-नहीं, है तो यह साहब का ही कुत्ता। फिर वह कुत्ते को उठा लेता है।
यह कहानी चलती है। और यह सब चालाक लोगों की जिंदगी की कहानी है। पूरे वक्त यह चल रहा है। चालाकी का अर्थ हैः परिणाम महत्वपूर्ण है। कोई हिसाब है पीछे। जो भी हम कर रहे हैं, उसमें हिसाब है। अगर यह बात सच है, तो एक आदमी मंदिर जाकर घंटा बजा रहा है, पूजा कर रहा है--चालाक है। हिसाब है उसका। एक आदमी माला फेर रहा है--चालाक है। वह कहता है, कितनी मालाएं फेरनी हैं? एक लाख माला अगर फेर लीं, तो यह फल होगा। एक लाख दफे अगर माला फेर ली, तो यह फल होगा। इतनी दफे राम का नाम ले लिया।
मैं एक मंदिर में गया। वहां लाखों कापियां रखी हैं अंदर राम-राम लिख-लिख कर। जो आदमी लिखवा रहे हैं राम-राम, वे घूम-घूम कर दिखलाते हैं। सारी अलमारियां भरी हैं। मैंने पूछा, यह क्या, हो क्या रहा है?
तो उन्होंने कहा, मैंने नियम लिया हुआ है कि इतने अरब नाम लिखवा कर रहूंगा।
क्या होगा इससे?
क्या होगा! यह व्रत अगर मेरा पूरा हो गया, तो फिर आवागमन से छुटकारा है।
तुम कापियां खराब करोगे और आवागमन से छुटकारा हो जाएगा? और न मालूम कितने पागलों को लिखवाने में लगाए हुए हो। उनका समय खराब कर रहे हो। मगर उस आदमी का आवागमन से छुटकारा हो रहा है; क्योंकि राम-राम, राम-राम कापियों पर लिखवा रहा है।
मैंने उसको कहा, पागल, अब तो प्रेस है। अब इसकी कोई जरूरत नहीं। तू छपवा ले जितना तुझे छपवाना है, और रख ले और उनके ऊपर बैठ जा।
लेकिन कैलकुलेशन है। राम का नाम भी आदमी लेगा, तो हिसाब है। बेकार हो
गई बात। अगर राम का नाम भी हिसाब से लिया, तो राम का नाम लिया ही नहीं। हिसाब चालाकी है। हर चीज में चालाकी है।
बेटा बाप के पैर दाब रहा है। वह देख रहा है कि क्या-क्या मिल सकता है? वसीयत में क्या मिलेगा, क्या नहीं मिलेगा? कहते हैं कि अमीर बाप के बेटे कभी भी बाप के मरने पर सच में दुखी नहीं होते। हो भी नहीं सकते। होने का कोई कारण भी नहीं है। भीतर शायद खुश ही होते हैं। सम्राटों के बेटे तो अक्सर बाप को मारने का कारण ही बनते हैं। सब तरफ हिसाब है।
लाओत्से कहता है, यह चालाकी जब तक है--और यह सिर्फ गलत चीजों में ही नहीं है, सब चीजों में है यह चालाकी--अगर यह चालाकी है, तो यह जिंदगी कभी भी कृत्रिमता के पार सहजता में प्रवेश नहीं कर सकती। परिणाम में मत जीओ;

कृत्य में जीओ। मोमेंट टु मोमेंट लिव इन दि एक्ट, नॉट इन दि कांसीक्वेंस, नॉट इन दि रिजल्ट। वह जो कृत्य है, उस में ही जीओ।
रास्ते पर कोई आदमी मिला है, उससे राम-राम कर लेने का ही काफी मजा है। इसलिए अगर आप छोटे गांव में जाएं, तो आपको बड़ी हैरानी होगी। कोई आपको जानता नहीं, फिर भी लोग राम-राम कर लेंगे। बड़ी बेचैनी होगी, क्योंकि ऐसा कहीं नहीं होता। जब तक जानते न हों, मतलब न हो, कोई हिसाब न हो, यह काहे के लिए राम-राम कर रहे हैं? आपको बेचैनी होगी। पूछने का मन होगा, भई क्यों राम-राम करते हो? क्या मतलब है? विचित्र मालूम होता है। छोटे गांव में जाएं, कोई भी आदमी राम-राम करता है। न आपको कोई जानता, न आपके धन का किसी को पता, न आपके पद का पता। आप क्या कर सकते हैं, इसका भी पता नहीं। लेकिन वे गांव के पुराने लोग बिना हिसाब राम-राम किए जा रहे हैं। उसमें कोई हिसाब नहीं है। उसमें कोई गणित नहीं है कि आप क्या करोगे। आपसे कोई मतलब नहीं है। राम-राम करना आनंदपूर्ण है; कर लिया है।
हम सब तरफ हिसाब से भर गए हैं। हमारा प्रेम एक गणित। हमारी प्रार्थना
एक गणित। हमारी दूकान तो है ही चालाकी, हमारा मंदिर भी हमारी चालाकी का विस्तार है। वहां भी हम सब लगा रहे हैं--आगे तक का हिसाब फैला कर रखा हुआ है।
इसे लाओत्से कहता है, यह चालाकी तुम्हें कभी सहज न होने देगी। छोड़ो चालाकी। छोड़ो उपयोगिता, यूटिलिटी।
अब यह ज्यादा गहरा मामला है उपयोगिता का; क्योंकि चालाकी ही इसलिए है
कि उपयोगिता पर दृष्टि है हमारी। हर चीज की यूटिलिटी। अगर मैं एक बम बनाऊं, तो अखबारों में खबर छप सकती है; एक नया बम बनाऊं, नोबल प्राइज मिल सकती है। लेकिन एक सुंदर गीत लिखूं, कहीं कोई खबर न छपेगी। क्योंकि गीत की उपयोगिता क्या है? कोई भी पूछेगा, उपयोगिता क्या है आपके गीत की? इससे कितने आदमी मारे जा सकते हैं? इससे कितने लोगों को रोटी मिल सकती है? इससे कितने लोगों को कपड़ा मिलेगा? इसकी उपयोगिता बताइए। गीत की क्या उपयोगिता है? कोई भी उपयोगिता नहीं है। एक फूल की क्या उपयोगिता है? कोई उपयोगिता नहीं है। बेकार है।
हमारा जो उपयोगितावादी दृष्टिकोण है, अगर ठीक से समझें, तो वही मैटीरियलिज्म है। वह आदमी नहीं है नास्तिक, जो ईश्वर को नहीं मानता। वह आदमी नास्तिक है, जो केवल उपयोगिता को मानता है। और आस्तिक वह है, जो उपयोगिता पर ध्यान ही नहीं देता। उपयोगिता महत्वपूर्ण भी नहीं है। और जीवन में जितनी श्रेष्ठतर चीजें हैं, उतनी गैर-उपयोगी हैं।
गैलीलियो ने जब किताब लिखी अपनी विश्व की व्यवस्था की, तो उसने ईश्वर
का एक भी जगह उपयोग नहीं किया, शब्द का। हजारों पृष्ठ की किताब में ईश्वर शब्द का एक भी जगह उपयोग नहीं है। तो उसके मित्रों ने पूछा कि एकाध जगह तो ईश्वर शब्द का उपयोग कर लेते; इतने बड़े ग्रंथ में एक भी जगह ईश्वर का प्रयोग नहीं हुआ। तो गैलीलियो ने जो कहा है वह यह, उसने कहा कि मेरी परिकल्पना में ईश्वर शब्द की कोई भी उपयोगिता नहीं है; नो यूटिलिटी। यह जो मेरी हाइपोथीसिस है, इसमें ईश्वर शब्द की कोई उपयोगिता नहीं है। इसमें कोई सवाल ही नहीं है। ईश्वर बिल्कुल गैर-उपयोगी है। क्या फायदा? उससे क्या करवाऊं? ग्रेविटेशन चीजों को नीचे खींच लेती है। सब नियम उपयोगी अपना काम करते हैं। ईश्वर बिल्कुल गैर-उपयोगी हाइपोथीसिस, एक नॉन-यूटिलिटेरियन हाइपोथीसिस है। गैलीलियो ने कहा कि ईश्वर एक कविता है, इसकी यहां कोई जरूरत नहीं है।
उपयोगिता का ध्यान अगर ठीक हो, तो प्रेम की कोई उपयोगिता है? कोई नहीं
है उपयोगिता। क्या उपयोगिता है? आदमी के जीवन में प्रेम की क्या उपयोगिता है? थोड़ी अड़चन पैदा होती है; और तो कोई उपयोगिता नहीं है। थोड़ी परेशानी पैदा होती है। इसलिए जो बहुत होशियार हैं और उपयोगिता से जीते हैं, वे प्रेम वगैरह में कभी भी नहीं उतरते हैं। उस झंझट में वे नहीं पड़ते हैं। रुपए की उपयोगिता है; प्रेम की क्या उपयोगिता हो सकती है? एक मकान की उपयोगिता है; एक कविता में रहिएगा, सोइएगा, बैठिएगा, क्या करिएगा?
एक दृष्टिकोण है जीवन का जिसमें हर चीज एक कमोडिटी है, एक वस्तु है, जिसका उपयोग करना है। पत्नी एक उपयोगिता है। पति एक उपयोगिता है। मां एक

उपयोगिता है। पिता एक उपयोगिता है। बेटा एक उपयोगिता है। और ऐसा नहीं कि साधारण लोगों के साथ ऐसा हो; अगर लाओत्से हमारे शास्त्रों को देखे, तो बहुत हैरान हो जाए। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि बेटा होना ही चाहिए पैदा; नहीं तो अंत्येष्ठि कौन करेगा? अब बेटे की उपयोगिता यह है कि जब बाप मरे, तो वह उनकी खोपड़ी तोड़े मरघट पर। इसके लिए वे पैदा किए जा रहे हैं। इसलिए जिनके अपने पैदा नहीं होते, वे गोद लेंगे; क्योंकि बेटा एक उपयोगिता है, मरने के बाद सिर को तोड़ेगा कौन?
हद हो गई। यह चालाक लोगों की बुद्धि है। और फिर बेटे अगर जिंदा में ही खोपड़ी तोड़ दें, जरा जल्दी, तो इतने नाराज क्यों होते हैं? उनका काम ही यही है। कुछ जरा जल्दी कर जाते हैं, कुछ जरा देर से करते हैं। कोई वक्त पर करते हैं, कोई वक्त के पहले कर देते हैं। मगर यह उपयोगिता! किसी के जीवन का अपना कोई सहज मूल्य नहीं है। जीवन अपने आप में मूल्यवान नहीं है। किसी के लिए उपयोगी है।
इजिप्त में ममीज हैं सम्राटों की, फेरोह की। और उनकी पत्नियां, उनके नौकर, सब उनके साथ दफन कर दिए जाते थे; क्योंकि उनकी उपयोगिता यही थी, जब तक सम्राट था। हम हजारों साल तक न मालूम लाखों स्त्रियों को सती करवाए; क्योंकि स्त्री की उपयोगिता पति के लिए थी, और तो उसका कोई मूल्य ही नहीं है। था मूल्य तो इतना था। जब पति ही नहीं रहा, तो अब उसका क्या मूल्य है? स्त्री का अपना कोई मूल्य ही नहीं है। एक उपयोगिता है वह। एक साधन था पति का। जब पति ही समाप्त हो गया, साधन का क्या करिएगा? उसको दफना दो, पति के साथ ही उसकी हत्या करवा दो।
लेकिन अच्छे शब्दों में हम छिपा सकते हैं हत्या को। हम कहते हैं सती होना। और बड़े मजे की बात यह है कि जो पुरुष इस सब की चर्चा करते रहे, वे एक भी उनमें से सती या सता--जो भी हम कहें--वे कभी नहीं हुए। इतनी स्त्रियां मरती रहीं, एक पुरुष को न सूझा कि हम भी सती हो जाएं। उसका कारण है, पुरुष मालिक है। स्त्री की उपयोगिता पुरुष के लिए है। स्त्री साधन है। पुरुष हजार स्त्रियां खोज लेगा।
जीवन को इस ढंग से जो देखने की आदत है, वह है पदार्थवाद, वह है मैटीरियलिज्म।
प्रत्येक चीज का अपने में मूल्य है। और मूल्य किसी उपयोगिता के कारण नहीं है; होना ही मूल्यवान है। एक स्त्री है। वह अपनी वजह से मूल्यवान है। न तो किसी की मां होने के कारण, और न किसी की पत्नी होने के कारण, और न किसी की बेटी होने के कारण। अपनी वजह से मूल्यवान है। सहज मूल्यवान है। होना ही मूल्य है। कोई उपयोगिता नहीं है। और आपका जीवन भी होने की वजह से मूल्यवान है; किसी कारण से नहीं। आप क्या करेंगे, इसलिए ज्यादा उपयोगी नहीं हो जाएंगे। आपके कृत्यों का जोड़ आपका मूल्य नहीं है। आप क्या हैं, वह काफी है; आपने क्या किया, इससे कोई संबंध नहीं है।
जीवन को ऐसे उपयोगितावाद से मुक्त करने की जो धारणा है, वही धर्म है।
और जीवन को उपयोगिता से बांधने की जो दृष्टि है, वही जीवन को बाजार बनाने की है। वहां सब चीजें खरीदी और बेची जाती हैं। सब चीजें बिकती हैं, सब खरीदी जाती हैं। क्योंकि सब चीजों का उपयोग है, सब चीजों की कीमत है। इमर्सन ने कहीं कहा है कि चीजों का मूल्य तो हमें बिल्कुल पता नहीं, सिर्फ कीमत पता है। वी डोंट नो दि वैल्यू, वी ओनली नो दि प्राइस। कीमत का मतलब होता है, इतनी उपयोगी है, इसलिए कीमत है। मूल्य का अर्थ होता है कि है अपने में--एक विशिष्टता, एक खिलावट जीवन की, एक अस्तित्व के फूल का खिल जाना--वह उसका मूल्य है।
अगर हम बुद्ध की कीमत लगाने जाएं, तो आइंस्टीन से कम लगेगी--कीमत, प्राइस। अगर दोनों को बेचना हो, तो बुद्ध को कौन खरीदेगा? आइंस्टीन को कोई भी खरीदेगा। क्योंकि आइंस्टीन की उपयोगिता है, एटम बम बना सकता है। यह बुद्ध को और उपद्रव बांध लेंगे। बन भी जाए, तो उसको काम में लाने में बाधा डालेंगे। इनको कोई खरीदेगा नहीं। आइंस्टीन की कीमत है। बुद्ध को तो तभी खरीदा जा सकता है, जब लोग मूल्य को समझते हों, वैल्यू को; प्राइस को नहीं। तब तो बुद्ध की खिलावट, उनका खिल जाना मूल्य है कि एक खिला हुआ आदमी है। आइंस्टीन, तो आइंस्टीन एक साधारण आदमी है। उपयोगिता को हटा दें, तो

आइंस्टीन उतना ही साधारण है जितना कोई और। कोई और मूल्य नहीं है। वह क्या कर सकता है, उसमें मूल्य है। वह क्या है, इसमें मूल्य नहीं है। होने के मामले में तो दीन है; करने के मामले में वह कुछ कर सकता है। बुद्ध होने के मामले में बड़े समृद्ध हैं! करने के मामले में, करने का कोई सवाल ही नहीं है। वह न-करने में ठहर गए हैं।

लाओत्से कहता है, चूंकि निष्क्रियता परम स्थिति है, इसलिए करने का मूल्य कम करो और होने का मूल्य बढ़ाओ। जोर मत दो कि तुम क्या करते हो, जोर दो कि तुम क्या हो। इसकी फिक्र छोड़ो कि एक आदमी ने क्या-क्या किया; इसकी फिक्र करो कि एक आदमी क्या है। और उसका होना अपने आप में मूल्यवान है, किसी और कारण से नहीं।

अब बुद्ध को अगर हम कोई भी कारण से सोचें, तो मूल्य, कीमत के अर्थों में, हम कहां खोज पाएंगे? कहीं नहीं मिलेगा। लेकिन फिर भी ऐसा लगेगा कि हजार आइंस्टीन न हों और एक बुद्ध हों। क्यों ऐसा लगता है? इस लगने में क्या बात है? यह बुद्ध का होना इंट्रिंजिक वैल्यू है, आंतरिक मूल्य है। इसका बाजार में कोई मूल्य नहीं लग सकता।

ऐसी मजेदार घटना घटी। फरीउद्दीन अत्तार एक सूफी फकीर था। हमला हुआ और अत्तार को पकड़ लिया गया। तैमूर के लोगों ने अत्तार को बंद कर दिया। और जब अत्तार को वे बंद कर रहे थे हथकड़ियों में, तब राह से गुजरते एक आदमी ने पहचान लिया कि यह अत्तार है।

अत्तार बड़ा अदभुत आदमी था। अत्तार उसका नाम ही इसलिए पड़ गया था। एक तो इसलिए कि वह--सूफी फकीर ऐसा करते हैं कि अपने को छिपाने के लिए कुछ काम कर लेते हैं--तो वह इत्र बेचने का काम करता था। वह छिपाने के लिए, ताकि किसी को अकारण पता न चले कि वह क्या है। इतना ही जानें कि अत्तार है--इत्र बेचने वाला है। लेकिन जो उसे जानते थे, वे जानते थे कि वह इत्र है। वह सब फूल वगैरह के बाहर, आखिरी जो निचोड़ बच जाता है जीवन का, वही है।

वह आदमी पहचान गया कि यह तो फरीउद्दीन अत्तार है। तो उसने जाकर, जो लोग उसे कैद कर रहे थे, उनसे कहा कि मैं एक हजार दीनार, एक हजार सोने के सिक्के अभी देता हूं, इस आदमी को छोड़ दो। छोड़ने को वे तैयार हो गए। एक हजार स्वर्ण के सिक्के मिल रहे थे एक साधारण आदमी के।

अत्तार ने कहा, ठहरो! अगर तुम ठहरे, तो ज्यादा कीमत भी मिल सकती है। उन्होंने सोचा कि जब एक आदमी अचानक आकर एक हजार दे रहा है, ज्यादा देने वाले भी मिल सकते हैं। उस आदमी ने कहा कि मैं पांच हजार दे देता हूं, तुम छोड़ दो इस आदमी को। मैं दस हजार दे देता हूं...।

लेकिन जैसे वह कीमत बढ़ती गई, वैसे उन्होंने समझा कि यह आदमी कोई साधारण नहीं है।

अत्तार ने कहा कि जरा धैर्य रखना, अभी और बड़े खरीददार भी आएंगे। तब तो उन्होंने कहा कि तुम कुछ भी दो, हम छोड़ने वाले नहीं हैं। वह आदमी दस हजार दीनार की बात कह कर चला गया।

फिर एक और आदमी आया। अत्तार ने कहा कि यह आदमी जो आ रहा है, अगर यह कोई भी मूल्य दे, तुम स्वीकार कर लेना। वह आदमी आया। वह एक घसियारा था, घास का एक बंडल लिए जा रहा था। सैनिकों ने उसे बुलाया और कहा कि तुम इस आदमी को खरीदना चाहते हो? उसने देखा; उसने कहा कि अच्छा ठीक है, यह घास का एक गट्ठर तुम ले लो और दे दो।

अत्तार ने कहा कि बिल्कुल दे दो इस आदमी को; यह ठीक उपयोगिता समझ गया है मेरी।

उन सैनिकों ने तो सिर पीट लिया कि तू आदमी पागल तो नहीं है!

अत्तार ने कहा कि वह आदमी मेरा मूल्य जानता था और फिर भी कीमत की बात कर रहा था; इसलिए मैंने रोका। ही निउ माई वैल्यू एंड वा.ज टाकिंग इन टर्म्स ऑफ प्राइस; इसलिए मैंने तुम्हें रोका। और यह आदमी, इसको मूल्य का कोई पता ही नहीं है। यह मुझे एक कमोडिटी समझता है। इसने मेरी तरफ देखा कि हां, घास वगैरह काटने के थोड़े-बहुत काम पड़ सकता है। यह मेरी उपयोगिता जानता है; वह आदमी मेरी उपयोगिता नहीं, उपयोगिता के पार जो मैं हूं, वह जानता था। इसलिए मैंने रोका। उस आदमी से दाम लेना ठीक नहीं। वह मेरी बहुत कम कीमत आंक रहा

था। यह आदमी बिल्कुल ठीक कीमत आंक रहा है। ठीक प्राइस यह आदमी आंक रहा है। यही मेरी कीमत है। उपयोग तो मेरा कोई भी नहीं है। घास भी काट सकूंगा कि नहीं काट सकूंगा, यह इसका अनुमान है। लेकिन वह आदमी मेरी गलत कीमत आंक रहा था, क्योंकि उसे मेरे मूल्य का पता था। वह कितनी ही कीमत तुमको कहता, मैं इनकार करता जाता कि इससे राजी मत होना।
जीवन का एक तो मूल्य है और एक कीमत है। लाओत्से कहता है, मूल्य तब प्रकट होगा, जब कीमतों का बाजार, शोरगुल बंद हो जाए। छोड़ो उपयोगिता, और चोर और लुटेरे अपने आप लुप्त हो जाएंगे।
क्योंकि हमने जिंदगी को एक बाजार बना दिया, एक दुकानदारी बना दी। उसमें सब चीजों की कीमत लगी हुई है। हर आदमी के माथे पर लिखा है, कितना दाम है, खरीद लो। किसी का थोड़ा कम होगा, किसी का थोड़ा ज्यादा होगा। लेकिन हर आदमी बिकाऊ है। हर चीज बिक रही है। यहां चोर और लुटेरे पैदा नहीं होंगे, तो क्या होगा! जहां सब चीजें बिकती हैं, वहां चोर और लुटेरे पैदा नहीं होंगे, तो क्या होगा!
चोर और लुटेरे का मतलब क्या है? चोर और लुटेरे का मतलब यह है कि उपयोगिता तो वे भी मानते हैं चीज की, सिर्फ उनके पास चुकाने को दाम नहीं हैं। तो वे बिना दाम के चीजें ले जाने की कोशिश करते हैं। और जहां सब चीजों के दाम हैं, और कुछ लोगों के पास दाम हैं और कुछ लोगों के पास दाम नहीं हैं, वहां कुछ लोग चोरी भी करेंगे, डाका भी डालेंगे।
लाओत्से कहता है कि बस मूल्य रह जाने दो, दाम हटा दो; फिर चोरी नहीं हो सकेगी। फिर चोरी नहीं हो सकेगी। चीजों का मूल्य रह जाने दो, दाम हटा दो। इसे हम ऐसा समझें। अगर चीजों का मूल्य रह जाए और दाम हट जाएं, तो हीरे
का कोई दाम होगा? मूल्य तो हीरे में बिल्कुल नहीं है। वैल्यू क्या है हीरे की? किसी भी पत्थर की जो वैल्यू है, वह हीरे की वैल्यू है। दाम बहुत है। हीरे की क्या है मूल्यवत्ता? लेकिन दाम बाजार में बहुत है। हीरे की चोरी होगी। जितनी चोरी हीरे की होगी, उतनी किसी चीज की न होगी। हीरा जिसके पास है, वह खतरे में है। चोरी होगी, हत्या होगी। क्यों आखिर?
हीरे में दाम आदमी की ईजाद है। हीरे में क्या है मूल्य? कोई भी मूल्य नहीं है। और अगर जंगल में आप पड़े हों और भूखे पड़े हों, और एक रोटी कोई दे दे, तो आप एक हीरा दे दें। और प्यास लगी हो और मरुस्थल में पड़े हों, और एक गिलास पानी कोई दे दे, तो आप हीरा दे दें। मूल्य तो बिल्कुल नहीं है। कीमत भी आदमी की बनाई हुई है, ईजाद की हुई है। और हमने हर चीज पर कीमत लगा दी है। मूल्यहीन मूल्यवान मालूम होता है। मूल्यवान मूल्यहीन मालूम होता है। हमारी कीमत की वजह से।
लाओत्से कहता है, हटाओ उपयोगिता, छोड़ो चालाकी; और चोर और लुटेरे अपने
आप विदा हो जाएंगे।
अगर जीवन सहज हो और अगर जीवन मूल्य पर निर्भर हो, तो लाओत्से बिल्कुल
ही ठीक कहता है, चोर और लुटेरे नहीं रह जाएंगे। चोर और लुटेरे पैदा ही इसलिए होते हैं कि हमने सारे जीवन को उपयोगिता की भाषा में बांध दिया। और जब जीवन एक उपयोगिता है, तो चोरी हो सकती है। मूल्य है, तो चोरी नहीं हो सकती। चोरी उन्हीं चीजों की हो सकती है, जो बाजार में हैं। और सारी जिंदगी बाजार में है। पांच हजार, दस हजार साल की निरंतर चेष्टा का परिणाम यह हुआ कि हर चीज बाजार में है। बाजार के बाहर कुछ भी नहीं है। और अगर बाजार के बाहर कुछ भी नहीं है, तो हमें स्वभाव का, सत्य का, आत्मा का कोई भी पता नहीं चल सकता है।
लाओत्से कहता है, गणित को हटा दो, कीमत को हटा दो, होशियारी को हटा दो, ज्ञान को हटा दो। यह न्याय, यह मानवता, यह नीति, यह सिद्धांत--ये हटा दो। और सहज हो जाओ। और जब वह कहता है कि नो दि सिंपल सेल्फ, तो वह यह नहीं कहता कि कोई तुम्हारे भीतर ब्रह्म विराजमान है, उसको जानो। वह कहता है, इन बातों में मत पड़ो। जो भी सहज तुम्हारे भीतर चेतना की छोटी सी किरण है--जो भी, उसे बड़े नाम मत दो--उसकी तलाश करो, उसको खोज लो। और जिस दिन तुम अपने सहज झरने को पा जाओ जीवन के, तब उसके संगीत में ही लीन रहो। जिस दिन तुम अपने झरने को पा जाओ, तब उसी में बहो। जिस दिन तुम अपने भीतर का द्वार खोल लो, तब वही तुम्हारा मंदिर है।

यह जो भीतर छोटा सा छिपा हुआ राज है, यह जो सीक्रेट है, जिस दिन तुम्हारे हाथ में आ जाए, उस दिन तुम सम्राट की गरिमा को उपलब्ध हो जाते हो। और यह तभी उपलब्ध हो सकेगा, जब यह जो जाल तुमने अपने चारों तरफ खड़ा किया है, इसे तुम तोड़ने में सफल हो जाओ।
यह जाल बड़ा है। और इस जाल को हम रोज बढ़ाए चले जाते हैं, इसे बड़ा करते चले जाते हैं। धीरे-धीरे हमारा जो सहज जीवन का स्वर है, वह बिल्कुल खो जाता है। उसका हमें कोई पता ही नहीं रह जाता है।
आज इतना ही। फिर हम कल बात करेंगे। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग दो
बयांलीसवां प्रवचन

आध्यात्मिक वासना का त्याग व सरल स्व का उदघाटन

Chapter 19 : Sutra 2

Realize Your Simple Self

As these touch the externals and are inadequate;
The people have need of what they can depend upon; Reveal thy simple self,
Embrace thy original nature,
Check thy selfishness,
Curtail thy desires.

अध्याय 19 : सूत्र 2

स्वयं को जानो

लेकिन ये तीनों ही बाह्य हैं और अपर्याप्त हैं;
लोगों को संबल के लिए कुछ और भी चाहिएः
(इसके लिए) तुम अपने सरल स्व का उदघाटन करो,
अपने मूल स्वभाव का आलिंगन करो,
अपनी स्वार्थपरता त्यागो,
अपनी वासनाओं को क्षीण करो।

बुद्धिमत्ता और ज्ञान, मानवता और न्याय, चालाकी और उपयोगिता, इन सब को छोड़ देना नकारात्मक है। इनका छोड़ना जरूरी है, लेकिन काफी नहीं; आवश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं। विधायक को भी प्रकट करना होगा, पाजिटिव को भी प्रकट करना होगा।
जैसे कोई बीमारियों को छोड़ दे, इतना स्वस्थ होने के लिए काफी नहीं है; जरूरी है। बीमारियां न हों, तो स्वस्थ होना आसान है। बीमारियां हों, तो स्वस्थ होना मुश्किल है। लेकिन बीमारियों का न होना ही स्वास्थ्य नहीं है। स्वास्थ्य की अपनी विधायक स्थिति है। जैसे बीमारी में एक पीड़ा है, वैसे स्वास्थ्य में एक आनंद है। तो जब बीमारियां न हों, तो आप दुख के तो बाहर हो जाते हैं, लेकिन आनंद में प्रविष्ट नहीं हो जाते। और दुख के बाहर हो जाना आनंद के साथ एक हो जाना नहीं है। ये दोनों पर्यायवाची नहीं हैं। आनंद एक आंतरिक कल्याण और मंगल और एक आंतरिक प्रफुल्लता का, अकारण प्रफुल्लता का अनावरण है।
लाओत्से ने जिन तीन बातों को कहा, वे बीमारियों की तरह हैं। सब बीमारियां बाहर से आती हैं, और स्वास्थ्य भीतर से। बीमारियां आक्रमण हैं और स्वास्थ्य स्वभाव है। हमारे शब्द स्वास्थ्य का भी मतलब यही होता है। स्वास्थ्य का अर्थ होता हैः स्वयं में स्थित हो जाना। तंदुरुस्ती में वह बात नहीं है और न अंग्रेजी के हेल्थ में वह बात है। स्वास्थ्य एक आध्यात्मिक शब्द भी है। उसका अर्थ है स्वयं में ठहर जाना।
इसे थोड़ा हम समझ लें, तो इस सूत्र में प्रवेश बहुत आसान हो जाए। जब बीमारी होती है, तो आप अपने से बाहर चले जाते हैं। पैर में कांटा गड़ता है, तो सारी चेतना पैर के कांटे के पास घूमने लगती है। सिर में दर्द होता है, तो चेतना सिर के पास घूमने लगती है। शरीर में पीड़ा होती है, तो चेतना शरीर के आस-पास मंडराती है। जहां दुख होता है, जहां पीड़ा होती है, वहां चेतना को तत्काल दौड़ कर जाना पड़ता है।

इसलिए बीमार आदमी को समझना बहुत मुश्किल है कि वह शरीर नहीं है। बीमार आदमी को यह समझना बहुत मुश्किल है कि वह आत्मा है, शरीर नहीं। और अगर आप भी न समझ पाते हों, तो जानना कि आप बीमार हैं। इसलिए जो जितना बीमार होता है, उतना कम आत्मवादी रह जाता है, शरीरवादी हो जाता है। क्योंकि शरीर का ही पता चलता है रुग्णता में, आत्मा का कोई पता नहीं चलता। रुग्णता में सारा ध्यान ही रोग पर अटक जाता है, पीड़ा पर अटक जाता है। और रोगी मन की एक ही इच्छा होती है कि किसी तरह पीड़ा से छुटकारा हो जाए। आनंद मिले, ऐसी आकांक्षा नहीं होती; पीड़ा से छुटकारा हो जाए, इतना भी बहुत मालूम पड़ता है। लेकिन पीड़ा से छूट जाना आनंदित हो जाना नहीं है। जैसे पीड़ा बाहर ले जाती है, ऐसे आनंद भीतर ले जाता है। एक आदमी अपने मकान के बाहर न जाए, रास्तों पर न भटके, दूर पृथ्वी पर न घूमे; लेकिन इससे आप यह मत समझ लेना कि वह भीतर प्रविष्ट हो गया। वह अपने द्वार पर भी खड़ा रह जा सकता है। जो आदमी द्वार पर खड़ा है, वह बाहर भी नहीं है, वह भीतर भी नहीं है। जो आदमी दुख में नहीं है, वह द्वार पर खड़ा हो जाता है। दुख में भी नहीं है, आनंद में भी नहीं है। अगर भीतर जाए, तो आनंद में प्रवेश होगा; अगर बाहर जाए, तो दुख में प्रवेश होगा। दोनों के बीच में खड़ा हो जाए, तो सिर्फ उदास हो जाएगा। न वहां दुख का कोई खिंचाव रहेगा, न वहां आनंद का कोई नृत्य रहेगा; सिर्फ एक उदास तटस्थता पैदा हो जाएगी।
लाओत्से कहता है, अगर ये तीन बीमारियां छोड़ दी जाएं, जो कि जरूरी हैं छोड़ देनी, तो फिर भीतर प्रवेश हो सकता है। लेकिन इन तीन को छोड़ कर कोई यह न समझे कि मंजिल आ गई। यह सिर्फ नकार हुआ, निषेध हुआ। जो गलत था, वह हमने छोड़ा। लेकिन अभी सही को नहीं पा लिया। गलत को छोड़ देना ही सही को पा लेना नहीं है। सही का पा लेना अलग ही आयाम है, एक अलग ही यात्रा है। लेकिन जो गलत को पकड़े हैं, वे सही को न पा सकेंगे; हालांकि जिन्होंने गलत को छोड़ दिया, उन्होंने सही को पा लिया, ऐसा भी समझने का कोई कारण नहीं है। गलत को पकड़ा हुआ आदमी तो सही पाएगा ही नहीं; वह तो छोड़ना जरूरी है। लेकिन गलत को छोड़ कर ही कोई अगर ठहर जाए, तो भी सही को नहीं पा सकेगा।
इस सूत्र में लाओत्से जीवन की विधायकता, पाजिटिविटी, वह जो आंतरिक स्वास्थ्य है, उसे प्रकट करने की बात करता है।
"लेकिन ये तीनों ही बाह्य और अपर्याप्त हैं; लोगों को संबल के लिए भी कुछ चाहिए।"
असल में, इन तीनों को लोग पकड़ते ही इसलिए हैं कि लोगों को संबल चाहिए, सहारा चाहिए। और जब हम उनके संबल छीनते हैं, तो उन्हें कठिनाई होती है। क्योंकि बिना सहारे के वे कैसे रहेंगे? एक आदमी ज्ञान इकट्ठा करने के लिए जी रहा है। ज्ञान इकट्ठा होता जाता है; और वह आदमी सोचता है, मैं बढ़ रहा हूं, विकसित हो रहा हूं, कुछ पा रहा हूं। यह उसका संबल है। एक आदमी मानवता, नीति, न्याय, धर्म के लिए जीता है, सेवा करता है; वह उसका संबल है। एक आदमी उपयोगिता के लिए, धन के लिए, यश के लिए, पद के लिए जीता रहता है; वह उसका संबल है। ये सारे लोग एक सहारे को लेकर जी रहे हैं।
और लाओत्से कहता है, तीनों को छोड़ दो। बेसहारा होने की बड़ी कठिनाई है। फिर हमें ऐसा लगेगा, फिर जीएं कैसे? फिर करें क्या? गलत छोड़ दिया, हाथ खाली हो जाते हैं। तो लाओत्से कहता है, इन खाली हाथों को किसी संबल की जरूरत है। लेकिन अगर वह संबल भी बाहर का हुआ, तो इन तीन जैसा ही होगा। वह संबल आंतरिक होना चाहिए। वह अपना ही होना चाहिए, निज का होना चाहिए।
इसलिए कहता है, "इसके लिए तुम अपने सरल स्व को उदघाटित करो, अपने मूल स्वभाव का आलिंगन करो, अपनी स्वार्थपरता त्यागो, अपनी वासनाओं को क्षीण करो।"
इनमें से एक-एक हिस्से को हम समझेंः "अपने सरल स्व को उदघाटित करो।"
जब बाहर से हाथ खाली हो गए हों और चेतना के लिए बाहर कोई विषय, कोई आब्जेक्ट न रह गया हो, तो चेतना की पूरी धारा स्व पर गिराई जा सकती है। जब आंखें बाहर न देखती हों, तो आंखों की देखने की पूरी क्षमता भीतर घुमाई जा सकती है। और जब प्राण बाहर कुछ पाने को आतुर न हों, तो प्राणों की सारी गत्यात्मकता, उनकी सारी ऊर्जा भीतर की यात्रा पर संलग्न की जा सकती है।

स्व के उदघाटन का अर्थ हैः तुम्हारी सारी इंद्रियां जो अब तक बाहर की यात्रा पर थीं, तुम्हारा सारा मन जो अब तक किसी दूर की चीज को पाने के लिए लालायित था, तुम्हारा ध्यान जो अब तक स्वयं को छोड़ कर और सब चीजों के पीछे भागता था, उसे अब अपने पर ही नियोजित करो। इसे हम ऐसा समझें। अगर ये तीन चीजें छूट गई हों, तो ही इसे समझना और करना संभव हो पाएगा।
आंख बंद करके आप बैठते हैं, लेकिन चीजें तो बाहर की ही दिखाई पड़ती रहती हैं। आंख भी बंद है, लेकिन दिखता तो संसार ही है। आंख बंद है, तो भी भीतर तो कुछ नहीं दिखता। बाहर की ही छबियां, बाहर के ही चित्र दिखाई पड़ते रहते हैं। कान भी बंद कर लें, तो भी आवाज बाहर की ही सुनाई पड़ती है। ध्यान को बाहर से खींच लें, तो भी ध्यान बाहर ही भागता रहता है। वह तीन चीजों के कारण! वे जो तीन हमारे बाहर के संबल हैं, वे अभी टूटे नहीं हैं। बार-बार निरंतर अभ्यास के कारण, सतत जन्मों-जन्मों की आदत के कारण मन वहीं-वहीं भाग जाता है।
लाओत्से कहता है, ये तीन टूट जाएं, तो फिर सारी इंद्रियों को भीतर प्रवेश दिलाया जा सकता है।
आंख बंद करके बैठें और एक ही बात ख्याल रखें, बाहर की कोई चीज नहीं देखेंगे। आएंगे चित्र बाहर के, आदत के कारण, तो जानते रहें कि ये चित्र बाहर के हैं और मैं देखने को राजी नहीं। मेरी तैयारी देखने की नहीं है। मेरा कोई रस नहीं है, मेरा कोई आकर्षण नहीं है। अगर आप इतना कर सकें कि भीतर पहले रस का संबंध तोड़ लें बाहर के चित्रों से, तो शीघ्र ही आप पाएंगे, बाहर के चित्र आने कम हो गए। वे आते ही इसलिए हैं कि आप बुलाते हैं।
मन में कोई भी मेहमान बिना बुलाया हुआ नहीं है। मन में कोई भी अतिथि ऐसे ही नहीं आ गया है, जबर्दस्ती नहीं आ गया है। आपका निमंत्रण है। हो सकता है, निमंत्रण देकर आप भी भूल गए हों। हो सकता है, निमंत्रण देकर आप बदल गए हों। हो सकता है, आपको ख्याल भी न हो कि कब किस अचेतन क्षण में निमंत्रण दिया था। लेकिन आपके मन में जो भी आता है, वह आपका बुलाया हुआ है। और आपके मन में एक भी घटना ऐसी नहीं घटती, जिसके लिए आपके अतिरिक्त कोई और जिम्मेवार हो।
अगर रात सपने में आप हत्याएं करते हैं, बलात्कार करते हैं, तो वे आपने करने चाहे हैं इसीलिए! अपने से भी छिपा लिया होगा, खुद को भी धोखा दे दिया होगा। और सुबह उठ कर आप कहते हैं, सिर्फ सपने थे। सपनों का क्या? लेकिन सपने आपके हैं। और सपने अकारण नहीं हैं। और सपने बुलाए हुए हैं; सपने निर्मित हैं; आपने ही सिरजे हैं। इसलिए सपनों का क्या, ऐसा कभी मत कहना। सपने आपकी झलक हैं, आपकी खबर हैं, आपके मन की पर्तों की खबर हैं। यह मन है आपके पास। दिन में आप इसे झुठला देते हैं, रात यह मन फिर काम करने लगता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सपने न आएं, तो आप पागल हो जाएंगे। और ठीक कहते हैं। क्योंकि सपने में, दिन भर में जो-जो आप छिपा लेते हैं, दबा लेते हैं, रात उसका निकास हो जाता है, रेचन, कैथार्सिस हो जाती है। पहले हम सोचते थे कि अगर एक आदमी को ज्यादा दिन तक न सोने दिया जाए, तो वह पागल हो जाएगा। लेकिन अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, असली कारण नींद की कमी के कारण आदमी पागल नहीं होता, नींद न आए तो सपने नहीं देख पाता, इसलिए पागल हो जाता है। और उन्होंने बहुत प्रयोग किए हैं और अब यह एक प्रमाणित सत्य है।
रात में आप कई दफे सपने देखते हैं। कोई बारहशृंखलाएं होती हैं सपनों
की रात में। आप बारह बार सपने में प्रवेश करते हैं। बीच-बीच में छोटे-छोटे समय में आप सपने के बाहर होते हैं और नींद में होते हैं। तो वैज्ञानिकों ने इस पर प्रयोग किए हैं सैकड़ों लोगों पर। क्योंकि अब बाहर से जाना जा सकता है कि कब आप सपना देखते हैं और कब आप सपना नहीं देखते; आपकी आंख की गति बता देती है। तो आपकी आंख की गति को नापने का यंत्र लगा रहता है। जब आप सपना देखते हैं, तो आपकी पुतली वैसे ही चलने लगती है जैसे फिल्म को देखते वक्त चलती है। क्योंकि सपना एक फिल्म है। आपकी पुतली की गति बता देती है कि आप देख रहे हैं सपना। जब फिल्म नहीं चलती, सपना नहीं होता, पुतली ठहर जाती है। तो पुतली की गति बता देती है कि कब आदमी सपना देख रहा है, कब सपना नहीं देख रहा है।

तो वैज्ञानिकों ने लोगों को सुला कर महीनों, वर्षों तक प्रयोग किए हैं। जब आदमी सपना देख रहा है, तब उसको रोक देना, जगा देना; जब भी रात में सपना देखे, तब उसे जगा देना। सात दिन में वह आदमी पागल होने के करीब पहुंचने लगता है। जब सपना न देखे, नींद ले रहा हो, तब जगाना सात दिन तक। कोई असर नहीं होता, बिल्कुल स्वस्थ रहता है; कोई फर्क नहीं पड़ता।
तो वैज्ञानिक कहते हैं कि असली कारण, नींद की कमी से कोई परेशान नहीं होता। परेशान होता है सपने न देख पाने से। क्योंकि दिन भर में जो कचरा आपने इकट्ठा किया है अचेतन में, वह अगर न निकल पाए, इकट्ठा होता चला जाए, तो वही आपकी विक्षिप्तता बन जाएगा।
सपने अकारण नहीं हैं। आपके हैं, आप ही हैं आपके सपनों में। तो अगर आप आंख बंद करते हैं और चित्र आने शुरू हो जाते हैं, तो आपका रस है उनमें, इसलिए आते हैं।
रस को तोड़ दें। पहला काम रस तोड़ने का करें। रस-भंग करना पहला काम है।
इस स्व उदघाटन के लिए, रस-भंग पहला काम है। चित्र आएं, देखें, रसहीन हो जाएं, निष्क्रिय हो जाएं, पैसिव हो जाएं। देखते रहें कि ठीक है। जैसे एक आदमी फिल्म देख रहा हो और अभी-अभी डाक्टर ने उसको आकर कहा हो कि तुम्हारी जांच से पता चला कि कैंसर की ही बीमारी तुम्हें है। अब भी वह फिल्म देखता रहेगा; लेकिन सब रस खो गया। अब भी चित्र की तस्वीर चलती रहेगी पर्दे पर और आंखें देखती रहेंगी; लेकिन भीतर सब खो गया। ऐसे ही जिस व्यक्ति को इन तीन चीजों से अपना तोड़ना हो जाएगा, उसका रस खो जाएगा। पुरानी आदत से चित्र चलेंगे, लेकिन रस नहीं होगा।
विरस हो जाएं चित्रों में। और जैसे ही यह विरसता बढ़ेगी, चित्र कम होते जाएंगे, बीच में गैप और अंतराल आने लगेंगे। और जब अंतराल आएगा, तब आप अचानक पाएंगे कि आपका ध्यान अपने पर पड़ रहा है, आपकी ज्योति स्वयं के ऊपर पड़ रही है, आपका दीया आपको उदघाटित कर रहा है। यह दीया वही है जिसने दूसरों को उदघाटित किया था अब तक। जब दूसरे मौजूद नहीं होते, तो दीए की ज्योति स्वयं पर पड़नी शुरू हो जाती है।
कान बंद करके बैठ जाएं, आवाजें बाहर की ही सुनाई पड़ेंगी, मित्रों से हुई बातचीत के टुकड़े कानों में तैर जाएंगे, कोई गीत की कड़ी गूंज उठेगी। विरस होकर सुनते रहें, रस न लें। कड़ी कान में गूंजे, लेकिन आपके भीतर अनुगूंज न पैदा हो, आप उसे गुनगुनाने न लगें। कान में ही गूंजे, आप न गुनगुनाएं, आप बेरस होकर सुनते रहें। थोड़ी देर में कान शांत हो जाएंगे, थोड़े दिन में कान शांत हो जाएंगे। जिस दिन कान बिल्कुल शांत होंगे, बाहर की कोई आवाज न होगी, उस दिन भीतर का सन्नाटा पहली दफा कानों में सुनाई पड़ने लगेगा।
प्रत्येक इंद्रिय को भीतर की तरफ मोड़ा जा सकता है। सुगंध! भीतर की भी
एक सुगंध है, उसका हमें कोई पता नहीं। शायद वही असली सुगंध है। लेकिन बाहर की सुगंधें हमारे नासापुटों को भर देती हैं। फिर हमें याद ही नहीं रहता कि कोई आत्मा की भी सुगंध है, कोई सुवास भीतर की भी है। सारी इंद्रियों का अनुभव भीतर हो सकता है। क्योंकि--इंद्रियों को ठीक से समझ लें--इंद्रियां दोहरे रास्ते हैं, डबल-वे ट्रैफिक हैं। इंद्रिय आपसे भी जुड़ी है भीतर और बाहर संसार से भी जुड़ी है। इसीलिए तो संसार की खबर आप तक लाती है। आपसे न जुड़ी हो, तो संसार की खबर आप तक नहीं आ सकती। लेकिन हम इंद्रियों का उपयोग वन-वे ट्रैफिक की तरह कर रहे हैं। हम सिर्फ संसार की ही खबरें ले रहे हैं। हमने उनसे भीतर की कभी कोई खबर नहीं ली।
लाओत्से कहता है, सहज स्व का उदघाटन करें।
जैसे प्रकृति का उदघाटन हुआ है, जैसे बाहर आकाश दिखाई पड़ा है, चांद-तारे दिखाई पड़े हैं, फूल खिले हैं, बाहर चेहरे दिखाई पड़े हैं, यह विराट विस्तार बाहर का अनुभव हुआ है; ठीक ऐसा ही विराट गहन विस्तार भीतर भी है। ध्यान को रूपांतरित करना पड़े। यह जो बाहर गया ध्यान है, इसे भीतर बुला लेना पड़े--अपने घर की ओर वापसी। उस वापसी यात्रा का जो पड़ाव है आखिरी, वहां स्वयं का बोध, स्वयं का ज्ञान, उदघाटन--जो भी हम कहना चाहें, कहें।
"इसके लिए तुम अपने सहज स्व का उदघाटन करो।"

सहज लाओत्से छोड़ता नहीं। लाओत्से की सहज पर वैसी ही पकड़ है, जैसी कबीर की। कबीर कहते हैंः साधो, सहज समाधि भली। कबीर के सारे गीतों में सहज की वही पकड़ है, जो लाओत्से की सहज पर है। इस सहज शब्द को भी हम ध्यान में ले लें।
स्व की कोई धारणा अगर बना कर कोई भीतर जाए, तो वह सहज स्व न होगा। समझें, मैं आपके पास आऊं मिलने और आपके संबंध में कोई धारणा पहले से बना कर आऊं, तय कर लूं कि भले आदमी हैं, साधु हैं, सज्जन हैं, ऐसी कोई धारणा लेकर आऊं। तो आपको मैं अपनी धारणा की ओट से देखूंगा। और जो भी मुझे आप दिखाई पड़ेंगे, वह आपका सहज रूप न होगा। उसमें मेरी धारणा मिश्रित हो जाएगी। हो सकता है, आप मुझे बहुत बड़े साधु मालूम पड़ें। वैसे आप हों न, सिर्फ मेरी धारणा की ही अतिशयोक्ति हो। क्योंकि जब मैं तय करके आता हूं कि आप साधु हैं, तो मैं आपमें वही देखता हूं, जो मेरी धारणा को सिद्ध करे। मेरा चुनाव शुरू हो जाता है। आपमें जो गलत है, वह फिर मुझे दिखाई नहीं पड़ेगा। आपमें जो ठीक है, वह दिखाई पड़ेगा। और ठीक को मैं इकट्ठा करता जाऊंगा। और मेरी धारणा मजबूत होगी, फैलेगी, फूल जाएगी। मेरे भीतर आप एक बड़े साधु की तरह प्रकट होंगे। वह आपकी सहजता हो या न हो, यह दूसरी बात है।
मैं पहले से ही तय करके आता हूं कि आप बुरे आदमी हैं, मैं आप में से बुरे को चुन लूंगा। जब हम धारणा से देखते हैं, तो हम चुनाव करते हैं। सत्य फिर हमें दिखाई नहीं पड़ता। फिर सत्य में से हम चुन लेते हैं, जो हमारे अनुकूल हो। अगर बुद्ध के संबंध में भी कोई आपसे कह दे कि वे आदमी बुरे हैं और आपकी धारणा मजबूत हो जाए, फिर आप बुद्ध के पास जाएं, आपको बुद्ध का कोई पता नहीं चलेगा। आप अपने ही बुरे आदमी को सिद्ध करके वापस लौट आएंगे। मनुष्य की बड़ी से बड़ी कठिनाई यही है कि वह जो मान लेता है, वह सिद्ध भी हो जाता है। वह जो विश्वास कर लेता है, वह तथ्य भी बन जाता है। हमारे विश्वास ही हमें सत्य की तरह प्रतीत होने लगते हैं। और हम सब धारणाएं बना कर चलते हैं। हम अपने संबंध में भी धारणा बना कर चलते हैं।
लाओत्से या कबीर या सहज की जिनकी धारणा है, वे सब कहते हैं कि सहज स्व
का उदघाटन का अर्थ है कि तुम इस भीतर के सत्य के संबंध में कोई धारणा बना कर मत जाना। नहीं तो उसी धारणा का तुम अनुभव कर लोगे। एक आदमी सोच कर जाता है कि वहां ऐसा होगा, ऐसा होगा, ऐसा होगा। ऐसा मान कर जाता है। फिर वैसा होने लगेगा। वह होना सत्य नहीं है। वह उसकी अपनी ही धारणा का खेल है। वह उसके अपने मन का ही प्रपंच है। वह उसकी ही लीला, उसका ही विस्तार है।
और हम सभी लोग आत्मा के संबंध में धारणा बना कर बैठे हुए हैं। कोई आदमी मान कर बैठा हुआ है कि आत्मा का ऐसा रूप होगा; कोई मान कर बैठा है, ऐसा रंग होगा; कोई मान कर बैठा है, ऐसा अनुभव होगा; कोई मान कर बैठा है, ऐसी प्रतीति होगी। उन मान्यताओं को लेकर अगर आप अपने भीतर गए, तो आपको जो प्रतीति होगी, वह आत्मा की नहीं है।
इसलिए लाओत्से कहता है, इस स्व के संबंध में कोई धारणा मत बनाना, कोई कंसेप्शन लेकर मत जाना, खाली जाना। खाली आंख लेकर जाना। आंख पर कोई चश्मा लगा कर मत जाना। अन्यथा आत्मा में वही रंग दिखाई पड़ने लगेगा, जो चश्मे का रंग है।
इसीलिए तो दुनिया में इतने धर्मों के लोग और इतने अलग-अलग तरह के अनुभव को उपलब्ध हो जाते हैं। वे अनुभव वास्तविक नहीं हैं। उनकी आंखों के रंग हैं, वे ही रंग वे देख लेते हैं अपने भीतर भी। और भीतर की एक कठिनाई है कि वहां आप अकेले ही जा सकते हैं। इसलिए कोई के साथ आप चेक नहीं कर सकते, किसी के साथ आप तुलना नहीं कर सकते। और किसी से आप पूछ नहीं सकते कि यह सही है या गलत है। अगर आप बाजार में जाएं और कोई चीज आपको पीली दिखाई पड़ती हो और किसी को पीली न दिखाई पड़ती हो, तो आपको शक हो सकता है कि शायद आपको पीलिया हो गया हो। लेकिन भीतर की दुनिया में आप अकेले हैं; वहां धारणा बड़ी खतरनाक है। क्योंकि दूसरे से कोई तुलना नहीं हो सकती। वहां दूसरा कुछ भी नहीं कह सकता कि आपको क्या दिखाई पड़ता है और क्या दिखाई नहीं पड़ता। वहां आप निपट अकेले हैं।

उस निपट अकेलेपन के कारण रत्ती-रत्ती धारणा को छोड़ कर ही भीतर जाना जरूरी है। नहीं तो वहां फिर भ्रांति को सुधारने का कोई भी उपाय नहीं है। बाहर के जगत में तो हम दूसरों से भी तौल कर सकते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को लेकर शराबघर में गया है। दोनों शराब पीते हैं और मुल्ला ज्ञान भी देता जाता है। अपने बेटे से कहता है कि हमेशा रुक जाना चाहिए शराब पीने से। सीमा तुझे बता देता हूं। इस सीमा के आगे कभी मत बढ़ना। देख, उस टेबल पर दो आदमी बैठे हुए हैं। जब वे चार दिखाई पड़ने लगें, तब रुक जाना चाहिए। उसके बेटे ने टेबल की तरफ देखा और उसने कहा, वहां एक ही बैठा हुआ है!
नसरुद्दीन आगे खुद ही जा चुके हैं, एक उन्हें दो दिखाई पड़ने लगा है।
और वे बेटे को समझा रहे हैं कि जब दो चार दिखाई पड़ने लगें।
लेकिन यहां उपाय है कि बेटा देख सका कि एक ही आदमी है वहां। बाहर के जगत में उपाय है कि हम तौल सकें, इसलिए विज्ञान नियम निर्धारित कर पाता है। धर्म नियम निर्धारित नहीं कर पाता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अकेला प्रवेश करता है। और ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं इस पृथ्वी पर, जो धारणाशून्य होकर प्रवेश करते हैं। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई लाओत्से, कभी मुश्किल से कोई आदमी धारणाशून्य होकर प्रवेश करता है। नहीं तो हिंदू की तरह ही आप भीतर चले जाते हैं, मुसलमान की तरह भीतर चले जाते हैं, ईसाई की तरह भीतर चले जाते हैं। आप धारणाओं का सारा बोझ लेकर भीतर चले जाते हैं। सारी शिक्षाएं और सारा दृष्टिकोण साथ लेकर चले जाते हैं। फिर आप भीतर वही देख लेते हैं, जो आपकी दृष्टि ने मान रखा है। भीतर भ्रम के बड़े उपाय हैं; क्योंकि दूसरा वहां कोई भी नहीं है।
इसलिए लाओत्से जोर देकर बार-बार कहता हैः सहज स्व। सहज से उसका मतलब हैः धारणारहित देखा गया, धारणाशून्य देखा गया। लाओत्से तो कहेगा, तुम यह भी मान कर भीतर मत जाना कि वहां आत्मा है। इसको भी मान कर मत जाना। क्योंकि यह मानना भी एक धारणा है।
बुद्ध से कोई पूछता है आकर कि आत्मा है या नहीं? तो बुद्ध कहते हैं, तुम जाओ भीतर और जानो। अगर मैं कहूं नहीं है, तो भी गलत होगा; अगर मैं कहूं है, तो भी गलत होगा। उस आदमी ने कहा, दोनों कैसे गलत हो सकते हैं? दो में से एक गलत हो सकता है। दोनों कैसे गलत हो सकते हैं? बुद्ध ने कहा, दोनों ही गलत होंगे। क्योंकि दोनों ही हालत में मैं तुम्हें एक धारणा दे दूंगा अनुभव के पहले, एक दृष्टि दे दूंगा। अगर तुम मान कर भीतर गए कि आत्मा है, और आत्मा न भी हो, तो तुम अनुभव कर लोगे। और अगर तुम मान कर ही चले कि आत्मा नहीं है, तो आत्मा हो भी, तो तुम्हें उसकी कोई खबर न मिलेगी।
आदमी अपनी ही धारणाओं में बंध जाता है; धारणाओं के कैप्सूल में बिल्कुल बंद हो जाता है। फिर बाहर निकलने का उपाय नहीं रह जाता। बड़े से बड़ा कारागृह धारणाओं का कारागृह है। तो लाओत्से तो कहेगा, बुद्ध कहेंगे कि तुम यह भी मत मानो कि आत्मा है। तुम मानो ही मत कुछ। तुम सिर्फ भीतर जाओ; जो हो, उसे जान लेना; जो मिले, उसे देख लेना। उस अपरिचित को तुम पहले से परिचित मत बनाओ। और उस अज्ञात को तुम ज्ञान के आवरण मत दो। और जो अनजाना है, उसे अनजाना ही रहने दो। इसके पहले कि तुम जानो, उसके संबंध में कुछ भी जानना उचित नहीं है। सहज स्व का यह अर्थ है।
इसलिए बुद्ध ने ईश्वर, आत्मा, इनकी बात ही नहीं की। बहुत लोगों को बुद्ध नास्तिक मालूम पड़े। स्वाभाविक था मालूम पड़ना। लगा कि यह आदमी महा नास्तिक है, क्योंकि आत्मा तक को नहीं मानता। ईश्वर को न माने, तब तक भी चल सकता है, कम से कम आत्मा को तो माने। यह आदमी आत्मा तक को नहीं मानता। बुद्ध कहते थे, मैं सिर्फ शून्य को मानता हूं।
बड़े मजे की बात है, शून्य की आप कोई धारणा नहीं बना सकते। या कि बना सकते हैं? अगर आप शून्य की धारणा बना सकते हैं, तो वह शून्य न होगा। जिसकी धारणा बन जाए, वह वस्तु है। शून्य का कोई आकार है कि आप धारणा बना लेंगे? आप परमात्मा की धारणा बना सकते हैं। बना ली हैं हमने। इतनी मूर्तियां निर्मित की हैं, इतने आकार निर्मित किए हैं। आत्मा की धारणा आप बना लेंगे। हमने धारणाएं बनाई हैं और बड़ी मजेदार धारणाएं तक बनाई हैं। कोई मानता
है कि आत्मा अंगूठे के आकार की है। कोई मानता है कि आत्मा ठीक शरीर के आकार

की है। कोई मानता है कि आत्मा का तरल आकार है। तो जैसे शरीर में प्रवेश करती है, वैसे ही आकार की हो जाती है। जैसे पानी को गिलास में डाला, तो गिलास; और लोटे में डाला, तो लोटे का आकार ले लिया। ऐसे ही आत्मा लिक्विड है। आदमी के शरीर में होती है, तो आदमी के शरीर की होती है; चींटी के शरीर में चली जाती है, तो चींटी के शरीर जैसी हो जाती है; हाथी के शरीर में चली जाती है, तो हाथी के शरीर जैसी हो जाती है।
लेकिन शून्य की क्या धारणा? शून्य का अर्थ ही है कि जिसकी कोई धारणा न बना सके।
तो बुद्ध ने कहा, अगर तुम मेरा भरोसा, मेरा विश्वास, मेरी श्रद्धा ही पूछते हो; तो मेरी श्रद्धा सिर्फ एक चीज में है--शून्यता, एम्पटीनेस। क्यों मेरी आस्था शून्यता में है? क्योंकि तुम इसकी धारणा न बना सकोगे। तो मैं तुमसे कहता हूं कि भीतर तुम्हारे आत्मा है या नहीं, मुझे पता नहीं। शून्य जरूर है। तुम उस शून्य में प्रवेश कर जाओ। मुझसे मत पूछो कि कैसा शून्य? क्योंकि शून्य कैसा नहीं होता। शून्य का अर्थ ही है कि जिसके बाबत कुछ भी न कहा जा सके। जो है ही नहीं, तो कहा कैसे जा सकेगा? जिसका कोई रंग नहीं है, आकार नहीं है, रूप नहीं है।
लाओत्से कहता है, सहज स्व का उदघाटन करो।
छोड़ो धार्मिकों की बातें, जिन्होंने कहा है कि आत्मा ऐसी है और वैसी है। छोड़ो पंडितों की बातें, जिन्होंने निरूपण किया है कि आत्मा कैसी है और कैसी नहीं है। सब धारणाएं छोड़ो। आत्मा के संबंध में जो भी तुम्हारे ख्याल हैं, वे छोड़ दो; और भीतर प्रवेश करो, ताकि जो है, उसका उदघाटन हो सके। और जो है, उसका उदघाटन तभी होता है, जब हम उसके संबंध में कोई बिना विचार लिए भीतर प्रवेश करते हैं।
"तुम अपने सरल स्व का उदघाटन करो, अपने मूल स्वभाव का आलिंगन करो।"
पूछो मत किसी से कि तुम्हारा स्वभाव क्या है? पूछने गए कि भटके। पूछने
गए कि किसी ने तुम्हारी धारणा बना दी। पूछने गए कि उलझे। आलिंगन ही करो। पूछने मत जाओ, सोचने मत जाओ, खोजने मत जाओ। उतर ही जाओ भीतर उसमें। स्वाद ही ले लो उसका।
बुद्ध ने कहा है, सागर को कोई कहीं से भी चखे, वह नमकीन है। कोई किसी युग में, किसी काल में, किसी स्थान में सागर को चखे, वह नमकीन है। उस भीतर के शून्य को जब भी कोई चखता है, जब भी उसका स्वाद लेता है, तो उसका स्वाद एक ही है। लेकिन वह स्वाद गूंगे का गुड़ है, उसे कहा भी नहीं जा सकता। क्योंकि आदमी के पास कोई शब्द नहीं है उसे बताने को कि वह स्वाद मीठा है या नमकीन है या कैसा है। वह स्वाद इतना बड़ा है कि हमारे सब शब्द छोटे पड़ जाते हैं। तो पूछने मत जाओ। उतर ही जाओ स्वयं में। जो निकट है, उसका आलिंगन ही कर लो। उसमें डूब जाओ।
लेकिन हम उसे भी खोजने बाहर जाते हैं। अगर हमें आत्मा भी खोजनी है, तो
भी हम बाहर जाते हैं। हमें अपने को भी खोजना है, तो भी हम किसी से पूछते हैं। अपना पता भी हमें दूसरे से ही पूछना पड़ता है। अपनी खबर भी हमें दूसरे से ही पूछनी पड़ती है। इससे ज्यादा बेहोशी और क्या हो सकती है?
लेकिन जब भी हम दूसरे से पूछने जाएंगे, हमारे स्व का जो अनुभव है, वह मिश्रित हो जाएगा। और जब भी हम दूसरे को मान लेंगे... । और दूसरे को मानने की बड़ी इच्छा होती है अज्ञान में; क्योंकि सस्ता मिलता है ज्ञान, मुफ्त मिलता है। कोई दे देता है और हम ले लेते हैं। अपना ज्ञान पाना हो, तब तो श्रम और तप और यात्रा करनी पड़ती है। किसी का कहा हुआ, तो कोई अड़चन नहीं। मुफ्त मिल जाता है, हम स्वीकार कर लेते हैं।
यह जो दूसरे से पूछ-पूछ कर हमने अपने संबंध में जान रखा है, यह काम नहीं पड़ेगा, अगर सत्य की खोज करनी है। इसे हटा ही देना पड़ेगा। निर्भार हो जाना जरूरी है समस्त धारणाओं से। और भीतर ऐसे प्रवेश करना है, जैसे एक अचानक आपकी नौका डूब गई और आप एक अज्ञात द्वीप पर पहुंच गए, जहां का आपको कुछ भी पता नहीं है, कोई नक्शा आपके पास नहीं है। एक-एक कदम रख कर ही खोजना पड़ेगा कि क्या है? जहां का आपको कोई भी पता नहीं है, ऐसे अज्ञात द्वीप पर राबिन्सन क्रूसो की तरह आप गिर गए। एक-एक कदम रख कर ही पता चलेगा--क्या है?

सहज स्व का अर्थ हैः वहां पहुंचें बिना नक्शे लिए, बिना शास्त्र लिए, अज्ञात द्वीप पर पहुंच जाएं और एक-एक कदम चलें और खोजें, तो ही जैसी स्थिति है भीतर, वह प्रतीत होगी, उसका स्वाद मिलेगा। अन्यथा बड़े मजे हैं, स्वाद भी सजेस्ट किए जा सकते हैं। स्वाद भी झूठे हो सकते हैं। स्वाद भी बाहर से निर्मित किए जा सकते हैं।
अगर आपने कभी किसी हिप्नोटिस्ट को प्रयोग करते देखा हो... । न देखा हो,
तो घर में अपने बच्चों पर प्रयोग करके देख सकते हैं। एक बच्चे को सुला दें और पांच मिनट उसको कहते रहें कि वह गहरी बेहोशी में डूब रहा है, गहरी बेहोशी में डूब रहा है। बच्चे तो सरल होते हैं; पांच मिनट में वह मान लेगा कि डूब रहा है, डूब रहा है; वह डूब जाएगा। और बच्चे ही नहीं, सौ में से तीस प्रतिशत लोग सरलता से सम्मोहित हो जाते हैं। अगर आप दस आदमियों को पकड़ कर सम्मोहित करें, तो तीन को सम्मोहित करने में कोई भी सफल हो जाएगा। कोई भी। इसमें किसी कला की और किसी शक्ति की कोई जरूरत नहीं है। दस में से तीन आदमी सम्मोहित होने को तैयार ही हैं।
एक बच्चे को लिटा दें और कहें कि बेहोश होता जा रहा है। पांच मिनट में
वह बेहोश हो जाएगा। फिर उसके मुंह के पास प्याज ले जाएं और कहें कि एक सेव का टुकड़ा तुम्हारे मुंह में डाल रहे हैं, बहुत स्वादिष्ट है। और प्याज उसके मुंह में डाल दें। और वह बच्चा कहेगा कि बहुत स्वादिष्ट सेव है। उसको प्याज की बास भी नहीं आएगी। उसे स्वाद सेव का ही आएगा।
लेकिन आप सोचते होंगे कि यह तो खैर सम्मोहन की बात हुई। लेकिन आपने जब कभी पहली दफा सिगरेट पी थी, तो आपको कैसा स्वाद आया था, ख्याल है? लेकिन जब इतने लोग पी रहे हैं, तो जरूर स्वाद अच्छा आ ही रहा होगा। यह सम्मोहन है। आपने जब पहली दफा काफी पी थी, तो आपको स्वाद कैसा आया था?
लेकिन स्वाद को पैदा करने वाले कहते हैं कि स्वाद कल्टीवेट करना होता है। काफी पहली दफा पीएंगे, तो तिक्त लगेगी ही, कड़वी लगेगी ही। इसमें काफी का कसूर नहीं है; आप असंस्कृत हैं, अनकल्चर्ड हैं। स्वाद कल्टीवेट हो जाएगा। पीते रहें! महीने, दो महीने में काफी के बिना जीना मुश्किल हो जाएगा। काफी स्वादिष्ट मालूम होने लगेगी। क्या हुआ महीने भर में बार-बार पीकर? आपने अपने को ही सम्मोहित कर लिया। और काफी के एडवरटाइजमेंट करने वालों ने आपको सम्मोहित कर दिया। और आपसे पहले जो सम्मोहित हो चुके हैं, उन्होंने भी आपको दीक्षा में सहायता दी और आपको सम्मोहित कर दिया। अब आपको काफी बड़ी स्वादिष्ट मालूम पड़ती है।
वह जो स्वाद है, झूठा है। वह स्वाद सच्चा नहीं है। भीतर का स्वाद भी झूठा हो सकता है। इसीलिए लाओत्से कहता है कि सहज स्व का आलिंगन करना। भीतर का स्वाद भी झूठा हो सकता है।
आप किसी महावीर के प्रभाव में आ गए। और महावीर जैसे व्यक्तियों का प्रभाव तो है ही। उनसे प्रभावित हो जाना जरा भी कठिन नहीं है। उनसे प्रभावित न होना ही कठिन है। फिर उनका आनंद और उनका संगीत और उनकी सुगंध, उस सब में डूब गए। फिर उनके शब्द, वे पकड़ लिए। फिर उन शब्दों को पकड़ कर आप भीतर गए। आपको भी वही स्वाद आ सकता है। लेकिन वह स्वाद सच्चा नहीं होगा। वह स्वाद काफी का ही स्वाद है। वह सीख लिया है आपने। वे शब्द आपके भीतर गूंज गए हैं। वह महावीर की प्रतिमा आप में प्रतिष्ठित हो गई है। महावीर का भाव आपको पकड़ गया। आप उसी सम्मोहन में जी लेंगे। लेकिन वह अनुभव आत्म-अनुभव नहीं है। महावीर भी कहते हैं कि वह अनुभव आत्म-अनुभव नहीं है। महावीर ने अपने शिष्यों से कहा है कि जब तक तुम मुझे न छोड़ दो, तब तक तुम स्वयं को न पा सकोगे।
मुझे छोड़ने का क्या अर्थ है महावीर का? अर्थ है कि मेरे शब्द तुम्हारे लिए प्रेरणा तो बनें, लेकिन तुम्हारे लिए दृष्टि न बन जाएं। मेरे शब्द तुम्हारी प्यास तो जगाएं, लेकिन मेरे शब्द तुम्हारे लिए जल न बन जाएं। इस फर्क को ठीक से समझ लेना जरूरी है। मेरे शब्द तुम्हारे लिए प्यास तो जगाएं, लेकिन मेरे शब्द तुम्हारे लिए जल न बन जाएं। कहीं ऐसा न हो कि मेरे शब्दों का ही जल लेकर तुम तृप्त हो जाओ। तो तुम अपने जल से वंचित ही रह जाओगे।

तो आध्यात्मिक जीवन में प्रभावित होने का भी मूल्य है और अप्रभावित बने रहने का भी मूल्य है। प्यास जगने के लिए तत्परता भी चाहिए; और शब्द पकड़ न जाएं, शब्द बोझ न बन जाएं, इसकी जागरूकता भी चाहिए।
लाओत्से कहता है, "सजग, सहज अपनी आत्मा का आलिंगन करो। अपनी स्वार्थपरता त्यागो, अपनी वासनाओं को क्षीण करो।"
यहां स्वार्थपरता का क्या अर्थ होगा? यहां वही अर्थ नहीं है, जो आमतौर
से हम सेल्फिशनेस का लेते हैं। क्योंकि उन चीजों को तो वह पहले ही छोड़ने को कह चुका है। जब बुद्धिमत्ता छोड़ने को कह चुका और जब उपयोगिता छोड़ने को कह चुका, तो स्वार्थपरता का अब वही अर्थ नहीं है, जो हम लेते हैं। यहां स्वार्थपरता का गहरा अर्थ है। हमारी स्वार्थपरता तो उपयोगिता में ही छूट गई। वह जो यूटिलिटेरियन, हर चीज में उपयोग देखने की दृष्टि थी, वह छूट गई, तो हमारी स्वार्थपरता छूट गई। यहां सेल्फिशनेस का क्या अर्थ है? अगर हम यहां ठीक से समझें, तो यहां अर्थ हैः सेल्फ-सेंटर्डनेस, स्व-केंद्रितता। स्वार्थपरता अर्थात स्व-केंद्रितता।
साधारण आदमी के जीवन की पीड़ा यही है कि वह हमेशा स्वार्थ से जीता है। अगर वह प्रेम भी करता है किसी को, तो उसका कोई मतलब होता है। उसका मतलब ही उसके जीवन को नष्ट कर देता है। हम सब मतलबी हैं। और हमारे मतलब के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन एक नगर के धनपति के द्वार पर दस्तक दे रहा है। धनपति बाहर आया। मुल्ला ने कहा, एक आदमी बड़ी तकलीफ में है, ऋण से दबा जा रहा है, मरा जा रहा है; कुछ सहायता करो! उस आदमी ने एक रुपया निकाल कर नसरुद्दीन को दिया और कहा कि अच्छे ख्याल हैं, नेक इरादे हैं, जरूर उसकी सहायता करो। मुल्ला जब सीढ़ियां उतर रहा था, तब उस अमीर ने कहा कि एक मिनट, क्या मैं पूछ सकता हूं वह कौन आदमी है जो ऋण से दबा जा रहा है? मुल्ला ने कहा, मैं ही।
पंद्रह दिन बाद मुल्ला ने फिर उसी आदमी के दरवाजे पर दस्तक दी। उसने मुल्ला को बड़े गौर से देखा और व्यंग्य किया कि मालूम होता है, फिर कोई आदमी ऋण से दबा जा रहा है। मुल्ला ने कहा कि बिल्कुल ठीक समझे आप। बहुत गरीब आदमी है, उस आदमी ने कहा। मुल्ला ने कहा, बिल्कुल ठीक समझे आप। उसने कहा, और मैं समझता हूं कि वह ऋण से दबे हुए आदमी तुम ही हो। मुल्ला ने कहा, आप बिल्कुल गलत समझे। इस बार वह आदमी मैं नहीं हूं। उस आदमी ने कहा कि मैं खुश हुआ यह बात सुन कर। और उसने दो रुपए मुल्ला को भेंट किए। और जब मुल्ला फिर सीढ़ियां उतर रहा था, तब उसने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूं कि पिछली बार तो मैं समझ गया कि तुम्हारी उदारता की प्रेरणा कहां से निकली थी; इस बार तुम्हारी इतनी उदारता और इतनी दया और इतनी सेवा का क्या कारण है? मुल्ला ने कहा, इस बार ऋणदाता मैं हूं। ऋणी कोई और है गरीब, ऋणदाता मैं हूं। और वह बिल्कुल चुका नहीं पा रहा है पैसे, उसके लिए पैसे इकट्ठे कर रहा हूं।
आप समझे? पहली दफा मैं था ऋणी, दबा जा रहा था ऋण में, किसी के पैसे चुकाने थे; इसलिए मांगने आया था। इस बार मैं ऋणदाता हूं; कोई और ऋण से दबा जा रहा है। उसको मेरे पैसे चुकाने हैं और चुका नहीं पा रहा है; उसके लिए पैसे इकट्ठे कर रहा हूं।
अगर आदमी की हम सेवाओं के भीतर भी प्रवेश करें, तो हम स्वार्थ पाएंगे।
हम जैसे जीते हैं, वह स्वार्थ है।
लेकिन एक आदमी बाजार, संसार, गृहस्थी, सब छोड़ कर हट गया। जंगल में खड़ा
है एक वृक्ष के नीचे। उसका क्या स्वार्थ है? उसकी तो कोई सेल्फिशनेस नहीं है। वह तो हट ही गया संसार से। लाओत्से उसके लिए कह रहा है यह सूत्र कि जो आत्मा को खोजने गया है, वह भी मैं अपने को खोज लूं, मैं अपने को पा लूं, मेरा मोक्ष हो जाए, मैं आनंद को उपलब्ध हो जाऊं, मेरे जीवन में दुख न रह जाए, यह भी सेल्फसेंटर्डनेस है। यह भी स्वार्थ है। यह पारलौकिक स्वार्थ होगा; लेकिन यह स्वार्थ नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह आदमी भी स्वार्थी है, यह आदमी भी अपनी ही फिक्र में लगा है।
लाओत्से कहता है, इसको भी छोड़ दो; क्योंकि यह भी स्वयं को जानने में बाधा है।

क्यों बाधा है? अगर स्वयं के जानने में भी मेरा कोई इनवेस्टमेंट है, अगर मुझे लगता है कि स्वयं को जान कर मैं आनंद को पा लूंगा, तो मेरी उत्सुकता स्वयं को जानने में नहीं, आनंद को पाने में है--एक बात। अगर आनंद मुझे स्वयं को बिना जाने मिल जाए, तो मैं इस उपद्रव में कभी नहीं पडूंगा। या कोई अगर मुझसे यह कह दे कि स्वयं को तो तुम जान लोगे, लेकिन आनंद नहीं पा सकोगे स्वयं को जानने से... ।
सुना है मैंने, जुन्नून एक सूफी फकीर अपने गुरु के पास गया। उसके गुरु
ने पूछा कि तुम किस लिए आए हो, एक प्रश्न में ठीक-ठीक मुझे कह दो। ज्यादा बातचीत मैं पसंद नहीं करता हूं। तुम एक ही प्रश्न में अपनी सारी जिज्ञासा मुझे कह दो। जुन्नून रात भर सोचता रहा। सुबह गुरु ने बुलाया। जुन्नून ने कहा कि मैं अपने को जानना चाहता हूं। जुन्नून के गुरु ने कहा, अगर अपने को जानना अत्यंत कष्टपूर्ण हो, और अपने को जान कर अगर तुम दुख में पड़ जाओ, तो भी तुम अपने निर्णय पर दृढ़ हो? जुन्नून ने कहा, मैं तो आनंद पाने के लिए स्वयं को जानना चाहता हूं। तो उसके गुरु ने कहा, तुम फिर से सोच कर आओ। तब तुम कहो कि मैं आनंद पाना चाहता हूं। स्वयं को जानना चाहता हूं, यह क्यों कहते हो? तुम्हारा लक्ष्य अगर आनंद को पाना है और अगर आनंद बिना स्वयं को जाने मिल सकता हो, तो स्वयं को जानने से तुम्हें क्या प्रयोजन है?
नीत्शे ने तो यहां तक कहा है कि लोग धर्मों के चक्कर में इसीलिए पड़े हैं कि उनको ख्याल है कि धर्म से आनंद मिल जाएगा। न परमात्मा से किसी को मतलब है, न आत्मा से किसी को मतलब है, न सत्य से किसी को मतलब है। अगर लोगों को पता चल जाए कि परमात्मा और आनंद का कोई लेना-देना नहीं है, तो संसारी और धार्मिक आदमियों में फर्क खोजना मुश्किल हो जाए। जिस तरफ संसारी दौड़ रहे हैं, उसी तरफ धार्मिक भी दौड़ने लगें। अभी अगर वे विपरीत दौड़ते दिखाई पड़ते हैं, तो दिशाओं में फर्क हो, लक्ष्यों में फर्क नहीं है--आनंद! सांसारिक सोचता है, इससे आनंद मिलेगा। एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है; क्योंकि सोचता है, धन इकट्ठा करने से आनंद मिलेगा। एक आदमी प्रार्थना कर रहा है; क्योंकि सोचता है, प्रार्थना करने से आनंद मिलेगा। ये दोनों आदमी कितने ही उलटे खड़े दिखाई पड़ें, ये उलटे नहीं हैं, ये विपरीत नहीं हैं। इन दोनों की बुद्धि बिल्कुल एक सी है। और इनकी यात्रा में जरा भी फर्क नहीं है।
लाओत्से कहता है, स्वार्थपरता छोड़ो। अगर तुम स्वयं को जानना चाहते हो
और सरल, सहज स्व का अनुभव करना चाहते हो, तो इस स्वयं को जानने में कोई आकांक्षा न हो कि मैं यह पा लूंगा, कि मैं यह पा लूंगा, कि मैं यह पा लूंगा। इसमें पाने का कोई ख्याल न हो। इसमें तुम्हारा निजी कोई हित का ख्याल न हो।
यह बड़ा कठिन है। हमारे स्वार्थ को संसार से हटा कर मोक्ष पर लगाना कठिन नहीं है। हमारे लोभ को धन से हटा कर धर्म पर लगाना जरा भी कठिन नहीं है। सरल है। बल्कि सच तो यह है कि जितना बड़ा लोभी हो, उतनी जल्दी धार्मिक हो जाता है। क्योंकि बहुत जल्दी उसे समझाया जा सकता है कि यह तुम क्या ठीकरे इकट्ठे कर रहे हो सोने-चांदी के? जब मरोगे, तो ये काम न पड़ेंगे। अगर असली संपदा चाहिए, तो दान करो; जो मरने के बाद भी काम पड़ेगी। अगर आप छोटे- मोटे लोभी हैं, तो आप कहेंगे, चलेगा; मरने तक भी हम तृप्त हैं, मरने के बाद का देखेंगे। अगर आप बड़े लोभी हैं और ग्रीड बड़ी भयंकर है, तो आप जरूर हिसाब लगाएंगे कि मरने के बाद अगर ये काम नहीं पड़ते, तो इनमें से कुछ को उन सिक्कों में बदल लो, जो मरने के बाद काम पड़ते हैं। दान कर दो। बड़े लोभी बड़ी जल्दी धार्मिक हो जाते हैं। कंजूस बड़ी जल्दी धार्मिक हो जाते हैं। इससे उनमें कोई फर्क नहीं पड़ता; सिर्फ उनके लोभ को एक नया आयाम और मिल जाता है, और विस्तार हो जाता है।
लेकिन धर्म के जगत में वे ही प्रवेश करते हैं, जिनका कोई भी लोभ नहीं है। जिनको इतना भी लोभ नहीं है कि आनंद भी मिलेगा, कि मोक्ष मिलेगा, कि स्वर्ग मिलेगा।
लाओत्से कहता है, स्वार्थपरता छोड़ो।
यहां स्वार्थपरता उस दूसरे तल की है, क्योंकि आत्मज्ञान के साथ इसकी बात की जा रही है। यह भी मत सोचो कि तुम्हें आनंद मिलेगा। कौन जानता है-- मिले, न मिले? कौन कह सकता है, क्या मिलेगा? कोई पक्का नहीं है। कोई

आश्वासन नहीं दे सकता। कोई सुरक्षा नहीं है, कोई गारंटी नहीं है। तुम सिर्फ इसीलिए जानने चलो कि तुम हो, और अपने को न जानना बड़ी एब्सर्डिटी है, बड़ी बेहूदगी है। मैं हूं और मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं! सिर्फ इसीलिए तुम जानने चलो कि तुम्हें पता ही नहीं कि तुम कौन हो और तुम हो। इसमें कोई और स्वार्थ मत जोड़ो। इसमें यह मत कहो कि जान लूंगा, तो आनंद मिलेगा; जान लूंगा, तो अमृतत्व मिल जाएगा; जान लूंगा, तो फिर कोई दुख न रह जाएगा; जान लूंगा, तो मोक्ष की परम शांति मिलेगी; जान लूंगा, तो निर्वाण मिल जाएगा। न, जानने के साथ कुछ मिलने को मत जोड़ो। क्योंकि जो मिलने को जोड़ रहा है, वह जान ही न पाएगा। क्योंकि जिसकी अभी आकांक्षा कुछ पाने की लगी है, वह अभी अपने से बाहर ही घूमेगा, भीतर नहीं आ सकता। भीतर तो वही आता है, जिसकी कोई आकांक्षा नहीं रह गई।
इसलिए लाओत्से कहता है, "स्वार्थपरता त्यागो, अपनी वासनाओं को क्षीण करो।"
निश्चित ही ये वासनाएं आध्यात्मिक आदमी की वासनाएं हैं। सांसारिक आदमी की वासनाएं तो समाप्त हो गईं पहले सूत्रों में। ये आध्यात्मिक आदमी की वासनाएं हैं। स्प्रिचुअल डिजायर्स, आध्यात्मिक वासनाएं--यह शब्द उलटा मालूम पड़ेगा, कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम कभी सोचते नहीं कि आध्यात्मिक वासना भी होती है!
आध्यात्मिक वासना भी होती है। और जब तक आध्यात्मिक वासना है, तब तक अध्यात्म का कोई जन्म नहीं होता है। जिनको हम संन्यासी कहते हैं, उनमें अधिक लोग सांसारिक वासना छोड़ देते हैं, आध्यात्मिक वासना पकड़ लेते हैं। वास्तविक संन्यासी वही है, जिसकी कोई वासना नहीं है--न सांसारिक, न आध्यात्मिक।
जीसस के मरने की घड़ी करीब आ गई। उस रात वे पकड़े जाने को हैं। आखिरी क्षण है; शिष्य विदा हो रहे हैं। एक शिष्य पूछता है कि आखिरी वक्त है, अब जाते वक्त इतना तो बता दें कि स्वर्ग के राज्य में, जिसका आपने हमें आश्वासन दिया है, किंगडम ऑफ गॉड, उसमें आप तो परमात्मा के बगल में बैठेंगे, हम लोगों की जगहें क्या होंगी? ठीक है, परमात्मा सिंहासन पर होगा, आप उसके बेटे हैं, बगल में होंगे। हम लोग आपके संत हैं, हम लोग कहां बैठेंगे?
शायद ईश्वर के राज्य शब्द को सुन कर ही लोभ के कारण ये लोग जीसस के पास इकट्ठे हो गए हैं। वहां परम आनंद होगा, वही इनकी वासना बन गई है। संसार को ये छोड़ सके हैं एक सौदे की तरह। एक बार्गेन है।
और तथाकथित धार्मिक लोग समझाते रहते हैं चौबीस घंटे कि संसार में क्या रखा है! क्षणभंगुर है। कोई उनसे पूछे कि अगर क्षणभंगुर न हो, तब? तब सब कुछ रखा है? कहते हैं, इस आदमी के शरीर में क्या रखा है! हड्डी-मांस-मज्जा है। कहीं सोना-चांदी हो भीतर, फिर? कि आदमी में क्या रखा है, यह मर जाएगा कल! अगर यह न मरे, तो? वे किस बात को आपके भीतर जगा रहे हैं? वे सिर्फ आपके लोभ को, आपकी वासना को बदल रहे हैं। वे कह रहे हैं, इसमें क्या रखा है! उनका वासना से कोई विरोध नहीं है। जहां आप वासना को लगाए हैं, वह जगह क्षणभंगुर है, वहां से हटाओ, शाश्वत की तरफ लगाओ। लेकिन वासना को नहीं मिटाने की कोशिश है।
लाओत्से जैसे लोग विषय बदलने को नहीं कहते, वासना ही मिटा देने को कहते हैं।
इस फर्क को ठीक से समझ लें। मैं धन के पीछे दौड़ रहा हूं। कोई मुझे समझाता है, क्या पागलपन कर रहे हो, धन में क्या रखा है? कल मर जाओगे, मौत बड़ी चीज है, धन से भी बड़ी चीज है। धन मिले कि न मिले; मौत का मिलना बिल्कुल पक्का है। वह मुझे डरा देता है। कहता है, कल मर जाओगे, कल का भरोसा नहीं है। और तुम धन के पीछे दौड़ रहे हो। अगर दौड़ना ही है, तो उसके पीछे दौड़ो, जो असली धन है। भगवान के पीछे दा.ैडो। मेरा लोभ डगमगाता है। मुझे भी दिखता है कि धन पा भी लूंगा, तो क्या होगा? मौत तो आएगी। अगर मौत को भी रिश्वत दी जा सके, तो धन काम पड़ सकता है। लेकिन मौत अब तक रिश्वत लेती देखी नहीं गई। तो मौत से बच नहीं सकूंगा, तो फिर क्या करूं? भगवान के लिए दौडूं। मगर दौड़ जारी रहेगी। विषय बदल जाएगा, दौड़ जारी रहेगी। लक्ष्य बदल जाएगा, वासना जारी रहेगी।

लाओत्से जैसे लोग कहते हैं, दौड़ो ही मत। यह नहीं कहते कि संसार फिजूल है, इसलिए मत दौड़ो; और परमात्मा सार्थक है, इसलिए दौड़ो। ये तो स्वार्थ की ही बातें हैं। यह तो स्वार्थपरता ही हुई। इसका तो मतलब यह हुआ कि जो ज्यादा चालाक हैं, वे परमात्मा को पाने की कोशिश करते हैं; जो कम चालाक हैं, वे धन को पाने की कोशिश करते हैं। इसका मतलब तो साफ है कि जो गणित में कुशल हैं, होशियार हैं, वे इन छोटी बातों में नहीं पड़ते। जो बच्चे हैं, नासमझ हैं, वे छोटी बातों में पड़ जाते हैं। क्या मकान बना रहे हो जमीन पर, मोक्ष में बनाओ। वहां टिकेगा चट्टान पर। और यहां रेत है। तो जो रेत में बनाते हैं, वे नासमझ हैं। और जो चट्टानों पर बनाते हैं, वे समझदार हैं। तब तो यह सारा का सारा मामला कम चालाक और ज्यादा चालाक लोगों का हुआ।
इसलिए लाओत्से बहुत जोर देकर कहता है, चालाकी छोड़ो, स्वार्थपरता छोड़ो, वासनाओं को क्षीण करो। आध्यात्मिक अर्थ में, अगर वासना रह गई है किसी भी दिशा में, तो भटकन जारी रहेगी। ठहर जाओ, दौड़ो ही मत।
वासना का अर्थ क्या है? वासना का अर्थ हैः दौड़ना, भागना। वासना का अर्थ हैः पाने को कहीं कुछ दूर है। मैं यहां हूं, पाने को कुछ वहां है; दोनों के बीच फासला है। उस फासले को पूरा करने का नाम वासना है। मैं यहां हूं, आप वहां हैं; मुझे आपको पाना है; मेरे आपके बीच डिस्टेंस है, फासला है। इस फासले को पूरा करना है। कब कर पाऊंगा, पता नहीं। लेकिन मन में अभी कर लेता हूं। मन में अभी कर लेता हूं। महल कब बनेगा, पता नहीं; मन में अभी बना लेता हूं। महल में कब रहूंगा, पता नहीं; मन में अभी रहना शुरू कर देता हूं। वासना फासले को दूर करने का उपाय है। वासना मेरे और मेरी इच्छा का जो लक्ष्य है, उसके बीच सेतु बनाना है। यद्यपि सेतु इंद्रधनुष का सेतु है। दिखता भर है, बनता कभी भी नहीं।
तो जो वासना से भरा है, वह कभी स्वयं में नहीं ठहर सकता। वह हमेशा कहीं और, कहीं और, कहीं और होगा--समव्हेयर एल्स। सिर्फ स्वयं में नहीं हो सकता, और कहीं भी हो सकता है। जहां वासना होगी, वहीं दौड़ा हुआ होगा। अगर कोई वासना न हो, तो आप खड़े हुए होंगे, अपने में होंगे, स्वस्थ होंगे, स्वयं में स्थित हो जाएंगे। अगर आपको कुछ भी पाना नहीं है, एक क्षण को भी ऐसी स्थिति आ जाए कि कुछ पाना नहीं है, तो आप दौड़े कहां होंगे? आप ठहर गए होंगे। वह स्थिति ही समाधि है। वासना है अपने से बाहर दौड़ना। इसलिए निर्वासना स्व-ज्ञान का अनिवार्य आधार है।
लाओत्से कहता है, "वासनाओं को क्षीण करो।"
लेकिन हमें बहुत घबड़ाहट होगी। वासना बदलने को कोई कहे, हम राजी हैं। कोई कहे, छोड़ो, पृथ्वी की स्त्रियों में क्या रखा है? स्वर्ग में अप्सराएं हैं! चित्त बहुत प्रफुल्लित होता है। लेकिन स्त्रियों की जगह अप्सराएं रखना जरूरी है। क्या पी रहे हो यहां साधारण सी शराब? बहिश्त में झरने हैं शराब के! नहाओ, धोओ, डूबो, जो भी करना है, करो। और ध्यान रहे, अगर झरनों में पीना है बहिश्त के, तो यह चुल्लू-चुल्लू पीना छोड़ना पड़ेगा। यह सौदा है। जो चालाक हैं, वे इस सौदे के लिए तैयार हो जाते हैं।
इसलिए कई दफे मैं देखता हूं कि शराबी भी कई दफे भोला दिखाई पड़ता है, लेकिन साधु उतना भोला नहीं दिखाई पड़ता। हैरानी की बात है, होना नहीं चाहिए ऐसा। लेकिन शराबी में एक भोलापन दिखाई पड़ता है। नासमझ है, हिसाब का बिल्कुल पता नहीं है कि क्या कर रहा है। बहिश्त के चश्मे छोड़ रहा है और यहां क्यू लगा कर शराबघर के सामने खड़ा है। जो होशियार हैं, वे यहां क्यू नहीं लगा रहे हैं। वे माला फेर रहे हैं। वे तैयारी कर रहे हैं कि जब कूदना ही है, तो झरने पर ही कब्जा कर लेंगे। यह क्या छोटे-छोटे... ।
मगर यह सौदा है। और सौदे का धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। सौदे की वृत्ति ही स्वार्थ है। और सौदे में वासना छिपी ही हुई है। किसलिए कर रहे हैं पूजा? किसलिए कर रहे हैं ध्यान? किसलिए कर रहे हैं त्याग? किसलिए कर रहे हैं दान? अगर आपके पास कोई भी उत्तर है कि इसलिए, तो आपकी वासना शेष है।
अगर आप कहते हैं कि कोई कारण नहीं है; कोई कारण नहीं है, आगे पाने के लिए कोई सौदा नहीं है। लेकिन प्रार्थना करना अपने आप में ही पर्याप्त आनंद है। आगे कोई पाने की बात नहीं है। प्रार्थना ही आनंद है। देने में

सुख है। देने से सुख मिलेगा, तो वासना है। और देने में सुख है, तो धर्म है। देने से सुख मिलेगा कभी, तो सौदा है। और देना ही सुख है। और आगे कोई लेन-देन नहीं है। इससे हम कोई हिसाब न रखेंगे कि इतना हमने दिया। इससे हम किसी स्वर्ग का आयोजन नहीं करते। और अगर कल नरक में भी डाल दिए जाएंगे, तो हमारे मन में शिकायत न होगी कि मैंने इतना दिया था और मुझे नरक?
दिया था, उसका आनंद देने में ही मिल गया है। हिसाब चुकता हो गया। प्रार्थना की थी; जो प्रार्थना से मिल सकता था, उसी क्षण मिल गया है। और जिसको उस क्षण नहीं मिला है, उसे कभी नहीं मिलेगा। क्योंकि इस जगत में प्रत्येक कार्य का कारण साथ ही जुड़ा हुआ है। अभी हाथ आग में डालूंगा, अभी जल जाऊंगा। अभी नहीं जला हूं, तो कभी नहीं जलूंगा। प्रार्थना अभी की है, तो जो आनंद बरसना था, वह प्रार्थना करने में ही बरस गया। उस प्रार्थना के कृत्य के बाहर कोई उपलब्धि नहीं है। अगर कोई उपलब्धि की धारणा है, तो प्रार्थना भी एक वासना है। इसे जरा कठिन होगा समझना। और अगर उपलब्धि की कोई धारणा नहीं है, तो प्रत्येक कृत्य प्रार्थना हो जाता है। प्रत्येक कृत्य करने में ही पूरा हो गया है। कोई हिसाब लेकर हम आगे नहीं चलते। जो क्षण बीत गया, उसके साथ हमारे सब संबंध समाप्त हो गए। कोई सौदा बाकी नहीं रहा है। उस क्षण में कुछ ऐसा नहीं है, जो अगले क्षण में हम मांग करें। सांसारिक आदमी सौदा कर रहा है। इसलिए जो भी आदमी सौदा कर रहा है, वह संसार में है। वह स्वर्ग का सौदा है कि मोक्ष का, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। आध्यात्मिक आदमी सौदा नहीं कर रहा है। जी रहा है एक-एक क्षण को उसकी समग्रता में।
तो लाओत्से कहता है, वासनाओं को क्षीण करो। क्योंकि वासनाएं तुम्हें कभी सौदे की दुनिया के ऊपर न उठने देंगी। तब तुम कुछ भी करोगे, किसी दृष्टि से करोगे कि क्या मिलेगा?
उमर खय्याम से कोई पूछता है कि तुमने इतने गीत गाए--किसलिए? तो उमर खय्याम कहता है, पूछो जाकर, वह जो फूल खिला है गुलाब का, उससे--किसलिए? पूछो रात में उगे हुए तारों से--किसलिए? पूछो हवाओं से कि तुम इतने-इतने जन्मों से बह रही हो--किसलिए?
प्रकृति में कहीं कोई प्रयोजन नहीं है। सिर्फ आदमी की वासना को छोड़
कर कहीं कोई प्रयोजन नहीं है; कहीं कोई परपज नहीं है। और आदमी में तो दो ही तरह के लोग परपजलेस, प्रयोजनमुक्त होते हैं। एक जिनको हम पागल कहते हैं; और एक जिनको हम परमहंस कहते हैं। एक जिनको हम कहते हैं कि इनकी बुद्धि डगमगा गई; एक जिनको हम कहते हैं कि ये बुद्धि के पार चले गए। इसलिए पागलों में और परमहंसों में थोड़ी सी समानता होती है। कोई एक गुणधर्म बराबर होता है। और वह गुणधर्म है परपजलेसनेस, प्रयोजनरिक्तता।
लाओत्से कहता है, छोड़ो स्वार्थपरता, छोड़ो प्रयोजन, छोड़ो सौदा, छोड़ो वासना, तो तुम स्वयं के सहज स्वभाव को आलिंगन कर सकोगे, अपने में प्रतिष्ठित हो सकोगे। और इस प्रतिष्ठा के अतिरिक्त कहीं कोई धर्म नहीं है।
लेकिन हम तो बड़ी से बड़ी चीज को भी एक ही भाषा में सोचते हैं। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? पहली बात, ध्यान से क्या मिलेगा?
उनको क्या कहूं कि ध्यान से क्या मिलेगा? एक ही उत्तर सही हो सकता है
कि ध्यान से ध्यान मिलेगा। मगर यह बेकार है। यह तो टोटोलाजी मालूम पड़ेगी। इससे क्या हल हुआ? वे फिर पूछेंगे कि ध्यान से जो ध्यान मिलेगा, उससे क्या मिलेगा? वे कोई नगद रुपए में चाहते हैं उत्तर कि यह मिलेगा।
इसलिए महर्षि महेश योगी की बात पश्चिम में काफी लोगों को प्रभावित की। क्योंकि उन्होंने बहुत नगदी उत्तर दिए। उन्होंने कहा, धन भी मिलेगा, स्वास्थ्य भी मिलेगा, सफलता भी मिलेगी। फिर अमरीका को जंची बात, सौदा बिल्कुल साफ है। ध्यान से धन भी मिलेगा, सफलता भी मिलेगी। जो भी करोगे, उसी में सफल हो जाओगे। तब फिर इसको बाजार में बेचा जा सकता है।
लाओत्से जैसे आदमियों को बाजार में नहीं बेचा जा सकता। उनसे पूछो, क्या मिलेगा? तो वे कहेंगे कि अभी तुम इस योग्य भी नहीं कि तुम्हें उत्तर दिया जाए। तुम पूछ क्या रहे हो? तुम पूछ रहे हो, प्रेम से क्या मिलेगा? तो

तुम प्रेम के संबंध में उत्तर पाने के भी अधिकारी नहीं हो। तुम जाओ और कौड़ियां बीनो और इकट्ठी करो। जो आदमी पूछता है कि प्रेम से क्या मिलेगा, उसको उत्तर देना चाहिए? और क्या उत्तर वह समझ पाएगा? और क्या उत्तर का कोई भी अर्थ निकल पाएगा? व्यर्थ होगा।
लोग पूछते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? प्रार्थना से क्या मिलेगा? धर्म से क्या मिलेगा? उन्हें पता ही नहीं है कि जब कोई व्यक्ति मिलने की भाषा छोड़ता है, तभी धर्म में प्रवेश होता है। जब तक वह पूछता है, क्या मिलेगा, क्या मिलेगा, क्या मिलेगा, तब तक वह संसार में दौड़ता है।
लेकिन हमको अगर कोई भरोसा दिलवा दे कि मिलेगा, वहां भी कुछ मिलेगा, तो फिर हम वहां भी दौड़ने को तत्पर हो जाते हैं। दौड़ चाहिए! ठहरने से मन घबड़ाता है। इसलिए लाओत्से जैसे लोग बहुत भयभीत करवा देते हैं।
कनफ्यूशियस बहुत भयभीत होकर लाओत्से के पास से लौटा था। और जब उसके शिष्यों ने पूछा कि कैसा था यह आदमी? तो कनफ्यूशियस ने कहा, वह कोई आदमी नहीं है। वह एक खतरनाक सिंह की भांति है। उसके पास जाओ, तो रोआं-रोआं कंप जाता है, पसीना आ जाता है। वह कोई आदमी नहीं है, वह एक सिंह है। उस तरफ जाना ही मत। वह भीतर आत्मा तक को कंपा देता है। वह इस ढंग से देखता है। एक क्षण उसकी आंख अगर रुक जाए ऊपर, तो प्राण का रोआं-रोआं कंपने लगता है।
कंपने ही लगेगा; क्योंकि लाओत्से जो कह रहा है, वह आत्यंतिक है, अल्टीमेट है। वह क्षुद्र बातों पर रुकने के लिए राजी नहीं है। वह क्षुद्र बातों के उत्तर भी नहीं देगा। वह यह भी नहीं कहेगा कि तुम्हें ध्यान से शांति मिलेगी। क्या है मूल्य अशांति का? शांति ही चाहिए, तो ट्रैंक्वेलाइजर से मिल जाएगी। क्यों ध्यान के पीछे पड़ते हैं! शांति चाहिए, तो नशा करके लेट जाइए।
लेकिन ध्यान की तलाश में भी लोग आते हैं, कोई शांति के लिए आ रहा है, कोई स्वास्थ्य के लिए आ रहा है। तरह-तरह के लोग, लेकिन वासनाएं लेकर ही आते हैं। मंदिरों को भी हम वेश्यालयों से भिन्न व्यवहार नहीं करते, वहां भी हम वासना लेकर ही पहुंच जाते हैं। और जहां हम वासना लेकर पहुंचते हैं, वहीं वेश्यालय हो जाता है। क्योंकि खरीदने की इच्छा है वहां भी। वहां भी हम मंदिर में भी रुपए को जोर से पटक कर कुछ खरीदने पहुंचे हैं आवाज करके। मंदिर में भी लोग रुपया धीरे से नहीं रखते--देखा आपने? ऐसा जोर से पटकते हैं कि खनक की आवाज सब दीवारें सुन लें और अगर परमात्मा कहीं हो, तो उसको भी पता चल जाए कि एक रुपया फेंका है नगद। अब वहां भी हम खरीदने जा रहे हैं। बोधिधर्म भारत के बाहर गया। और जब वह चीन पहुंचा, तो वहां के सम्राट
ने कहा कि मैंने हजारों विहार बनवाए; लाखों भिक्षुओं को मैं भिक्षा देता हूं रोज; बुद्ध के समस्त शास्त्रों का मैंने चीनी भाषा में अनुवाद करवाया है; लाखों प्रतियां मुफ्त बंटवाई हैं; धर्म का मैंने बड़ा प्रचार किया है; हे बोधिधर्म, इस सब से मुझे क्या लाभ होगा? मुझे क्या मिलेगा इसका पुरस्कार? इसका प्रतिफल क्या है?
उसने गलत आदमी से पूछ लिया। और भिक्षु थे लाखों, जो उसकी भिक्षा पर पलते थे। वे कहते थे, तुम पर परमात्मा की बड़ी कृपा है। तुम्हारा मोक्ष सुनिश्चित है। हे सम्राट, तुम जैसा सम्राट पृथ्वी पर कभी न हुआ और न कभी होगा। तुम धर्म के परम मंगल को पाओगे। तुम पर आशीष बरस रहे हैं बुद्धों के। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते, देवता फूल बरसाते हैं तुम पर। उसने सोचा कि बोधिधर्म भी ऐसा ही भिक्षु है। गलती हो गई। बोधिधर्म जैसे आदमी कभी-कभी होते हैं, इसलिए गलती हो जाती है।
बोधिधर्म ने कहा, बंद कर बकवास! अगर पहले कुछ मिलता भी, तो अब कुछ नहीं मिलेगा। तूने मांगा कि खो दिया। सम्राट तो बेचैन हो गया। हजारों भिक्षुओं की भीड़ के सामने बोधिधर्म ने कहा कि कुछ भी नहीं मिलेगा। फिर भी उसने सोचा कि कुछ गलती हो गई समझने में बोधिधर्म के या मेरे। उसने कहा, इतना मैंने किया, फल कुछ भी नहीं! बोधिधर्म ने कहा, फल की आकांक्षा पाप है। किया, भूल जा! इस बोझ को मत ढो, नहीं तो इसी बोझ से डूब मरेगा। पाप के बोझ से ही लोग नहीं डूबते, पुण्य के बोझ से भी डूब जाते हैं। बोझ डुबाता है। और पाप से तो आदमी छूटना भी चाहता है; पुण्य को तो कस कर पकड़ लेता है। यह पत्थर है तेरे गले में; इसको छोड़ दे।

लेकिन सम्राट वू को यह बात पसंद न पड़ी। हमारी वासनाओं को यह बात पसंद
पड़ भी नहीं सकती। इतना किया, बेकार! सम्राट वू को पसंद न पड़ी, तो बोधिधर्म ने कहा कि मैं तेरे राज्य में प्रवेश नहीं करूंगा, वापस लौट जाता हूं। क्योंकि मैं तो सोच कर यह आया था कि तूने धर्म को समझ लिया होगा, इसलिए तू धर्म के फैलाव में आनंदित हो रहा है। मैं यह सोच कर नहीं आया था कि तू धर्म के साथ भी सौदा कर रहा है। मैं वापस लौट जाता हूं।
और बोधिधर्म वू के साम्राज्य में प्रवेश नहीं किया, नदी के पार रुक गया। वू को बड़ी बेचैनी हुई, सम्राट को। बड़े दिनों से प्रतीक्षा की थी इस आदमी की। यह बुद्ध की या लाओत्से की हैसियत का आदमी था। और उसने इस भांति निराश कर दिया। उसने सब जार-जार कर दिया उसकी आकांक्षाओं को। अगर यह एक सील-मुहर लगा देता और कह देता, हां सम्राट वू, तेरा मोक्ष बिल्कुल निश्चित है; सिद्ध-शिला पर तेरे लिए सब आसन बिछ गया है; तेरे पहुंचने भर की देर है। द्वार खुले हैं; स्वागत के लिए बैंड-बाजे सब तैयार हैं। तो वू बहुत प्रसन्न होता।
हमारी वासनाएं ही अगर हमारी प्रसन्नता हैं, तो धर्म के जगत में हमारे लिए कोई प्रवेश नहीं है। अगर निर्वासना होना ही हमारी प्रसन्नता है, तो ही प्रवेश हो सकता है। निर्वासना धर्म के लिए बहुत विचारणीय है। क्षुद्र वासनाओं के त्याग की बात नहीं है। गहन वासनाएं मन को पकड़े हुए हैं।
बुद्ध के पास एक आदमी आता है और वह कहता है, मैं ध्यान करूं, साधना करूं, आप जैसा कब तक हो जाऊंगा? बुद्ध ने कहा, जब तक तुझे यह ख्याल रहेगा कि मेरे जैसा कब तक हो जाएगा, तब तक होना मुश्किल है। यही ख्याल बाधा है। इस ख्याल को छोड़ दे। ध्यान कर। इस ख्याल से, इस वासना से नहीं कि बुद्ध जैसा कब तक हो जाऊंगा।
बुद्ध से कोई आकर पूछता है कि आपके इन दस हजार भिक्षुओं में कितने लोग ऐसे हैं, जो आप जैसे हो गए? तो बुद्ध कहते हैं, बहुत लोग हैं। तो वह आदमी कहता है, लेकिन उनका कुछ पता नहीं चलता। तो बुद्ध कहते हैं, उनको खुद अपना पता नहीं रहा है। तो वह आदमी पूछता है, लेकिन आपका तो पता चलता है और आप जैसा तो कोई नहीं दिखाई पड़ता! बुद्ध ने बड़े मजे की बात कही। बुद्ध ने कहा कि मैंने शिक्षक होने के लिए कुछ पाप-कर्म पिछले जन्म में किए थे, वे पूरे कर रहा हूं। शिक्षक होने के लिए--टु बी ए टीचर--वे पाप-कर्म मैंने किए थे। जैनों में तो पूरा सिद्धांत है उसके लिए कि कुछ कर्मों के कारण व्यक्ति को तीर्थंकर का जन्म मिलता है--कुछ कर्मों के कारण। कुछ कर्मों का आखिरी बंधन उसको तीर्थंकर बनाता है। और तब अपना बंधन काटने के लिए उसे लोगों को समझाना पड़ता है।
तो बुद्ध ने कहा, मैंने कुछ कर्म किए थे कि शिक्षक होने का उपद्रव मुझे झेलना पड़ेगा। वह मैं झेल रहा हूं। अपने-अपने किए का फल है। उन्होंने नहीं किया था। वे बिल्कुल खो गए हैं और शून्य हो गए हैं। समझाने के लिए भी उनके भीतर कोई नहीं है कि जो समझाए। सब खो गया है।
और जब इतना सब खो जाता है--वासना नहीं, कोई स्वार्थ नहीं--तब जिस शून्य
का उदय होता है, वही स्वभाव है, वही ताओ है।
आज इतना ही। कल हम शेष बात करेंगे। रुकें, पांच मिनट कीर्तन करें।

ताओ उपनिषद, भाग दो
तरालीसवां प्रवचन

धर्म है--स्वयं जैसा हो जाना

एक मित्र ने पूछा हैः क्या रुकने के लिए दौड़ना जरूरी नहीं है?

जरूरी है। लेकिन आप दौड़ ही रहे हैं। आप काफी दौड़ लिए हैं। लंबे जन्मों
की दौड़ आपके पीछे है; उसका ही आप परिणाम हैं। अब और दौड़ना जरूरी नहीं है; अब रुकना जरूरी है। लेकिन हमारा मन खुद को धोखा देने के लिए बहुत तरकीबें निकाल लेता है।
एक धर्मगुरु ने छोटे बच्चों को बहुत समझाया कि पाप से मुक्त होना हो,
तो प्रायश्चित्त करना चाहिए, प्रार्थना करनी चाहिए, परमात्मा के समक्ष अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए, कसम लेनी चाहिए कि दुबारा ऐसा अपराध नहीं करेंगे। बहुत समझाने के बाद उसने बच्चों से पूछा कि पाप से मुक्त होने के लिए क्या जरूरी है?
तो एक छोटे बच्चे ने कहा, पाप करना जरूरी है।
निश्चित ही, पाप से मुक्त होने के लिए पाप करना तो जरूरी है ही। लेकिन पाप करने से ही कोई मुक्त नहीं हो जाएगा। पाप करने के बाद कुछ और भी करना होगा। निश्चित ही, रुकने के लिए दौड़ना जरूरी है। लेकिन दौड़ने से ही कोई नहीं रुक जाएगा। और दौड़ तो चल ही रही है। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह दौड़ है।
इसलिए अपने मन को ऐसा मत समझाना कि मैं रुकने के लिए दौड़ रहा हूं। रुकने को हम भविष्य के लिए स्थगित कर सकते हैं--कि अभी दौड़ लें काफी, फिर रुकेंगे। लेकिन दा.ैड हम काफी लिए हैं। देर वैसे ही काफी हो चुकी है।
यह हो सकता है, हमारा मन अभी दौड़ने से न भरा हो। मन कभी भरता भी नहीं।
जो भर जाए, वह मन ही नहीं है। मन तो दौड़ाता ही रहेगा। एक दिशा बदलेगा, दूसरी दिशा बदलेगा। एक लक्ष्य बदलेगा, दूसरा लक्ष्य बदलेगा। मन तो दौड़ाता ही रहेगा।
लेकिन अगर यह दौड़ दुख हो, संताप हो, पीड़ा हो? और है। दौड़ सिवाय दुख के
और कुछ हो नहीं सकती। लेकिन हमारे मन की तर्कणा यह है कि हम सोचते हैं, दुख इसलिए है कि हम थोड़ा धीमे दौड़ रहे हैं। जरा जोर से दौड़ें, तो पहुंच जाएं मंजिल पर; दुख क्यों हो! या हम सोचते हैं कि दुख इसलिए है कि दूसरे हम से तेज दौड़ रहे हैं, वे पहले पहुंच जाते हैं और हम चूक जाते हैं। या हम सोचते हैं कि दौड़ तो बिल्कुल ठीक है; रास्ता हमने गलत चुन लिया है, जिस पर हम दौड़ रहे हैं। जो ठीक रास्ता चुन लेते हैं, वे पहुंच जाते हैं। या हम सोचते हैं कि दौड़ तो ठीक ही है, रास्ता भी ठीक है; लेकिन जो हम पाना चाहते हैं, विषय हमारी वासना का, शायद वह गलत है। धन को बदल लें धर्म से, संसार को बदल लें अध्यात्म से, तो फिर दौड़ पूरी हो सकती है।
नहीं होगी। दौड़ ही गलत है। न तो रास्ते गलत हैं, न दौड़ने वाला गलत है, न दौड़ने का ढंग और गति गलत है, और न जिसके लिए हम दौड़ रहे हैं वह लक्ष्य गलत है। दौड़ ही गलत है।
अगर लाओत्से को ठीक से समझें, तो लाओत्से कहता है, सक्रियता ही भूल है। दौड़ ही गलत है। रुक जाना और विश्राम और निष्क्रिय में डूब जाना ही सही है। इसलिए कोई सही दौड़ नहीं होती। लाओत्से के हिसाब से कोई सही दौड़ नहीं होती। दौड़ मात्र गलत है। रुकना मात्र सही है। कोई रुकना गलत नहीं होता; लाओत्से के हिसाब से कोई रुकना गलत नहीं होता। क्योंकि कोई दौड़ सही नहीं होती। सभी सक्रियताएं गलत हैं। निष्क्रियता ही परम स्वभाव है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप सांसारिक वासना को और आध्यात्मिक वासना को एक ही कह रहे हैं! सांसारिक वासना तो क्षुद्र चीज है। आध्यात्मिक वासना तो बहुत ऊंची, महत्व की बात है। और आध्यात्मिक वासना पानी हो, तो सांसारिक वासना छोड़नी पड़ती है।

लाओत्से को अगर समझेंगे, तो लाओत्से कहता है, कोई वासना सांसारिक नहीं होती, कोई वासना आध्यात्मिक नहीं होती। वासना संसार है और निर्वासना अध्यात्म है। इसलिए सांसारिक वासना का कोई मतलब नहीं होता। और आध्यात्मिक वासना का भी कोई मतलब नहीं होता। वासना ही संसार है। तो जब तक आप वासना में हैं, तब तक आप संसार में हैं। वह वासना मोक्ष को पाने की हो, तो भी आप सांसारिक हैं। और जब आप वासना में नहीं हैं, तब चाहे आप संसार में ही हों, आप मोक्ष में हैं।
इसे ऐसा समझें कि वासना का संबंध विषयों से, आब्जेक्ट्स से नहीं है। वासना का संबंध, क्या आप मांगते हैं, इससे नहीं है; मांगते हैं, इससे है। आप क्या मांगते हैं, यह असंगत है, इररेलेवेंट है। धन मांगते हैं, धर्म मांगते हैं; यश मांगते हैं कि मोक्ष मांगते हैं; मांगते हैं जब तक, तब तक आप संसार में हैं। जहां आप नहीं मांगते, आप मोक्ष में हैं। इसलिए मोक्ष मांगा नहीं जा सकता। जो नहीं मांगता है, वह मोक्ष को पा जाता है। मोक्ष की वासना नहीं हो सकती। जिसकी वासना छूट जाती है, वह मुक्त हो जाता है।
तो मोक्ष किसी वासना का परिणाम नहीं है। किसी दौड़ की अंतिम मंजिल नहीं है मोक्ष। किसी भी दौड़ में रुक जाने का नाम मोक्ष है। किसी भी दौड़ में कोई ठहर जाए, वह मुक्त हो गया। तो मोक्ष किसी यात्रा का गंतव्य नहीं है, अंत नहीं है। जहां रास्ता समाप्त होता है, वह मंजिल नहीं है मोक्ष। जहां दौड़ नहीं रह जाती, वहीं मोक्ष है। तो जहां भी आप रुक जाएं, रास्ते पर ही इसी वक्त रुक जाएं, वहीं मोक्ष है। जब भी चेतना ठहर जाती है... । और वासना में चेतना कभी नहीं ठहरती। वासना का अर्थ ही है, चेतना दौड़ती रहेगी।
इसलिए लाओत्से सांसारिक और आध्यात्मिक वासनाएं नहीं मानता। इसलिए आध्यात्मिक लोगों को लाओत्से से बड़ी परेशानी होती है; क्योंकि वे अपने मन में मान कर बैठे हैं कि हमने सांसारिक वासना छोड़ दी और ऊंची वासना पकड़ ली। कोई वासना ऊंची नहीं होती। कोई जहर ऊंचा नहीं होता। कोई पाप ऊंचा नहीं होता। जहर बस जहर है। वासना वासना है। हां, एक खतरा है। ऊंचा जहर तो नहीं होता, शुद्ध और अशुद्ध जहर हो सकता है। मिलावट हो, तो अशुद्ध होता है। मिलावट न हो, तो शुद्ध होता है। संसार की वासना अशुद्ध जहर है। मोक्ष की वासना शुद्ध जहर है।
इससे उन मित्र को परेशानी हुई कि आप आध्यात्मिक वासना को सांसारिक वासना से बुरी कह रहे हैं!
कारण है कहने का। क्योंकि संसार और वासना के साथ तो तालमेल है; संसार में वासना तो संगत है। मोक्ष के साथ वासना का कोई तालमेल ही नहीं है; बिल्कुल असंगत है। तो संसार और वासना में तो एक संगीत है; क्योंकि संसार हो ही नहीं सकता वासना के बिना। लेकिन मोक्ष और वासना में तो कोई लेन-देन नहीं है।
इसलिए जो आदमी मोक्ष की वासना में पड़ा है, वह बिल्कुल शुद्ध जहर में पड़ा हुआ है। वहां कुछ है ही नहीं। एक दफा संसार में दौड़ने वाला संसार को पा भी ले, मोक्ष के लिए दौड़ने वाला मोक्ष को कभी नहीं पा सकता। धन की तरफ दौड़ने वाला, धन की वासना करने वाला धन को पा ले, इसमें कोई बड़ी आश्चर्य की बात नहीं है। सभी पा लेते हैं। लेकिन मोक्ष की तरफ दौड़ने वाले ने कभी मोक्ष नहीं पाया है। वह असंभव है।
इसलिए जो आदमी वासना को मोक्ष की तरफ लगाता है, वह तो बहुत खतरनाक काम
कर रहा है। वह तो वासना को ऐसी जगह लगा रहा है कि वह कभी भी सफल नहीं हो सकती। संसार में तो सफल हो भी सकती है। संसार में वासना सफल भी होती है, असफल भी होती है। कोई पा लेता है, कोई नहीं पाता है। मोक्ष में वासना की सफलता का उपाय ही नहीं है। क्योंकि मोक्ष का अर्थ ही निर्वासना है। मोक्ष और वासना में कहीं कोई संबंध नहीं जुड़ता।
इसलिए सांसारिक उतनी बड़ी भूल में नहीं है जितना तथाकथित आध्यात्मिक भूल में है, क्योंकि वह जो खोज रहा है वह संभव है। और आध्यात्मिक जो खोज रहा है, वह असंभव है। तो एक आदमी अगर बाजार में बैठ कर धन और यश खोज रहा है, असंभव की तलाश नहीं है वह, संभव है। लेकिन एक आदमी मंदिर में बैठ कर परमात्मा को खोज रहा है, एक आदमी वन में बैठ कर मोक्ष को खोज रहा है, वह असंभव को खोज रहा है।

असल में, परमात्मा खोजा नहीं जाता; जब खोज बंद हो जाती है, तो वह यहीं मौजूद है। खोज के कारण ही वह दिखाई नहीं पड़ता। जैसे एक आदमी तेजी से दौड़ रहा हो इस कमरे में और खोज रहा हो, उसकी दौड़ के कारण ही चीज दिखाई न पड़ती हो। उसकी तेज इतनी हो दौड़ कि कुछ दिखाई न पड़ता हो।
जैसे एक आदमी बैलगाड़ी में सफर करता है, तो आस-पास के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। फिर हवाई जहाज में सफर करता है, तो डिटेल्स खो जाते हैं। फूल नहीं दिखाई पड़ते, वृक्ष नहीं दिखाई पड़ते; जंगल दिखाई पड़ते हैं। विस्तार खो जाता है। सूक्ष्मताएं खो जाती हैं। फिर एक आदमी राकेट में यात्रा करता है, तब जंगल भी खो जाते हैं, तब कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जितनी हो जाती है तेज गति, उतनी ही दृष्टि अंधी हो जाती है। फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जितनी हो जाती है तेज दौड़ वासना की, उतनी ही आंखें अंधी हो जाती हैं। दौड़ का धुआं और दौड़ की धूल इतनी भर जाती है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
और जिसको हम खोज रहे हैं, वह केवल तभी दिखाई पड़ता है जब आंखों पर कोई धुआं न हो, कोई धूल न हो, इतना विश्राम में हो मन कि जरा सी भी चहल-पहल न हो, जरा सी भी तरंग न हो बाधा डालने को। सब हो शून्य, मन बिल्कुल झील की तरह शांत हो; तत्क्षण उसकी तस्वीर, तत्क्षण उसका प्रतिबिंब बन जाता है। तत्क्षण वह दिखाई पड़ने लगता है।
तो लाओत्से कहता है, वासना संसार है। इसलिए कोई वासना आध्यात्मिक नहीं होती। और जो वासना को अध्यात्म का रंग देते हैं, वे अपने को बड़े से बड़ा धोखा दे रहे हैं। सांसारिक क्षम्य हैं, तथाकथित आध्यात्मिक अक्षम्य हैं। क्योंकि उन्होंने संसार की विधि को, और परमात्मा पर लगाया हुआ है। विधि संसार की है, ढंग संसार का है, और आकांक्षा परमात्मा की है। वासना, लोभ सब सांसारिक है, और इच्छा परमात्मा की है।
हम संसार को परमात्मा की तरफ नहीं मोड़ सकते। हम सांसारिक वृत्तियों
को अध्यात्म की तरफ नहीं मोड़ सकते। सांसारिक वृत्तियां विलीन हो जाएं तो जो शेष रह जाता है, वही अध्यात्म है।

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से ने जिस शुद्ध परम सत्य की चर्चा की है, धारणा मात्र को प्रक्षेप माना है और स्वभाव में ले जाने में धारणा मात्र से बाधा पड़ती है; इस परिप्रेक्ष्य में क्या धर्म या सत्य सदा हम साधारण लोगों की पहुंच के बाहर ही रहेगा? और क्या लाओत्से कथित सरल, सहज स्वभाव का आलिंगन अति दुर्लभ ही बना रहेगा?

साधारण मनुष्य की पकड़ के बिल्कुल बाहर नहीं है; जिसको असाधारण होने
का भ्रम है, उसकी पकड़ के बाहर है। साधारण आदमी बड़ी दुर्लभ बात है। उसे खोजना बहुत मुश्किल है। असाधारण तो सभी हैं। एक-एक से पूछ कर देख लें, सभी असाधारण हैं। ऐसा आदमी कभी आपको मिला है, जो साधारण हो?
और अगर कभी कोई कहता भी है कि मैं साधारण हूं, तो वह कहता है, मैं अति साधारण हूं। अति साधारण का मतलबः साधारणों में भी मैं असाधारण हूं। हर आदमी अपने को असाधारण मान कर चलता है। साधारण कोई भी नहीं अपने को मान कर चलता।
लाओत्से कहता है, साधारण हो जाओ और तुम पा लोगे। तुम्हारा असाधारण होना ही तुम्हारी बाधा है।
असाधारणता क्या है हमारी? कोई आदमी धन ज्यादा कमा लेता है, तो असाधारण है। कोई आदमी ज्ञान ज्यादा इकट्ठा कर लेता है, तो असाधारण है। कोई आदमी त्याग ज्यादा कर लेता है, तो असाधारण है। कभी आपने ख्याल किया, हमारी असाधारणता हमारे करने की मात्रा पर निर्भर होती है। तो जो जितना कर लेता है, उतना असाधारण हो जाता है।
और लाओत्से कहता है, न करने से पाया जाएगा वह सत्य। इसलिए असाधारण तो उसे कभी नहीं पा सकते; क्योंकि असाधारण का अर्थ ही होता है, जिन्होंने कुछ किया है। साधारण उसे पा लेंगे, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया है। लेकिन साधारण आदमी खोजना अति दुर्लभ है। यह बड़े मजे की बात है, सबसे साधारण धारणा यही है कि प्रत्येक आदमी अपने को असाधारण मानता है। कहे, न कहे; बताए, न बताए; अपने भीतर हर आदमी मानता है, वही केंद्र है सारे विश्व का। हर

आदमी अपने को मानता है कि वह अपवाद है, नियम नहीं। हर आदमी अपने को गौरीशंकर का शिखर मानता है; और इस शिखर को सिद्ध करने में सक्रिय रहता है। जो सिद्ध नहीं कर पाते हैं, उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, बड़ी ग्लानि, बड़ी दीनता होती है।

एक मित्र ने पूछा है कि आत्महीनता, इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स क्यों पैदा होता है?

इसीलिए पैदा होता है, आप मानते तो हैं अपने को गौरीशंकर और सिद्ध नहीं
कर पाते। आप मानते तो हैं कि जगत के केंद्र हैं, लेकिन सिद्ध नहीं कर पाते। फिर हीनता पैदा होती है। हीनता पैदा ही उन्हें होती है, जिनके मन में श्रेष्ठ होने का भाव है। उलटा लगेगा; लेकिन हमने जीवन को ऐसा ही उलटा कर लिया है कि उसमें सीधी-साफ बातें कहनी हों, तो उलटी मालूम होती हैं। जिस आदमी को भी श्रेष्ठ होने का भाव है, उसे हीनता का बोध पैदा हो जाएगा। उसे लगेगा मैं कुछ भी नहीं हूं, क्योंकि मानता है वह इतना अपने को और उतना सिद्ध नहीं कर पाता है। फिर पीड़ा पकड़ती है मन को कि मैं कुछ भी न कर पाया।

एक मित्र ने पूछा है कि मुझमें आत्मविश्वास नहीं है; वह कैसे पैदा हो?

पैदा करना ही मत। आत्म-विश्वास पैदा करने का मतलब ही क्या होता है? मैं कुछ हूं! मैं कुछ करके दिखा दूंगा! आत्म-विश्वास का मतलब यह होता है कि मैं साधारण नहीं हूं, असाधारण हूं। और हूं ही नहीं, सिद्ध कर सकता हूं। सभी पागल आत्म-विश्वासी होते हैं। पागलों के आत्म-विश्वास को डिगाना बहुत मुश्किल है। अगर एक पागल अपने को नेपोलियन मानता है, तो सारी दुनिया भी उसको हिला नहीं सकती कि तुम नेपोलियन नहीं हो। उसका भरोसा अपने पर पक्का है।
आत्म-विश्वास की जरूरत क्या है? क्यों परेशानी होती है कि आत्मविश्वास नहीं है? क्योंकि तुलना है मन में कि दूसरा आदमी अपने पर ज्यादा विश्वास करता है, वह सफल हो रहा है; मैं अपने पर विश्वास नहीं कर पाता, मैं सफल नहीं हो पा रहा हूं। वह इतना कमा रहा है; मैं इतना कम कमा रहा हूं। वह सीढ़ियां चढ़ता जा रहा है, राजधानी निकट आती जा रही है; मैं बिल्कुल पीछे पड़ा हुआ हूं। पिछड़ गया हूं। आत्म-विश्वास कैसे पैदा हो? कैसे अपने को बलवान बनाऊं? क्या मतलब हुआ? आत्म-विश्वास का मतलब हुआ कि आप दूसरे से अपनी तुलना कर रहे हैं और इसलिए परेशान हो रहे हैं।
आप आप हैं, दूसरा दूसरा है। अगर आप जमीन पर अकेले होते, तो क्या कभी आपको पता चलता कि आत्म-विश्वास की कमी है? अगर आप अकेले होते पृथ्वी पर, तो क्या आपको पता चलता कि मुझमें हीनता का भाव है, इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स है? कुछ भी पता न चलता। तब आप साधारण होते। साधारण का मतलब, आपको यह भी पता न चलता कि आप साधारण हैं। सिर्फ होते। जिसको यह भी पता चलता है कि मैं साधारण हूं, उसने असाधारण होना शुरू कर दिया। आप हैं, इतना काफी है। आत्मविश्वास की जरूरत नहीं है, आत्मा पर्याप्त है। आप हैं। क्यों तौलते हैं दूसरे से?
फिर दिक्कतें खड़ी होंगी। किसी की नाक आपसे बेहतर है, दीनता पैदा हो जाएगी। किसी की आंख आपसे बेहतर है, दीनता पैदा हो जाएगी। किसी की लंबाई ज्यादा है, दीनता पैदा हो जाएगी। किसी ने मकान बड़ा बना लिया, दीनता पैदा हो जाएगी। फिर हजार दीनताएं पैदा हो जाएंगी। फिर जितने लोग आपको दिखाई पड़ेंगे, उतनी दीनताएं आपके भीतर पैदा हो जाएंगी। उनका जोड़ इकट्ठा हो जाएगा। और आपकी मान्यता है कि आप हैं गौरीशंकर! अब बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। आप हैं जगत के सबसे बड़े शिखर; और हर आदमी जो मिलता है, वह बता जाता है कि आप एक खाई हैं, एक खड्ड हैं। तो आपकी यह स्थिति कि खड्ड-खाई चारों तरफ और आपका यह भाव कि मैं हूं गौरीशंकर का शिखर, इन दोनों के बीच जो खिंचाव पैदा होगा, वही आदमी की बीमारी है। वही रोग है, जिसमें हर आदमी सड़ जाता है, मर जाता है, मिट जाता है। दूसरे से तौलते क्यों हैं?

बोकोजू से किसी ने आकर पूछा है कि मैं शांत नहीं हूं, आप शांत हैं। मैं अशांत हूं, आप शांत हैं; मैं कैसे आप जैसा हो जाऊं? बोकोजू ने कहा, अगर मैं भी किसी से पूछता कि मैं कैसे आप जैसा हो जाऊं, तो कभी का अशांत हो गया होता। एक ही तरकीब है मेरी कि मैंने किसी से कभी पूछा नहीं कि मैं तुम जैसा कैसे हो जाऊं। मैं जैसा हूं, हूं। तुम जैसे हो, तुम हो। इनमें मैंने कभी कुछ और बदलाहट न चाही।
उस आदमी ने कहा कि मुझे ऊंची बातों की जरूरत नहीं; मुझे सीधा रास्ता बता दें। आप हैं शांत, मैं हूं अशांत; मैं शांत कैसे हो जाऊं? बोकोजू ने कहा, तू रुक; जरा लोग चले जाएं, तो तुझे बताऊं। फिर लोग आए, गए; दिन बीत गया, सांझ होने लगी। उस आदमी ने कहा, अब तो बहुत देर भी हो गई; अब जल्दी मुझे बता दें। बोकोजू उसे लेकर बाहर आया और उसने कहा कि देख, मेरे मकान के पीछे एक छोटा वृक्ष है और एक बड़ा वृक्ष है। वर्षों हो गए मुझे इस मकान में रहते, मैंने कभी छोटे वृक्ष को बड़े वृक्ष से पूछते नहीं देखा कि तू बड़ा है, मैं छोटा हूं; मैं बड़ा कैसे हो जाऊं? इसलिए बड़ी शांति है। बड़ा बड़ा है, होगा बड़ा; छोटा छोटा है। और यह भी हम आदमी सोचते हैं कि यह छोटा है और यह बड़ा है। छोटे को छोटे होने का पता नहीं है; बड़े को बड़े होने का पता नहीं है। इसलिए बड़ा सन्नाटा है; कभी कोई विवाद नहीं, कोई संघर्ष नहीं, कोई उपद्रव नहीं। मैं मैं हूं, तू तू है। और यह तू छोड़ दे ख्याल कि तू दूसरे जैसा कैसे हो जाए। वह आदमी बोला कि कैसे छोड़ दूं? मैं बहुत अशांत हूं! बोकोजू ने कहा कि तेरी अशांति का कारण मैं तुझे बता रहा हूं। दूसरे से जो अपने को तौलेगा, वह अशांत रहेगा ही।
लाओत्से कहता है, अपने को स्वीकार कर लो। अस्वीकृति में ही सारा उपद्रव है। और हममें से कोई अपने को स्वीकार नहीं करता, कोई नहीं। और जो जितना अपने को अस्वीकार करता है, उतना बड़ा महात्मा मालूम होता है। हममें से कोई अपने को स्वीकार नहीं करता। हम सब अपने दुश्मन हैं। हमारा बस चले, तो हम सब काट-पीट कर अलग कर दें अपने में से।
हम सबको दूसरे स्वीकार हैं, स्वयं की कोई स्वीकृति नहीं है। और जिनको
हम स्वीकार कर रहे हैं, जरा उनकी तरफ झांक कर देखो। वे भी अपने को स्वीकार नहीं किए हुए हैं; वे दूसरों को स्वीकार कर रहे हैं। अगर एक-एक आदमी का मन खोल कर सामने रखा जा सके, तो एक ही बीमारी मिलेगी कि कोई अपने को स्वीकार नहीं करता है--कोई! और जो अपने को स्वीकार करता है, उसकी फिर कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि जहां तुलना नहीं है, वहां दीनता कैसी, हीनता कैसी, श्रेष्ठता कैसी? असाधारण कौन, साधारण कौन?
वह तो अच्छा है कि हम आदमियों से ही तुलना करते हैं। नहीं तो गुलाब में गुलाब का फूल खिला है, हम छाती पीटें कि हममें अब तक एक फूल भी नहीं खिला! बड़े हीन हो गए! आकाश में चांद निकला है; हम आंसू बहा रहे हैं कि ऐसी रोशनी कभी हमारे चेहरे से न निकली! वह तो अच्छा है कि हमने अपनी बीमारी आदमी तक ही सीमित रखी है। अगर हम फैला लें, तो हमें कोई भी दीन-हीन कर जाएगा। एक छोटी सी तितली उड़ रही होगी, और उसके पंखों का रंग हमें हीन कर जाएगा। एक हिरण दौड़ रहा होगा, और उसकी गति और उसकी चमक हमें दीन कर जाएगी। सड़क के किनारे एक छोटा सा पत्थर चमक रहा होगा वर्षा में, और उसकी चमक हमें फीका कर जाएगी। तो अच्छा है कि हम आदमियों से ही तौलते हैं।
तौलेंगे, तो दीन हो जाएंगे। दोहरी बीमारी है। खुद को माने बैठे हैं शिखर; और फिर तौलते हैं, तो दीनता पैदा होती है। तो दो स्थितियां तनाव की बन जाती हैं। गड्ढ दिखाई पड़ता है वस्तुतः और कल्पना में दिखाई पड़ता है शिखर। दोनों के बीच कहीं कोई तालमेल नहीं बैठता। जीवन इसी में टूट जाता है।
लाओत्से कहेगा कि साधारण हो, इससे शुभ और कुछ भी नहीं। स्वीकार कर लो अपनी साधारणता।
लेकिन हर कोई हमें समझा रहा है, कुछ बन कर दिखाओ! यह बन जाओ, वह बन जाओ; ऐसे बन जाओ, वैसे बन जाओ। बचपन से मां-बाप पीछे पड़े हैं, कुछ बन कर दिखाओ।
शिक्षक पीछे पड़े हैं, कुछ बन कर दिखाओ। क्या साधारण ही रह जाओगे? संसार में आए हो, कुछ करके दिखाओ।

बड़े आश्चर्य की बात है, जिन्होंने करके दिखाया है, वे कब्रों में पड़े हैं वैसे ही। जिन्होंने नहीं करके दिखाया, वे भी विश्राम कर रहे हैं कब्रों में। और कब्रें कोई फर्क नहीं करतीं कि तुमने कुछ करके दिखाया था कि कुछ करके नहीं दिखाया था। और करके जिन्होंने दिखाया है, क्या है उसका परिणाम? सपने में जैसे हम कुछ कर लें, ऐसा ही जीवन में कुछ करना है। सुबह जाग कर सब मिट जाता है। पानी पर खींची गई रेखाओं सा सब खो जाता है। लेकिन हर एक पीछे पड़ा है, कुछ करके दिखाओ। क्योंकि करने को हम मानते हैं कोई गुण है।
लाओत्से कहता है, न करना गुण है।
इसका यह मतलब नहीं कि लाओत्से कहता है, कुछ करो मत। इसका यह मतलब नहीं
है कि रोटी कमाने मत जाओ। इसका यह मतलब नहीं है कि नौकरी मत करो। इसका यह मतलब नहीं है कि हाथ-पैर मत हिलाओ। लाओत्से कहता है कि न करने में ठहरे रहो। न करना तुम्हारा केंद्र रहे। और तुम्हारा जो करना निकले, वह करने की दौड़ से नहीं, न करने की स्वीकृति से निकले। तो तुम्हारी वासनाएं अपने आप कम होंगी। आवश्यकताएं रह जाएंगी, वासनाएं खो जाएंगी। जरूरतें रह जाएंगी। और आदमी की जरूरत इतनी कम है कि जिसका कोई हिसाब नहीं; और आदमी की वासना इतनी ज्यादा है कि जिसका कोई अंत नहीं।
लाओत्से कहता है, अगर तुम साधारण अपने स्वभाव में जीओ, तो तुम उतना कर लोगे जितनी तुम्हारी जरूरत है। पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। आदमी कुछ ऐसा कमजोर नहीं है। वे भी अपने लिए जुटा लेते हैं। लेकिन पशु करने से पीड़ित नहीं हैं। करते जरूर हैं, करने से पीड़ित नहीं हैं। कोई पशु कुछ होने की कोशिश में नहीं लगा है। सभी मोर एक जैसे मोर हैं। सभी तोते एक जैसे तोते हैं। अपना खा लेते हैं, पी लेते हैं, सो लेते हैं, गीत गा लेते हैं, नाच लेते हैं, आकाश में उड़ लेते हैं। कोई साधारण नहीं है, कोई असाधारण नहीं है। कोई छोटा नहीं है, कोई बड़ा नहीं है। करते तो वे भी हैं; लेकिन करने में कोई दौड़ नहीं है। और करने के पीछे सब कुछ लगा देने का कोई पागलपन भी नहीं है।
आदमी भर पागल है। आदमी का करना महत्वपूर्ण हो गया है उसके विश्राम से
भी ज्यादा। हम करते ही किसलिए हैं? आदमी करता इसलिए है कि कभी विश्राम कर सके। और अंत यह होता है कि विश्राम का मौका ही नहीं आता और करते-करते ही समाप्त हो जाता है। लक्ष्य क्या है?
डायोजनीज विश्राम कर रहा है अपनी रेत में पड़ा हुआ। नग्न है। सिकंदर उससे मिलने गया है। और सिकंदर कहता है कि इतनी मौज! इतना आनंद! फिर भी मैं पूछता हूं कि मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकूं, तो मुझे कहो।
डायोजनीज ने कहा कि थोड़ा हट कर खड़े हो जाओ। सूरज की रोशनी आती थी, तुम बाधा बन गए हो। और ज्यादा तुम क्या कर सकोगे? हम बड़े मजे में थे, रोशनी पड़ती थी सुबह की ताजी, तुम जरा बीच में आ गए। जरा हट जाओ।
सिकंदर को बड़ी मुश्किल मालूम पड़ी। वह सोचता था कुछ करके दिखाएगा डायोजनीज को। कर सकता था, धन के अंबार लगा सकता था। और डायोजनीज ने क्या मांगा? सिकंदर ने कहा, डायोजनीज, तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं! मैं हूं महान सिकंदर; कुछ मांग ले। डायोजनीज ने कहा, तुम्हारी बड़ी कृपा है कि तुम हट गए। इससे बड़ी और क्या बात हो सकती है कि मेरे और सूरज के बीच अब कोई भी नहीं है।
यह आवश्यकता वाला आदमी है, वासना वाला नहीं। इतनी आवश्यकता थी, इतनी जरूरत थी कि बीच से हट जाओ। बात खतम हो गई। ये पक्षियों जैसा जी रहा है यह आदमी। उतने ही निसर्ग में, उतनी ही सरलता में।
सिकंदर से डायोजनीज पूछता है, क्या इरादे हैं? सिकंदर कहता है, दुनिया जीतूं! दुनिया जीतना चाहता हूं, सारी दुनिया जीतना चाहता हूं। डायोजनीज पूछता है, फिर क्या करोगे? सिकंदर कहता है, फिर विश्राम करूंगा। और डायोजनीज खूब खिलखिला कर हंसता है। सिकंदर पूछता है, क्यों हंसते हो? डायोजनीज ने कहा, हम अभी विश्राम कर रहे हैं। विश्राम करने के लिए दुनिया जीतना, हमें कुछ समझ नहीं आया। अगर विश्राम ही लक्ष्य है, तो डायोजनीज अभी विश्राम कर रहा है। और दुनिया जीतने का इससे कोई संबंध नहीं है। लेकिन सिकंदर, तुम भूल में हो, विश्राम तुम कर न सकोगे। क्योंकि तुम्हें गणित का ही पता नहीं है। जिसे विश्राम करना है, वह दुनिया जीतने क्यों जाएगा?

क्योंकि अगर दुनिया जीत कर ही विश्राम हो सकता होता, तो डायोजनीज विश्राम कैसे करता? कोई संबंध नहीं है, कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम कभी विश्राम न कर सकोगे। और तुम सिर्फ भ्रम में हो कि विश्राम करूंगा। तुम मर जाओगे ऐसे ही दौड़ते-दौड़ते।
और सिकंदर ऐसे ही दौड़ते-दौड़ते मर गया।
हम सब भी सोचते हैं, कभी विश्राम करेंगे। सोचते हैं, ये-ये शर्तें पूरी हो जाएं, तो फिर हम विश्राम करेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि वे शर्तें पूरी हो जाएं। लेकिन तब तक काम करना आपके लिए ऐसी विक्षिप्तता हो चुकी होगी कि जिस दिन आपका बिस्तर बन कर तैयार होगा, उस दिन तक आपकी नींद खो गई होगी। और जब तक आप भोजन जुटा पाएंगे, तब तक भूख मर चुकी होगी। क्योंकि भोजन जुटाने में आदमी भूख की कुर्बानी चढ़ा देता है। और अच्छा बिस्तर जुटाने में आदमी नींद को समाप्त कर डालता है; नींद को चढ़ा देता है बलिवेदी पर कि एक अच्छा बिस्तर मिल जाए। और अच्छा बिस्तर इसलिए मिल जाए कि उस पर सो सके। फिर जब बिस्तर मिल जाता है, तो नींद नहीं होती। जब भोजन मिल जाता है, तो भूख नहीं होती।
इस दुनिया में दो तरह के दरिद्र लोग हैं। एक, जिनके पास भूख है, भोजन नहीं। एक, जिनके पास भोजन है, भूख नहीं। बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि दुनिया में दो जातियां हैं--हैव्स एंड हैव नाट्स। गलत है वह बात। दुनिया में दो जातियां हैं--हैव नाट्स एंड हैव नाट्स। क्योंकि किसी के पास भोजन है, तो भूख नहीं है। किसी के पास भूख है, तो भोजन नहीं है। और ध्यान रहे, इन दोनों में दरिद्र वह ज्यादा है, जिसके पास भोजन है और भूख नहीं। क्योंकि भोजन बाहरी चीज है, भूख भीतरी चीज है। और भोजन तो मांगा भी जा सकता है, चुराया भी जा सकता है। भूख मांगी भी नहीं जा सकती, चुराई भी नहीं जा सकती। जिसके पास भोजन है और भूख नहीं, उसके पास भीतर कुछ मर गया है और बाहर कुछ इकट्ठा हो गया है। और मजा यह है कि बाहर यह इकट्ठा उसने किया ही इसलिए था कि वह भीतर जो है, उसका आनंद ले सके। लेकिन उसे ही बेच डाला बाजार में। जिसे बचाने निकले थे, उसे बेच डाला। और आदमी निरंतर इस भूल से गुजरता है।
आवश्यकता रह जाएगी, अगर आदमी निष्क्रियता में प्रवेश कर जाए। सक्रियता नहीं खो जाएगी, लेकिन सक्रियता आवश्यकता के अनुपात में हो जाएगी। उससे ज्यादा नहीं। और यह जो निष्क्रिय को भीतर जान लेने वाला आदमी है, यह साधारण हो जाएगा। यह विक्षिप्तता की बातें छोड़ देगा कि मैं सिकंदर हो जाऊं, कि नेपोलियन हो जाऊं, कि हिटलर हो जाऊं, या बुद्ध हो जाऊं, महावीर हो जाऊं। नहीं, यह कुछ भी नहीं होना चाहेगा। यह जो है, वह काफी है। मार्टिन लूथर ने मरते वक्त कहा है कि परमात्मा से मिलने जा रहा हूं। जिंदगी भर मैंने कोशिश की कि जीसस क्राइस्ट हो जाऊं। और अब मुझे ख्याल आता है कि परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तुम जीसस क्राइस्ट क्यों नहीं हो सके? वह मुझसे पूछेगा, तुम मार्टिन लूथर क्यों नहीं हो सके? जीसस क्राइस्ट से क्या लेना-देना था? जीसस क्राइस्ट जीसस क्राइस्ट जाने उनका होना। मैं था लूथर। तो अब मुझे ख्याल आता है कि जिंदगी तो मैंने जीसस जैसा होने में लगाई। परमात्मा मुझसे पूछेगा कि तुम लूथर क्यों न हो सके? जो तुम हो सकते थे, वह तुम क्यों न हो सके? और जो तुम थे ही नहीं, उस होने में तुमने समय क्यों व्यतीत किया?
परमात्मा किसी से भी नहीं पूछेगा कि तुम बुद्ध क्यों नहीं बने, महावीर क्यों नहीं बने, कृष्ण क्यों नहीं बने? वह यही पूछेगा कि तुम जो हो सकते थे, वह भी तुम क्यों न हो सके?
नहीं हो पाते हम, क्योंकि हम कुछ और होने में लगे हैं। जो हम हो सकते हैं, वह हम हो नहीं पाते। और जो हम हो नहीं सकते हैं, वह हम होने में लगे रहते हैं। ऐसे जीवन चूक जाता है। सारा अवसर खो जाता है। फिर दीनता पैदा होगी, इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स पैदा होगी, आत्मग्लानि होगी। लगेगाः मैं कुछ भी नहीं हूं। उदासी घेर लेगी, विषाद पकड़ लेगा। और जिंदगी एक बोझ हो जाएगी, एक नृत्य नहीं।
लाओत्से जो कह रहा है, वह एक नृत्य का जीवन है, लेकिन सहज। और जब मैं कहता हूं कि लाओत्से जो कह रहा है, वह एक नृत्य का जीवन है; तो वह यह नहीं कह रहा है कि तुम निजिंस्की जैसे नाचो, कि तुम कोई बहुत बड़े नृत्यकार, कि तुम

कोई उदयशंकर हो जाओ। तुम नाच सको आनंद से, यह काफी है। टेढ़ा-मेढ़ा ही सही तुम्हारा नाच--तुम्हारा हो, आथेंटिक हो, प्रामाणिक हो। जरूरत नहीं है कि तुम्हारे पास कोई तानसेन के स्वर हों। तुम्हारा अपना स्वर हो, अपने ही हृदय से उठा। न हो राग उसमें, न हो काव्य उसमें, कुछ भी न हो; बस एक अस्तित्व की मांग है कि वह तुम्हारा हो, प्रामाणिक रूप से तुम्हारा हो।
और परमात्मा के सारे आनंद की वर्षा उस पर हो जाती है, जो प्रामाणिक रूप से स्वयं है।
तो लाओत्से की सारी चिंतना असाधारण व्यक्ति के लिए नहीं है। और दूसरी धार्मिक परंपराओं में असाधारण व्यक्ति का बड़ा मूल्य है। लाओत्से के लिए तो साधारण व्यक्ति का ही मूल्य है। ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं। तुम्हारा पता भी किसी को क्यों चले?
तो यह प्रश्न सार्थक मालूम पड़ सकता है तथाकथित धार्मिक चिंतनाओं के संदर्भ में, जहां कहा जाता हैः यह हो जाओ, यह हो जाओ, यह हो जाओ। व्यर्थ है तुम्हारा जीवन। तुम्हारा जीवन सदा व्यर्थ है। किसी और का जीवन सार्थक है; तुम वैसे हो जाओ।
लाओत्से कहता है, तुम सार्थकता हो स्वयं! तुम हो; यह काफी है कि परमात्मा ने तुम्हें अंगीकार किया है। तुम हो; यह पर्याप्त है कि परमात्मा तुम्हारे पीछे खड़ा है; उतना ही जितना बुद्ध के, उतना ही जितना लाओत्से के। तुम्हें उतनी ही श्वास देता है, जरा सी भी कंजूसी नहीं है। तुम्हें उतनी ही हृदय की धड़कनें देता है, जरा सा भी भेदभाव नहीं है। तुम पर से सूरज जब गुजरता है, तो ऐसा नहीं कि अपनी किरणें सिकोड़ लेता है। और तुम्हारे पास से हवा जब गुजरती है, तो ऐसा नहीं कि संकोच कर लेती है कि कहां छोटे से आदमी के पास से गुजरना पड़ रहा है! पूरा अस्तित्व तुम्हें उसी तरह अंगीकार करता है, जैसे किसी और को।
लेकिन तुम ही अपने को अंगीकार नहीं करते, तब अस्तित्व भी क्या कर सकता है!
लाओत्से कहता है, असाधारण-साधारण की बात ही बकवास है, तुलना ही व्यर्थ है, कंपेरिजन ही अर्थहीन है। कोई ऐसा है, कोई वैसा है; इनमें नीचे-ऊपर कोई नहीं है। भिन्नताएं हैं, श्रेष्ठताएं नहीं हैं जगत में।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। जगत में श्रेष्ठताएं और हीनताएं नहीं हैं; जगत में भिन्नताएं हैं। बुद्ध तुमसे भिन्न हैं। ऊंचे-नीचे की बात बिल्कुल फिजूल है। और अगर वे खिल सके हैं फूल की भांति, तो इसीलिए कि उनकी किसी से कोई तुलना उनके मन में नहीं है। वे किसी से ऊंचे नहीं होना चाहते, किसी से नीचे नहीं होना चाहते। दूसरा उनकी दृष्टि में ही नहीं है। वे अपने को खोल लिए हैं।
और तुम्हारी तकलीफ यही है कि तुम्हें बुद्ध परेशान कर रहे हैं, महावीर परेशान कर रहे हैं, कृष्ण परेशान कर रहे हैं, क्राइस्ट परेशान कर रहे हैं। कैसे मैं कुछ और हो जाऊं, जो मैं नहीं हूं--यही नरक है। कैसे मैं वही हो जाऊं, जो मैं हूं--यही स्वर्ग है। और जिस दिन यह ख्याल ही मिट जाता है, यह होने की बात ही, बिकमिंग की बात ही मिट जाती है कि मैं कुछ हो जाऊं; जो हूं, हूं; जिस दिन बीइंग ही रह जाती है, उस दिन मोक्ष है।
लाओत्से तो साधारण आदमी के बड़े पक्ष में है। वह महामानवों के पक्ष में नहीं है। वह मनुष्य के पक्ष में है, विशेषणहीन मनुष्य के पक्ष में है; नोबडी, जिस पर कोई विशेषण नहीं, उसके पक्ष में है।

एक मित्र ने पूछा है कि हमारी सारी शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति स्वभाव पर आवरण बन जाते हैं। तो क्या ऐसी शिक्षा नहीं हो सकती जो हमारे स्वभाव पर आवरण न बने, वरन उसके उदघाटन में सहयोगी हो जाए?

शिक्षा का अर्थ ही होता है, जो बाहर से दी जाए, कोई और दे। संस्कार का अर्थ यह होता है, बाहर से डाले जाएं, कोई डाले। तो गहरे अर्थ में सभी शिक्षाएं और सभी संस्कार स्वभाव पर आवरण बनेंगे। इतना ही हो सकता है कि कुछ आवरण बहुत जटिल हों, कुछ आवरण कम जटिल हों। इतना ही हो सकता है कि कुछ आवरण लोहे के बन जाएं और कुछ आवरण हवा के आवरण हों। आवरण तो होंगे ही।

इस बात को ठीक से समझ लें।
शिक्षा संसार के लिए जरूरी है। अगर संसार में जीना है, संसार में चलना है, वासना में दौड़ना है, सक्रिय होना है, तो शिक्षा जरूरी है। शिक्षा सक्रियता का प्रबंध है। इसलिए जो जितना शिक्षित है, उतना सक्रियता के जगत में सफल होता हुआ मालूम पड़ता है। जो जितना अशिक्षित है, उतने सक्रियता के द्वार-दरवाजे बंद हो जाते हैं। शिक्षा सक्रियता की टेक्नालाजी है। लेकिन स्वभाव में जाने के लिए किसी शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। स्वभाव में जाने के लिए तो जो भी शिक्षा मिली हो, उसको छोड़ने का साहस चाहिए। जो भी शिक्षा मिली हो, उसे छोड़ने का साहस चाहिए। इसे हम ऐसा समझें, इस प्रश्न को हम ऐसा रखें, तो ख्याल में आ जाए।
लाओत्से कहता है कि वस्त्र मनुष्य की नग्नता को छिपा लेते हैं। हम पूछ सकते हैं, माना कि वस्त्र नग्नता को छिपा लेते हैं, क्या ऐसे कोई वस्त्र नहीं हो सकते जो नग्नता को न छिपाएं?
वस्त्र तो कैसे भी हों, नग्नता को छिपाएंगे; छिपाने की मात्रा में फर्क हो सकता है। कांच के वस्त्र बनाए जा सकते हैं, ट्रांसपैरेंट; वे बहुत कम छिपाएंगे। लेकिन फिर भी छिपाएंगे। और नग्न किसी को होना हो, तो कैसे भी वस्त्र हों, उसे उतार कर रख देने होंगे। चाहे वे लोहे के हों और चाहे कांच के हों, चाहे उनके पार दिखाई पड़ता हो और चाहे पार दिखाई न पड़ता हो। वस्त्र तो हटा ही देने होंगे, तो ही नग्नता प्रकट होगी।
स्वभाव हमारी आंतरिक नग्नता है। संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा हमारे वस्त्र हैं। उन वस्त्रों में हम दब जाते हैं। धीरे-धीरे वस्त्र इतने उपयोगी सिद्ध होते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि वस्त्रों के अलावा भी हमारा कोई होना है। भीतर की बात तो हम छोड़ दें, बाहर भी ऐसा हो जाता है। अगर आप भी अपने आपको रास्ते में नग्न मिल जाएं, तो पहचान न पाएंगे। या कि आप सोचते हैं पहचान लेंगे? अचानक एक दिन आप अपने दरवाजे से निकलें और आप ही अपने को दरवाजे पर नग्न मिल जाएं! आप नहीं पहचान पाएंगे। हम अपने को भी अपने वस्त्रों से ही पहचानते हैं।
जर्मन कनसनट्रेशन कैंप्स में बड़ी हैरानी अनेक लोगों को अनुभव हुई। क्योंकि जब नाजी लोगों को पकड़ते थे, तो पहला काम यह करते कि उनके सारे वस्त्र, उनके सब सामान छीन लेते। फिर उनके सिर, दाढ़ी, मूंछ सब घोट देते। तो एक मनसविद फ्रैंकेल ने लिखा है... । वह एक बड़ा डाक्टर, बड़ा मनसविद है। वह भी पकड़ा गया, यहूदी है। उसके साथ पांच सौ लोग पकड़े गए, उसके ही गांव के लोग थे। सब परिचित थे; कोई वकील था, कोई जज था, कोई चिकित्सक था, कोई शिक्षक था, कोई कोई था। उन पांच सौ ही लोगों के सिर मूंड़ दिए गए; उनके सब वस्त्र, कपड़े, सब निकाल लिए गए; चश्मा-घड़ी सब सामान अलग कर लिया गया।
फ्रैंकेल ने लिखा है कि जब हम पांच सौ ही नग्न खड़े हुए, तो कोई किसी को पहचान न पाए। समझ में ही न आए कि ये कौन लोग खड़े हैं! और फ्रैंकेल ने लिखा है कि जब मैं खुद आईने के सामने खड़ा हुआ--सिर घुटा, नग्न--तो मुझे भरोसा न आया कि यह मैं ही हूं।
आपकी अपनी जो आइडेंटिटी है, आपका जो अपना तादात्म्य है, वह आपके वस्त्र हैं बाहर भी। जरा देखें, एक मजिस्ट्रेट को और एक चोर को नग्न खड़ा कर दें; फिर बता दें, कौन मजिस्ट्रेट है और कौन चोर है। हो सकता है, नग्न चोर ही शान से खड़ा हो और मजिस्ट्रेट चोर मालूम पड़े। सारी गरिमा खो जाए मजिस्ट्रेट की; क्योंकि वह गरिमा वस्त्रों की है। इसलिए वस्त्रों पर हमारा इतना मूल्य है। एक सम्राट के वस्त्र छीन लें; सब छिन जाता है।
बाहर ही ऐसा होता, तो ठीक था; भीतर भी ऐसा ही है। भीतर के वस्त्र महीन हैं, सूक्ष्म हैं, पता नहीं चलता। शिक्षा है। आपकी शिक्षा छीन लें, तो आप में और आपके नौकर में कहीं कोई फर्क रह जाए? आप दस-पांच साल विश्वविद्यालय में ज्यादा देर बैठे हैं, वह जरा कम देर बैठा है; पर उसने कितना फर्क ला दिया है! आप सुसंस्कृत हैं, वह असभ्य है। आप जहां जाएंगे, लोग नमस्कार करेंगे। वह जहां से भी गुजरेगा, कोई उसे देखेगा भी नहीं।
कभी आपने यह ख्याल किया कि आपके कमरे में एक मेहमान आए, तो एक आदमी भीतर आता है। और जब आपका नौकर उस कमरे में आता है, जाता है, तो आपको पता भी नहीं चलता कि कोई आदमी भीतर आया और गया। नौकर कोई आदमी थोड़े ही है। नौकर

कोई आदमी नहीं है। फर्क क्या है आपकी आदमियत में और उसकी आदमियत में? इतना ही कि आप स्कूल की बेंचों पर थोड़ी देर ज्यादा बैठे। इतना ही कि आपके पास जो वस्त्र हैं अपने को छिपाने के, वे जरा कीमती हैं। आपकी नग्नता जरा कीमती वस्त्रों में छिपी है और उसकी नग्नता जरा दरिद्र वस्त्रों में छिपी है। लाओत्से कहता है, सभी शिक्षा वस्त्र निर्मित करती है--भीतर आत्मा पर, स्वभाव पर। सभी संस्कार, जो मैं हूं, उसको दबा देते हैं। वह कहता है, इन सभी संस्कारों को छोड़ कर स्वयं को जाना जाता है।
निश्चित ही, ऐसी संस्कृति हो सकती है, जो इतने जोर से दबा दे कि छुटकारे का उपाय न छोड़े। ऐसी भी संस्कृति हो सकती है, जो साथ-साथ छुटकारा भी सिखाए। आपको ऐसे कपड़े भी पहनाए जा सकते हैं, जिनको निकालना मुश्किल हो जाए। और ऐसे कपड़े भी पहनाए जा सकते हैं कि आप क्षण में उनके बाहर निकल जाएं।
जो संस्कृति ऐसी शिक्षा देती है और ऐसे संस्कार देती है, जिनके बाहर निकलना जरा भी मुसीबत न हो, वह संस्कृति धार्मिक है। और जो संस्कृति ऐसे वस्त्र देती है कि वे वस्त्र नहीं, चमड़ी की तरह पकड़ जाते हैं, छोड़ते नहीं फिर, छूटना मुश्किल हो जाता है, उनके बाहर निकलने में बड़ी अड़चन हो जाती है, वह संस्कृति अधार्मिक है। धार्मिक संस्कृति वह है, जो स्वयं से छूटने का उपाय भी देती है। धार्मिक संस्कृति वह है, जो आपको संस्कार भी देती है और संस्कार के बाहर जाने का मार्ग भी देती है। लेकिन संस्कार तो सभी बांधेंगे। साथ में बाहर निकलने का मार्ग भी हो सकता है; होना चाहिए। अगर हो, तो संस्कृति धार्मिक हो जाती है।

एक मित्र ने पूछा है कि पूर्व-धारणा बना कर स्वयं में प्रवेश करने पर सरल स्व का उदघाटन संभव नहीं। बताएं कि पूर्व-धारणा के बिना स्व-बोध के प्रति प्रवृत्ति संभव है क्या? क्या जिज्ञासा का मूल कारण वस्तु-तत्व का पूर्व-ज्ञान नहीं है?

इसको ही कहते हैं पूर्व-धारणा। यह प्रश्न पूर्व-धारणा से भरा हुआ है। जैसे वे कहते हैं, "पूर्व-धारणा बना कर स्वयं में प्रवेश करना संभव नहीं।"
यह माना हुआ हो गया। प्रवेश करके देखा है? यह धारणा बना ली बिना प्रवेश किए कि संभव नहीं। अब संभव बहुत मुश्किल होगा। यह धारणा ही रुकावट डालेगी कि संभव नहीं। जो संभव नहीं है, उसका प्रयास ही क्यों करिएगा। असंभव है, दरवाजा बंद कर लिया। अब कठिन हो जाएगा।
धारणामुक्त होने का अर्थ है कि बिना जाने मन को खुला रखें, बांधें मत। संभव है या असंभव है, ऐसा निर्णय न करें। प्रयोग करें, निर्णय न करें। अनुभव करें, निर्णय न करें। अनुभव से ही निर्णय को आने दें। निर्णय से अनुभव को मत निकालें। क्योंकि अगर पहले ही तय कर लिया, तो फिर प्रयोग की वैज्ञानिकता समाप्त हो गई। आप तो पहले ही तय कर लिए हैं कि क्या होने वाला है। अब जानने को कुछ बचा नहीं। और अब आपका यह जो मन है, पूरी कोशिश करेगा वही सिद्ध करने का जो इसने मान लिया है। हम सब अपने मन को सिद्ध करने में लगे रहते हैं। जो मान लेते हैं, वह सही निकले, बड़ी खुशी होती है।
एक मित्र मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा, गीता में आपको सुना, तब तो मन
को बड़ी खुशी हुई। अभी लाओत्से में सुनते हैं, तो उतनी खुशी नहीं होती, बल्कि थोड़ी बेचैनी होती है।
गीता में सुना, तो मन को खुशी हुई होगी; क्योंकि गीता पहले से ही माने बैठे थे। तो लगा होगा कि ठीक वही कह रहे हैं, जो मैं मानता हूं। चित्त को बड़ी शांति मिलती है। मेरे अहंकार में एक और ईंट जुड़ गई। मकान और थोड़ा बड़ा हुआ। अगर कोई ऐसी बात पता चले कि मकान की एक ईंट खिसक गई और नींव हिलने लगी, तो बेचैनी होती है। हम सत्य की तलाश में थोड़े ही हैं; हम अपने ही मन की तलाश में हैं। हमारा मन सिद्ध हो जाए; और सब बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर हमारे गवाही हो जाएं। गवाही, अदालत में जैसे आदमी गवाहियां खड़ी कर देता है कि ये बारह गवाह खड़े हैं मेरे; ऐसा हमारा भी मन है कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण,

क्राइस्ट, हमारे गवाह की तरह खड़े हो जाएं और कहें कि तुम बिल्कुल ठीक हो।
तुम ठीक हो, यह सारे लोग कह दें, तो चित्त बड़ा प्रसन्न होता है।
लेकिन ये लोग बड़े गड़बड़ हैं। यह आपको ठीक करने की इन्हें जरा भी चिंता नहीं है। जो ठीक है, वही ठीक है; चाहे उसमें आपको मिटना ही क्यों न पड़े।
लेकिन ध्यान रखें, उनकी दया बड़ी है। अगर आपको ठीक कह दें, तो आप बीमार ही बने रहोगे। आपकी बीमारी और बढ़ेगी। समर्थित हो जाएगी, तो और बढ़ेगी। आप कोई भी धारणा जब तय ही कर लेते हैं, तो फिर सत्य की खोज उसी क्षण बंद हो गई। सत्य की तरफ जाने का अर्थ ही है कि मैं निष्पक्ष जा रहा हूं।
लेकिन उन मित्र ने पूछा है कि अगर हम इसको मान ही न लें कि आत्मा भीतर है, तो आत्मा को जानने की प्रवृत्ति ही क्यों पैदा होगी?
उनका ख्याल है कि जिज्ञासा तभी पैदा होती है, जब हमें पता हो कि कुछ है। लेकिन जिज्ञासा यह भी तो हो सकती है कि हमारे मन में ख्याल उठे कि कुछ है या कुछ नहीं है? आप इस कमरे के बाहर से निकले; इस कमरे के भीतर क्या है, इसके जानने की जिज्ञासा हो सकती है बिना यह जाने कि क्या है। सच तो यह है कि अगर आपको पक्का ही पहले से भरोसा हो गया है कि कमरे के भीतर क्या है, तो जिज्ञासा की कोई जरूरत न रह गई। जितना बड़ा भरोसा, उतनी कम जिज्ञासा। और अगर श्रद्धा पूर्ण है बिना जाने, तो जिज्ञासा की कोई आवश्यकता ही न रही। क्या जरूरत है? अगर आपको पता ही है कि भीतर आत्मा है और महावीर, बुद्ध
और सब खोज-खोज कर कह गए, अब हम और किसलिए मेहनत करें? और एक दफा पता चल गया, बात खतम हो गई कि है भीतर, हम दूसरा काम करें। इसी में क्यों समय लगाएं? अगर आपको पक्का ही पता चल गया, तो जिज्ञासा मर जाएगी।
नहीं, आपको कुछ भी पता नहीं कि भीतर क्या है। एक घुप्प अंधकार है। ओर-छोर पता नहीं चलते। कोई पहचान नहीं मालूम होती। क्या है भीतर? है भी कुछ या नहीं है? मृत्यु है या अमृत? वहां कोई है भी या सिर्फ एक शून्य है? तब जिज्ञासा पैदा होती है।
जिज्ञासा का अर्थ हैः जहां आप अवाक खड़े हैं और आपको कुछ भी पता नहीं है। जहां धारणा है, वहां आप अवाक नहीं हैं; आपको पता है ही। इसलिए धारणा वाले लोग जिज्ञासु नहीं होते। जिज्ञासा की तो परिपूर्णता तभी है, जब धारणा की परम शून्यता हो। जिस मात्रा में धारणा, उस मात्रा में जिज्ञासा कम हो जाएगी।
इसलिए बच्चे जिज्ञासु होते हैं, देखा है; बूढ़े जिज्ञासु नहीं होते। क्या कारण है? बच्चे ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि बड़े-बड़े बूढ़े भी उनका जवाब नहीं दे पाते। बच्चे जिज्ञासु होते हैं, क्योंकि धारणा उनकी कोई भी नहीं है। बूढ़े की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है, धारणा ही धारणाओं का ढेर लग गया होता है, जिज्ञासा बिल्कुल नहीं रह जाती। बूढ़े भी उसी जगत में खड़े होते हैं, बच्चे भी उसी जगत में खड़े हैं; लेकिन बूढ़ों को कोई जिज्ञासा पैदा नहीं होती। सुबह सूरज निकलता है; बूढ़ा भी देखता है, बच्चा भी देखता है। बच्चे को तत्काल जिज्ञासा पैदा होती है--क्या है? पक्षी गीत गाता है। बच्चे को जिज्ञासा होती है--क्या है? बूढ़े को कोई जिज्ञासा नहीं होती। अगर बच्चा पूछता भी है, तो वह कहता है, चुप रहो! जब बड़े हो जाओगे, जान लोगे।
इसको खुद भी बड़े होकर पता नहीं चला है। मगर एक बात इसको पता चल गई है
कि बड़े होते-होते जिज्ञासा मर जाती है। पूछेगा ही नहीं, जानने का कोई सवाल नहीं है। यह बेटा भी कल बूढ़ा होकर अपने बेटे से कहेगा कि घबड़ाओ मत, अभी तुम्हारी उम्र कम है, जब उम्र बड़ी हो जाएगी, सब जान लोगे। लेकिन जिनकी उम्र बड़ी है, उनको क्या पता है? कुछ पता नहीं है। सिर्फ उनकी जिज्ञासा मर गई। उनकी जो ताजगी थी पूछने की, वह खो गई। जो खोजने की आकांक्षा थी, वह मर गई। ढेर सिद्धांतों के उनके पास हो गए। हर चीज का उत्तर उनके पास है। प्रश्न उनके पास एक भी नहीं है, उत्तर उनके पास सब हैं। प्रश्न उनके बिल्कुल खो गए हैं। जानकारी बहुत उनके पास हो गई है।
इसलिए बूढ़े के भीतर शरीर ही बूढ़ा हो जाए, यह तो स्वाभाविक है। लेकिन
यह आत्मा का बूढ़ा हो जाना है। शरीर तो बूढ़ा हो, यह स्वाभाविक है। लेकिन अगर किसी बूढ़े के भीतर शरीर बूढ़ा हो और बच्चे जैसी जिज्ञासा जारी रहे, तो बुढ़ापे से ज्यादा सुंदर और घटना जगत में दूसरी नहीं है। क्योंकि तब बच्चे जैसी ताजी ओस सुबह की भीतर होती है। और जिंदगी के अनुभव कचरे की तरह दबा

नहीं पाते और जिंदगी की धारणाएं राख नहीं बन पातीं, तो वैसे बूढ़े की आंखों में बच्चा झांकता है। और जिस दिन अनुभव हो बूढ़े का और जिज्ञासा हो बच्चे की, उस दिन व्यक्ति सत्य के निकटतम होता है।
लेकिन हमारी तकलीफ यह है कि हम सोचते हैं कि अगर हमें पहले से पता ही नहीं है, तो हम खोजने ही क्यों जाएंगे?
खोजने जाने का मतलब ही यह होता है कि पता नहीं है, इसलिए हम खोजने जाते हैं। धारणा हत्या है स्वयं की और सत्य से बचने का उपाय है।
कहा है उन्होंने, "क्या जिज्ञासा का मूल कारण वस्तु-तत्व का पूर्व-ज्ञान नहीं है?"
अगर पूर्व-ज्ञान ही है, तो जिज्ञासा तो फिर मूढ़ता होगी। ज्ञान के भी पूर्व ज्ञान कैसे हो सकता है? ज्ञान होगा, तभी! और जब ज्ञान होगा, तो जिज्ञासा खो जाएगी।
खतरा यही है कि बिना ज्ञान हुए भी जिज्ञासा खो सकती है, अगर हम दूसरों
के ज्ञान को अपना ज्ञान मान लें। उसे हम पूर्व-ज्ञान कहते हैं। महावीर कहते हैं कि आत्मा है अनंत वीर्य, अनंत आनंद, अनंत ज्ञान; ऐसी है, ऐसी है, ऐसी है। यह उनका ज्ञान है। हमारे लिए यह पूर्व-ज्ञान बन सकता है। इस पूर्व-ज्ञान का मतलब क्या हुआ? इसका मतलब हुआ, यह महावीर का ज्ञान है; हमें तो कुछ पता नहीं इस आत्मा का। लेकिन महावीर के शब्दों को हम स्वीकार कर लेते हैं।
महावीर के शब्दों को कितने लोग स्वीकार किए हुए हैं; उनमें से कौन महावीर की खोज पर जाता है? बुद्ध को कितने करोड़ों लोग मानते हैं; लेकिन कौन बुद्ध जैसा खोजता है? वह तो भला हो कि बुद्ध को कोई और बुद्ध नहीं मिला पूर्व-ज्ञान देने वाला। खुद ही खोजा, तो पाया। सत्य स्वयं की खोज से मिलता है। इतना सस्ता नहीं है कि दूसरे से मिल जाए।
हां, दूसरे से ज्ञान मिल सकता है। लाओत्से उस ज्ञान को ही कहता है, छोड़ो! यह बुद्धिमत्ता छोड़ो, जो उधार है।
पूछा है, "क्या स्व-बोध आनंद-रूप नहीं है? यदि है, तो स्व-बोध को आनंद-रूप मानने में आपको संकोच क्यों है? श्रुतियां तो आत्मा को स्पष्ट रूप से आनंद-स्वरूप मानती हैं।"
श्रुतियां मानती होंगी। जिन्होंने कहा होगा, उन्होंने जाना होगा। जिन्होंने जाना है, उन सभी ने कहा है कि वह आनंद-रूप है। लेकिन खतरा तो वहां शुरू होता है कि जिन्होंने नहीं जाना वे भी मान लेते हैं कि वह आनंद-रूप है। खतरा जानने वालों का नहीं है, खतरा सुनने वालों के साथ है। आप भी मान कर बैठ जाते हैं कि आनंद-रूप है। आपको न आनंद का पता है कि आनंद क्या है, आनंद-रूप का क्या अर्थ होगा! न आत्मा का पता है कि आत्मा क्या है! न आनंद का पता है कि आनंद क्या है! लेकिन यह वाक्य बड़ा सुरुचिकर लगता है कि आत्मा आनंद-रूप है। इसका अर्थ क्या होगा?
दुख आपने जाना है। सुख की कभी कोई झलक पाई होगी। आनंद की तो कोई झलक आपको नहीं है। तो जब भी आप समझते हैं कि आत्मा आनंद-रूप है, आप सोचते हैं, खूब सुख, सदा सुख रहेगा, ऐसी कुछ होगी। आपके लिए आनंद का अर्थ सुख का ही विस्तार हो सकता है। सघन सुख होगा, कभी समाप्त न होने वाला सुख होगा--यही आपकी धारणा हो सकती है।
आनंद का सुख से उतना ही संबंध है, जितना दुख से। दोनों से कोई संबंध नहीं है। आत्मा का भी पता नहीं, आनंद का भी पता नहीं; लेकिन शब्द सुनते- सुनते लगता है कि पता हो गया--आत्मा आनंद है। इसको दोहराते रहें बैठ करः आत्मा आनंद है, आत्मा आनंद है। उससे कुछ भी नहीं होगा।
लाओत्से की दृष्टि यह नहीं है कि आत्मा आनंद नहीं है। लाओत्से यह कह रहा है कि हम कुछ न कहेंगे कि आत्मा क्या है। तुम्हीं जाओ और जानो। हम इतना ही कहेंगे कि तुम कैसे जा सकते हो। हम यह न कहेंगे कि जाने पर तुम्हें क्या मिलेगा। क्योंकि तुम इतने धोखेबाज हो कि बिना जाए यहीं बैठ कर रटने लगोगे कि आत्मा आनंद है, आत्मा आनंद है। और बार-बार पुनरुक्त करके अपने को ही सम्मोहित कर लोगे और यह भूल ही जाओगे कि तुम पहुंचे नहीं हो, तुम्हें कुछ भी पता नहीं है।

सत्य क्या है, इसे कहने से आपको शब्द सुनाई पड़ते हैं, सत्य सुनाई नहीं पड़ता। शब्द सुनाई पड़ते हैं, और बार-बार सुनने से शब्द परिचित हो जाते हैं। और परिचित शब्द खतरनाक हैं।
यहूदियों में एक प्रथा है और कीमती प्रथा है कि परमात्मा का नाम न लिया जाए। तो यहूदियों ने परमात्मा का जो नाम रखा हैः वह है याहवेह। उस शब्द का इतना ही मतलब होता है कि जिसका कोई नाम नहीं है। क्योंकि नाम बार-बार दोहराने से कहीं ऐसा भ्रम न पैदा हो जाए कि तुम जानते हो। और याहवेह, जिस शब्द का अर्थ इतना ही होता है कि जिसका कोई नाम नहीं, इसका भी उपयोग नहीं करना है। नहीं तो यही नाम बन जाएगा।
आदमी के लिए तकलीफें हैं। और उन तकलीफों को जो समझते हैं, वे नहीं कहेंगे कि क्या है आत्मा; वे इतना ही कहेंगे कि कैसे तुम जा सकते हो, जाओ। अंधे से क्या फायदा है कहने का कि प्रकाश क्या है। इतना ही काफी है कि क्या है इलाज, क्या है औषधि कि आंखें खुल जाएं। और खतरा है यह कि अंधे को आप बता दें कि प्रकाश यह है और अंधा भी सुन ले। क्योंकि अंधा बहरा तो नहीं है, सुनता है। बल्कि सच यह है कि आंख वालों से अंधे ज्यादा सुनते हैं।
ख्याल किया आपने, अंधों के कान तेज हो जाते हैं। आंख की ताकत भी कान को
ही मिल जाती है। तो अंधे सुनने में बड़े कुशल हो जाते हैं। अंधों की स्मृति भी ज्यादा होती है आंख वालों से। क्योंकि आंख से बनती हैं हमारी कोई नब्बे प्रतिशत स्मृतियां। वह काम बंद हो जाता है। तो सारी स्मृति की शक्ति कान को मिल जाती है। तो अंधे की स्मृति भी बड़ी तीव्र होती है।
तो अंधे को अगर कोई बता दे कि प्रकाश क्या है, तो वह सुन भी लेगा, समझ
भी लेगा, समझेगा कि समझ लिया, कंठस्थ कर लेगा, स्मृति मजबूत हो जाएगी। वह भूल ही जाएगा कि मैं अंधा हूं और प्रकाश से मेरा कोई संबंध नहीं है, और न मेरी प्रकाश से कोई पहचान है, आंख वाले कहते हैं कि प्रकाश ऐसा है। इन मित्र ने लिखा है, श्रुतियां कहती हैं... । आंख वाले कहते हैं कि प्रकाश ऐसा है। आंख वालों के कहने से क्या संबंध है? आंख चाहिए। और खतरा यही है कि अंधे भी कंठस्थ कर लेते हैं।
इसलिए लाओत्से नहीं चर्चा करता कि आत्मा क्या है, क्या नहीं है। वह इतना ही कहता है, कैसे आंख की चिकित्सा हो सकती है। बस वह चिकित्सा हो जाए, तो काफी है।

एक मित्र ने पूछा है, हम धार्मिक ही क्यों हों, जब न आदि का पता है, न अंत का, न ईश्वर-आत्मा का कोई पता है? बुद्ध पुरुष कहते हैं जिस सत्य की बात, यदि वह सत्य है, तो वे सभी को उसका अनुभव क्यों नहीं करवा पाते हैं?

कोई नहीं कहता आपसे कि आप धार्मिक हों। कम से कम लाओत्से तो नहीं कहेगा। क्योंकि धार्मिक लोगों ने इतने उपद्रव किए हैं कि आप न हों, तो अच्छा है। लाओत्से नहीं कहता कि धार्मिक हों। लाओत्से तो इतना ही कहता है कि जो आप हैं, वही हों।
आप पूछ सकते हैं कि वही हम क्यों हों?
क्योंकि वही आप हो सकते हैं। और कुछ होने का उपाय नहीं है। हां, और कुछ होने की आप कोशिश कर सकते हैं। उस कोशिश में जीवन व्यर्थ हो सकता है। लेकिन आप कह सकते हैं कि हम जीवन को व्यर्थ क्यों न करें?
कोई आपको रोक नहीं सकता। और इसीलिए बुद्ध पुरुष भी हार जाते हैं और आपको सत्य का ज्ञान नहीं करवा पाते। क्योंकि आप कहते हैं, हम सत्य का ज्ञान क्यों करें? बुद्ध पुरुष भी क्या कर सकते हैं! कह सकते हैं। जो आनंद उन्हें उपलब्ध हुआ है, जो शांति उन्होंने पाई है, जो प्रकाश उन्हें मिला है, उसकी प्यास जगाने की चेष्टा कर सकते हैं। वे प्रकाश तो नहीं दे सकते, लेकिन प्यास जगाने की चेष्टा कर सकते हैं।
लेकिन आप यह भी कह सकते हैं कि क्यों हमारी प्यास जगाने की चेष्टा कर रहे हैं?
लेकिन आप थोड़ा समझने की कोशिश करें। अगर आप धार्मिक नहीं होना चाहते हैं, आप यहां पहुंच कैसे गए? आपको यह प्रश्न पूछने का ख्याल क्यों आया? कोई बेचैनी है भीतर, जो आपको यहां तक ले आई, और आपने इतनी कृपा की और प्रश्न

लिखा। इतना कष्ट उठाया। कोई बेचैनी है भीतर। एक बात तय है कि आप कुछ खोज रहे हैं। नहीं तो आने का कोई कारण नहीं है, प्रश्न पूछने का कोई कारण नहीं है। कोई खोज है।
आप क्या खोज रहे हैं? बुद्ध उसी को धर्म कहते हैं, लाओत्से उसी को ताओ कहते हैं। आपको पता हो या न पता हो, आप धर्म खोज रहे हैं। आपको यह भी पता नहीं है कि आप क्या खोज रहे हैं।
थोड़ा अपने भीतर जांच-पड़ताल करेंः क्या है आकांक्षा? क्या है तलाश? हमें यह भी तो पता नहीं कि हम कौन हैं, क्यों हैं, किस वजह से हैं? हमारा होना बिल्कुल अकारण मालूम होता है। इस पृथ्वी पर जैसे अचानक फेंक दिए गए हैं। क्यों हैं? बेचैनी है भीतर। और वह बेचैनी तब तक समाप्त न होगी, जब तक इस अस्तित्व के भीतर अपनी जड़ों का हमें अनुभव न हो जाए। जब तक हम इस अस्तित्व और अपने बीच एक संबंध को न जान लें, तब तक हमें बेचैनी जारी रहेगी।
धार्मिक होने का और क्या अर्थ है? शब्दों में जाने की कोई जरूरत नहीं है। धार्मिक होने का इतना ही अर्थ हैः वह आदमी जिसने अस्तित्व और अपने बीच संबंध खोज लिया, जिसने विराट और अपने बीच नाता खोज लिया, जो अब इस जगत में एक परदेशी, अजनबी, स्ट्रैंजर नहीं है। यह जगत उसका परिवार हो गया। ये चांद-तारे और सूरज उसका परिवार हो गए। अब वह अपने घर में है। धार्मिक होने का क्या मतलब है? धार्मिक होने का मतलब है कि हम कहीं परदेश में नहीं भटक रहे हैं, हम किन्हीं अजनबी लोगों के बीच में नहीं हैं; यह जगत हमारा घर है। लेकिन मकान घर नहीं होता। मकान तो सभी हैं। कौन सा मकान घर होता है आपका? जिसके बीच और आपके बीच एक आत्मैक्य स्थापित हो जाता है, जिसके बीच और आपके बीच एक आंतरिक मिलन हो जाता है, तब मकान घर हो जाता है। अधार्मिक आदमी संसार में रहता है और धार्मिक आदमी परमात्मा में। संसार और उसके बीच एक संबंध, गहन संबंध हो जाता है। उसके भीतर के हृदय की वीणा पर जगत की सब चीजें संगीत उठाने लगती हैं। सूरज फिर पराया नहीं है। और चांद-तारे फिर दूर नहीं हैं। सभी कुछ अपना है। और यह सारा विराट ब्रह्मांड अपना घर है। ऐसी जो प्रतीति है, वह धार्मिकता है।
अगर आप इस जगत में एक परिवार को खोज रहे हैं, एक प्रेम को, तो आप धर्म
को खोज रहे हैं। अगर आप एक व्यक्ति के भी प्रेम में पड़ते हैं, तो आपने जगत के एक हिस्से को धार्मिक बना लिया। फिर जितना जिसका बड़ा है परिवार, उतना है उसका गहन आनंद।
कुछ लोग ऐसे हैं कि वे ही उनका अकेला परिवार हैं। कहीं उनका कोई नाता- रिश्ता नहीं है। फिर अगर ऐसे लोगों को लगने लगता है कि हम आउटसाइडर हैं... । कोलिन विल्सन ने एक किताब लिखी है--दि आउटसाइडर। इस युग के लिए प्रतीक-किताब है। इस युग में हर आदमी को लगता है कि मैं एक अजनबी हूं। क्यों हूं? किससे मेरा क्या संबंध है? कौन मेरा, मैं किसका? कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता जोड़। उखड़े-उखड़े लोग, जैसे वृक्ष को जमीन से उखाड़ दिया हो और हवा में लटका दिया हो, वैसे हम हैं।
धार्मिक होने का अर्थ है, जड़ों की खोज। सिमोन वेल ने एक किताब लिखी है--दि नीड फॉर दि रूट्स। इस सदी में थोड़े से धार्मिक व्यक्तियों में वह महिला भी एक थी। उसने लिखा है कि धर्म जो है, वह जड़ों की तलाश है। यह जो लटका हुआ आकाश में, अधर में लटका हुआ वृक्ष है--सूखता हुआ, कुम्हलाता हुआ, तड़पता हुआ--इसको वापस जगह देनी है जमीन में। इसको फिर इसकी जड़ें मिल जाएं, यह फिर हरा हो जाए, इसमें फिर फूल आने लगें। धार्मिक होने का अर्थ हैः अपनी ही खोज, अपने और जगत के बीच किसी संबंध की खोज। अपने और जगत के बीच किसी गहन प्रेम की खोज।
मैं नहीं कहता कि आप धार्मिक हो जाएं। लेकिन इस जमीन पर एक भी ऐसा आदमी नहीं है, जो धार्मिक नहीं होना चाह रहा है, भला वह इनकार ही क्यों न कर रहा हो। एक आदमी ऐसा खोजना मुश्किल है, जो धार्मिक न होना चाह रहा हो। धर्म को वह शब्द क्या देता हो, यह उसकी मर्जी। वह अपनी आकांक्षा को क्या रूप-आकृति देता हो, यह भी उसकी मर्जी। लेकिन मुझे अब तक ऐसा एक आदमी नहीं मिला, जो धार्मिक होने की तलाश में नहीं है। जिसको हम नास्तिक कहते हैं, वह भी तलाश में है।

असल में, आदमी की तलाश ही यही है कि वह इस जगत में कोई असंगत और व्यर्थता तो नहीं है? इस जगत में कोई उखड़ी हुई चीज, व्यर्थ की चीज तो नहीं है? इस जगत में उसके होने की कोई अर्थवत्ता है या नहीं, कोई सिग्नीफिकेंस? वह है, तो इस विराट में उसका कोई मूल्य है? इस जगत में मूल्य की खोज धर्म है। आप हैं, आपका कोई मूल्य है इस जगत में? कीमत हो सकती है; मूल्य कोई है आपका इस जगत में?
अगर आपका कोई मूल्य है, तो उसका अर्थ हुआ कि यह जगत आपके भीतर से विकसित हो रहा है; यह विराट चेतना की धारा आपके भीतर से विकासमान हो रही है। यह पूरा जगत आपको चाहता है; आपके हुए बिना अधूरा होता। आप न होते, तो यह जगत अधूरा होता, कुछ कमी होती, कुछ खाली जगह होती। आपने इस जगत को भरा है। इस जगत और आपके बीच कोई गहरा लेन-देन है। प्रतिपल यह जगत आपको दे रहा है और आपसे ले रहा है। आप और जगत के बीच एक गहरा अंतर्मिलन है। इस अंतर्मिलन की खोज ही धर्म है।
पर मैं नहीं कहता कि आप धार्मिक हो जाएं। दुनिया में कोई किसी के कहने
से कभी धार्मिक नहीं हुआ है। बल्कि इतने लोग जो अधार्मिक दिखाई पड़ते हैं, यह बहुत चेष्टा करने का फल है।
चार्ल्स डार्विन ने अपने आत्म-संस्मरणों में एक बड़ी हैरानी की बात लिखी है। उसने लिखा है, कुछ चीजें ऐसी हैं कि जो चेष्टा करने से विपरीत परिणाम लाती हैं। उसने कहीं यह पढ़ा था। वह तो वैज्ञानिक आदमी था डार्विन। उसने सोचा, बिना प्रयोग किए कैसे... !
तो उसने अपने पड़ोस के दस जवान लड़कों को बुलाया। सुंघनी होती है नाक में सूंघने की। वह उन दसों के सामने रखी और उनसे कहा कि मैं तुमसे पूछता हूं, तुमने कभी यह नास, यह सुंघनी सूंघ कर देखी है? उन सब ने कहा, हमें अनुभव है, बड़े जोर से छींकें आती हैं। तो डार्विन ने कहा कि मैंने ये दस नगद सोने के सिक्के रखे हैं। जिसको भी छींक आ जाएगी सुंघनी लेने पर, नगद एक सोने का सिक्का उसे दूंगा।
उन दसों ने सुंघनी ली, बड़ी कोशिश की छींक को लाने की, रुपया सामने रखा था, छींक है कि नहीं आती है। आंख से आंसू बहते हैं, मुंह लाल हो जाता है; लेकिन छींक है कि नहीं आती है। दस में से एक भी सफल नहीं हुआ छींक लाने में।
आप भी सफल न होंगे; छींक लाने की कोशिश करें। छींक आती है, लाई नहीं जाती।
धार्मिक होना होता है; कोई आपको धार्मिक बना नहीं सकता। इसलिए धर्मगुरुओं ने मिला कर पृथ्वी को अधार्मिक बना दिया है। धर्मगुरुओं की चेष्टाओं का फल यह है कि किसी को छींक ही नहीं आती। सब लाने की कोशिश में लगे हैं। लेकिन मेकेनिज्म है। कुछ चीजें हैं, जो सहज हों, तो ही होती हैं। चेष्टा से हों, नहीं होती हैं।
और लाओत्से इसलिए सहज पर जोर देता है। वह कहता है, यह जो परम सत्य है जीवन का, यह सहज होता है। तुम जितने सहज हो जाओगे, यह छलांग लग जाएगी। तुम जितनी चेष्टा करोगे, उतनी यह छलांग असंभव है।
आज इतना ही। रुकें, पांच मिनट कीर्तन करें, और फिर जाएं।